सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

१९

(नवम्बर १९२० – अप्रैल १९२१)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डकी व्याप्ति १९ नवम्बर, १९२० से १३ अप्रैल, १९२१ तक की है। यह अवधि एक बड़ी व्यस्त अवधि है जिसमें गांधीजीने असहयोग आन्दोलनको एक नई दिशामें आगे बढ़ाया। इसके पहलेके छः महीनोंमें गांधीजीने शासनकी तत्कालीन प्रणाली-के विरोधमें जनताको जागृत किया और वह जागी। अब उनके सामने यह सवाल था कि इस राष्ट्रीय जागृतिको वे किसी रचनात्मक काममें लगा दें। दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें कांग्रेसका नागपुर अधिवेशन हुआ और वहाँ गांधीजीके नेतृत्वमें राष्ट्रीय संघर्षका एक नया उद्देश्य अंगीकार किया गया। कहा गया : "इस राष्ट्रीय सभाका उद्देश्य स्व-राज्य प्राप्त करना है और उसे प्राप्त करनेका उपाय यही है कि हमारे साधन न्याययुक्त, शुद्ध और शान्तिपूर्ण हों।" (पृष्ठ १६२, १६८) इन शब्दोंसे नागपुर अधिवेशनमें अहिंसा और विकासशील असहयोगसे सम्बन्धित उस प्रस्तावमें पुनः अपना विश्वास प्रकट किया जो उसने सितम्बर १९२० में कलकत्ताके विशेष अधिवेशनके समय पास किया था। इस प्रस्तावमें जनतासे इस बातकी अपील भी की गई कि वह अपने संघर्षको तीव्र करे। साथ ही कांग्रेसने ग्रामीण अर्थव्यवस्थापर आधारित अपना एक संविधान भी बनाया, ताकि कांग्रेसको एक जबरदस्त संस्थाका रूप देकर उसे कारगर कदम उठाने-का साधन बनाया जा सके। इसके बाद पुनः बेजवाड़ाकी बैठकमें ३१ मार्च, १९१९ को अखिल भारतीय कांग्रेस समितिने एक निश्चित कार्यक्रम जनताके सामने रखा और उसके पूरे होनेकी अवधि ३० जून, १९२१ तय की गई।

कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनके कतिपय दिनोंको छोड़कर छः महीनोंकी इस अवधिमें, गांधीजी देशका दौरा करते रहे और उन्होंने पंजाब, संयुक्त प्रान्त, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश और दक्षिणमें जगह-जगह हजारों लोगोंको सभाओंमें कांग्रेसके कार्यक्रमसे परिचित कराया। उन्होंने वैसे तो देशकी समस्त जनतासे आन्दोलनमें शामिल होनेके लिए कहा, किन्तु विशेष रूपसे उनका सन्देश देशके तरुणोंके नाम ही था। अस-हयोग आन्दोलनका एक प्रमुख कार्यक्रम था सरकारी स्कूलों और कालेजोंका बहिष्कार। गांधीजीने विद्यार्थियोंसे इन्हें बिलकुल खाली कर देनेके लिए कहा और यह भी कहा कि उन्हें अपने जीवनपर जीविकाकी दृष्टिसे विचार करनेकी बिलकुल आवश्यकता नहीं है। उन्होंने कहा कि प्रचलित शिक्षा-पद्धतिको वे अस्वीकार्य मानें, इसलिए नहीं कि वह खराब है — खराब तो वह निश्चय ही है, किन्तु वह मलिन भी है, यहाँतक कि 'पापयुक्त' है। वह एक पापमय शासन पद्धति द्वारा देशपर थोपी गयी है और इसलिए वह शिक्षा-पद्धति स्वयं भी पापमय है। गांधीजीकी अपीलपर तमाम विद्यार्थियों-ने स्कूल और कालेज छोड़ दिये और जहाँ-तहाँ राष्ट्रीय शालाएँ और महाविद्यालय खुलने लगे। इनमें चरित्र-संगठन और रचनात्मक सेवापर जोर दिया जाता था। ऐसी संस्थाओंके विद्यार्थियोंके सामने दिये गये जो भाषण इस खण्डमें शामिल किये गये हैं,

उनसे यह बात स्पष्ट हो जायेगी। (देखिए शीर्षक ४३, ६८, १२६, १४४, १५९, १७२, १७६, २२६ और २७४)

इस अवधिमें विद्यार्थियोंके प्रति गांधीजीकी अपील और अस्पृश्यता-निवारणकी दृष्टिसे किये गये आन्दोलन आधुनिक और परम्परावादी, दोनों ही प्रकारके नेताओंको पसन्द नहीं आये। यद्यपि मदनमोहन मालवीय भी गांधीजीकी तरह भारतीय जीवन पद्धतिके बड़े प्रेमी थे, तथापि उन्हें ऐसा लगता था कि प्रचलित शिक्षा प्रणालीसे राष्ट्रीय जागृति साधी जा सकती है और उन्होंने अपने इसी विश्वासके कारण बरसों अथक परिश्रम करके बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयकी स्थापना भी की थी। गांधीजी-ने जब यह कहा कि हिन्दू विश्वविद्यालय सरकारी नियमोंके अनुसार न चले, तो माल-वीयजीको उनके इस कथनके निर्दोष होनेमें बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ। उन्होंने इसे गलत कहा। गांधीजीने बनारसमें विद्यार्थियोंके सामने जो भाषण दिया (पृष्ठ २४-३१) उसमें उन्होंने इस मतभेदकी विस्तृत चर्चा की और यह भी कहा कि विद्यार्थी श्री मालवीयजीकी बातको बहुत ध्यानके साथ सुनें और यदि उन्हें ऐसा लगे कि उनकी आत्मा भी पापपूर्ण सत्ताके सहयोगसे विरत होनेकी दिशामें उन्हें प्रेरित कर रही है, तो वे मेरी बात सुनें, अन्यथा नहीं। यह सिद्ध करनेके लिए कि वे जो कुछ कर रहे हैं, वह उनकी आत्माकी पुकार है, उन्हें देशकी परम्पराके अनुकूल अपने विद्यार्थी जीवनमें आत्मसंयमका पालन करना पड़ेगा। विद्यार्थियोंकी प्रत्येक सभामें उन्होंने अनुशासन और बड़ोंके प्रति सम्मानपूर्ण आचरणकी आवश्यकतापर जोर दिया और कड़ेसे-कड़े शब्दोंमें उन विद्यार्थियोंकी भर्त्सना की जो गांधीजीसे मतभेद रखनेवाले वक्ताओंकी सभा-में गड़बड़ी पैदा करनेकी कोशिश करते थे। तथापि गांधीजीके आलोचकोंको इस सबसे सन्तोष नहीं हुआ। यहाँतक कि सी० एफ० एन्ड्रयूज-जैसे मित्रके सन्देहको भी वे दूर नहीं कर पाये। श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज ऐसा मानते थे कि गांधीजी तत्कालीन शिक्षाका बहिष्कार करके विज्ञान और सर्वसामान्य शिक्षाको नुकसान पहुँचा रहे हैं। गांधीजीने हरचन्द कहा कि उनका कदापि ऐसा इरादा नहीं है। (पृष्ठ ३६३)

फिर भी लोगोंके मनमें यह बात घर करती चली गई कि गांधीजी आधुनिक प्रगतिके खिलाफ हैं। उनकी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' जो दक्षिण आफ्रिकामें १९०९ में छपी थी और जिसका अंग्रेजी अनुवाद 'इंडियन होम रूल' के नामसे भी प्रकाशित हो चुका था, जिसे विरोधी आलोचकोंने अब जाकर देखा और उन्होंने उसको आधार बनाकर यह सिद्ध करना शुरू किया कि गांधीजी दुनियाको वापस मध्ययुगमें ले जाना चाहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि गांधीजी आधनिक पाश्चात्य सभ्यताके खिलाफ थे, किन्तु इसका कारण था उसका भौतिक साधनोंके पीछे जरूरतसे ज्यादा पागल रहना। वे इस सभ्यताके खिलाफ इसलिए नहीं थे कि वह पश्चिमकी है। और उन्होंने कई बार इस बातको समझाकर कहनेकी कोशिश भी की। श्री नरसिंहरावके नाम लिखा हुआ उनका पत्र (पृष्ठ १८१-८५) उनकी इस दृष्टिको स्पष्ट करता है और बड़ी ही विनम्रता और ईमानदारीके साथ अपील करता है कि उनकी बातको ठीक-ठीक समझा जाये। उन्होंने एक ओर यह कहा कि "सबसे सच्चा स्वराज्य तो अपनेपर शासन करना है — वह मोक्ष या निर्वाणका पर्यायवाची है . . ." (पृष्ठ ८२) और यह भी कहा कि वे

व्यक्तिगत रूपसे इसी प्रकारके आत्मशासनको लानेका प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु साथ ही उन्होंने यह स्वीकार किया कि भारत अभीतक ऐसे आत्मशासनके लिए तैयार नहीं है और इसलिए वे सार्वजनिक रूपसे जो संघबद्ध कार्य कर रहे हैं वह निश्चय ही "भारतीय जनताकी आकांक्षाओंके अनुरूप संसदीय ढंगका स्वराज्य प्राप्त करनेकी दृष्टिसे" किया जा रहा है। (पृष्ठ २८३)

प्राचीन परम्पराके अनुयायियोंने भी गांधीजीके विचारोंका दृढ़ताके साथ विरोध किया किन्तु उसका असर इतना नहीं हुआ। गांधीजी जाति-प्रथाके प्रति कुछ बातोंमें अपना मतभेद प्रकट करते हुए अपनेको सनातनी हिन्दू कहते थे। (पृष्ठ ८६-८८ और १७९-८१)। गोमाताके प्रति भक्तिके सम्बन्धमें भी वे अपनेको किसी सनातनी वैष्णवसे पीछे नहीं मानते थे। किन्तु वे यह भी कहते थे कि शास्त्र, जिनमें 'मनुस्मृति' भी सम्मिलित है, नीरन्ध्र नहीं हैं और वे उस विवेक-बुद्धिके आगे छोटे हैं जो आत्मसंयम तथा सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और असंग्रहके आचरणके बाद प्राप्त होती है। नवनिर्मित गुजरात विद्यापीठकी सीनेटने निश्चय किया कि उससे सम्बद्ध सारी संस्थाएँ अन्त्यज बालकोंके लिए खुली रहेंगी। गुजरातमें इसे लेकर बड़ी जोरदार बहस छिड़ गई और लोगोंने कहा कि गांधीजीका सनातनी होनेका दावा गलत है। (पृष्ठ ८) गांधीजीने जवाबमें अनेक लेख लिखे (पृष्ठ ७५-७७, ९९-१०२, १४५-४६, ३३२-३६) और उसमें उन्होंने हिन्दू-धर्मके सार और शास्त्रोंके प्रति अपनी सर्वसामान्य स्थितिको स्पष्ट किया। ये लेख यह स्पष्ट करते हैं कि गांधीजीकी धार्मिक प्रेरणाका स्रोत हिन्दू-धर्मकी परम्पराओंमें ही था। अलबत्ता उन्होंने, चाहे उसे विवेकयुक्त विचारों और आत्मिक सत्यके प्रकाशमें देखनेकी कोशिश की थी। उन्हें हिन्दू धर्मसे और हिन्दू धर्म जिनको महत्व देता था, उन आदर्शोंसे इतना लगाव था कि जो व्यक्ति केवल उसके बाहरी रूपसे चिपटे रहना चाहते थे उनके प्रति वे असहिष्णु हो उठते थे। उन्होंने ब्रिटिश सत्ताकी निन्दामें जहाँ कठोर शब्दोंका प्रयोग किया, 'हिन्दू डायर' (पृष्ठ २९३) आदि शब्दोंका प्रयोग करके उन्होंने अपने समाजके परम्परावादियोंकी भी कठोर भर्त्सना की। कुछ लोग अस्पृश्यताका सवाल उठानेको राजनीतिक दृष्टिसे बुद्धिमानी नहीं मानते थे; उनका कहना था कि ऐसे समय जब कि सरकारके विरोधमें उन्हें हरएककी सहायता अपेक्षित है, कुछ-न-कुछ लोग इस बातके कारण उनसे विलग हो जायेंगे। किन्तु गांधीजीने ऐसा कोई समझौता करनेसे इनकार कर दिया। वे अस्पृश्यताको एक मूलभूत सवाल मानते थे और उन्हें हिन्दुत्वका भविष्य उससे सम्बद्ध दिखाई देता था।

सरकारने शुरू-शुरूमें असहयोग आन्दोलनका मजाक उड़ानेकी कोशिश की और सोचा कि शायद इस तरह वह समाप्त हो जायेगा। किन्तु आन्दोलन दिन-प्रतिदिन जोर पकड़ता चला गया और तब यह कहा गया कि आन्दोलनका आधार घृणा है। इसे सिद्ध करनेके लिए उन छुट-पुट गलतियोंकी ओर इशारा किया जाने लगा जो आन्दोलनके दौरान एकाध आन्दोलनकारीसे हो जाती थीं। कुछ आलोचकोंने यह भी कहा कि यदि आन्दोलन बन्द नहीं किया गया, तो यह हिंसात्मक रूप धारण कर लेगा और कहीं आन्दोलनके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार देशसे हट गई, तो देशमें अरा-

जकता और अव्यवस्था फैल जायेगी। कुछ लोगोंने यह भी कहा कि जनतामें इतनी शक्ति नहीं है कि कार्यक्रम सफल हो सके। गांधीजीने इन सारी बातोंका बड़े धैर्यके साथ जवाब दिया। कई बार उन्हें अपने तर्कोंको दोहराना भी पड़ा, किन्तु हर बार उनका जवाब आत्मासे उठकर आता था और उसमें एक निष्णात पत्रकारकी कलम झाँकती थी। अराजकता, अव्यवस्था अथवा अंग्रेजोंके चले जानेके बाद किसी विदेशी सत्ताके आक्रमणकी आशंकाका जवाब देते हुए उन्होंने असहयोग आन्दोलनकी उस शक्तिमें अपना परिपूर्ण विश्वास प्रकट किया, जो उनकी समझमें देशको अहिंसात्मक बनाकर आत्माको ऐसी पवित्र सामर्थ्य दे सकती थी कि देशको किसी अन्य सहारेकी आवश्यकता न रहे और वह आत्मनिर्भरता प्राप्त कर सके। उन्होंने कहा, मैं किसी ऐसी निराशापूर्ण सम्भावनाकी कल्पना नहीं करता। श्री स्टोक्सके लेखको लक्ष्यमें रखकर उन्होंने कहा कि "यदि अहिंसाके रास्तेसे यह आन्दोलन सफल होता है . . . तो अंग्रेज चाहे यहाँ रहें या यहाँसे चले जायें, वे जो-कुछ भी करेंगे मित्रोंकी तरह ही करेंगे, और जैसा दो साझेदारोंके बीच किसी अच्छे समझौतेमें होता है, उसी तरह करेंगे। मै अभीतक मानव-प्रकृतिकी नेकीमें विश्वास करता हूँ, चाहे वह मानव अंग्रेज हो या कोई और।" (पृष्ठ १७८) इसके पहले गांधीजीको अंग्रेजोंसे लगातार दो कड़वे अनुभव ही प्राप्त हुए थ, फिर भी उन्होंने इस विश्वासको नहीं छोड़ा कि अंग्रेजों और भारतीयोंके बीच परस्पर समानताके आधारपर समझौता हो सकता है; और इसीलिए नागपुर कांग्रेसने अपने नये सिद्धान्तकी स्वीकृतिके बावजूद राष्ट्रमण्डलमें स्वतन्त्र भारतके समान-हैसियतसे एक हिस्सेदार बने रहनेकी सम्भावनाका मार्ग खुला हुआ रखा।

जहाँतक अमलमें लानेका सवाल है, नागपुर कांग्रेसमें जो ११ मुद्देवाला कार्यक्रम निश्चित हुआ था, वह बहुत सफल नहीं हुआ। फिर भी गांधीजीकी दृष्टिसे इतना काफी था कि भारतमें ब्रिटिश सत्ता जिस प्रतिष्ठापर आधारित थी, उस प्रतिष्ठाकी नींव हिल गई। यह स्वाभाविक था कि गांधीजी ड्यूक ऑफ कनॉटकी भारत यात्राका उपयोग सत्ताको अपनी खोई हुई प्रतिष्ठाकी पुन:स्थापना करनेकी दिशामें नहीं होने देना चाहते थे और इसलिए इस बातका खतरा उठाकर भी कि उनपर ड्यूकके प्रति अशिष्ट होनेका आरोप लगाया जायेगा, उन्होंने ड्यूकके सम्मानमें होनेवाले सारे कार्यक्रमों और उत्सवों-का बहिष्कार करनेकी सलाह जनताको दी। इस तरह सरकारके विरोधमें संघर्षका वातावरण तैयार हो गया और ३१–३–१९२१ को अखिल भारतीय कांग्रेस समितिकी बैठकमें एक ऐसा कार्यक्रम निर्धारित किया गया जिसके अमलसे देशकी समस्त प्रौढ़ जनताके साथ कांग्रेसका सम्पर्क सध सकता था। किन्तु असहयोग आन्दोलनका अन्तिम आधार तो नैतिक पवित्रता ही था; इसलिए गांधीजीकी यही मान्यता थी कि देश नैतिक दृष्टिसे जिस हदतक ऊँचा उठेगा, उसी हदतक राजनैतिक आन्दोलन भी सफल होगा। वे राजनीतिक कार्यको तपश्चर्या ही मानते थे। उन्होंने राष्ट्रीय सप्ताहको किस तरह मनाया जाये, यह समझाते हुए लिखा : "सत्यका अधिक आग्रह करके, अधिक दृढ़ बनकर, अधिक नम्र तथा शुद्ध बनकर और अधिक शक्ति प्राप्त करके ही [यह सप्ताह] मनाया जाना चाहिए। इस सप्ताहमें ऐसे उपायोंकी योजना करना भी हमारा विशेष

कर्त्तव्य है जिससे कि १३ तारीखको जो अत्याचार हुए थे वे फिर न होने पायें।... यह सप्ताह शुद्ध तपश्चर्या, भक्ति और फकीरीका होना चाहिए। इस सप्ताहमें हमें अपनी सब भूलोंके लिए ईश्वरसे और जिनके प्रति हमने वे भूलें की हैं उनसे माफी माँगनी चाहिए। हमारा बल हमारी नम्रतामें है। हम अंग्रेजोंका अथवा अपने विरोधियोंका बुरा न चाहें, उन्हें बुरा न कहें।" (पृष्ठ ४५७-५८)

इस खण्डमें सी० एफ० एन्ड्रयूज और सरलादेवी चौधरानीके नाम लिखे गये गांधीजीके पत्र, व्यक्तिगत सम्बन्धोंसे जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें देखने-समझनेके ध्यानसे बहुत दिलचस्प हैं। एन्ड्रयूज असहयोग आन्दोलनकी सारीकी-सारी तफसीलसे सहमत नहीं थे और प्रायः उस सम्बन्धमें अपनी आशंका व्यक्त किया करते थे। गांधीजी उन्हें सदा ही स्नेह और सौम्यताके साथ उत्तर देते थे और फिर भी उन दोनोंके बीच जो मतभेद था, उसे न तो कभी कम तौलते थे और न उसे कम करके ही दिखाते थे। सरलादेवीके प्रति वे बड़ी स्पष्टवादितासे काम लेते थे और उनकी छोटी-छोटी कमजोरियोंकी आलोचना करते थे। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि उनके विचारोंसे परिपूर्ण सहमति उन्हें प्राप्त नहीं हुई। इन पत्रोंसे व्यक्त होनेवाली एक बात और भी है, उनकी अगाध विनम्रता, जिसके सहारे वे कठिनसे-कठिन परिस्थितियोंमें से शान्तभावेन उत्तीर्ण हो जाते थे।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन ऐंड मेमोरियल ट्रस्ट) और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट, गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय; अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका कार्यालय, नई दिल्ली; राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता; भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) पूना; महाराष्ट्र सरकारका गृह-विभाग; पंजाब प्रांतकी सरकार; बंगाल प्रान्तकी सरकार; श्री नारायण देसाई; श्रीमती राधाबेन चौधरी, कलकत्ता; श्री नानजीभाई मणिलाल देसाई, अहमदाबाद; 'इंडिया इन १९२०', 'बापुना पत्रो : मणिबहेन पटेलने', 'महादेवभाईनी डायरी', 'महात्मा : लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी', 'स्पीचेज बाई लॉर्ड चैम्सफोर्ड,', 'द स्टोरी ऑफ माई लाइफ़' पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा निम्नलिखित समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'आज', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'काशी विद्यापीठ पंचांग', टाइम्स ऑफ इंडिया', 'ट्रिब्यून', 'नवजीवन', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'बुद्धि प्रकाश', 'मधपुड़ो', 'यंग इंडिया', 'लीडर', 'सर्चलाइट' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए राष्ट्रीय, अभिलेखागार, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, गांधी स्मारक संग्रहालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, जामिया मिलिया पुस्तकालय, सूचना और प्रसारण मंत्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, नई दिल्ली; साबरमती संग्रहालय और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; तथा श्री प्यारेलाल नय्यर हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें मदद देनेके लिए हम सूचना और प्रसारण मंत्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकलरूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके निकट रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें 'हिन्दी नवजीवन' या नवजीवन प्रकाशन मन्दिरकी पुस्तकोंमें प्राप्त हुए हैं, हमने उनका उपयोग मूलसे मिलाने और संशोधन करनेके बाद किया है।

भेंटों और भाषणोंके विवरणोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं, अन्य लोगोंके हैं आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर दिया गया है। नामोंको सामान्यतः जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणोंमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं।

शीर्षककी लेखन तिथि जहाँ उपलब्ध है वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें की गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन हिन्दी और गुजराती-के व्यक्तिगत पत्रोंमें गुजराती संवत्‌के अनुसार तिथि दी गई थी उनमें ईसवी सन्‌के अनु-रूप तिथि भी दे दी गई है। कुछ पत्रोंकी लेखन तिथिका निर्णय बाह्य या आन्तरिक साक्ष्यके आधारपर किया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है।

'सत्यना प्रयोगो अथवा आत्मकथा' के अनेक संस्करण होनेसे उनकी पृष्ठ संख्याएँ विभिन्न हैं; अतः हवाला देनेमें केवल उनके भाग और अध्यायका ही उल्लेख किया गया है।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी (सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय) द्वारा संग्रहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

१. पत्र : 'बॉम्बे क्रॉनिकल'को[1]

बम्बई
१९ नवम्बर, १९२०

महोदय,

मैंने अभी-अभी आपके द्वारा उद्धृत 'एक्सप्रेस' का वह अंश पढ़ा, जो मेरी रायमें राष्ट्रीय लिपिका उर्दू होना उचित बताता है। जाहिर है कि किसीने मेरे साथ मजाक किया है, क्योंकि मेरी कभी ऐसी राय नहीं रही। मैंने अपने दोस्त और सहयोगी हसरत मोहानीसे[2] इतना ही कहा है कि राष्ट्रीय शिक्षाकी किसी भी योजनामें देवनागरी और उर्दू लिपियाँ अनिवार्य होनी चाहिए। मेरी तो राय है कि देवनागरी संसारमें सबसे ज्यादा वैज्ञानिक और पूर्ण लिपि है, अतः इस दृष्टिसे सबसे उपयुक्त राष्ट्रीय लिपि है। परन्तु आज मुसलमानोंको इसे स्वीकार करनेमें जो कठिनाई है, उसका हल मैं नहीं सोच पाता; इसलिए मेरा विचार है कि शिक्षित-वर्गको दोनों ही लिपियोंकी समान रूपसे अच्छी जानकारी होनी चाहिए। तब जिसमें अधिक शक्ति होगी और जो ज्यादा सरल होगी वह राष्ट्रीय लिपि बन जायेगी, विशेषकर जब हिन्दू-मुसलमान तथा अन्य वर्ग एक-दूसरेपर सन्देह करना सर्वथा समाप्त कर देंगे और धर्मेतर प्रश्नोंका शुद्ध राष्ट्रीय तरीकेसे फैसला करना सीख लेंगे।

आपका,

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७३४४)की फोटो-नकलसे।

२. पत्र : के० वी० रंगास्वामी आयंगारको

बम्बई
१९ नवम्बर, १९२०

प्रिय श्री रंगास्वामी आयंगार[3],

सहपत्रों सहित आपका पत्र मिला। मुझे खेद है कि आपने प्राविधिक आपत्तियाँ उठाई हैं; यद्यपि मेरा खयाल था कि आप अपनाये गये तरीकेसे सहमत हो गये हैं।

१. हस्तलिखित मसविदेसे लिया गया यह पत्र, **बॉम्बे क्रॉनिकल**में २२-११-१९२० को प्रकाशित हुआ था।

२. १८५७-१९५१; राष्ट्रवादी मुसलमान नेता; खिलाफत आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया और जो नवम्बर १९१९ के खिलाफत सम्मेलनमें गांधीजीके मुख्य विरोधी थे।

३. मद्रासके कांग्रेसी नेता।

जब आप बम्बईमें थे, आपने मुझे कुछ ऐसा आभास दिया था कि सिद्धान्त-सूत्रके[1] संशोधित रूपको आप पूर्णतः स्वीकार करते हैं और यह आपने श्री पटेल[2] और श्री केलकरपर[3] छोड़ दिया था कि नियमोंके अन्य हिस्सोंमें वे जैसे संशोधन करना चाहें करें। लेकिन मैं समझता हूँ कि अब और कुछ करना शेष नहीं है। अलबत्ता आपको कोई सुझाव देना हो तो दूसरी बात है।

महादेव देसाईके स्वाक्षरोंमें अंग्रेजी मसविदे (एस० एन० ७४२०) से।

३. पत्र : परसूमल ताराचन्दको[4]

दिल्ली जाते हुए गाड़ीमें,
१९ नवम्बर, १९२०

प्रिय श्री परसूमल,

मैंने आपका पत्र गाड़ीमें ही पढ़ा। जब मैं ही परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूपमें आपके दुःखका कारण हूँ, तब शायद आपके प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करना मेरी गुस्ताखी होगी।

आपका भाई मेरे पास तब आया जब वह परीक्षामें न बैठनेके अपने इरादेपर अमल कर चुका था। निस्सन्देह उसे आपसे सलाह लेनी चाहिए थी; परन्तु उस दोषके अलावा, मैं उसके कामकी निन्दा नहीं कर सकता। यदि हमें अपने भरण-पोषणके लिए सरकारपर निर्भर रहना है तो हम कभी स्वतन्त्र नहीं होंगे। मेरे लिए यह बेबसी ही हमारी दुःखद स्थितिका सबसे करुण अंश है। मैं आशा करता हूँ कि जो लड़के कालेजोंको छोड़ रहे हैं, वे अपने माता-पिताकी अवज्ञा या अवहेलना नहीं करेंगे।

आपका,

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७३३७) की फोटो-नकलसे।

१. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके नये संविधानमें, जो दिसम्बर १९२० में कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमें स्वीकार किया जानेवाला था।

२. विट्ठलभाई झवेरभाई पटेल (१८७३–१९३३); सरदार वल्लभभाई पटेलके बड़े भाई; वैधानिक ढंगसे लोहा लेनेवाले निर्भीक योद्धा; बम्बई विधान-परिषद् और उसके बाद शाही परिषद्के सदस्य; भारतीय विधान सभाके प्रथम निर्वाचित अध्यक्ष।

३. नरसिंह चिन्तामण केलकर (१८७२–१९४७); पत्रकार, राजनीतिज्ञ और साहित्यिक; तिलकके निकटके साथी; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके मन्त्री भी रहे; १९२० में कांग्रेस संविधानके संशोधनमें गांधीजीकी मदद की; स्वराज्यवादी दलके नेता।

४. यह पत्र हैदराबादके वकील परसूमल ताराचन्दको उनकी इस शिकायतके जवाबमें भेजा गया था कि उनके भाईने गांधीजीकी सलाहपर चलकर एम० बी० बी० एस० की अन्तिम परीक्षासे माता-पिताकी सलाह लिये बिना ही अपना नाम वापस ले लिया था।

४. पत्र : देवदास गांधीको

झाँसी

[२० नवम्बर, १९२०][१]

चि० देवदास,

हम लोग झाँसी अभी-अभी पहुँचे हैं। यहाँ थोड़ी-बहुत शान्ति मिल पाई। गंगाधरराव[२] तथा श्रीमती सरलादेवी[३] मेरे साथ ही हैं। ऐसा लगता है कि सरलादेवी कल दिल्ली होती हुई लाहौर जायेंगी परन्तु पक्का निश्चय तो पंडितजीका[४] पत्र आनेपर ही हो सकेगा।

तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक रहता होगा। धीरूसे मिलते रहना। यदि वह रहनेके लिए आश्रम पहुँचे तो उसे दाखिल कर लेना, अन्यथा उसे राष्ट्रीय विद्यालयके छात्रालयमें भरती करा देना। शहरमें उसका रहना जरा भी ठीक न होगा। रेवाशंकरभाईका[५] भी ऐसा ही खयाल है। शंकरलालका भान्जा भी आश्रम पहुँचनेवाला है; उसके साथ उठना-बैठना तथा इस बातका खयाल रखना कि उसे आश्रममें बुरा न लगने पाये।

बेलाबेनसे परिचय बढ़ाना। उन्होंने मेरे मनपर बहुत अच्छा प्रभाव डाला है। मुझे यह महिला प्रामाणिक और साध्वी प्रतीत हुई है। उसके बाल-बच्चे भी ठीक लगे हैं परन्तु तुम और अच्छी तरहसे इन सब बातोंको परख सकोगे। मेरा इरादा इन लोगोंपर कामका भारी बोझ डालनेका नहीं है, फिर भी ऐसा हो सकता है कि अनजाने ही उनके कंधोंपर भारी बोझ पड़ जाये।

हिन्दीमें जो संशोधन किये हैं उन्हें मैंने समझ लिया है परन्तु दोष तो तभी दूर होंगे जब संशोधन लगातार किया जायेगा। बोलते समय कोई भी व्यक्ति जानबूझकर गलतियाँ नहीं करता। बात यह है कि अशुद्धियोंकी ओर बारबार ध्यान आकर्षित करनेपर ही उनसे बचा जा सकता है।

१. गांधीजी बम्बईसे झाँसीके लिए १९ नवम्बर, १९२०को रवाना हुए थे और २१ नवम्बरको दिल्ली पहुँचे थे।

२. गंगाधरराव बालकृष्ण देशपांडे, कर्नाटकके प्रसिद्ध राजनीतिक कार्यकर्त्ता जो 'कर्नाटक केसरी'के नामसे प्रसिद्ध हैं।

३. सरलादेवी चौधरानी; पं० रामभजदत्तकी पत्नी और रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी भान्जी। वे १९१९ में गांधीजीकी अनुयायी बन गईं। उन्होंने अपने पुत्र दीपकको पढ़नेके लिए साबरमती आश्रम भेजा था।

४. पं० रामभजदत्त चौधरी, पंजाबके नेता और कवि।

५. रेवाशंकर जगजीवन झवेरी, बम्बईके व्यापारी तथा गांधीजीके प्रशंसक।

तुम्हारे अध्ययनका कार्यक्रम जाननेके लिए उत्सुक हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २०५५) की फोटो-नकलसे।

५. तार: शिवप्रसाद गुप्तको[1]

[२० नवम्बर, १९२०के आसपास][2]

मालवीयजीका[3] स्वास्थ्य कैसा है? यदि उनके स्वास्थ्यको नुकसान पहुँचनेका अन्देशा है तो फिर में बनारस नहीं आना चाहूँगा।[4] दिल्ली तार दीजिए।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३१०) की फोटो-नकलसे।

६. तार: मोतीलाल नेहरूको

[२० नवम्बर, १९२०के आसपास][5]

सुना है मालवीयजी बीमार हैं और यदि मैं गया तो स्वास्थ्य और बिगड़नेकी सम्भावना है। कृपया उनके स्वास्थ्यकी खबर तारसे दिल्ली दीजिए।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३१०) की फोटो-नकलसे।

१. (१८८३-१९४४); काशीके प्रसिद्ध देशभक्त, मातृभाषा-प्रेमी और दानवीर; राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक 'आज' और राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था काशी विद्यापीठके संस्थापक; काशीके सुप्रसिद्ध भारत-माता मन्दिरके निर्माता।

२. महादेव देसाईकी डायरीमें 'काशीमें' शीर्षकके अन्तर्गत २६ नवम्बर, १९२०के विवरणसे यह स्पष्ट है कि यह तार तथा बाद वाले दो तार नवम्बर १९२० में भेजे गये थे। गांधीजी १९ नवम्बरको बम्बईसे झाँसीके लिए रवाना हुए थे और २१ नवम्बरको दिल्लीमें थे। २४ नवम्बरको वे दिल्लीसे बनारसके लिए चल पड़े और २५, २६ व २७ नवम्बरको पण्डित मदनमोहन मालवीयके साथ रहे। इसलिए अनुमानतः ये तीनों तार २० नवम्बरके आसपास भेजे गये थे।

३. पण्डित मदनमोहन मालवीय (१८६१-१९४६); बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके संस्थापक; शाही विधान-परिषद्के सदस्य; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दो बार अध्यक्ष।

४. गांधीजी पण्डित मालवीयजीसे मिलनेके लिए बनारस जाना चाहते थे क्योंकि असहयोग आन्दोलनके प्रति उनकी प्रतिक्रिया पूरी तरह अनुकूल नहीं थी।

५. देखिए पिछले शीर्षककी पाद टिप्पणी २।

७. तार : मदनमोहन मालवीयको

[२० नवम्बर, १९२० के आसपास][१]

यदि आप राजी हों तो २४को बनारस आना चाहता हूँ। कृपया दिल्ली तार दीजिये।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३१०) की फोटो-नकलसे।

८. भाषण : झाँसीमें

२० नवम्बर, १९२०

श्री गांधी . . . ने रोशनी और सजावटकी[२] निन्दा करते हुए भाषण आरम्भ किया। उन्होंने कहा कि जबतक खिलाफतका सवाल[३] हल नहीं होता, पंजाबमें किये गये अत्याचारोंका[४] इन्साफ नहीं किया जाता और स्वराज्य नहीं हासिल हो जाता तबतक किसीको भी खुशियोंमें शामिल नहीं होना चाहिए। हमारे उद्देश्य केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता और हिंसा रहित असहयोगसे ही पूरे हो सकते हैं। तलवारें नहीं निकाली जानी चाहिए। इसके बाद उन्होंने असहयोग कार्यक्रमके विविध अंगोंपर बल दिया और कहा कि किसीको भी सेनामें भरती नहीं होना चाहिए। इसके बाद उन्होंने सरस्वती पाठशालाके लिए चंदेकी अपील की। उन्होंने बताया कि यह पाठशाला एक शुद्ध राष्ट्रीय संस्था है।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २४-११-१९२०

१. देखिए "तार : शिवप्रसाद गुप्तको", २०-११-१९२० की पाद टिप्पणी २।

२. झांसी शहर और खासतौरसे हार्डीगंजको, जहाँ यह भाषण हुआ था, गांधीजीका स्वागत करनेके लिए बहुत अच्छी तरहसे सजाया गया था और खूब रोशनी की गई थी। गांधीजीके साथ मौलाना शौकत अली भी थे।

३. खिलाफत आन्दोलनका उद्देश्य टर्कीके सुलतानको, खलीफा होनेके नाते मुसलिम दुनियामें वही प्रतिष्ठा और अधिकार दिलाना था जो उन्हें प्रथम विश्व-युद्धके पूर्व प्राप्त थे।

४. जलियाँवाला बागका हत्याकांड और १९१९ में पंजाबमें किये गये अन्य अत्याचार; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १२८-३२२।

९. हिन्दुओं और मुसलमानोंसे

मुझे पता चला है कि मेरे महमदाबादके[1] भाषणपर[2] लोगोंमें मतभेद पैदा हो गया है। भाषणसे सम्बद्ध वह भाग मैंने यह लेख लिखते समय ही पढ़ा है। उसमें मुझे एक ही महत्त्वपूर्ण भूल दिखाई दी है। 'साधु मुझसे मिले' ऐसा मेरे भाषणकी रिपोर्टमें प्रकाशित हुआ है। मुझे ऐसा कहनेकी याद नहीं आती; लेकिन सम्भव है मैंने ऐसा कह दिया हो। साधु मुझसे बिलकुल नहीं मिले। अपनी इस भूलके लिए मैं क्षमा चाहता हूँ। तथ्य इस प्रकार है: मेरे पास उनके भेजे हुए दो व्यक्ति आये और उन्होंने मुझसे कहा कि साधुने मुझे बुलाया है। उस समयतक मुझे हकीकतका[3] पूरा पता चल गया था। मैंने कहा कि जानेके लिए तो मेरे पास समय ही नहीं है; फिर भी यदि साधु यहाँ आयें तो मैं उनसे अवश्य मिलूँगा। इसके अतिरिक्त मैंने यह भी कहलाया कि उन्होंने साधुके वेशमें एक ऐसा कार्य किया है जो मेरी समझमें साधुको शोभा नहीं देता। इसलिए अगर आप साधुके वेशको त्यागकर ही यहाँ आयें तो अच्छा होगा। साधुओंसे मैं दया और निर्भयतापूर्ण व्यवहारकी आशा रखता हूँ। उनसे मैं यह उम्मीद नहीं करता कि वे हिन्दुओंके आन्तरिक झगड़ोंमें किसी मुसलमानको बीचमें डालें, जिस तरह इन साधु महोदयने एक मौलवीको बीचमें डाला है। मैं देखता हूँ कि मेरे इस सन्देशसे ही लोगोंमें खलबली मच गई है। तथापि मैं अपने इस सन्देश और भाषणपर पूर्ववत् कायम हूँ। बकरेको लेकर जो घटना हुई उसे मैं गम्भीर मानता हूँ। यह हमारा सौभाग्य है कि उसका कोई बुरा परिणाम नहीं निकला। अनेक निर्दोष जीवोंकी रक्षा करना निस्सन्देह साधुका स्पष्ट कर्त्तव्य है। लेकिन साधुको अपनी साधुतासे, तपश्चर्यासे ही ऐसा करनेका अधिकार है। साधु शरीरबलसे अथवा शरीरबलके प्रयोगकी धमकी देकर जीवोंकी रक्षा नहीं कर सकते। इसके अलावा अपने धर्मके झगड़ेमें मुसलमानोंके बलका उपयोग भी नहीं किया जा सकता। यदि मुसलमानोंके दो दल परस्पर एक-दूसरेसे झगड़ा करें तो उसमें हिन्दू किसी एकका पक्ष लेकर दूसरेको कैसे दबा सकते हैं? यदि दबायें तो यह हिन्दुओंके लिए शर्मकी, और [मुसलमान] दब जायें तो उनके लिए डूब मरनेकी बात होगी। जिस तरह हमने अपने दुनियावी झगड़ोंमें अंग्रेजोंको मध्यस्थ बनाकर अपना राज्य खो दिया, उसी तरह यदि अपने धर्मके आन्तरिक झगड़ोंमें मुसलमान हिन्दुओंको और हिन्दू मुसलमानोंको मध्यस्थ बनायें तो दोनों अपने-अपने धर्मोंसे च्युत हो जायेंगे। बकरेकी बलि देनेवाला

१. गुजरातके खेड़ा जिलेका एक शहर।

२. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ४२९-३३।

३. कुछ हिन्दू बकरेकी बलि देना चाहते थे जब कि कुछ अन्य हिन्दू इसके विरुद्ध थे। अतः इस बलिको रोकनेके लिए उपर्युक्त साधुने मुसलमानोंकी सहायता ली थी।

हिन्दू, मुसलमानकी सहायतासे अन्य हिन्दुओंकी इच्छाके विरुद्ध बकरेकी बलि दे तो अन्य हिन्दुओंकी क्या गति होगी?

हम हिन्दू-मुसलमानोंके बीच सच्चे भाईचारेकी भावनाको जन्म देना चाहते हैं, अहमदाबादकी इस घटनासे उसमें बाधा उत्पन्न हुई हो, ऐसी मेरी मान्यता है। आज इस बाधाका प्रभाव नगण्य भले ही है, लेकिन मैंने यह सोचकर कि कहीं इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि न हो हिन्दू-मुसलमान, दोनोंको ही चेतावनी दी है।

अब मौलवीके सम्बन्धमें। उन्हें तो मैंने पाखण्डी ही माना है। मुझसे उन्होंने जो-कुछ कहा था उसमें और कुछ मुसलमान भाइयोंके नाम वितरित पत्रिकामें लिखी गई बातोंमें बड़ा अन्तर है। उसमें मौलवीके साथ जिन बातोंके होनेका उल्लेख है वे एकदम बनावटी हैं। मेरे कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि उस मौलवीने मेरे नामका दुरुपयोग किया है। उन्हें अथवा किसी अन्य व्यक्तिको अहमदाबादसे निकानेका मुझे क्या अधिकार है? लेकिन उस मौलवीने तो मुझसे यह कहा था कि मैं उसके लिए एक बुजुर्गके जैसा हूँ, इसीसे मैंने उन्हें सलाह दी थी कि अगर मेरा कहा मानें तो आप अहमदाबादसे चले जायें। उन्हें अथवा किसी भी मुसलमानको खिलाफत समिति अथवा मेरे नामसे हमारी अनुमतिके बिना कार्य करनेका कदापि अधिकार नहीं है। इस मौलवीपर मेरा तो तनिक भी विश्वास नहीं है। उनके पास खिलाफत समितिकी ओरसे दिया गया कोई अधिकार-पत्र नहीं है। इसलिए प्रत्येक मुसलमानको मेरी यह सलाह है कि उस मौलवी अथवा किसी भी ऐसे व्यक्तिकी, जिसके पास खिलाफत समितिकी ओरसे दिया गया अधिकार-पत्र नहीं है, बात नहीं सुननी चाहिए।

मुसलमान खिलाफतका कठिन कार्य और हिन्दू-मुसलमान स्वराज्यका महान् कार्य तबतक नहीं कर सकते जबतक कि दोनों निर्भय, साहसी, स्वार्थ-त्यागी और ईमानदार नहीं बनते। इसीलिए उन्हें हमेशा सावधानीसे चलनेकी आवश्यकता है। महान् संघर्षोंमें पाखण्डपूर्ण कार्य भी साथ-साथ होते रहते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम इनके प्रति सतर्क रहें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१–११–१९२०

१०. स्वराज्यकी शर्तें और अस्पृश्यता

गुजरात विद्यापीठके एक निर्दोष प्रस्तावसे अहमदाबाद, बम्बई आदि स्थानोंपर खलबली मच गई है।[1] विद्यापीठने जो प्रस्ताव पास किया है उसके अनुसार किसी भी ऐसी पाठशालाको मान्यता नहीं दी जायेगी जिसमें अन्त्यजोंको प्रवेशका निषेध होगा। यह प्रस्ताव विद्यापीठके सिद्धान्तके अनुसार ही पास किया गया है। तथापि इस प्रस्तावसे अनेक हिन्दुओंके दिलोंको ठेस पहुँची है और उनमें से कुछ-एक लोग कह रहे हैं कि मुझे इस बातकी चर्चा ही नहीं करनी चाहिए थी। कुछ लोगोंका कहना है कि अस्पृश्यता सम्बन्धी मेरे विचार मेरे हिन्दुत्वको बट्टा लगाते हैं। अन्य कितने ही लोग मेरे इन विचारोंके कारण मेरे कट्टर सनातनी होनेके दावेको रद हो गया मानते हैं। मैं अपने आपको कट्टर सनातनी क्योंकर मानता हूँ उसके कारणोंकी खोज-बीन हम बादमें करेंगे।

अभी तो मैं केवल इतना ही बताना चाहता हूँ कि विद्यापीठने अपने प्रस्तावसे कोई नया निर्णय नहीं किया है। विद्यापीठ अगर इससे भिन्न कोई प्रस्ताव पास करता तो वह अवश्य एक नई बात होती। सरकारी स्कूलोंमें आज अन्त्यज शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। बम्बईके असंख्य हाई स्कूलोंमें ऐसे विद्यार्थी हैं, गुजरातके हाई स्कूलोंमें भी हैं।

यदि हम अबतक इन पाठशालाओंमें वैष्णव लड़कोंको भेजते रहे हैं तो फिर क्या हम राष्ट्रीय शालामें अन्त्यजोंका बहिष्कार करके एक नया टंटा शुरू करेंगे? क्या हम अस्पृश्यताका पुनरुद्धार करके स्वराज्य प्राप्त करनेकी आशा रखते हैं?

रेलगाड़ी, होटलों, अदालतों और मिलोंमें अस्पृश्यता आड़े नहीं आती, तो फिर स्कूलोंमें जहाँ शिक्षककी देखरेखमें स्वच्छताके नियमोंका पालन करते हुए ही शिक्षा प्राप्त की जा सकती है वहाँ क्या अस्पृश्यताको कायम रखना चाहिए?

मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों और यहूदियोंको हम अस्पृश्य नहीं मानते; यदि मानें तो फिर हम उन्हें भाई नहीं बना सकते। ऐसी परिस्थितिमें अन्त्यजको, जो हिन्दू धर्मका ही एक अंग है, राष्ट्रीय स्कूलोंमें, जहाँ इतर जातिके लोग आ सकते हैं, क्यों अस्पृश्य माना जाये?

मुझपर यह आरोप लगाया गया है कि विद्यापीठसे उपर्युक्त प्रस्ताव पास करवाकर मैंने हिन्दू-संसारपर सरकारके समान ही जुल्म ढाया है। ऐसा आरोप लगानेवाले व्यक्तियोंको विनम्रतापूर्वक याद दिलाना चाहता हूँ कि जिस ढंगसे आप स्कूल चलाना चाहते हैं, मैं उससे आपको रोकना नहीं चाहता; किन्तु आप भी मुझे न रोकें। इसमें

१. उन्हीं दिनों राष्ट्रीय विश्वविद्यालयके रूपमें स्थापित गुजरात विद्यापीठकी सीनेटकी सभामें ३१ अक्तूबर, १९२० को गांधीजीकी अध्यक्षतामें यह निश्चय किया गया था कि विद्यापीठ-द्वारा मान्यता-प्राप्त किसी भी स्कूलमें तथाकथित अन्त्यजोंका बहिष्कार नहीं किया जायेगा।

जुल्म क्या है? सच तो यह है कि मुझे रोकनेका इरादा करके आप जुल्म करते हैं। जो व्यक्ति राष्ट्रीय भावनाको जागृत करनेमें अस्पृश्यताको हानिकारक मानता है आप उसे उसके विरुद्ध आन्दोलन करनेसे कैसे रोक सकते हैं? आप दूसरे आदर्शोंको माननेवाले तथा अस्पृश्यताके धर्मको स्वीकार करनेवाले अन्य विद्यापीठोंकी स्थापना करें, उससे आपको कोई नहीं रोकेगा। हाँ, उसके विफल होनेकी सम्भावनासे अगर आप वैसा न कर पायें तो यह अलग बात है।

मेरी दृढ़ मान्यता है कि अस्पृश्यता अधर्म है। यह हिन्दू धर्ममें निहित बुराइयोंकी परिसीमा है; इसका पोषण करना दुराग्रह है। उसे तपश्चर्याके द्वारा दूर करनेमें सत्याग्रह है। सत्यका आग्रह ही धर्म है। प्रत्येक रूढ़िगत दोषको पकड़े रहनेका आग्रह करना अधर्म है।

असहकार शुद्धि-शास्त्र है। आन्तरिक शुद्धि किये बिना असहकार असम्भव है। जबतक हम अपने ही एक अंगको अस्पृश्य मानेंगे तबतक स्वयं हम हिन्दू लोग और हमारे पड़ोसी मुसलमान आदि भी जो आज [साम्राज्यके] अछूत बन गये हैं, अछूत ही बने रहेंगे। मेरी दृढ़ मान्यता है कि हिन्दू-संसारकी अधोगति अस्पृश्यताके दोषसे ही हुई है। अपने पापसे हम खुद ही अस्पृश्य बन गये हैं। हमने धर्मके बहाने अन्त्यजोंको अस्पृश्य माना; सरकारने भी अपना धर्म समझकर हमें अस्पृश्य बना दिया। और विदेशियोंकी ओरसे दिये गये इस बिल्लेको हम भी अन्त्यजोंके समान ही स्वाभाविक मान कर अंगीकार किये हुए हैं। और जैसा हम कहते हैं कि अन्त्यज अपनी अस्पृश्यताको कलंक नहीं मानते, वैसे ही सरकार भी कहती है कि हम अपनी हीनावस्थाको स्वाभाविक बात मानते हैं। सिर्फ गांधी-जैसे कुछ विप्लवी लोग ही भारतीयोंको भरमाकर उनकी स्वाभाविक गतिको अधोगति कहते फिरते हैं।

गुजराती हिन्दुओंसे मेरी प्रार्थना है कि आप असहयोगमें बहुत ज्यादा भाग ले रहे हैं; उसे इस तरह खलबली मचाकर अवरुद्ध न करें। अस्पृश्यताको धर्म मानकर आप स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते। आप कहेंगे कि इससे तो हमें यह राक्षसी सरकार ही प्रिय है। इसका एकमात्र उत्तर यही है कि राक्षसी सरकारके राज्यमें जिन्हें आप अस्पृश्य मानते हैं उन्हें आप अस्पृश्य नहीं रख सकते; इतना ही नहीं वरन् वैसा प्रयत्न करनेसे हमारी आजकी दयनीय स्थिति और भी दयनीय हो जायेगी, यह बात सहज सिद्ध है। हमें इसे नहीं भूलना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-११-१९२०

११. अहिंसाकी एक विजय

शस्त्र-त्याग कहें, दया-धर्म कहें, शान्ति कहें, अमन कहें अथवा अहिंसा — अर्थ इन सबका एक ही है। इस शक्तिकी विजय हुई है, यह बात सरकारके अन्तिम प्रस्तावसे[1] सिद्ध हो गई है। सरकारने फिलहाल कुछ समयके लिए अली भाइयों[2] और मुझे कैदमें न रखनेका निश्चय किया है। उसने इस शान्तिपूर्ण असहयोगपर फिलहाल बुद्धिबलसे, नरम दलकी मददसे विजय पानेका निश्चय किया है। इस निश्चयके लिए राजा व प्रजा दोनों परस्पर एक दूसरेको बधाई दे सकते हैं। मैं इसे शान्तिमय युद्ध अर्थात् अहिंसाकी विजय समझता हूँ। यदि हमने छिपे अथवा प्रकट रूपसे खून करके, मकान जलाकर अथवा रेलकी पटरी उखाड़कर संघर्ष चलानेका विचार किया होता तो हम जन-मानसको कदापि प्रशिक्षित न कर पाते, हममें साहसपूर्वक सत्य बोलनेकी शक्ति न आ पाती; अर्थात् हम स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए तैयार अथवा योग्य न हो पाते। आज हम जितनी स्वतन्त्रतासे अपने विचारोंको अभिव्यक्त करते हैं उतनी स्वतन्त्रतासे एक वर्ष पूर्व नहीं कर सकते थे। हमने सरकारको अभयदान देकर स्वयं अपने लिए साहस जुटा लिया है। हमारे मनमें इस विश्वासने घर कर लिया है कि चूँकि हममें मलिनता नहीं है इसलिए हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हमें सहज ही इस सत्यकी अनुभूति हो गई है कि यदि हम किसीको मारना नहीं चाहते तो हमें भी कोई क्यों मारेगा।

इस तरह वातावरण साफ हो गया है। हम अपने हृदयबलसे, बुद्धिबलसे जन-मतको बदलकर स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिए सरकारके लिए भी सोच-समझसे काम लेना जरूरी हो गया है। अपने विरोधीसे डरकर जब हम उसीकी तरह मलिन बलका उपयोग करते हैं तभी हम मलिनता सीखते हैं और दुर्बल बनते हैं। इससे दोनों पक्ष कमजोर होते हैं। यदि मलिनताके विरुद्ध हम स्वच्छताका प्रयोग करें तो अन्ततः मलिनता कम हो जाती है और इससे उस हदतक जनता और जगत सुखी होता है। इस तरह शान्तिकी, अमनकी सदा जय ही होती है। सरकारका प्रस्ताव इस विजयका एक बड़ा उदाहरण है।

१. सन् १९२० के नवम्बर मासके प्रारम्भमें प्रकाशित किये गये इस संकल्पमें अन्य बातोंके अलावा यह कहा गया था कि सरकारने अबतक ऐसे लोगोंके खिलाफ फौजदारी या अन्य प्रकारकी कार्रवाई नहीं की है जिन्होंने असहयोगके साथ-साथ अहिंसाका भी प्रचार किया है और उसने स्थानीय सरकारोंको केवल उन्हीं लोगोंके खिलाफ कार्रवाई करनेकी हिदायत दी है जिन्होंने अपने लेखन या भाषणसे जनताको हिंसाके लिए भड़काया है। इसके अलावा उक्त संकल्पमें यह भी कहा गया था कि सरकार वाणीकी स्वतन्त्रता और अखबारोंकी आजादीमें हस्तक्षेप करनेसे बचती रही है। **इंडिया इन १९२०।**

२. मौलाना मुहम्मद अली (१८७१–१९३१) और शौकत अली (१८७३–१९३८); राष्ट्रीय मुस्लिम; राजनीतिज्ञ, खिलाफत आन्दोलनके प्रमुख नेता। मुहम्मद अली १९२० में इंग्लैंड जानेवाले शिष्टमण्डलके नेता और १९२३ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष थे।

अभी तो हममें सम्पूर्ण शान्तिका प्रसार नहीं हुआ है। हमारी वाणी और हमारा हृदय शुद्ध नहीं हुआ है। हममें रोष है, गुस्सा है। इसीसे हमारी शान्तिकी पूरी तरहसे छाप नहीं पड़ती। जब हमारे संघर्षमें कटुताका लेश भी नहीं रहेगा, जिस दिन कार्य-कर्त्ता बिल्कुल शुद्ध आचरण करेंगे, उसी दिन हमें स्वराज्य मिल जायेगा। हम जैसा करते हैं, सामान्य वर्ग वैसा ही करता है। इतर वर्गके लोग श्रेष्ठ जनोंका अनुगमन किया करते हैं।

सरकारके प्रस्तावके अन्तमें एक डंक निहित है, और उसका कारण यह है कि डंक तो हमारी पूँछमें भी है। शान्तिको धर्म मानकर उसका पालन करनेवाले हममें मेरे जैसे कितने लोग हैं। मेरे भाई शौकत अली भी शान्तिको सर्वकालीन धर्म नही मानते; उसे इस समयके लिए आवश्यक एक आपद्-धर्म मानते हैं। वे शान्तिको एक युक्ति — पालिसी — के रूपमें स्वीकार करते हैं। यदि हम सब शान्तिको ही सर्वोच्च स्थान दें तो हमें आज ही स्वराज्य मिल जाये। ऐसा हम निकट भविष्यमें करेंगे — इस मान्यताके आधारपर मैं कहता हूँ कि तब स्वराज्य एक वर्षके भीतर प्राप्त हो जायेगा। शान्तिके बिना स्वराज्यका क्या उपयोग? अधर्मका नाश धर्मकी स्थापनामें ही है। यह अधर्म राज्य है, दृढ़तापूर्वक ऐसा कहनेके साथ ही हमें धार्मिक बनना पड़ता है। क्या कोई अधम व्यक्ति दूसरे अधम व्यक्तिपर अधम होनेका आरोप लगा सकता है? सूप बोले तो बोले, चलनी क्या बोले? अधर्मका नाश धर्मसे ही होता है। जहाँ अत्याचारको सहनेवाला नहीं होता वहाँ अत्याचारीका उपद्रव भी नहीं होता।

हम लोगोंने पूरी तरह सचको नहीं अपनाया; इसी कारण सरकारका प्रस्ताव भी झूठ और दम्भसे भरा हुआ है। सरकारका कहना है कि चूँकि हम शान्तिमय युद्ध करते हैं इस कारण उसने समाचारपत्रोंपर से प्रतिबन्ध हटा लिया है। यह कथन बिल्कुल सच नहीं है। कितने ही समाचारपत्र अभीतक परेशानीमें पड़े हैं। जिन्हें गिरफ्तार किया गया है उन्हें गिरफ्तारीका कारण यह बताया गया है कि उन्होंने लोगोंको शान्तिभंग करनेके लिए उत्तेजित किया था। यह बात भी सही नही है। जिन्हें गिरफ्तार किया गया है उनकी भाषा भले ही निर्दोष न हो लेकिन उन्होंने किसीको अशान्तिकी सलाह कदापि नहीं दी। और अगर दी भी हो तो सरकारने यह सिद्ध नहीं किया। अपराधको सिद्ध किये बिना अपराधीको दण्ड नहीं दिया जा सकता, ऐसा कानून है। असहयोगकी निन्दा करनेमें सरकारने बहुत ज्यादा दम्भसे काम लिया है। सरकारका कहना है कि असहयोगसे अराजकता फैलेगी। लेकिन सरकार जानती है कि व्यवस्था असहयोगसे ही आरम्भ हुई है। सरकारी शिक्षाके परित्यागका अर्थ शिक्षामें अव्यवस्थाका होना नहीं वरन् गुलामीकी शिक्षाके स्थानपर स्वतन्त्रताकी शिक्षाकी स्थापना करना है; सरकारी अदालतोंका त्याग अर्थात् झगड़े-फिसादको बढ़ावा देना नहीं बल्कि उसका पंचोंकी मार्फत निर्णय करवाना है; विधान परिषदोंका त्याग अर्थात् संयमका त्याग नहीं वरन् स्वैराचारी कानूनोंका पालन करनेके स्थान-पर जनमान्य संयम रूपी कानूनोंका पालन करना है; विदेशी कपड़ेका त्याग करनेका

अभिप्राय नग्नावस्था नहीं अपितु जनताके अपने हस्तकला-कौशलसे तैयार किये गये पवित्र कपड़ेका शरीर-रक्षाके निमित्त पवित्र उपयोग है; सरकारकी फौजमें भरती होनेसे इनकार करना, जनतामें अपनी रक्षा करनेकी शक्तिका होना है, इस तरह सरकारके विरुद्ध असहकार करनेका अर्थ है जनतामें भीतर-ही-भीतर पूर्ण सहकार।

दम्भके समान ही सरकारकी उद्धतताकी भी कोई सीमा नहीं है। जो व्यक्ति व्यर्थ ही डराता-धमकाता है वह उद्धत है। जो असम्भवके सम्भव होनेका दावा करे वह उद्धत है। सरकारका दावा है कि हिन्दुस्तानको बाहरी आक्रमणके भयसे वही बचाती है। वह कहती है कि यदि असहयोगकी विजय हो तथा सरकार हिन्दुस्तानसे विदा ले ले तो हिन्दुस्तानकी स्थिति बिना माँके बच्चे-जैसी अरक्षित हो जाये। फिर तो कोई भी देश उसपर आक्रमण कर सकता है। सच तो यह है कि यदि हममें परस्पर सहयोग हो, हम हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख और पारसी लोग एक हैं, ऐसा मान हम निडर होकर स्वावलम्बी बन जायें, जनता अपनी जरूरतकी वस्तुएँ —— अन्न-वस्त्रादि —— हिन्दुस्तानमें ही उत्पन्न करे तो फिर कौन हिन्दुस्तानकी ओर आँख उठा सकता है?

अहिंसाका, शान्तिका अर्थ कायरता नहीं है। उसका अर्थ शुद्ध पौरुष है। हिन्दुस्तानपर आक्रमण हो तो हिन्दुस्तान या तो परम शान्तिसे शत्रुको परास्त करेगा अथवा उससे अगर ऐसी उद्धतता सहन न हो सकी तो उसकी क्षत्रिय जातियाँ —— सिख, मुसलमान आदि —— आक्रमणकर्त्ताको दण्ड देंगी। अहिंसाका, अमनका अर्थ पराधीनता या दुर्बलता नहीं है। जहाँ शौर्य है वहीं क्षमा हो सकती है। जब सरकारको 'अलविदा' कहनेका समय आयेगा तब हिन्दुस्तान आजकी तरह निस्तेज नहीं होगा बल्कि उस समय उसका तेज चारों ओर उद्भासित हो रहा होगा। यदि कोई यह प्रश्न करे कि ऐसा दिवस क्या एक वर्षमें आना सम्भव है? तो उसे यह उत्तर दिया जा सकता है कि जबतक ऐसा दिन नहीं आ जाता तबतक हिन्दुस्तान कदापि स्वराज्यका उपयोग करनेके योग्य नहीं बन सकता और ऐसा शुभ दिन शान्तिमय असहयोगसे ही आयेगा। इस दिवसको मैं तो समीप ही आते देखता हूँ।

नरमदलके बुजुर्ग लोगोंसे मैं अत्यन्त विनम्रतासे प्रार्थना करता हूँ कि वे सरकारकी कुटिलताको पहचानें और उसके द्वारा बिछाये गये जालमें न फँसें।

शिक्षाके सम्बन्धमें सरकारने जो आरोप लगाये हैं मैं उस झगड़ेमें अभी नहीं पड़ता। माता-पिताकी सहायता न मिल पाती तो आन्दोलन अबतक जितना आगे बढ़ पाया है उतना कदापि न बढ़ पाता। जहाँ कहीं माता-पिता श्रद्धासे रहित हैं और जहाँ पुत्रोंमें आत्मबल है वहाँ मैंने उन्हें विनयपूर्वक पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करनेकी सलाह दी है। इस सलाहमें न तो अनीति है, और न अविचार अथवा अविवेक ही। युवकोंको स्वतन्त्र रूपसे विचार करनेका अधिकार सब शास्त्रोंमें दिया गया है।

सरकारके प्रस्तावसे हमें यह सीखना है कि हमने शस्त्रका त्याग करके जिस तरह उसके शस्त्रबलको लगभग जीत लिया है उसी तरह हमें उसके दम्भ, छल और

कपटके जालको अपने निर्भीकता और सत्य रूपी स्वर्ण-अस्त्रसे काटना है, धोखा खाकर उसमें फँसना नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २१-११-१९२०

१२. भेंट : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे

दिल्ली
२१ नवम्बर, १९२०

यह पूछे जानेपर कि क्या आप समझते हैं कि सरकारसे कोई भी आर्थिक सहायता लिये बिना आप देशकी सारी शिक्षा-संस्थाएँ चला सकेंगे, श्री गांधीने उत्तर दिया :

हाँ, यदि मैं देशको अपने साथ लेकर चल सका। मैं समझता हूँ कि सभी मौजूदा संस्थाओंको बिना किसी सरकारी मददके चला सकना सर्वथा सम्भव है।

इस सवालके जवाबमें कि क्या असहयोगको अबतक जो सफलता प्राप्त हुई है, उससे उन्हें यह भरोसा होता है कि अन्तमें उसकी विजय होगी, श्री गांधीने कहा :

हाँ, अवश्य।

इस प्रश्नपर कि "क्या असहयोग और खिलाफत अलग-अलग आन्दोलन हैं या वे किसी विशिष्ट उद्देश्यकी पूर्तिके लिए एक-दूसरेमें मिला दिये गये हैं", श्री गांधीने कहा :

देशने असहयोगको अपने उद्देश्यके साधनके रूपमें अपनाया है। उसे खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय और पंजाबके अत्याचारोंके शोधन तथा स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए अपनाया गया है।

जब श्री गांधीसे यह प्रश्न किया गया कि क्या जो-कुछ हो रहा है उस सबके बावजूद आप हमेशाकी तरह अपने इस विश्वासपर दृढ़ हैं कि भारतको लगभग एक वर्षके अन्दर ही स्वशासन मिल जायेगा, तो उन्होंने कहा :

मैं अब भी मानता हूँ कि यदि भारत मुझे पर्याप्त सहयोग दे तो उसे एक सालके अन्दर स्वराज्य हासिल हो सकेगा, परन्तु यद्यपि मैं समझता हूँ कि सहयोग उतना नहीं है जितना होना चाहिए था, फिर भी वह इतना काफी है कि मैं निकट भविष्यमें उसके बढ़नेकी आशा कर सकता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २३-११-१९२०

१३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

अलीगढ़
२३ नवम्बर, [१९२०][१]

प्रिय चार्ली,[२]

मुझे तुम्हारे पत्र और तार मिले। क्या मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है? मैंने तार देकर केवल यह सूचना देनी चाही थी कि मैं तुम्हें भेजनेकी कोशिश कर रहा हूँ — मैंने यह नहीं कहा था कि तुमने पद स्वीकार कर लिया है। और मैंने जो कहा, अपनी और तुम्हारी बातचीतके[३] आधारपर कहा। जो भी हो, किसी तरहका दबाव तुमपर नहीं डाला जायेगा। तुम मुस्लिम विश्वविद्यालयके लिए केवल उतना ही करना, जो तुम कर सकते हो।

हाँ, मैं अंग्रेजोंसे देशके सम्बन्धको एक शुद्ध आधारपर स्थापित करनेकी जरूरत महसूस करता हूँ। आज वह जैसा है उससे तो विरक्ति ही होती है। परन्तु मैं अभी-तक यह नहीं तय कर पाया हूँ कि उसे, चाहे जो हो, समाप्त ही कर देना चाहिए। हो सकता है कि अंग्रेजोंका स्वभाव काली और भूरी जातियोंके साथ पूर्ण समानताका दर्जा स्वीकार नहीं कर सके। तब तो अंग्रेजोंको भारतसे वापस ही भेजना होगा। परन्तु एक गौरवपूर्ण समानताकी सम्भावना है, यह विचार मैं त्याग नहीं सकता। किन्तु यदि इस बातका यथासम्भव स्पष्ट प्रमाण मिल जाये कि धर्मके प्रथम सिद्धान्त अर्थात् मानव-मानवके बीच भाईचारेके सिद्धान्तको समझनेमें अंग्रेज बुरी तरह असफल हो गये हैं, तो यह सम्बन्ध अवश्य समाप्त हो जाना चाहिए।

बड़ो दादाका[४] पत्र मुझे नहीं मिला। शायद आश्रम पहुँचा हो या मुझे दिल्ली पहुँचनेपर मिले। मैंने तुम्हें समयपर तार दे दिया था।

मैं डा० दत्तको तारसे कोई सन्देश नहीं भेज सकता; परन्तु यदि अभी समय हो तो मैं उन्हें कुछ लिखनेकी कोशिश करूँगा।

मुझे पूरी आशा है कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक चल रहा है।

१. १९२०में २३ नवम्बरको गांधीजी अलीगढ़में थे जहां वे खिलाफत समितिकी एक सभामें शरीक होने गये थे।

२. चार्ल्स फ्रेयर एन्ड्रयूज (१८७१–१९४०); अंग्रेज मिशनरी, लेखक व शिक्षाशास्त्री, जिन्होंने विश्वभारती विश्वविद्यालयके कार्यमें बहुत दिलचस्पी ली; कई वर्षोंतक भारतीयोंके साथ काम किया जिससे उन्हें 'दीनबन्धु' की उपाधि मिली। वे गांधीजीके घनिष्ठ मित्र थे।

३. अक्तूबर १९२० में एन्ड्रयूजकी गुजरात यात्राके दौरान जब वे गांधीजीके साथ कुछ दिनके लिए रहे थे।

४. द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर; रवीन्द्रनाथ ठाकुरके बड़े भाई; गांधीजीकी असहयोग योजनाके सिद्धान्ततः प्रशंसक।

गुजराती बच्चोंके हटा लिये जानेपर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ।[1] मैं समझता हूँ कि इससे तुम्हारा कुछ नुकसान नहीं हुआ। तुम किसी भी बच्चेको रखनेके लिए सिद्धान्तोंमें ढील नहीं कर सकते। मैंने तुम्हें पत्रमें वह-सब नहीं लिखा जो सीनेट द्वारा अभी पास किये गये प्रस्तावको[2] मंजूर करानेके कारण मुझे सहना पड़ रहा है। लोगोंने मेरा पूरी तरहसे बहिष्कार करनेकी धमकी दी है। परन्तु मेरी स्थिति बिलकुल स्पष्ट है। मैं दलितवर्ग या किसी भी वर्गकी क्षति स्वीकार करके स्वराज्य नहीं चाहता। मैं स्वराज्य शब्दका जो अभिप्राय मानता हूँ यह वैसा बिलकुल नहीं होगा। मेरा विश्वास है कि जिस क्षण भारत शुद्ध होगा, उसी क्षण वह स्वतन्त्र हो जायेगा; उससे एक भी क्षण पहले नहीं। मुझे केवल इस सबसे बड़े असुर, इस सरकारसे सम्पूर्ण शक्तिके साथ लड़ना होगा और वैसा करते-करते छोटे-मोटे राक्षसोंसे तो मैं अपने-आप ही निपट चुकूँगा। बहिष्कारकी यह धमकी मुझे बहुत ही खुशी दे रही है क्योंकि मैं महसूस करता हूँ कि वहाँ मैं और भी शुद्ध धरातलपर हूँ। सरकारसे, लड़नेमें सहयोगियोंके उद्देश्य संमिश्र हो सकते हैं, लेकिन छुआछूतके राक्षससे लड़नेमें मेरे साथ बिलकुल चुने हुए लोग हैं।

सप्रेम,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९५६) की फोटो-नकलसे।

१४. भाषण : आगरामें, असहयोगपर[3]

२३ नवम्बर, १९२०

श्री गांधीने भाषणका प्रारम्भ हालमें आगरामें हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगोंके उल्लेखसे किया और अधिकारियोंकी मध्यस्थताके बिना ही विवाद सुलझानेके लिए जनताको बधाई दी। उन्होंने कहा कि मुझे अनुशासनहीन सभा देखकर दुःख होता है क्योंकि उससे तो स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता। उन्होंने कहा कि जुलूससे[4] समय नष्ट होता है और बड़ी सभाओंसे वह उद्देश्य पूरा नहीं होता जिसके लिए उनका आयोजन किया जाता है। इन दोनोंमें ही समय नष्ट होता है। शायद मुझे यह व्रत लेना पड़े कि

१. सम्भवतः इसलिए कि ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर बच्चोंसे शान्तिनिकेतन आश्रममें एक साथ खाना खानेको कहा गया था।

२. देखिए पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ ८।

३. मौलाना अबुल कलाम आजादकी अध्यक्षतामें हुई विशाल आम सभामें दिया गया भाषण।

४. गांधीजी तथा अन्य लोग सभा-स्थलपर एक जुलूसमें ले जाये गये थे जिसमें दो घंटे लग गये थे। जुलूसके साथ बैंड था और रास्ता भी खूब सजाया गया था।

मैं जुलूसोंमें नहीं जाऊँगा और बड़ी सभाओंमें भाषण नहीं दूँगा। भारत जलियाँवाला बागमें मारे गये १५०० लोगोंके लिए शोक मना रहा है। शोकके समय संगीत और जुलूसका विचार मुझसे सहन नहीं हो सकता। उन्होंने इस बातपर खेद व्यक्त किया कि सजावट और झंडियों आदिमें विदेशी कपड़े और विदेशी वस्तुओंका इस्तेमाल किया गया है और रोशनी में विदेशी मोमबत्तियों और लैम्पोंका। खिलाफतके मामलेमें जो अन्याय हुआ है उसे दूर कराने या स्वराज्य प्राप्त करनेमें इन तरीकोंसे कोई मदद नहीं मिलेगी।

उन्होंने कहा कि मैं केवल विद्यार्थियोंके बीच भाषण देने आया हूँ और शीघ्र ही जहाँ ठहरा हूँ वहाँ चला जाऊँगा; उस सभामें केवल विद्यार्थी ही शरीक हो सकेंगे। उन्होंने कहा कि मैं इस सरकारको शैतानकी सरकार मानता हूँ और मेरा विश्वास है कि यदि लोग सच्चाईपर रहें और नेक आचरण करें तो एक सालमें स्वराज्य मिल सकता है। सरकार मुझे पागल[1] कहती है, परन्तु मैं जानता हूँ कि मैं पागल नहीं हूँ। मैं इस धूर्त सरकारसे सच्चाईसे निपटूँगा। उन्होंने वकीलोंसे वकालत छोड़ देनेका, उम्मीदवारोंसे कौंसिलोंका बहिष्कार करनेका और मतदाताओंसे मत न देनेका आग्रह किया। उन्होंने कहा कि चुनावमें चमारको उम्मीदवार बनाना हास्यास्पद है। नौकरशाही उसपर और लोगोंपर ऐसे कामोंके लिए हँसेगी और चूँकि इस ढंगसे स्वराज्य नहीं मिलेगा, वे दोनोंका ही मजाक उड़ायेंगे।[2]

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २६–११–१९२०

१५. भाषण: विद्यार्थियोंकी सभा, आगरामें[3]

२३ नवम्बर, १९२०

मुझे यहाँ आकर जितना दुःख हुआ है उतना किसी अन्य स्थानपर नहीं हुआ था। मैं जो काम करने आया हूँ इस गड़बड़ीके बीच वह नहीं किया जा सकता। जहाँकी व्यवस्था इतनी बुरी है वहाँ मैं विद्यार्थियोंसे कालेज छोड़नेके लिए कैसे कह सकता हूँ?

* * *

१. वाइसराय लॉर्ड चैम्सफोर्डने गांधीजीकी असहयोग योजनाको "मूर्खतापूर्ण योजनाओंमें सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण योजना" बताया था।

२. इस भाषणके बाद गांधीजी और विद्यार्थी सभासे चले गये क्योंकि गांधीजी उनके बीच अलगसे भाषण करना चाहते थे। विद्यार्थियोंकी सभामें दिये गये भाषणकी रिपोर्टके लिए देखिए अगला शीर्षक।

३. **नवजीवन**में प्रकाशित महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

गुलामीकी जंजीरकी चमकसे हमारी आँखें चौंधिया रही हैं। हम उसे अपनी स्वतन्त्रताकी निशानी मान बैठे हैं। यह हमारी अत्यन्त हीन गुलाम अवस्थाका सूचक है।

* * *

अपने भाषणमें उन्होंने आगे बताया कि प्रचलित शिक्षा-पद्धति हमें कायरता सिखाती है।

हमारे मनमें तिलक महाराजके प्रति चाहे कितनी ही भक्ति क्यों न हो लेकिन उस भक्ति-भावनाको क्या कोई विद्यार्थी खुलकर अभिव्यक्त कर सकता है?

* * *

हमारा जीवन ही कायरताका पर्याय बन गया है। जो तालीम हमें भयहीन नहीं बना पाती, बल्कि जो भयको पुष्ट करती है वह तालीम किस कामकी? जिस शिक्षामें सचाईसे चलनेका अवकाश नहीं, देश-भक्तिको अवकाश नहीं, वह कैसी शिक्षा है?

लेकिन मेरा यह कहना नहीं है कि तालीम बुरी है, केवल इसीलिए उसका त्याग कर देना चाहिए; मेरा कहना यह है कि चूँकि यह तालीम हमें गुलामीमें रखनेवाले लोगों द्वारा मिलती है, इसलिए हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते। गुलामोंका मालिक हमें स्वतन्त्रताका पाठ नहीं पढ़ा सकता। इस साम्राज्यमें मलिनता आ गई है और यह राक्षसी साम्राज्य अगर मुझे स्वतन्त्रताकी तालीम देना चाहता हो तो भी मैं उसे नहीं ले सकता।

यह शिक्षा चाहे कैसी भी क्यों न हो, लेकिन देखिए कि उसके मूल में क्या है? मोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं इससे आप लुब्ध क्यों होते हैं? ये पुस्तकें आपको स्वतन्त्रताकी सच्ची तालीम नहीं दे सकतीं, केवल भरमाती हैं। वस्तुतः देखा जाये तो राष्ट्रका पैसा चुराकर हमें उससे ऐसी भूलावेमें डालनेवाली शिक्षा दी जाती है, जो चोरी करके उसमें से थोड़ेसे पैसे देकर नशाखोरी सिखानेके समान है।

* * *

[बचपनमें] मैं माता-पिताके प्रति भक्ति रखनेवाला — श्रवण-जैसी भक्ति रखनेवाला लड़का था। मुझे ईश्वरमें भी विश्वास था। यह सच है कि माता-पिताके प्रति भक्ति रखनेवाला मैं आज माता-पिताकी अवज्ञा करनेको कहता हूँ। लेकिन माता-पिताको जन्म देनेवाला भी भगवान है और जहाँ ईश्वर और माता-पिताकी आज्ञा माननेमें चुनाव करना पड़े वहाँ मैं आपसे ईश्वरकी आज्ञा माननेके लिए कहता हूँ।

जिनके दिलसे यह आवाज आए कि जैसा मैंने बताया है वैसे साम्राज्य द्वारा संचालित स्कूलोंमें आजादीकी शिक्षा प्राप्त नहीं की जा सकती, जिन्हें यह ईश्वरीय निर्देश प्राप्त हो कि आजादी पानेके लिए इस गुलामीसे छूटना चाहिए, उन्हें माता-पिताको विनयपूर्वक समझाना चाहिए। यदि आपको यह जान पड़े कि यह घर जल रहा है और इसे तत्काल छोड़नेमें ही छुटकारा है तो उसे छोड़ देना चाहिए। मैं तो इस साम्राज्यमें पल-भर भी नहीं रह सकता, ऐसा मुझे चौबीस घण्टे महसूस होता

रहता है और अगर आपको भी ऐसा महसूस होता हो तो आपको यह पूछनेकी जरूरत ही नहीं रह जायेगी कि हमारे लिए दूसरे स्कूलोंकी व्यवस्था है या नहीं। बिना शर्तके स्कूलोंका त्याग करना स्वतन्त्रताका पहला पाठ है। लेकिन अगर आपमें धीरजका अभाव हो — आपमें स्कूलोंका त्याग करके नई राष्ट्रीय पाठशालाके स्थापित होनेतक उसके लिए पैसे इकट्ठे करनेका, भिक्षा माँगकर रहनेका धीरज न हो तो आप हरगिज शाला न छोड़ें।

आपको शारीरिक श्रम करनेकी शिक्षा मिलनी चाहिए। अंग्रेज लड़के जब स्कूलों-कालेजोंसे निकलते हैं तब उनमें शारीरिक श्रम करनेकी शक्ति तो होती ही है। लेकिन अगर आप पढ़-लिखकर वकील अथवा सरकारी नौकर होनेकी आकांक्षा रखते हों तो आपके लिए यही पाठशालाएँ ठीक हैं। दक्षिणमें मधुकरीकी जो प्राचीन प्रथा आज भी मौजूद है उसके गौरवको आप समझ सकते हों तो आप भिक्षा माँगकर भी शिक्षा प्राप्त करें। आपमें भिक्षा माँगकर शिक्षा लेनेकी सामर्थ्य न हो तो मैं आपकी मार्फत देशकी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं करना चाहता।

यह शिक्षा नास्तिकताकी शिक्षा है। ऐसी शिक्षाके बावजूद जिन्हें ईश्वरमें श्रद्धा हो, जिसे इन्द्रियोंपर काबू हो, जिसने अहिंसा और अस्तेयका पालन किया हो, अन्तरकी आवाज तो वही सुन सकता है। मैं केवल संयमका पालन करनेवाले विद्यार्थियोंसे कहता हूँ कि अगर आपको ईश्वरीय निर्देश मिले तो आप बेधड़क कालेज छोड़ दें।

मुझे ऐसे ही विद्यार्थियोंकी आवश्यकता है जिनमें समय आनेपर बलिदान देनेकी, फाँसीपर चढ़नेकी, भिक्षा माँगनेकी शक्ति हो। यदि देश तथा मुसलमानोंपर हुए अत्याचारोंसे आपके हृदयमें अग्नि धधक रही हो तो आप कालेज छोड़ सकते हैं।[1]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८–१२–१९२०

१. २६–११–१९२० के **लीडर**में प्रकाशित भाषणकी रिपोर्टके अन्तमें कहा गया है "मेरा भाषण सोलह वर्षसे अधिक उम्रके विद्यार्थियोंके लिए है। किसी भी स्थितिमें हिंसाका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। मेरे कुछ मुसलमान मित्रोंने बताया कि वे असहयोगको आजमायेंगे, लेकिन अगर वह सफल न हुआ तब वे तलवारको अपनाएँगे। मैं तलवारका प्रयोग करनेकी बातके विरुद्ध हूँ। जो विद्यार्थी स्कूलोंका त्याग करें, अगर उनके अभिभावक उन्हें आर्थिक सहायता देनेसे इनकार करें तो उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए पत्थर तोड़ने चाहिए अथवा भीख माँगनी चाहिए। इस तरह उन्हें अपना और अपने गुरुका पेट भरना चाहिए। सिर्फ उन्हीं विद्यार्थियोंको बिना किसी शर्तके स्कूलों और कालेजोंको छोड़ना चाहिए जो कष्ट सहनेके लिए तैयार हों, लेकिन केवल उत्तेजनावश उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए।

भाषणकी समाप्तिपर गांधीजीने विद्यार्थियोंसे प्रश्न पूछनेके लिए कहा। एक विद्यार्थीने पूछा कि कोई विद्यार्थी तकनीकी अथवा कोई अन्य शिक्षा पानेके लिए इंग्लैंड अथवा किसी अन्य यूरोपीय देशमें जा सकता है या नहीं। श्री गांधीने कहा कि मैं इसे पसन्द नहीं करूँगा लेकिन अगर कोई विद्यार्थी जाना चाहे तो जा सकता है। विद्यार्थीने फिर पूछा क्या वह जापान अथवा अमेरिका जा सकता है जो कि स्वतन्त्र राष्ट्र हैं। श्री गांधीने कहा कि उनके लिए सब एक समान हैं। वे भारत नहीं हैं।"

१६. तार: जयरामदास दौलतरामको[1]

[२३ नवम्बर, १९२० को या उसके बाद]

निश्चय ही मैं जनताको सामाजिक बहिष्कारसे जो कि राजनीतिक बहिष्कारसे भिन्न है, परावृत्त करूंगा। राजनीतिक बहिष्कारको सर्वथा आवश्यक मानता हूँ।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३५३) की फोटो-नकलसे।

१७. और कठिनाइयाँ

गुजरात विद्यापीठकी सीनेटने विद्यापीठसे सम्बद्ध स्कूलोंमें 'दलितवर्गों' के बच्चोंकी भरतीके सम्बन्धमें श्री एन्ड्रयूजके सवालके सिलसिलेमें जो प्रस्ताव[2] रखा उससे अहमदाबादमें सनसनी फैलनेका समाचार मिला है। उससे 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के एक संवाददाताको न केवल सन्तोष हुआ बल्कि इसीसे उसे सीनेटके संविधानमें एक और दोषका भी पता चला है — वह दोष यह है कि उसमें कोई मुसलमान सदस्य भी नहीं है। लेकिन मैं पाठकोंको बताना चाहूँगा कि यह बात विद्यापीठके स्वरूपमें राष्ट्रीयताके अभावका प्रभाव नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम एकता केवल कहने-भरकी बात नहीं है। इसके लिए किसी बनावटी सबूतकी जरूरत नहीं है। सीनेटमें कोई मुसलमान प्रतिनिधि न होनेका सीधा-सा कारण यही है कि राष्ट्रीय शिक्षा-आन्दोलनमें दिलचस्पी लेनेवाला कोई ऐसा उच्च शिक्षा प्राप्त मुसलमान नहीं मिला, जो इस कामके लिए अपना समय दे सकता। मैं इस बातका उल्लेख सिर्फ यह दिखानेके लिए कर रहा हूँ कि इस आन्दोलनको लांछित करनेके लिए, हमारे उद्देश्योंका गलत अर्थतक लगाकर किये जा रहे प्रयत्नोंसे निपटनेके लिए हमें तैयार रहना चाहिए। यह एक सतही कठिनाई है और इससे आसानीके साथ निपटा जा सकता है।

१. जयरामदास दौलतराम; सिंधके एक कांग्रेसी नेता। यह उनके २३ नवम्बर, १९२० के तारके जवाबमें भेजा गया था। जयरामदासका तार इस प्रकार था: "कुछ हिन्दू असहयोगियों, जिनमें दुर्गादास, गोविन्दानन्द, चोइथराम, घनश्याम, जयरामदास और **हिन्दू**के सम्पादक तथा अन्य लोग भी थे, की आज एक बैठक हुई। सामाजिक बहिष्कारके सुझावोंपर बातचीत की। सबकी राय सामाजिक बहिष्कारके विरुद्ध रही; क्योंकि उससे हमें लाभ नहीं होगा, हमारे आन्दोलनमें बाधा पड़ेगी, और उससे लोगोंपर अत्याचार करनेके अवसर उत्पन्न होंगे। आपसे अनुरोध है कि इस मामलेमें अपने प्रभावका उपयोग करें।"

२. देखिए पाद-टिप्पणी १, पृष्ठ ८।

दलित वर्गोंकी कठिनाई हमारी आन्तरिक कठिनाई है और इसलिए कहीं ज्यादा गम्भीर है, क्योंकि उससे फूट पड़ सकती है और उद्देश्य-सिद्धिके हमारे प्रयत्न कमजोर बन जा सकते हैं। यदि आन्तरिक कठिनाइयाँ बढ़ती ही जायें, उनका कोई अन्त ही न आये तो कोई भी उद्देश्य सफल नहीं हो सकता। फिर भी फूटसे बचनेके लिए सिद्धान्तोंका त्याग बिलकुल नहीं हो सकता। यदि आप उद्देश्यके महत्त्वपूर्ण अंशोंका परित्याग करें तो उसकी जड़ोंपर प्रहार होता है और फिर वह उद्देश्य आगे नहीं बढ़ पाता। 'दलित वर्गो' की समस्या हमारे उद्देश्यका एक महत्त्वपूर्ण अंश है। दलित वर्गोके साथ जो अन्याय होता आया है उसका पूरी तरह मार्जन किये बिना स्वराज्यकी कल्पना उसी प्रकार असम्भव है, जिस प्रकार सच्ची हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना। मेरी रायमें हमारी स्थिति साम्राज्यमें जो अछूतों और अति शूद्रों-जैसी हो गई है उसका कारण यही है कि हमने खुद अपने बीच अछूतों और अति शूद्रोंका एक वर्ग बना रखा है। गुलामके मालिकको हमेशा गुलामसे कहीं ज्यादा क्षति उठानी पड़ती है। जबतक हम भारतकी जनताके पाँचवें भागको गुलामीमें रखेंगे तबतक हम स्वराज्य पानेके योग्य नहीं होंगे। जिन्हें हम शूद्र कहते हैं, क्या हमने उन्हें पेटके बल नहीं चलाया है? क्या हमने उन्हें शेष समाजसे अलग नहीं रखा है? और यदि 'शूद्र' के साथ ऐसा व्यवहार करना धर्म है तो फिर हमें अलग रखना गोरी जातिका धर्म है। और यदि गोरी जातियोंका यह कहना कि हम अपनी हीनावस्थासे सन्तुष्ट हैं, ठीक नहीं है तो हमारा भी यह कहना ठीक नहीं है कि 'दलित जातियाँ' अपनी अवस्थासे सन्तुष्ट हैं। जब हम गुलामीको प्यार करने लगते हैं तब वह मानो अपनी चरमावस्थाको पहुँच जाती है।

इसलिए गुजरातकी सीनेटने जब तूफानके आगे झुकनेसे इनकार कर दिया, तो उसने यह समझ लिया था कि उसे इसका क्या मूल्य चुकाना होगा। असहयोग आत्मशुद्धिकी प्रक्रिया है। अगर हम स्वराज्यका पवित्र फल पाना चाहते हैं तो हम इन सड़ी-गली प्रथाओंसे नहीं चिपटे रह सकते। मेरा स्पष्ट मत है कि अस्पृश्यताकी प्रथा एक रिवाज-मात्र है, हिन्दू धर्मका अभिन्न अंग नहीं है। विचारके क्षेत्रमें दुनिया काफी आगे बढ़ी है, यद्यपि कर्मसे वह अब भी बर्बर है। कोई भी धर्म ऐसी किसी चीजको, जो मूल सत्योंपर आधारित नहीं है, मान्यता नहीं दे सकता। जो चीज गलत है, उसे अगर हम अच्छा बतायें तो उससे धर्मका नाश उतना ही निश्चित है जितना रोगकी उपेक्षासे शरीरका नाश।

हमारी यह सरकार एक धर्महीन संस्था है। इसने हिन्दू-मुसलमानोंको अलग करके राज किया है। वह हिन्दू धर्मकी आन्तरिक दुर्बलताओंसे लाभ उठा सकती है। वह 'दलित' वर्गोंको शेष हिन्दुओंके विरुद्ध और ब्राह्मणेतरोंको ब्राह्मणोंके विरुद्ध खड़ा कर देगी। गुजरात सीनेटके प्रस्तावसे यह समस्या समाप्त नहीं हो जाती। उससे तो इतना ही पता चलता है कि उसे हल करना कितना कठिन है। यह कठिनाई सिर्फ तभी दूर होगी जब सारा हिन्दू समाज, सामान्य हिन्दू जनता और इस समाजके विशिष्ट वर्ग, दोनों छुआछूतके पापसे अपनेको मुक्त कर लेंगे। स्वराज्यका एक हिन्दू प्रेमी

'दलित' वर्गोंके उद्धारके लिए उतने ही उत्साहसे काम करेगा जितना कि वह हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए करता है। हमें उनके साथ अपने भाई-जैसा बरताव करना चाहिए और उन्हें वही अधिकार देने चाहिए जो हम अपने लिए माँगते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४–११–१९२०

१८. कौंसिलोंके चुनाव[1]

जहाँतक मतदाताओंका सम्बन्ध है, कौंसिलोंके सम्बन्धमें बम्बई प्रेसीडेन्सी तथा अन्य स्थानोंके निर्वाचनोंमें असहयोगकी नीतिकी सफलता जाहिर हो गई है। कहीं-कहीं तो लगता है कि एक भी मतदाताने अपना मत नहीं दिया। ऐसी स्थितिमें तथाकथित प्रतिनिधि क्या करेंगे? वे जानते हैं कि मतदाता मतदानके लिए आलस्य-वश नहीं वरन् सोच-समझकर ही नहीं गये हैं। वे यह भी जानते हैं कि हजारों मतदाताओंने लिखित रूपसे अपनी यह इच्छा घोषित की है कि वे कोई प्रतिनिधि नहीं चुनना चाहते। सदस्योंके पास मतदाताओंको प्रभावित करने और उन्हें मत देनेकी जरूरत समझानेका पूरा अवसर था। वे धमकी या धरना देनेकी भी शिकायत नहीं कर सकते। क्योंकि धरना न देनेकी हिदायत दे दी गई थी और जहाँतक मैं जानता हूँ, इस हिदायतका पूरी तरहसे पालन किया गया है। इन तथ्योंको देखते हुए निर्वाचित घोषित किये गये सदस्योंका क्या यह स्पष्ट कर्त्तव्य नहीं है कि वे कौंसिलोंसे कुछ भी सम्बन्ध न रखें? मतदाताओंने तो साफ-साफ बता दिया है कि वे संशोधित कौंसिलोंसे कुछ सरोकार नहीं रखना चाहते। यदि सदस्य इस यथासम्भव स्पष्टतम प्रतिकूल समादेशके रहते हुए भी कौंसिलोंमें जानेका आग्रह करते हैं तो वे जनमतका प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्थाओंको एक मखौल बना देंगे।

यदि तथाकथित प्रतिनिधि अपने मतदाताओंके आदेशको नहीं मानते, तो मत-दाताओंके लिए रास्ता बिलकुल साफ है। उन्हें मतदाता संघ बनाने चाहिए और इन संघोंके द्वारा अविश्वासके प्रस्ताव पास करने चाहिए; उन्हें अपने-अपने क्षेत्रके सदस्योंको लिखकर अवश्य सूचित करना चाहिए कि उन्होंने स्वयंको जो निर्वाचित घोषित होने दिया है उसे हम ठीक काम नहीं मानते। और इसके साथ यह भी होना चाहिए कि किसी भी हालतमें मतदाता इन सदस्योंसे कोई काम कतई न लें। उनके लिए कौंसिल है ही नहीं। उन्हें उससे कोई राहत पानेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। यदि मतदाताओंके इस निर्णयके बाद भी कौंसिलका निर्माण हो जाता है तो उस समय मतदाताओंके लिए दूसरी परीक्षाका समय आयेगा। कौंसिलोंमें प्रश्न उठाकर अपनी शिकायतें पेश और प्रकाशित करनेका बहुत लोभ होगा। लेकिन मतदाताओंको इस लोभका संवरण करना होगा।

१. ये चुनाव नवम्बर १९२० में हुए थे तथा बम्बई विधान परिषद्के लिए १६ नवम्बरको।

वैसे तो हमें अपने देशके सुयशकी खातिर आशा तो यही करनी चाहिए कि सदस्य स्वयं मतदाताओंके इतने जोरसे घोषित निर्णयके सामने सिर झुकायेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४–११–१९२०

१९. प्राथमिक शिक्षाकी दशा

पण्डित गंगाराम शर्माका[1] पत्र जो अन्यत्र दिया जा रहा है,[2] राष्ट्रीय शिक्षाके प्रश्नपर अवसरोपयोगी विचार प्रस्तुत करता है। वे पंजाबमें प्राथमिक शिक्षापर उपयोगी परीक्षण भी कर रहे हैं और इस महत्त्वपूर्ण समस्यापर काफी प्रकाश डाल सकते हैं। उनका सरकारी मदद लेने और अपने स्कूलको सरकारसे सम्बद्ध करानेसे इनकार कर देना उनकी योजनाको और भी आकर्षक बना देता है। योजनाको पण्डित मदन-मोहन मालवीयजी और श्री शास्त्रियरके आशीर्वाद प्राप्त हैं। कार्यक्रम महत्त्वाकांक्षापूर्ण और सुविचारित है। योजना खर्चीली नहीं है। मुझे डर इतना ही है कि उसने जरूरतसे ज्यादा काम समेट लिये हैं। परन्तु किसी प्रयोगकी प्रयोग-स्थलपर जाकर सावधानीसे परीक्षा किये बिना आलोचना करना अनुचित है। मैं प्राथमिक शिक्षाकी किसी भी योजनामें अंग्रेजीका ज्ञान शामिल करनेके औचित्यपर आपत्ति करता हूँ। मेरी रायमें इस देशके हजारों लड़के-लड़कियोंको अंग्रेजी जाननेकी कतई जरूरत नहीं है। उन्हें भाषाओंके बजाय विचारोंकी ज्यादा जरूरत है। मैं तो छोटे बच्चोंको भी स्वराज्य तथा अन्य जरूरी विषयोंका ज्ञान दे सकता हूँ। मैं यह नहीं मानता कि इसके लिए उन्हें उच्च साहित्यिक ज्ञान पानेतक रुकना चाहिए। शिक्षाकी वर्तमान प्रणाली और तरीका, बच्चेको अनेकों निरर्थक तथ्योंका ज्ञान कराता रहता है और उसकी बुद्धिका विकास तबतक उपेक्षित ही रहता है जबतक कि वह उच्च कक्षाओंमें शिक्षा नहीं पाने लगता। इस तरह हम अकारण ही ऐसा समझने लगे हैं कि स्वतन्त्रता, धर्म आदिके बारेमें हम सही विचारोंको अंग्रेजीके ज्ञानके बिना ग्रहण नहीं कर सकते; फल यह हुआ कि अंग्रेजीके प्रति हममें अंधा मोह पैदा हो गया है।

पण्डित गंगाराम शर्माके पत्रका ज्यादा दिलचस्प अंश वह है जिसमें वे उन कठिनाइयोंके बारेमें बताते हैं जो स्थानीय अधिकारियोंने उनके रास्तेमें डालीं; उस अंशमें वे पंजाबमें प्राथमिक शिक्षाकी 'प्रगति' के आश्चर्यजनक आंकड़े भी पेश करते हैं। इन आँकड़ोंसे जान पड़ता है कि १८४४ में १२७ लाखकी आबादीमें ३०,००० देशी स्कूल थे जिनमें ४ लाख बच्चे शिक्षा पाते थे। १९१८-१९में १९० लाखकी आबादीमें केवल ९३३ देशी स्कूल थे और ४,१७१ सरकारी स्कूल जिनमें कुल मिलाकर २,३९,३३२ बच्चे शिक्षा पाते थे। यदि ये आँकड़े सही हैं तो पंजाबमें प्राथमिक

१. पंजाबके एक स्थानीय कांग्रेसी कार्यकर्त्ता।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

शिक्षाकी दशा आज सन् १८४९ की अर्थात् ब्रिटिश शासनसे पूर्वकी अपेक्षा अधिक बुरी है। फिर भी हमें बताया जाता है कि यदि हम शिक्षाका राष्ट्रीयकरण करें तो हम उसका आर्थिक भार वहन नहीं कर सकते।

पण्डित गंगाराम शर्माने और भी ऐसे तथ्य तथा आँकड़े मुझे बताये हैं जो ब्रिटिश शासनकी प्रतिष्ठाके लिए इतने ही हानिकर हैं। मैं उनके बारेमें बादमें लिखूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-११-१९२०

२०. तार: नारणदास गांधीको[1]

[२४ नवम्बर, १९२० को या उसके बाद][2]

लड़कोंको दृढ़ रहना चाहिए, हुल्लड़बाजीसे बचना चाहिए, नित्य कवायद करनी चाहिए व तबतक घरमें पढ़ाई जारी रहनी चाहिए जबतक नया हाई स्कूल न खुले या इस हाई स्कूलका राष्ट्रीयकरण न हो जाये। उन्हें अभिभावकोंसे अवश्य सलाह लेनी चाहिए और यदि कोई विरोध हो तो उसे विनयपूर्वक सहना-सँभालना चाहिए। बैंकरसे[3] मशविरा करो। तीन स्कूल मास्टरोंने सेवाएँ अर्पित की हैं।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३५४) की फोटो-नकलसे।

१. यह तार नारणदास गांधीके २३ नवम्बरको बम्बईसे दिये गये तारके जवाबमें भेजा गया था। नारणदास गांधीने अपने तारमें गांधीजीको सरकारी मान्यता प्राप्त गोकुलदास तेजपाल स्कूलके तीन सौ लड़कों द्वारा स्कूल छोड़ दिये जानेकी खबर दी थी और उनकी सलाह माँगी थी।

२. नारणदासका तार गांधीजीको २४ नवम्बरको मिला था।

३. शंकरलाल बैंकर; सामाजिक कार्यकर्ता और अहमदाबादके मजदूर नेता। **यंग इंडियाके** प्रकाशक अहमदाबादकी कपड़ा मिलोंकी हड़तालके दौरान गांधीजीके निकट सम्पर्कमें आये; १९२२ में गांधीजीके साथ जेल गये।

२१. तार: चिरावुरी यज्ञेश्वर चिन्तामणिको[1]

[२५ नवम्बर, १९२० को या उसके बाद][2]

मैं निश्चय ही असहयोगियों द्वारा किसीका प्रचार[3] करनेका विरोधी हूँ। चूँकि मैंने उनमें पक्ष लेनेका रुझान पाया इसीलिए मैंने असहयोगियोंको उस प्रलोभनके विरुद्ध चेतावनी देना शुरू किया। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कहूँगा। मेरे नामसे किसीको भी झाँसीमें या अन्यत्र किसी उम्मीद-वारको [किसी दूसरे उम्मीदवारकी तुलनामें] ज्यादा अच्छा बतानेका अधिकार नहीं है। आशा है यदि आप झाँसीके अधिकांश मतदाताओंको चुनावके विरुद्ध पायेंगे तो आप उक्त चुनाव-क्षेत्रकी इच्छाका सम्मान करेंगे।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३५५) की फोटो-नकलसे।

२२. भाषण: विद्यार्थियोंकी सभा, बनारसमें[4]

२६ नवम्बर, १९२०

कुछ मास पूर्व मैंने आपसे संयमके बारेमें कुछ कहा था,[5] आज भी आपके सामने मैं अपने हिसाबसे संयमकी ही बात करने आया हूँ। आजकल यह कहा जा रहा है कि मैं विद्यार्थियोंको बहका रहा हूँ। मैं पूरी तरह अपनी जिम्मेदारी समझते हुए कहता हूँ कि मैं किसीको बहकाना नहीं चाहता। मैं विद्यार्थियोंको बहका ही नहीं सकता। मैं भी एक विद्यार्थी था और विद्यार्थी अवस्थामें हर काम विनयपूर्वक करता था। मैं चार बच्चोंका पिता हूँ और ऐसे सैकड़ों लड़के मेरे पास आ चुके हैं, मैं आज भी जिनके पितास्वरूप होनेका दावा करता हूँ। ऐसी हालतमें मेरे मुँहसे उन्हें बह-कानेकी बात निकल ही नहीं सकती।

१. सर चिरावुरी यज्ञेश्वर चिन्तामणि (१८८०–१९४१); प्रमुख पत्रकार, लेखक और राजनीतिज्ञ; इलाहाबादके प्रसिद्ध दैनिक **लीडर**के सम्पादक।

२. यह तार चिन्तामणिके झाँसीसे दिये गये २५ नवम्बर, १९२० के तारके जवाबमें था जो इस प्रकार था: "आपके कुछ अनुयायी आपके नामपर मेरे खिलाफ काम कर रहे हैं और मतदाताओंको मेरे एक विरोधीको मत देनेके लिए उकसा रहे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि आपका ऐसा मन्तव्य कभी नहीं हो सकता। आपसे प्रार्थना है कि अपने मित्रोंको तदनुसार तार दें। कृपया तारसे जबाब दीजिए।"

३. मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंके अन्तर्गत नवम्बर-दिसम्बर १९२० में हुए विधान सभाओंके चुनावोंके सम्बन्धमें।

४. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

५. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ४८।

परन्तु आज तो मैं जो-कुछ कर रहा हूँ, उसे बुजुर्ग लोग ऐसा मानते हैं कि मैं उनके साथ अन्याय कर रहा हूँ; उनका खयाल है कि जिस सत्यके आग्रहका मैं दावा करता हूँ, उससे भी मैं थोड़ा डिग गया हूँ; और जिस विवेकका दावा करता रहा हूँ, मेरी आजकलकी भाषामें वह भी नहीं बचा है। इन सब बातोंको मैं सोचता हूँ; और मेरी आत्मा कहती है कि ऐसा नहीं है। मैं अविवेकपूर्ण भाषाका इस्तेमाल नहीं करता। मैं जो कहता हूँ वह शान्तिसे, सोच-समझकर कहता हूँ। बात यह है कि मैं पिछले दिसम्बरतक[1] जिस भ्रममें था, मेरा वह भ्रम भंग हो गया है और इस कारण आज मेरे मुँहसे जो भाषा निकलती है, वह कुछ अलग है। परन्तु बात जैसी है, वैसी ही मैं कह रहा हूँ। मुझे जो कुछ गन्दा जान पड़ता है उसे गन्दा न कहनेसे सत्यका भंग और अविवेक होता है। जो चीज जैसी है उसे वैसा ही बतानेमें विवेकका भंग नहीं है और सत्यका पालन है। यद्यपि एकान्तिक सत्य तो मौनमें ही है, फिर भी जब भाषाका प्रयोग करना पड़ता है, तब उसमें सम्पूर्ण सत्य तो तभी आयेगा, जब मैं स्थितिको जैसी पाऊँ, वैसी ही व्यक्त करूँ।

'लीडर' में पण्डितजीका[2] एक व्याख्यान आया है। उनसे उसके प्रकाशनकी अनुमति ले ली गई थी। उसके एक वाक्यकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ। वाक्य है: 'सब कुछ सोच-समझकर जो तुम्हारी अन्तरात्मा कहे, सो करो।' मैं भी यही बात कहना चाहता हूँ। यदि आपकी अपनी अन्तरात्माकी सच्ची आवाजके बारेमें कुछ भी सन्देह रह जाये, यदि आप स्वयं मनमें निर्णय न कर पायें तो मेरी न मानें, किसी दूसरेकी भी न मानें, केवल मेरे पूज्य भाई साहब, पण्डितजीकी ही मानें। मालवीयजीसे बड़े धर्मात्मा मैंने नहीं देखे। जीवित भारतीयोंमें मुझे उनसे ज्यादा भारतकी सेवा करनेवाला भी कोई दिखाई नहीं देता। पण्डितजीमें और मुझमें, दोनोंमें कैसा सम्बन्ध है? मैं तो दक्षिण आफ्रिकासे आया, तभीसे उनका पुजारी हूँ। मैंने अपने दुःख अनेक बार उनके आगे रोये हैं और उनसे आश्वासन प्राप्त किया है। वे तो मेरे बड़े भाईके समान हैं।

मेरा ऐसा सम्बन्ध है। इसलिए मैं तो यह कह सकता हूँ कि आप मेरे कहे अनुसार तभी करें जब आपके दिलसे यह आवाज निकले कि जो गांधी कहता है वही सत्य बात है। परन्तु यदि आपको ऐसा लगे कि दोनों हमारे नेता हैं, दोनोंमें से एकको चुनना है तो आप पण्डितजीका ही कहना मानें। जरा भी अन्देशा हो तो आप मेरी बात न मानें; यदि मानेंगे तो उससे आपका अहित ही होगा। पण्डितजी विश्वविद्यालयके कुलपिता हैं; पण्डितजीने उसकी स्थापना की है; वे उसकी आत्मा हैं और उनका आदर करना हमारा धर्म है। इस मामलेमें मैं मानता हूँ कि पण्डितजी भूल रहे हैं। इस बारेमें आपको लेशमात्र भी शंका हो तो आप लोग मेरी बात न मानें। मेरे पास एक सज्जन आये। उन्होंने कहा कि "आप काशी जायेंगे; परन्तु इस समय पण्डितजीकी तन्दुरुस्ती नाजुक है। आपके वहाँ जानेसे उन्हें सख्त आघात

१. दिसम्बर, १९१९ में अमृतसर कांग्रेसमें गांधीजीने मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंका समर्थन किया था।
२. पं० मदनमोहन मालवीय।

पहुँचेगा, और पण्डितजीको गँवा बैठनेकी नौबत आ सकती है। कहीं आपका काशी पहुँचना पण्डितजीकी मृत्युका कारण न बन जाये। पण्डितजीकी मृत्युका कारण मैं कैसे बन सकता हूँ? पण्डितजीकी आत्मा तो मर नहीं सकती परन्तु उन सज्जनको मेरे काशी जानेमें पण्डितजीकी मृत्यु दिखाई दी। उन्होंने कहा, 'लड़के आपका कहना मानेंगे, वे विश्वविद्यालयसे निकल जायेंगे, पण्डितजीको अपना जीवन-कार्य नष्ट हुआ दिखाई देगा और इससे उनका शरीरान्त हो जायेगा। मुझे इसपर कुछ हँसी आई। मुझे ऐसा लगा कि ये सज्जन पण्डितजीको नहीं जानते। पण्डितजी कोई कायर नहीं हैं कि ऐसी बातसे प्राण छोड़ दें।

यह सही है कि विद्यालय पण्डितजीका प्राण है। परन्तु मेरी समझमें उससे भी अधिक भारत उनका प्राण है। पण्डितजी आशावादी ठहरे। पण्डितजीका दृढ़ विश्वास है कि कोई भी भारतका बुरा करनेमें समर्थ नहीं है। भारतकी बागडोर किसीके हाथमें नहीं; वह ईश्वरके हाथमें है और उसका कल्याण करनेवाला ईश्वर विद्यमान है। फिर भी मैंने पण्डितजीको तार[1] दिया और पण्डितजीने मीठे शब्दोंमें जवाब दिया कि मैं काशी पहुँचूँ।

पण्डितजीका यह खयाल है कि आप लोगोंमें से कुछ लोग बिना विचारे कदम उठा रहे हैं और बिना विचारे आप कुछ भी करेंगे तो स्थान-भ्रष्ट हो जायेंगे। परन्तु यदि आप लोगोंको ऐसा लगे कि इस संस्थामें पढ़ना पाप है तो आप इसे तुरन्त छोड़ दें; पण्डितजी आपको आशीर्वाद देंगे। परन्तु यदि आपकी आत्मा प्रज्वलित नहीं है तो आप मेरे बजाय पण्डितजीकी ही सुनें।

हमारा काम तभी अन्तरात्मासे प्रेरित हो सकता है जब अपने-आपमें वह स्वच्छ हो, उसका हेतु स्वच्छ हो और उसका परिणाम भी स्वच्छ हो। परन्तु उसपर एक और भी बन्धन शास्त्रोंने लगा रखा है। जो संयमी है; जो अहिंसा, सत्य एवं अपरिग्रहका पालन करनेवाला है, वही कह सकता है कि मुझे अन्तरात्माका आदेश हुआ है। यदि आप ब्रह्मचारी नहीं हैं, आपके हृदयमें दया नहीं है, मर्यादा नहीं है, सत्य नहीं है तो आप अपने किसी कामको अन्तरात्मासे प्रेरित नहीं कह सकते। परन्तु यदि आपका हृदय वैसा है जैसा मैंने वर्णित किया है, यदि आपने पश्चिमके ढंगका त्याग कर दिया है, आपके स्वच्छ हृदय-मन्दिरमें प्रभुका निवास है तो आप अपने माँ-बापका भी सविनय अनादर कर सकते हैं। उस स्थितिमें आप स्वतन्त्र हैं और इसलिए आप कदम उठा सकते हैं। मुझे मालूम है कि पश्चिममें स्वेच्छाचारकी हवा बह रही है। परन्तु भारतीय विद्यार्थियोंको मैं स्वच्छन्द नहीं बनाना चाहता। यदि इस पवित्र काशी क्षेत्रमें, इस पवित्र स्थानमें, मैं आपको स्वेच्छाचारी बनाना चाहूँ तो मैं अपने कार्यके योग्य नहीं।

मैं लड़कोंसे ऐसा क्यों कह रहा हूँ कि पाठशाला छोड़ना धर्म है? क्या मैं उनका विद्यार्थी-जीवन नष्ट करना चाहता हूँ? नहीं। मैं स्वयं अभीतक विद्यार्थी-जीवन बिता रहा हूँ; विद्यार्थी ही हूँ। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि जिसे स्वतन्त्रताकी

१. देखिए "तार: मदनमोहन मालवीयको", २०-११-१९२० के आसपास।

शिक्षा नहीं मिली — निश्चय ही वह मिल कृत 'Liberty' के अध्ययनसे नहीं मिलती — वह स्वतन्त्र नहीं कहलाता। आपकी तालीम अरबिस्तानके लड़कोंसे भी हीन है। उस ओरसे हमारे देशमें आये हुए एक व्यक्तिने मुझे बताया था कि वहाँके विद्यार्थियोंको जो शिक्षा मिलती है, हमारे विद्यार्थियोंकी शिक्षा उसकी चौथाई भी नहीं। अरबिस्तानका एक भी विद्यार्थी इस हुकूमतको स्वीकार नहीं कर सकता। वहाँ उनके लिए डाक, तार और ट्राम आदि जारी किये गये; हवाई जहाज जारी करनेका लालच दिया गया और यह भी कहा गया कि वे उनके देशकी उस जलती हुई रेतको भी ठण्डा कर देंगे जिसपर घड़ी-भरमें खिचड़ी पक जाती है। तालीम देनेके लिए बड़ी शिक्षा-संस्थाएँ खोलनेका प्रलोभन भी उन्हें दिया गया। परन्तु वहाँके लड़के कहते हैं कि हमें यह सब नहीं चाहिए। वहाँके छात्रोंको अच्छी धार्मिक शिक्षा मिलती है। आपको भी वैसी धार्मिक शिक्षाकी जरूरत है। आप जिन परिस्थितियोंमें पढ़ते हैं, उनमें ऐसी ही शिक्षा मिलती है कि मनमें मनुष्यका डर रखना पड़े। परन्तु मैं तो उसे सच्चा एम० ए० कहूँगा जिसने मनुष्यका डर छोड़कर ईश्वरका डर रखना सीखा हो। आपमें इतना बल आ जाये कि आजीविकाके लिए आपको किसीके सामने हाथ न फैलाना पड़े, तब आपकी शिक्षा ठीक कहलायगी। जब मनमें यह विचार घर कर ले कि जबतक मेरे हाथ-पैर साबित हैं, तबतक आजीविका प्राप्त करनेके लिए मुझे कहीं भी सिर नहीं झुकाना है, आपकी शिक्षा तभी ठीक कहलायेगी।

अंग्रेज इतिहासकार कहते हैं कि भारतमें तीन करोड़ लोगोंको दिनमें दो बार पेट-भर खानेको नहीं मिलता। बिहारमें अधिकांश लोग सत्तू नामक निःसत्व खुराक खाकर रहते हैं। जब भुनी हुई मक्कीका यह आटा, पानी और लाल मिरचोंके साथ गलेसे उतारते हुए मैंने लोगोंको देखा तो मेरी आँखोंसे आग बरसने लगी। आप लोगोंको वैसा खाना पड़े तो आप उसपर कितने दिन गुजार सकते हैं? रामचन्द्रजीकी भूमिमें — जनक राजाकी पुण्यभूमिमें — लोगोंको आज घी नहीं मिलता, दूधतक नहीं मिलता। ऐसी स्थितिमें आप निश्चिन्त होकर कैसे बैठ सकते हैं? हमें यदि ऐसी शिक्षा नहीं मिलती कि हमारा प्रत्येक मनुष्य मैक्स्विनी बन जाये, तो उस शिक्षाका कोई अर्थ नहीं है। यदि हमें आजादीसे खानेको न मिले तो हममें भूखों मरकर आजाद होनेकी ताकत आनी चाहिए, मैं यह चाहता हूँ। अरब और मेसोपोटामियाके लड़कोंको ऐसी तालीम प्राप्त है। वे अंग्रेजोंसे दो-दो हाथ करनेका हौसला रखते हैं। वहाँ तो शस्त्र-बल मौजूद है, हमारे यहाँ वह नहीं है। परन्तु भारतकी सत्यवृत्तिमें जबरदस्त आत्मिक शक्ति विद्यमान है, इसीलिए हम अत्याचारको हटा सकते हैं। असन्तोंका त्याग करनेका तुलसीदासजीका उपदेश है। मैं कहता हूँ कि यह हुकूमत राक्षसी है, इसलिए उसका त्याग हमारा धर्म है। त्याग करनेका अर्थ हिजरत करना ही होता है। परन्तु मैं वैसा करनेको नहीं कहता। देश छोड़कर हम कहाँ जायें? हिन्द महासागर अथवा बंगालकी खाड़ीमें समा जानेके सिवा हम और कहाँ जा सकते हैं। परन्तु तुलसीदासजीने कहा है कि असन्तोंका सर्वथा त्याग न कर सको, तो दूर अवश्य रहो। रावणके पकवानों और दासियोंका त्याग करके

अशोक वाटिकामें केवल फल-फूलपर निर्वाह करनेवाली सीताजी जैसा शान्तिमय असहयोग करनेकी ताकत आपमें न आये, तो भारत नष्ट हो जायेगा; वह गुलामीमें सड़ता ही रहेगा, इस बारेमें मुझे जरा भी शक नहीं।

यह हुकूमत राक्षसी क्यों है, इसके कारणोंमें मैं जाना नहीं चाहता। परन्तु पंजाबमें अत्याचार करनेवाली, छः-छः, सात-सात वर्षके बालकोंको धूपमें चलानेवाली, स्त्रियोंकी लाज लूटनेवाली –– और जिन कर्मचारियोंने ये अत्याचार किये, उनके लिए यह कहनेवाली कि उन्होंने कोई अपराध नहीं किया, उन्होंने तो हुकूमतको बचाया –– ऐसी हुकूमतके अधीन पाठशालाओंमें पढ़ना मेरे खयालसे सबसे बड़ा अधर्म है। मेरे बुजुर्ग पण्डितजी इसमें धर्म देख पाते हैं। शास्त्र मुझे ऐसा नहीं सिखाते। मैं रावणके हाथों 'गीता' या 'कुरान' या 'बाइबिल' नहीं पढ़ सकता। जिसने 'गीता'का धार्मिक दृष्टिसे अध्ययन किया हो, मैं तो उससे 'गीता' सीखूँगा। शराब पीनेवालेसे कैसे सीख सकता हूँ? मेरी आत्मा कितनी जल रही है, उसका मैं आपको अन्दाज नहीं करा सकता। इस सल्तनतकी मैंने तीस वर्ष सेवा की। मुझे उसका पश्चात्ताप नहीं है। सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि अब मैं उसकी सेवा नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने पंजाबके अत्याचार देखे हैं। साथ ही मुझे यह भी दीख रहा है कि यह हुकूमत कितने ही वर्षोंसे भारतका ऐसा सर्वनाश कर रही है कि उसके मुकाबलेमें पंजाबके अत्याचार कुछ भी नहीं। जब मैं आपकी उम्रका था, तब मैंने दादाभाई नौरोजीका[1] 'पावर्टी ऐंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया" पढ़ा था। उसमें उत्तरोत्तर बढ़नेवाला देशका जो शोषण साबित किया गया था, क्या वह आज भी कुछ कम हो सका है? सैनिक खर्च बढ़ता ही गया है या नहीं? पेंशनोंमें देशके बाहर बह कर जानेवाली राशि भी बढ़ी है या नहीं? विदेशी मालका आयात अधिकाधिक बढ़ रहा है या नहीं? यदि इन प्रश्नोंका उत्तर 'हाँ' हो, तो मैं कहता हूँ कि लॉर्ड सिन्हा[2]-जैसे व्यक्ति गवर्नर भले ही बन जायें –– यहाँतक कि पण्डितजी जैसे व्यक्तियोंको वाइसराय ही क्यों न बना दिया जाये, मैं उन्हें सलाम करने हरगिज नहीं जाऊँगा। असली स्थिति यह है कि इस राज-प्रथाके मातहत हमारी गुलामी बढ़ती ही जा रही है। और गुलाम जब गुलामीकी जंजीरकी चमक देखकर मुग्ध हो जाये, तब उसकी गुलामी सम्पूर्ण हुई कहलाती है। मैं कहता हूँ कि पैंतीस वर्ष पहले जो गुलामी थी, उससे हममें अब अधिक गुलामी है। हम अधिक हताश होते जा रहे हैं। हमारी कायरता बढ़ती जा रही है। इसलिए मैं तात्विक दृष्टिसे कहूँ तो मुझे यह कहना ही पड़ेगा कि हममें गुलामीकी मात्रा बढ़ती जा रही है।

१. दादाभाई नौरोजी (१८२५–१९१७); प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ तथा देशभक्त, 'भारतके पितामह' नामसे प्रसिद्ध। १८८६, १८९३ और १९०६ के कांग्रेस अधिवेशनोंके अध्यक्ष।

२. सत्येन्द्र प्रसन्न सिन्हा (१८६४–१९२८); वाइसरायकी परिषद्के कानून सदस्य; प्रथम भारतीय गवर्नर। बम्बईमें १९१५ में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष।

बाबू भगवानदासके[1] विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानका[2] एक भाग मुझे सदा याद आता रहता है। उन्होंने कहा है कि यदि हमारे राज्यकर्त्ता वणिक बनकर राज्य करें, और साधारण चीजोंका ही नहीं, भांग-गांजे-जैसे नशेके साधनोंका व्यापार करें, तब वे अधम बन जाते हैं और हमें उनका त्याग कर देना चाहिए। इस हुकूमतने हिन्दुस्तानको नापाक कर दिया है। आबकारी विभाग बढ़ता ही जा रहा है। गोखलेजी-जैसे लोगोंने पाठशालाएँ बढ़ानेकी आवाज उठाई थी, परन्तु स्थिति यह है कि सन् १८५७ में पंजाबमें ३०,००० पाठशालाएँ थीं, और आज वहाँ ५,००० हैं। सरकारने इतनी पाठशालाएँ खत्म कर दीं। सरकारमें योजना-शक्ति है। हममें भी है। परन्तु हमें उसने भ्रममें रखा है। वह हमें स्वराज्यका कौनसा पाठ पढ़ायेगी? धारासभामें जाकर हम स्वराज्यका क्या सबक सीखेंगे? स्वराज्य-शक्ति सीखना चाहते हो तो अरबोंके पास जाओ, बोअरोंके पास जाओ। मैं तो कहता हूँ कि हममें आज भी स्वराज्य-शक्ति है, परन्तु हम सिंह होते हुए भी अपनेको बकरी मान बैठे हैं। जब यह भावना उत्पन्न हो जाये कि जिनमें आत्मा है, उन्हें कौन डरा सकता है, तब सच्ची शिक्षा मिली समझिए। ऐसी तालीम पा लेनेके बाद ही आप दूसरी साधारण शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। आज तो आप ऐसी शिक्षा पा रहे हैं जिससे बेड़ियाँ और अधिक मजबूत हो जायें। डिग्रियोंपर मुग्ध होनेके कारण हम आज कह रहे हैं कि हमें चार्टर चाहिए। हम इन पेड़ोंके नीचे क्यों नहीं पढ़ते? हमें बड़ी-बड़ी शानदार इमारतें क्यों चाहिए? देशमें जहाँ कितने ही मनुष्योंको पूरा खानेको नहीं मिलता, जहाँकी स्त्रियाँ बदलनेको दूसरे कपड़े न होनेके कारण कई दिनोंतक स्नान नहीं कर पातीं, वहाँ आप लोगोंको पढ़ने-लिखनेके लिए बड़े-बड़े महल चाहिए? ऐसा आग्रह हो तो आप असहयोगको भूल जायें। देशके लिए दर्द हो, मेरे अन्दर जो आग जल रही है, वही आपके भीतर जल रही हो तो मकान-वकानकी बात भूल जाइए और जैसा मैं कहता हूँ वैसा असहयोग कीजिए। यदि आप ऐसा करेंगे तो जो प्रतिज्ञा मैंने अन्यत्र[3] की है, इस पवित्र स्थानमें उसे फिर दुहराता हूँ कि हमें एक वर्षमें स्वराज्य मिल जायेगा।

मैं बार-बार कहता हूँ कि स्वराज्य तभी मिलेगा जब आप अपना धर्म पहचानेंगे। जयनाद करनेसे वह नहीं मिल सकता। मैं ये बातें क्यों कह रहा हूँ? मुझे धन-दौलत नहीं चाहिए, मान-सम्मान नहीं चाहिए, भारतका राज्य नहीं चाहिए; मुझे तो भारतकी आजादी चाहिए। लोग मुझसे कहते हैं कि आप दूसरोंसे मिल जाइये। परन्तु मैं मिल नहीं सकता; अपने हृदयके मतके विरुद्ध मैं किसीसे मिलकर एक नहीं हो सकता, अन्तरात्माकी आवाजको धोखा देकर एक नहीं हो सकता; मैं सिद्धान्तकी बातको छोड़कर नहीं मिलना चाहता। और सिद्धान्तकी बात यह है कि स्वराज्य लेना हो, तो

१. (१८६९–१९५९) सुप्रसिद्ध दार्शनिक और लेखक; काशीकी प्रसिद्ध राष्ट्रीय शिक्षा-संस्था काशी विद्यापीठके प्रथम कुलपति; उत्तर प्रदेश कांग्रेसके एक प्रमुख नेता; भारत-रत्नकी उपाधिसे सम्मानित।

२. मुरादाबादमें ९, १० और ११ अक्तूबरको हुए राजनीतिक सम्मेलनमें अध्यक्ष पदसे दिया गया भाषण।

३. सितम्बर १९२० में कलकत्ताके विशेष कांग्रेस अधिवेशनमें।

प्रत्येक आदमीको आजाद होना चाहिए। जितना स्पष्ट आप सामनेके पेड़ोंको देख रहे हैं, उतना ही स्पष्ट जब आपकी अन्तरात्मा प्रत्यक्ष यह अनुभव करे कि यह सल्तनत राक्षसी है, इसकी दी हुई शिक्षा लेना पाप है, लेफ्टिनेंट गवर्नर कितना ही कहें कि हमारा विश्वविद्यालयपर कोई नियंत्रण नहीं है, फिर भी वे अप्रत्यक्ष रूपसे अपना असर उसपर डाल सकते हैं। यदि आपको यह प्रतीति हो जाये कि इस हुकूमतसे शिक्षा प्राप्त करना देशके प्रति बेवफाई है तो आप एक क्षण भी इस विद्यालयमें न रहें, इसके पास भी न फटकें।

मैं कहता हूँ कि आप इस धधकती आगसे दूर हो जाएँ; अन्य सारी जोखिम उठा लीजिये। दूसरे प्रश्न मुझसे न पूछें। यह न पूछें कि विद्यार्थी फिर क्या करें। यह न पूछें कि प्रोफेसर नहीं है, मकान नहीं है, पढ़ेंगे कहाँ। ताकत हो तो अपने-अपने घर चले जाओ। घर ही आपका विश्वविद्यालय है। विनयी बनो, सत्यशील बनो तो तुम्हारा घर ही विश्वविद्यालय है। परन्तु इन प्रासादोंसे (विद्यालयके मकानोंकी ओर इशारा करके) उसकी तुलना करना चाहोगे तो आपका पतन हो जायेगा। इन प्रासादोंके प्रति यदि आपकी आसक्ति है तो आप भ्रष्ट हो चुके हैं। इन महलों और घरोंमें क्या साम्य है? विलायतमें [घरों और विद्यालयोंमें] तो कुछ-कुछ साम्य होता है, परन्तु यहाँ वह इतना भी नहीं; यहाँ तो ये [भवन] निरे लूटके पैसोंसे बने हैं। जो स्वतंत्र नहीं है वह तो ईश्वरका नाम भी सुखपूर्वक नहीं ले सकता। आप आज ही अपनी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं; यदि इस विद्यालयसे निकलकर कोई नारायणका नाम जपे, राम-नाम भजे तो वह भी बहुत बड़ी शिक्षा है, ऐसा विश्वास जिसे हो जाये, वह उपर्युक्त तीनों प्रकारकी स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुका समझिए। भारतके विद्यार्थियोंमें मैं ऐसी रूह फूँक सकूँ, तो मैं उनमें से स्वराज्यकी सेना खड़ी कर सकता हूँ। मैं कहता हूँ कि इस सल्तनतकी हवा जबतक इन पाठशालाओंमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें असर कर रही है, तबतक इन पाठशालाओंको छोड़े बिना कोई चारा ही नही है। परन्तु यदि आपमें आत्मविश्वास न हो तो आप जहाँ हैं, वहीं बने रहें।

यहाँ दो सौ विद्यार्थियोंने विद्यालय छोड़नेकी प्रतिज्ञा ली है। इससे मुझे दुःख हुआ। दुःख प्रतिज्ञा लेनेसे नहीं हुआ। दुःख इस बातसे हुआ कि कहीं बादमें इन विद्यार्थियोंमें अविश्वास पैदा न हो जाये। आप लोग यह मानते हैं कि गांधी कोई जादूगर है, वह पलक मारते ही विद्यालय भी बना देगा। यह आपकी भूल है। तब तो मैं आपसे कहता हूँ कि अनारम्भ प्रथम बुद्धि-लक्षण है। आप लोग इतना सोचे-विचारे बिना विद्यालय छोड़ेंगे तो मैं पापका भागी बनूंगा। मैं तो कहता हूँ कि आप विद्यालय छोड़कर घर बैठें, इस आगसे बचें। आपमें आत्म-विश्वास होगा, तो आप आज ही विद्यालय भी बना सकेंगे। परन्तु जैसा पण्डित जवाहरलालने और अलीगढ़में मुहम्मद अलीने कहा है, बिना किसी शर्तके विद्यालय छोड़ें। सात हजार बार गरज हो, तो छोड़ें, नहीं तो वापस चले जायें। और छोड़कर वापस जाना हो, तो छोड़े ही नहीं। यदि हम अपने धर्मका पालन न करें, तो हमारा देश अपना नहीं बचता। आपकी प्राचीन संस्कृति और पवित्रताका नाम लेकर मैं आपसे जो कह रहा हूँ, उसका

खयाल करें। मैं बार-बार कहता हूँ कि जरा भी अन्देशा हो तो मालवीयजीकी ही बात मानें। उन्होंने यह विश्वविद्यालय बनानेमें अपनी उम्र खपा दी है। पर जैसे सामनेकी वस्तु साफ दीखती है, वैसे ही अन्तरात्मामें आपको यह स्पष्ट प्रतीति हो कि यहाँ रहना पाप है तो आप विद्यालय छोड़ दें। 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्' हमारा शास्त्र-वचन है। आप सोलह वर्षसे ऊपरके हो गये, इसलिए जो मैंने आज आपसे कहा है वह कहनेका मुझे अधिकार है। यही तालीम मैंने अपने पुत्रोंको दी है और मैंने उनका कुछ नहीं बिगाड़ा। अन्तमें आपसे कहता हूँ कि काशी विश्वनाथ आपको निष्कलुष बनायें, धैर्य दें, तपश्चर्या दें और वह सभी कुछ दें जिसकी आपको आवश्यकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५–१२–१९२०

२३. भाषण : बनारसकी सार्वजनिक सभामें[1]

२६ नवम्बर, १९२०

मैं अशक्त होनेके कारण खड़ा होकर नहीं बोल सकता, इसलिए आप लोग क्षमा करें। कुछ दिन हुए, मौलाना अबुल कलाम आजाद[2] और हम यहाँ आये थे। उस समय हमने आपसे कुछ कहा था। उसी कामके लिए हम आज फिर आये हैं। हम इस वक्त खासतौरसे विद्यार्थियोंसे कुछ कहना चाहते थे पर आप लोगोंकी मुहब्बत इतनी अधिक थी कि यहाँ आना ही पड़ा। आप लोगोंसे हमें यह कहना है कि हमारी सल्तनत राक्षसी सल्तनत है। हमारा फर्ज है कि या तो उसे दुरुस्त करें या मिटा दें। हमारी हालत बड़ी खराब है। आजतक हम लोगोंने सिर्फ बातोंसे काम लिया है। अब हरएक स्त्री-पुरुषका फर्ज है कि वह काम करे। आप लोग क्या कर सकते हैं? अगर आप लोग इस सल्तनतको राक्षसी सल्तनत नहीं समझते तो हम उसका कोई सबूत नहीं देंगे। हम इसे बहुत बुरी मानते हैं और इसे मिटा डालना या सुधारना जरूरी समझते हैं। अगर इसने पश्चात्ताप नहीं किया, अगर पंजाबके प्रति न्याय और खिलाफतके प्रति इन्साफ नही किया तो इसका साथ नहीं दिया जा सकता। इसको हम लोग दुरुस्त कैसे कर सकते हैं? हमारी कांग्रेस, मुस्लिम लीग, सिख लीग सबने इसको दुरुस्त करनेका तरीका बतला दिया है। यह तरीका असहयोगका या बाअमन तर्के-मवालातका है; अर्थात् न सरकारसे मदद लें, न सरकारको मदद दें। इसके साथ असहयोग किस

१. यह सभा बाबू भगवानदासकी अध्यक्षतामें टाउन हॉलके मैदानमें हुई थी। उपस्थित लोगोंमें पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद और देशबन्धु चित्तरंजन दास भी थे।

२. १८८९–१९५८; कांग्रेसी नेता तथा **कुरान**के प्रसिद्ध व्याख्याकार; भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके दो बार निर्वाचित अध्यक्ष; भारत सरकारके शिक्षा-मन्त्री।

तरह करें? पहले हम खिताबोंको छोड़ दें। हमारे लिए खिताब हराम हैं। फिर हमें अदालतें छोड़नी चाहिए। इन्साफ करना हमारे ही हाथमें रहना चाहिए। ये अदालतें सरकारकी जड़ मजबूत करती हैं। वकीलोंको वकालत छोड़ देना चाहिए। अगर उनसे हो सके तो वकालत छोड़नेके बाद देशकी सेवा करें। अगर सेवा न हो सके तो वकालत छोड़ना ही काफी सेवा है। उनको दूसरा धन्धा करना चाहिए। माँ-बापको चाहिए कि मदरसों और विश्वविद्यालयोंसे अपने सब लड़कोंको हटा लें। जो लड़के १६ वर्षके हो गये हों उनको वे मित्रकी तरह सलाह देकर हटा लें। उनसे कहना चाहिए कि तुम वहाँ न पढ़ो; तुम्हें ऐसी जगह तालीम लेनी चाहिए जहाँ तुम आजाद रह सको। जहाँ सरकारका झंडा हो, वहाँ तालीम नहीं लेनी चाहिए।

कांग्रेसने यह भी कहा है कि कौंसिलोंमें नहीं जाना चाहिए। ३० तारीखको कौंसिलोंका चुनाव है। यह इम्तहानका दिन है। पहले हमें उम्मीदवारोंसे कहना चाहिए कि बैठ जाइए। अगर वे न मानें तो वोटरका फर्ज है कि वह उस रोज घरमें बैठा रहे और वोट न दे। २९की राततक उम्मीदवारोंको समझाना चाहिए। पैर छू-छू कर उनसे कहना चाहिए कि आप कौंसिलके लिए खड़े न हों। अगर वे आपकी बातें न मानें और कौंसिलमें जाना चाहें तो आपका फर्ज है कि उन्हें कोई मदद न दें और उनसे काम न लें। फिर, सिपाहीगिरी करना हराम है। आप लोग भर्तीके सिपाही न हों; आप लोगोंको हिन्दुस्तानकी आजादीका सिपाही होना चाहिए।

दूसरा मसला स्वदेशीका है। जो कपड़ा यहाँ तैयार हो उसीको इस्तेमाल करना चाहिए। हमारी माताओंको अपने घरोंमें चरखा दाखिल करना चाहिए। जुलाहोंसे बुनवाकर कपड़े पहनना चाहिए। मैं हिन्दुस्तानके सभी भाइयों और बहनोंसे कहता हूँ कि स्वदेशी तुम्हारा फर्ज है। खद्दर पहनो; यही करना तर्के-मवालात है। तलवार मत खींचो। उसको मियानमें रखो। तलवारसे हमारा ही गला कटेगा। हिन्दू और मुसलमानोंमें जुबानी नहीं, दिली एकता होनी चाहिए। अगर ऐसा हो तो हम एक सालमें स्वराज्यकी स्थापना कर सकते हैं। खिलाफतके मसलेको और पंजाबके मसलेको तय करना आपके हाथमें है। आप इतने लोग यहाँ जमा हैं, मैं अदबसे पूछता हूँ कि आपने क्या किया। क्या आपने अपने लड़कोंको स्कूल-कालेजोंसे हटा लिया? अगर आपका लड़का बड़ा है तो आपने उसे उसका धर्म बता दिया? इस काममें उसे आपने आशीर्वाद दे दिया? अगर आपने ऐसा नहीं किया है तो आप यहाँ क्यों जमा हुए हैं। लड़कोंको चाहिए कि मदरसोंसे हट जायें, बड़ोंको समझायें। क्या आपने निश्चय कर लिया है कि वोट न देंगे? क्या आपने स्वदेशीका व्रत लिया है? सबके साथ इन बातोंका सम्बन्ध है। सरकारकी फौजमें भरती बन्द होनी चाहिए। "हमको अपने मुकदमे लेकर इन्साफके लिए अपने बुजुर्गोंके पास जाना चाहिए। इससे सरकारकी "प्रैस्टीज" (इज्जत-रुतबा) जाती रहेगी। उसी समय सरकारको पता लग जायेगा कि अब उसके एक लाख गोरे ३० करोड़पर हुकूमत नहीं कर सकते। अभीतक हमें आपसमें लड़ा-लड़ा कर, हमें फुसला कर, मदद देकर, मदद लेकर सरकार राज्य कर रही है। "यथा राजा तथा प्रजा"की पुरानी कहावत है। इससे ज्यादा सत्य

"यथा प्रजा तथा राजा" है। अगर हम साफ दिलसे काम करेंगे, और पवित्र भावसे ईश्वरके चरणोंमें अपनेको अर्पित करेंगे, अगर इस प्रकारका सच्चा बलिदान देंगे तो हमें स्वराज्य फौरन मिल जायेगा। यही स्वराज्य रामराज्य है।

आज, २७-११-१९२०

२४. पत्र : डा० मुहम्मद इकबालको

[२७ नवम्बर, १९२० के पूर्व][१]

प्रिय डा० इकबाल,[२]

मुस्लिम नेशनल युनीवर्सिटी[३] आपको पुकार रही है। यदि आप उसका उत्तरदायित्व ले लें, तो मुझे विश्वास है कि वह आपके सुसंस्कृत नेतृत्वमें उन्नति करेगी। हकीम अजमलखाँ[४] और डा० अन्सारी[५] तथा निस्सन्देह अलीभाई भी यही चाहते हैं। मेरी कामना है कि आप इस आमन्त्रणको स्वीकार कर सकेंगे। आपकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए नवीन जागृतिके अनुरूप, उपयुक्त दक्षिणा देनेका आश्वासन आसानीसे दिया जा सकता है। कृपया अपना जवाब मुझे 'मार्फत पंडित नेहरू, इलाहाबाद'के[६] पतेपर भेजिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७३६१ ए) की फोटो-नकलसे।

१. डा० इकबालने २९ नवम्बर, १९२० के अपने जवाब (एस० एन० ७३३०) में लिखा था कि गांधीजीका पत्र दो दिन पूर्व मिला था।

२. १८७३-१९३८; प्रख्यात उर्दू-फारसीके कवि; कैम्ब्रिज तथा म्यूनिख विश्वविद्यालयोंसे पी० एच० डी० किया; राष्ट्रीय नेता; १९३१-३२ में दूसरी और तीसरी गोलमेज परिषद्के प्रतिनिधि।

३. अलीगढ़में।

४. १८६५-१९२७; प्रसिद्ध हकीम और राजनीतिज्ञ जिन्होंने खिलाफत आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया; १९२१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

५. डा० मुख्तार अहमद अन्सारी (१८८०-१९३६); राष्ट्रवादी मुसलमान नेता; इंडियन मुस्लिम लीगके अध्यक्ष, १९२०; अध्यक्ष, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १९२७-२८।

६. गांधीजी २८ नवम्बर, १९२० को इलाहाबाद पहुँचे थे और वहाँ चार दिन ठहरे थे।

२५. पत्र : हकीम अजमलखाँको

[२७ नवम्बर, १९२० के पूर्व][1]

प्रिय हकीम साहब,

पीपल महादेवके पासकी मस्जिदके बारेमें क्या झगड़ा है? क्या यह सुलझाया नहीं जा सकता? मैंने डा० इकबालको अलीगढ़के बारेमें लिख दिया है। मैं चाहता हूँ आप भी लिख दें।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३६१ ए) की फोटो-नकलसे।

२६. भाषण : विद्यार्थियोंकी सभा, बनारसमें[2]

२७ नवम्बर, १९२०

मैं यहाँ जो दृश्य देख रहा हूँ उससे मुझे अलीगढ़का स्मरण हो आता है। विद्यार्थियोंसे जो-कुछ मुझे कहना था सो मैंने अलीगढ़में कह दिया।[3] मैं अपनी जिम्मेदारी जानता था। मैं जानता था कि अलीगढ़का विद्यालय यहाँसे प्राचीन है। मुझे यह भी मालूम था कि मुसलमान विद्यार्थियोंको अलीगढ़से कितनी मुहब्बत है। मैं यह भी जानता था कि एक महान मुसलमानने उसे स्थापित किया है।[4] तब भी निडर होकर जो-कुछ मुझे कहना था, मैंने कहा। मेरा दिल रो रहा था कि मैं ऐसा क्यों कर रहा हूँ। जब मैं आप लोगोंको देखता हूँ, बड़ी-बड़ी इमारतें देखता हूँ तो मेरा हृदय रोता है। लेकिन आज ज्यादा रो रहा है, क्योंकि विश्वविद्यालयके प्राण मेरे पूजनीय बड़े भाई मालवीयजी हैं। मैं उनको छोड़कर कोई काम नहीं करता। जबसे मैं हिन्दुस्तान वापस आया तबसे यही खयाल था कि उन्हींके साथ अपना जीवन व्यतीत करूँगा। ऐसा मेरा सम्बन्ध अलीगढ़से नहीं था। अलीगढ़का प्राण कौन है सो मैं नहीं जानता। और इस विश्वविद्यालयके आँगनमें बैठा हुआ मैं इस भयसे काँप रहा हूँ कि कहीं मेरे मुँहसे कोई ऐसी बात न निकल जाये जिससे मेरे आदरणीय भाईको कोई दुख हो। किन्तु मेरा धर्म मुझे सिखाता है और यही उनका भी धर्म है कि जिस

१. डा० इकबालको पत्र लिखनेके उल्लेखसे लगता है कि यह पत्र भी अनुमानतः उसी दिन लिखा गया था।

२. इसके एक दिन पहले गांधीजीने विश्वविद्यालयके अहातेके बाहर विद्यार्थियोंकी एक सभामें भाषण दिया था (देखिए "भाषण: विद्यार्थियोंकी सभा, बनारसमें", २६-११-१९२०); लेकिन मालवीयजीके आग्रहपर उन्होंने युनिवर्सिटी हालमें विद्यार्थियोंकी सभामें फिर भाषण दिया। अध्यक्षता स्वयं मालवीयजीने की थी।

३. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ३६७।

४. सर सैयद अहमद इसके संस्थापक थे।

बातको मैं धर्म समझता हूँ उसके लिए प्यारीसे-प्यारी वस्तुको भी त्याग दूँ। मैं आज ऐसा ही कर रहा हूँ। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि मेरे भाई और मुझमें बड़ा मतभेद है, पर इसके कारण मेरा पूज्यभाव थोड़ा भी कम नहीं है। आपसे भी मेरी प्रार्थना है कि यदि आप मेरी भी रायके हों तो भी उनके प्रति अपने पूज्यभावमें कदापि कमी न करें।

[किसी भी परिस्थितिमें] विद्यादान लेना यदि आप पाप न समझें, अधर्म न मानें तो आप कभी विद्यालयोंको न छोड़ें। मैं तो अधर्मीके हाथसे स्वर्ण-दान भी नहीं ले सकता। इसी तरह जहाँ उसकी ध्वजा फहराती है, वहाँ विद्या लेना दोष समझता हूँ। वहाँ पर 'गीता' पढ़ना, कला-कौशल तक सीखना भी मैं पाप समझता हूँ। सच तो यह है कि मैं इस सल्तनतमें ही नहीं रहना चाहता। अगर एकदम त्याग सकता तो त्याग देता। लेकिन तब मैं यहाँ कैसे आता और यह पैगाम भी आपको कैसे दे पाता। इसी कारण इस असह्य स्थितिमें भी जी रहा हूँ। मैं इसको रावण-राज्य समझता हूँ तुलसीदासजीने ऐसे राज्यमें रहना पाप बतलाया है। मैं निस्संकोच यह कह सकता हूँ कि मैं २४ घंटे एक ही जप करता हूँ कि इसे कैसे हटा सकूँ या दुरुस्त कर सकूँ। इसीसे मैं यहाँ हूँ। विद्यार्थियोंसे मैं कहता हूँ कि इस सल्तनतसे सहकार छोड़ना ही हमारा परम धर्म है। जितना आपसे सम्भव है, उतना कीजिए। आपके लिए सबसे बड़ी चीज यही है कि यहाँ जो विद्या-दान आपको मिलता है, उसका त्याग कर दें। मैं सर्व सामान्य सहकारके बारेमें नहीं कहता। विद्यार्थी जो विशेष सहकार देते हैं, वही देना बन्द करनेको कहता हूँ। यदि आपका इस सल्तनतके बारेमें वही खयाल हो जो मेरा है तो अपना धर्म समझकर इसे छोड़ दीजिए। इसमें कोई शर्तकी बात नहीं है कि फिर विद्या किस प्रकार मिल सकेगी। मैं तो आपको धर्म बताता हूँ। सबसे यही कहता हूँ कि दूसरे स्थानपर चाहे विद्या मिलनेका प्रबन्ध हो चाहे न हो, इसे आप छोड़ दें। आप अगर चाहें जो इसी किस्मकी विद्या ले सकते हैं, लेकिन सरकारकी छाया त्याग दें। मै यह कहना चाहता हूँ कि यह आजीविकाकी बात नहीं है, मनुष्यत्वकी बात है। मनुष्यत्वके बाद ही आजीविकाकी बात आ सकती है। स्वतन्त्रता धर्म है। धर्मके पीछे देह है। देहके लिए धर्म नहीं छोड़ा जा सकता, लेकिन धर्मके लिए देह छोड़ी जा सकती है। हमें आर्थिक, मानसिक, आत्मिक किसी प्रकारकी स्वतन्त्रता नही है। आत्मिक नहीं, क्योंकि मुसलमानोंको धर्मके हुक्मपर चलनेसे रोका जा रहा है, फुसलाया जा रहा है कि इसमें [धर्मके हुक्मपर न चलनेका] दोष नहीं है। धार्मिक खयालात रोके जाते हैं, अर्थात् आत्मिक स्वतन्त्रता भी नहीं है। यहाँपर करोड़ोंके पास न वस्त्र है न अन्न। ऐसी अवस्थामें आर्थिक स्वतन्त्रता असम्भव है। ऐसी हालतमें जो-कुछ लाभ भी है उसे छोड़ देना चाहिए। कई बातोंका हमें लालच दिया जाता है, फायदा दिखलाया जाता है। इस विश्वविद्यालयमें भी कई बातोंकी सुविधा है। इंजीनियरीकी तालीम मिलती है; और बातोंकी भी आसानी है। किन्तु हिन्दुस्तानके लाभके लिए इसका बलिदान करना चाहिए। यदि ऐसा थोड़ा-थोड़ा लाभ हम स्वीकार करते रहे तो यह राज्य चलता रहेगा।

हिन्दू धर्म असहयोग सिखलाता है। कुछ लोगोंका खयाल है कि तलवार उठानी चाहिए, लेकिन सब लोगोंने देख लिया है कि फिलहाल हममें वैसी ताकत नहीं है। असहयोग ही एकमात्र उपाय है जिससे या तो स्वतन्त्रता मिल जायेगी या सल्तनतकी खराबियाँ हट जायेंगी। मुझे विश्वास है कि जो-कुछ मालवीयजी कर रहे हैं उसे अपना धर्म समझकर कर रहे हैं। मतभेदके कारण मेरा उनका परस्परका स्नेह कम नहीं हो सकता। हमारी उनकी मैत्री कम नहीं हो सकती और मुझे आशा है कि उनके प्रति आप लोगोंका पूज्य भाव भी कभी कम न होगा। आप ऐसा न समझिएगा कि आपमें बुद्धि ज्यादा है और उनमें कम, या आपमें देश-भक्ति ज्यादा है, उनमें कम। सब आदमियोंका एक ही विचार होना असम्भव है। यदि हिन्दुस्तानके प्रत्येक स्त्री-पुरुषका एक ही भाव हो जाये तो स्वतन्त्रता एक दिनमें मिल सकती है। इतिहाससे मालूम होता है कि स्वतन्त्रता बड़े कष्टसे मिलती है। यह समझना अनुचित होगा कि बिना इस कष्टको उठाये हमें स्वतन्त्रता मिल जायेगी। मेरी प्रार्थना है कि आप अपनी सभ्यता और नम्रता न छोड़िएगा। यदि आपको मेरी बातें पसन्द हों तो [ठीक है, किन्तु] जो विद्यार्थी आपके साथ न हों उनसे घृणा या द्वेष न कीजिएगा, उन्हें न सताइएगा। अपना काम इस तरहसे कीजिए कि जो शक लोगोंके मनमें हो वह निकल जाये। विश्वविद्यालय छोड़नेके बाद आप धर्माचरण ज्यादा करें तो मालवीयजी-का आशीर्वाद लेकर विश्वविद्यालय छोड़ें। जो इसे छोड़नेके बाद मुल्ककी सेवा न करेंगे, जो स्वार्थी, व्यसनी हो जायेंगे, उनके कारण मुझे बड़ा ताप होगा। उनको भी पाप होगा और मुझे भी पाप लगेगा। मेरी प्रार्थना है कि जो-कुछ आपको करना हो स्वयं सोचकर कीजिए। आपको यदि किसी दूसरेकी सलाह ही माननी है, यदि आपका दिल कुछ साफ नहीं बतलाता तो आप पंडितजीकी ही सलाह मानिए, उनकी सलाहको प्रथम स्थान दीजिए। अगर आपका दिल स्वीकार करे तो आप अपना धर्म समझ कर असहयोग कर सकते हैं। न आप मेरी सलाहपर भरोसा कीजिए न उनकी सलाहपर। मेरे भाई साहब आपको अवश्य आशीर्वाद देंगे, एक क्षणके लिए भी आपको न रोकेंगे।

अब मैं यह कहना चाहता हूँ कि असहयोगमें विद्यार्थियों द्वारा यह त्याग मैंने क्यों रखा है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दुस्तानमें जो सल्तनत चल रही है, वह जो अत्याचार कर रही है उसके कायम रहनेका बड़ा भारी सबब यह है कि हमको उसकी तालीमके असरने मुग्ध कर लिया है। इसके यहाँ दाखिल होनेके पहले हम स्वाश्रयी थे, जैसे पराधीन आज हैं, वैसे नहीं थे। इस शिक्षा-प्रणालीसे हम और भी पराधीन हो गये। लेकिन अभी मैं इस तालीमके ढंगकी बात नहीं करता। मेरा इस वक्त यह कहना नहीं है कि ढंगमें त्रुटियाँ हैं। यह तो मेरे भाई साहब भी मानते हैं कि ऐसी त्रुटियाँ हैं, जिन्हें निकाला जाना चाहिए। मैं [त्रुटियोंके कारण] इन शिक्षण-संस्थाओंको छोड़नेका नहीं कहता। मैं अभी यह भी नहीं कहता कि क्या ढंग होना चाहिए। इसका सबब यह है कि जिस सल्तनतको हम राक्षसी समझते हैं, जिसने पंजाबमें इतना अत्या-चार किया, उसकी छायामें शिक्षा लेना मैं अधर्म समझता हूँ। अगर ऐसा ही आपको

भी निश्चय हो तो आप इसको छोड़ दीजिए। लेकिन अगर आप इस सल्तनतको राक्षसी न समझें जिसने पंजाबपर इतना अत्याचार किया, मुसलमानोंको धोखा दिया, हिन्दुस्तानसे दगा किया उससे . . .[1] विद्यार्थियोंको भी कुर्बानी करनी चाहिए। और जो-कुछ मुझे कहना था मैं कल कह चुका हूँ। मैं इस पवित्र स्थानमें अपने पूजनीय भाईके सामने सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि जो कोई इस शिक्षणको छोड़ना चाहता है, वह एक बड़ा भारी काम कर रहा है। इसीमें स्वतन्त्रता है। आप अपनी सभ्यता मत छोड़िएगा, किसीसे घृणा मत कीजिएगा। बाहर जाकर कष्ट बर्दाश्त कीजिए। मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि मैं आपके लिए कोई प्रबन्ध नहीं कर सकता। अगर मैं यहाँ आपके साथ रह सकता तो प्रबन्ध कराना कोई मुश्किल नहीं था। लेकिन मैं आपको कोई लालच नहीं देना चाहता। मैं सिर्फ इतना कह देना चाहता हूँ कि बाहर जाकर आप उद्धत न हों, स्वेच्छाचारी न बनें। संयम आपका धर्म है। सहिष्णुता न छोड़िएगा। शान्त चित्तसे सब काम कीजिएगा। माता-पितासे पूछिए। अगर आपका दिल पक्का हो गया है और वे नहीं मानते तो उनसे दलील कीजिए। अगर आप उनकी बात ठीक मानते हों तो उनकी बात स्वीकार कीजिए। अगर आप उनकी बात गलत मानते हों और अपनी आत्माकी बात सच मानते हों तो फिर उसे स्वीकार कीजिए। आप विनयपूर्वक उनकी बातको अस्वीकार कर सकते हैं। ऐसा हिन्दू धर्म कहता है। यह आपकी परीक्षा है। अपने विनयसे असहयोगको सुशोभित कीजिए, स्वेच्छाचारी न बनिए। अपनी प्रतिज्ञाको भंग न कीजिए। दो बातें याद रखिएगा, एक तो असहयोगमें आपकी विनयकी शिक्षा निहित है। दूसरी बात यह कि हमें बड़े आत्म-बलिदानकी आवश्यकता है। गिरी हुई हालतमें हम लोग नामर्द बन गये हैं, पराधीन बन गये हैं, रोटीकी बात सोचते हैं। इसका प्रबन्ध करना कठिन है। अगर आप बलिदान करनेको तैयार हैं तो [शिक्षण-संस्थाएँ] छोड़िए, नहीं तो नहीं। ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि वह आपको स्वच्छ भाव दे; आपको बल दे। आप अपने अन्तःकरणकी ही आवाजको स्वीकार करें। मैं कल चला जाऊँगा। जो लोग असहयोग करना चाहते हैं, जो ऐसा करनेकी बहुत दिनोंसे सोच रहे हैं उनको अपने अध्यापकोंसे बात कर लेनी चाहिए। मेरे भाई, मालवीयजी, से बातें करनी चाहिए। उनसे आशीर्वाद पाकर अपना काम कीजिए। जिन्होंने लिखकर नाम दे दिया है उनको अपने इरादेपर पक्का रहना चाहिए; और [इस प्रकार] जो लोग आना चाहें वे ही अपना नाम दें।

आज, ३०-११-१९२०

१. यहाँ मूलमें कुछ शब्द मिट गये हैं।

२७. भाषण: बनारसकी सार्वजनिक सभामें[1]

२७ नवम्बर, १९२०

श्री गांधीने . . . हिन्दूधर्मकी दृष्टिसे गोरक्षाका महत्व समझाया और फिर कहा कि केवल असहयोग ही स्वराज्य हासिल करानेमें आपकी मदद कर सकता है। स्वराज्य आपको गोरक्षाकी शक्ति देगा। उन्होंने कहा कि स्वदेशी चीजोंका इस्तेमाल और विदेशमें बनी चीजोंका बहिष्कार राष्ट्रीय और भौतिक प्रगतिके लिए जरूरी है। उन्होंने व्यापारियोंसे विदेशी मालका व्यापार न करनेका आग्रह किया। गांधीजीने उनसे अपील की कि वे देशकी गम्भीर स्थितिको अच्छी तरह समझें और निर्णय करें कि देशका प्रशासन अपने हाथमें लेनेके सर्वोत्तम उपाय क्या होंगे। हिन्दू-मुस्लिम एकतापर बोलते हुए उन्होंने कहा कि इन दो प्रमुख जातियोंमें प्रेम और सद्भाव ही राष्ट्रकी बेहतरीका एकमात्र रास्ता है।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २९-११-१९२०

२८. बहनोंसे

डाकोरजीसे[2] मैंने धन माँगना आरम्भ[3] किया है। सौभाग्यसे वहाँ भी उसका प्रारम्भ बहनोंसे ही हुआ। बहनोंमें जिस बहनने मुझे अपने गहने दिये वह दाल दलनेवाली एक मजदूर स्त्री थी। जब उसने अपनी कानकी बाली निकालकर मुझे दी तभीसे मैं इस निश्चयपर पहुँच गया हूँ कि हिन्दुस्तानकी स्त्रियाँ शान्त असहयोगकी पवित्रताको समझ गई हैं। इसके उपरान्त जो अनुभव हुए वे तो अलौकिक ही कहे जा सकते हैं। अहमदाबादकी लड़कियोंने अपनी चूड़ियाँ, अंगूठियाँ और गलेकी जंजीर उतार डाली; पूनामें तो गहनोंकी बरसात हुई। बेलगाँव, धारवाड़, हुबलीमें भी यही दृश्य दिखाई दिया। दिल्लीमें मुसलमान बहनोंने भी, जो पर्देमें थीं, अपने गहने, नोट और धनराशि दी।

हिन्दुस्तानकी बहनें जागृत हो जायें तो स्वराज्यको कौन रोकेगा? स्त्रियाँ धर्मकी रक्षा करती आई हैं। उन्होंने ही देश स्वतन्त्र बनानेवाले वीर पुरुषोंको जन्म दिया।

१. यह सभा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके उप-कुलपति आनन्दशंकर बापुभाई ध्रुवकी अध्यक्षतामें रामघाटके नजदीक हुई थी।

२. गुजरातका एक तीर्थस्थान।

३. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ४१६-१९।

स्त्रियोंने पवित्रताका पालन करते हुए धर्मको अक्षुण्ण रखा है। स्त्रियोंने ही अपने सर्वस्वका बलिदान करके राष्ट्रकी रक्षा की है। ये स्त्रियाँ जब हिन्दुस्तानके दुःखको समझेंगी तब यह दुःख कितने दिन टिक सकेगा?

जिन स्त्रियोंमें मैं जागृति देख रहा हूँ वे पढ़ी-लिखी नहीं हैं; तथापि वे ज्ञानी हैं। वे धर्म-कर्मको अच्छी तरह समझती हैं। शिक्षित-वर्ग जो बात समझनेमें बहुत समय लगा रहा है, उसे ये स्त्रियाँ अपनी प्रेरणाशक्तिके द्वारा संकेतमें ही समझ गई हैं। स्वराज्य अर्थात् रामराज्य, यह बात समझनेमें उन्हें देर नहीं लगी।

बहनोंके सम्मुख समस्त बातें स्पष्ट रूपसे रख दी गई हैं। दुःख किस बातमें है, यह बात उन्हें समझाई गई है। दुःखका उपाय असहयोग है, यह भी उन्हें बताया गया है। अपने-अपने धर्मोंको जानकर उसका दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए स्त्रियोंने हिन्दू-मुसलमानोंमें परस्पर एकता बनाये रखनेमें मदद करनेकी बातको अपना कर्त्तव्य माना है।

स्त्रियोंने इस वस्तुको जिस उत्साहसे और अच्छी तरह सोच-समझकर आरम्भ किया है अगर वे उसी उत्साहसे उसे जारी रखेंगी तो मुझे विश्वास है कि उनके द्वारा दिये गये फाजिल गहनोंसे ही सारे हिन्दुस्तानकी शिक्षाकी व्यवस्था हो सकती है। जिन बहनोंने गहने भेंट किए हैं सो इस शर्तके साथ कि स्वराज्य मिलनेमें जितना समय लगेगा उस समयतक वे वैसे गहनोंकी फिरसे माँग न करेंगी और उनके बिना ही अपना काम चलायेंगी। इस तरह स्त्रियोंके शृंगारके थोड़ेसे त्यागसे हिन्दुस्तानके शिक्षण और स्वदेशीके प्रचारका बन्दोबस्त हो सकता है। फलतः मुझे उम्मीद है कि डाकोरजीसे जिस महायज्ञका सूत्रपात हुआ है उसे बहनें कायम रखेंगी और उनके पति अथवा सगे-सम्बन्धी उनके इस पवित्र कार्यमें बाधक नहीं होंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २८–११–१९२०

२९. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

२८ नवम्बर, १९२०

दीपक[1] चाहता है कि उसे कुछ समयके लिए अंग्रेजीकी पढ़ाईसे मुक्ति दे दी जाये। इस बातसे मेरी नजरोंमें तो यह लड़का बहुत चढ़ गया है। इस सम्बन्धमें अगर तुम्हारे मनमें भी कोई एतराज न हो तो मैं तो चाहूँगा कि दीपकको उसकी मरजीके मुताबिक करने दिया जाये। ध्यान रखूँगा कि वह कभी आगे चलकर अंग्रेजी भी पढ़ ले। लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि थोड़े समयके लिए अंग्रेजी छोड़ देनेसे उसका कोई नुकसान नहीं होगा। तुम जानती होगी कि किसी विद्यार्थीको जब भाषाकी पकड़ आ जाती है, वह भाषा-शास्त्रमें पारंगत हो जाता है; और तब

१. सरलादेवीका पुत्र।

कोई भी नई भाषा सीख लेना उसके लिए बहुत आसान हो जाता है। मैक्समुलरने इसी तरह सोलह भाषाएँ सीखी थीं। एक बार भाषाशास्त्रपर काबू पा लेनेके बाद अन्य कोई भी नई भाषा सीखनेके लिए कुछ मूल शब्द याद कर लेना ही काफी होता है। इसलिए तुम खुशी-खुशी अपनी स्वीकृति दे दो। दीपक बड़ा होनहार और प्यारा बच्चा है। जबतक वह किसी-न-किसी काममें व्यस्त रहता है और अपनी चिन्तन-शक्तिका विकास करता जाता है तबतक मैं पढ़ाई या और किसी बातका कोई बोझ उसपर नहीं डालूँगा। इसपर खूब सोच-विचारकर अपना पक्का निर्णय सूचित करो। याद रखो कि अपने बच्चोंके शिक्षकपर भरोसा करना सदा ही निरापद होता है। शिक्षकोंके चुनावमें जितनी सावधानी बरतनी हो, बरती जाये; परन्तु एक बार शिक्षकका चुनाव कर लेनेपर बच्चेकी शिक्षाका सवाल पूरी तरह उसीपर छोड़ देना चाहिए।

बनारसमें[१] समय बहुत अच्छा गुजरा। परिणाम क्या होगा, यह नहीं कह सकता। वातावरण जरूर साफ हुआ है और मालवीयजी यदि पूरी तरह नहीं तो पहलेसे अधिक शान्त अवश्य हैं।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

३०. देवदास गांधीको लिखे पत्रका अंश

२८ नवम्बर, १९२०

. . .काशीमें दो दिन[२] बिताये। काफी अनुभव हुआ। पण्डितजीके[३] साथ कटुता आनेका जरा भी भय नहीं था। दूसरोंको जो अन्देशा था, वह भी मिट गया होगा। विद्यार्थियोंसे खूब बातें हुई। अब यह देखना है कि परिणाम क्या होता है। देशमें बेहद कमजोरी है। असहयोग ही देशको सबल बनायेगा।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

१. गांधीजी २५ से २७ नवम्बरतक बनारसमें थे।

२. २६ व २७ नवम्बर।

३. पं० मदनमोहन मालवीय।

३१. पत्र : दीपक चौधरीको

२८ नवम्बर, १९२०

अब तो तुम्हें गुजरातीमें ही लिखूँगा। तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें अब अंग्रेजी छोड़नी चाहिए या नहीं, इस बारेमें माताजीकी राय पुछवाई है। तुम अध्ययनशील बनो तो अभी अंग्रेजी छोड़ देनेमें कोई अड़चन न होगी। तुम अपने शरीर, अपने मन और अपनी आत्माको सँभालो। शरीरके लिए कसरत, खेल-कूद, अच्छा भोजन और प्रसन्न-चित्त; मनके लिए वाचन और मनन; आत्माके लिए अन्तः शुद्धि और इसके लिए जल्दी उठना, ध्यानपूर्वक प्रार्थनामें तल्लीन होना और गीताध्ययन। हमेशा इतना मनन करना: मैं सच ही बोलूँगा, सोचूँगा और करूँगा, मैं सबपर प्रेम रखूँगा, मैं अपनी सब इन्द्रियोंपर काबू करूँगा, दूसरेकी चीजपर बुरी नजर नहीं डालूँ। मैं कुछ भी अपना नहीं मानूँगा, परन्तु सब कुछ ईश्वरार्पण करूँगा। ऐसे चिन्तनसे हृदय-शुद्धि होगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

३२. पत्र : हरकिशनलालको

२८ नवम्बर, १९२०

प्रिय हरकिशनलाल,[1]

मैं यात्रापर निकल गया था, इसलिए तुम्हारा पत्र मेरे पीछे-पीछे भटकता हुआ अब आकर मिला है। तुम्हारी भविष्यवाणी[2] सच्ची निकले तो उसमें कुछ दोष तुम्हारा भी होगा। ऐसा तो नहीं हो सकता कि तुम चुपचाप बैठे रहकर हिंसाकी जड़ोंको फैलने दो और फिर कहो, 'देखो, मैं कहता था सो सच निकला।' परन्तु तुम्हारी भविष्यवाणी सही निकले या गलत, असहयोग तो तबतक चलता ही रहेगा जबतक वह अपनी ही हिंसाके भारसे दबकर न रुक जाये। इसलिए तुमसे अपेक्षा यही की जाती है कि तुम अपनी भविष्यवाणी गलत साबित करनेके लिए जी-तोड़ कोशिश करोगे।

१. लाला हरकिशनलाल; पंजाबके एक प्रमुख व्यवसायी और राष्ट्रवादी नेता, जिन्होंने गांधीजीके असहयोग आन्दोलनका विरोध किया था और जो बादमें मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंके लागू होनेपर पंजाब मन्त्रिमण्डलमें मन्त्री बने थे।

२. हरकिशनलालने यह भविष्यवाणी की थी कि गांधीजीका असहयोग आन्दोलन असफल होगा।

खिलाफतके मामलेमें हमारी माँग यह है: युद्धके आरम्भ होनेपर टर्कीके पास जितना इलाका था, वह सब उसे लौटा दिया जाये; लेकिन साथ ही अरबों और आर्मीनियावासियोंको आत्म-निर्णयकी पूरी-पूरी गारंटी दी जाये। जहाँतक पंजाबका सम्बन्ध है, वहाँ जो-कुछ हुआ, उसका पंजाबकी माँगोंके अनुसार पूरा परिमार्जन होना चाहिए। इसके बाद जनताके सिर्फ चुनिन्दा नेताओंकी इच्छाके अनुसार हमें पूरा स्वराज्य दिया जाना चाहिए। आप देखेंगे कि मैंने प्रत्येक अंग्रेजके नाम जो खुली चिट्ठी[1] लिखी है, उसमें यह बात स्पष्ट कर दी है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

३३. भाषण: इलाहाबादमें असहयोगपर[2]

२८ नवम्बर, १९२०

महात्मा गांधी भाषण देनेके लिए खड़े हुए। लोगोंने भारी हर्षध्वनि की। हिन्दीमें भाषण[3] देते हुए उन्होंने प्रारम्भमें ही इस बातपर जोर दिया कि यह समय काम करनेका है, और भाषणों और सभाओंका नहीं। उन्होंने कहा कि यह आसुरी सरकार है और रावणके राज्य-जैसी है। उसने मुसलमानोंके साथ अन्याय किया है और पंजाबके अत्याचारोंके लिए वही उत्तरदायी है। यह भारतीयोंको अबतक धोखा देती रही है। आज भी उसको इसका पछतावा नहीं है; बल्कि वह हमसे यह कहती है कि हम उसके अत्याचारोंको भूल जायें। यदि आप इस सबको अनुभव नहीं करते तो मुझे आपसे कुछ भी कहना नहीं है; किन्तु आप ज्यों ही असली स्थितिको जान जायेंगे आपके सामने केवल असहयोग करनेके सिवा कोई रास्ता नहीं बचेगा।

इसके बाद महात्माजीने एकतापर जोर देते हुए कहा कि एकता अत्यन्त आवश्यक है। यदि आप सब एक हो जायें तो सरकार जिस तरह आपकी रायकी उपेक्षा अबतक करती रही है, उसका वैसी उपेक्षा कर सकना आप असम्भव कर सकते हैं। आप लोग एक बार एक हो जायें तो आप खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंको दूर

१. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ३९७-४००।

२. यह भाषण मोतीलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें हुई सार्वजनिक सभामें दिया गया था। इस सभामें कर्नल वैजवुड, मौलाना आजाद और शौकत अली भी शामिल थे।

३. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

करवा सकते हैं और स्वराज्य ले सकते हैं। सरकार आपकी सहायतासे ही भारतपर शासन चला रही है। किन्तु यह देखकर दुःख होता है कि हिन्दू और मुसलमान अभी तक एक दूसरेपर पूरा विश्वास नहीं करते लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या सरकार-पर आपका कुछ भी विश्वास है? कालेसे-काले मनका हिन्दू भी इस्लामको खतरेमें नहीं डालेगा। आपको चाहिए कि वर्तमान सरकारको या तो सुधार दें या समाप्त कर दें। अपने इस ध्येयकी पूर्तिके लिए एकता बहुत जरूरी है। सरकारसे असहयोग करनेके लिए आपको आपसमें सहयोग करना चाहिए। सरकार भी आपमें फूट डालनेका प्रयत्न कर रही है। यह तो वह करती ही आई है और उसीके द्वारा भारतपर राज्य चला रही है। यदि हिन्दू और मुसलमान आज एक हो जायें तो संसारकी कोई भी शक्ति हमें दबा नहीं सकती। हमने देख लिया है कि हम तलवारसे स्वराज्य नहीं ले सकते। भारतीय आज जिस पौरुषहीन अवस्थामें हैं उसमें खुली लड़ाईका खयाल भी नहीं किया जा सकता; वह देशके हितोंके लिए घातक सिद्ध होगी। सरकार अपने सब साधनोंको काममें लाकर अपनी पूरी शक्तिसे हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओंको कुचलनेका प्रयत्न कर रही है; वह एक दलको दूसरेसे भिड़ा रही है और खुली धमकियाँ दे रही है। हमारा ऐसी सरकारसे भौतिक बलसे निबटने और उसे हटानेकी आशा करना सम्भव नहीं है। हमें हिंसाका मुकाबला हिंसासे करना भी नहीं चाहिए। हमें शैतानको सजा देनेके लिए शैतानी साधनोंका उपयोग नहीं करना है। मैं अपने ३० सालके अनुभवके आधार-पर कह सकता हूँ कि हम निर्दयता और छलकपटको, निर्दयता और छलकपटसे ही नष्ट नहीं कर सकते। जैसे उजाला अन्धेरेको दूर करता है, वैसे ही हम झूठको सत्यसे और बुरी शक्तियोंको आत्मबलसे निवृत्त कर सकते हैं। इसके अलावा, सरकारकी हिंसाके प्रयोगकी शक्ति बहुत जबर्दस्त है और इसीलिए भी नैतिक दृष्टिसे लोगोंका उसकी हिंसक शक्तिका मुकाबला हिंसासे करना अनुचित है। इसी बातको ध्यानमें रखकर कांग्रेसने आपके सामने अहिंसात्मक असहयोगका कार्यक्रम रखा है।[1]

स्कूलों और कालेजोंके बहिष्कारका उल्लेख करते हुए महात्माजीने अभिभावकोंसे पूछा 'क्या आपका विश्वास यह नहीं है कि इस समय अपने बच्चोंको सरकारी सहा-यता प्राप्त स्कूलोंसे निकाल लेना आपका कर्त्तव्य है? यदि आपका विश्वास ऐसा नहीं है तो आपको ऐसी सभामें नहीं आना चाहिए और यदि आप इसमें आ ही गये हैं

१. यहाँ १–१२–१९२० के **लीडर**में इतना और दिया गया है: "सरकार हममें फूट डालनेका प्रयत्न करेगी। नरमदलीय लोगोंको भ्रमित किया जा रहा है; लेकिन आपका जिस बातमें विश्वास है आपको उसपर कायम रहना चाहिए। आपको कौंसिलों, मतदान-केन्द्रों, स्कूलों एवं कालेजोंका बहिष्कार करना चाहिए। ३० नवम्बरका दिन आ गया है; आप अपने मताधिकारका उपयोग न करें; लेकिन साथ ही आप उन लोगोंको, जिनका खयाल दूसरा हैं और जो मत देना चाहते हैं, सताएँ भी नहीं। जो लोग कौंसिलोंमें बैठे हैं उनसे कह देना चाहिए कि वे लोग जनताके प्रतिनिधि नहीं हैं। लेकिन जो लोग मत देने नहीं जाना चाहते, उन व्यक्तियोंको भी कौंसिलोंके सदस्योंसे यह आशा नहीं करनी चाहिए कि वे उनके लिए कुछ करेंगे।"

तो आपको इस कार्यक्रमसे अपना मतभेद प्रकट करना चाहिए। अन्यथा यदि आप यहाँसे चुपचाप चले जाते हैं तो इससे यही प्रकट होगा कि आप इस कार्यक्रमसे सहमत हैं और तब फिर इसीलिए आपका अपने बच्चोंको स्कूलों और कालेजोंसे हटा लेना उचित होगा। यदि आपके लड़के वयस्क हैं तो आप उन्हें स्कूलों और कालेजोंको छोड़नेके लिए समझायें और यदि वे वैसा न करें तो आप उनकी सहायतासे हाथ खींच लें और जहाँ उनकी तकदीर ले जाये वहाँ जाने दें।[1]

गांधीजीने स्वदेशीकी आवश्यकतापर बल देनेके बाद इलाहाबादमें एक राष्ट्रीय कालेजकी स्थापनाके निमित्त धनकी अपील की।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १–१२–१९२०

३४. भाषण : महिलाओंकी सभा, इलाहाबादमें

२९ नवम्बर, १९२०

महात्माजीने महिलाओंसे अनुरोध किया कि वे देशकी आजादीकी लड़ाईमें अपना फर्ज अदा करनेमें गफलत न करें। उन्होंने उनसे जोर देकर कहा : आप अपने पतियों और पुत्रोंसे अनुरोध करें और उन्हें प्रोत्साहन दें कि वे अपने कर्त्तव्यके पथपर चलें। आप स्वयं स्वदेशीको अपनाकर स्वतन्त्र भारतके निर्माणमें प्रबल और प्रभावकारी सहायता दें। रावणके राज्यमें सीताको भी चौदह सालतक वल्कल वसन (पेड़की छालके बने मोटे कपड़े) पहनकर रहना पड़ा था। इसी तरह आज भी, जब स्वदेशी वस्तुओंको अपनानेका अर्थ भारतको स्वतन्त्र करनेकी दिशामें एक बड़ा कदम उठाना है, तब भारतीय महिलाओंको हाथकते और हाथबुने खद्दरका कपड़ा पहनना अपना पुनीत कर्त्तव्य बना लेना चाहिए। इतना ही नहीं बल्कि उन्हें प्रतिदिन कमसे-कम एक घण्टा सूत भी कातना चाहिए और इस प्रकार हाथसे कपड़ा बुननेमें सहायक बनना चाहिए। भारतीय स्त्रियोंका देशके प्रति यह कर्त्तव्य हो गया है कि वे महीन कपड़े पहनना छोड़कर खादीकी पोशाक अपनायें।

१. यहाँ १–१२–१९२० के **लीडर**में इतना और दिया गया है : "श्री गांधीने इसके बाद स्वदेशी वस्तुओंके प्रयोगका आग्रह करते हुए कहा कि स्वदेशीका व्यवहार नौकरशाहीके विरुद्ध अत्यन्त शक्तिशाली शस्त्र है। यदि आप उन ६० करोड़ रुपयोंको जिनसे ब्रिटेनका बना माल खरीदा जा रहा है, बचा लेंगे तो लंकाशायरके ५७ संसदीय सदस्य आपकी मुट्ठीमें आ जायेंगे। यदि आप केवल स्वदेशी मालका ही व्यवहार करनेका निश्चय कर लें तो आपको स्वराज्य मिल जाये। किन्तु यह केवल तभी सम्भव हो सकता है जब आप अपनी आदतें सीधी-सादी बना लें। आप अब मलमल पहनना छोड़ दें और केवल खद्दर ही पहनें।"

स्वराज्य प्राप्त करनेका स्वदेशी एक अमोघ उपाय है। उसके द्वारा पंजाब और खिलाफतके अन्यायोंका परिमार्जन कराया जा सकता है और राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा की जा सकती है। स्वदेशीके प्रचारका मुख्य भार भारतीय स्त्रियोंपर ही है और उन्हें यह अवसर चूकना नहीं चाहिए।[1]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १-१२-१९२०

३५. भाषण : इलाहाबादमें

२९ नवम्बर, १९२०

महात्मा गांधीने कहा, उत्तरप्रदेश हिन्दुस्तानका केन्द्र है, इसलिए उससे देशके अन्य भागोंसे आगे रहनेकी आशा की जाती है। किन्तु दरअसल उसने अभीतक गुजरातसे ऊँचा स्थान पानेके योग्य कोई कार्य नहीं किया है। फिर भी मैं आशा करता हूँ कि वह आगे चलकर वर्तमान संघर्षमें उचित स्थान प्राप्त किये बिना नहीं रहेगा। उन्होंने झाँसीका उदाहरण दिया और कहा कि वहाँ हिन्दू और मुसलमान छात्रोंने 'गीता' और 'कुरान' हाथमें लेकर शपथ ली है कि वे सरकार द्वारा नियन्त्रित संस्थाओंको छोड़ देंगे।

हिन्दू-मुस्लिम एकताके प्रश्नपर बोलते हुए महात्माजीने खेदपूर्वक कहा कि उत्तर प्रदेशमें सरकारकी चाल सफल हो गई है और उसने फूट डाल कर दोनों जातियोंको पौरुषहीन बना दिया है। उन्होंने दोनों जातियोंको उनके धर्मग्रन्थोंकी याद दिलाते हुए अनुरोध किया कि वे अपने मतभेद भुला दें। इतना कह चुकनेपर उन्होंने लखनऊसे मिले एक तारका उल्लेख किया और बताया कि वहाँ गायकी कुर्बानीसे सम्बन्धित एक प्रस्तावपर नगरपालिकाके सदस्योंमें कुछ गहरा मतभेद है। उन्होंने इस आरोपकी भी चर्चा की कि उन्होंने अलीगढ़का कालेज तो खाली करा दिया किन्तु बनारस-विश्वविद्यालय खाली नहीं कराया। उन्होंने कहा कि यह सब इस बातका द्योतक है कि हममें अभीतक आपसी विश्वास और सद्भावकी कमी है। मैं नहीं जानता कि ऐसे प्रश्न कैसे तय किये जायें। मैं तो हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ कालेज, दोनोंको ही खाली करा देना चाहता हूँ और उनमें अपना सन्देश लेकर गया भी हूँ। यह तो अपने-अपने कर्त्तव्यका प्रश्न है और इसमें जो सबसे आगे आता है वही अधिक सफल होता है, फिर वह चाहे अलीगढ़का कालेज हो या बनारसका विश्वविद्यालय, या कोई दूसरी संस्था हो। यदि कोई इस प्रकारके कर्त्तव्यके पालनमें यह सोचता

१. भाषणके बाद कई महिलाओंने अपने आभूषण उतारकर राष्ट्रीय कार्यके निमित्त दे दिये और स्वदेशीकी शपथ लेनेमें भी बहुत उत्साह दिखाया।

है कि पहले अन्य लोग आगे बढ़ें तब हम बढ़ेंगे तो इससे उसकी कमजोरी ही जाहिर होती है।

हिन्दुओंको सम्बोधन करते हुए महात्माजीने कहा: यह सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है कि अलीबन्धु हमें धोखा दे जायेंगे। क्योंकि उन्होंने यह तो साफ-साफ कह ही रखा है कि वे पहले मुसलमान हैं और बादको कुछ और। उन्होंने वचन दिया है कि भारतकी स्वतन्त्रताके लिए वे [जरूरत होगी तो] सारी दुनियासे लड़ेंगे। [उनपर] इस प्रकारके सन्देहसे हममें आत्मविश्वासकी कमी प्रकट होती है। यह भी कहा गया है कि अलीबन्धु अखिल इस्लामवादके हिमायती हैं। यदि संसारके दूसरे भागोंके मुसलमानोंसे सहानुभूति दिखाना अखिल इस्लामवाद है तो हिन्दू भी अखिल हिन्दुत्ववादी हैं। क्योंकि सहधर्मियोंसे सहानुभूतिकी भावना स्वाभाविक भावना है और वह सभी जातियोंमें होती है। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप पराक्रमी बनें और कायरोंके दिलोंमें उत्पन्न होने-जैसी शंकाओंको निकाल बाहर करें। अब समय आ पहुँचा है जब सबको संगठित होकर पूरे मनसे देशके प्रश्नको हाथमें लेना चाहिए, किन्तु यदि सामान्य जन मेरी बात नहीं सुनेंगे तो मैं उन ४ या ५ व्यक्तियोंको ही साथ लेकर जिन्होंने इस मामलेको हाथमें उठा लिया है इस संघर्षको अन्ततक चलाता रहूँगा। (जोरकी तालियाँ।)

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १-१२-१९२०

३६. भाषण: विद्यार्थियोंकी सभा, इलाहाबादमें[1]

३० नवम्बर, १९२०

मुझे यह समाचार[2] सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ। यहाँ भी भाई जवाहरलालके साथ बहुत विद्यार्थियोंसे मुलाकात हुई थी। उन्होंने उनसे साफ-साफ कह दिया था कि वे पाठशाला तभी छोड़ें जब उन्हें यह अपना धर्म जान पड़े; इस आशासे न छोड़ें कि हम लोग कोई व्यवस्था करेंगे। वे हमारी शक्तिके अनुसार व्यवस्था स्वीकार करनेको रजामन्द हो गये और भाई जवाहरलालने उनके लिए एक मकान ले भी लिया, परन्तु वह एक हफ्तेसे खाली पड़ा है। इन समाचारोंसे मुझे जितना दुःख हुआ है, यह मैं प्रकट नहीं कर सकता। मुझे ये घटनाएँ हमारी गुलामीके स्पष्ट चिह्न प्रतीत होती हैं। प्रतिज्ञा लेकर तोड़नेवाला हैवान बन जाता है, नामर्द बन जाता है। लॉर्ड

१. सभा आनन्द भवनमें हुई थी और उसमें मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा शौकत अली भी बोले थे। यह भाषण महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत किया गया है।

२. गांधीजीके झांसी पहुँचनेपर बहुतसे विद्यार्थियोंने **गीता** और **कुरान**की शपथके साथ अपने-अपने विद्यालय छोड़े थे। फिर समाचार मिला कि दो-तीन दिन बाद ही विद्यार्थी वापस विद्यालयोंमें चले गये हैं।

विलिंग्डन[1] विलायतसे आनेके बाद बम्बईमें कुछ समय व्यतीत करनेके पश्चात् अपना अनुभव सुनाते हुए कहते थे कि भारतमें आकर मैंने किसी हिन्दू-मुसलमानको 'ना' कहनेकी हिम्मत करते नहीं देखा। यह आक्षेप अब भी सही है। हमारे दिलमें 'नहीं' होनेपर भी हम 'नहीं' नही कह सकते। सामनेवालेका मुँह देखकर उसे 'हाँ' चाहिए या 'ना' यह सोचते हैं और तब तदनुसार बात करते हैं। यहाँ पण्डितजीके घर किसी तीन-चार वर्षकी लड़कीसे भी मैं उसकी इच्छाके विरुद्ध कुछ नहीं करा सकता। मैं उसे कहता हूँ कि तू मेरी गोदमें बैठ, तो वह कहती है, 'नहीं'। उससे कहता हूँ कि 'तू खादीके कपड़े पहनेगी?' तो कहती है 'नहीं।' हममें इस बच्चीकी-सी ताकत भी नहीं है। एक महापुरुषने कहा है कि हमें स्वर्गमें जाना हो तो बालक-जैसा बनना होगा। बालक-जैसे बननेका अर्थ यह है कि बालककी-सी निर्दोषता और हिम्मत चाहिए। एडविन अर्नाल्डने[2] बालककी निर्दोषताका बढ़िया ढंगसे वर्णन किया है। बच्चा बिच्छूको पकड़ लेता है, साँपको भी पकड़ लेता है, आगमें हाथ डाल देता है, उसे डरका जरा भी भान नहीं होता। आप भी ऐसी ही निर्भयता पैदा करें। आपके मनमें ईश्वरका भरोसा नहीं है, इसलिए आप डरके वशमें होते हैं।

मुझे अक्सर खयाल आता है कि या तो जल्दीसे-जल्दी भारतसे भाग निकलूँ या उसे जल्दीसे-जल्दी स्वतन्त्र करूँ? स्वतन्त्रताका इतना ही अर्थ है कि हम किसीसे भी न डरकर जो हमारे दिलमें हो, वही कह सकें, वही कर सकें। जो लड़का करोड़ों मनुष्योंके सामने सीधा खड़ा रहकर अपनी बात कह सके, वह सच्चा साहसी है। इसलिए आपके लिए पहला पाठ तो 'ना' कहना सीखना है। आप प्रतिज्ञा लें ही नहीं, यह बेहतर है; प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना, मैं कहूँगा कि, एक बड़ा अपराध करने जैसा है। आपने ऊँची शिक्षा पाई हो, बड़ी डिग्री ली हो, फिर भी यदि आप बिना आगा-पीछा किये प्रतिज्ञा तोड़ दें, तो मैं जरूर कहूँगा कि आप जमनामें जाकर डूब क्यों नहीं मरते? आप शायद यह सफाई दें कि आपके दिलने एक बार कुछ कहा, इसलिए आपने वैसा किया, उसने फिर दूसरी बात कही तो आपने दूसरा व्यवहार किया; परन्तु इसका जवाब यह है कि तब आपको प्रतिज्ञा नहीं लेनी चाहिए। शास्त्रोंमें कहा है कि प्रतिज्ञा लो तो उसके लिए मरो। इसे साबित करनेवाले थे हमारे हरिश्चन्द्र और रोहिताश्व; वे अपना वचन निभानेके लिए भंगीके यहाँ सेवक बनकर रहे; हम उन धर्मवीरोंकी सन्तान हैं, इसे आप कैसे भूल जायेंगे? हाँ, व्यभिचार करनेकी, झूठ बोलनेकी प्रतिज्ञा ली हो तो वह जरूर तोड़ी जा सकती है, क्योंकि इसे तोड़कर मनुष्य अपनी उन्नति करता है। त्याग करनेकी प्रतिज्ञा कभी बदली नहीं जा सकती। हिन्दूकी गोमाँस न खानेकी अथवा मुसलमानकी शराब न पीने और सूअरका माँस न खानेकी प्रतिज्ञा है। यदि वह बीमार हो, मरणासन्न हो और डाक्टर आग्रह करें

१. १८६६–१९४१; बम्बई (१९१३-१९) और मद्रास (१९१९–२४) के गवर्नर और भारतके वाइसराय (१९३१-३६)।

२. एडविन अर्नाल्ड (१८३२–१९०४); संस्कृत साहित्यके अध्येता, अंग्रेज कवि। उनका **भगवद्-गीता**का अंग्रेजी पद्य-अनुवाद **सॉंग सिलेशियल** और बुद्ध-चरित्र सम्बन्धी काव्य ग्रन्थ **लाइट ऑफ एशिया** अंग्रेजी साहित्यमें बहुत प्रसिद्ध है।

कि जरा-सा अभक्ष्य ले लो तो उस समय भी उसका इनकार करना लाजिमी है। इस प्रकार जिन्दगी कुर्बान करके अभक्ष्य छोड़कर अपनी प्रतिज्ञापर डटे रहनेवाले मनुष्यको ही जन्नतमें जानेपर खुदा 'शेरका बच्चा' कहेगा।

दुनियाके तमाम धर्मोंमें प्रतिज्ञाके बारेमें ऐसी ही कठोर सख्ती है। सत्यकी प्रतिज्ञा ली हो तो गाँवको बचानेके लिए या किसी मनुष्यको बचानेकी खातिर आप असत्य नहीं बोल सकते। प्रतिज्ञा-भंगसे जो दुःख हुआ मैं उसे व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। कोई बूढ़ा खूसट आदमी अपनी प्रतिज्ञा तोड़े तो थोड़ा-बहुत समझमें भी आ सकता है; मैं स्वयं बूढ़ा ठहरा, इसलिए कोई भूल कर सकता हूँ। परन्तु आप तो नौजवान हैं, आपमें ताजा खून दौड़ता है, मैं आपको कैसे माफ कर दूँ? इस अवसरपर कुछ विषयान्तरका खतरा उठाकर भी मैं अपना अनुभव सुना रहा हूँ। अहमदाबादमें दो वर्ष पूर्व हजारों मजदूरोंने साबरमतीके किनारे एक पेड़के नीचे खुदाको हाजिर-नाजिर मानकर प्रतिज्ञा ली कि जबतक उनकी माँग मंजूर न हो, तबतक वे कामपर नहीं जायेंगे। बीस दिनतक वे टिके रहे। परन्तु बादमें मुझे महसूस हुआ कि वे गिरने जा रहे हैं; इसलिए मैंने उनसे कहा कि 'तुम गिरोगे तो मैं भी अन्न न लेकर शरीर छोड़ दूँगा। तुम प्रतिज्ञा न लेते तो हर्ज नहीं था, परन्तु लेकर तोड़ो, यह मुझे असह्य है। मजदूर रोने लगे, पैरों पड़ने लगे कि 'कुछ भी करके पेट भरेंगे, परन्तु पुराने कामपर नहीं जायेंगे।' इस प्रकार उन्हें गिरनेसे रोकनेके लिए मुझे अनशनका व्रत लेना पड़ा था। आप मजदूरोंसे ज्यादा अशिक्षित न बनें; उनसे अधिक नास्तिक तो कदापि न बनें। आप इन्सानकी गुलामी छोड़कर खुदाकी गुलामी करें। इस हुकूमत-को मिटाना हो तो यह गुलामी छोड़नी पड़ेगी। प्रतिज्ञा नहीं लेंगे तो स्वराज्य नहीं मिलेगा, सो बात नहीं है; परन्तु आप प्रतिज्ञा तोड़ेंगे तो स्वराज्यका समय आगे अवश्य खिसक जायेगा। कसम तोड़नेवाले ऐसे विद्यार्थियोंकी मददसे मुसलमान मुसलमानोंकी मदद नहीं कर सकेंगे। इसलिए मैं विनयपूर्वक कहता हूँ कि कसम न लो, और कसम लो तो पृथ्वी रसातलमें चली जाये तो भी उसे न छोड़ो। आपमें से इने-गिने ही कसम लें, तो उससे भी स्वराज्य मिल जायेगा। मुसलमान विद्यार्थियोंके सामने इमाम हसन और हुसैनके उदाहरण मौजूद हैं। इस्लामको कायम रखनेवाली तलवार नहीं, ऐसी अटल टेकवाले जबरदस्त फकीर ही हैं। उन्हींके कारण वह कायम रहा है। एम० ए० हो जानेसे या सेवासमितिके स्वयंसेवक बननेसे या कांग्रेसमें जाकर भाषण देनेकी शक्ति प्राप्त कर लेनेसे आप देशको स्वतन्त्र नहीं कर सकते। आप प्रतिज्ञाका आदर करके और उसका पालन करके ऐसा अधिक अच्छी तरह कर सकेंगे।

* * *

इस राज्य और रावण-राज्यमें फर्क नहीं है। कुछ फर्क हो भी तो वह इतना ही है कि रावणके हृदयमें कुछ दया होगी, कुछ कम दगा होगी। उसने तो मन्दोदरीसे कहा था कि 'दस शिरवाला होकर भी क्या मैं रामका मुकाबला नहीं कर सकता? तू तो पागल हो गई है।' उसने यह भी कहा कि 'मैं जानता हूँ कि वे अवतारी पुरुष हैं और मुझे मालूम है कि मैं इतना बुरा हो गया हूँ कि उनके हाथसे मारा जाऊँ,

तो भी बुरा नहीं।' परन्तु हमारी हुकूमतको तो खुदाका ऐसा डर भी नहीं रहा। उसे यह खयाल नहीं आता कि खुदाके हाथों मर जाना ठीक रहेगा। वह तो खुदाको घोलकर पी गई है। उसका खुदा तो उसका तकब्बुर, उसकी दौलत और उसकी दगा है। यूरोपीय संस्कृति शैतानियतसे भरी है। परन्तु इसमें भी अंग्रेजी हुकूमत सबसे अधिक शैतानियतसे भरी है। अबतक मैं यूरोपमें अंग्रेजी सल्तनतको कमसे-कम खराब मानता था; अब मुझे इतमीनान हो गया है कि इसके जैसी खुदाको भूली हुई कोई और हुकूमत नहीं है। इस हुकूमतकी सेवा मैं नहीं करना चाहता। मैं इसके आश्रयमें एक क्षण भी नहीं रहना चाहता।[1]

आपको मेरे वचनोंके बारेमें सन्देह हो, आपको इस सरकारमें मेरी तरह बुराई दिखाई न देती हो तो आप बेशक अपनी पाठशालाओंमें पढ़ते रहें। परन्तु यदि आप मेरे विचारके हैं, तब तो इस हुकूमतकी पाठशालामें 'गीता' पढ़ना भी व्यर्थ है। हमें गुलाम बनाकर रखनेवाली सरकार हमें महलमें रखे और उसमें 'गीता' पढ़ाये, डाक्टरी, साइंस, इंजीनियरी सिखाये तो भी क्या वह सब सीखा जा सकता है? मैं कहता हूँ 'नहीं', क्योंकि इस सारी शिक्षामें जहर भरा है, यह सारी तालीम हमें और पक्का गुलाम बनानेके लिए है। हमारी लड़ाई धर्मकी है, सरकारकी अधर्मकी है। जो सरकार माइकेल ओ'डायर[2]-जैसे कर्मचारीके अपराध जानकर भी उसका पक्ष लेती है, डायरकी[3] हैवानियत जानकर भी उसके अन्यायको केवल विचार-दोष मानती है, उस सरकारकी मदद कैसे ली जाये अथवा उसके साथ सम्बन्ध कैसे रखा जाये? उसके साथ सम्बन्ध रखना अधिक हैवान बनने और ज्यादा पक्का गुलाम बननके बराबर है।

आप लोग यह प्रश्न मुझसे बिलकुल न करें कि मैं आपके लिए क्या-क्या करूँगा। मैं आपको सरकारकी गुलामी छोड़कर मेरा गुलाम बन जानेको नहीं कहता। यदि आप मेरे गुलाम बनना चाहें तो फिर मुझे आपसे कोई वास्ता नहीं। आपमें अपना पेट भरनेकी, कोई न कोई मेहनत मजदूरी करके अपने माता-पिताका पोषण करनेकी ताकत न हो तो आप स्कूल-कालेज हरगिज न छोड़ें। वैसे आपके लिए व्यवस्था करना हमारा काम है; और हम यथासम्भव व्यवस्था जरूर करेंगे। परन्तु भारतका वातावरण इतना बिगड़ा हुआ है कि शिक्षक, अध्यापक मुझे पागल तक मानते होंगे और सम्भव है मुझे उनकी मदद न मिले। ऐसे लोगोंकी मदद मैं चाहता भी नहीं

१. **लीडर,** २-१२-१९२० की रिपोर्टमें यहाँ कुछ वाक्य और हैं: "इस सरकार द्वारा संचालित स्कूलोंमें तो **गीता** और **कुरान** पढ़ना भी हराम है। मेरा विश्वास है श्री लॉयड जॉर्ज और लार्ड चैम्सफोर्ड दोनों ही हमें धोखा दे रहे हैं। अगर वे चाहते तो टर्कीपर लादी जा रही संधिको रद करा सकते थे। किन्तु वे वैसा करना नहीं चाहते। वे अच्छी तरह जानते हैं कि ओ'डायर और डायर दोनों निश्चित रूपसे अपराधी हैं; लेकिन वे उन्हें सजा देना नहीं चाहते। मैं तो ऐसी सरकारके साथ कदापि सहयोग नहीं कर सकता।"

२. पंजाबके लेफ्टिनेंट गवर्नर, १९१३-१९१९।

३. रेजिनाल्ड एडवर्ड हैरी डायर (१८६४-१९२७); अमृतसर क्षेत्रके कमांडिंग ऑफिसर जिन्होंने जलियाँवाला बागमें एकत्र शान्त जनतापर गोलियाँ चलानेका हुक्म दिया था।

हूँ। यदि शिक्षक-अध्यापक न मिलें, तो आप अपने अध्यापक स्वयं बनें और अपने ही पैरोंपर खड़े हो जायें। मेरी, मोतीलालजीकी या शौकत अलीकी ताकतपर खड़े रहनेकी आशासे आना चाहें, तो जहाँ आप हैं, वहीं बने रहें।

* * *

आप पूछेंगे 'आज प्रह्लाद कहाँसे लायें?' 'प्रह्लाद इस जमानेमें भी हैं।'[1]

* * *

मैं कोई नशा (एक्साइटमेंट) नहीं देना चाहता। आपकी तालीमका नशा आपके लिए काफी है।[2] मैं आपमें शान्त साहस फूँकना चाहता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि आपका हृदय कुर्बानी और तपश्चर्याके योग्य पवित्र बने।

* * *

सही बात यह है कि माँ-बाप बच्चोंको नहीं रोक रहे हैं, बच्चे ही माँ-बापके कहनेपर भी पाठशाला छोड़नेको तैयार नहीं हैं। हिन्दू यूनिवर्सिटीमें मैंने सौ-डेढ़ सौ लड़कोंसे पूछा था। उन्होंने कहा कि हमारे माँ-बापकी हमें इजाजत तो है ही, वे हमें हर हालतमें खर्च देनेको भी तैयार हैं। कोई कुछ भी कहे; सरकार द्वारा चलनेवाले स्कूल-कालेजोंमें पढ़ते रहना पाप है, यदि आपकी आत्मा ऐसा कहती हो तभी आप उन्हें छोड़ें; थोड़ी भी दुविधा हो, तो आप मालवीयजीकी सलाह मानें। मुझे तो अभी भारतमें पाँच वर्ष ही हुए हैं; मालवीयजीने तो सारा जीवन देशकी सेवामें अर्पित किया है। इसलिए कहता हूँ कि मेरी आवाज ही आपकी आत्माकी आवाज न हो, तो आप मालवीयजीकी बात मानें। मेरी आवाज ही आपकी आवाज हो तो मालवीयजीकी सलाह भी हरगिज न मानें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९-१२-१९२०

१. इसके बाद उन्होंने स्वामी दयानन्दका वृत्तान्त सुनाया।

२. गांधीजीने ये वाक्य एक श्रोताके इस सुझावके उत्तरमें कहे थे: "जब कि आप (गांधीजी) यह मानते हैं कि आपका यह संघर्ष एक युद्ध है तो लड़नेके लिए आपको हमें कोई 'नशा' देना चाहिए।"

३७. पत्र : देवदास गांधीको

बुधवार [नवम्बर १९२०][1]

चि० देवदास,

मुझे ऐसा हरगिज नहीं लगा कि तुम्हारा पत्र लम्बा है। बाके[2] विषयमें जो लिखा सो समझ गया हूँ। मुझे तो विश्वास है कि मेरा विचार गैरवाजिब बिलकुल नहीं था। एक क्षणके लिए भी भावनाओंमें बह जाना ठीक नहीं है। लेकिन इस मामलेमें अधिक विचार करनेका समय ही कहाँ है?

तुम्हें दूधकी मात्रा बढ़ानी होगी। भात खा सकते हो लेकिन कम। वह पुष्टि-कारक तो है ही नहीं। अब रही फलोंकी बात। सो अगर अंगूर महँगे हों तो उनके स्थानपर किशमिश खाया करो। अंगूर या किशमिश तथा संतरे—बस इतनेसे काम चल जायेगा। अगर तुम्हें पथरीका रोग नहीं है तो अन्य कोई बात होगी। इसे सावधानीके साथ मिटानेका प्रयास किये बिना काम नहीं चलेगा।

ऐसा लगता है कि फिलहाल हम लोग गिरफ्तार नहीं किये जायेंगे। यहाँ भी एक राष्ट्रीय विद्यालय स्थापित किया जानेवाला है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ७१७८) की फोटो-नकलसे।

३८. पत्र : देवदास गांधीको

[नवम्बर १९२०][3]

चि० देवदास,

इस लिफाफेमें तुम्हें दो पत्र मिलेंगे। एक मैंने मोटरमें बैठे हुए लिखा था। लिफाफेको फाड़कर उस पत्रको भी इसीके साथ भेज रहा हूँ। अपने शरीरको ठीक

१. सरकार गांधीजीको गिरफ्तार करनेवाली नहीं है, यह बात नवम्बर १९२० के प्रथम सप्ताहमें ही मालूम हो गई थी। जब गांधीजी नवम्बरके अन्तिम सप्ताहमें उत्तर भारतमें थे तब उन्हें अपने गिरफ्तार न होनेके बारेमें कुछ ज्यादा पक्की खबर मिली होगी। २४ नवम्बर, १९२० को दिल्लीमें 'न्यू प्रजाकीय इस्लामिक मदरसा' और ३० नवम्बरको इलाहाबादमें 'तिलक विद्यालय'का उन्होंने उद्घाटन किया था। इसलिए इस अनुच्छेदका अन्तिम वाक्य इन्हीं दो संस्थाओंमें से एकके सम्बन्धमें है। इस सबसे पता चलता है कि यह पत्र सम्भवतः नवम्बरके अन्तिम सप्ताहमें लिखा गया होगा।

२. कस्तूरबा।

३. पत्रके पाठसे लगता है कि पिछले शीर्षकके तुरन्त बाद ही, जिसे उन्होंने मोटरमें बैठे-बैठे लिखा था, यह पत्र लिखा गया होगा।

बनानेकी कोशिश करो; अध्ययनशीलता अपनाओ। भोजन नियत समयपर ही किया करो। आजकल जितना दूध पीते हो उससे अधिक पिया करो। उर्दू जल्दीसे सीख लो। प्रातःकालकी प्रार्थनामें उपस्थित रहनेसे किसी भी दिन मत चूकना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ७१७७)की फोटो-नकलसे।

३९. पत्र : देवदास गांधीको

सोमवार [नवम्बर १९२०][1]

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र अभी-अभी पढ़ा। तुम वहाँ रह गये, मुझे यह भी ठीक लगा। पूरे सोच विचारके साथ किया गया प्रत्येक काम लाभदायक होता है। 'फ्रेंच रेवोल्यूशन' अच्छी पुस्तक है, उसे जरूर पढ़ जाओ। अगर वसुमतीबेन वहाँ पहुँच जायें तो तुमसे उन्हें बड़ा सहारा रहेगा। इसी कारण उन्होंने इच्छा की थी कि तुम वहीं रह जाओ। मैं यह तो अवश्य चाहता हूँ कि तुम उर्दू सीख लो, कातना और धुनना भी भली प्रकार सीखो। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जायेंगे त्यों-त्यों ये सब काम और भी कठिन प्रतीत होंगे। अपनी लिखावटके बारेमें भी ऐसा ही समझो। तुम्हारे . . .के[2] पहुँचनेकी आशा करता हूँ।

मुझे असन्तोष तो रहेगा ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ७६६४) की फोटो-नकलसे।

४०. टिप्पणियाँ

जफर अली खाँके साथ व्यवहार

मैंने पाठकोंसे मौलाना जफर अली खाँके पुत्रसे यह पूछताछ करनेका वचन दिया था कि उन्होंने लाहौर जेलकी हवालातमें अपने पिताके साथ किये जानवाले व्यवहारके सम्बन्धमें जो बात कही थी वह ठीक है या नहीं। अब मुझे उनकी चिट्ठी मिल गई है। उन्होंने स्थानीय सरकारकी विज्ञप्तिको निःसंकोच होकर 'झूठ' कहा है। उन्होंने कहा है: मैंने जो सूचना आपको दी थी वह बिलकुल ठीक थी। मौलाना जफर अली खाँ अँधेरी कोठरीमें बन्द रखे गये थे और उन्हें बाहरसे खाना मँगवानेकी

१. उर्दू सीख लेनेके उल्लेखसे ऐसा लगता है कि यह पत्र भी पिछले पत्रके आसपास लिखा गया था।

२. यहाँ कुछ शब्द छूट गये जान पड़ते हैं।

इजाजत नहीं दी गई थी। उनके पुत्रने आगे यह भी लिखा कि लाहौरकी सभामें की गई सार्वजनिक घोषणाके बाद मेरे पिताको अच्छी जगह रख दिया गया और बाहरसे खाना मँगवा लेनेकी इजाजत दे दी गई। इससे सरकारका मामला सुधरता नहीं और बिगड़ता ही है। इस तथ्यकी सार्वजनिक घोषणाके बाद उसने ही अपनी गलती सुधारी। इससे यह सूचित होता है कि वह अपनेको अपराधी अनुभव करती है। सरकार जानती थी कि वह गलती कर रही है; किन्तु वह सदा यह आशा करती थी कि किसी हवालाती कैदीके साथ किये गये स्पष्ट दुर्व्यवहारकी ओर किसीका ध्यान नहीं जायेगा। इसका एक दूसरा उदारतापूर्ण अर्थ भी सम्भव है। यह हो सकता है कि अधिकारियोंको इस गैरकानूनी कार्रवाईका कुछ पता न हो, और यह किसी छोटे अधिकारीकी कार्रवाई हो और ऊँचे अधिकारियोंको इसका ज्ञान भी न हो और अपराधी अधिकारीने स्वयं उनको धोखेमें रखा हो। किन्तु यदि बात ऐसी हो तो यह वर्तमान प्रशासनमें व्याप्त भ्रष्टताका एक और प्रमाण है। मुझे आशा है कि सरकार इस बारेमें अभी और जाँच करायेगी। जहाँ सरकार दोषकी पात्र नहीं, वहाँ उसपर दोष मढ़नेकी मेरी कोई इच्छा नहीं है। किन्तु जबतक मामला स्पष्ट नहीं हो जाता तब-तक लोगोंको उसी बातपर विश्वास करते जानेका हक होगा, जिसकी पुष्टि मौलाना जफर अलीके लड़केने की है।

ड्यूकका दौरा

महाविभव ड्यूक ऑफ कनॉट[1] महोदय जल्दी ही हमारे देशमें आनेवाले हैं। मेरे लिए यह बड़े खेदकी बात है कि मुझे उनके सम्मानमें किये जानेवाले समस्त सार्वजनिक समारोहोंके पूर्ण बहिष्कारकी सलाह देनी पड़ रही है। वे एक व्यक्तिकी हैसियतसे बहुत ही मृदु स्वभावके अंग्रेज सज्जन हैं। किन्तु मेरी विनम्र सम्मतिमें, सार्वजनिक हितका तकाजा है कि उनके इस राजकीय दौरेकी बिलकुल उपेक्षा की जाये। श्री ड्यूक महोदय एक भ्रष्ट शासन प्रणालीको बल देनके लिए आ रहे हैं, वे एक गैर-जिम्मेदार नौकरशाहीकी मलिनतापर आवरण डालनेके लिए आ रहे हैं। हम जिसे भूल नहीं सकते वे हमें वही भुला देनेके लिए आ रहे हैं। वे हमारे घावोंको भरनके लिए नहीं, बल्कि हमें धोखेमें डालनेवाले सुधार[2] हमारे सिर मढ़कर हमारा मजाक उड़ानेके लिए आ रहे हैं। ड्यूक महोदयका स्वागत करना, अपने ही असम्मानकी वृद्धिमें योग देना है। जबतक सरकार पश्चात्ताप नहीं करती और उस चीजको जो आवश्यक है, दे नहीं देती, तबतक उस सरकारकी शक्तिका प्रतिनिधि कोई भी सरकारी अधिकारी, फिर चाहे वह यूरोपीय हो या भारतीय, हमसे किसी भी तरहके स्वागत या सम्मान प्राप्त करनेका अधिकारी नहीं है।

१. जॉर्ज पंचमके चाचा। वे १० जनवरी, १९२१ को भारत पहुँचे थे।

२. मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार, जो १९१९ के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्टमें दिये गये थे। ड्यूक इन्हींका समारम्भ करनेके लिए आये थे।

चायके प्यालेमें तूफान

एक जिला मजिस्ट्रेटका चायपानका निमन्त्रण स्वीकार कर लेनेपर 'लीडर'ने श्री मुहम्मद अलीपर जो आक्षेप किया है वह मुझे ऐसा ही दिखाई दिया है। अखबारोंकी टिप्पणियाँ पढ़नेका मुझे बहुत ही कम अवसर मिल पाता है। किन्तु मैंने संयोगसे २५ नवम्बरका 'लीडर' पढ़ा। उसमें यह पढ़कर मुझे निश्चय ही दुःख हुआ। यह अखबार सुलझी हुई चुस्त और तीखी टिप्पणियाँ लिखनेके लिए प्रसिद्ध है। फिर भी उसका प्रहार [प्रायः] अनुचित नहीं होता। किन्तु मेरी समझमें मौलाना मुहम्मद अली सम्बन्धी उसकी टिप्पणी एक अनुचित प्रहार ही है। असहयोग-सम्बन्धी प्रस्तावमें सरकारी समारोहोंका बहिष्कार किया गया है। उसमें किसी चाय पार्टीके अवसरपर अधिकारियों और सार्वजनिक लोगोंके बीच व्यक्तिगत बातचीतको निषिद्ध नहीं माना गया है। जहाँ 'लीडर'को मौलाना मुहम्मद अलीके इस कार्यमें विसंगति दिखाई देती है वहाँ वह मुझे एक सज्जनोचित कार्य ही लगता है। वह इस बातका प्रमाण प्रस्तुत करता है कि यह आन्दोलन न तो घृणापर आधारित है और न वह व्यक्तिशः अंग्रेजोंको लक्ष्यमें रखकर चलाया गया है। उसके द्वारा केवल एक ऐसी प्रणालीको नष्ट करनेका प्रयत्न किया जा रहा है जिसे अच्छेसे-अच्छा अंग्रेज भी सह्य नहीं बना सकता। उसका उद्देश्य शुद्धीकरण है, प्रतिशोधात्मक या दण्डात्मक विनाश नहीं। मेरी रायमें यदि श्री मुहम्मद अली जिला मजिस्ट्रेटके चाय पीने और बातचीत करनेके निमन्त्रणको ठुकरा देते तो वे एक लोकसेवकके रूपमें अपने कर्त्तव्यके पालनसे च्युत माने जाते। हाँ, यदि जिला मजिस्ट्रेट अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा या वृद्धि करनेके उद्देश्यसे कोई सार्वजनिक समारोह करते तो दूसरी बात होती।

कुरुचि

मेरी विनम्र सम्मतिमें ऐसी ही कुरुचिका उदाहरण 'लीडर'की वह रोषपूर्ण टिप्पणी भी है जो उसने पंडित मोतीलाल नेहरूपर, होमरूल लीगकी होनेवाली बैठकपर पंजाब सरकार द्वारा रोक लगाई जानेकी कार्रवाईके सम्बन्धमें भेजे गये उनके तारको लेकर लिखी है। कहते हैं, पंडित मोतीलाल नेहरूने तारमें यह कहा कि इस निषेधाज्ञाका पालन किया जाना चाहिए क्योंकि [यहाँ] सविनय अवज्ञा अवांछनीय है। इस तारके पीछे जो सराहनीय आत्मसंयम है उसको देखनेके बजाय 'लीडर'ने यह कह कर पंडित मोतीलाल नेहरूकी हँसी उड़ाई है कि वे तात्कालिक उपयोगिताकी नीतिका यहाँ आश्रय लेनेपर उतर आये हैं। यदि पंडितजीने सविनय अवज्ञाकी सलाह दी होती, यदि सरकार हिंसा करती और लोग उसका उत्तर हिंसासे देते तो 'लीडर'का नाराज़ होना ठीक होता। मैं तो 'लीडर'से 'लीडर' विरोधियोंके प्रति भी न्याय करनेकी आशा करता हूँ। असहयोगका ध्येय सार्वजनिक जीवनको शुद्ध बनाकर और अहिंसात्मक अर्थात् शिष्टतापूर्ण या विनम्र साधनोंसे लोकमतको प्रेरित करके स्वराज्य प्राप्त करना है। मैं मानता हूँ कि असहयोगी सामूहिक रूपसे अपने व्यवहारमें नम्रताका समावेश नहीं कर पाये हैं। लेकिन उनकी प्रवृत्ति निश्चय ही उसी ओर है। अब हम पंडितजीकी सलाहकी अच्छाई-बुराईपर विचार करें। पुराने शब्दोंको नये मूल्य मिल रहे हैं।

"तात्कालिक उपयोगिताकी नीति" शब्दोंमें एक हीक आती है; किन्तु वह शब्द समूह अपने-आपमें बुरा नहीं है। सविनय अवज्ञा वैध है, किन्तु वह तबतक वांछनीय या उपयुक्त नहीं है जबतक समस्त राष्ट्रमें पूरा आत्म-संयम नहीं आ जाता और जबतक वह यह नहीं सीख लेता कि उचित कानूनोंका पालन स्वेच्छापूर्वक किया जाना चाहिए; उनका पालन, उनकी अवहेलना करनेकी दशामें मिलनेवाले तत्सम्बन्धी दण्डका भय छोड़कर करना आवश्यक है। कर देना बन्द करना वैध है; किन्तु जबतक राष्ट्र समष्टिकी हैसियतसे अहिंसाको अपनेमें पूरी तौरपर पचा नहीं लेता तबतक यह अनुपयुक्त है। दूसरे शब्दोंमें कहा जाये तो अहिंसा असहयोगका केवल उपसर्ग या प्रत्यय-भर नहीं है, वह उसका अविभाज्य और मुख्य भाग है। उसके अपेक्षाकृत रौद्र, अधिक उग्र और शक्तिशाली रूपोंपर तबतक अमल नहीं किया जा सकता जबतक पर्याप्त भरोसेके साथ यह न कहा जा सके कि राष्ट्रने स्थिति समझ ली है और वह शान्तचित्त रहकर प्रतिबन्ध, कैद और उससे भी कठोर यन्त्रणाओंको सहन कर सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–१२–१९२०

४१. एक सलाह

मुझे निम्नलिखित गुमनाम सलाह मिली है:

महात्मा,

यह एक स्त्रीकी सलाह है; इसे सुनिए। आप चाहें तो उसे अमान्य कर दें, परन्तु ऐसा उसपर खूब सोच-विचार और सर्वज्ञ प्रभुसे प्रबोध तथा प्रेरणाकी हार्दिक प्रार्थनाके बाद ही करें। ध्यानकी एकाग्रतासे बल और विविध दिशाओंमें उसके विलाससे दुर्बलता हाथ लगती है। आप असहयोगको केवल तीन बातोंतक सीमित रखिए—अर्थात् विदेशी चीजों, पुलिसकी नौकरी तथा सेनातक। इससे आप भीतरके सब मत-भेदोंको दूर करके अपने उद्देश्यको सबल बना सकेंगे और स्वराज्यकी प्राप्ति शीघ्र करा सकेंगे। अपना प्रयास मुख्यतया पूर्ण रूपसे नहीं, सीमावर्ती जातियों—सिक्खों, पंजाबियों, डोगरों और खासकर गोरखों तक सीमित रखिए। जैसा इतिहास सिखाता है, गुप्त समितियों द्वारा काम कीजिए, ढोल पीट कर नहीं। धमकियाँ मत दीजिए; प्रहार कीजिए सो भी मूलपर, शाखाओंपर नहीं। परमात्मा आपके तथा हमारे उद्देश्यको सफलता प्रदान करे।

श्रीमती एफ०

चिट्ठीमें तारीख नहीं पड़ी है। प्रत्यक्ष है कि यह चिट्ठी किसी स्त्रीकी लिखी हुई नहीं है। यह स्त्रियोचित भावनाओंसे इतनी दूर है कि यह किसी स्त्रीकी चिट्ठी नहीं हो सकती। पत्र-प्रेषक भारतकी स्त्रियोंको इस चिट्ठीमें जितना वीर दिखाना चाहता है, वे उससे कहीं अधिक वीर हैं। वह परमात्माकी चर्चा करता है, परन्तु ब्रिटिश

संगीनोंसे भयभीत है और इसलिए खुशी-खुशी सिक्खों तथा गोरखोंके हथियारोंका उपयोग कर लेना चाहता है। वह असहयोगके सन्देशको अच्छी तरह नहीं समझ पाया है। अपनी भयकी अवस्थामें वह यह नहीं देखता कि अंग्रेजोंके पाशविक बलके स्थानमें दूसरे पाशविक बलकी स्थापना भारतकी बुराइयोंका वास्तविक उपाय नहीं है। यदि हथियारोंसे ही भारतके भाग्यका निर्णय होना है तो वे हथियार केवल सिक्खोंके या गोरखोंके नहीं बल्कि समस्त भारतके होने चाहिए। यह सबसे बड़ी शिक्षा है जो हमें यूरोपसे मिलती है। यदि राज्य सदा पाशविक बलका ही रहना है तो फिर या तो भारतके बच्चे-बच्चेको समर-कौशल सीखना पड़ेगा या फिर उसे उस देशी या विदेशीके चरणोंमें, जिसके हाथमें तलवार है, सिर झुकाकर रहना पड़ेगा। उस हालतमें करोड़ों लोग डंडेके बलपर हाँके जानेवाले मूक पशुओं-जैसे ही बने रहेंगे। असहयोग लोगोंको उनके गौरव और शक्तिका भान करानेका एक प्रयास है। यह तभी सम्भव है जब उन्हें यह समझाया जा सके कि वे अपनी अन्तरात्माको पहचान-भर लें तो पाशविक बलसे भय करनेकी जरूरत नहीं रहेगी।

हमें डोगरों, सिक्खों, गोरखों तथा भारतकी अन्य सैनिक जातियोंकी जरूरत है, मगर वह अंग्रेज सैनिकोंसे युद्ध करनेके लिए नहीं बल्कि इसलिए है कि वे हमें पराधीन बना रखनेमें अंग्रेज सैनिकोंको सहायता न दें। हम चाहते हैं कि हमारा यह वर्ग इतना समझ ले कि वह ब्रिटिश अफसरोंकी आज्ञासे तलवार चलाकर अपनी तथा हमारी गुलामीको स्थायी ही बनाता है। वे इसे समझ लें कि इसका समय तब आयेगा जब उक्त लेखकके जैसे विचार रखनेवाले लोगोंके दलका लोप हो जायेगा और जब सैनिक वर्ग भी अहिंसाकी आवश्यकताको समझ जायेगा।

पत्र प्रेषक जब यह कहता है कि केवल विदेशी चीजों, पुलिस तथा सेनाकी ओर ध्यान दिया जाये तब मुझे उसपर सन्देह होता है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि बिना बलिदानके आन्तरिक एकताकी स्थापना हो जाये। जो वर्ग अबतक लोकमतका नेतृत्व कर रहे हैं उन्हें किसी प्रकारका त्याग अर्थात् अपना शुद्धीकरण न करना पड़े; जबकि असहयोगकी पूरी लड़ाई इन्हीं वर्गोंके इर्द-गिर्द चल रही है। सम्भव है कि अभी ऐसा लगा हो कि असहयोगने विसंवाद उत्पन्न कर दिया है। वस्तुतः शुद्धीकरणकी क्रिया पूरी हो जानेपर इससे असली एकता स्थापित हुए बिना न रहेगी।

इसके अतिरिक्त लेखक यह बात भी नहीं समझ पाया है कि हमारे संघर्षमें किंचित भी छिपाव-दुराव न होनेके फलस्वरूप हमें कितनी शानदार सफलता प्राप्त हुई है। मेरी रायमें लोगोंने इस समय, खुल्लमखुल्ला, जैसी निर्भीकतासे अपने विचार व्यक्त किये हैं वैसा पहले कभी नहीं हुआ। उन्होंने राजद्रोहके कानूनका अत्यन्त अस्वाभाविक भय तो लगभग त्याग ही दिया है। ऐसा लगता है कि लेखक जब गुप्त समितियोंकी चर्चा करता है तब वह बीते हुए जमानेकी बात कह रहा है। आप गोपनीयताके अस्वच्छ तरीकोंसे इस महान् राष्ट्रको उसकी पूरी उठानतक नहीं ले जा सकते। हमें चाहिए कि हम दिन-दहाड़े, खुले-आम, साहसके साथ आन्दोलन चलाकर इस प्रकार गुप्त तथा इस पुलिस विभागको निरस्त्र कर दें जो गोप-

नीयतापर पनपता है और जो नीतिभ्रष्ट है। यदि असहयोग मूलपर प्रहार न करे तो वह असहयोग ही नहीं है। जब आप खुल्लमखुल्ला और ईमानदारीके साथ असहयोगमें भाग लेकर ब्रिटिश सरकारके इस विषैले वृक्षको सींचना छोड़ देंगे तभी आप उसके मूलपर प्रहार करनेवाले कह जायेंगे। गुप्त तरीकोंकी हिमायत शैतानकी हिमायत है; ऐसी हालतमें लेखकका ईश्वरका नाम लेना निरर्थक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–१२–१९२०

४२. हुल्लड़बाजी

उन सभी व्यक्तियोंके लिए, जिन्हें असहयोगियोंसे कोई शिकायत हो, 'यंग इंडिया'-के स्तम्भ खुले हैं। किसी 'जानकार' द्वारा सम्पादकको भेजी गई एक चिट्ठी[1] यहाँ प्रकाशित की जा रही है। पत्रलेखकने अलग पत्र में अपना नाम दिया है और यह पत्र प्रकाशित करनेकी प्रार्थना की है। सार्वजनिक महत्वके किसी भी मामलेमें ऐसी प्रार्थना करनेकी जरूरत नहीं होती। यदि संवाददाताका कहना सच है तो यह धारवाड़के नवयुवकोंके लिए लज्जास्पद है। संवाददाताने इस घटनाका सम्बन्ध असहयोगसे जोड़ा है। आजकल हवा ही ऐसी चल पड़ी है कि अशोभनीय व्यवहारकी प्रत्येक घटना असहयोगसे सम्बद्ध कर दी जाती है। अच्छा होता कि धारवाड़में मेरे मुकामके समय ही यह घटना मेरे ध्यानमें लाई गई होती। तब मैं इस मामलेकी जाँच करके उसे निबटा सकता था। धारवाड़में छात्रोंकी मैंने एक सार्वजनिक सभा बुलाई थी, उसमें भी पत्थर फेंके गये थे। एक छात्रको तो बहुत गहरी चोट आ गई होती। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि पत्थर फेंके जानेपर भी श्रोता शान्त बैठे रहे। मुझे यह भी बताया गया था कि धारवाड़में अब्राह्मणोंके आन्दोलनके सिलसिलेमें सभाओंमें पत्थर फेंका जाना कोई असाधारण बात नहीं है। मैं यह बात कहकर केवल यह सूचित करना चाहता हूँ कि धारवाड़ इस तरह पत्थर फेंकनेके लिए जितना बदनाम है उतना दूसरा कोई शहर नहीं है। इसलिए इस घटनाका सम्बन्ध असहयोग या किसी अन्य यूरोपीय विरोधी आन्दोलनसे जोड़ना ठीक नहीं है। यद्यपि संवाददाताके पत्रमें ऐसी कोई साफ बात नहीं लिखी गई है; किन्तु वह जो कुछ कहता है उससे यह स्पष्ट है कि लोग नाटकमें लड़कियोंके भाग लेनेकी बातपर नाराज थे। संवाददाताका कहना

१. इस चिट्ठीमें जिसे उद्धृत नहीं किया जा रहा है, संवाददाताने भारतीयोंके सहायतार्थ किये गये एक कार्यक्रमका उल्लेख किया है जिसका आयोजन धारवाड़में भारतीयोंसे सहानुभूति रखनेवाली किसी यूरोपीय महिलाने किया था। इरादा पहले भारतीय लड़कियों द्वारा कोई नाटक अभिनीत करनेका था, किन्तु लड़कियोंके अभिभावकोंके कहनेसे उसके स्थानपर गायन और कविता पाठका कार्यक्रम रखा गया। मनोरंजनके इस कार्यक्रमके बीच और अन्तमें युवकोंकी एक भीड़ने, जिसे संवाददाताके कथनानुसार असहयोगियोंने भड़का दिया था, संयोजकों और अतिथियोंपर पत्थर फेंके थे।

है कि अभिभावकोंको इच्छा मालूम होते ही नाटक ऐन वक्तपर रोक दिया गया था। अवश्य ही पहले नाटक खेलनेका आग्रह किया गया होगा और उससे लोगोंमें नाराजी पैदा हुई होगी।

लेकिन इसमें मेरी साफ राय यह है कि उत्तेजनाके चाहे जितने कारण क्यों न रहे हों "नवयुवकोंकी [उत्पाती] भीड़"का उपद्रव करना उचित कदापि नहीं ठहराया जा सकता। यदि लड़कियोंके अभिभावकोंको आपत्ति नहीं थी तो जिस नाटकको खेलनेका अन्ततोगत्वा निश्चय किया जा चुका था, उसे रोकनेका उन्हें कोई अधिकार न था। जनतन्त्रवादीकी सबसे खरी कसौटी यही है कि प्रत्येक मनुष्य जैसा चाहे वैसा कर सके; बशर्ते कि उससे किसी दूसरे मनुष्यके जीवन और धन-मालको क्षति न पहुँचती हो। जनताकी नैतिकताकी रक्षा हुल्लड़ मचाकर नहीं की जा सकती। समाज केवल लोकमतसे ही शुद्ध और स्वच्छ रह सकता है। यदि धारवाड़के युवक यह पसन्द नहीं करते हैं कि धारवाड़की लड़कियाँ मंचपर सार्वजनिक रूपसे अपना प्रदर्शन करें तो वे सार्वजनिक सभाएँ करते और अन्य प्रकारसे अपने पक्षमें लोकमत बनाते। असहयोग आन्दोलनका उद्देश्य इस हुल्लड़-जैसी सभी अनुचित कार्रवाइयोंको रोकना है। निश्चय ही असहयोगियोंसे धारवाड़-जैसी हिंसात्मक वारदातोंमें हिस्सा न लेनेकी अपेक्षा की जाती है। इतना ही नहीं बल्कि वे दूसरोंको भी रोकें। जिस हदतक असहयोगी हिंसाकारी शक्तियोंपर नियन्त्रण कर सकेंगे, असहयोग उसी हदतक सफल होगा। सम्भव है कि सब लोग [illegible] कार्यक्रममें भाग न ले सकें; किन्तु यह तो सभीको मानना चाहिए कि वाणी और कर्ममें अहिंसाका पालन करना आवश्यक है।

मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि संवाददाताने अपने आवरक पत्रमें धारवाड़की हुल्लड़बाजी और जलियाँवाला बागके हत्याकांडका उल्लेख साथ-साथ किया है। एक जगह बिना किसी उत्तेजनाके निर्दयतापूर्वक, योजना बनाकर निर्दोष लोगोंकी हत्या की गई थी और दूसरी जगह "युवकोंकी एक उपद्रवी भीड़"के द्वारा कल्पित या वास्तविक बुराईसे उत्तेजित हो जानेके कारण विचारहीन प्रदर्शन किया गया था। पत्रलेखकने इन दोनों कृत्योंकी तुलना करते समय अपनी विवेक बुद्धिके असंतुलित होनेका परिचय दिया है। दोनों ही कृत्य निन्दनीय हैं। किन्तु धारवाड़के लड़कोंके कार्यक्रम और अमृतसरमें डायरकी जघन्य करतूतमें इतना अन्तर है जितना किसीपर मामूली चोट करने और उसे नेस्तनाबूद कर देनेके प्रयत्नमें है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १–१२–१९२०

४३. भाषण : इलाहाबादमें तिलक विद्यालयके उद्घाटनपर

१ दिसम्बर, १९२०

श्री गांधीने विद्यालयका[१] उद्घाटन करते हुए कहा : मुझे इस विद्यालयके उद्घाटनकी रस्म पूरी करते हुए बहुत प्रसन्नता हो रही है। मुझे श्री श्यामलाल नेहरूने बताया है कि विद्यालयका नाम राष्ट्रीय विद्यालय नहीं, तिलक विद्यालय होगा। स्वराज्यके लिए जितना आत्मत्याग श्री तिलकने[२] किया है उतना किसी दूसरे व्यक्तिने नहीं किया। इसलिए उस महान देशभक्तके नामपर इसका नाम रखा जाना उचित ही है। यदि कालेजके विद्यार्थी आयेंगे तो कालेज भी खोला जायेगा। विद्यालयमें वे सभी विषय पढ़ाये जायेंगे जो दूसरे स्कूलोंमें पढ़ाये जाते हैं। इसके बाद उन्होंने विद्यालयकी कार्यकारिणीके सदस्योंके नाम घोषित किये। इनमें पं० मोतीलाल नेहरू, अध्यक्ष, और सर्वश्री जवाहरलाल नेहरू, मोहनलाल नेहरू, श्यामलाल नेहरू और गौरीशंकर मिश्र सदस्य थे। उन्होंने आगे कहा : विद्यालयमें १५ अध्यापक हैं जिनमें से कुछके पास डिगरियाँ हैं। मेरा खयाल है कि ये सभी ऊँचे चरित्रके लोग हैं। यदि अध्यापक अच्छे हों तो विद्यालय उन्नति करेगा। जिन लोगोंने विद्यालयकी सेवा करनेका वचन दिया है, उन्हें दूसरी सब बातें भुला देनी चाहिए। कुछ स्कूलोंमें अध्यापक अपने कामके अलावा दूसरे बाहरी काम भी करते हैं। इस विद्यालयमें ऐसा नहीं होना चाहिए। राष्ट्रीय विद्यालयके अध्यापकोंका अपना पूरा ध्यान विद्यालयके कामपर केन्द्रित रहना चाहिए। विद्यालयमें छात्रोंको कुर्सियाँ और डेस्कें नहीं मिलेंगी। सरकारने हममें उनके उपयोगकी बुरी आदत डाल दी है। किन्तु आप लोग केवल आसनोंका प्रयोग करनेके लिए तैयार रहें। आप अपनी विद्या और चरित्रशीलतासे यह दिखायें कि आप दूसरे स्कूलोंके छात्रोंसे अच्छे हैं। इस संस्थामें आपको कोई सुख-सुविधा नहीं मिलेगी। यदि जरूरत होगी तो छात्रोंको खुलेमें पेड़ोंके नीचे बैठकर पढ़ना-लिखना होगा और मेरी रायमें भारतकी प्राचीन पद्धतिमें तो इस बातपर आग्रह किया जाता था। प्राचीन कालमें जब वर्षाकाल आता था, छात्र खेतोंमें काम किया करते थे। मुझे यह देखकर प्रसन्नता होती है कि विद्यालयके पाठ्यक्रममें टाइप, संकेतलिपि, कताई और बुनाईके विषय भी सम्मिलित होंगे। लड़कोंको उर्दू और देवनागरी दोनों लिपियाँ सीखनी होंगी। आपका ऐसा करना स्वराज्य और हिन्दू मुस्लिम ऐक्य, दोनों ही दृष्टिसे अच्छा है। दोनों लिपियोंको सीखनेसे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही बहुत-कुछ सीखेंगे। मेरे

१. यह राष्ट्रीय हाई स्कूल स्वराज्य सभाके कार्यालयमें चलाया जाता था। स्कूलकी कार्यकारिणीने इसे गांधीजी द्वारा बताई हुई पद्धतिसे चलानेका निश्चय किया था।

२. लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक; (१८५६–१९२०)।

मित्र श्री शौकत अलीने मुझे बताया है कि भारतीय भाषाओंमें उर्दूका साहित्य बहुत सम्पन्न है। इस बारेमें मैं उनसे सहमत हूँ। उर्दू, बंगला या गुजरातीसे अधिक शक्तिशाली है; क्योंकि उर्दू लिखनेवाले मौलवियोंने किसी विदेशी भाषासे नहीं अरबीसे प्रेरणा ली है। उन्होंने अंग्रेजीसे कभी कोई पुस्तक अनुवादित नहीं की। मेरा खयाल है कि उर्दू लिपि सीखनेके बाद लड़के सादी और फारसीके दूसरे शायरोंकी कृतियाँ पढ़ सकेंगे।

उन्होंने खास तौरसे छात्रोंको सम्बोधित करते हुए कहा कि आप आज स्वराज्यकी दिशामें एक कदम आगे बढ़े हैं। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप अपने आचरणसे अहिंसात्मक असहयोगको सफल बनायें।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, ३-१२-१९२०

४४. भाषण: फुलवारी शरीफमें[1]

२ दिसम्बर, १९२०

महात्मा गांधीने... सभामें हिन्दीमें भाषण देते हुए पहले श्रोताओंसे प्रार्थना की कि वे उन्हें बैठकर भाषण देनेकी अनुमति दें क्योंकि वे कमजोरीके कारण खड़े नहीं हो सकते। तत्पश्चात् उन्होंने कहा: मुझे खुशी है कि आज मुझे पीर साहबके प्रति सम्मान प्रकट करने और हिन्दुओं और मुसलमानोंको इतनी बड़ी संख्यामें उपस्थित देखनेका अवसर मिला है। मैं आशा करता हूँ कि यहाँके हिन्दू और मुसलमान ईश्वर और देशके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे। मैं इस्लामको उसके विनाशका जो आयोजन किया गया है उससे बचानेके प्रयासमें हूँ। हिन्दू हो या मुसलमान सभीका यह कर्त्तव्य है कि वे इसमें मेरी सहायता करें। इसमें प्राण गँवा देना भी श्रेयस्कर है। मैं चाहता हूँ कि पहले तो पंजाबमें किये गये अत्याचारोंकी क्षतिपूर्ति की जाये और देशको स्वराज्य भले ही फिर मिले; ताकि ऐसे अत्याचारोंकी पुनरावृत्ति न हो। हिन्दू और मुसलमान एक ही माँके दो बेटे हैं। उन्हें अनुभव करना चाहिए कि वे एक ही हैं। उन्हें शान्तिसे रहना चाहिए; वे हिंसाके रास्ते चलकर सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। हमें अपनी तलवारें म्यानसे नहीं निकालनी चाहिए, और अपने सब काम बिलकुल अहिंसक रहकर करने चाहिए। हम सरकारको तभी सुधार सकते हैं जब हम उससे अपना पूरा सम्बन्ध तोड़ लें। कांग्रेस और मुस्लिम लीग-जैसी सम्मानित संस्थाएँ अपना फैसला दे रही हैं। इतना कह चुकनेके बाद गांधीजीने अपने कार्यक्रमके

१. फुलवारी शरीफ (बिहार); यह भाषण एक सार्वजनिक सभामें दिया गया था जिसमें मौलाना अबुल कलाम आजाद, मौलाना शौकत अली और राजेन्द्रप्रसाद भी उपस्थित थे।

विभिन्न चरणोंका जिक्र किया और कहा : हम चाहते हैं कि विलायती चीजोंको काममें लाना बन्द कर दिया जाये। आप स्वदेशी चीजोंको ही काममें लायें। हमें अपनी माताओं और बहनोंको चरखे देने चाहिए। यदि वे भोंडे और महँगे भी हों तो भी उन्हें इसकी परवाह न करनी चाहिए। यह अत्यन्त सौभाग्यकी बात है कि पीर साहब हमारी सहायता कर रहे हैं और लोगोंको इस रास्तेपर चलना बता रहे हैं। यहाँ एक राष्ट्रीय मदरसा खोला जा रहा है और मुझे उसको खोलनेकी रस्म पूरी करनेके लिए कहा गया है। यह कहा गया है कि इसमें तो थोड़ेसे ही लड़के हैं; लेकिन इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। उन्होंने आगे चलकर कहा : मैं छात्रोंके लिए शिक्षाकी वर्तमान प्रणाली-जैसी या उससे अच्छी कोई दूसरी योजना प्रस्तुत करना नहीं चाहता; मैं तो उन्हें बहादुर बनना और ईश्वर एवं अपने ऊपर विश्वास करना सिखाना चाहता हूँ। राष्ट्रीय विद्यालयोंमें उन्हें यह सिखाया जायेगा कि उन्हें जीवनकी आवश्यक वस्तुएँ सरकार नहीं देती, बल्कि ईश्वर देता है। तभी लोग स्वराज्य माँगनेके अधिकारी बन सकेंगे।[1]

[अंग्रेजीसे]
सर्चलाइट, ५-१२-१९२०

४५. भाषण : पटनामें

२ दिसम्बर, १९२०

महात्मा गांधीने सभामें कुर्सीपर बैठे-बैठे भाषण दिया। उन्होंने कहा : मैं चाहता हूँ कि इस्लामकी रक्षा हो, पंजाबके मामलेमें न्याय किया जाये और इस बातकी गारंटी दी जाये कि गुलामीके रूपमें किये गये अन्यायोंकी पुनरावृत्ति भविष्यमें न होने पाये। हमारे ये उद्देश्य केवल असहयोगसे ही पूरे हो सकते हैं। किन्तु इसके लिए हममें आपसी सहयोग होना आवश्यक है। मुझे खेद है कि हम आपसमें सहयोग नहीं करते। मैं देखता हूँ, हम संगठनके कामोंमें लगे रहकर भी भड़क जाते हैं और मतभेदोंको सहन नहीं करते। किन्तु मैं चाहता हूँ कि आप एक बात याद रखें। आपको यदि इस्लामकी रक्षा करनी है और स्वराज्य लेना है तो आपसमें सहयोग करना निहायत जरूरी है। मुझे बेतियासे यह दुःखजनक समाचार मिला है कि हमारे अपने ही भाइयोंने (यद्यपि वे पुलिसमें हैं) वहाँ एक तरहका मार्शल लॉ लागू कर रखा है।[2] जब

१. इस सभाके बाद महात्माजी और उनके साथी मोटरसे 'कौमी मदरसे' गये। महात्माजीने मदरसेका उद्घाटन किया। **सर्चलाइटने** आगे खबर दी है: "वहाँ श्री गांधीने पासके एक छज्जेपर बैठी कुछ पर्दानशीन औरतोंको सम्बोधित करते हुए कहा कि आप लोग सूत कातें और कपड़ा बुनें तथा उसका उपयोग अपने लिए तथा अपने पतियों और बाल-बच्चोंके लिए करें। आप विदेशोंमें बने महीन कपड़े पहनना छोड़ दें। उन्होंने स्त्रियोंसे प्रार्थना की कि वे पुरुषोंको सादगी सिखायें और उन्हें दृढ़ बनायें।"

२. देखिए "भाषण : बेतियामें", ८-१२-१९२० ।

पंजाबमें मार्शल लॉ लागू किया गया था तब वाइसरायने उसके नियन्त्रणके लिए कुछ विनियम बनाये थे; लेकिन बेतियामें ऐसा भी नहीं किया गया। हाँ, यह जरूर है कि बेतियामें मार्शल लॉ इतनी सख्तीसे लागू नहीं किया गया जितनी सख्तीसे वह पंजाबमें किया गया था। किन्तु, उक्त गाँवोंमें कम सख्त रूपमें ही सही मार्शल लॉ लागू अवश्य किया गया है। पुलिसने वहाँ सरकारकी आज्ञाके बिना भारी अन्याय किया है और खबर मिली है कि उसने वहाँ हमारी माताओं और बहनोंका शीलभंग किया है। मैं नहीं जानता कि अखबारोंमें जो-कुछ छपा है वह सच है या नहीं; किन्तु यदि मान लें कि वह सब सच है और जिन गवाहोंने वह सूचना दी है कि वे विश्वस्त हैं, तो उसके अनुसार वहाँ सम्पत्ति लूटी गई है, स्त्रियोंका अपमान किया गया है और उनके साथ दुर्व्यवहार किया गया है और यह सब सरकारकी आज्ञाके विरुद्ध।

जबतक हमारा आचरण इस तरहका रहेगा तबतक हम गुलाम रहेंगे और तबतक न हम स्वराज्य ले सकेंगे और न खिलाफतकी रक्षा ही कर सकेंगे। निःसन्देह हम अदालतोंमें शिकायत लेकर नहीं जायेंगे; क्योंकि वह तो पाप ही होगा। यदि हम मामला वहाँ ले भी जायें तो उससे हम स्वतन्त्रताकी दिशामें तनिक भी नहीं बढ़ेंगे; हाँ, हम पुलिसके लोगोंको जेल जरूर भिजवा सकेंगे। हमारा उद्देश्य वर्तमान शासन प्रणालीको समाप्त कर देना है; किन्तु जबतक उसका अन्त नहीं होता तबतक उन लोगोंसे क्या कहा जाये जिन्होंने एक अत्याचारी सरकारसे अत्याचार करना सीख लिया है? हमारा मुख्य कर्त्तव्य अपने बीच पूर्ण एकता स्थापित करना है। यदि हम आज एकता प्राप्त कर लें तो हमें एक दिनमें ही स्वराज्य मिल जायेगा। महात्मा गांधीने आगे चलकर कहा: बिहारमें चुनावोंमें[1] बहुत ही कम लोगोंने मतदान किया है; इसके लिए वह बधाईका पात्र है। जो लोग स्वतन्त्रताकी तनिक भी परवाह करते हैं उन सभीने कौंसिलोंमें जानेका विचार छोड़ दिया है। कुछ लोग कौंसिलोंमें गये भी हैं; किन्तु उन्हें अधिकांश मतदाताओंसे मतदान प्राप्त नहीं हुआ। फिर भी वे अपनेको लोक-प्रतिनिधि कहते हैं। यहाँ गांधीजीने एक पत्रका उल्लेख किया। यह उन्हें फुलवारी शरीफमें, जहाँ वे श्रद्धास्पद मौलाना बदरुद्दीनसे मिलने गये थे, वहाँके हिन्दुओंने दिया था। इस पत्रमें कहा गया था कि यहाँके मुसलमान भाइयोंसे हमारा सम्बन्ध प्रेमपूर्ण नहीं कहा जा सकता। उन्होंने दुर्गा पूजाके हमारे उत्सवमें बाधा पहुँचाई। इस सम्बन्धमें गांधीजीने कहा: यद्यपि बिहार हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए प्रसिद्ध है; किन्तु जब यह शिकायत मेरे ध्यानमें लाई गई तो मेरे मनमें अवश्य ही यह खयाल आया कि यहाँ दालमें कुछ काला है। शाहाबादके दंगेकी याद मुझे अभी भूली नहीं है और यह भी याद है कि वहाँ पहल हिन्दुओंकी ओरसे की गई थी। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप लोग ऐसे मतभेदोंको आपसमें ही तय कर लिया करें और यदि आपका उद्देश्य शासनको सुधारना और शुद्ध करना है तो आप पहले अपनी शुद्धि करें।

१. विधान परिषदके चुनावोंमें।

दूसरी बात जिसपर मैं आपसे जोर देकर बात करना चाहता हूँ, यह है कि असहयोगका स्वरूप अहिंसात्मक है। आपको अपनी तलवारें म्यानोंमें रख लेनी पड़ेंगी और पूर्ण आत्मसंयम सीखना होगा। जिन पुलिसवालोंने चम्पारनमें स्त्रियोंके साथ बदसलूकी की थी हम उनको भी चोट पहुँचाना नहीं चाहते। असल बात यह है कि यदि उनसे मेरी कहीं भेंट होती तो हिन्दुओंकी ओरसे मैं उन्हें विनयपूर्वक कहता कि जैसा उन्होंने किया है वैसा करना उनका काम नहीं था। मै तो सत्यके बलपर विजय चाहता हूँ। किसी भारतीयको गाली देना या चोट पहुँचाना सदा ही अनुचित है और अशिष्टता भी। मैं किसी भी व्यक्तिको अपने ऊपर हाथ उठानेका अवसर नहीं देना चाहता क्योंकि मै हिंसासे घृणा करता हूँ।

इसके बाद गांधीजीने धनके लिए अपील की। उन्होंने कहा : मैं एक महीनेसे रुपया माँगता आ रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप जो-कुछ दे सकें अवश्य दें। मैं लखपतियोंसे लाखों नहीं माँगता, मैं तो अपने ३० करोड़ लोगोंमें से हरएकसे एक-एक रुपया या एक-एक पैसा माँगता हूँ। इस सम्बन्धमें मुसलमानोंका कर्त्तव्य दुहरा है। उन्हें इस कोषमें स्मर्नाके पीड़ितोंका कष्ट दूर करनेके लिए तो रुपया देना ही है, राष्ट्रीय मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़के सहायतार्थ भी रुपया देना है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपका रुपया कांग्रेसके लिए या किसी अन्य कार्यमें खर्च नहीं किया जायेगा; बल्कि विशुद्ध असहयोग चलानेमें और स्कूल खोलनेमें, संक्षेपमें कहें तो स्वराज्य लेनेके लिए खर्च किया जायेगा। मैं रुपयेकी व्यवस्थाके लिए एक समिति बना दूँगा और उसके खर्चका हिसाब नियमित रूपसे पत्रोंमें प्रकाशित किया जायेगा। इसके अलावा बिहारमें जो रुपया इकट्ठा होगा वह बिहारमें ही खर्च किया जायेगा। मुझे दुःख है कि मुझे रुपया माँगना पड़ता है, क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ कि हममें से अनेक लोग जिन्होंने पहले रुपया इकट्ठा किया था, सच्चे नहीं थे और कभी-कभी तो उन्होंने लोगोंसे कांग्रेसके नामपर रुपया ठगा। गांधीजीने जनतासे सफलता प्राप्त करनेके लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न करनेकी अपील की। जबतक हिन्दू और मुसलमान आपसमें भाई-भाईकी तरह नहीं रहते, जबतक वे एक दूसरेसे मिलकर काम नहीं करते, जबतक वे अपने गुस्सेपर काबू नहीं कर लेते और त्याग करनेके लिए तैयार नहीं हो जाते, जबतक दोनों कांग्रेस और लीगके[1] निर्देशोंका पालन नहीं करते तबतक वे शैतानी सरकारके शासनसे मुक्त नहीं हो सकते। यह तो स्वतन्त्रतासे पहलेकी तैयारी है। कौंसिलोंके बहिष्कारमें त्यागकी कोई बात नहीं है; किन्तु वह तो शुद्धिका एक साधन-मात्र है और मैं प्रभुसे प्रार्थना करता हूँ कि वह हमारी आत्माओंको शुद्ध करे।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ५–१२–१९२०

१. आल इंडिया मुस्लिम लीग।

४६. भाषण: विद्यार्थियोंकी सभा, पटनामें[1]

३ दिसम्बर, १९२०

महात्मा गांधीने लड़कोंको सम्बोधित करते हुए कहा: मुझसे मौलाना शौकत-अलीने कहा है कि हिन्दी भाषा इतनी अधिक दरिद्र है कि मैं श्रोताओंपर जितना प्रभाव डालना चाहता हूँ उतना हिन्दी में बोलकर डाल ही नहीं सकता। क्या आप लोग चाहते हैं कि मैं आपके सामने अंग्रेजीमें भाषण दूँ? इसपर सब लड़कोंने कहा कि वे उनका भाषण हिन्दुस्तानीमें सुनना चाहते हैं। तब गांधीजीने अपना भाषण हिन्दीमें आरम्भ[2] किया। उन्होंने बताया कि हिन्दुस्तानीसे उनका अभिप्राय क्या है। उन्होंने कहा कि बिहारी लोग जो भाषा बोलते हैं, वही वह भाषा है जो भारतकी राष्ट्रभाषा हो सकती है। यद्यपि मैं देवनागरी लिपिको राष्ट्रीय लिपि बनानेके पक्षमें हूँ, फिर भी मैं सभी भारतीयोंसे प्रार्थना करता हूँ कि जबतक हमारे मुसलमानभाई देवनागरी लिपिको स्वीकार नहीं कर लेते तबतक वे देवनागरी लिपि और फारसी लिपि दोनों ही सीखें। छात्रोंके कर्त्तव्य बताते हुए उन्होंने कहा कि सभी छात्रोंको उन सरकारी स्कूलों और कालेजों अथवा उन सभी संस्थाओंको जिनका सरकारसे कुछ भी सम्बन्ध है, छोड़ देना चाहिए। आगे चलकर उन्होंने बताया कि ब्रिटिश सरकारने किस प्रकार हिन्दु और मुसलमान दोनोंको धोखा दिया है और इस प्रकार अपने साथ सहयोगका अधिकार खो दिया है। उन्होंने वर्तमान शासनकी तुलना रावण-राज्यसे करते हुए कहा कि कुछ अच्छी धार्मिक बातें जैसे संयम, यज्ञ आदि तो रावण-राज्यमें भी विद्यमान थीं। लेकिन वे सब दूषित उद्देश्यसे सम्पन्न की जाती थीं। इसलिए उनसे किसी शुभ परिणामकी अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। जब लोकमान्य तिलक जीवित थे तब मेरा खयाल था कि वे जब अंग्रेजी शासनकी निन्दा करते हैं तब उसमें कुछ अत्युक्ति रहा करती है। परन्तु उनकी मृत्युके बाद जलियाँवाला बागकी घटना[3], टर्कीकी शान्ति-सन्धि और ऐसी ही अन्य घटनाओंने मुझे लोकमान्य तिलकसे सहमत होनेके लिए विवश कर दिया है। किन्तु फिर भी मैं लोकमान्य तिलककी 'शठं प्रति शाठ्यम्'की नीतिको नहीं मान सका हूँ। मैं शैतानका मुकाबला शैतानके तरीकेसे करना पसन्द नहीं करता। मुझे तो यही आवश्यक मालूम होता है कि शैतानको भगवानकी मददसे अर्थात् शुद्ध हृदय तथा शुद्ध उद्देश्यसे जीता जाये। खुदाने शैतानको सिर्फ अपने खुदाई साधनोंसे ही हराया था। वर्तमान सरकार चूँकि शैतानी सरकार है, इसलिए वह

१. यह सभा मौलवी मजहरुल हकके निवासस्थानके अहातेमें राजेन्द्रप्रसादकी अध्यक्षतामें हुई थी।

२. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

३. यहाँ उस हत्याकाण्डका उल्लेख है जो १३ अप्रैल, १९१९ को जनरल डायरकी आज्ञासे इस स्थानपर किया गया था; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १९०–९४।

भारतकी कोई सहायता नहीं कर सकती। मैं यह बात निर्भयतापूर्वक कहता हूँ कि इस सरकारको सुधारा या समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यह कार्य सरकारको किसी प्रकारकी सहायता देकर या उससे कोई सहायता लेकर नहीं किया जा सकता। अपना भाषण जारी रखते हुए उन्होंने कहा कि मैं 'गीता' रावणसे नहीं पढ़ सकता चाहे वह उसके लिए कोई ऋषि ही क्यों न भेजे, क्योंकि उसमें भी उसका मंशा दूषित तो हो ही सकता है।

मुझे तो ऐसा लगता है कि पंडित मदनमोहन मालवीय अपने काशी विश्वविद्यालयमें जो शिक्षा देते हैं उसमें भी कुछ-न-कुछ खराबी है। भारत सरकार उनको खुश रखनेकी कोशिश कर रही है। हिन्दू विश्वविद्यालयके संगठनकर्त्ता यह नहीं देख पाते कि सरकारका हेतु अच्छा नहीं है। गुलामोंका मालिक गुलामोंको स्वतन्त्रताकी शिक्षा कभी नहीं दे सकता। मिलकी कृतियोंको पाठ्यक्रममें रखनेका मेकॉले और अन्य लोगोंका जो स्वतन्त्रता और स्वाधीनताके वातावरणमें पले थे, हेतु बुरा ही था। यह सरकारका कर्त्तव्य नहीं है। यदि मैं मुसलमान लड़कोंको 'कुरान शरीफ' पढ़ानेका दिखावा करूँ या मौलाना अबुल कलाम[1] हिन्दू लड़कोंको 'गीता' पढ़ानेका ढोंग रचें तो दालमें कुछ-न-कुछ काला माना जायेगा। मैं बाबू राजेन्द्रप्रसादसे[2] 'गीता' पढ़ सकता हूँ। मुसलमान लड़के मौलवियोंसे 'कुरान' पढ़ सकते हैं। मेरी मुक्ति 'कुरान' में नहीं, 'गीता' से होगी। मेरे लिए 'गीता' ही सर्वोत्तम धर्म-ग्रन्थ है। मैं उसका त्याग नहीं कर सकता। मेरे बुजुर्गोंने 'गीता'से स्वर्ग प्राप्त किया है और उन्होंने मुझे उसीका पाठ करना और उसमें श्रद्धा रखना सिखाया है। मैं किसी भी धर्मको अपने धर्मसे ऊँचा नहीं मानता और जिस दिन मेरा यह विचार बदल जायेगा उसी दिन मैं अपना धर्म बदल दूँगा। महात्माजीने आगे कहा : मैं स्वतन्त्रताका पाठ पढ़नेके लिए गुलामोंके पास नहीं जाऊँगा। स्वतन्त्रताकी शिक्षा तो अरब, पठान और मिस्री लोग दे सकते हैं। अरब लड़कोंको जब सभ्यता, शिक्षा या सरकारी नौकरियोंके रूपमें प्रलोभन दिया गया तो उन्होंने उसे लेनेसे इनकार कर दिया। मैं लॉर्ड सिन्हासे स्वतन्त्रताकी शिक्षा नहीं ले सकता। हाँ, मौलाना शौकत अलीसे जरूर ले सकता हूँ क्योंकि उन्होंने अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया है। सर एडवर्ड गेट[3] एक भले मनुष्य हैं। मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूँ। मैं यह भी मानता हूँ कि वे गवर्नरोंमें सबसे अच्छे हैं। लेकिन यदि वे मुझे मिल जायें, तो मैं उनसे यही कहूँगा कि आप जिस सरकारके नौकर हैं वह सरकार बुरी है। मैं आपके हाथसे स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकता। श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज अंग्रेज हैं। उन्होंने हमें यह सलाह दी है कि हम ब्रिटिश सरकारकी परवाह

१. मौलाना अबुल कलाम आजाद।

२. १८८४–१९६३; राजनीतिज्ञ और विद्वान; भारतीय संविधान सभाके अध्यक्ष, १९४६-४९; भारतके प्रथम राष्ट्रपति।

३. चम्पारन सत्याग्रहके दौरान सन् १९१७ में बिहार और उड़ीसाके लेफ्टिनेंट गवर्नर।

न करके स्वराज्य प्राप्त करें। मुझे तो ऐसा लगता है कि श्री एन्ड्रयूज ऐसा कहकर बहुत ज्यादा आगे बढ़ रहे हैं। मैं तो इसके लिए तैयार हूँ कि अंग्रेज हमारे नौकर या देशवासी बनकर रहें। मुझे किसी भी धर्म, जाति या मत-मतान्तरके किसी भी मनुष्यके साथ, यदि वह भारतीयोंके प्रति सच्ची भावना रखता है, सहयोग करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। मेरा आन्दोलन असहयोगका आन्दोलन है। मैं चाहता हूँ कि समस्त भारतसे यूनियन जैक हटा दिया जाये। जबतक यह सम्भव न हो तबतक मैं चाहता हूँ कि वह विभिन्न इमारतोंपरसे जरूर हटा लिया जाये और जिन इमारतोंपर यह फहराता रहे उनका बहिष्कार किया जाये। मेरी सलाह है कि लोग सरकारी समारोहोंका बहिष्कार करें। सरकारी संस्थाएँ मुझे जलते हुए मकानोंकी तरह लगती हैं, छात्र उनसे अलग रहें। भारतीय सब चीजोंका एकाएक बहिष्कार नहीं कर सकते, क्योंकि वे दीर्घकालसे गुलामीके बन्धनोंमें रह रहे हैं। हम जो अन्न खाते हैं उसका भी सरकारसे कुछ सम्बन्ध है, क्योंकि वह उन जमीनोंमें पैदा किया जाता है जिनकी मालिक सरकार है। लेकिन लोगोंको जानबूझकर सरकारसे सहयोग न करना चाहिए। हम धीरे-धीरे हर चीजसे मुक्त हो सकते हैं। गांधीजी बोल ही रहे थे कि कुछ और लोग जो बाहर खड़े थे, धक्कामुक्की करके भीतर आने लगे। गांधीजीने तुरन्त कहा कि समय बहुत कीमती है। मेरी समझमें नहीं आता कि हमारे युवक जो इतने न्याय-प्रिय और सच्ची भावनावाले हैं, जो अपने जीवनको आरम्भ ही कर रहे हैं, समयकी पाबंदीकी इतनी उपेक्षा कैसे कर सकते हैं। मैं आपको बताता हूँ कि स्व० गोखले[1] समयको कितना मूल्यवान मानते थे। जब उन्होंने भारत सेवक समाजकी स्थापना की तब वे अपने भाषणसे पूर्व सभाभवनके द्वार बन्द करवा देते थे। घोषित समयके ठीक दो मिनट बाद द्वार बन्द कर दिया जाता। तब वे सर टाटा[2] तकको भी जो उनके मुख्य सहायक थे, भवनमें नहीं आने देते थे। अपने विषयको पुनः आरम्भ करते हुए गांधीजीने कहा: किसी व्यक्तिने मुझसे कहा है कि श्री हसन इमाम[3] मेरे आन्दोलनका एक सप्ताहके अन्दर ही खात्मा कर देनेपर आमादा हैं। लेकिन जब मैं उनसे मिला तब उन्होंने मुझसे कहा कि यह सच नहीं है। इतना ही नहीं, जहाँतक असहयोगका सम्बन्ध है, वे मेरे साथ हैं और मुझे हर तरहकी सहायता देनेके लिए तैयार हैं। किन्तु उनकी समझमें यह नहीं आता कि अहिंसाका मतलब क्या है। यदि इस

१. गोपाल कृष्ण गोखले (१८६६–१९१५); शिक्षा शास्त्री और राजनीतिज्ञ; भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के संस्थापक।

२. सर रतनजी जमशेदजी टाटा (१८७१–१९१८); पारसी उद्योगपति और दानी।

३. हसन इमाम (१८७१–१९३३); कलकत्ता उच्च न्यायालयके न्यायाधीश; १९१६ में त्यागपत्र देनेके बाद पटना उच्च न्यायालयमें वकालत शुरू की। सितम्बर १९१८ में बम्बईके विशेष कांग्रेस अधिवेशनके अध्यक्ष बनाये गये; ये सेवर्समें टर्कीसे हुई सन्धिमें परिवर्तन करानेके लिए मुसलमानोंका शिष्टमण्डल लेकर इंग्लैंड गये थे।

शब्दको हटा दिया जाये तो वे इस आन्दोलनमें खुशीसे शामिल हो जायेंगे। मेरा आपसे अनुरोध है कि उसी हालतमें आप सरकारसे अपना सम्बन्ध तोड़ें जब आप उसे शैतानी सरकार मानते हों। यदि लॉर्ड चैम्सफोर्ड[1] मंजूर कर लें तो मैं बीमारीमें उनकी सेवा-शुश्रूषा खुशीसे करूँ। मैं उनको जहर नहीं दूँगा, बल्कि अपनी शक्ति-भर उन्हें स्वस्थ करनेका प्रयत्न करूँगा। किन्तु यदि वे मेरे आश्रमके लिए करोड़ों रुपये भी दें तो मैं उनकी सहायतासे इनकार कर दूँगा। मुझे बताया गया है कि कालेजोंके छात्रोंको नागपुर कांग्रेसके अवसरपर स्वेच्छासे अपनी सेवाएँ अर्पित करनेकी अनुमति दे दी गई है। किन्तु यह तो उन्हें शान्त करनेके लिए दी गई केवल एक रियायत-जैसी चीज है और वह किसी भी नाजुक मौकेपर वापस ले ली जा सकती है। जब समय आयेगा तब कितने ही कर्नल जॉन्सन[2] निकल जायेंगे और ६–७ सालके छोटे-छोटे लड़कोंको यूनियन जैकको केवल सलाम करानेके लिए जूनकी सख्त गर्मीमें १६ मील या उससे भी ज्यादा पैदल चलनेको मजबूर करेंगे।

अभिभावकोंको सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि वे लड़कोंको स्वतन्त्र बनायें। उन्हें फीस तो राष्ट्रीय कालेजोंमें भी देनी होगी लेकिन वहाँ वे यूनियन जैकको सलामी देनेके अपमानसे बच जायेंगे। हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ कालेजके अधिकारियोंका खयाल है कि वे सच्ची शिक्षा दे रहे हैं; लेकिन वह सच्ची शिक्षा नहीं है। वहाँ अध्यापक यह नहीं सिखा सकते कि भारत सरकार शैतानी सरकार है और विद्यार्थियोंको उसका अन्त करनेका प्रयत्न करना चाहिए। क्या वे सर एच० बटलरको[3] अपने कालेजोंका निरीक्षण करनेसे रोक सकते हैं? क्या छात्र यह साहस कर सकते हैं कि वे उनको सलाम न करें? यदि वे सलाम न करें तो यह स्वतन्त्रता नहीं, अशिष्टता मानी जायेगी। यदि ड्यूक ऑफ कनॉट ब्रिटिश सरकारके अंगके रूपमें मेरे आश्रममें आना और उसे देखना चाहें तो मैं उन्हें अपने आश्रममें पैर भी न रखने दूँगा। किन्तु यदि वे गैर सरकारी हैसियतसे आश्रम देखने आयें तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।

यदि आप स्वतन्त्र होना चाहते हैं तो आप पराधीनताका सूचक यह झंडा हटा दें। आप इन स्कूलों और कालेजोंको छोड़ दें तो मैं आपसे कोई वादा तो नहीं करना चाहता, फिर भी आपके लिए राष्ट्रीय संस्थाओंकी व्यवस्था करनेका प्रयत्न करूँगा। आपके लिए तो इतना ही आवश्यक है कि आप इस आगसे बचें। आप वर्तमान शिक्षासे दूर रहें।

असली शिक्षा तो अपना कर्त्तव्य पालन है। यदि हमारा देश स्वतन्त्र हो तो हमारे छात्र इंजीनियर, डाक्टर और किसान बन सकते हैं। आप इन गुलामीकी सनदोंका

१. १८६८–१९३३; भारतके वाइसराय, १९१६–१९२१।

२. कर्नल फ्रैंक जॉन्सन अप्रैल और मई १९१९ में मार्शल लॉके दिनोंमें लाहौर क्षेत्रके कमांडर थे।

३. संयुक्त प्रान्तके गवर्नर।

क्या करेंगे? आप मौलवी हक[1] और राजेन्द्र बाबूसे शिक्षा लें और स्वतन्त्र होकर अपने पैरोंपर खड़े हों। यह सोचना गुलामीका सूचक है कि सनदोंसे जीविका चलती है। भोजन सनदें नहीं, ईश्वर देता है। आप यह न सोचें कि आपकी माताओं और पत्नियोंकी क्या दशा होगी, आप उनका पालन-पोषण सरकारी नौकरीके द्वारा न करके कुलीगिरीसे करें। यदि आपमें इतना साहस हो तभी आप असहयोग करें, अन्यथा नहीं। मुझे विश्वास है कि यदि सभी लोग असहयोग करें तो हमें एक सालमें ही स्वराज्य मिल जायेगा। आप इसके लिए दूसरोंकी राह न देखें। जब किसीको हैजा होता है तो वह यह नहीं सोचता कि जब दूसरे लोग दवा ले लेंगे, मैं भी दवा लूँगा। इसमें कोई औचित्य नहीं है कि आप स्वयं स्वतन्त्र होनेके लिए दूसरोंके स्वतन्त्र होनेकी राह देखें। पहिले आप स्वयं स्वतन्त्र हों और तब गाँवोंमें जाएँ और उनके चलाये हुए छोटे-छोटे स्कूलोंमें वहाँके लोगोंको स्वतन्त्रताकी शिक्षा दें। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आप अपने माता-पिताओंका अनादर करें। आपकी अन्तरात्मा आदेश दे तो आप वैसा भी कर सकते हैं; लेकिन मेरे कहनेसे तो वैसा न करें। मैं स्वयं अपने माता-पिताका बहुत आदर करता था, इसलिए मैं तो आपको अपने माता-पिताकी आज्ञाका पालन करना ही सिखा सकता हूँ, उनके प्रति अशिष्ट होना नहीं। छात्र शान्त चित्तसे निर्णय करनेके बाद अपने अभिभावकोंको अत्यन्त आदरसे अपनी बात समझायें। मैंने अभिभावकोंसे भी अनेक बार कहा है कि वे अपने लड़कोंको स्कूलों और कालेजोंसे निकाल लें। अबतक इसपर किसीने भी आपत्ति नहीं की है। आप यह पूछ सकते हैं कि यह हमारी आत्माकी आवाज है, इसे हम कैसे जानें। मेरा कहना है कि यदि आप ईश्वरके प्रति सच्चे हैं और यमों और नियमोंका पालन करते हैं तो अभ्यन्तरमें उठनेवाली परमात्माकी वाणीको आप पहचान सकते हैं।

आपको उन लोगोंकी बात भी, जिनकी राय आपसे नहीं मिलती, धैर्यसे सुननी चाहिए। अब मैं आपको यह बताता हूँ कि छात्रोंको क्या करना है और कैसे करना है। आपको अपने ऊपर निर्भर रहना है, मेरे ऊपर नहीं। आप आज छात्र हैं, आपको ही कल नेता बनना है। आपको कोई निर्णय उतावलीमें नहीं करना चाहिए। यदि आपको स्कूलोंमें फिर जाना है तो इससे अच्छा यही है कि आप स्कूल छोड़ें ही नहीं। आन्दोलनमें एक बार शामिल हो जानेके बाद उससे विमुख होनेके बजाय गंगामें डूब मरना ज्यादा अच्छा है।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ८-१२-१९२०

१. मजहरुल हक (१८६६-१९३०); बिहारके प्रमुख वकील और सार्वजनिक कार्यकर्त्ता; इन्होंने मॉर्ले-मिन्टो सुधारोंके अन्तर्गत मुसलमानोंको पृथक निर्वाचन देनेका विरोध किया था। चम्पारन सत्याग्रहमें गांधीजीके मददगार। १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलनमें गांधीजीके समर्थक।

४७. भाषण: महिलाओंकी सभा, पटनामें[1]

३ दिसम्बर, १९२०

इसके बाद महात्माजीने बीमार होनेके कारण कुर्सीपर बैठकर बोलना शुरू किया। वे हिन्दीमें बोले।[2] उन्होंने पहले बैठे-बैठे भाषण देनेके लिए महिलाओंसे क्षमा माँगी और फिर कहा: मैं आपसे चार चीजोंकी भिक्षा माँगता हूँ। मैं और मौलाना शौकत अली, जिन्हें मैं अपना सगा भाई मानता हूँ, आपके सामने अपनी मातृभूमिके निमित्त कुछ-न-कुछ सेवा माँगनेके लिए आये हैं। मैं जानता हूँ कि पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक विनम्र और दयालु होती हैं; इसलिए मैं आशा करता हूँ कि मुझे अपनी माताओं और बहिनोंसे निराश न होना पड़ेगा।

मैं सबसे पहले हिन्दू और मुसलमान महिलाओंसे यह प्रार्थना करता हूँ कि परस्पर वे एक दूसरेको अपना दुश्मन न मानें और अपने बच्चोंको भी बचपनसे ऐसी ही शिक्षा दें, जिससे वे भी कभी एक दूसरेको दुश्मन न समझें। इससे मेरा मतलब यह नहीं है कि दोनों बिलकुल एक हो जायें या हिन्दू लोग वेदों और शास्त्रोंको पढ़ना और उनमें विश्वास करना छोड़कर 'कुरान' पढ़ने और उसमें विश्वास करने लगें; इसका मतलब यह भी नहीं है कि मुसलमान 'कुरान'का अध्ययन छोड़कर हिन्दुओंके 'वेद' और शास्त्र पढ़ने लगें। सभी लोग अपने-अपने धर्मोंमें दृढ़ रहें। जैसे भाई और बहिनमें विवाह नहीं होता, किन्तु फिर भी वे एक दूसरेसे प्रेम कर सकते हैं, इसी तरह हिन्दू और मुसलमान भी एक-दूसरेसे प्रेम करें और एक-दूसरेका आदर करें।

मेरी दूसरी भिक्षा यह है कि हरएक स्त्री चरखा चलाये और सूत काते। जो बहिनें अपने सूतको बेचना चाहें वे बेच भी सकती हैं। किन्तु जो उसे बेचना नहीं चाहतीं वे उसे दूसरोंको दान कर दें। दानोंमें वस्त्र-दान सर्वोत्तम है। जबसे भारतमें चरखा चलाना छोड़ा गया है, तबसे भारत और भी गरीब हो गया है। पहले जिन स्त्रियोंका निर्वाह चरखेसे होता था, वे अब गुलामीकी हालतमें बहुत दुःखी जीवन बिता रही हैं। वे अब ओवरसीयरोंकी गालियाँ सुनती तथा ईंटोंकी रोड़ी और पत्थरकी गिट्टियाँ तोड़ती हैं। मुझे चम्पारनमें ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ मिलीं जिनके पास अपने शरीरको ढकनेके लिए केवल एक धोती ही थी और इसलिए वे जब चाहें तभी गंगामें नहानेके लिए भी नहीं जा सकती थीं। जिस जमानेमें वे अपने हाथके कते सूतसे कपड़ा बुनवा लिया करती थीं, उस जमानेका स्वतंत्र जीवन अब नहीं रहा।

१. इस सभामें मौलाना अबुल कलाम आजाद और शौकत अली भी मौजूद थे।

२. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

मैं आपसे तीसरी भिक्षा यह माँगता हूँ कि आप अपने पुत्रों और भाइयोंको उन स्कूलोंमें न पढ़ने दें जो सरकारी हैं या जिन्हें वह सहायता देती है, क्योंकि इसका एकमात्र अर्थ अपने आपको पराधीनता और गुलामीकी जंजीरोंमें बाँधना ही है। उन्हें इन संस्थाओंमें कोई सामाजिक या धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती। वहाँ वे केवल शराब पीना, थियेटर जाना और आवारागर्दीकी जिन्दगी बिताना ही सीखते हैं। उन्होंने आगे कहा: जो सरकार इतनी अन्यायी है, जिसने हमारे मुसलमान भाइयोंके साथ इतनी दगा की है, जिसने पंजाबमें हमारी माताओं और बहनोंसे इतनी निर्दयताका व्यवहार किया है, उससे सहयोग करना सम्भव ही नहीं है। ऐसे शासनमें रहना हम कभी पसन्द ही कैसे कर सकते हैं? शैतान और खुदाके बीच कोई सहयोग नहीं हो सकता। इसी तरह हम न तो सरकारकी सहायता कर सकते हैं और न उससे सहायता ले सकते हैं; यह राज रावण-राज जैसा ही बुरा है। मैं तो रामराज्य स्थापित करना चाहता हूँ। दूसरे शब्दोंमें मैं पूर्ण स्वराज्य चाहता हूँ। और वह असहयोगके बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता।

मैं चौथी भिक्षा धनकी माँगता हूँ। भारतको धनकी बहुत जरूरत है। यहाँ तीन करोड़ लोग ऐसे हैं जिन्हें मुश्किलसे दिनमें एक बार खाना मिल पाता है। उनके पास इतना रुपया नहीं है कि वे चरखा या रुई खरीद सकें। उनको ये दोनों चीजें देनी होंगी जिससे वे सूत कात सकें और देशमें एक बार फिर स्वदेशी कपड़ेका प्रचार कर सकें। फिर लड़कोंके लिए राष्ट्रीय विश्वविद्यालय भी खोले जाने चाहिए। इसके लिए भी धनकी बहुत सख्त जरूरत है। उन्होंने आगे कहा: मुझे यह देखकर दुःख होता है कि सभामें बहुत-सी स्त्रियाँ इतने सारे कीमती जेवर पहन-पहन कर आई हैं। इसी देशमें ऐसे अनेक लोग हैं जो दरअसल भूखों मर रहे हैं, जबकि कुछके पास जेवर आदि बनवानेके लिए बहुत-सा रुपया फालतू पड़ा रहता है। मेरी प्रार्थना है कि आप ज्यादासे-ज्यादा जितना पैसा दे सकें दें और जेवर देना चाहें तो जेवर भी दें।[1] किन्तु आपको याद रखना चाहिए कि आप आभूषणोंको देनेके बाद उनके बदले दूसरे आभूषण तबतक न बनवायें जबतक भारतको पूरा स्वराज्य न मिल जाये।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ८–१२–१९२०

१. इस अपीलके उत्तरमें वहाँ मौजूद कितनी ही स्त्रियोंने अपने जेवर उतार कर दे दिये थे।

४८. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

४ दिसम्बर, १९२०

. . . ऐसा नहीं हो सकता मैं तुम्हें जान-बूझकर पत्र न लिखूँ। पर तुम्हें धीरज और विश्वास रखना सीखना चाहिए। मुझपर महात्मा होनेका आरोप मत लगाओ और न अपनेको अधम कहकर अपनी महिमा बढ़ाओ। हर आदमीको अपनी सीमाएँ स्वीकार करनी चाहिए। प्रेमियों और मित्रोंके बीच न कोई अधम होता है और न महात्मा। हम सब समान हैं, लेकिन बराबरीके पुरुषों और स्त्रियोंमें कोई बुद्धिमान होता है और कोई निर्बुद्धि। और सच तो यह है कि किसे मालूम कि कौन अधिक बुद्धिमान है? तुम मुझे इस भ्रममें रहने दो कि मैं तुमसे अधिक बुद्धिमान हूँ और इसलिए तुम्हें सिखाने-समझानेके लिए योग्य हूँ। लेकिन बहुत बार ऐसा हुआ है कि शिष्य ही गुरु बन गया। गोरख मछन्दरके गुरु बन गये थे। और मैं तो ईश्वरसे कामना करता हूँ कि वह मुझे इतनी बुद्धि दे कि तुम्हें सिखाने-समझानेमें मैं खुद भी तुमसे कुछ सीखूँ। सच मानो, अगर तुम्हें यह पद मिल जाये, तो इसमें मुझे कोई आपत्ति न होगी। सच तो यह है कि अगर मैं तुम्हें अपनेसे श्रेष्ठ बना सकूँ, तो मैं अपनेको सच्चा गुरु मानूँगा। जो भी हो, यही वह विश्वास है, जिसने मुझे तुमसे जोड़ रखा है। इसीलिए मैं भगवानसे प्रार्थना करता रहता हूँ कि वह तुम्हारे मनमें विनय और पश्चात्तापकी भावना उत्पन्न करे।

सस्नेह,

तुम्हारा,
एल० जी०[1]

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१. "लॉ-गिवर"; सरलादेवीको लिखे पत्रोंमें गांधीजीने अपने लिए इन शब्दोंका उपयोग किया है। देखिए खण्ड १८, पृष्ठ २०९-१० ।

४९. पत्र : गुड फैलोको

४ दिसम्बर, १९२०

प्रिय श्री गुडफैलो,

आपके पत्रके लिए कृतज्ञ हूँ। क्या आपको कभी ऐसा लगा है कि हमारी यह सरकार जान-बूझकर शराबकी बुराईको बढ़ावा दे रही है और जबतक इस सरकारको समाप्त न कर दिया जाये अथवा उसमें आमूल-चूल परिवर्तन न कर दिया जाये तबतक सुधारके हमारे तमाम प्रयास व्यर्थ होंगे ? जब कभी कुछ अधिक समयके लिए कलकत्ता आऊँगा तो आपसे सहर्ष मिलूँगा।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गां०

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे
सौजन्य : नारायण देसाई

५०. पत्र : हैदरीको

आरा[2] जाते हुए
४ दिसम्बर, १९२०

प्रिय मित्र,

हम लोग बाँकीपुरसे[3] अभी रवाना हुए हैं। मजहरुल हक हमारे साथ हैं। यह पत्र मैं यह सूचित करनेके लिए लिख रहा हूँ कि पिछली रात महिलाओंकी एक सभामें[4] जब मैंने चन्देकी माँग की तो श्रीमती हकने अपनी हीरेमोतीकी चार जड़ाऊ चूड़ियाँ सामने रख दीं। आप श्रीमती हैदरीको मेरी ओरसे बधाइयाँ दें कि उन्हें एक ऐसी महिलाकी बहन होनेका सौभाग्य प्राप्त है जो देश और दीनके लिए अपनी प्यारीसे-प्यारी चीज खुशी-खुशी दे देती हैं। जब उन्होंने चूड़ियाँ मेरे सामने रखीं, मैं तो बस हर्ष-विह्वल

१. गांधीजी १३ और १४ दिसम्बरको कलकत्तामें थे।
२. बिहारके शाहाबाद जिलेका सदर मुकाम।
३. पटना नगरमें एक स्थान।
४. पटनामें आयोजित महिलाओंकी सभा।

ही हो उठा। मैंने ईश्वरको इस बातके लिए धन्यवाद दिया कि मैं उसकी कृपासे तैयबजी परिवारके[1] सम्पर्कमें आया।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

५१. भाषण : आरामें

४ दिसम्बर, १९२०

महात्मा गांधी कुर्सीपर बैठे-बैठे ही बोले। उन्होंने कहा कि मुझे अपने सामने आराके लोगोंको इतनी बड़ी संख्यामें आया देखकर बड़ी ही खुशी हुई है; परन्तु यह देखकर दुःख भी होता है कि आप लोग सभामें अनुशासित ढंगसे[2] काम नहीं कर पा रहे हैं। आप लोगोंने इतना ज्यादा शोर किया कि आधा घंटा तो लोगोंको चुप करनेमें ही लगा देना पड़ा। यदि आप अपनेको अनुशासित और नियंत्रित नहीं कर सकते तो फिर आप एक सालमें स्वराज्य हासिल करनेकी आशा कैसे कर सकते हैं? स्वराज्य पानेकी यह पहली अनिवार्य शर्त है। आगे बोलते हुए महात्माजीने कहा कि शाहाबादमें कुछ बरस पहले जो दंगे हुए थे, उन्हें मैं भूला नहीं हूँ और मुझे यह भी मालूम है कि उसमें हिन्दू-मुसलमान दोनोंका ही कुछ-न-कुछ कसूर था। हिन्दू-गो-रक्षा करना चाहते थे परन्तु जो तरीका उन्होंने अपनाया वह उस कामके लिए उपयुक्त नहीं था। इसलिए दोनोंमें से किसीको उससे कोई लाभ तो हुआ ही नहीं, सरकारको स्थितिसे लाभ उठाकर हिन्दुओंको जेलमें ठूँसनेका मौका मिल गया। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आपको अपने मतभेद आपसमें तय कर लेने चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम एकताकी बड़ी जरूरत है। एकता दिखावटी नहीं, हृदय और आत्मासे होनी चाहिए। यदि आप इस्लामको खतरेसे बचाना चाहते हैं, पंजाबके अन्यायका परिमार्जन चाहते हैं और स्वराज्य हासिल करना चाहते हैं तो यह सब आपसी सहयोगसे ही हो सकता है। एक संन्यासीने मुझसे पूछा था कि क्या आपका यह विश्वास है कि खिलाफतके प्रति की गई गलतीके सुधार दिये जानेके बाद मुसलमान आपका साथ देंगे? दूसरी ओर कुछ मुसलमानोंकी शिकायत है कि मैंने अलीगढ़ कालेज नष्ट कर दिया

१. श्रीमती मजहरुल हक और श्रीमती हैदरी दोनों ही तैयबजी-परिवार की थीं।

२. आरामें इतनी बड़ी सभा पहले कभी नहीं हुई थी और कामपर तैनात स्वयंसेवक भीड़को सँभाल नहीं पाये।

परन्तु [बनारस] हिन्दू विश्वविद्यालयकी रक्षा की। पहली बातका मेरा यह जवाब है कि यदि सचाईके साथ हिन्दू मुसलमानोंकी मदद करते हैं तो ईश्वर जो मनुष्यके दिलको देखता है, मुसलमानोंके दिलसे दुर्भावको समाप्त कर देगा। और यह कहना कि हिन्दू विश्वविद्यालयके विद्यार्थी पढ़ना छोड़कर बाहर नहीं आये इससे उस विश्वविद्यालयकी रक्षा हुई है, ठीक नहीं है। यदि हिन्दू हिम्मत नहीं दिखाते तो क्या मुसलमानोंको भी कायर बन जाना चाहिए? मालवीयजीके लिए मेरे मनमें बड़ा आदरभाव है किन्तु जबतक उनके विश्वविद्यालयका कुछ भी सम्बन्ध सरकारसे बना हुआ है, मैं चाहता हूँ कि उसमें एक भी विद्यार्थी न रहे। मैं चाहता हूँ कि देशकी सभी मौजूदा संस्थाएँ राष्ट्रीय संस्थाएँ बन जायें। उन्होंने श्री हसन इमामके साथ हुई एक निजी बातचीतका[1] उल्लेख किया जिसमें इमाम साहबने उनसे पूछा था कि क्या असहयोगका अहिंसात्मक स्वरूप अहिंसात्मक बना रहेगा। मैंने कहा कि मैं तो अरसेसे यही कहता आ रहा हूँ। तब फिर श्री हसन इमामने शिकायत की कि विद्यार्थियोंने उनपर शर्म-शर्मके नारे कसे और गुस्ताखीका बर्ताव किया था [ऐसा करना ठीक नहीं है]। मेरा जनतासे अनुरोध है कि जो लोग हमसे भिन्न मत रखते हैं हमें उनके विचारोंके प्रति सहिष्णुता रखनी चाहिए और हमें उनके साथ ऐसे ढंगसे व्यवहार नहीं करना चाहिए कि हमारे उद्देश्यकी प्रगतिमें बाधा पड़े। इसके बाद महात्माजीने असहयोग कार्यक्रमकी तफसील सामने रखते हुए कहा कि यदि आप विदेशी चीजोंका इस्तेमाल छोड़ दें तो केवल इसीसे स्वराज्य मिल जाये। उन्होंने चरखेके घर-घर प्रवेश और उसके उपयोगपर बहुत बल दिया और कहा कि हमें इस शैतान-जैसी सरकारसे जो हमारे अधिकार और स्वतन्त्रताको कुचलनेके लिए कटिबद्ध है, कुछ सरोकार नहीं रखना चाहिए। इसके बाद उन्होंने कोषके लिए अपील की और कहा कि मुसलमानोंकी जिम्मेदारी दोगुनी है क्योंकि उनको [हाल हीमें बाँकीपुरमें स्थापित] स्वराज्य सभा और फिर स्मर्नाके पीड़ितोंकी राहतके लिए भी देना है।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ८–१२–१९२०

१. पटनामें।

५२. वैष्णवोंसे

वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीड पराई जाणे रे,
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।
सकल लोकमां सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्चल राखे, धन धन जननी तेरी रे।
समदृष्टीने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले, परधन नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नहि जेने, दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे,
रामनामशुं ताळी लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे।
वणलोभीने कपट रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे,
भणे नरसैंयो तेनुं दरसन करतां, कुळ एकोतेर तार्या रे। वै०

नरसिंह मेहताने[1] वैष्णवके जो लक्षण बताये हैं उससे हम देखते हैं कि वह:

१. परदुःख भंजक होता है।
२. फिर भी निरभिमानी होता है।
३. सबकी वन्दना करता है।
४. किसीकी निन्दा नहीं करता।
५. वाचा दृढ़ रखता है।
६. आचार दृढ़ रखता है।
७. मन दृढ़ रखता है।
८. वह समदृष्टि होता है।
९. वह तृष्णारहित होता है।
१०. एकपत्नीव्रत पालता है।
११. सत्यव्रत पालता है।
१२. अस्तेय पालता है।
१३. मायातीत होता है।
१४. वीतरागी होता है।
१५. रामनाममें तल्लीन होता है।
१६. पवित्र होता है।
१७. लोभरहित होता है।
१८. कपटरहित होता है।

१. १४१४–१४७८; गुजरातके सन्त कवि। इनका यह भजन आश्रममें प्रार्थनाके समय गाया जाता था।

१९. कामरहित होता है।
२०. क्रोधरहित होता है।

इसमें वैष्णव शिरोमणि नरसिंह मेहताने अहिंसाको प्रथम स्थान दिया है अर्थात् जिसमें प्रेम नहीं वह वैष्णव नहीं है। अपनी प्रभातीमें उन्होंने सिखाया है कि 'वेद' पढ़नेसे, वर्णाश्रम धर्मका पालन करनेसे, कंठी पहननेसे अथवा तिलक लगानेसे कोई वैष्णव नहीं हो जाता। ये सब पापके मूल हो सकते हैं। पाखण्डी भी माला पहन सकता है, तिलक लगा सकता है, 'वेद' पढ़ सकता है, मुखसे राम नामका जाप कर सकता है। लेकिन पाखण्डी रहते हुए सत्याचरणी नहीं बना जा सकता; पाखण्डी परपीड़ाका निवारण नहीं कर सकता और पाखण्डके रहते हुए चंचल चित्तको निश्चल नहीं रखा जा सकता।

मैं इन सिद्धान्तोंकी ओर सबका ध्यान आकर्षित करता हूँ; क्योंकि मेरे पास अन्त्यजोंके सम्बन्धमें पत्र आते रहते हैं। सब सलाह देते हैं कि यदि मैं राष्ट्रीयशालासे अन्त्यजोंका बहिष्कार नहीं करता तो स्वराज्यका आन्दोलन खत्म हो जायेगा। यदि मुझमें तनिक भी वैष्णवपन है तो ईश्वर मुझे अन्त्यजोंका बहिष्कार करके मिलनेवाले स्वराज्यका त्याग करनेका बल भी प्रदान करेगा।

जिसमें दूसरे वर्ग और वर्ण आते हैं उस शालामें अन्त्यजोंका बहिष्कार न किया जाये — यह प्रस्ताव मेरा न होकर समस्त नियामक सभाका[1] है। मुझे यह प्रस्ताव प्रिय है। यदि सभा ऐसा प्रस्ताव पास न करती तो वह अधर्म करती।

ऐसा प्रस्ताव कोई नई बात नहीं है। वर्तमान स्कूलोंमें भी यह प्रस्ताव है। जिस कांग्रेसको वैष्णव भी मान देते हैं उसने भी इसी आशयका प्रस्ताव पास किया है। वैष्णवोंने उसका विरोध नहीं किया। तथापि ऐसे प्रस्तावमें मेरा हाथ है और वे मेरी ही ओर कटाक्ष करते हैं, यह तो मेरी समझमें मुझे मान प्रदान करता है। भले ही सब अधर्म करें लेकिन मेरे हाथसे अधर्म नहीं होना चाहिए, ऐसा उनकी दलीलका भाव है। मेरे लिए यह हर्षकी बात है।

अन्त्यजोंको अस्पृश्य न मानना धर्म है, मैं यह बतानेका प्रयत्न कर रहा हूँ। लम्बे समयसे पड़े हुए एक आवरणके कारण हम यह नहीं समझ पाते कि अन्त्यजोंको अस्पृश्य मानना अधर्म करना है। जैसे लम्बे समयसे पड़े हुए आवरणके कारण अंग्रेजी राज्य अपने राक्षसपनको नहीं देख सकता और उसी प्रकार इसी कारणसे, हममें से कितने ही अपनी गुलामीकी जंजीरको नहीं देख पाते, ऐसे लोगोंको धीरजसे समझाना मैं अपना धर्म मानता हूँ।

लेकिन दम्भ और मिथ्यावादको मैं सहन नहीं कर सकता। महाराजश्रीके साथ मेरा जो संलाप हुआ उसका विवरण मैंने 'गुजराती'में देखा और उसपर की गई टीकाको भी पढ़ा।[2] उन दोनोंसे मैं दुःखी हुआ हूँ। समाचारपत्रोंमें उल्लिखित विचारों-

१. गुजरात विद्यापीठकी नियामक सभा (सीनेट); देखिए पृष्ठ ८, पाद-टिप्पणी १।

२. १७ नवम्बर, १९२० को गांधीजी वैष्णवोंके धर्म-गुरु गोस्वामी श्री गोकुलनाथजी महाराजसे बम्बईमें मिले थे। इस भेंटका विवरण **गुजराती**के २१-११-१९२० के अंकमें प्रकाशित हुआ था।

पर मैं कदाचित् ही टीका करता हूँ। मैं कदाचित् ही समाचारपत्रोंको पढ़ता हूँ। लेकिन 'गुजराती' पत्रको अनेक लोग पढ़ते हैं। उसमें सनातन-धर्मके स्वरूपको बताने-का दावा किया गया है। इसलिए मैं जब उसमें वक्रता देखता हूँ तो मुझे दुःख होता है। मुझे एक मित्रने महाराजश्रीके साथ हुए मेरा संवाद और तत्सम्बन्धी टीका काट-कर भेजी है। इन दोनोंमें जाने-अनजाने अधर्मको धर्म सिद्ध करनेका प्रयास देखता हूँ। यह कैसे हुआ, इसे मैं बादमें बतानेका प्रयत्न करूँगा।[१]

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५–१२–१९२०

५३. भाषण : गयामें

५ दिसम्बर, १९२०

महात्मा गांधीने कहा कि गया शहर पवित्रताके लिए विख्यात है। मैं चाहता हूँ कि आपके हृदय भी वैसे ही शुद्ध और पवित्र बनें। यदि आप त्याग करनेके लिए तैयार हो जायें तो ऐसा हो सकता है। उस त्यागके बारेमें मुस्लिम लीग, सिख लीग तथा ऐसी ही अन्य सभाओंके द्वारा आपको मालूम हो गया है। उदाहरणके लिए उन्होंने कहा कि वकीलोंको वकालत छोड़नी होगी; किन्तु किसी एक भाईके वकालत छोड़नेसे सफलता नहीं मिलेगी। मैं सभी वकील भाइयोंसे आग्रह करूँगा कि वे अपनी वकालत छोड़ दें। कांग्रेसने अदालतोंका बहिष्कार करना तय किया है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि कोई न कोई ऐसी संस्था खड़ी होगी जहाँ लोग अपने मामलोंपर निर्णय प्राप्त करनेके लिए जा सकेंगे। सारे सरकारी खिताब भी छोड़ दिए जायें। लड़कोंको स्कूलोंसे हटा लिया जाये। सोलह सालके और उससे अधिक उम्रवाले लड़कोंको अपने माता-पिता और अभिभावकोंसे करबद्ध प्रार्थना करनी चाहिए कि उन्हें उन स्कूलोंमें न भेजें जिनका प्रबन्ध सरकार करती है, जिनको सरकारी इमदाद मिलती है या जिनपर सरकारका नियन्त्रण है। मुझे अभी-अभी पता चला है कि गयामें बहुत थोड़े लोगोंने ही अपना मत दिया।[२] परन्तु उनकी परीक्षाका समय तो अब आया है। उन्हें विधान परिषदके इन सदस्योंसे या उनके जरिये, कोई मदद नहीं लेनी चाहिए; नहीं तो मता-धिकारका प्रयोग करना, न करना एक बराबर होगा। उन्हें स्वदेशीके लिए काम करना चाहिए। उन्हें अपनी माताओं और पत्नियोंसे चरखा कातनेको कहना चाहिए। लोग बहुत-बड़ी सभाएँ करना जानते हैं परन्तु अपना कर्त्तव्य नहीं पहचानते। यदि वे अपना कर्त्तव्य करें और उपर्युक्त तरीकोंपर चलें तो स्वराज्य मिल जाये। उन्हें कोषमें धन भी देना चाहिए। जो व्यक्ति कोई अन्य त्याग नहीं करता उसे कोषमें धन तो देना ही

१. देखिए "वैष्णव और अन्त्यज", १२–१२–१९२० ।

२. विधान परिषद्के चुनावमें ।

चाहिए। कोषका उपयोग स्वराज्य, स्वदेशी और राष्ट्रीय स्कूलोंमें होगा। हमने पटनामें एक स्वराज्य सभा स्थापित की है जिसके अध्यक्ष श्री मजहरुल हक और मन्त्री बाबू राजेन्द्रप्रसाद हैं। सभाका खर्च कोषसे चलेगा और उसका तिमाही हिसाब पेश किया जायेगा। नागपुरमें कुछ ऐसे लोगोंने जिन्हें मैं नहीं जानता, मेरे नामसे चन्दा इकट्ठा कर लिया। नेताओंसे मेरा अनुरोध है कि वे इकट्ठा किये गये जनताके धनका हिसाब दें। मैं जानता हूँ कि कई जगहोंमें कोई हिसाब नहीं दिया गया है। (यहाँ मंचके उत्तरकी ओर शोर हुआ) श्री गांधीने कहा कि कुछ शोर हो रहा है; शोर नहीं होना चाहिए। आप लोगोंको अपनी आवाजपर काबू रखना चाहिए और शोर नहीं करना चाहिए। स्वयंसेवकोंको अपना कर्त्तव्य मालूम होना चाहिए और तत्परतासे उसका पालन करना चाहिए। एक बड़ा साम्राज्य आपके विरोधमें है — आपको उसके वार झेलने हैं। सिरपर हवाई जहाज मँडराते हों, बम फेंके जा रहे हों और गोलियाँ बराबर बरस रही हों, तब भी आपको शान्त रहना है। मैंने यह भी देखा है कि यहाँ हिन्दुओं और मुसलमानोंमें परस्पर सहिष्णुताकी भावना नहीं है। इस सभाका प्रबन्ध सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। यदि स्वयंसेवक अपने आपको प्रभावशाली नहीं बनाते तो स्वराज्य हासिल नहीं होगा। उन्हें सीखना चाहिए कि संख्यामें कम होनेपर भी काम किस तरह ठीकसे किये जा सकते हैं। मातृभूमिकी सेवा ईमानदारी और श्रमके बिना नहीं हो सकती। पवित्रता जरूरी है। हृदयकी शुद्धता जरूरी है। त्याग करना सच्चे दिलवालेका काम है। आप इस्लामकी संकटसे रक्षा करना और पंजाबके अत्याचारोंके प्रति न्याय कराना चाहते हैं पर अपने प्रति सच्चे हुये बिना आप यह सब नहीं कर सकते।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १०–१२–१९२०

५४. भाषण: छपरामें[1]

६ दिसम्बर, १९२०

इसके बाद महात्मा गांधीने कुर्सीपर बैठे हुए ही भाषण दिया। उन्होंने कहा कि आज भारतके सामने ऐसी परिस्थिति है कि मुझे आपसे कुछ कहना और मदद माँगना जरूरी हो गया है। मुझे खुशी है कि श्री जकरिया हाशमी और बाबू बिन्देश्वरीप्रसादने वकालत छोड़ दी है। मैं इस कामके लिए उन्हें बधाई देता हूँ। मैं महसूस करता हूँ कि अंग्रेजी पढ़े लोग ही हमारी आजकी परेशानियोंके सबब हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि उन्होंने कुछ सेवायें भी की हैं, किन्तु वे जिस हानिके उपकरण बने हैं वह उनके हाथों प्राप्त लाभसे बहुत ज्यादा है और इसलिए उनकी अच्छाइयोंपर जोर

१. बिहारका एक शहर।

देना निरर्थक है। ३५ वर्षोंसे कांग्रेस प्रस्ताव पास करती आ रही है और उसके नेता कांग्रेस मंचोंसे भाषण देते आ रहे हैं, परन्तु इस सबसे कुछ भी नहीं मिला। बल्कि ५० वर्ष पहले की अपेक्षा आज हम अधिक बुरी हालतमें हैं। इस स्थितिका कारण क्या है? आज भारतीय पहलेसे कहीं अधिक अनुपातमें असैनिक सेवाओंमें हैं। लॉर्ड सिन्हा अब एक प्रान्तके गवर्नर हैं।[1] फिर भी मैं क्यों ऐसा कहता हूँ कि हमारी दशा पहलेसे बुरी है? यदि हम पहलेकी अपेक्षा अधिक गुलाम बन गये होते, तो क्या अधिकारीगणोंने इस्लामको जैसा धोखा दिया है वैसे धोखा दिया जा सकता था और फिर इसके बाद क्या सरकार छोटे-मोटे तोफे दिखाकर उन्हें फुसला ले सकती थी? इस धोखेके बाद भी सरकार कहती है कि दोष उसका नहीं है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग समझें कि छोटी-छोटी चीजों और मीठी बातोंसे फुसलानेका प्रयत्न करनेमें सरकारका क्या अभिप्राय है। सरकार तो जहरसे भरी है; फिर भी हम लोग जिस प्रकारकी आत्मप्रवंचनामें पड़े हुए हैं सो केवल गुलामों द्वारा ही सम्भव है। पंजाबके ही पठान और सिख जवानोंने सरकारके लिए अपना खून बहाया; और फिर इसी प्रान्तके लोगोंको पेटके बल रेंगाया गया, सड़कोंपर उन्हें कोड़े लगाये गये, उन्हें ब्रिटिश ध्वजको सलाम करनेपर मजबूर किया गया और अधिकारियों द्वारा स्त्रियोंके घूँघट हटाये गये। यदि हमारी गुलामीके बन्धन पहलेसे भी अधिक दृढ़ न हो चुके होते तो क्या यह सब हो सकता था? मैं समझता हूँ कि जब गुलामको अपनी बेड़ियाँ अच्छी लगने लगती हैं तो उसकी गुलामीकी प्रवृत्ति स्थायी बन जाती है। अगर वे उन बेड़ियोंको तोड़कर आजाद होनेकी कोशिश करें तो वे ऐसा कर सकते हैं; मगर आज तो वे अपनी बेड़ियोंको ही पसन्द करने लगे हैं और समझते हैं कि उनकी इस गुलामीसे ही स्वतन्त्रता मिलेगी; तब मुझे लगता है कि उनके बन्धन पहलेसे भी दृढ़ हो गये हैं। लोगोंकी दासताकी प्रवृत्तिके ही कारण बार-बार उन्हें असहयोगका सिद्धान्त और उसके आचरणके बारेमें समझाना पड़ता है। पहले लोग ऐसे नहीं थे, जैसे अब हैं। थोड़े-से बैरिस्टर थे। मैंने इतिहासमें जो पढ़ा है उससे ऐसा नहीं लगता कि सौ साल पहले लोगोंकी दशा आजसे बदतर थी। लोग अधिक खुश और समृद्ध थे और किसानोंका जैसा दमन हम आज देखते हैं, नहीं था। यद्यपि मैं मानता हूँ कि चम्पारनमें सौ साल पहले भी जमींदार जुल्म करते थे। फिर भी मैं यह नहीं मान सकता कि जैसे जुल्म आज होते हैं वैसे जुल्म उन दिनों करना कभी सम्भव भी हो सकता था। इसलिए कांग्रेस और लीगने हम लोगोंको बताया कि इस्लामको बचाने और पंजाबको न्याय दिलानेका एकमात्र तरीका अहिंसात्मक असहयोग ही है। आन्दोलनके अहिंसात्मक स्वरूपपर मेरा जोर है। यदि हम तलवार खींचेंगे तो सम्भव है वह हमारी ही मृत्युका कारण बन जाये। मै तलवारके जरिये कोई उन्नति या स्वराज्य नहीं चाहता। परन्तु कुछ मुसलमान और कुछ हिन्दू भी मुझसे सहमत नहीं हैं। उनसे मेरा निवेदन

१. १९२० में वे उड़ीसा और बिहारके गवर्नर हो गये थे।

है कि उनमें तलवार खींचनेकी शक्ति और सामर्थ्य नहीं है किन्तु उनके पास सारी शक्तियोंका एक भंडार अवश्य है और वह है आत्माकी शक्ति। दूसरोंके लिए, किसी एक उद्देश्यके लिए, सम्मानके लिए, स्वतन्त्रता और देशके लिए प्राणोत्सर्ग करनेकी क्षमताका होना आत्मबलका द्योतक है। एक बच्चा भी अपने पितासे कह सकता है कि मैं चाहे कुचल दिया जाऊँ, चाहे मार डाला जाऊँ, किन्तु मैं अपनी आत्माके विरुद्ध काम नहीं करूँगा। यह शक्ति तो हम सभीमें हो सकती है और फिर जमींदार या बागान मालिक कोई भी क्यों न हो दमन नहीं कर सकते। हिंसाका सहारा लेते ही असफलता सामने आ जायेगी; परन्तु यदि हम उससे पूरी तरह बचे रहे और पूरी तरह आत्मबलपर ही निर्भर रहे तो हमें कोई भी कुचल नहीं सकता। इसलिए एकमात्र अस्त्र असहयोग है। मैं आपसे सरकारको सब प्रकारका सहयोग और मदद देना बन्द करनेको कहूँगा। हमें न तो किसी तरहकी मदद या सहयोग देना चाहिए, न लेना चाहिए। प्रशासनकी वर्तमान व्यवस्थाको सुधारना पड़ेगा; यदि वह सुधरती नहीं है तो उसे समाप्त ही होना पड़ेगा। सभी धर्म ग्रन्थ 'गीता', 'रामायण,' 'कुरान', 'बाइबिल' शिक्षा देते हैं कि दानवों और देवताओंमें परस्पर कोई सहयोग नहीं हो सकता; साधुओं और शैतानों-में मैत्री नहीं हो सकती, न वे परस्पर मदद दे-ले सकते हैं। यदि हम महसूस करते हैं कि हमारी सरकार दानवी है तो उससे सहयोग बन्द करना और उसे मदद देनेसे इनकार करना हमारा कर्त्तव्य है। लीगने अनुरोध किया है कि वकील वकालत बन्द कर दें, खिताबयाफ्ता खिताब छोड़ दें और सभी लोग अदालतों, स्कूलों और कालेजोंका बहिष्कार कर दें। मैं तो आपसे अपने झगड़े पंचायतोंके सामने तय करनेको कहूँगा।

गांधीजीने आगे बोलते हुए कहा :

जहाँतक स्कूलों और कालेजोंके बहिष्कारका सम्बन्ध है, वयस्क विद्यार्थियोंको स्कूल और कालेज छोड़ देने चाहिए। और अभिभावकोंका यह कर्त्तव्य है कि वे अपने छोटे बच्चोंको प्राथमिक स्कूलोंसे भी उठा लें। यदि विद्यार्थी पत्थर तोड़ेंगे तो भी वह [इस शिक्षासे] अच्छा रहेगा। मेरा यह कहना नहीं है कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली बिलकुल ही खराब है; वास्तवमें मेरा अभिप्राय यह है कि हमें सरकारके दोषपूर्ण हाथोंसे शिक्षा नहीं लेनी चाहिए। हम शैतानसे 'गीता' भी नहीं पढ़ सकते। उनकी देख-रेखमें पढ़ना पाप है। विद्यार्थियोंको [स्कूल और कालेज] छोड़ देने चाहिए; माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित हिन्दू विश्वविद्यालयसे भी उन्हें हट जाना चाहिए। जलते हुए घरके बाहर आ जाना ही अच्छा है। आपको यह खुशखबरी देते हुए मुझे हर्ष होता है कि इसी अहातेमें एक राष्ट्रीय विद्यालय खोला जायेगा। आशा है कि सभी सज्जन अपने बच्चे वहाँ भेजेंगे। स्वराज्यमें भी हमें दूसरी भाषाके माध्यम-से शिक्षा नहीं लेनी चाहिए। मैं शिक्षकों और अध्यक्षसे अनुरोध करूँगा कि धर्मात्मा तथा योग्य पंडित और मौलवी, हिन्दू और मुसलमान, धार्मिक शिक्षा देनेके लिए नियुक्त किये जायें और विद्यार्थियोंको शारीरिक श्रमकी भी शिक्षा दी जाये। उन्हें सूत कातने और कपड़ा तैयार करनेकी भी शिक्षा दी जानी चाहिए। अंग्रेजी अनिवार्य

रूपसे दूसरी भाषाकी तरह रखी जाये। मुझे विश्वास है कि माता-पिता प्राथमिक और माध्यमिक सभी स्कूलोंसे अपने बच्चे उठा लेंगे।

हमें कौंसिलोंका बहिष्कार करना चाहिए। हमें न तो वोट देने चाहिए, न उम्मीदवार बनकर खड़े होना चाहिए। यदि कोई वहाँ आपकी मददसे जाता है तो वह अपनेको आपका प्रतिनिधि मानने लगेगा। मतदाताओंको किसी भी सदस्यके पास किसी भी अन्यायपूर्ण कामके सम्बन्धमें राहत पानेके लिए नहीं जाना चाहिए।

किसी भी व्यक्तिको सेनाके लिए अपना नाम नहीं देना चाहिए।

स्वदेशी चीजोंका प्रयोग करना बहुत जरूरी है। मेरी रायमें बिहारके लिए बम्बई और अहमदाबादके कपड़े भी विशुद्ध स्वदेशी नहीं हैं। हमें अपनी जरूरतकी सभी चीजें स्वयं अपनी ही बस्तियोंमें तैयार करनी चाहिए। पहले हम ऐसा ही करते थे और बेबस नहीं थे। इंग्लैंड और जापान आदि विदेशोंसे आनेवाला कपड़ा पहनना पाप है। अपनी आवश्यकताका कपड़ा स्वयं बना लेना बहुत ही लाभप्रद होगा। आज लाखों लोग भूखों मर रहे हैं; उन्हें भूखसे छुटकारा मिलेगा। रुई बहुत सस्ती है। हम कम दामोंसे कपड़ा तैयार कर सकेंगे। खुरदरा कपड़ा शुद्ध और पवित्र है।

मैंने एक सालमें स्वराज्य लेनेकी बात कही है। वह तभी सम्भव है जब हिन्दू और मुसलमानोंमें परस्पर तनिक भी सन्देह न रहे। सन्देहके कांटेको मनमें जगह दिये रहना एक ऐसी बुराई है, गुलाम जिसके शिकार हो जाते हैं। अच्छाईसे बुराई कभी पैदा नहीं हो सकती। ईश्वरका निर्देश है कि सत्यके अनुसार चलना स्वर्गके मार्गपर चलना है। मुसलमानोंको अपने भाइयोंपर सन्देह क्यों करना चाहिए और एसी सरकारसे जो मेसोपोटामियाके संकटका कारण है, और जिसने कुस्तुन्तुनियामें खलीफा[1]-को कैद तक कर लिया, सहयोग क्यों करना चाहिए। एक हो जाओ और भाई बन जाओ; फिर धरतीपर कोई भी ताकत ऐसी नहीं है जो तीस करोड़ लोगोंको गुलाम बनाये रख सके। क्या एक लाख अंग्रेज हमें डरा सकते हैं? वे तो हमारे ही समुदायों और विभिन्न दर्जेके लोगोंको, जैसे जमींदार और रैयतको, आपसमें लड़ाकर हमपर शासन करते हैं। किसानोंका जमींदारोंसे लड़ना उचित नहीं है। यह बड़ी भारी भूल है; इस तरह स्वराज्य हासिल नहीं हो सकता। मैं रामराज्य चाहता हूँ। अतः मैं यह भी नहीं चाहता कि जमींदार किसानोंपर अत्याचार करें। यदि जमींदार उनपर अत्याचार करें तो किसानोंका उनसे असहयोग करना उचित होगा। किन्तु अभी तो हमें सरकारसे असहयोग करना है, और इसलिए परस्पर असहयोगकी बात हमें नहीं सोचनी चाहिए।

पैसा इकट्ठा करना बहुत ही जरूरी है। इस प्रान्तमें एक स्वराज्य सभा स्थापित की गई है जिसके अध्यक्ष श्री हक[2] हैं और बाबू राजेन्द्रप्रसाद मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष हैं। वे हर तीसरे महीने आय-व्ययका ब्यौरा देंगे। हमें राष्ट्रीय स्कूल खोलने हैं। स्वयंसेवक चन्देके लिए आपके पास आयेंगे। आपको स्वराज्य-सभाकी मदद करनी

१. टर्कीका सुलतान जो इस्लामका भी धार्मिक मुखिया था।

२. मजहरुल हक।

चाहिए। अन्तमें मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको इतनी शक्ति दे कि आप देशकी किश्तीको आनेवाले तूफानके बीचसे निकाल कर ले जा सकें।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १०–१२–१९२०

५५. टिप्पणियाँ

गलत रास्तेपर

लॉर्ड रोनाल्डशेने[1] पिछले दिनों इंडियन होमरूलपर मेरी वह पुस्तिका पढ़ी है जो 'हिन्द स्वराज्य'का[2] अनुवाद है। लॉर्ड महोदयने अपने किसी भाषणमें यह कहा कि यदि स्वराज्यका वही अर्थ है जो मैंने अपनी पुस्तिकामें लिखा है तो बंगालका उससे कुछ वास्ता नहीं हो सकता। मुझे खेद है कि कांग्रेसके प्रस्तावसे सम्बन्धित स्वराज्यका अर्थ वह स्वराज्य नहीं है जो मेरी पुस्तिकामें वर्णित है; कांग्रेसके अनुसार स्वराज्यका मतलब वह स्वराज्य है जो भारतकी जनता चाहती है, वह नहीं जिसे देनेपर ब्रिटिश-सरकार शायद राजी हो जाये। मैं समझता हूँ कि स्वराज्यमें जनताकी निर्वाचित संसद् होगी जिसे वित्त, पुलिस, फौज, नौसेना, अदालतों और शिक्षा-संस्थाओंपर पूर्ण अधिकार होगा।

अलबत्ता यह तो मैं स्वीकार करता हूँ कि यदि भारत सहयोग दे तो मैं एक सालमें जिस स्वराज्यको पानेकी आशा करता हूँ वह ऐसा स्वराज्य होगा जिसमें खिलाफत और पंजाबकी गलतियोंकी पुनरावृत्ति असम्भव हो जायेगी और उसमें राष्ट्रको स्याह-सफेद, चाहे जो करनेकी सामर्थ्य होगी; 'अच्छा' होगा तो किसी गैरजिम्मेदार, उद्दण्ड और गई-बीती नौकरशाहीके निर्देशपर नहीं। उस स्वराज्यमें राष्ट्रको ऐसी विदेशी वस्तुओंपर, जो भारतमें बनाई जा सकती हैं, भारी निरोधात्मक कर लगानेका अधिकार होगा और उसे अधिकार होगा कि वह आसपासके या दूरके राष्ट्रोंको गुलाम बनानेके लिए भारतके बाहर एक भी सिपाही भेजनेसे इनकार कर दे। मैं जिस स्वराज्यका सपना देखता हूँ वह तभी सम्भव होगा जब राष्ट्रको अपनी मर्जीसे अच्छा या बुरा जो चाहे सो करनेका अधिकार होगा।

मैंने उस पुस्तिकामें जो कुछ कहा है उसे मैं अब भी मानता हूँ और पाठकोंको उसे पढ़नेकी राय देता हूँ। सबसे सच्चा स्वराज्य तो अपनेपर शासन करना है। वह मोक्ष या निर्वाणका पर्यायवाची है, और मैं अपने इस मतको बदलनेका कोई कारण नहीं पाता कि डाक्टर, वकील और रेलवे कोई मदद नहीं करते वरन् जो पानेकी चेष्टा करने योग्य है बहुधा उसे पानेमें बाधक होते हैं। परन्तु मैं जानता हूँ कि आसुरी कामोंसे सम्पर्क रखकर जैसा कि सरकार कर रही है, ऐसी स्वतन्त्रताके प्रयत्नों-

१. १८४४–१९२९; राजनयिक और लेखक; बंगालके गवर्नर, १९१७-२२।

२. गांधीजीने मूल गुजरातीमें १९०९ में लिखी थी। देखिए खण्ड १०, पृष्ठ. ६ से ६९।

को भी असम्भव बना देता है। मैं ईश्वर और शैतान दोनोंके प्रति एक साथ वफादारी नहीं रख सकता।

वर्तमान प्रणालीके आसुरी स्वरूपका सबसे निश्चित प्रमाण यह है कि लॉर्ड रोनाल्डशे-जैसा एक सज्जन व्यक्ति भी हमें गलत रास्तेपर चलानेको बाध्य हो जाता है। जिस चीजपर फैसला देना जरूरी है उसपर वे फैसला नहीं देंगे। लॉर्ड महोदय पंजाबके विषयमें क्यों मौन हैं? वे खिलाफतकी बातको क्यों टाल जाते हैं? जिस मरीजको क्षय तिलतिल करके चाटे जा रहा हो, क्या मरहम चुपड़कर उसे कोई राहत पहुँचाई जा सकती है? क्या लॉर्ड महोदय यह नही देख पाते कि भारत सुधारोंकी अपूर्णतासे नहीं बल्कि (पंजाब और खिलाफतसे सम्बन्धित) दो अन्यायोंके किये जाने और फिर हम उन्हें भूल जायें, इसके क्रूर प्रयत्नोंसे विक्षुब्ध हुआ है। क्या वे यह नहीं समझ पाते कि सुलहसे पहले पूर्ण हृदय-परिवर्तनकी जरूरत है।

परन्तु आजकल असहयोगके सिर घृणाकी भावना थोप देना एक रिवाज ही बन गया है। मुझे यह देखकर खेद होता है कि कर्नल वेजवुड[1] भी इस जालमें फँस गये हैं। मैं निर्भीकतापूर्वक कहता हूँ कि घृणा समाप्त करनेका एकमात्र उपाय उसे अनुशासित स्वरूपमें बाहर आने देना है। जबतक भारतकी भावनाओंके प्रति जानबूझकर विद्वेष और अवज्ञाको प्रोत्साहित किया जाता है तबतक घृणाको नेस्तनाबूद करना किसीके वशकी बात नहीं है; यह असम्भव काम मैं भी नहीं कर सकता। एक ओर भारतसे घृणा न करनेको कहना और साथ ही उसकी अत्यन्त पवित्र भावनाओंको नफरतकी ठोकर लगाना, उसका परिहास करना है। भारत अपनेको दुर्बल और विवश महसूस करता है और इसीलिए जो क्रूर शासक उसकी अवज्ञा करता है, उसे पेटके बल रेंगाता है, मासूम औरतोंकी लज्जाका अपहरण करता है, और उसके मासूम बच्चोंसे दिनमें चार बार अपने झंडेको सलाम करवाकर अपनी शक्तिको मान्यता देनेपर मजबूर करता है, उसके प्रति उसकी यह विवशता घृणाका रूप लेकर ही सामने आती है। असहयोगका सिद्धान्त लोगोंको स्वावलम्बी और समर्थ बनानेके लिए प्रयत्नशील है।

सशक्त और आत्मनिर्भर होनेपर भारत बॉसवर्थ स्मिथ और फ्रेंक जॉन्सन-जैसे लोगोंसे घृणा करना बन्द कर देगा; क्योंकि तब उसके पास उन्हें दण्ड देनेकी ताकत होगी; और इसीलिए वह उनपर दया करके उन्हें क्षमा भी कर सकेगा।[2] यदि मुसलमान सशक्त होते तो वे अंग्रेजोंसे नफरत न करते बल्कि उनके मुकाबिलेके लिए खड़े होकर इस्लामकी सर्वाधिक मूल्यवान थातियोंके लिए उनसे लड़ते। मैं जानता हूँ कि अलीभाई जो केवल इस्लामकी प्रतिष्ठा और सम्मानके लिए जी रहे हैं और जो इसके लिए अपने प्राणोंकी आहुति देनेको सदा तत्पर हैं, उन्हीं अंग्रेजोंसे, जिनसे वे घृणा

१. एक अंग्रेज मजदूर नेता और संसद सदस्य जो दिसम्बर १९२० में भारत आये और नागपुरके कांग्रेस अधिवेशनमें शरीक हुए।

२. पंजाबमें अप्रैल-मई, १९१९ में मार्शल लॉके दौरान गुजराँवालाके अतिरिक्त डिप्टी-कमिश्नर बॉसवर्थ स्मिथ तथा लाहौर क्षेत्रके कमांडर कर्नल जॉन्सनने जनतापर नृशंस अत्याचार किये थे। देखिए खण्ड १७, पृष्ठ २२३-२८२।

करते हैं, आज ही दोस्ती कर लें यदि अंग्रेज खिलाफतके मामलेमें न्याय करें, जो कि उनके लिए सहज सम्भव है।

मैं निश्चिन्त होकर कह सकता हूँ कि यह संघर्ष व्यक्तिपरक नहीं हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अंग्रेजोंको, यदि वे भारतके प्रति अपनी नेकी, सच्चाई और वफादारीका निश्चित सबूत दें, दुआ देंगे। इस तरह असहयोग एक दैवी आन्दोलन है। यह भारतको शुद्ध करेगा और सशक्त बनायेगा; सशक्त भारत संसारके लिए एक वरदान होगा जब कि आजका दुर्बल और असहाय भारत मानवताके लिए अभिशाप है। भारतीय सिपाहियोंने अनिच्छापूर्वक टर्कीको नष्ट करनेमें[1] सहायता दी है और अब वे महान् अरब राष्ट्रके चुनिन्दा जवानोंको नष्ट करनेमें लगे हैं। मुझे ऐसा एक भी युद्ध याद नहीं आता जिसमें ब्रिटिश सरकारने भारतीय सिपाहीका उपयोग मानवताके हितमें किया हो। और कितने शर्मकी बात है कि फिर भी भारतीय राजागण इसमें गर्वका अनुभव करते हुए कभी नहीं थकते कि उन्होंने अंग्रेजोंकी वफादारीके साथ मदद की। क्या इससे भी अधिक पतनकी कोई गुंजाइश है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१२–१९२०

५६. सामाजिक बहिष्कार

हैदराबाद सिन्धसे एक संवाददाताने बहिष्कारके सम्बन्धमें एक पत्र[2] लिखा है। मैं उसे सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। पत्र लेखकने श्री खापर्डेके[3] साथ किये जा रहे दुर्व्यवहारका उल्लेख किया है। कहाँ हैदराबाद सिन्ध और कहाँ अमरावती। मैं नहीं जानता कि संवाददाताने जिन परेशानियोंका वर्णन किया है, श्री खापर्डेको उनका सामना करना पड़ रहा है या नहीं। आशा करता हूँ कि उनके बारेमें संवाददाताको जो जानकारी दी गई है उसमें काफी अतिशयोक्ति है।

फिर भी संवाददाता द्वारा प्रस्तुत मामला गम्भीर और महत्वपूर्ण है। यदि हम मतभेदोंके कारण सामाजिक बहिष्कारोंकी घोषणा करने लगें तो यह एक खतरनाक बात होगी।

किसीको भोजन और पानी न मिलने देना अहिंसाके सिद्धान्तके सर्वथा प्रतिकूल होगा। असहयोगकी यह लड़ाई वचनको कर्ममें बदलनेका एक प्रचार-कार्यक्रम है;

१. प्रथम विश्व-युद्धमें।

२. यहाँ प्रकाशित नहीं किया गया है। संवाददाताने शिकायत की थी कि खापर्डेका पंचायतने बहिष्कार किया है और उनके नौकरको पंचायतका कुआँ इस्तेमाल करनेसे रोका गया है क्योंकि वे कांग्रेसके असहयोग कार्यक्रमसे कुछ मुद्दोंपर मतभेद रखते हैं। इस बहिष्कारको कुछ असहयोगियोंने सही भी बताया था।

३. गणेश कृष्ण खापर्डे (१८५४–१९३८); वकील, वक्ता, और अमरावतीके जनसेवक; मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंके अन्तर्गत राज्य परिषद्के सदस्य; वे गांधीजीके असहयोग कार्यक्रमके पक्षमें नहीं थे।

परोक्ष अथवा अपरोक्ष हिंसा द्वारा अन्य लोगोंको अपनी बात माननेपर विवश करनेका कार्यक्रम नहीं। हमें बड़े धीरजके साथ अपने विरोधियोंके हृदय परिवर्तनकी चेष्टा करनी चाहिए। यदि हम गुलामीमें से प्रजातन्त्रकी भावना पैदा करना चाहते हैं तो हमें अपने विरोधियोंके प्रति बिलकुल ही सही और अच्छा व्यवहार करना होगा। ऐसा न हो कि हम सरकारकी गुलामीके स्थानपर असहयोगवादियोंकी गुलामी करने लगें। हम अपने लिए जिस स्वतन्त्रताका दावा करते हैं और जिसके लिए संघर्ष कर रहे हैं, वह हमें अपने विरोधियोंको अवश्य देनी चाहिए। यदि जनतासे सच्चा सहयोग मिले तो सरकारका बड़ेसे-बड़ा सहयोगी भी घटनाओंके प्रतिकूल प्रवाहके आगे झुक जायेगा।

परन्तु असहयोगका पूरा-पूरा असर तो तभी होगा जब हम अहिंसात्मक बहिष्कार भी करें। हम जिस बातको असत्य समझें उससे कतई समझौता न करें, चाहे वह बात किसी गोरेमें हो या कालेमें। ऐसा बहिष्कार राजनैतिक बहिष्कार है। हम नये संसद सदस्योंसे[1] कोई अनुग्रह न लें। मतदाता यदि अपनी शपथके सच्चे हैं, तो वे उन लोगोंकी मदद न लेना अपना कर्त्तव्य समझेंगे जिन्हें अपना प्रतिनिधि माननेसे उन्होंने इनकार किया है। तथाकथित प्रतिनिधियोंको किसी हालतमें कोई भी प्रोत्साहन न देकर उन्हें अपनी शपथ निभानी चाहिए।

जनता यदि असहयोगके कार्यक्रमसे सहमत है तो उसे इन प्रतिनिधियोंके राजनैतिक कार्यक्रमों अथवा प्रीतिभोजों आदिमें शामिल होकर उनकी प्रतिष्ठामें थोड़ी-सी भी वृद्धि करनेसे बचना चाहिए।

किसी विषम परिस्थितिमें अहिंसात्मक सामाजिक बहिष्कारकी सम्भावनाकी कल्पना की जा सकती है, जबकि प्रतिवादी अल्पसंख्यक किसी सिद्धान्तको माननेके कारण नहीं अपितु केवल प्रतिवाद करनेके लिए या इससे भी हीन कारणसे बहुसंख्यकोंके सामने झुकनेसे इनकार करते हों; परन्तु ऐसी परिस्थिति अभी तो नहीं है। किसी उग्र प्रकारका सामाजिक बहिष्कार, जैसे कि सार्वजनिक कुओंको इस्तेमाल करनेकी मनाही, नृशंसताका नमूना है। मैं सोचता हूँ कि ऐसा कोई भी समुदाय जो राष्ट्रीय आत्मसम्मान और राष्ट्रीय उन्नतिकी इच्छा रखता है, कभी ऐसा नहीं करेगा। अपने बीच या अंग्रेजोंके प्रति दबावकी प्रक्रियाओंसे हम इस्लाम अथवा भारत किसीको भी स्वतन्त्र नहीं कर सकेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८–१२–१९२०

१. नई विधान परिषदोंके सदस्य।

५७. वर्ण-व्यवस्था

अपनी दक्षिण-यात्राके[1] दौरान वर्ण-व्यवस्थाके बारेमें मैंने जो विचार प्रकट किये थे, उनके सम्बन्धमें मुझे क्रोधसे भरे हुए बहुत-से पत्र मिले हैं। उन पत्रोंको मैं यहाँ नहीं छाप रहा हूँ, क्योंकि उनमें सिवा गालियोंके और कुछ नहीं है, और जिनमें गालियाँ नहीं हैं उनमें भी कोई सारकी बात नहीं है। मैं सदा 'यंग इंडिया'के विचारोंसे मतभेद रखनेवालोंके विचार इस पत्रके स्तम्भोंमें छापते रहना चाहता हूँ किन्तु लेखकोंको चाहिए कि वे अपने विचार संक्षिप्त और रोचक ढंगसे प्रस्तुत करें। तीखी भाषा कोई तर्क नहीं है। मुझे ये बातें इसलिए कहनी पड़ती हैं कि कमसे-कम दो लेखकोंके पत्र, अगर वे बहुत लम्बे और अभिव्यक्तिकी दृष्टिसे अस्पष्ट न होते, तो प्रकाशित किये जा सकते थे। तथापि उनके द्वारा उठाये गये मुद्दे ध्यान देने योग्य हैं और उनका उत्तर देना जरूरी है। उनका कहना है कि वर्ण-व्यवस्था कायम रखनेसे हिन्दुस्तानका सर्वनाश हो जायेगा; और जात-पाँतके कारण ही हिन्दुस्तान गुलाम हुआ है। मेरी नजरमें हमारी आजकी गिरी हुई हालतकी जड़में हमारी जातपाँतका भेद नहीं है। हमारे गलेमें गुलामीका तौक इसलिए पड़ा कि हमने लालचके वशमें होकर मूलभूत गुणोंकी उपेक्षा कर दी। मैं तो यह मानता हूँ कि वर्ण-व्यवस्थाने ही हिन्दुत्वको छिन्नभिन्न होनेसे बचाया है।

लेकिन दूसरी प्रथाओंकी तरह ही यह प्रथा भी बहुत-से अस्वस्थ और अनावश्यक रीति-रिवाजोंका शिकार बन गई है। मैं समाजके सिर्फ चार बड़े विभाजनोंको ही मूलभूत, कुदरती और जरूरी मानता हूँ। बेशुमार उपजातियोंसे कभी-कभी कुछ लाभ भी होता है, लेकिन अक्सर तो उनसे अड़चन ही पैदा होती है। ऐसी उपजातियाँ जितनी जल्दी एक हो जायें उतनी ही समाजकी भलाई है। उपजातियोंके चुपचाप बनने और बिगड़नेका सिलसिला शुरूसे चला आ रहा है, और आगे भी चलता रहेगा। इस समस्याके समाधानके लिए हम सामाजिक दबाव और लोकमतपर भरोसा कर सकते हैं। लेकिन मैं मौलिक वर्ण-विभाजनोंको तोड़नेकी किसी भी कोशिशके खिलाफ हूँ। वर्ण-विभाग असमानतापर आधारित नहीं है, इसमें ऊँच-नीचका भी कोई सवाल नहीं है और जहाँ ऊँच-नीचका ऐसा कोई सवाल उठ रहा है, उदाहरणार्थ, मद्रास, महाराष्ट्र या अन्य स्थानोंमें, वहाँ उसे जरूर रोका जाना चाहिए। लेकिन इस प्रथाकी बुराइयोंके कारण इसे समाप्त कर देना उचित नहीं है। इसमें आसानीसे सुधार हो सकता है। हिन्दुस्तानमें और सारी दुनियामें लोकतन्त्रकी जो भावना तेजीसे फैल रही है, उसके असरसे वर्ण-व्यवस्थामें से भी ऊँच-नीचके खयाल अपने-आप मिट जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। लोकतन्त्रकी भावना कोई यान्त्रिक वस्तु नहीं है कि समाजके

१. नवम्बर १९२० के पहले पखवारेमें; इस यात्राके दौरान दिये गये गांधीजीके भाषणोंके लिए देखिए खण्ड १८।

बाहरी ढाँचेमें जोड़-तोड़ करके उसे उसके अनुकूल बना लिया जाये। यह तो हृदय-परिवर्तनकी अपेक्षा रखती है। अगर लोकतन्त्रकी भावनाके फैलावमें जाँत-पाँत रुकावट हो, तो हिन्दुस्तानमें जो एक साथ हिन्दु, ईसाई, इस्लाम, पारसी और यहूदी — पाँच धर्म वर्तमान हैं, वे भी इसमें रुकावट ही बनेंगे। लोकतन्त्रकी भावना लोगोंमें भ्रातृभावके संचारकी अपेक्षा रखती है। और मुझे तो किसी ईसाई या मुसलमानको इसी तरह अपना भाई माननेमें कोई अड़चन मालूम नहीं होती, जिस तरह मैं सहोदर-को भाई मानूंगा। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि जो हिन्दू-धर्म वर्ण-व्यवस्थाके लिए जिम्मेदार है, उसी हिन्दू-धर्मने सिर्फ मनुष्यके प्रति ही नहीं, बल्कि जीवमात्रके प्रति अनिवार्य रूपसे भ्रातृभाव रखनेका विधान भी किया है।

एक पत्र-लेखकका सुझाव है कि हमें अपनी वर्ण-व्यवस्था तोड़कर यूरोपकी वर्गप्रथा अपना लेनी चाहिए। मेरे खयालसे वे यह कहना चाहते हैं कि हमारी वर्ण-व्यवस्थामें वंश-परम्पराकी जो भावना है, उसे समाप्त कर देना चाहिए। मुझे तो लगता है कि वंश-परम्पराका नियम चिरन्तन है, और उसे बदलनेकी कोशिशसे सदा अव्यवस्था फैली है और आगे भी फैलेगी। मुझे एक ब्राह्मणको उसके जीवनभर ब्राह्मण ही मानना बहुत उपयोगी जान पड़ता है। अगर वह ब्राह्मणके योग्य आचरण नहीं करता तो वह अपने-आप सच्चे ब्राह्मणको मिलनेवाला सम्मान खो बैठेगा। अगर हम दण्ड और पुरस्कार देनेवाली, पदोन्नति और पदावनति करनेवाली किसी अदालतकी स्थापना करें तो उसके मार्गमें कितनी बेशुमार कठिनाइयाँ आयेंगी, इसका अन्दाजा आसानीसे लगाया जा सकता है। अगर हिन्दू पुनर्जन्ममें विश्वास करते हों — जैसा कि हर हिन्दूको करना चाहिए — तो उन्हें यह जानना चाहिए कि प्रकृति सबका हिसाब-किताब बराबर कर देगी, अर्थात् अगर ब्राह्मण दुराचारी है तो वह उसे निम्नतर जातिमें जन्म देगी और अगर कोई निम्नतर वर्गका व्यक्ति ब्राह्मणोचित जीवन व्यतीत करता है तो उसे अगले जन्ममें ब्राह्मण बनायेगी। इसमें प्रकृतिसे कभी कोई चूक हो ही नहीं सकती।

मेरे विचारसे लोकतन्त्रकी भावनाको फैलानेके लिए विभिन्न जातियोंके बीच परस्पर रोटी-बेटीका सम्बन्ध होना जरूरी नहीं। किसी परिपूर्णसे परिपूर्ण लोक-तान्त्रिक व्यवस्था-के अधीन भी खानपान और शादी-ब्याहके रीति-रिवाज सर्वत्र एक-से होंगे, मैं ऐसा नहीं मानता। हमें हमेशा विविधताके बीचमें ही एकता ढूंढ़नी होगी। मैं यह नहीं मानता कि किसी एकके साथ या हरएकके साथ खाने-पीनेसे इनकार करना पाप है। हिन्दुओंमें चचेरे भाई-बहनोंका एक-दूसरेके साथ ब्याह नहीं होता। इससे उनका पारस्परिक स्नेह कम नहीं होता, बल्कि कदाचित् इससे उनके आपसी सम्बन्ध और अधिक शुद्ध तथा स्वस्थ हो जाते हैं। वैष्णवोंमें मैंने बहुत-सी माताओंको देखा है जो घरकी आम रसोईमें नहीं खातीं और न सबके उपयोगमें आनेवाले बर्तनसे पानी पीती हैं। लेकिन इससे वे सारे परिवारसे अलग नहीं हो जातीं, न उनमें अहंकार आ जाता है और न प्रेम और ममत्व ही घट जाता है। ये बातें सिर्फ अनुशासनात्मक संयमसे सम्बन्ध रखती हैं। खुद उनमें कोई दोष नहीं है। अगर इनका पालन हास्यास्पद सीमा तक किया जाये तो ये नुकसानदेह हो जाती हैं, और अगर ऐसे संयम अहंकार या उच्चताकी

भावनासे प्रेरित होकर बरते जायें, तो ये संयम संयम न रहकर दरअसल भोग बन जाते हैं और इस कारण घातक साबित होते हैं। मगर जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा, और नई-नई जरूरतें और प्रसंग सामने आते जायेंगे, वैसे-वैसे खान-पान और शादी-विवाह सम्बन्धी रीतियोंमें भी सावधानीसे सुधार करने या फेरफार करनेकी जरूरत पड़ेगी।

इस प्रकार मैं हिन्दू समाजके चार वर्णोमें विभक्त होनेकी बातकी हिमायत करनेके लिए तो सदाकी भाँति आज भी तैयार हूँ और 'यंग इंडिया' में मैंने अक्सर यह बात कही भी है; लेकिन मैं अस्पृश्यताको मानवताके विरुद्ध एक जघन्य अपराध मानता हूँ। यह संयमका नहीं, बल्कि ऊँचेपनके अहंभावका द्योतक है। इससे कोई भी सदुद्देश्य पूरा नहीं हुआ है, उल्टे स्थिति यह है कि हिन्दुत्वकी किसी अन्य चीजने मानव-जातिके एक विशाल समुदायका ऐसा दमन नहीं किया है, जैसा इस अस्पृश्यताने किया है। दलित समुदायके लोग न केवल हर अर्थमें हमारे ही जितने अच्छे हैं, वे देशके जीवनके कई क्षेत्रोंमें बहुत ही जरूरी सेवा भी कर रहे हैं। अगर हिन्दुत्वको एक सम्माननीय और उदात्त प्रेरणा देनेवाले धर्मके रूपमें मान्यता प्राप्त करनी है तो इस पापसे वह अपने-आपको जितनी जल्दी मुक्त कर ले उतना ही अच्छा। मुझे इस अभिशापको कायम रखनेके पक्षमें कोई भी दलील स्वीकार नहीं है, और इस पापमय प्रथाके समर्थनमें धर्मग्रन्थोंके संदिग्ध विधानको अस्वीकार करनेमें भी मुझे कोई संकोच नहीं है। सच तो यह है कि अगर ये विधान विवेक और हृदयकी आवाजके विरुद्ध हों तो मैं उन्हें अस्वीकार ही करूँगा। जब कोई सत्ता, कोई विधान, विवेकसे उत्पन्न होता है तो वह कमजोरोंकी रक्षा करता है, उन्हें ऊपर उठाता है, लेकिन जब कोई विधान अन्तरके धीमे, शान्त मूकस्वरसे अभिषिक्त विवेकको अपने पास नहीं फटकने देता तो वह कमजोरों और असहायोंको नीचे गिराता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ८-१२-१९२०

५८. भाषण: मुजफ्फरपुरमें

८ दिसम्बर, १९२०

अध्यक्ष महोदय तथा भाइयो,

खड़े होकर भाषण न दे सकनेके लिए आप कृपया मुझे क्षमा करेंगे। आपमें से अधिकांश लोगोंने मुझे देखा-जाना होगा। कुछ वर्ष पूर्व मैं मुजफ्फरपुरमें आया था सो मुजफ्फरपुर तिरहुत या चम्पारन मेरे लिए नई जगहें नहीं हैं। चम्पारनके मेरे कामोंसे[1] लोग मुझे जानने लगे थे। किन्तु जो काम मैंने अब हाथमें लिया है, चम्पारनके मामलेसे वह कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है और कठिन है। आप सब जानते हैं कि हमारी

१. गांधीजीने १९१७ में चम्पारनमें एक सत्याग्रह आन्दोलनका नेतृत्व किया था; देखिए खण्ड १३।

सरकार कितनी अधिक अन्यायी और दमनकारी है। हमारी संस्थाएँ -- कांग्रेस, मुस्लिम लीग, और सिख लीग, हमें वह उपाय बता ही चुकी हैं जिससे हम सरकारको सही रास्तेपर ला सकते हैं। यदि हम सचमुच इस आसुरी सरकारसे छुटकारा पाना चाहते हैं तो हमारे पास असहयोग ही एकमात्र अस्त्र हैं। तलवार खींचना न तो हमारा धर्म है और न समय तथा परिस्थितियाँ ही इसके लिए अनुकूल हैं। सभी मानते हैं कि हम तलवारसे न तो स्वराज पा सकते हैं, न इस्लामकी रक्षा कर सकते हैं, न पंजाबके प्रति न्याय करवा सकते हैं और न इस अत्याचारी सरकारसे छुटकारा ही पा सकते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस बातपर एकमत हैं कि इस सबका अन्तिम उपाय असहयोग है। सरकारने वाणिज्यके द्वारा हमारा धन, पंजाबके काण्डके द्वारा हमारा सम्मान और खिलाफतको खतरेमें डालकर हमारा धर्म लूट लिया है। यदि हम यह सब मानते हैं, तो सरकारको कोई भी मदद देने या लेनेसे इनकार करनेके सिवाय हमारे पास कोई दूसरा विकल्प नहीं बच रहता। हम कांग्रेसमें यह फैसला तो पहले ही कर चुके हैं कि हमें सरकारी अदालतोंमें न्याय पानेके लिए नहीं जाना चाहिए।

जो स्कूल अन्यायियोंके द्वारा नियंत्रित होते हैं, उनमें भेजकर हम अपने बच्चोंको न्यायप्रिय नहीं बना सकते। गुलामीकी भावनासे परिचालित स्कूलोंमें अपने बच्चोंको भेजकर हम उन्हें गुलामीकी भावनासे मुक्त नहीं कर सकते। यदि मेरे हिन्दू भाई समझते हैं कि वर्तमान दमनकारी सरकार रावण-राज्य जैसी है तो उन्हें आज ही उसके द्वारा नियंत्रित स्कूलोंसे अपने बच्चे हटा लेने चाहिए। हम अपने आदमी कौंसिलोंमें[1] भी नहीं भेजना चाहते, क्योंकि हम जानते हैं कि उनके जरिये हम पंजाब या इस्लामके प्रति न्याय नहीं पा सकते। सरकार कौंसिलोंको अंग्रेजोंसे भर दे, परन्तु हम कौंसिलोंमें जाकर स्वयं अपनी दासताकी जंजीरें और मजबूत नहीं कर सकते। यदि हम कुछ छोटे-छोटे कानून पास करवा लेते हैं या लोगोंको कैदसे रिहा भी करा लेते हैं तो इससे कोई खास बात नहीं बनती। मुख्य बात तो स्वराज्य पाना, पंजाबके प्रति न्याय पाना और खिलाफतके सवालपर समझौता करा सकना है। अंडमान द्वीपके[2] सारे कैदियोंको छोड़ देनेसे भी हमारा लक्ष्य प्राप्त नहीं होता। हमें सेनाकी भरतीमें अपना नाम दर्ज नहीं कराना चाहिए। हमें स्वदेशी चीजोंका इस्तेमाल करना चाहिए। हमारे हर घरमें चरखा होना जरूरी है। इस सबमें हमारा स्वराज्य निहित है, यही हमारा कर्त्तव्य है और इसीके द्वारा हम इस्लामको संकटसे बचा सकते हैं। यदि हम तीस करोड़ भारतीय एक स्वरसे कहें कि हम एक भी विदेशी वस्तुका इस्तेमाल नहीं करेंगे तो अंग्रेजोंके भारतमें बने रहनेका कोई कारण ही नहीं बचता। स्वदेशी एक ऐसा धर्म है जिसमें सादगी है, जो हमारी भूख और अन्य जरूरतें रफाकर सकता है और जिसके पालनसे कपड़ेकी कीमतें गिर सकती हैं। यदि कपड़ेके भाव सस्ते करने हों तो [केवल इसीलिए] आपका स्वदेशीकी शपथ लेना आवश्यक है। हिन्दू और मुसलमानोंको परस्पर मित्रता, सद्भावसे रहना चाहिए। गौरक्षा मुसलमानोंको मारकर

१. विधान परिषद् ।

२. पहले आजन्म कारावासकी सजा पानेवाले अपराधी यहाँ भेजे जाते थे ।

नहीं की जा सकती। यदि हिन्दू सचमुच गौरक्षा चाहते हैं तो उन्हें इस्लामके लिए आत्मत्याग करना चाहिए। आपको अपना अन्तःकरण शुद्ध रखना चाहिए। पिछले सौ वर्षोंमें आपको ऐसे अवसर कभी नहीं मिले हैं। आज हिन्दुओं और मुसलमानोंमें परस्पर एकता हो गई है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि मुगल बादशाह अत्याचारी नहीं थे; परन्तु वर्तमान सरकार जिस तरह दमन करती है वह दमनके पिछले सभी ब्यौरोंसे बढ़कर है। यदि आज इस्लाम खतरेमें है तो क्या भरोसा है कि कल काशी और प्रयागपर संकट नहीं आयेगा। मक्कारोंपर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। हमारी सरकार हमें कब धोखा देगी, हम कह नहीं सकते। हम सरकारपर कभी भरोसा नहीं कर सकते। हमें अपने आपपर विश्वास होना चाहिए। जबतक हममें फूट है, जबतक हम क्रोधके वशमें हो जाते हैं, जबतक हम अंग्रेजोंके रक्तके प्यासे हैं, तबतक हम भारतको आजाद नहीं करा सकते। मैं तीन चीजें चाहता हूँ:
एकता; क्रोधपर संयम और अहिंसात्मक असहयोग।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १७-१२-१९२०

५९. भाषण: बेतियामें[1]

८ दिसम्बर, १९२०

चम्पारन मेरे लिए नया नहीं है। मैं जब भी चम्पारन आता हूँ, तभी मुझे ऐसा लगता है कि भारतमें मेरी जन्मभूमि चम्पारन है। मैं चम्पारनके भाइयोंके दुःखसे दुःखी रहता हूँ। यद्यपि आज मैं दो साल बाद यहाँ आया हूँ, तो भी मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके दुःखको मैं कभी नहीं भूला। चम्पारन जिलेका कष्ट, मेरा अपना ही कष्ट है; मैं हमेशा यह याद करता रहा हूँ, और उसको दूर करनेके लिए कुछ-न-कुछ करता भी रहा हूँ। परन्तु उसको दूर करनेके लिए जितना आप कर सकते हैं, उतना तो मैं नहीं कर सकता। इसलिए आज मैं यह बताना चाहता हूँ कि आप अपनी रक्षा खुद ही कैसे कर सकते हैं।

आज मैं गाँवोंमें होकर आया हूँ। उनकी हालतके बारेमें जो-कुछ सुना था, उससे दुखी तो हो ही रहा था, परन्तु वहाँ जो-कुछ हुआ है, उसे आँखोंसे देखकर तो मेरे दुखका पार नहीं रहा। वहाँ जो अत्याचार हुए हैं, उनमें मुझे इस बार सरकारकी भूल दिखाई नहीं देती है। मैं जो कुछ देखता हूँ, उसमें बागान-मालिकोंकी भूल भी नहीं जान पड़ती। मैं उसमें पुलिस अफसरों, उनके मातहत लोगों और गाँववालोंकी ही भूल पाता हूँ। परन्तु हमें इन लोगोंके विरुद्ध अदालतोंमें जाकर इन्साफ नहीं लेना है। हम इसका न्याय उन्हीं लोगोंसे लेना चाहते हैं। पुलिसवाले हमारे भाई हैं, उनका फर्ज है कि वे रैयतका रक्षण करें, भक्षण न करें। मैंने जब सुना

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

कि यहाँके दारोगा और दूसरे पुलिसवाले भाइयोंने गाँवोंमें जाकर अत्याचार किया, तब मुझे अत्यन्त दुख हुआ। वे शायद यह स्वीकार न करें कि उन्होंने ऐसा किया है, परन्तु मुझे लगता है कि गाँववालोंने मुझे जो-कुछ सुनाया है, वह सबका-सब झूठ नहीं हो सकता। हममें जो प्रतिष्ठित लोग हैं उनका कर्त्तव्य यह है कि वे उन पुलिसवालोंको समझायें। मैं यहाँ आये हुए सब पुलिसवालोंसे कहना चाहता हूँ कि आप मेरे भाई हैं, आप गाँववालोंके भी भाई हैं; अतः मैं आपसे कहता हूँ कि सरकार आपको बुरे काम सौंपे तो आपको चाहिए कि आप उन्हें न करें। अगर आप भी हमें अपना भाई समझते हैं, तो आप हमारा काम करें, परन्तु हमें सतायें नहीं। आप सरकारके नौकर हैं, तो सरकार हमारी नौकर है और इसलिए आपका यह फर्ज है कि सरकार आपसे कोई बुरा काम करनेको कहे तो आप उसे न करें। परन्तु मौजूदा मामलेमें तो सरकारने पुलिसको कोई ऐसा हुक्म भी नहीं दिया था कि तुम लोगोंके घर लूटो, या दूसरे गाँववालोंसे ही उनके घर लुटवाओ, या स्त्रियोंपर जुल्म करो। इसलिए पुलिसने जो-कुछ किया, उसमें सरकारकी कोई गलती नहीं है। पुलिसने अपनी मरजीसे ही जबरदस्ती की है। इसका उपाय यह है कि प्रतिष्ठित सज्जन पुलिसवालोंको जाकर समझायें कि आपकी लाल पगड़ी प्रजाके रक्षणके लिए है, उसके भक्षणके लिए नहीं; आपने जो-कुछ लूटा हो, वह वापस कर दीजिए और यह समझकर कि गाँवके लोग भी आपके भाई हैं, उनके विश्वासपात्र बनिए।

परन्तु इन अत्याचारोंको रोकनेका रास्ता सुझाते हुए मेरी नजरमें पुलिसको समझानेके अलावा एक दूसरा रास्ता भी है। मैं आपसे कहता रहा हूँ कि सब दुःखोंके निवारणका उपाय सत्याग्रह है। हमें इस हुकूमतको मिटाना है फिर भी मैं शान्तिका रास्ता बताता रहा हूँ। परन्तु मैं यह नहीं चाहता कि शान्तिके रास्तेपर चलते हुए भारतकी प्रजा नामर्द बन जाये, पराधीन बन जाये और स्त्रियोंकी रक्षा करनेमें भी असमर्थ रहे। मुझे गाँववालोंने क्या बताया, क्या सुनाया? . . .[1] उन्होंने लुटेरोंके मुकाबलेमें क्या किया? केवल भाग खड़े हुए। मनमें यह खयाल आया कि क्या भारतके लोग इतने नामर्द बन गये हैं कि अपनी सम्पत्ति और स्त्रियोंकी भी रक्षा नहीं कर सकते? क्या हममें चोरोंसे भी अपनी रक्षा करनेकी ताकत नहीं है? चोर हमें लूटने आयें तो हम भाग खड़े हों, क्या यह सत्याग्रह है? आप अपना धन चोरको लुटा दें, यह दूसरी बात है। लेकिन आपको ऐसा करना इष्ट न हो तो आप उसे समझा सकते हैं और वह न समझे तो उसे मार भी सकते हैं। पुलिस अत्याचार करनेके लिए तैयार हो जाये और आप उसके सामने मरनेके लिए तैयार हो जायें तो मैं कहूँगा कि आप सत्याग्रही हैं, बहादुर हैं। परन्तु आप खड़े-खड़े बेइज्जती सहें, इससे कहीं अच्छा यह है कि आप उन्हें मार भगायें। सत्याग्रहका अर्थ यह नहीं है कि आप स्त्रियोंको छोड़कर भाग जायें, या उन्हें अपने सामने विवस्त्र किये जाते हुए देखें। आपमें से जो लोग लम्बी-लम्बी लाठियाँ लेकर यहाँ आये हैं, उनसे मैं पूछता

१. यहाँ महादेवभाईने भाषणका एक अंश छोड़ दिया है और इस अंशके लिए पाठकोंसे अपना पहले भेजा हुआ विवरण देखनेके लिए कहा है।

हूँ कि क्या आप इसीको सत्याग्रह समझते हैं? हमारा धर्म यह नहीं सिखाता कि हम नामर्द बनें, अत्याचार सहन करते रहें। हमारा धर्म यह सिखाता है कि अत्याचारीका खून बहानेके बदले अपना खून बहानेको तैयार रहना अच्छा है। हम इस प्रकार अपना खून बहानेको तैयार हो जायें, तब तो हम देवता हैं, परन्तु अन्याय देखकर पलायन करना तो पशुसे भी बदतर हो जाना है। हम पशुसे मनुष्य हुए हैं। पशु-वृत्ति लेकर तो मनुष्य जन्म ही लेता है; ज्यों-ज्यों उसमें समझ आती है, त्यों-त्यों उसमें मनुष्यत्व आने लगता है और ज्यों-ज्यों मनुष्यत्व आता है, त्यों-त्यों हम पशु-बलका आश्रय छोड़कर आत्मबलपर निर्भर रहना सीखते जाते हैं। परन्तु कोई हमारे विरुद्ध पशुबल इस्तेमाल करने आये, तब उसके मुकाबले आत्मबलसे खड़े रहना तो दूर हम उसके सामनेसे भाग खड़े हों, तब तो हम न पशु रहे और न मनुष्य ही। हम कायर, नामर्द बन गये। कुत्तेको देखिए; वह सत्याग्रह नहीं करता, परन्तु भागता भी नहीं; वह तंग करनेवालेपर भौंकता है, उससे लड़ता है। भारत मनुष्यत्व न दिखा सके तो अपना पशु-बल तो जरूर दिखा सकता है। आइन्दा मैं कभी यह नहीं सुनना चाहता कि सौ हट्टेकट्टे जवान सिपाहियोंको आते देखकर आप भाग खड़े हुए। मैं यह सुनकर आपको शाबाशी दूँगा कि आपने उनके सामने खड़े रहकर अपने प्राणोंकी बलि दे दी। मैं यह सुनकर भी आपको शाबाशी दूँगा कि आप उनके विरुद्ध अच्छी तरह लड़े। कोई मुझसे शायद यह कहे कि अगर पुलिस हमें पकड़ ले जाये तो 'हम क्या करें?' मैं कहूँगा कि इस प्रकार अपनी जान बचानेसे अच्छा तो मर जाना है। सरकारने भी आपको अपने जानमालके लिए लड़नेकी अनुमति दी है। स्पष्ट ही इसके लिए कानूनमें भी छूट है। कोई भी चम्पारनी आइन्दा ऐसे मौकेपर युद्ध करेगा और मारेगा या मरेगा। जैसी शिकायत मैंने आज सुनी है, मेरे लिए वैसी शिकायत सुनना असह्य है।

परन्तु आप मेरी बात अच्छी तरह समझ लीजिए। मैं आपको हर समय मारनेको तैयार हो जाना नहीं सिखाता। पुलिस वारंट लेकर आये, तब आप लड़ने निकलें तो यह आपकी नामर्दी होगी। हम पचास आदमी खड़े हों और एक सिपाही हुक्म देने आया हो तो उसे मारनेमें ऐसी क्या बहादुरी है? अगर उस स्थितिमें हम उसका हुक्म मान लेते हैं तो इसमें हमारी मर्दानगी है। वारन्टपर पकड़ना तो पुलिसका काम ही है। उसका वारंट अनुचित हो तो भी पुलिसके हाथोंसे किसीको छुड़ाना उचित नहीं है। पुलिस आपको पकड़ते वक्त मार-पीट करे, गालियाँ दे तो वह भी आपको सह लेना चाहिए। परन्तु पुलिस आपके घरमें घुसे, आपके ढोर-डंगर छीने, आपका धन लूटे, तब अगर आप अपने प्राण देनेको तैयार न हों तो उसका मुकाबला अवश्य कीजिए, अवश्य अपनी लाठियाँ चलाइए। परन्तु फिर एक दूसरी शर्त भी रखूँगा। आपसे एक मौकेपर मारपीट करनेको कहता हूँ तो इसका मतलब यह नहीं कि कोई चोर आये तो आप उसे जानसे ही मार डालें। लड़ाईका भी तो कोई नियम होता है न? लाठीके सामने तलवार उठाना धर्म नहीं, लाठीके सामने मुक्का मारनेमें धर्म है। एक आदमीके विरुद्ध पचासकी सेना लेकर जाना धर्म नहीं,

नामर्दी है। लाठीके सामने तलवार उठाना, एकके खिलाफ पचासका उठ खड़ा होना अपनी नामर्दी दिखाना है।

किन्तु कहीं आप मेरी इस शिक्षाका दुरुपयोग न करने लगें। मैं चाहता हूँ कि यहाँ बैठे हुए समझदार भाई आपको यह बात बार-बार समझायें। मुझे लगा कि आज मैं जो-कुछ देख आया हूँ, उसकी मुझपर जो प्रतिक्रिया हुई वह आपको न बताऊँ तो अधर्म होगा; लोग ऐसा मानेंगे कि मैं अपना कर्त्तव्य किये बिना यहाँसे चला गया। आप डरपोक न बनें, कभी नामर्द न बनें; फिर भी मैं चाहता हूँ कि आप किसीका खून न करें।

सरकारने एक भूल जरूर की। जो स्वयंसेवक वहाँ जाँचके लिए गये उन्हें उसने धमकानेका प्रयत्न किया, फुसलानेकी कोशिश की। परन्तु आप इन धमकियोंसे न डरें। स्वयंसेवकोंके सिरपर भी बहुत बड़ा फर्ज आ पड़ा है। उन्हें निडर होकर, शान्त रहकर अपना काम करते जाना है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-१२-१९२०

६०. भाषण : बेतियाकी गोशालामें[1]

८ दिसम्बर, १९२०

गौरक्षा हिन्दू-धर्मका बाह्य रूप है। जो हिन्दू इस कामके लिए प्राण देनेको तैयार न हो, उसे मैं हिन्दू नहीं मानता। मुझे यह काम प्राणोंसे भी प्यारा है। जैसे नमाज पढ़ना मुसलमानोंका फर्ज है, वैसे ही गायको मारना भी उनका फर्ज होता तो मैं मुसलमानोंसे कहता कि मुझे तुमसे भी लड़ना पड़ेगा। परन्तु यह उनका फर्ज नहीं है। हमने उनके प्रति अपने बर्तावसे इसको उनका फर्ज बना दिया है।

जरूरत तो इस बातकी है कि गायको बचानेके लिए पहले खुद हिन्दू उसकी रक्षा करें; हिन्दू भी तो गायकी हत्या कर रहे हैं। फूँकेका प्रयोग करके गायका सारा दूध खींच लेना, गायकी सन्तान — बैलोंको आर भोंककर कष्ट देना और उनसे बूतेसे अधिक बोझा खिचवाना, यह सब गायकी हत्या करनेके बराबर है। गो-रक्षा करनेके लिए हमें पहले अपना घर दुरुस्त करना चाहिए।

मुसल्मान तो कभी-कभी ही खानेके लिए गायका वध करते हैं; परन्तु अंग्रेजों-का तो गो-मांसके बिना एक दिन भी काम नहीं चलता। मगर उनके तो हम ताबेदार बने हुए हैं। जो सरकार धर्मकी रक्षा नहीं करती, उसकी पाठशालाएँ और अदालतें हमें अच्छी लगती हैं। यह बात मुझे आज ही मालूम हुई हो, ऐसा नहीं है; परन्तु पहले मैं उनका गो-भक्षण बर्दाश्त कर लेता था, क्योंकि मैं उम्मीद रखता था

१. इस गोशालाकी स्थापना गांधीजीने ही, जब वे चम्पारन-सत्याग्रहके सिलसिलेमें बिहारमें थे, की थी।

कि उनसे मैं कुछ-न-कुछ काम ले सकूँगा। परन्तु अब तो वह उम्मीद भी रही नहीं। इसलिए मैंने उसके विरुद्ध असहयोग घोषित कर दिया है। हम ऐसे समय गो-रक्षा करना चाहते हों, तो हमें मुसलमानोंकी बिला शर्त मदद करनी चाहिए। मैं रात-दिन शौकत अलीके साथ घूमता हूँ, तो भी मैं उनके सामने गो-रक्षाके बारेमें एक लफ्ज भी नहीं निकालता, क्योंकि आज तो मुसलमानोंकी सेवा करना ही हमारा धर्म है। मैं आज अपने पुत्र, स्त्री, और मित्र सबको इसके लिए अर्पण कर देनेको तैयार हूँ। हम सरकारपर मुग्ध रहे तो गायकी रक्षा नहीं कर सकते; और सरकारका त्याग करके मुसलमानोंका हृदय भी पिघला सकते हैं।

ऐसी गोशालाओंसे गो-रक्षा नहीं हो सकती। गोशालाओंको तो शहरके लिए सुन्दर दूध मुहैया कर सकना चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब उनमें हजारों दुधारू गायें हों और गोशालाओंके पास हजारों बीघा जमीन हो। हम जब गायोंकी पूरी तरह रक्षा कर सकेंगे, तभी उनमें से कामधेनुएँ उत्पन्न होंगी। तभी भारतके दुःख, भूख, नंगापन और मानसिक हीनता आदि दूर होंगे। ये उद्‌गार अनायास ही मेरे मुँहसे निकल गये हैं। मैंने गो-रक्षापर अभीतक ऐसी गम्भीर बातें कभी नहीं कहीं। आप गोमाताकी रक्षा कीजिए, गोमाता आपकी रक्षा करेगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

६१. भाषण: मोतीहारीमें

९ दिसम्बर, १९२०

महात्माजीने कुर्सीपर बैठे-बैठे भाषण दिया। उन्होंने कहा कि यदि लोग मौजूदा गुलामीकी दशा तथा नौकरशाहीके अमानवीय अपमानोंसे छुटकारा पाना चाहते हैं तो उन्हें पूरे मनसे असहयोग आन्दोलनमें शामिल हो जाना चाहिए। उन्होंने लोगोंको समझाया कि एक दूसरेसे भाई-जैसा बर्ताव करना उनका कर्त्तव्य है। उन्होंने पुलिसको उसका कर्त्तव्य समझाते हुए बताया कि वे जनताकी रक्षाके लिए हैं, न कि उन्हें परेशान करनेके लिए। यदि वे उसकी रक्षा करनेमें चूकते हैं, तो कहना होगा कि कहीं और जाकर पनाह लेनी चाहिए। उन्होंने लौरिया थानाके अन्तर्गत एक गाँवमें की गई हालकी लूटमारका उल्लेख किया और वहाँ पुलिसने जो कार्रवाई की थी उसपर खेद व्यक्त किया। मौलाना शौकत अलीने भी जनताको पूरी शक्तिसे असहयोग अपनानेकी प्रेरणा दी और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी वांछनीयताकी बात की। खिलाफतके सवालपर मुसलमानोंके साथ खड़े होनेके लिए उन्होंने हिन्दुओंको धन्यवाद दिया और कहा कि मेरा पहला काम देशमें पूरी तरह गौवधको समाप्त करना होगा।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, २२-१२-१९२०

६२. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

भागलपुर जाते हुए
११ दिसम्बर, १९२०

तुम्हारे दो पत्र मिले। एक बहुत छोटा था, और दूसरा बहुत लम्बा-चौड़ा। इस दूसरे पत्रसे पता चलता है कि तुम मेरी बात, मेरे विचार नहीं समझती। तुम्हारे जटिल स्वभावपर मैंने किसी तरहकी झल्लाहट नहीं दिखाई है; हाँ, उसके सम्बन्धमें कुछ कहा अवश्य है। अगर कोई व्यक्ति कोई खामी लेकर ही जन्म ले, तो इसके लिए प्रकृतिसे कोई झगड़ा नहीं किया जा सकता; लेकिन अगर कोई उसकी ओर ध्यान दे और उसे दूर करनेकी कोशिश करे तो इसमें बुरा क्या है? मैंने यही किया है। जिस जटिलताको किसी तरह स्पष्ट न किया जा सके, समझाया न जा सके, उसे मैं कला नहीं मान सकता। धीरजके साथ विश्लेषण करनेपर सभी कलाएँ समझमें आ जाती हैं, और किसी चित्रमें चाहे जितनी विविधता हो, उसके पीछे कलाकारकी योजनाकी एकता अवश्य दिखाई देती है। लेकिन तुम तो, जब कोई मित्र प्रेमपूर्वक तुम्हें तुम्हारी खामियाँ दिखाता है तब भी, उनपर अड़ी रहती हो। मुझे इससे चिढ़ नहीं होती, लेकिन मैं जो तुम्हारी सहायता करना चाहता हूँ, वह काम तो मुश्किल हो ही जाता है। कोई अस्थिरचित्त हो, चिड़चिड़ा और झक्की हो तो इसमें कौन-सी कला है? यों तो सरलसे-सरल स्वभावमें भी कुछ-न-कुछ जटिलता तो होती ही है, लेकिन उसका विश्लेषण आसानीसे किया जा सकता है। ऐसे स्वभावको सरल भी इसीलिए कहा जाता है कि उसे आसानीसे समझा जा सकता है और उपाय करनेपर जल्दी असर भी होता है। लेकिन मैं तुमसे झगड़ना नहीं चाहता। तुम एक समस्या हो, जिसे मुझे सुलझाना है। मैं धीरज नहीं छोडूंगा। बस, इतना ही खयाल रखो कि जो बातें मुझे स्पष्टतः तुम्हारी कमजोरियाँ जैसी लगती हैं, अगर उनकी ओर ध्यान दिलाऊँ तो तुम नाराज न हो। कमजोरियों तो हममें होंगी ही। लेकिन मित्रको यह अधिकार है कि वह उन कमजोरियोंकी ओर स्नेहके साथ अपने मित्रका ध्यान दिलाये। जब मैत्री मित्रोंको सही मार्गकी ओर प्रवृत्त करे तभी वह दिव्य वस्तु बन पाती है। आओ, हम दोनों एक दूसरेको ऊपर उठानेकी कोशिश करें।

शुद्धिके बारेमें तुम्हारे पत्रकी मैं व्यग्रतासे प्रतीक्षा करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

६३. पत्र : द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरको

भागलपुर जाते हुए
११ दिसम्बर, १९२०

प्रिय बड़ोदादा,

आपके पत्रसे मुझे बड़ी सान्त्वना मिली। आपकी स्वीकृतिको[१] मैं आशीर्वाद मानता हूँ। मैं १३ तारीखको कलकत्तामें होऊँगा और १४ तारीखको ढाकामें। भगवान् आपको इतनी लम्बी आयु दे कि आप भारतमें स्वराज्यकी स्थापना देख सकें।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

६४. भाषण : मुंगेरमें असहयोगपर[२]

११ दिसम्बर, १९२०

अध्यक्ष महोदय और सज्जनो,

मैं इतना कमजोर हूँ कि खड़े होकर भाषण नहीं दे सकता। मेरे दोस्त, श्री श्रीकृष्ण सिंहने आपको बताया है कि पिछले साल जब जमालपुरके कुली हड़तालपर थे, वे मुझसे मिलने अहमदाबाद आये थे और मुझसे जमालपुर आनेका अनुरोध किया था। परन्तु मैं किसी अन्य महत्त्वपूर्ण काममें लगा था, इसलिए उनका अनुरोध पूरा न कर सका। मैं निस्संकोच होकर कहता हूँ कि मैं किसानका धन्धा बैरिस्टरके धन्धेसे अधिक पसन्द करता हूँ। मेरे हृदयमें एक वकीलसे मजदूरका स्थान ऊँचा है। पिछले साल जब मैंने जमालपुरके कुलियोंकी मुसीबतके बारेमें सुना तो मुझे बेहद दुःख हुआ, परन्तु किसी अन्य काममें पहलेसे लगे होनेके कारण मैं आनेमें असमर्थ रहा। आज मैं आप सबसे खास करके जमालपुरके कुलियोंसे मिलकर बहुत खुश हुआ हूँ। आपकी उपस्थिति आज बहुत अधिक है। मुझे आशंका है कि शायद मेरी आवाज आपमें से हरएक तक नहीं पहुँच सकेगी। इसलिए मैं बहुत थोड़े शब्दोंमें अपनी बात कहूँगा।

१. शिक्षाके क्षेत्रमें असहयोगके कार्यक्रमके विषयमें।
२. यह भाषण मौलाना शाह उमरकी अध्यक्षतामें हुई एक सभामें दिया गया था।

प्रत्येक भारतीयका, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, अरब हो या अफगान, स्त्री हो या पुरुष, यह कर्त्तव्य है कि भारतकी वर्तमान दशापर गहराईसे विचार करे — ताकि स्थितिका सूक्ष्म विश्लेषण कर सके। आजकी मौजूदा बुराइयोंको निकाल फेंकनेके उपाय और तरीके सोच निकालना भी आपमें से हरएकका कर्त्तव्य है। सरकारने हमारे सात करोड़ मुसलमान भाइयोंको हताश कर दिया है। उसने टर्कीके प्रति अपना वचन भंग किया है और उस देशके लगभग टुकड़े कर डाले हैं।[1] इस सरकारने पंजाबमें हमारे भाइयोंको पेटके बल रेंगनेपर मजबूर किया है और उनके न जाने कितने ऐसे अपमान किये हैं जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती। इसने हमारे विद्यार्थियोंको, छः-सात सालके बच्चोंको भी दोपहरकी जलती धूपमें चार-चार बार यूनियन जैक — ब्रिटिश झंडेको सलाम करनेके लिए १६ मील पैदल चलाया है; और इसके परिणामस्वरूप कुछ कोमल बच्चोंके तो प्राण ही चले गये।[2] इस सरकारने पंजाबमें डेढ़ हजार बेगुनाहोंका कत्लेआम कर दिया और अब कहती है हम उसको भूल जाएँ। यह कहती है कि खिलाफतकी जो दुर्दशा हुई है उसमें उसका कोई हाथ नहीं है। मैं आपसे कहता हूँ कि इस सरकारके सामने आप कभी न झुकें, कभी इसे सलाम न करें। मैं आपसे कहता हूँ कि आप इस सरकारके कामोंमें कभी हाथ न बटाएँ। हम शैतानका संग-साथ छोड़कर ही उसे निःशेष कर सकते हैं। यदि हम मानते हैं कि इस सरकारने हमपर आसुरी भावोंकी छाप डाल दी है तो मैं कहूँगा कि हमारा कर्त्तव्य इस सरकारको हटा देना है। यदि यह सरकार अपनी जबर्दस्त गलतियोंको स्वीकार नहीं करती, यदि सबपर यह जाहिर नहीं कर देती कि जिस ढंगसे पंजाब और खिलाफतके मामले रफा-दफा किये गये, वह गलत है, यदि सरकार अपने कृत्योंके लिए पश्चात्ताप और क्षमा-याचना नहीं करती तो हम चैनसे नहीं बैठेंगे। इस आसुरी सरकारको हम दो तरीकोंसे हटा सकते हैं; एक तो तलवारसे, और दूसरे असहयोगसे। हिन्दू और मुसलमान बुजुर्ग मिलकर इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि तलवारोंका आधार लेकर हम सफल नहीं हो सकेंगे। यदि हमने एक बार भी तलावरें खींची तो सरकारको झुका सकनेके बजाय हम खुद ही समाप्त हो जायेंगे; सारे अन्याय और अत्याचार ज्योंके-त्यों बने रहेंगे और बदला ले सकने की घड़ी ही न आयेगी। परन्तु यदि हम अहिंसात्मक असहयोग अपनायें तो निश्चय ही सफलता मिलेगी। यदि आप मानते हैं कि शैतानसे विदाई ले लेना आवश्यक है तो 'कुरान', 'गीता' और तुलसीदासके कथनानुसार हमें ईश्वरकी सहायता और अनुग्रहकी याचना करनी चाहिए। हम ध्यान रखें कि हम किसीसे भी नाराज न हों, अंग्रेजोंको गाली न दें और न उनके प्राण लेनेकी बात सोचें। हम किसी भी खान बहादुरके प्रति जो अपना खिताब नहीं छोड़ता, नफरत जाहिर नहीं करना चाहते, हम उस वकीलको जो अपनी वकालत नहीं छोड़ता, गाली देना नहीं चाहते, हम उस विद्यार्थीसे, जो अपना कालेज या स्कूल नहीं छोड़ता, झगड़ना नहीं चाहते। हम केवल यही चाहते हैं कि यदि वे हमारी बात नहीं सुनते तो उनसे असह-

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ४४५-४८ और परिशिष्ट १।

२. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ २३०, २५३, २६३, २६६, २७९-८०।

योग किया जाये। न तो हमें किसी भी रूपमें उनकी मदद करनी चाहिए, न उनसे मदद लेनी चाहिए। इससे किसीको नुकसान नहीं होगा। ईश्वर हमारी मदद करेगा और हमारे कष्टोंको समझेगा। मैंने आप सबसे असहयोग करनेको कहा है; परन्तु मैं यह भी कहता हूँ कि आप परस्पर सहयोग करें। हिन्दुओं और मुसलमानोंको मिलकर रहना चाहिए; वे एक ही माँके बेटे हैं। हिन्दुओंको अपने और मुसलमानोंको अपने धर्मपर चलना चाहिए। परन्तु उनके एक दूसरेसे मिलकर न चल सकनेका कोई कारण मुझे दिखाई नहीं देता। जब हमारे सात करोड़ मुसलमान भाइयोंका धर्म-संकटमें हो तो हम सबको एक साथ अपने शीश अर्पित कर देनेके लिए तैयार रहना चाहिए। यदि आप क्रोध न करें और पूरी तरह असहयोग करें तो मैं आश्वासन देता हूँ कि आपको स्वराज्य एक सालके अन्दर मिल जाएगा; आप पंजाबके अन्यायको निःशेष करा सकेंगे और मेसोपोटामिया, थ्रेस तथा अन्य स्थानोंसे[1] सम्बन्धित संघर्षमें भी आप विजयी होंगे। असहयोग आन्दोलनमें ६ काम हैं। पहला खिताबोंका त्याग, आदि; दूसरा स्कूल और कालेज छोड़ना — जो विद्यार्थी १६ से ऊपर हैं उन्हें स्वयं अपने माता-पितासे कालेज और स्कूल छोड़नेकी इजाजत माँगनी चाहिए; तीसरा वकीलों द्वारा वकालत बन्द करना और मामलोंका पंचोंद्वारा आपसी फैसला कराना; चौथा कौंसिलोंका और जो लोग कौंसिलोंमें गये हैं उनका बहिष्कार; पाँचवाँ स्वदेशी चीजों और कपड़ेका इस्तेमाल। हमें चरखेकी सहायतासे अधिकाधिक कपड़ा तैयार करना चाहिए क्योंकि भारतीय मिलों द्वारा तैयार किया गया कपड़ा वर्तमान माँग पूरी नहीं कर सकता।

इस अवसरपर बहुत शोर हुआ। आगे बोलते हुए महात्माजीने कहा :

यदि हम पहले कही गई सारी बातें करें तो हमें शीघ्र ही स्वराज्य मिल जायेगा, परन्तु जबतक इस तरहका शोर होता रहेगा, कोई भी काम कठिन होगा। जबतक हम अनुशासन नहीं पालते, हम कोई व्यवस्था नहीं कर सकते।

इसके बाद उन्होंने स्वयंसेवकोंको कुछ सलाह दी और असहयोग कोषके लिए धन संग्रह करनेको कहा। सभास्थलपर ही काफी धन इकट्ठा हो गया। महात्माजी २० मिनट और बोले।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १९–१२–१९२०

१. जिनपर पहले टर्कीके सुलतान, इस्लामके खलीफाका शासन था।

६५. तार: आसफ अलीको[1]

[११ दिसम्बर, १९२० को या उसके बाद][2]

भंग करनेका आदेश पालन किया जाये। पैरवीके लिए वकील हरगिज नहीं।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७३७६) की फोटो-नकलसे।

६६. वैष्णव और अन्त्यज

वैष्णव शिरोमणि नरसिंह मेहताने किसी भी वैष्णवके लिए आवश्यक जिन गुणोंका बखान किया है उनका मैं वर्णन कर चुका हूँ। महाराजश्री और मेरे बीच जो संवाद हुआ उसके सम्बन्धमें जो लिखा गया है उसे पढ़कर मुझे जो दुःख हुआ, उसे भी मैं पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ।[3]

उक्त टीकामें मुझे धर्म-निर्णयके स्थानपर दुराग्रह और आक्षेप ही दिखाई दिया। मैं भी दुराग्रह करता हूँ और आक्षेप लगाता हूँ — मेरे सम्बन्धमें क्या ऐसा नहीं कहा जा सकता? जरूर कहा जा सकता है। परन्तु इसका निर्णय तो पाठक ही कर सकते हैं। महाराजश्रीके साथ जब संवाद आरम्भ हुआ उसी समय उन्होंने मुझे बता दिया था कि शास्त्रोंके विवेचनमें बुद्धिको स्थान नहीं है। मुझे तो यही सुनकर दुःख हुआ। जो बुद्धिगम्य नहीं है, जिसे हृदय स्वीकार नहीं करता वह शास्त्र हो ही नहीं सकता, ऐसी मेरी मान्यता है। और मुझे लगता है कि जो केवल धर्मपर आचरण चाहता है, उसे यह सिद्धान्त स्वीकार करना चाहिए। ऐसा न हो तो हमारे धर्मभ्रष्ट होनेका भय होगा। मैंने लोगोंको 'गीता' की यह व्याख्या करते सुना है कि अगर हमारे सगे-सम्बन्धी दुष्ट हों तो पशुबलसे हम उन्हें दुष्टता

१. १८८८–१९५३; बैरिस्टर और राष्ट्रवादी मुस्लिम राजनीतिज्ञ, खिलाफत-आन्दोलनके एक नेता। यह तार आसफ अलीके १० दिसम्बर, १९२० के इस तारके उत्तरमें भेजा गया था: "आपके खिलाफत कार्यकर्ताओंपर लाशका अपमान करनेका झूठा आरोप लगाया गया है। कथित फरियादीने मुकदमा दायर करनेकी अपनी अनिच्छा अधिकारियोंको जता दी है पर अधिकारी मामलेको प्रज्ञेय (कॉग्निज़ेबिल) मानते हैं और कार्रवाई करनेपर तुले हुए जान पड़ते हैं। चूँकि शिकायत मूल रूपमें एक व्यक्ति द्वारा दर्ज करा दी गई है, इसलिए हम जानना चाहते हैं कि क्या हमें अभियुक्तोंको झूठे आरोपोंके खिलाफ अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेकी सलाह देनी चाहिए। क्या हम स्वयंसेवक दल भंग करनेके सरकारी आदेशकी अवज्ञा करें?" देखिए "टिप्पणियाँ", २२–१२–१९२० भी।

२. आसफ अलीका तार गांधीजीको ११ दिसम्बर, १९२० को मिला था।

३. देखिए "वैष्णवोंसे", ५–१२–१९२०।

करनेसे रोक सकते हैं; बल्कि रोकना धर्म है। रामने रावणको मारा, इससे हम जिसे रावण मानते हों उसका संहार करना धर्म है। मनुस्मृतिमें लिखा है कि मांसाहार किया जा सकता है; इससे क्या वैष्णवको मांसाहार करना चाहिए? बीमार होनेपर, बीमारीसे छुटकारा पानेके लिए गोमांसका भक्षण भी किया जा सकता है, ऐसा मैंने शास्त्री और संन्यासी होनेका दावा करनेवाले व्यक्तियोंके मुखसे सुना है। अगर मैंने इन सब शास्त्र-सम्मत बातोंको मानकर अपने सगे-सम्बन्धियोंका संहार किया होता, अंग्रेजोंको मार डालनेकी सलाह दी होती और बीमारीमें गोमांसका भक्षण किया होता तो मेरी क्या दशा होती? मैंने ऐसे समयमें अपनी बुद्धिकी, अपने हृदयकी बातको माना, उसे ही धर्म समझा, इसीसे मैं बच पाया हूँ और सबको वैसा ही करनेकी सलाह देता हूँ।

इसीसे निर्मल आचरण करनेवाले तपस्वियोंने हमें सिखाया है कि जो वेदादिका अध्ययन करते हैं लेकिन धर्मपर आचरण नहीं करते वे वेदवित् भले ही कहलायें लेकिन वे न स्वयं तरते हैं और न दूसरोंको ही तार सकते हैं। यही कारण है कि मैं वेदोंको कंठस्थ करनेवाले अथवा उनकी टीकाओंको याद रखनेवाले व्यक्तियोंसे प्रभावित नहीं होता, उनके ज्ञानसे चकित नहीं होता और अपने अल्प ज्ञानको अधिक मूल्यवान समझता हूँ।

मेरे इन विचारोंके कारण जब महाराजश्रीने अपने शास्त्रनिर्णयका सिद्धान्त मुझे सुनाया तब मुझे दुःख हुआ, लेकिन उनकी सरलतासे मैं प्रसन्न हुआ। शास्त्रका मेरेसे उलटा अर्थ करते हुए भी उन्होंने यह निर्णय अवश्य दिया कि जिस स्कूलमें मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि आ सकते हैं उससे अन्त्यजोंको दूर रखनेकी बातको न्याय नहीं कहा जा सकता। जो वैष्णव अनेक दुनियावी कार्योंमें धन देते हैं, जो जुए आदिमें भी धन का अपव्यय करते हैं उन्हें राष्ट्रीय शालामें, जिसमें अन्त्यज भी दाखिल किये जाते हों, धार्मिक प्रतिबन्धका बहाना बनाकर दान देनेसे इनकार करनेका अधिकार नहीं है। किन्तु, जिन स्कूलोंमें अन्त्यज जाते हों उनमें वैष्णव लोग अपने लड़कोंको न भेजना चाहें तो उनसे इसके लिए आग्रह नहीं किया जा सकता। महाराजश्रीने ऐसा व्यावहारिक निर्णय दिया।

लेकिन उनके आसपासके शास्त्रियोंने जो दलीलें पेश करनी आरम्भ की उनसे मैं दुःखी हो गया; मुझे सरलताकी जगह अपने मतके प्रति दुराग्रह ही दिखाई दिया। शास्त्री वसन्तरायजी द्वारा 'गुजराती' में लिखा गया लेख उसका एक नमूना है।[1]

उनसे और 'गुजराती' के सम्पादकसे मैं विनम्रतापूर्वक कहना चाहूँगा कि सार्वजनिक सेवा करनेवाले व्यक्तिका धर्म प्रवाहकी गतिमें बह जानेका नहीं है बल्कि उसका धर्म अगर जन-मानसका प्रवाह गलत दिशामें प्रवाहित हो रहा हो तो उसे सही दिशाकी ओर प्रवृत्त करनेका है।

मैं शास्त्रोंके ज्ञानसे अनभिज्ञ हूँ, अनुभवहीन हूँ, हठधर्मी हूँ, ऐसा कहकर मुझे वैष्णव धर्मसे दूर किया जा सकना सम्भव नहीं है। जबतक मैं यह मानता हूँ कि

१. २१-११-१९२० को **गुजराती**में प्रकाशित "गुजरात विद्यापीठ और अन्त्यज" नामक लेखमें।

वैष्णवपनकी परीक्षा सदाचरणमें है, वाद-विवाद, वाक्-चातुरी अथवा शास्त्रार्थमें नहीं, तबतक मैं अपने दावेको नहीं छोड़ना चाहता।

अस्पृश्यताको पाप समझना पश्चिमी विचार है, ऐसा कहना पापको पुण्य माननेके बराबर है। अखा भगतने[1] कोई पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त नहीं की थी, लेकिन उन्होंने ही कहा है कि "अस्पृश्यता अतिरिक्त" अंग है। अपने दोषोंको दूर करनेके प्रयत्नोंको इतर धर्मका अंग मानकर उनको अस्वीकार करके अपने दोषोंको बनाये रखना धर्मान्धता है और इससे धर्मका ह्रास होता है।

दलील यह दी गई है कि अस्पृश्यताका कारण घृणा नहीं है। ऐसी ही दलील हमारे सम्बन्धमें अंग्रेज भी देते हैं। वे हमें अपनेसे अलग रखते हैं, 'देशी' कहते हैं इसमें घृणाकी कोई भावना नहीं है। वे हमें अलग डिब्बोंमें बिठाते हैं सो सिर्फ 'आरोग्यकी व्याख्या'के कारण ही बिठाते हैं, उसमें द्वेषकी भावना नहीं है—ऐसा उनका दावा है। वैष्णवोंको मैंने अन्त्यजोंको इसलिए गाली देते और मारते हुए देखा है, कि वे अनजाने ही उनके शरीरसे छू गये। ऐसे व्यवहारको धर्म मानना पाखण्ड है, पाप है; ब्राह्मणके निकलते समय अन्त्यजको दीवारकी ओर मुँह करनेका आदेश देना उद्धतता है। अन्त्यजोंको जूठन देना, सड़ी-गली वस्तुएँ देना नीचता है। इस व्यवहारका मूल अस्पृश्यतामें है।

मैं इस तर्कको कि अन्त्यज नहाने, साफ कपड़े पहननेसे शुद्ध नहीं हो जाते, समझ नहीं पाया हूँ। क्या अन्त्यजका अन्तःकरण मैला होता है? क्या जन्मसे ही वह मनुष्य नहीं होता? क्या अन्त्यज पशुसे भी गया-गुजरा है?

मैंने अनेक अन्त्यजोंको सरल हृदय, ईमानदार, ज्ञानी और ईश्वरभक्त पाया है। उन्हें मैं सब तरहसे वंदनीय मानता हूँ।

अन्त्यज गन्दा हो, अन्त्यजने मैला साफ किया हो तथापि स्नान न किया हो, और फिर इसलिए उसे छुआ न जाये तो मैं समझ सकता हूँ। लेकिन वह चाहे कितना ही शुद्ध क्यों न हो परन्तु उसे छुआ न जाये, यह तो अधर्मकी सीमा है। अनेक ऐसे लोगोंको जो अन्त्यज नहीं हैं, मैंने बहुत गन्दा पाया है, अनेक ईसाई भी मैला ढोते हैं। डाक्टरोंका तो धर्म ही मैल धोना है, इन सबको छूनेमें हम पाप नहीं समझते। डिग्री-विहीन हमारे इन अपढ़ डाक्टरोंका अनादर करके हम पापमें पड़ते हैं और वैष्णव धर्मको कलंक लगाते हैं।

अस्पृश्यता और वर्णाश्रम दोनोंको शास्त्री बसन्तरामजी तथा 'गुजराती'के सम्पादक एक ही वस्तु मानते जान पड़ते हैं। मेरी अल्पमतिके अनुसार वर्णाश्रम धर्म है, वह शाश्वत है, व्यापक है, प्रकृतिके अनुकूल है और व्यवहारकी एक व्यवस्था है। वह हिन्दू धर्मका शुद्ध बाह्य स्वरूप है।

अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका दूषण है। सम्भवतः वह कभी समाजकी अवनतिके दिनोंमें कुछ कालके लिए आपद्धर्मके रूपमें आरम्भ की गई एक व्यवस्था थी। यह अव्यापक है और शास्त्रोंमें इसका समर्थन नहीं किया गया है। इसके समर्थनमें जिन श्लोकोंको

१. सत्रहवीं शताब्दीके रहस्यवादी कवि; अपने व्यंग्यके लिए विख्यात; वेदान्ती और हेतुवादी।

उद्धृत किया जाता है वे क्षेपक हैं अथवा उनके अर्थके विषयमें मतभेद है। वैष्णवोंने अस्पृश्यताका धर्मके रूपमें वर्णन नहीं किया। अस्पृश्यताका दिन-ब-दिन लोप होता जा रहा है। रेलमें, सरकारी स्कूलोंमें, तीर्थक्षेत्रोंमें और अदालतोंमें उसका कोई स्थान नहीं बचा। मिलों और अन्य बड़े-बड़े कारखानोंमें अन्त्यजोंसे स्पर्शास्पर्शपर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। इस तरह जिन वैष्णवोंको अन्त्यजोंका स्पर्श पाप समझकर करना पड़ता है उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे ऐसा विचारपूर्वक पुण्य समझकर करें। 'गीता'में भी यह कहा गया है: समदर्शीके लिए ब्राह्मण, श्वान, अन्त्यज सब एक जैसे हैं।[1] 'नरसैंयों'[2] भी कहता है कि वैष्णवमें समदृष्टि होनी चाहिए। वैष्णव-जन अन्त्यज-को सर्वथा अस्पृश्य मानते हुए उसके प्रति समदर्शी होनेका दावा नहीं कर सकते।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १२–१२–१९२०

६७. भाषण : भागलपुरमें

१२ दिसम्बर, १९२०

महात्मा गांधीने श्रोताओंके समक्ष भाषण देते हुए कहा कि शैतानको शैतान-जैसे गुणोंसे नहीं हराया जा सकता। केवल ईश्वर ही शैतानको जीत सकता है, इसलिए शैतान-जैसी इस सरकारको सत्य और न्यायसे हराना चाहिए। इसके बाद उन्होंने कहा कि लोग अंग्रेजोंकी जीवनपद्धति अपनाकर प्रगति नहीं कर सकते। हिन्दू ऋषियोंके पास कुर्सियाँ नहीं थीं; वे पेड़ोंके नीचे पढ़ाते थे। मुसलमान फकीर भी, जो मुसलमानोंकी प्रगतिके सच्चे कारण थे, कुर्सियोंपर नहीं बैठते थे; जंगलोंमें रहते थे।

इसके बाद महात्माजीने कहा कि मैं भारतीय जागृतिका कारण नहीं; वरन् लोगोंकी यह प्रतीति कि वे दासतामें पड़े हैं, जागृतिका कारण है। सरकार लोगोंको लड़ाकू हवाई जहाजों द्वारा नहीं, खिताबों, कौंसिलों, अदालतों और स्कूलों द्वारा दबाए हुए है। यदि आप आजाद होना चाहते हैं तो आपको बोअरों द्वारा अपनाये गये तरीके काममें लेने चाहिए। जिनका मुझे निजी अनुभव है।[3] बोअर औरतोंने अपने बच्चोंको अंग्रेजी स्कूलोंमें नहीं पढ़ने दिया। उन्होंने जो साहस दिखाया उसका भारतीय जन-तामें अभाव है। इसलिए लोगोंको सरकारसे असहयोग करना चाहिए।

उन्होंने कहा कि प्राचीन भारतमें औरतें सूत कातती थीं और उससे कपड़ा बुना जाता था। लोगोंको पुराना तरीका फिरसे रूढ़ करना चाहिए।

१. अध्याय ५, श्लोक १८।

२. नरसिंह मेहता।

३. दक्षिण आफ्रिकामें।

हिन्दू-मुस्लिम एकतापर बोलते हुए महात्माजीने कहा कि इस मामलेमें कोई सौदा नहीं करना चाहिए। इस सम्बन्धमें बनिया होनेके बजाय आपको ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी तरह उदार हृदय होना चाहिए। सत्यका पुरस्कार सत्य ही है। इसलिए एकताकी कोई शर्त नहीं होनी चाहिए। किसी भी जातिके प्रति कोई अविश्वास या भ्रम नहीं रखना चाहिए। यह नहीं सोचना चाहिए कि दूसरी जाति भविष्यमें कहीं बहुत ताकतवर न हो जाये।

इसके बाद महात्माजीने शराब पीनेकी बुराइयाँ बताईं और कहा कि ब्रिटिश शासनमें मदरसोंकी संख्या घट गई है जब कि शराबकी दूकानोंकी बढ़ गई है। लोगोंको शराब पीनेसे उसी तरह बचना चाहिए जैसे कि सरकारको सहयोग देनेसे। सहयोग देना भी नशा है। शराबी स्वराज्य नहीं पा सकते और न गुलाम लोगोंके बच्चे अपने मालिकोंके स्कूलोंमें स्वतन्त्रताकी सीख पा सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १७–१२–१९२०

६८. भाषण : कलकत्तेमें नेशनल मदरसेके उद्‌घाटनपर[1]

१३ दिसम्बर, १९२०

श्री गांधीने कहा कि नेशनल मदरसेका उद्‌घाटन करते हुए मुझे बहुत खुशी हो रही है। मेरी इच्छा है कि हमारी एक समान भाषा हो। यदि वह हिन्दुस्तानी हो सके तो बेहतर होगा। प्रशिक्षण इस सामान्य भाषाके माध्यमसे दिया जाये। उन्होंने कहा कि साथ ही आप उनके लिए अरबी, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजीके विभाग खोलें। जिन्हें इनमें विशेष रुचि है, तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है। मुझे यह सुनकर कि १२० विद्यार्थियोंने दाखिला ले लिया है, प्रसन्नता हुई है और मुझे आशा है कि इस तरहकी संस्थाओंमें शामिल होकर आप अच्छे ईमानदार और सच्चे विद्यार्थी बन सकेंगे। ये (संस्थापक) बड़ी भारी इमारतें बनानेमें सरकारकी बराबरी नहीं कर सकेंगे, परन्तु निश्चय ही अपनी इस छोटी-सी इमारतमें ये बेहतर शिक्षा दे सकेंगे। जबतक आप अपना प्रशिक्षण स्वयं चलाना नहीं सीखेंगे और अच्छे नागरिक नहीं बनेंगे, तबतक स्वराज्य नहीं मिल सकेगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १४–१२–१९२०

१. मदरसेकी स्थापना मौलाना अबुल कलाम आजादके नेतृत्वमें एक समितिने की थी।

६९. भाषण : कलकत्तामें असहयोगपर[1]

१३ दिसम्बर, १९२०

यह निश्चित है कि सारे देशमें जहाँ कहीं देशके विभिन्न हिस्सोंके लोगोंकी मिली-जुली सभाएँ और बैठकें होंगी उनमें अभिव्यक्तिका राष्ट्रीय माध्यम हिन्दी ही होगी। फिर भी आपमें से बहुत-सारे लोग हिन्दी नहीं समझते। इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि आज हम कितनी गिरी हुई अवस्थामें हैं, और यह एक ही तथ्य यह सिद्ध कर देनेके लिए काफी है कि आज जिस चीजकी सबसे अधिक जरूरत है, वह है असहयोग आन्दोलन। इसका उद्देश्य हमें इस अधोगतिसे उबारना है। सरकारने इस महान राष्ट्रको तरह-तरहसे नीचे गिराया है। जबतक हममें परस्पर सहयोग नहीं होगा तबतक हम इस सरकारके पंजेसे छूट नहीं सकते। अभिव्यक्तिके एक राष्ट्रीय माध्यमके बिना ऐसा सहयोग भी सम्भव नहीं है।

लेकिन आज मैं यहाँ अभिव्यक्तिके उस माध्यमकी हिमायत करने नहीं आया हूँ। आज मैं यहाँ देशसे यह अनुरोध करनेके उद्देश्यसे आया हूँ कि वह अहिंसात्मक और क्रमिक असहयोगका कार्यक्रम स्वीकार कर ले। अपने कार्यक्रमके वर्णनमें मैंने जितने शब्दोंका प्रयोग किया है, सभी अत्यन्त आवश्यक हैं और "क्रमिक" तथा "अहिंसात्मक" दोनों विशेषण समस्त पदके अभिन्न अंग हैं। मेरे लिए तो अहिंसा धर्मका अंग है, एक सिद्धान्तकी बात है। लेकिन बहुतसे मुसलमान इसे एक नीति मानते हैं; और अगर लाखों नहीं तो हजारों हिन्दू भी इसे नीति ही मानते हैं। चाहे यह एक सिद्धान्तकी बात हो या नीतिकी, आप अहिंसाकी आवश्यकता और उसके मूल्य स्वीकार किये बिना भारतके करोड़ों लोगोंको उनके राजनीतिक अधिकार दिलानेका कार्यक्रम पूरा नहीं कर सकते। हो सकता है, कुछ देरके लिए हिंसाके बलपर थोड़ी बहुत सफलता मिल जाये, लेकिन अन्ततः उससे कोई खास सफलता नहीं मिल सकती। दूसरी ओर, हिंसात्मक कार्रवाई राष्ट्रकी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मानके लिए घातक होगी। भारत सरकारने जो नीली पुस्तिकाएँ जारी की हैं, उनसे प्रकट होता है कि हमारे द्वारा हिंसाका सहारा लेनेसे सरकारको सैनिक व्यय बढ़ाते जाना पड़ा है; और यह हमारी हिंसाके अनुपातमें नहीं, कई गुना बढ़ाया गया है। हमने हिंसासे काम लिया, इसलिए हमपर गुलामीका शिकंजा और भी सख्त कस दिया गया है। भारतमें ब्रिटिश शासनका पूरा इतिहास इस बातकी साक्षी देता है कि हिंसाका प्रयोग करके हम कभी सफलता प्राप्त नहीं कर पाये। इसलिए, मैं यह तो कहता हूँ कि जिस सरकारने इस तरह हमारे पौरुषका हरण किया है, उस सरकारकी गुलामी सहनेके बजाय मैं हिंसाको ही अधिक पसन्द करूँगा, लेकिन साथ ही मैं पूरा जोर

१. यह भाषण कुमार टोली पार्क, कलकत्तामें 'सर्वेंट' के सम्पादक श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्तीकी अध्यक्षतामें आयोजित सभामें दिया गया था।

देकर आपसे यह भी कहना चाहूँगा कि भारत हिंसात्मक तरीकोंसे पुनः अपना सच्चा गौरव कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

लॉर्ड रोनाल्डशेने स्वराज्यपर मेरी पुस्तिका[1] पढ़ी, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। यह पुस्तक पढ़कर उन्होंने मेरे देशभाइयोंको आगाह किया है कि वे, जैसे स्वराज्यकी कल्पना मैंने इस पुस्तकमें दी है, वैसे स्वराज्यके लिए कदापि संघर्ष न करें। यों तो मैं उस पुस्तिकामें से एक भी शब्द वापस नहीं लेना चाहता, लेकिन इस अवसरपर आपको यह बता देना चाहूँगा कि मैं आज भारतसे उसमें बताये गए तरीकोंपर चलनेको नहीं कहूँगा। अगर आप उनके अनुसार चल सकें तब तो एक वर्ष क्यों, एक दिनमें ही आपको स्वराज्य प्राप्त हो जाये। भारत उस आदर्शको चरितार्थ करके सारी दुनियामें मूर्धन्य स्थान प्राप्त करना चाहता है, लेकिन अभी कुछ समयतक तो यह कमोबेश दिवा-स्वप्न-जैसा ही रहेगा। आज तो मैं देशको एक ऐसा व्यावहारिक कार्यक्रम दे रहा हूँ जिसका उद्देश्य न्यायालयों, डाक व तार व्यवस्था, तथा रेलमार्गोका खात्मा करना नहीं, बल्कि संसदीय स्वराज्य प्राप्त करना है। मैं आपसे यह कहता हूँ कि अगर हम सरकारसे बिलकुल अलग नहीं हो जाते तो स्कूलों, न्यायालयों, कौंसिलों, सैनिक व असैनिक सेवाओं तथा कर-दान और विदेशी व्यापारके माध्यमसे हम उसके साथ सहयोग ही कर रहे हैं।

जिस क्षण हम यह समझ जायेंगे और असहयोग शुरू कर देंगे उसी क्षण सरकारकी इमारत भरभराकर बैठ जायेगी। अगर मुझे विश्वास हो जाये कि जनसाधारण इसी समय सारे कार्यक्रमके लिए तैयार है, तो मैं उसे अमलके लिए सामने पेश करनेमें विलम्ब नहीं करूँगा। इस समय यह सम्भव नहीं है कि जो लोग कानूनका अमल करानेके लिए आयेंगे, जनसाधारण उनके खिलाफ अपना गुस्सा व्यक्त न करे; यह भी सम्भव नहीं है कि बिना किसी प्रकारकी हिंसक कार्रवाई किये सैनिक अपने हथियार डाल देंगे। अगर आज यह सम्भव होता तो असहयोगके सारे चरणोंको मैं एक ही साथ कार्यान्वित करनेको कहता। लेकिन अभी हम जनसाधारणको इतना अनुशासित नहीं बना पाये हैं। हमने तो राष्ट्रका कीमती समय वर्षों एक ऐसी भाषाको सीखनेमें बरबाद कर दिया, स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए जिसकी हमें कोई जरूरत नहीं है। ये सारे वर्ष हमने मिल्टन और शैक्सपियरसे स्वतन्त्रताका पाठ पढ़नेमें, (स्टुअर्ट) मिलकी रचनाओंसे प्रेरणा ग्रहण करनेमें गँवा दिये, जब कि स्वतन्त्रताका सच्चा पाठ हम अपने ही घरमें सीख सकते थे। इस तरह हम केवल जनसाधारणसे अपने आपको अलग कर लेनेमें ही सफल हुए हैं। हम पाश्चात्य सभ्यताके रंगमें रंग गये हैं। इन ३५ वर्षोंमें हमने अपनी शिक्षाका उपयोग जन-मानसमें प्रवेश पानेके लिए नहीं किया। हम केवल जनताकी पहुँचसे परे ऊँचे मंचोंपर बैठकर उसे अपने भाषण पिलाते रहे हैं— और सो भी एक ऐसी भाषामें जिसे वह बिलकुल नहीं जानती। नतीजा यह है कि आज हम कोई भी बड़ी सभा अनुशासित ढंगसे संचालित नहीं कर पाते, और अनुशासन तो सफलताकी कुंजी है। मैंने असहयोगके प्रस्तावमें[2] जो "क्रमिक" शब्दका प्रयोग किया

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ८-१२-१९२०।

२. सितम्बर १९२० में कलकत्तामें आयोजित कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें पास किया गया प्रस्ताव।

है, उसका एक कारण यह भी है। अगर आप धृष्टता न समझें तो मैं कहूँगा कि भारतके जन-मानसको जितना मैं समझता हूँ उतना कोई भी शिक्षित भारतीय नहीं समझता। मेरे विचारसे, जनता अभी करकी अदायगी बन्द करनेकी स्थितितक नहीं पहुँची है, उसने अबतक पर्याप्त आत्म-संयम नहीं सीखा है। अगर मुझे यह भरोसा हो जाये कि वह अहिंसापर दृढ़ रहेगी तो मैं आज ही राष्ट्रके बहुमूल्य समयका एक क्षण भी बरबाद किये बिना, उससे कर देना बन्द कर देनेको कह दूँ। मुझे तो भारतकी आजादीकी लगन लग गई है, और इस्लामकी आजादी भी मुझे उतनी ही प्यारी है। इसलिए अगर मुझे यह विश्वास हो जाये कि सारे कार्यक्रमपर तत्काल अमल किया जा सकता है तो मैं क्षण-भरकी भी देर न करूँ।

अपने कुछ प्यारे और सम्माननीय नेताओंको सभामें उपस्थित न देख कर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। इस समय यहाँ सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके[1] सिंहनादका सुनाई न पड़ना बड़ी खटकनेवाली बात है। उन्होंने देशकी इतनी सेवा की है, जिसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यद्यपि आज हम एक-दूसरेसे बिलकुल विपरीत बिन्दुओंपर खड़े हैं, हमारे बीच गहरे मतभेद हो सकते हैं, फिर भी हमें उनको प्रकट करनेमें संयमसे काम लेना होगा। मैं आपसे अपने सिद्धान्तका रंच-मात्र भी त्याग करनेको नहीं कहता। मैं तो कर्म और वचन, दोनों तरहसे अहिंसा बरतनेको ही कहता हूँ। अगर सरकारके साथ हमारे व्यवहारमें अहिंसा जरूरी है, तो अपने नेताओंके साथ व्यवहारमें तो वह और भी जरूरी है। पूर्व बंगालमें अभी हालमें अपने ही लोगोंके विरुद्ध हिंसाकी जिन वारदातोंकी खबर मिली है, उन सबको सुनकर तो मेरा मन बहुत दुखी हुआ है। मुझे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि हालके चुनावोंमें मत देनेपर एक व्यक्तिके कान काट दिये गये और इन चुनावोंमें उम्मीदवारकी तरह खड़ा होनेपर एक अन्य व्यक्तिके बिस्तरपर पाखाना फेंका गया। इस तरह तो असहयोग कभी सफल नहीं होगा। जबतक हम पूर्ण स्वतन्त्र और आतंकहीन वातावरण तैयार नहीं कर देते, जबतक हम अपने विरोधियोंकी स्वतन्त्रताका भी अपनी ही स्वतन्त्रताकी तरह आदर नहीं करते तबतक यह आन्दोलन कदापि सफल नहीं हो सकता। हम अपने लिए धर्म, अन्तरात्मा, विचार और कर्मकी जिस स्वतन्त्रताकी माँग करते हैं, वही स्वतन्त्रता हमें उसी मात्रामें दूसरोंको भी देनी चाहिए। असहयोग शुद्धीकरणकी एक प्रक्रिया है, और हमें बराबर, हमसे भिन्न मत रखनेवालोंके हृदय, मस्तिष्क और भावनाको जगाना चाहिए, झकझोरना चाहिए; लेकिन कभी उनके शरीरपर हाथ नहीं उठाना चाहिए। अनुशासन और संयम हमारे आचरणके मुख्य सिद्धान्त हैं; मैं आपको आगाह कर देना चाहता हूँ कि आप किसी तरहके उत्पीड़क सामाजिक बहिष्कारका प्रयोग भी न करें। इसलिए जब मैंने दिल्लीमें एक व्यक्तिकी लाशके साथ किये गये अपमानजनक व्यवहारके बारेमें सुना तो मुझे बहुत दुःख हुआ। अगर यह काम असहयोगियोंने किया

१. सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (१८४८-१९२५); प्रसिद्ध वक्ता और राजनीतिज्ञ; १८९५ और १९०२ में कांग्रेसके अध्यक्ष; बादमें उदार दलमें शामिल हो गये और मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार अधिनियमके अधीन बंगालमें जो मंत्रिमण्डल बना उसमें भी शामिल हुए।

था तो मेरे विचारसे उन्होंने इस तरह स्वयं अपनी और अपने धर्मकी भी तौहीन की।[1] मैं एक बार फिर कहता हूँ कि हम हिंसाके बलपर अपने देशको मुक्ति नहीं दिला सकते।

मैंने कांग्रेसके मंचसे कहा था[2] कि अगर राष्ट्र पर्याप्त उत्साह दिखाये तो स्वराज्य एक वर्षमें ही मिल सकता है; यह बात मैंने पूरी गम्भीरताके साथ कही थी। वर्षके तीन महीने तो बीत ही चुके हैं। अगर हम स्वयं अपने प्रति सच्चे हैं, अपने राष्ट्रके प्रति सच्चे हैं और जिस राष्ट्र-गीतको निरन्तर गाया करते हैं, उसके प्रति सच्चे हैं, अगर हम 'भगवद्गीता'के प्रति सच्चे हैं और 'कुरान'के प्रति सच्चे हैं तो हम इस कार्यक्रमको शेष नौ महीनेमें पूरा करके इस्लामको, पंजाबको और समस्त भारतको मुक्ति दिलाकर दिखायेंगे।

विशेष रूपसे शिक्षित वर्गोंका ध्यान रखते हुए, मैंने मर्यादित ढंगका कार्यक्रम पेश किया है, जिसपर एक सालके भीतर अमल किया जा सकता है। लगता है, हम इस भ्रममें पड़े हुए हैं कि सरकारने जिन कौंसिलों, न्यायालयों और स्कूलोंकी व्यवस्था की है, उनके बिना हमारा काम चल नहीं सकता। जिस क्षण यह भ्रम दूर हो जायेगा उसी क्षण हमें स्वराज्य मिल जायेगा। एक लाख विदेशी तीस करोड़ लोगोंके एक राष्ट्रके साथ मनमानी करें, यह इस सरकारके लिए भी लज्जाजनक बात है और हम सबके लिए भी। उनका हमारे साथ मनमानी कर सकना सम्भव कैसे हुआ? हमें आपसमें विभक्त करके वे हमपर शासन करते रहे हैं। ब्रिटिश सरकार "फूट डालो और राज्य करो" की नीतिपर ही टिकी हुई है, ह्यूमकी इस स्पष्ट स्वीकारोक्तिको मैं कभी भूल नहीं पाता। इसीलिए मैंने हिन्दू-मुस्लिम एकताको असहयोगकी सफलताके लिए सबसे बड़ी जरूरत माना है और इसपर खास जोर दिया है। लेकिन यह एकता मौखिक एकता नहीं होनी चाहिए, सौदेबाजीकी एकता नहीं होनी चाहिए। यह एकता हार्दिक प्रेमकी ठोस नींवपर आधारित होनी चाहिए। अगर आप हिन्दुत्वकी रक्षा करना चाहते हैं तो मैं कहता हूँ, भगवानके लिए, मुसलमानोंके साथ सौदेबाजी मत कीजिए। इधर महीनोंसे मैं मौलाना शौकत अलीके साथ ही घूमता रहा हूँ, लेकिन इस बीच मैंने गो-रक्षाके बारेमें कभी कुछ बात नहीं की है। अली बन्धुओंसे मेरा सम्बन्ध सत्यनिष्ठापर आधारित है। मैं समझता हूँ, मेरी सत्यनिष्ठा कसौटीपर चढ़ी हुई है, समस्त हिन्दुत्वकी सत्यनिष्ठा कसौटीपर चढ़ी हुई है। अगर उनमें सत्यनिष्ठाका अभाव न होगा तो वे भारतके मुसलमानोंके प्रति अपना कर्त्तव्य अवश्य निभायेंगे। किसी प्रकारकी सौदेबाजी हमारे लिए लज्जाजनक होगी। प्रकाश प्रकाशको जन्म देता है, अन्धकारको नहीं; और सदुद्देश्यसे प्रेरित नेक बरतावको दोहरा पुरस्कार मिलता है। गौओंकी रक्षा तो सिर्फ ईश्वर ही कर पायेगा। आज मुझसे ऐसे सवाल न पूछिए कि "गौओंका क्या होगा?" जब भारत इस्लामके सम्मानकी रक्षा कर लेगा, तभी मुझसे ऐसे सवाल पूछिएगा। आप अपने राजाओंसे पूछिए कि वे अपने

१. देखिए पृष्ठ ९९, पा० टि० १।
२. सितम्बर १९२० में कलकत्ता कांग्रेसके अधिवेशनमें।

मेहमानोंकी मेजबानीके लिए क्या कुछ करते हैं। वे क्या उनके लिए गोमांस और शैम्पेनकी[1] व्यवस्था नहीं करते? पहले आप गौ-वध रोकनेके लिए उन्हें समझाइए-मनाइए और फिर मुसलमानोंके साथ कोई सौदेबाजी कीजिए। और स्वयं हम हिन्दू गौओं और उनकी सन्ततिके साथ कैसा व्यवहार करते हैं? क्या हम उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसे व्यवहारकी अपेक्षा हमसे हमारा धर्म रखता है? जबतक हम अपना आचरण ठीक नहीं कर लेते, जबतक हम गौओंको अंग्रेजोंसे नहीं बचाते, तबतक उसके लिए मुसलमानोंसे कुछ कहनेका हमें कोई हक नहीं है। उनसे गौओंको बचानेका सबसे अच्छा तरीका उनकी इस विपदकी घड़ीमें बिना किसी शर्तके उनकी सहायता करना है।

इसी तरह पंजाबके प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य है? जिस दिन किसी एक भी पंजाबीको अमृतसरकी उस गन्दी गलीमें पेटके बल रेंगनेको मजबूर किया गया था, उस दिन दरअसल सारा भारत इस अपमानको झेलनेके लिए मजबूर किया गया था; जब एक उद्धत अधिकारीने मनियाँवालाकी निर्दोष स्त्रियोंके बुरके खोले थे, उस दिन उसने दरअसल भारतके समस्त स्त्री-समाजके चेहरेको बेपर्दा किया था; भारतका समस्त बाल समुदाय उस दिन अपमानित किया गया था, जिस दिन पंजाबके मार्शल लॉ क्षेत्रमें नन्हें स्कूली बच्चोंको निश्चित स्थानोंपर जाकर हर रोज चार बार हाजिरी और ब्रिटिश झंडेको सलामी देनेपर मजबूर किया गया था। इस अमानवीय आदेशके कारण सात-सात वर्षके दो बच्चोंको लूकी चपेटमें पड़कर प्राण गँवाने पड़े थे; उन्हें दोपहरकी तपती धूपमें खड़े रहनेको मजबूर किया गया था।[2] मेरे विचारसे जबतक यह सरकार उचित पश्चात्ताप करके अपने अपराधोंका परिमार्जन नहीं करती तबतक इसके संरक्षण-में चलनेवाले स्कूलों और कालेजोंमें जाना पाप है। जब हम याद करते हैं कि पंजाबमें इसी सरकारके न्यायालयोंने निरीह लोगोंको कारावास और मौतकी सजाएँ दी थीं, तब अगर हममें आत्म-सम्मान है तो हम इन न्यायालयोंमें अपने मामले कैसे पेश कर सकते हैं? स्वेच्छापूर्वक इस सरकारकी सहायता करना या उससे कोई सहायता लेना इन अपराधोंमें साझेदार बनना है।

भारतकी स्त्रियाँ इस संघर्षके आध्यात्मिक स्वरूपको सहज ही समझ गई हैं। हजारों स्त्रियाँ अहिंसात्मक असहयोगका सन्देश सुननेके लिए सभाओंमें आती हैं और स्वराज्य-प्राप्तिका काम आगे बढ़ानेके लिए मुझे अपने बहुमूल्य जेवरात भेंट करती हैं। लोगोंने अपने उत्साहका अद्भुत परिचय दिया है। फिर अगर मैं यह मानता हूँ कि एक सालके अन्दर स्वराज्य मिल सकता है तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? भारतकी स्त्रियोंने जो उत्साह दिखाया है, उसका मूल्य अगर मैं कम करके आँकू तो इसका तो यह मतलब होगा कि मुझे ईश्वरमें पूरी आस्था नहीं है। आशा है, विद्यार्थीगण अपना कर्त्तव्य निभायेंगे। राष्ट्र निश्चय ही यह अपेक्षा भी करता है कि जो वकील-समाज आजतक जन-आन्दोलनका नेतृत्व करता आया है, वह इस नई जागृतिको अवश्य पहचानेगा।

१. एक तरहकी विलायती शराब।

२. तात्पर्य १९१९ के पंजाबके उपद्रवोंसे है, देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १२८-३२२।

मैंने अंग्रेजोंके प्रति कड़े शब्दोंका प्रयोग किया है, लेकिन बहुत सोच-समझकर। मैं बदलेकी भावनासे प्रेरित नहीं हूँ। मैं अंग्रेजोंको अपना शत्रु नहीं मानता। उनमें से बहुत-से लोगोंकी योग्यताका मैं कायल हूँ। बहुत-से अंग्रेजोंकी मैत्रीका सौभाग्य भी मुझे प्राप्त है, लेकिन आज अंग्रेजी शासनका जो स्वरूप है, उसका मैं पक्का दुश्मन हूँ; और अगर इसे सुधारा नहीं जा सकता —और अगर किसी एक व्यक्तिकी शक्तिसे, तपस्यासे इसे ध्वस्त किया जा सकता हो — तो मैं इसे अवश्य ध्वस्त कर दूँ। जो साम्राज्य अन्याय और विश्वासघातका प्रतीक बन जाये और फिर भी अगर उसके कर्त्ता-धर्त्ता अन्याय और विश्वासघातके लिए पश्चात्ताप नहीं करते तो उसे बने रहनेका कोई अधिकार नहीं है। असहयोगकी योजना राष्ट्रको न्याय प्राप्त करनेमें सक्षम बनानेके लिए ही तैयार की गई है।

मुझे आशा है कि आत्मशुद्धिके इस आन्दोलनमें बंगाल उचित योगदान करेगा। जब सारा भारत सो रहा था, उस समय बंगालने ही स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षाका शुभारम्भ किया।[1] मैं आशा करता हूँ कि शुद्धीकरण और आत्मत्यागके द्वारा स्वराज्य प्राप्त करने और खिलाफत तथा पंजाबके लिए न्याय प्राप्त करनेके इस आन्दोलनमें बंगाल सबसे आगे रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२–१२–१९२०

७०. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको

कलकत्ता

१४ दिसम्बर, १९२०

तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम मुझे भार नहीं लगता। वह तो मेरे जीवनके बड़ेसे-बड़े सुखोंमें से है। इस प्रेमका आधार तुम्हारे प्रति मेरा यह विश्वास ही है कि आखिरकार तुम्हारा हृदय निर्मल है। यह प्रेम तभी निःशेष होगा जब मैं तुम्हें इसके विपरीत पाऊँगा। अगर मेरा प्रेम तुम्हारे अच्छेसे-अच्छे गुणोंको निखारकर उद्घाटित नहीं कर देता, अगर वह तुम्हें आजकी अपेक्षा अधिक अच्छा और अधिक पवित्र नहीं बनाता तो उसका कोई मतलब ही नहीं रह जाता। मैं अपने इस प्रयत्नमें तुम्हारे साथ कड़ा व्यवहार करते दिखूँ तब भी तुम बुरा न मानना। खैर; अभी तो मैं तुम्हें परख रहा हूँ और कोशिश यही करूँगा कि कोई ऐसा व्यवहार न करूँ जो तुम्हें बुरा लगे।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१. यह १९०५-६ की बात है, जब सरकारके बंग-भंगके प्रस्तावके विरुद्ध जबरदस्त जन-आन्दोलन हुआ था।

७१. भाषण : विद्यार्थियोंकी सभा, कलकत्तामें

१४ दिसम्बर, १९२०

महात्मा गांधीने सभामें अपने भाषणका आरम्भ श्रोताओंको "मेरे सह-विद्यार्थियो" सम्बोधनसे किया। उन्होंने कहा : हालाँकि मैं किसी राष्ट्रीय अथवा सरकारके तत्त्वावधानमें स्थापित विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध किसी कालेजमें नहीं पढ़ता; लेकिन मैं समझता हूँ कि हर समझदार आदमीको जीवनभर विद्यार्थी बना रहना चाहिए। अध्यक्ष महोदयने और गांधीजीसे पहलेके दो अन्य वक्ताओंने श्रोताओंसे कहा था कि वे स्कूल और कालेज छोड़नेके बारेमें आज शामको ही फैसला कर लें। महात्मा गांधीने उसका उल्लेख करते हुए कहा कि मैं चाहता हूँ कि आप ऐसी कोई बात न करें। मेरी सलाह है कि आप आज ही कोई फैसला न करें। मैं चाहता हूँ कि आप भावनाओंमें न बहें, बुद्धिसे काम लें। आज शामको कोई फैसला करनेके बजाय आप अपने-अपने कमरोंमें जायें और ईश्वरसे प्रार्थना करें कि वह आपको रास्ता दिखाये। आप उस रास्तेपर चलें। मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मेरा सन्देश उन लोगोंके लिए नहीं है जिनका विश्वास सर्वशक्तिमान परमेश्वरमें नहीं है और जो यह नहीं मानते कि वही सब कार्योंमें हमारा मार्गदर्शन करता है।

उन्होंने अपने भाषणके विषयपर आते हुए कहा : हमारा कार्य कोई छोटा-मोटा कार्य नहीं है। हमारे सामने जो परिस्थिति है, वैसी परिस्थिति ब्रिटिश राज्यकी स्थापनासे लेकर आजतकके इस लम्बे कालमें शायद कभी नहीं आई। ब्रिटिश सरकारने इस्लामकी पीठमें छुरा भोंका है। सभी जानते हैं कि श्री लॉयर्ड जॉर्जने[1] भारतके मुसलमानोंको गम्भीरतापूर्वक यह वचन[2] दिया था और इस वचनको उन्होंने मुसलमानोंके लिए, और खास तौरसे भारतके मुसलमानोंके लिए कई बार दुहराया था कि टर्कीकी सम्पूर्ण प्रभुसत्ताको अखण्ड रखा जायेगा। श्री लॉयर्ड जॉर्ज अब इस वचनसे मुकर गये हैं और उन्होंने टर्कीके सुल्तानसे कुस्तुन्तुनिया, थ्रेस, स्मर्ना और एशिया माइनरके सभी अच्छे प्रदेश छीन लिये हैं। कुछ लोग कह सकते हैं कि कुस्तुन्तुनिया तुर्कोंके ही अधिकारमें है; लेकिन मैं कहता हूँ कि सुल्तान अपने राज्यमें रहते हुए भी कुस्तुन्तुनियामें कैद है। उनका मेसोपोटामियाका इलाका अंग्रेजोंके कब्जेमें है और सीरिया फ्रांसीसियोंके। मुसलमानोंके दिलोंका यह घाव जबतक भर नहीं जाता, तबतक

१. १८६३-१९४५; ब्रिटिश राजनीतिज्ञ; प्रधानमन्त्री, १९१६-२२।

२. लॉयड जॉर्जने ५ जनवरी, १९१८ को यह घोषणा की थी : "हम टर्कीसे उसकी राजधानी या उसके एशिया माइनर और थ्रेसके समृद्ध और प्रसिद्ध प्रदेशोंको — जिनमें तुर्कोंका बहुमत है — छीननेके लिए नहीं लड़ रहे हैं। हमें इसपर कोई आपत्ति नहीं कि तुर्क जाति जहाँ बसी हुई है उन प्रदेशोंमें तुर्कोंका साम्राज्य कायम रहे और उसकी राजधानी कुस्तुन्तुनिया हो।"

रिसता रहेगा; और यदि हिन्दू अपने मुसलमान भाइयोंके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन करना चाहते हैं तो उन्हें मुसलमानोंके इस संकट-कालमें उनका साथ देना चाहिए। इसी तरह ब्रिटिश सरकार द्वारा पंजाबमें जो कुछ किया गया उससे भारतके हृदयको आघात पहुँचा है लेकिन उसे इसके लिए कोई पश्चात्ताप नहीं होता। वह भारतीयोंसे कहती है कि वे उन अन्यायोंको भूल जायें। टर्कीकी सन्धिके मामलेमें भी वह केवल अपनी लाचारी प्रकट करती है। हमारे सामने प्रश्न यह है कि क्या भारतीय अपने आत्म-सम्मान और गौरवको ध्यानमें रखते हुए ऐसी सरकारका साथ देते रह सकते हैं जिसने पंजाबमें अत्याचार किये हैं, जिसपर टर्कीकी सन्धिकी जिम्मेदारी है और जिसके शासनमें निर्दोष लोग मारे गये हैं।

अब भारतको तय करना है कि वह क्या चाहता है। मुझे यह माननेमें कोई झिझक नहीं कि यदि इन दो अत्याचारोंके बाद भी हमारी नींद नहीं टूटती तो असहयोग आन्दोलनकी बात करना ही बेमतलब होगा। यदि हम ऐसी सरकारका साथ देते रहते हैं तो हम एक राष्ट्र कहलानेके अधिकारी ही नहीं रह जाते। जबतक वह इन अन्यायोंका परिमार्जन नहीं करती, हम सहयोग नहीं कर सकते। संकट-ग्रस्त लोगोंके सामने दो रास्ते होते हैं: या तो वे हथियार लेकर लड़ें या सरकारसे असहयोग करें। समस्त भारतके लोगोंने यह स्वीकार कर लिया है कि वे हथियार उठानेमें असमर्थ हैं। मेरी दृष्टिमें हथियार लेकर लड़ना पाप है, यद्यपि बहुसंख्यक मुसलमान और खासी बड़ी संख्यामें हिन्दू हथियार न उठाना केवल नीतिके रूपमें ही ठीक मानते हैं। यह एक मानी हुई बात है कि [आज] हथियारोंसे लड़ना असम्भव है। तब हम उस सरकारसे कैसे निबटें जो एक लाख अंग्रेज सैनिकोंकी मददसे ३० करोड़ लोगोंको गुलाम बनाये हुए है?

दूसरा सवाल यह है कि सरकार भारतको गुलाम कैसे बनाये हुए है? [हमारे सहयोगके बलपर]। मैं तो कहता हूँ कि यदि हम सभी हर प्रकारका सहयोग देना बन्द कर दें तो यह सरकार तुरन्त लड़खड़ाकर गिर पड़ेगी और नष्ट हो जायेगी। जबतक हम अदालतों, कौंसिलों और स्कूलोंके जरिये इस सरकारसे सहयोग करते हैं, हम गुलाम हैं। मैं तो इन तीनोंको ही माया या भ्रम कहता हूँ। जबतक हम यह मानते हैं कि हम जिस सरकारको संरक्षण देते हैं या जिसके अनुशासनको मानते हैं उसके द्वारा नियन्त्रित संस्थाओंके बिना हमारा काम नहीं चल सकता — अदालतोंके बिना हमें न्याय नहीं मिल सकता, कौंसिलोंके बिना हमारे कानून नहीं बन सकते और सरकारी स्कूलोंके बिना शिक्षा नहीं हो सकती — तबतक हम गुलाम रहेंगे। आज विद्यार्थियोंके सम्मुख प्रश्न कर्त्तव्यका है। जबतक छात्रगण शिक्षाके अकालका सामना करनेके लिए तैयार न हों, तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि वे अपने कर्त्तव्यका पालन कर रहे हैं। आपके सामने प्रश्न बहुत सीधा-सादा है — इन स्कूलोंमें व्याप्त ताना-शाही-जैसे वातावरणसे आपको अरुचि हुई है या नहीं, आपके समूचे व्यक्तित्वमें यह

द्रोह-भावना उत्पन्न हुई है या नहीं कि आप इस सरकारसे कोई सम्बन्ध नहीं रखेंगे? मैं जो बात कहता हूँ वह बहुत सीधी-सादी है। यदि हममें अभी राष्ट्रीय चेतना नहीं आई है, यदि हमारे अन्दर राष्ट्रीय आत्मसम्मानका कोई भाव नहीं है, तो मैं जो असहयोगकी पैरवी करता हूँ उसमें कोई जान ही नहीं रह जाती। मुझे बोअर-युद्धकी एक घटना याद आती है। जब राष्ट्रपति क्रूगरने[1] ब्रिटिश सरकारको चुनौती दी, तो सभी छात्र स्कूलोंसे निकल आये और उनकी पढ़ाईकी कोई व्यवस्था नहीं की गई। इसके विपरीत वे खन्दकोंमें लड़ते और लड़ाईके मैदानमें घायलोंकी मदद करते हुए दिखाई पड़ते थे। उन्होंने यह नहीं सोचा कि उनकी पढ़ाई बन्द होनेसे उनका मानसिक विकास रुक जायेगा। ऑक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज और बैरिस्टरीके कालेजोंने अपने विद्यार्थियोंको युद्ध-क्षेत्रमें कैसे भेजा था? वे क्या खन्दकोंमें लड़ने नहीं गये? मैंने स्वयं उनमें से कुछको लेकर बीमारों और घायलोंकी सहायताके लिए एक आहत-सहायक दल बनाया था। इसके लिए उसी सरकार द्वारा मेरी सेवाकी कृतज्ञतापूर्वक सराहना की गई थी, जिसके साथ सहयोग करना मुझे अब असम्भव लगता है। सबके दिलोंमें एक ही चाह थी कि दुश्मनको हराया जाये। भारतके लिए आज वही चीज दावपर लगी हुई है, जो उस समय इंग्लैंडके लिए लगी हुई थी। इंग्लैंड अपने अस्तित्वके लिए, अपने सम्मानके लिए लड़ रहा था। चूँकि इंग्लैंडके सम्मानपर आक्रमण किया गया था, इसलिए वह अपने सर्वस्वकी बलि देनेको तैयार था। क्या भारत भी वैसी ही स्थितिमें नहीं पहुँच गया है? क्या भारतमें आत्मसम्मानकी इतनी चेतना है कि उसका हृदय इस अपमानसे तिलमिला उठे और जब उसके जीवन और सम्मानका सवाल खड़ा है तो उनकी रक्षाके लिए वह वैसा ही बलिदान करनेको तैयार हो?

इसके बाद, उन्होंने सभामें उपस्थित लोगोंको वे दो पत्र दिखाये, जिनमें विद्यार्थियोंने पूछा था कि कालेज छोड़नेके बाद हम क्या करेंगे, कहां जायेंगे? महात्मा गांधीने कहा: आप लोगोंके लिए मेरा यही सन्देश है कि आप सभी सरकार द्वारा नियन्त्रित स्कूलोंको छोड़ दें, यह हमारे सम्मानकी रक्षाके लिए जरूरी है। सरकारके साथ किसी भी तरहसे सहयोग करना गलत है। स्कूल और कालेज छोड़नेके बाद आप क्या करेंगे? आप पत्थर फोड़ सकते हैं और भारतके बदबू भरे तबेलोंको झाड़-बुहार कर साफ-सुथरा बना सकते हैं। मैं आपसे कोई वादा या सौदा करना नहीं चाहता। यह तो आपका कर्त्तव्य है; और इसके लिए किसी पुरस्कारकी कोई जरूरत नहीं। यह एक ऐसा ऋण है, जो जान देकर भी चुकाया जाना चाहिए। आपको इसका पुरस्कार स्वर्गमें मिलेगा, इस दुनियामें नहीं। आपको यहाँ जो पुरस्कार मिलेगा, वह स्वतन्त्रता है। लेकिन सरकार द्वारा नियन्त्रित स्कूल उन्हें ही छोड़ने चाहिए जिन्हें स्कूल जानेपर हर बार घुटन महसूस होती है। [उन्होंने आगे कहा:]

१. एस० जे० पॉल क्रूगर (१८२५-१९०४); ट्रान्सवालके राष्ट्रपति, १८८३-१९००।

यदि आप सोचते हैं कि स्कूलों और कालेजोंमें रह कर आप अपनी बुद्धिका विकास कर सकते हैं, तब आप उन्हें न छोड़ें। और यदि यह सोचें कि इन स्कूलोंमें रहकर आप स्वतन्त्रताको नज़दीक ला रहे हैं तो स्कूलोंमें पढ़ते रहना आपका परम कर्त्तव्य है। और आप यदि इनमें जाना बन्द नहीं करते तो आपको अपने बचनके अनुसार अपनी संस्थाके प्रति वफ़ादार रहना चाहिए क्योंकि प्रारम्भसे ही आपसे इसकी आशा रखी जाती है। आपको ढोंगी नहीं बनना चाहिए; ऐसा नहीं होना चाहिए कि आप उनमें जाते भी रहें और मनमें उनके प्रति अश्रद्धा भी हो। मनमें अश्रद्धा होनेपर यह आपका परम कर्त्तव्य है कि आप स्कूल-कालेज केवल छोड़ ही न दें, बल्कि खुल्लमखुल्ला घोषणा कर दें कि आपका उद्देश्य इस सम्पूर्ण व्यवस्थाको तहसनहस करना है। एक बार में फिर कहता हूँ कि मैं केवल आपकी भावुकताको नहीं उभारना चाहता, बल्कि चाहता हूँ कि आप अपनी बुद्धि और हृदय दोनोंसे काम लें। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरी बात ध्यानसे सुनें और उसपर कुछ समयतक उचित विचार करनेके बाद ईश्वरके सम्मुख अपना निर्णय करें। यदि आप यह समझ लेंगे कि कालेज छोड़ना कर्त्तव्य है, तो फिर आप वहाँ एक भी दिन और न रह पायेंगे। आप दिलमें बदलेकी भावना रखकर, भविष्यमें कभी बदला निकालनेका अवसर पानेकी उम्मीदमें इन संस्थाओंमें जाते रहें यह भी नहीं हो सकता। [गांधीजीने आगे कहा :]

वैसे इतिहासमें कपटपूर्ण आचरणके अनेक उदाहरण मिलते हैं। सम्भव है कि ऐसी परिस्थितिमें पड़कर अन्य राष्ट्र कपटपूर्ण आचरणका सहारा लेते; लेकिन असहयोग आन्दोलनमें वह नहीं किया जा सकता। यह तो शुद्धीकरणकी प्रक्रिया है, और इसमें ईश्वरकी सहायताकी अपेक्षा रहती है, मनुष्यकी नहीं। इसमें आवश्यकता इस बातकी है कि एक उच्च, आदर्शपूर्ण ढंगसे अपने उद्देश्यके लिए बड़ेसे-बड़ा बलिदान किया जाये। इसलिए जब मुझे इस विचारका कोई व्यक्ति मिलता है कि छात्रोंको स्कूलोंमें तो बने रहना चाहिए, किन्तु उन्हें इन संस्थाओंके प्रति दुर्भावना रखनी चाहिए और मौका मिलनेपर इन स्कूलोंके खिलाफ मरणान्तक प्रहार करना चाहिए, तब मुझे बहुत दुःख होता है। यदि हममें हमारे प्राचीन ऋषियोंका तनिक भी तेज शेष है, यदि मुसलमानोंमें इस्लामको वर्तमान रूप देनेवाले फकीरोंके प्रति कुछ भी सम्मानका भाव है और वे 'कुरानको' ठीक तरहसे पढ़ते हैं, तो वे देखेंगे कि दोनों धर्मोंमें कपट और बेईमानीके लिए कोई स्थान नहीं है। ऐसे मामलेमें छलकी कोई गुंजाइश नहीं है। हमारी लड़ाई तो शुद्ध धार्मिक लड़ाई है। यदि हम शैतानके तरीकों-से काम लेंगे तो निश्चय ही असफल रहेंगे। तब विद्यार्थियोंको क्या करना चाहिए? मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं कोई सौदेबाजी करनेके लिए नहीं आया हूँ। लेकिन मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि यदि आप सामूहिक रूपसे स्कूलोंसे बाहर चले आयेंगे तो राष्ट्रीय संस्थाओंकी कमी न रहेगी। वे सभी नेता, जो इस समय सोते

जान पड़ते हैं, जाग जायेंगे और आपके लिए स्कूल और कालेज स्थापित कर देंगे। गुजरातमें ऐसा ही हुआ है और ऐसा ही सूरतमें भी। इन नेताओंका दोष क्या है? अहिंसात्मक असहयोगमें उनका विश्वास नहीं है; इसीलिए उन्होंने कोई उत्साह नहीं दिखाया है। किन्तु यदि सभी विद्यार्थी स्कूल छोड़ दें तो मुझे आशा है कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी हमारा साथ देंगे। मैं यही चाहता हूँ कि इन स्कूलों और कालेजोंका बहिष्कार करके आप अपने पैरोंपर खड़े हों, यह न हो कि एक गुलामीमें से निकल कर दूसरी गुलामीमें फँस जायें। मैं चाहता हूँ कि विद्यार्थी पूरी तरह अपने पैरोंपर खड़े हों, वे नया जीवन व्यतीत करते हुए स्वतन्त्रताकी प्राणप्रद वायुमें साँस लें और अपने असहाय होनेकी भावनाको स्वावलम्बनमें बदल दें। अन्तमें गांधीजीने मातापिताओंके प्रति विद्यार्थियोंका कर्त्तव्य बताते हुए कहा: मैं यहाँ केवल उन्हीं विद्यार्थियोंकी स्थितिपर विचार कर रहा हूँ जो १६ वर्षसे अधिक आयुके हैं। हिन्दू यह मानते हैं कि १६ वर्षकी आयुके बाद पुत्र मित्रवत् हो जाता है। मैं यह नहीं चाहता कि छात्र निरंकुश होकर माता-पिताकी आज्ञाकी अवहेलना करें। यदि आपको यह विश्वास हो कि आप सही रास्तेपर हैं तो आप उन्हें अपनी बात हाथ जोड़कर समझायें। आप उन्हें यह विश्वास दिलानेका प्रयत्न करें कि आपके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया गया है। तब कोई भी माता-पिता अपने बेटेकी रायका अनादर नहीं करेंगे। माता-पिताओंके दिमाग एक खास तरहके साँचेमें ढल चुके होते हैं, लेकिन आपके दिमाग तो स्वच्छ और ग्रहणशील हैं। इसलिए मतभेद तो हो सकते हैं। किन्तु हर्गिज आप अपने माता-पिताओंकी रायके मुकाबले मेरी राय पसन्द न करें। हाँ, मेरी रायपर आपको विश्वास हो जाये तो आपको अपने माता-पिताकी आज्ञाकी अवहेलना करनेका अधिकार है। मैं आपसे फिर कहता हूँ कि आप भावावेशमें आकर कोई काम न करें। क्षणिक आवेशमें आकर आप स्कूलों और कालेजोंको छोड़ बैठें और फिर उनमें वापस जायें —— इससे तो आपका वहाँ बने रहना ही ज्यादा ठीक है। उतावलीमें काम करनेका नतीजा तो केवल यही होगा कि आपको फिर कभी अपना संकल्प तोड़ना पड़ेगा और इस प्रकार बेइज्जत होना पड़ेगा। आप कोई कदम उठानेसे पहले पचास बार सोचें। आप अपने मित्रों, माता-पिताओं और शिक्षकोंसे परामर्श करें, और यदि फिर भी आपका विश्वास यही हो कि आप सही रास्तेपर हैं तो आप स्कूल और कालेज छोड़ दें।

स्कूल और कालेज छोड़ देनेपर भी आप उन विद्यार्थियोंकी [देश] भक्तिको कम न मानें जिन्होंने स्कूल और कालेज नहीं छोड़े हैं। मैंने बहुधा देखा है कि जो छात्र स्कूल और कालेज नहीं छोड़ते उन्हें ताने दिये जाते हैं। आप जो स्वतन्त्रता अपने लिए चाहते हैं, वही स्वतन्त्रता दूसरोंको भी दी जानी चाहिए। सभाओंमें भी आप हो-हल्ला करने या तालियाँ बजानेका पाश्चात्य देशोंका तरीका न अपनायें। इससे कोई सहायता तो मिलती नहीं, उलटे विचार-प्रवाह रुकता है। आपके सम्मुख कोई भी

वक्ता क्यों न आये, आप सभीके भाषण समान आदरसे सुनें। आपके सामने जो काम है उसे पूरी लगनसे किया जाना है; इसलिए आपको चाहिए कि आप एकाग्र होकर उसमें जुट जायें। यदि आप चाहते हैं कि भारत एक वर्षमें स्वतन्त्र हो जाये, तो आप इस कार्यमें अपनी समूची शक्ति लगा दें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १६–१२–१९२०

७२. टिप्पणियाँ

बंगालमें दमन

भारत सरकारने असहयोगके सम्बन्धमें एक विज्ञप्ति[1] निकाली है। इसमें कहा गया है कि जबतक असहयोग आन्दोलन अहिंसात्मक बना रहेगा और जबतक वक्ता-गण नेताओं द्वारा निर्धारित मर्यादाओंसे बाहर नहीं जायेंगे, तबतक कमसे-कम फिल-हाल कोई दमन नहीं किया जायेगा। यह पढ़नेमें अच्छा लगता है। मैंने उसी समय कह दिया था कि इसमें कोई ज्यादा सचाई नहीं। दमन चल रहा है, इस बातके सबूत मुझे लगातार मिल रहे हैं। और अब तो नकाब उतर चुकी है। अब मुकदमोंका ढोंग खतम कर दिया जायेगा और उनकी जगह भारत रक्षा कानूनके अन्तर्गत निकाले गये आदेशोंसे काम लिया जायेगा। यहाँ कलकत्तासे जारी किया गया एक आदेश दिया जा रहा है:

> **चूँकि कलकत्ताके पुलिस-कमिश्नरकी यह राय है कि आप, कलकत्ताके नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्यजी ऐसे उत्तेजनापूर्ण सार्वजनिक भाषण देते हैं जिनसे अप-राधोंको उत्तेजना मिलने, सार्वजनिक शान्तिभंग होने और कानून एवं कानूनी सत्ताके खिलाफ प्रतिरोध पैदा होने और उसके प्रति घृणा फैलनेकी सम्भावना है, इसलिए १ जून १९१० तक संशोधित रूपमें भारतीय दण्ड संहिताके १८६६ के अधिनियम 'क' (ए)की धारा ३, खण्ड ६२-क और १८६६ के अधिनियम ११ की धारा ३ के खण्ड ३९ क के अन्तर्गत उनको सौंपी गई शक्तियोंके अनुसरणमें, पुलिस कमिश्नर आपको आदेश देता है कि आप, नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्यजी आज, ६ नवम्बर, १९२० की तारीखसे एक वर्षतक कलकत्ता नगर और उसके उप-नगरोंकी सीमाओंमें कोई उत्तेजनापूर्ण सार्वजनिक भाषण न दें।**

इस आज्ञापर ६ नवम्बरकी तारीख पड़ी है। यह पुरानी चाल है। कारण कुछ भी नहीं बतलाया गया है, उपद्रव होनेका एक अनिश्चित भय प्रकट किया गया है

१. नवम्बर, १९२० में जारी की गई।

और उसीको एक नवयुवककी आवाज बन्द करनेका काफी कारण माना गया है। मुकदमा चलानेके ढोंगसे भी एक उपयोगी प्रयोजन सिद्ध होता है। उससे अभियुक्त इतना तो जान लेता है कि उसकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगानेका कारण क्या है। ऊपर जो आदेश उद्धृत किया गया है, उसके अन्तर्गत श्री नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य भी यह नहीं जान पाये कि उनका अपराध क्या है; फिर जनताकी तो बात ही क्या। इसपर भी कुछ ऐसे लोग हैं जो आश्चर्यके साथ पूछते हैं कि इस देशमें घृणा क्यों है; और तब वे उसका कारण सरकारकी धूर्तता और असहिष्णुता नहीं, बल्कि असहयोग ही बताते हैं — वही असहयोग जो इस घृणाको नियन्त्रित करने और अन्ततः समाप्त करनेका एकमात्र उपाय है।

पंजाबमें भी

कानूनके जरिये किये जानेवाले दमनके अलावा, एक प्रशासनिक दमन भी होता है; इस प्रशासनिक दमनके मामलेमें पंजाब बंगालसे पीछे नहीं है। मौलाना जफर-अली खाँपर मुकदमा चलाकर उन्हें सजा दी ही गई थी। अब आगा सफदरको भी, जो बड़े ही खरे चरित्रके कार्यकर्त्ता, अपने क्षेत्रके बहुत प्रभावशाली व्यक्ति और खिलाफत-समितिके मन्त्री हैं, यह प्रशासनिक आज्ञा दी गई है कि वे सार्वजनिक सभाओंमें भाषण न दें। अभी मैंने इस आशयका एक तार ही देखा है। मैं इस मामलेमें आगे और जाँच कर रहा हूँ। लेकिन इस खबरकी सचाईमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं जान पड़ता। यदि इसे सच मान लें, तो इस आज्ञासे प्रकट होता है कि पंजाब-सरकार भाषणकी स्वतन्त्रताको सहन नहीं कर सकती। लाला लाजपतरायने[1] लेफ्टिनेंट गवर्नरको लिखे गये अपने तीखे पत्रोंमें यह साफ बता दिया है कि सर माइकेल ओ'डायरके शासनमें पंजाबियोंकी जैसी हालत थी, सर एडवर्ड मैकलेगनके[2] शासनमें कुछ उससे ज्यादा अच्छी नहीं है। निःसन्देह, सर एडवर्डके तरीके वैसे मनमाने नहीं हैं जैसे सर माइकेल ओ'डायरके होते थे। किन्तु पंजाबियोंको इससे क्या लाभ कि उनको जिस जंजीरमें बाँध रखा गया है वह सोनेकी है या लोहेकी? धोखा देनेवाली सोनेका पानी चढ़ी जंजीरोंसे तो साफ दिखनेवाली असली लोहेकी जंजीरें हमेशा ही अच्छी रहती हैं। क्या अधिक नरम किस्मके वर्तमान प्रशासनिक तरीकोंके कारण, पंजाब तत्त्वतः कुछ ज्यादा स्वतन्त्र है? क्या लोग ज्यादा आत्म-गरिमाका अनुभव करते हैं? अब समय आ गया है जब हमें सच्ची स्थिति समझ लेनी चाहिए। भारतके प्रशासनके पीछे जो भावना है वह बुरी, अपमानजनक और दासताके बन्धन दृढ़ करनेवाली है। इसलिए जो हमपर शासन करता है वह देवता है या दानव, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मैंने आगा सफदरके मामलेका जो हवाला दिया है उसका मतलब सिर्फ यह बताना है कि सरकार जो बड़ी-बड़ी घोषणाएँ करती है, उसके कारनामोंसे वे झूठी पड़ जाती हैं।

१. १८६५–१९२८; समाज-सुधारक और पत्रकार; पंजाबके राष्ट्रवादी नेता।

२. २६ मई, १९१९ को पंजाबके लेफ्टिनेन्ट गवर्नर बने थे।

कुछ शंकाएँ

बाबू जनकधारी प्रसाद चम्पारनमें मेरे सहयोगी थे।[1] उन्होंने मुझे एक लम्बा पत्र लिखकर उसमें अपना यह विश्वास प्रकट किया है और अपने इस विश्वासके कारण भी गिनाये हैं कि भारतको एक बड़ा भारी उद्देश्य पूरा करना है और उसका यह उद्देश्य अहिंसात्मक असहयोगसे ही पूरा हो सकता है। लेकिन उनकी कुछ शंकाएँ हैं। वे चाहते हैं उनका उत्तर मैं सार्वजनिक रूपसे दूँ। पत्र लम्बा है, इसलिए मैं उसे यहाँ नहीं छाप रहा हूँ; लेकिन उनकी शंकाएँ विचारणीय हैं और मुझे उनका उत्तर देनेका प्रयत्न करना ही चाहिये। बाबू जनकधारी प्रसादने उनको इस रूपमें रखा है।

> **(क) क्या असहयोग आन्दोलनसे अंग्रेजों और भारतीयोंके बीच एक तरहकी जातीय घृणा पैदा नहीं हो रही है और क्या यह मानवमात्रमें प्रेम और भाई-चारेकी ईश्वरीय योजनाके अनुकूल है? (ख) क्या 'शैतान', 'दानवी' आदि शब्दोंके प्रयोगसे ऐसा एक भाव नहीं टपकता जो भाईचारेके विरुद्ध है और क्या उससे घृणाको उत्तेजना नहीं मिलती?**
>
> **(ग) क्या असहयोग-आन्दोलन कथनी और करनी दोनों ही में पूर्णतया अहिंसात्मक और भावावेशरहित ढंगसे नहीं चलाया जाना चाहिए?**
>
> **(घ) क्या आन्दोलनके नियन्त्रणसे बाहर हो जाने और हिंसापूर्ण बननेका कोई खतरा नहीं है?**

प्रश्न (क)के सम्बन्धमें मुझे कहना ही चाहिए कि यह आन्दोलन जातीय घृणा "पैदा" नहीं कर रहा है। जैसा मैं कह चुका हूँ, इसके द्वारा [पहलेसे मौजूद घृणाको] एक संयत अभिव्यक्ति मिलती है। आप बुराईका उन्मूलन उसको नजर-अन्दाज करके नहीं कर सकते। चूँकि मैं सब लोगोंमें भाईचारा बढ़ाना चाहता हूँ, इसीलिए मैंने असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया है ताकि भारत आत्मशुद्धिके जरिये अधिक अच्छे संसारका निर्माण कर सके।

प्रश्न (ख)के सम्बन्धमें मैं जानता हूँ कि "शैतानी" जैसे शब्द कड़े हैं, लेकिन उनसे सत्य यथार्थ रूपमें व्यक्त होता है। ये व्यक्तियोंके नहीं, एक प्रणालीके सूचक हैं। यदि हम बुराईसे बचना चाहते हैं तो हमें उससे घृणा अवश्य करनी पड़ेगी। लेकिन असहयोगसे हम बुराई और बुराई करनेवालेमें अन्तर कर सकते हैं। यदि मेरा कोई भाई कोई खास आसुरी काम करता है तो मुझे उसको बतानेमें कोई कठिनाई नहीं होती; मुझे इसका कारण उसके प्रति मेरे मनमें पहलेसे घृणा रहना नहीं जान पड़ता। असहयोग हमें यह सिखाता है कि यदि हमारे साथियोंमें कोई दोष हों तो उन दोषोंकी उपेक्षा किये बिना हम उनसे प्रेम कर सकते हैं।

प्रश्न (ग)के सम्बन्धमें: आन्दोलन निश्चय ही विशुद्ध अहिंसात्मक आधारपर चलाया जा रहा है। यह सच है कि सब असहयोगियोंने अभीतक इस सिद्धान्तको पूरी तरह अपनाया नहीं है। लेकिन इससे तो यही पता चलता है कि हमें कितनी

१. १९१७के आन्दोलनके समय।

बुराई विरासतमें मिली है। आन्दोलनमें भावुकता तो है, और यह रहेगी। जिस आदमीमें भावुकता नहीं होती, उसमें कोई भावना भी नहीं होती।

प्रश्न (घ)के बारेमें : आन्दोलनके हिंसात्मक रूप लेनेका खतरा तो निश्चय ही है, लेकिन जैसे हम स्वतन्त्रताका दुरुपयोग होनेके खतरेके भयसे स्वतन्त्रता पानेसे नहीं रुक सकते, उसी तरह अहिंसात्मक असहयोगको उसके हिंसात्मक रूप लेनेके खतरेके कारण नहीं छोड़ सकते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-१२-१९२०

७३. चम्पारनमें डायरशाही

भारत एक ऐसा देश है जिसमें आये दिन दुःखजनक घटनाएँ होती रहती हैं। इनमें भी सबसे ज्यादा घटनाएँ शायद चम्पारनमें होती हैं। पटनाके 'सर्चलाइट' अखबारमें अभी हालमें एक ऐसी भयानक दुःखजनक घटना होनेकी खबर छपी है। स्थानीय कांग्रेस कमेटी, जिसके अध्यक्ष श्री मजहरुल हक हैं, इसकी जाँच कर रही है। मैं इसके निष्कर्षके बारेमें पहलेसे कुछ नहीं कहना चाहता। मुझे मालूम हुआ है कि बिहार सरकार भी इस ओर ध्यान दे रही है। लेकिन चूँकि मैं असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी दौरेके सिलसिलेमें मौलाना शौकत अलीके साथ उस समय बेतियामें था, इसलिए घटना-स्थलपर भी गया और उस थोड़ी देरमें जो कुछ मैं समझ पाया उसे नीचे दे रहा हूँ।

यह दुःखजनक घटना, पिछले ३० नवम्बरके लगभग, बेतियासे १४ मील दूर एक जगहपर हुई थी। मैं समझता हूँ कि इसमें सरकारका, अर्थात् ऊँचे अफसरोंका कोई हाथ नहीं था। अंग्रेज बागान-मालिकोंका भी कोई हाथ नहीं था। ऐसा मालूम होता है कि खास तौरसे यह पुलिसका काम था, और पुलिसने इसमें ऊँचे अधिकारियोंकी गैर जानकारीमें बड़ी गैर जिम्मेदारीका काम किया है।

इसकी शुरुआत ग्रामीणोंके एक छोटेसे झगड़ेसे हुई। झगड़ेमें थोड़ी मारपीट हो गई थी। इस सम्बन्धमें पुलिसने वहींके एक प्रभावशाली आदमीको गिरफ्तार किया। ऐसा लगता है कि इससे ग्रामीणोंमें रोष फैला और उन्होंने उस आदमीको छुड़ा लिया और जिन सिपाहियोंने उसे गिरफ्तार किया था उनको भी घेर लिया। इससे पुलिसकी प्रतिष्ठाको गहरा धक्का लगा; वह उसे सहन नहीं कर पाई। कहा जाता है कि वहाँके एक दारोगाने वहाँ लूट करवा दी जो पुलिसकी देखरेखमें और उसके कहनेके मुताबिक हुई। पासके एक गाँवके लोगोंने भी उसमें हिस्सा लिया बताते हैं। घरोंमें कोई सामान — अनाज और जेवर — नहीं छोड़ा गया। कहा जाता है कि स्त्रियोंको भी मारा-पीटा गया और उनके जेवर छीन लिये गये। एक स्त्रीने मुझे बताया कि उसे नंगा कर दिया गया और उसकी आँखोंमें धूल भर दी गई। शौचके लिए बैठी एक दूसरी स्त्रीके साथ भी ऐसा ही घोर अभद्र व्यवहार किया गया। गाँवके लोग कायरोंकी

तरह भाग गये थे। लोगोंने हमें वे घर दिखाये जिनमें अनाजके खाली, टूटे हुए कुठिले पड़े थे, अनाज इधर-उधर फैला हुआ था, बड़े-बड़े सन्दूकोंके ताले तोड़ डाले गये थे और उनको खोलकर उनकी चीजें निकाल ली गई थीं।

कहनेकी जरूरत नहीं कि जिस आदमीको पुलिसकी हिरासतसे छुड़वा लिया गया था, उसे अन्य कई लोगोंके साथ पुलिसने उसी समय फिर गिरफ्तार कर लिया। इनमें एक वहींका ब्रह्मचारी है। वह काफी प्रभावशाली आदमी है। उसने पंचायतें कायम की हैं और वह उनके जरिये वहाँके झगड़ोंका निपटारा करता है। उसकी कार्रवाईसे गाँवमें पंच-फैसलेके सिद्धान्त लोकप्रिय हो रहे हैं। पुलिस स्वभावतः ही उसका असर कम करना चाहती थी। उसे शक था कि उसकी सत्ताको चुनौती देनेके लिए लोगोंको भड़कानेमें उस ब्रह्मचारीका हाथ है; (मुझे जो साक्षी मिली है उससे ऐसा ही लगता है)। इसलिए पुलिसने ब्रह्मचारीको पकड़ लिया है और अब वह जमानतपर छूट चुका है।

शायद अब मुकदमे चलाये जायेंगे। इनका क्या नतीजा होगा उससे मुझे कोई मतलब नहीं। जो लोग गिरफ्तार किये गये हैं उनमें से कुछको गढ़ी हुई गवाहीके आधारपर सजा भी दी ही जायेगी। वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षोंकी ओरसे जितनी झूठी गवाही चम्पारनमें दी जाती है, उतनी भारतमें किसी दूसरी जगह नहीं दी जाती। भले ही यह अविश्वासनीय लगे किन्तु जो घटना मैंने यहाँ दी है वह अपने ढंगकी पहली नहीं है। चम्पारनके किसान जितने असहाय और भय-त्रस्त हैं, उतने मैंने किसी दूसरी जगहके नहीं देखे। वे पुलिसके आते ही डरके मारे अपने गाँव छोड़कर भाग जाते हैं। पुलिस भी ऐसी ही भ्रष्ट हो गई है। उसमें रिश्वत और भ्रष्टाचारका बोलबाला है। और जब कभी लोगोंने पुलिसके व्यवहारपर रोष प्रकट किया है, जैसा कि इस मामलेमें हुआ, उन्हें आतंकवादी तरीकोंसे कुचल कर और अधिक असहाय बना दिया गया है। स्थानीय "डायरों" के इस कार्यमें मजिस्ट्रेटोंका योगदान कुछ कम नहीं रहा है।

कभी-कभी मजिस्ट्रेटोंने या सरकारने पुलिसकी लानत-मलामत भी की है। किन्तु वह उसकी परवाह नहीं करती। पुलिसके छोटे कर्मचारियोंको तो उस लानत-मलामतका पतातक नहीं चलता, और वे और भी कम परवाह करते हैं। आतंकके ये तौर-तरीके जारी हैं और खूब इस्तेमाल किये जाते हैं।

तब लोगोंकी सहायता कैसे की जाये? यह भ्रष्टाचार कैसे हटाया जाये? सरकारी तौरपर जाँच करवानेसे तो यह निश्चय ही सम्भव नहीं है। उससे तो पुलिसकी ताकत ही बढ़ेगी। पुलिस इस वक्त अपनी स्थिति मजबूत कर रही है; वह सबूत खतम कर रही है। अगर गाँवके लोग अदालतोंके जरिये न्याय पाना चाहें तो उससे भी निश्चय ही कोई लाभ न होगा। मेरा पक्का विश्वास है, और यह विश्वास मुकदमोंके कागजातको पढ़नेके बाद बना है, कि ज्यादातर मुकदमोंमें लोगोंने अपना रुपया ही बरबाद किया है, अपनी ताकत ही घटाई है। वकीलों और रिश्वतखोरोंको इतना सारा रुपया देकर इक्के-दुक्के मामलेमें ही कोई निर्दोष आदमी कभी छूट पाया है।

पुलिसमें मुख्यतः हमारे ही आदमी हैं, इनका प्रतिरोध किए बिना ही इन्हें नेक बनाया और अपने पक्षमें लाया जाना चाहिए। दया करनेके बजाय हमने अबतक उनको अनावश्यक रूपसे बदनाम ही किया है। वे तो एक कुटिल, और शर्मनाक प्रणालीके शिकार हैं। मैं नहीं मानता कि भारतीय पुलिस अपने आपमें बुरी है और सरकार उसे सुधार नहीं सकती। इसके विपरीत, यह शासन-प्रणाली ही ऐसी है कि उसमें ईमानदारसे-ईमानदार आदमी भी भ्रष्ट हो जाते हैं। वह चाहती है कि उसके कार्योंकी कोई नुक्ताचीनी न हो और उसे मनमानी करनेकी छूट प्राप्त रहे। उसने अपनी प्रतिष्ठाका एक हौआ खड़ा कर रखा है। वह अपनेको पूर्णतः संरक्षित और गलतीसे परे मानने लगी है।

इसलिए स्थानीय लोगोंको चाहिए कि वे सर्वत्र पुलिसके साथ मैत्रीके सम्बन्ध बनाएँ। और इसका सबसे अच्छा तरीका यह है कि वे उससे या उसके दण्डसे डरना छोड़ दें।

इस मामलेमें गाँवके लोगोंको यह सलाह दी जानी चाहिए कि वे इस अन्यायको भूल जायें। अगर गाँवके लोगोंको मित्रोंकी मददसे अपनी लुटी हुई सम्पत्ति मिल सके तो उसे वापस ले लेना चाहिए। उन्हें कैदकी सजा भी धीरजके साथ भुगत लेनी चाहिए। उन्हें प्रतिवादीके रूपमें अपना कोई वकील खड़ा नहीं करना चाहिए। उन्हें अदालतको सारी बात जैसी है वैसी ही बता देनी चाहिए। उनके खिलाफ गलत बातें कही जायें, या उन्हें यह ताना मारा जाये कि उनकी बातोंमें तो कोई तत्त्व ही नहीं है तो भी उन्हें यह सब सहन कर लेना चाहिए।

और यदि भविष्यमें या जब भी ऐसी घटनाएँ हों, वे अपनी रक्षाके लिए तैयार रहें। इस प्रकारकी स्थितिमें वे अपने शरीरकी, या सम्पत्तिकी रक्षामें चोट पहुँचानेके बजाय यदि मर्दोंकी भाँति उत्पीड़न सह सकें और अपनेको लुट जाने दें तो बहुत अच्छा होगा। यह वस्तुतः उनकी सबसे बड़ी विजय होगी। किन्तु उतनी सहनशक्ति केवल बलसे आ सकती है, दुर्बलतासे नहीं। जबतक यह शक्ति वे अपने अन्दर पैदा नहीं कर पाते तबतक उन्हें अन्यायीका सामना [शारीरिक] शक्तिसे करनेके लिए तैयार रहना चाहिए। जब पुलिसका कोई सिपाही किसीको गिरफ्तार करनेके लिए नहीं, बल्कि तंग करनेके लिए आता है तब वह अपने अधिकारका अतिक्रमण करता है। तब नागरिकका यह एक अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह उसे लुटेरा माने एवं उससे वैसा ही व्यवहार करे। इसलिए वह उसको लूटपाट करनेसे रोकनेके लिए पर्याप्त शक्तिका उपयोग करे। वह अपनी महिलाओंके सम्मानकी रक्षाके लिए निश्चय ही शक्तिका डटकर प्रयोग करे। अहिंसाका सिद्धान्त कमजोरों और कायरोंके लिए नहीं है; वह तो वीर और शक्ति-सम्पन्नोंके लिए है। सबसे अधिक वीर तो वह पुरुष होता है जो मारता नहीं है, बल्कि कोई उसे मारे तो स्वेच्छासे मृत्युका वरण करता है। वह किसीको मारनेसे, चोट पहुँचानेसे अपना हाथ इसलिए रोकता है कि वह जानता है कि किसीको चोट पहुँचाना गलत काम है। चम्पारनके ग्रामीण ऐसे नहीं हैं। वे तो पुलिसको देखते ही भागते हैं। यदि उन्हें कानूनका भय न हो तो वे

पुलिसके सिपाहीपर चोट कर देंगे और उसे मार भी डालेंगे। इसलिए उन्हें अहिंसाका श्रेय नहीं मिलता; बल्कि इसके विपरीत कायरता और अपौरुषका लांछन मिलता है। वे सरकार और मनुष्य दोनोंकी नजरोंमें निन्दनीय हैं।

किन्तु चम्पारनके लोग जैसी गिरी हुई हालतमें है उसे देखते हुए उनके बीच अत्यन्त सँभल कर कार्य करना चाहिए। यदि कार्यकर्त्ता और वहाँकी जनता पुलिसको उसके वैध कर्त्तव्योंका पालन करनेसे रोकेगी, तो गलती करेगी; भले ही पुलिसके कार्य गैर-कानूनी सिद्ध हों या उनको गैर-कानूनी लगते हों, यदि पुलिस वारंटके बिना गिरफ्तारी करती है तो भी उसके आड़े नहीं आना चाहिए। कानून अपने हाथमें नहीं लेना चाहिए, बल्कि उसका पूरा-पूरा पालन करना चाहिए। चाहे कुछ भी क्यों न हो जाये कानूनका आश्रय न लेना ही किसी भी भयंकर भूलसे बचनेका उपाय है। इसलिए, यदि वे गलतीपर हों तो हर हालतमें सजा भुगतेंगे। और जब वे ठीक मार्ग-पर चल रहे होंगे, तब बहुत सम्भव है वे सजासे बच जायें। उन्हें यह सन्तोष तो सदा रहेगा ही कि उन्होंने अपनी सम्पत्तिकी और उससे भी बढ़कर अपनी महिलाओंके सम्मानकी रक्षा की है या करनेका प्रयत्न किया है। इस मामलेमें, गिरफ्तार किये गये मनुष्यको छुड़ा लेना अनुचित था, भले ही गाँवके लोगोंकी दृष्टिमें वह निर्दोष रहा हो। उनका यह कार्य इसलिए गलत था कि कानूनन पुलिसको गिरफ्तारी करनेका हक है। किन्तु पुलिसके आते ही उनका भाग जाना, उनकी कायरता थी। यदि वे अपनी महिलाओं और मालकी रक्षा करते तो यह ठीक होता। यदि वे भागे न होते तो वे बहुत अधिक संख्यामें होनेके कारण अपनी सम्पत्तिकी रक्षा कर लेते और वहाँ जमे रहनेसे ही अपनी स्त्रियोंको भी बचा लेते। उस अवसरपर पुलिसको शारी-रिक रूपसे जितनी चोट पहुँचाना अत्यावश्यक था उससे अधिक पहुँचाना तो कदापि उचित न होता। आवश्यकतासे अधिक बलका प्रयोग करना सदा ही कायरता और पागलपन होता है। वीर मनुष्य चोरको मार नहीं डालता; बल्कि उसे पकड़कर पुलिसको दे देता है। उससे भी अधिक वीर वह होता है जो इतना ही बल-प्रयोग करता है कि चोरको घरसे निकाल दे और फिर उसके बारेमें सोचेतक नहीं। सबसे अधिक वीर वह होता है जो समझता है कि चोर उससे अधिक समझदार नहीं है; अतः उसको समझाता है, और यद्यपि चोर उसपर प्रहार कर सकता है और उसे मार डाल सकता है, किन्तु इतना खतरा होनेपर भी वह उसपर बदलेमें प्रहार नहीं करता। कुछ भी हो, हमें यह कायरता और नामर्दी तो हर हालतमें अपने अन्दरसे निकाल देनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-१२-१९२०

७४. प्रत्युत्तर

सर्वश्री पोपले और श्री फिलिप्सने "भारतके अंग्रेजोंके नाम"[1] शीर्षक मेरे पत्रका उत्तर देनेकी कृपा की है। उन्होंने जिस मैत्री-भावसे अपना पत्र[2] लिखा है, मैं उसकी हृदयसे प्रशंसा करता हूँ। परन्तु मेरे और उनके मतोंमें बुनियादी अन्तर है और उसके कारण फिलहाल तो हममें मतैक्य नहीं हो सकता। जबतक मुझे इस बातका विश्वास था कि अपनी गम्भीर भूलोंके बावजूद, ब्रिटिश साम्राज्य संसार और भारतके कल्याणके लिए कार्य कर रहा है, तबतक मैं उससे उसी तरह चिपटा रहा जैसे बच्चा अपनी माँकी छातीसे चिपटा रहता है। परन्तु अब मेरा वह विश्वास जाता रहा है। अंग्रेज जातिने पंजाब और खिलाफतके विरुद्ध अपराधोंका समर्थन किया है। मैं यह मानता हूँ कि कुछ अल्पसंख्यक अंग्रेज ऐसे हैं जो उनसे असहमत हैं। परन्तु जो अल्पसंख्यक केवल अपनी राय प्रकट करके सन्तोष कर लेते हैं वे अन्यायीको सहायता ही पहुँचाते हैं और अन्यायमें भागीदार बनते हैं।

जब किसी व्यक्तिमें बुराइयाँ अधिक होती हैं और अच्छाइयाँ कम, तो कोई भी उसकी अच्छाइयोंको चुन-चुनकर उनकी प्रशंसा नहीं करता और जनतासे उनको प्रशंसनीय माननेके लिए नहीं कहता। अच्छाईका दिखावा करके बुराइयोंको हलका करना और असावधान लोगोंको जालमें फँसाना, यह चाल शैतानको बहुत पसन्द है। संसारके पास शैतानको हरानेका एक ही मार्ग है; उससे घृणा करना। जो अंग्रेज अपने मान्य आदर्शोंपर अमल कर सकते हैं, उनको मैं आमंत्रित करता हूँ कि वे असहयोगमें भाग लें। जिस समय अंग्रेजोंके साथ बोअरोंका युद्ध हो रहा था, श्री डब्ल्यू० टी० स्टेड[3] अंग्रेज फौजोंकी पराजयकी प्रार्थना करते थे और कुमारी हॉबहाउस[4] बोअर लोगोंको युद्ध जारी रखनेके लिए कहती थीं। बोअरोंके साथ जो अन्याय किया गया था, उसकी अपेक्षा भारतके साथ किया गया विश्वासघात कहीं अधिक बुरा है। बोअर लोगोंने अपने अधिकारोंके लिए युद्ध किया और रक्त बहाया था। इसलिए जब हम अपना रक्त बहानेके लिए तैयार हो जायेंगे तो हमारा अधिकार भी मूर्त हो जायेगा और तब वीर-पूजक यह संसार भी उसे समझने और उसका आदर करने लगेगा।

१. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ३९७-४०० ।

२. १५ नवम्बरको बंगलौरसे लिखे गये इस पत्रमें सर्वश्री पोपले और फिलिप्सने अन्य बातोंके अलावा यह भी लिखा है कि वे भारतके शासक होनेकी अपेक्षा उसके सेवक होना अधिक पसन्द करेंगे ।

३. विलियम टॉमस स्टेड (१८४९–१९१२); अंग्रेज पत्रकार और सुधारक; जिनके उद्योग और मौलिक विचारोंका उस जमानेकी पत्रकारिता और राजनीतिपर गहरा असर पड़ा। इन्होंने बड़े उत्साहसे इंग्लैंडमें शान्ति-आन्दोलनका समर्थन किया था ।

४. एमिली हॉबहाऊस, उदार विचारोंकी एक अंग्रेज महिला; गांधीजीने अपनी **आत्मकथा**में इनका उल्लेख किया है ।

परन्तु सर्वश्री पोपले और फिलिप्सने इस बातपर एतराज किया है कि मैं आज उन लोगोंके साथ हूँ जो शक्ति होनेपर तलवार भी उठा सकते हैं। मैं इसमें कोई बुराई नहीं देखता। उनका उद्देश्य भी उतना ही ठीक है जितना मेरा। और फिर रक्तहीन संघर्षको विजयी बननेमें सहायता देकर तलवार उठानेकी नौबत ही न आने देना अधिक युक्ति-संगत नहीं है? जो लोग मानते हैं कि भारतीय सचाईपर हैं वे इस अहिंसात्मक आन्दोलनको सहायता देकर ईश्वरका कार्य ही करेंगे।

इन अंग्रेज मित्रोंका एक दूसरा एतराज भी है, और वह अधिक संगत है। यदि मुसलमानोंकी माँगें न्यायपूर्ण न होतीं तो उनका साथ देकर मैं स्वयं अनुचित कार्य करता। असलमें मुसलमानोंकी माँग यह नहीं है कि गैर-मुसलमानों या गैर-तुर्कियोंपर विदेशी शासन बना रहे; भारतीय मुसलमान आत्म-निर्णयके विरोधी नहीं हैं। परन्तु वे आत्म-निर्णयके नामपर मेसोपोटामियाके शोषणकी अन्यायपूर्ण योजनाका अन्ततक विरोध करेंगे। आर्मीनियाको स्वतन्त्रता देनेके झूठे बहानेकी ओटमें टर्कीको और उसके द्वारा मुसलमानोंको नीचा दिखानेका जो जानबूझकर प्रयत्न किया जा रहा है, उसका विरोध वे अवश्य करेंगे।

उनका तीसरा एतराज विद्यालयोंके सम्बन्धमें है। मैं मिशनके या अन्य विद्यालयोंको सरकारी रुपयेसे चलानेका विरोधी हूँ। यह सच है कि किसी समय यह रुपया हमी लोगोंका था। जिस डाकूने मेरा धन, धर्म और सम्मान लूटा है, वही डाकू यदि इन भले पादरियोंको रुपया देता है, तो क्या इस रुपयेसे मेरी शिक्षाका प्रबन्ध करना उनके लिए उचित होगा, क्योंकि यह रुपया तो पहले ही मेरा था?

मैंने स्वयं भारतकी आर्थिक लूट सहन कर ली थी। परन्तु जब पंजाबमें किये गये अत्याचारोंसे हमारी इज्जत लुटी और टर्कीके साथ किये गये अन्यायसे हमारा धर्म लुटा, तब मेरा उनको सहन करना पाप होता। मेरे उपर्युक्त शब्द कड़े हैं। परन्तु इनसे नरम शब्द मेरे गहरे विश्वासको व्यक्त करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि सरकारी सहायता प्राप्त या सरकारसे सम्बद्ध विद्यालयोंके बहिष्कारका अर्थ नवयुवकोंको शिक्षासे बिलकुल वंचित कर देना नहीं है; जितनी तेजीसे ये विद्यालय खाली हो रहे हैं उतनी ही तेजीसे राष्ट्रीय विद्यालयोंकी स्थापना की जा रही है।

सर्वश्री पोपले और फिलिप्सका खयाल है कि पंजाब तथा खिलाफतके मामलेमें जो अन्याय किये गये हैं उनसे मेरी न्याय-भावना मलिन हो गई है। मैं समझता हूँ, ऐसा नहीं हुआ है। मैंने तो मित्रोंसे कहा है कि यदि भारतपर ब्रिटिश सत्ता कायम होनेका (जाना-बूझा, सोचा-विचारा) कोई अच्छा परिणाम निकला हो, तो वे मुझे बतायें। मैं पुनः इसी अनुरोधको दुहराता हूँ और उन्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यदि मुझे यह मालूम हो जाये कि खिलाफत तथा पंजाबके विषयमें अपनी उत्कट भावनाके वशीभूत होकर मैंने कोई भूल कर दी है तो मैं उसको सुधारनेका पूरा प्रयत्न करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १५-१२-१९२०

७५. भाषण : ढाकामें

१५ दिसम्बर, १९२०

पिछली बार जब मौलाना शौकत अली ढाका आये तब भी मेरी यहाँ आनेकी बड़ी इच्छा थी। आज मुझे यहाँ आनेपर बहुत खुशी हुई है। मुझे दुःख है कि आज पहली बार मुझे ऐसा लगा है कि मेरी आवाज साथ नहीं दे रही ।

इस सरकारने भारतीयोंके साथ एक बहुत बड़ा अन्याय किया है। इसने हमारे मुसलमान भाइयोंको बहुत धोखा दिया है। सभी भारतीय जानते हैं कि भारतीयोंको पंजाबमें पेटके बल रेंगाया गया था। बहुतसे निर्दोष लोगोंको पंजाबके न्यायाधीशोंने मौतकी सजाएँ दीं और बहुतोंको जेल भेज दिया है। पंजाबमें हमारे छात्रोंके साथ बड़ा अन्याय किया गया है। छोटे-छोटे बच्चोंको वहाँ चार-चार बार [ब्रिटिश झंडेको] सलाम करनेकी आज्ञा दी गई थी। मेरा खुदका खयाल है कि जिस सरकारने हमारे साथ इतना बड़ा अन्याय किया, उसके प्रति वफादार रहना पाप है। स्वतन्त्रताको प्यार करनेवाला प्रत्येक भारतीय मेरी ही तरह सोचेगा। उसका कर्त्तव्य है कि वह या तो इस सरकारको मिटा दे या इसे सुधार दे। (तालियाँ) मुझे इस बातका दुःख नहीं है कि मेरी आवाज काम नहीं दे रही है; लेकिन आपको यह जानना चाहिए कि जो काम आप करने जा रहे हैं उसमें आपको अपनी आवाजका इस्तेमाल करनेकी जरूरत नहीं। आपके लिए दो काम बहुत जरूरी हैं: पहला, सभाएँ करना और उसमें कुछ [प्र]स्ताव पास करना; और दूसरा, उन प्रस्तावोंपर अमल करना। हमारे सामने यह अवसर आ गया है। हमारा ज्यादातर काम ठोस होगा। अब हमको जुलूस निकालना बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि अबतक हम देख चुके हैं कि उनसे भारतके लोगोंको कोई लाभ नहीं हुआ। हममें प्रबन्धकी शक्ति नहीं है। "हिन्दू-मुसलमानोंकी जय"—यह मेरे खयालसे ईश्वरसे एक तरहकी प्रार्थना है। वन्देमातरम्-गीत भारत माताकी वन्दना है। हमारे बंगाली भाइयों-जैसा शक्तिशाली संगीत भारतमें अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता। यदि आप अपने देशकी पूजा सच्चे हृदयसे करना चाहते हैं तो जो-कुछ यह सिखाता है वह आपको सीखना चाहिए। मेरे खयालसे यह शिक्षा सामान्य लोगोंमें प्रचारित की जानी चाहिए। पिछले ३५ वर्षसे हम बहुत दूषित शिक्षा पाते रहे हैं; नतीजा यह है कि उन्नति करनेके बजाय हम ३५ वर्ष पीछे पड़ गये हैं। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीने लिखा था[1] कि सेनापर और रेलोंपर खर्च दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। भारतके व्यापारकी ऐसी दुरवस्था हुई है कि देशका करोड़ों रुपया हर साल विदेशोंमें चला जाता है। रौलट ऐक्ट[2], प्रेस ऐक्ट[3], छात्रोंका बाध्य किया जाना,

१. अपनी **पावर्टी ऐंड द अन-ब्रिटिश रूल इन इंडिया,** पुस्तकमें ।

२. देखिए खण्ड १६ ।

३. १९१०का ।

और स्त्रियोंका बेपरदा किया जाना — ये घटनाएँ दादाभाई नौरोजीके समयमें कभी घटित नहीं हुई थीं। यदि आप कहें कि हमारे लिए कौंसिल बना दी गई है और लॉर्ड सिन्हा बिहारके गवर्नर नियुक्त किये गये हैं, यह हमारे ऊपर कृपा की गई है, तो मैं आपसे कहूँगा कि अब आप पूरे गुलाम बन चुके हैं। भारतकी दशा अबसे ५० वर्ष पहले जितनी बुरी थी, अब उससे ज्यादा बुरी है। भारतीय ५० वर्ष पहलेकी अपेक्षा अब ज्यादा कायर हैं। ५० वर्ष पहले उनमें इतनी ताकत थी कि वे तलवार लेकर लड़ सकते थे; लेकिन अब वे पहलेसे कमजोर हो गये हैं। भारतको गुलामीकी जंजीरोंसे छुड़ाना बहुत मुश्किल हो गया है। मुसलमानोंको बहका कर विदेशोंमें जाने और तुर्कोंसे लड़नेके लिए राजी कर लिया गया और मेसोपोटामियाको कब्जेमें कर लिया गया। हमारी सरकारने हमें सुधार-योजना[1] दे कर सान्त्वना दी; और साथ ही रौलट भी पास कर दिया। भारतमें ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिनके कारण भारतीयोंको जमीनपर नाक घिसनेतक का अपमान सहना पड़ा है। पंजाबके मामलोंकी जाँचके लिए कांग्रेस द्वारा नियुक्त समितिमें[2] मेरे तथा पण्डित मदनमोहन मालवीय, पण्डित मोतीलाल नेहरू, हरकिशन लाल, लाला गिरधारीलाल और जयकरके[3] साथ काम करते हुए, श्री सी० आर० दासने[4] जो सेवाएँ की हैं उन्हें भारत कभी नहीं भूल सकता। जब रिपोर्ट[5] प्रकाशित हुई तो मैंने उसके निष्कर्ष काफ़ी काट-छाँटके साथ स्वीकार किये और ठान लिया कि या तो इस सरकारको मिटा दूँगा या डरकर रह जाऊँगा। हम उस पतित शासककी[6], जिसने पंजाबको बरबाद कर दिया, पेंशनतक नहीं रुकवा सके। मैंने शौकत अली और मुहम्मद अली, दोनों भाइयोंसे दोस्ती कर ली है, और अपने भारतीय भाइयोंके सामने वचन दिया है कि मैं उनके पक्षमें लड़ता रहूँगा और यदि मुसलमान भाइयोंकी माँगें मान नहीं ली जातीं तो अपने जीवनकी आहुतितक दे दूँगा। मैं खिलाफतके लिए अपने प्राण दे दूँगा। हमारा धर्म यह नहीं सिखाता कि हम अपनी तलवारोंसे अंग्रेजोंके गले काटें। यदि हम भारतमें अपनी तलवारें काममें ला सके होते तो मुहम्मद अली और शौकत अली दोनों कभी चुप नहीं बैठते। उन्होंने मुसलमान जातिका हित करनेके खयालसे अपनी तलवारें म्यानोंमें रख ली हैं। आपके सामने जो आन्दोलन चल रहा है, वह अहिंसात्मक असहयोगका आन्दोलन है। अगर आप एक सालके भीतर भारतको स्वतन्त्र करना चाहते हैं — जब मैं एक साल कहता हूँ तो मैं मज़ाक नहीं करता; मेरा मतलब सचमुच एक साल ही है — तो आप

१. मॉण्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार योजना।

२. कांग्रेस द्वारा अप्रैल १९१९ में पंजाबके उपद्रवोंकी जाँचके लिए नियुक्त उप-समिति।

३. मुकुन्दराव रामराव जयकर (१८७३–१९५९); बम्बईके वकील और उदारदलीय नेता; इन्होंने राजनैतिक समझौतेकी बातचीतमें प्रमुख हिस्सा लिया था।

४. १८७५–१९२५; प्रसिद्ध वकील और कांग्रेसके नेता।

५. पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें उक्त उप-समितिकी रिपोर्ट जो २५–३–१९२० को प्रकाशित की गई थी।

६. सर माइकेल ओ'डायर।

इस आन्दोलनको स्वीकार कर लीजिए। भारतको केवल एक पाठ पढ़ना है, और वह है निर्भयताका पाठ। जब भारतके लोग निर्भय होना सीख लेंगे, तब मैं समझूँगा कि भारत स्वतन्त्र हो गया। अब आपको अमली कदम उठाने चाहिए। "अहिंसात्मक" और "क्रमशः प्रगति" ये दोनों शब्द असहयोगके अंग हैं। हममें अभी इतनी शक्ति नहीं है कि किसानोंके पास जाकर उन्हें लगान देना बन्द करनेके लिए कह सकें या सेनाके सिपाहियोंसे कह सकें कि वे अपनी नौकरी छोड़ दें। जब समय आयेगा तब हम तलवारोंका उपयोग करेंगे। जो मनुष्य उचित समयपर तलवार नहीं उठाता वह मूर्ख है; और जो अनुचित समयपर अपनी तलवार उठाता है, वह भी नासमझ है। असहयोगका प्रश्न आपके सामने प्रस्तुत है। भारतीयोंको केवल एक बात याद रखनी चाहिए, वह यह कि उन्हें अपने मनसे भय निकाल देना है। यदि आप अपने मनसे भय निकाल दें तो आप भी यही मानेंगे कि भारत स्वतन्त्र हो गया है। जब मुझे यह खयाल आता है कि भारतीय कितने कायर हो गये हैं, तब मैं दुःखमें डूब जाता हूँ। भारतीय कमसे-कम ५ वर्षके लिए ही सही, भय त्याग दें।

आप "अहिंसात्मक" और "क्रमशः प्रगति" इन दोनों शब्दोंको नहीं छोड़ सकते; ये तो "असहयोग" शब्दके साथ जोड़े गये हैं। यदि भारतके लोग इसे स्वीकार कर लें, तो वे अपने मताधिकारका ही नहीं, अपनी सम्पत्ति और प्राणोंका भी त्याग कर देंगे। यदि हमारे नेता खिताबयाफ्ता भारतीयों, वकीलों, छात्रों और कौंसिलोंके सदस्योंके पास जायें और उनसे अनुरोध करें, तो मेरा पक्का विश्वास है कि वे उन्हें त्यागना स्वीकार कर लेंगे और वे सोचेंगे कि उनका पोषण करनेवाला तो केवल ईश्वर है, न कि सरकार, अदालतें और कौंसिलें। अगर आप ऐसा करें तो आपको किसानों और सिपाहियोंके पास जानेकी जरूरत नहीं होगी। तब मुसलमान इस्लामकी ही नहीं, भारतकी भी रक्षा कर सकेंगे। मै भारतके लोगोंको और विशेषरूपसे बंगालके लोगोंको उस कार्यके लिए बधाई देता हूँ, जो उन्होंने मतदानके सम्बन्धमें[1] किया है। हम धीरजसे काम करेंगे। इसीसे पण्डित मदनमोहन मालवीय और दूसरे नेता, जिनमें हमारे भाई सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी हैं, हमारे साथ आ सकेंगे।

हमें शान्तिसे काम करना चाहिए। मेरा खयाल है कि हम अपने इन भाइयोंको डरा-धमकाकर अपने साथ नहीं मिला सकते। मुझे जब यह मालूम हुआ कि एक उम्मीदवारके ऊपर मैला फेंका गया और एक मतदाताका कान काट लिया गया, तो मुझे बहुत दुःख हुआ। निश्चय ही, ये बहुत घृणित कार्य हैं। हमें अपने भाइयोंके पास बहुत ही नम्रतापूर्वक जाना चाहिए और अपनी बात उनके दिलोंमें बैठानी चाहिए और प्रेम और दयासे उनका हृदय जीतना चाहिए। यदि आप इस तरह धीरजसे और लगनसे काम करेंगे, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि एक सालके भीतर, अबसे ९ महीने बाद, भारत अवश्य स्वतन्त्र हो जायेगा; और मुसलमान निश्चय ही इस्लामको खतरेसे बचा लेंगे। मैं छात्रोंसे अनुरोध करता हूँ कि आप पंजाबकी घटनाओं और इस्लामकी स्थितिपर विचार करें। यदि आप विचार करेंगे तो आपको

१. लोगोंको नवम्बर १९२० में विधान-परिषदके चुनावोंमें मतदान देनेसे रोकनेके सम्बन्धमें।

पता चलेगा कि यह राज्य शैतानका राज्य है, रावणका राज्य है। अगर आपसे कहा जाये कि आपको मुफ्त शिक्षा दी जायेगी, तब भी आपको रावणके स्कूलोंमें नहीं जाना चाहिए क्योंकि उनमें शैतानियत भरी है। मैं अपने किसी भी अंग्रेज भाईको शैतान नहीं कहता। मैं श्री शौकत अली और श्री दासको जिस तरह प्यार करता हूँ, उसी तरह अंग्रेजोंको भी करता हूँ। लेकिन मैं इतना ही कहता हूँ कि यह शासन शैतानका शासन है। यदि ईश्वर मुझे पर्याप्त शक्ति दे दे, तो मैं सरकारको या तो सुधार दूँ या समाप्त कर दूँ। मैं सरकारको सुधारे बिना चैन नहीं लूँगा। मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि मैं आज सरकारके राजद्रोह अधिनियमका भंग कर रहा हूँ। मैं इस सरकारकी राजभक्त प्रजा हूँ और उसका सच्चा मित्र भी हूँ, और इसी-लिए सरकारसे कहता हूँ कि या तो वह अपनको सुधार ले या फिर नष्ट होनेको तैयार रहे। मैं इसको नष्ट करनेमें हिस्सा लूँगा और मैं आपसे भी कहता हूँ कि आप मेरा साथ दें। हम या तो इस सरकारको सुधार देंगे या मिटा देंगे। मैं यह नहीं देख सकता कि अंग्रेज लोग बिना किसी भयके काले लोगोंका अपमान करते रहें। मैं खुले मैदानमें अंग्रेजोंसे मिलना और उनको यह बताना चाहता हूँ कि हम भी उतने ही ताकतवर हैं जितने कि वे हैं।

मैं अपने छात्र-मित्रोंसे कहना चाहता हूँ कि यदि आप मेरी सरल हिन्दुस्तानीको नहीं समझ सकते तो यह खेदजनक बात होगी। इससे प्रकट होता है कि हम कितने गिर गये हैं। इस सरकारने हमें बहुत धोखा दिया है। आपने यह बात समझ ली है; इसलिए आपको शिक्षा-संस्थाओंको बिना शर्त छोड़ देना चाहिए।[1]

एक मित्र और प्रिय सहकारीकी बातको न मानना मेरे लिए कठिन है।[2] मैं अपने भाषणकी विषय-वस्तुमें इतना डूब गया था और मेरे विचारोंका क्रम हिन्दीमें इतना बँध चुका था कि मुझे आशा थी कि मैं अपनी सारी बात हिन्दुस्तानीमें ही पूरी कर सकूँगा। लेकिन मैं मजबूर हूँ। श्री दास कहते हैं कि मुझे छात्रोंके विषय-पर अंग्रेजीमें बोलना चाहिए। मुझे ऐसा करते हुए कुछ दुःख होता है, लेकिन प्रस-न्नता भी होती है। प्रसन्नता इस बातकी कि मैं उनकी इच्छा पूरी कर रहा हूँ और दुःख इस बातका कि मुझे अपना आशय एक ऐसे माध्यमसे स्पष्ट करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है जो आपके और मेरे, दोनोंके लिए विदेशी है। मैं छात्रोंको बता रहा हूँ कि उनका स्पष्टतम कर्त्तव्य क्या हो सकता है। यदि छात्रगण मेरे कहनेका तात्पर्य समझ गये हों और मेरी तरह अनुभव करते हों कि हमारी यह सरकार शैतानसे प्रभावित है, यदि आप मेरी तरह यह अनुभव करते हों कि हमारी सरकार जो-कुछ काम करती है उसका परिणाम कुल मिलाकर यह होता है कि हमारी गुलामीकी जंजीरें ढीली नहीं होतीं, बल्कि और ज्यादा कसती चली जाती हैं; यदि आप मेरी

१. भाषणका यहाँतक का अंश पश्चिम बंगालके पुलिसके इंस्पेक्टर जनरलके खुफिया विभागके रेकर्ड्ससे लिया गया है। भाषण मूलतः हिन्दीमें दिया गया था।

२. इसके बाद उन्होंने चित्तरंजन दासके अनुरोधपर छात्रोंको अंग्रेजीमें अपनी बात समझाई। भाषणके इस अंशको **अमृतबाजार पत्रिका**में प्रकाशित अंग्रेजी रिपोर्टसे लिया गया है।

तरह अनुभव करते हों कि आज हमारी गुलामी पहलेकी बनिस्बत ज्यादा मजबूत हो गई है और यदि आप मेरी तरह अनुभव करते हों कि पंजाबियोंके आत्म-सम्मानकी रक्षा और इस्लामकी इज्जतको बचानेके लिए आपको और मुझे कुछ-न-कुछ करना चाहिए, तो मैं ढाकाके छात्रोंसे कहता हूँ कि आप अपना तात्कालिक कर्त्तव्य समझिए। मान लीजिए कि भारतीय नवयुवकोंकी शिक्षाके लिए शैतानने ये स्कूल और कालेज स्थापित किये हैं; मान लीजिए कि आपको यह फैसला करना है कि एक ओर या तो आप अपने मस्तिष्क और हृदयको अविकसित रखें, या दूसरी ओर शैतानके स्थापित किये हुए स्कूलों और कालेजोंमें जायँ; और यह भी कल्पना कीजिए कि भारतके युवकोंमें ईश्वरका भय है, आप सब आस्तिक हैं, आपका ईश्वरमें विश्वास है और आप ईश्वरकी अच्छाईपर विश्वास करते हैं तो आप क्या करेंगे। आप इन सब बातोंकी कल्पना कीजिए और मुझे बताइये कि आप बिना शिक्षाके रह जाना पसन्द करेंगे या शैतानके स्थापित किये हुए इन स्कूलों और कालेजोंमें जायेंगे। और यदि आपका उत्तर निश्चित रूपसे शैतान द्वारा स्थापित कालेजों और स्कूलोंको छोड़नेके पक्षमें हो, तब मैं आपसे कहना चाहूँगा कि मेरा उद्देश्य सिद्ध हो जाता है। मेरा अपना मत यह है कि यह सरकार अपने नग्न रूपमें शैतानियतकी भावनासे ओतप्रोत सरकार है। यदि आप एक ऐसी सत्ता द्वारा शासित होना चाहते हैं जो ईश्वरीय भावनासे ओत-प्रोत है, यदि आप भारतमें राम-राज्यकी स्थापना करना चाहते हैं, अर्थात् आप जिसे स्वराज्य कहते हैं, भारतमें यदि उसकी स्थापना करना चाहते हैं तो यह आपका अनिवार्य कर्त्तव्य है कि आप इन स्कूलों और कालेजोंको बिना शर्त छोड़ दें। कारण, इन स्कूलों और कालेजोंमें जो शिक्षा दी जाती है वह ऐसी नहीं है जो आपको स्वराज्य दिला सके; यह स्वतन्त्रता या स्वाधीनताके इच्छुक व्यक्तियोंको दी जाने योग्य शिक्षा नहीं है। यह सरकार तो जनताको गुलाम बनाकर रखनेमें विश्वास करती है। क्या आप ऐसा सोचते हैं कि गुलाम बनाकर रखनेवाली सरकार आपको ऐसे ढंगकी शिक्षा दे सकती है जिससे आप गुलामीकी उन जंजीरोंको तोड़ सकें जिनमें आप बँधे हुए हैं। मुझे अभीतक गुलामोंका ऐसा कोई मालिक नहीं मिला जो अपने गुलामोंको यह बताता हो कि स्वतन्त्रताकी, स्वाधीनताकी कीमत क्या है। जहाँ भी गुलामोंने मतदान-का अधिकार प्राप्त किया है, उन्होंने गुलाम रखनेवालोंकी मर्जीके खिलाफ ही प्राप्त किया है। अभी मैं शिक्षा-प्रणालीपर आक्षेप नहीं कर रहा हूँ, हालाँकि वह भी अपूर्ण और निकृष्ट है। मैं केवल उस सरकारपर आक्षेप कर रहा हूँ जिसके तत्त्वावधानमें यह अपूर्ण और निकृष्ट शिक्षा भारतके नवयुवकोंको दी जाती है। मेरे खयालसे यह अवांछनीय है कि हम सरकारके प्रति अपने भीतर अश्रद्धा उत्पन्न करने और उसे पालते रहनेके लिए इन स्कूलों और कालेजोंमें जायें। मैं तो समस्त भारतमें सर-कारके विरुद्ध अश्रद्धा ही फैला रहा हूँ। मैं कहता हूँ कि इस सरकारके प्रति श्रद्धा और प्रेम रखनेका अर्थ है ईश्वरके प्रति अश्रद्धा करना। यह भारत और इस्लामके प्रति अश्रद्धा करना है, और जबतक यह सरकार अपने अन्यायोंका निराकरण नहीं करती और घुटने नहीं टेकती, तबतक हमारे मनमें उसके प्रति यह अश्रद्धा निश्चय

ही बनी रहेगी। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि सरकारने जो महान भूलें की हैं यदि वह उनको सुधार ले तो हम उसे क्षमा कर सकें। इसलिए मेरे मित्रो, मैं कहता हूँ कि आपके सामने रास्ता बिलकुल स्पष्ट है। मैंने आपके सामने जो पक्ष रखा है, मेरी सम्मतिमें, वह भी साफ है। मैं एक क्षणके लिए भी यह कहना नही चाहता कि आपने इस सरकारसे कोई फायदा नहीं उठाया। लेकिन यह तो शैतानका तरीका है ही। जब शैतान किसी भले आदमीकी शकलमें आता है तो वह बड़ा ही मायावी बनकर आता है। एक समझदारीसे भरी कहावत है — 'जब यूनानी आपके सामने अपने उपहार लेकर आयें तो उनसे सावधान हो जाइये।' यह सरकार जब आपको खिताब, कौंसिलकी सदस्यता, जजों और गवर्नरोंके औहदे देनेकी बात कहे तो आप उससे सावधान रहें और सबसे ज्यादा सावधान आप भारतीय युवक, जिनको किसी भी पूर्वग्रहसे मुक्त रहनेका अधिकार है, उस जालसे रहें जो इस सरकारने गुलाम बनानेके इन कारखानोंको स्थापित करके विद्यालयोंकी शक्लमें आपके लिए बना रखे हैं। निश्चय ही आपको सरकारकी मातहतीमें नौकरियाँ मिल सकती हैं। आप डिप्टी-मजिस्ट्रेट या और कोई अधिकारी बन सकते हैं। लेकिन ये सब हमारी स्वतन्त्रताके नहीं, गुलामीके बिल्ले हैं। अगर आप यह अनुभव करते हैं कि आप इस सरकारको एक क्षणके लिए भी सहन नहीं कर सकते तो सम्मानका — भारतके आत्मसम्मानका — तकाजा है कि आप इन स्कूलों और कालेजोंको कल ही छोड़ दें। आपको इन स्कूलों और कालेजोंमें रहकर अपने मनमें न तो अश्रद्धा रखनी चाहिए और न अशोभनीय साधनोंका प्रयोग ही करना चाहिए। आपको यह नही कहना चाहिए कि आप इन स्कूलों और कालेजोंमें इस सरकारको नष्ट करनेके उद्देश्यसे जाते हैं। मेरी रायमें यह बेवफाई होगी। दण्ड विधानमें बतलाई हुई बेवफाई या कोई अन्य कृत्रिम रूपसे निश्चित बेवफाई नहीं, बल्कि ईश्वरके शाश्वत नियमोंके प्रति बेवफाई। यदि आप इस सरकारके स्थापित किये हुए इन स्कूलों और कालेजोंमें जाते हैं तो आपको उनमें निश्छल हृदयसे जाना चाहिए। मान लीजिए, गवर्नर स्कूलोंमें आते हैं और आपको खड़ा होना पड़ता है, आपको 'गाड सेव द किंग' गीत गाना पड़ता है। अंग्रेज लोग, अंग्रेजोंके रूपमें और हम भारतीय सज्जनताके नाते ईश्वरसे यह प्रार्थना तो कर सकते हैं कि वह बादशाह जॉर्जकी रक्षा करे, किन्तु हम शुद्ध अन्तःकरणसे पुकार कर यह नहीं कह सकते कि "ईश्वर इस साम्राज्यके सम्राट्की रक्षा करे।" क्या इसका अर्थ यह है कि इंग्लैंडका वर्तमान शासक जो आज इंग्लैंडके बकिंघम पैलेसमें रहता है, अमर रहे? इसका अर्थ यह है कि यह ब्रिटिश साम्राज्य, जिसमें सूरज कभी अस्त नहीं होता, अमर रहे। और यदि आप भारतके युवकगण, जिनसे भविष्यमें भारतको बहुत आशाएँ हैं और जिनपर राष्ट्रकी नींव टिकी हुई है, मेरी तरह यह अनुभव करते हैं कि जब गवर्नर आपके स्कूलों और कालेजोंमें गवर्नरके रूपमें आये तब आपके लिए उसके प्रति सम्मान प्रकट करनके लिए खड़ा होना सम्भव नहीं है, जब "गॉड सेव द किंग" का गीत स्कूलोंमें गाया जाये तब आपके लिए खड़ा होना सम्भव नहीं है, तो मैं आपसे कहता हूँ कि आप इन स्कूलों और कालेजोंमें मत जाइए, अन्यथा आप अपनी परम्परा और भारतके अतीत गौरवके प्रतिकूल कार्य करेंगे।

यदि आपको स्कूल छोड़नेमें डर नहीं लगता तो स्कूल छोड़नेके बाद, मैं कहता हूँ कि ज्यों ही स्कूल और कालेज छोड़ेंगे त्यों ही, आप भारतकी स्वतन्त्रताके स्वामी और भारतकी स्वतन्त्रताके संरक्षक बन जायेंगे। आप स्वतन्त्रताके प्राथमिक फलोंका आस्वादन कर चुकेंगे। आप स्वतन्त्र जीवनकी नई पद्धतिकी नींव डाल चुकेंगे। उस नींवपर आप तत्काल नया भवन बना सकते हैं और उस नींवको ज्योंका-त्यों भी छोड़ सकते हैं। आप जबतक इन संस्थाओंमें शिक्षा पायेंगे तबतक उस नींवपर भवन कदापि न बनेगा। और इसलिए मैं आप छात्रोंसे अनुरोध करता हूँ कि आपके सामने मैंने जो तर्क रखे हैं यदि आप उनको स्वीकार करते हैं तो आप अपने स्कूलों और कालेजोंको बिना शर्त छोड़ दें। मुझे एक पत्र मिला है और वह मेरी जेबमें रखा हुआ है। मुझे यह पत्र एक छात्रने भेजा है। इसमें उसने मुझसे पूछा है कि वह कालेज छोड़नेके बाद क्या करे। उसने मुझसे यह भी पूछा है कि क्या वह असहयोगका प्रचार करता रह सकता है। मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। मैं उससे कहता हूँ कि उसे कोई प्रचार कार्य नहीं करना है, बस थोड़ा-सा अमली काम करना है। थोड़ा-सा अमली काम बहुत सारे प्रचारसे कहीं अधिक होता है। मुझे तो बिना मिलावटका शुद्ध सोना चाहिए। यदि आप इन स्कूलों और कालेजोंमें प्राप्त थोड़ी-सी बौद्धिक शिक्षा छोड़नेके लिए तैयार हों, इनसे प्राप्त होनेवाले बौद्धिक विकासका मोह छोड़नेको तैयार हों, तभी आप "भारतके हितमें इन स्कूलों और कालेजोंको छोड़ें। याद तो कीजिए कि बोअर-युद्धमें बोअर बच्चोंने क्या किया था। याद कीजिए, कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्डके छात्रोंने पिछले महायुद्धके समय क्या किया था। याद कीजिए कि अरबके युवक आज क्या कर रहे हैं। सरकार उनको शिक्षा देनेका जो वचन देती है, वे उससे धोखेमें नहीं आते। उनके लिए बौद्धिक प्रशिक्षणकी अपेक्षा स्वतन्त्रता ज्यादा कीमत रखती है। यदि किसी गुलामको बौद्धिक प्रशिक्षण दिया जाये किन्तु उससे उसे स्वतन्त्रता न मिले तो बौद्धिक प्रशिक्षण उसके किस कामका? यदि आपका यह विश्वास हो कि आप इन स्कूलों और कालेजोंमें ऐसी शिक्षा पा रहे हैं जिससे भारत या इस्लाम स्वतन्त्र हो जायेंगे तो आप इन स्कूलों और कालेजोंमें बने रहिए। पर यदि आपका खयाल मेरी तरह यह हो कि इन स्कूलों और कालेजोंमें शिक्षित भारतीयोंको जो बिल्ले मिलते हैं वे गुलामीके बिल्ले हैं, तब आप बिना किसी सन्देहके कल ही इन स्कूलों और कालेजोंको छोड़ दें।

इस छात्रने मुझे एक और खबर दी है जो बहुत दुःखजनक है। वह मुझे बताता है कि बाबू विपिनचन्द्र पाल[1] ढाकामें जब मंचपर भाषण करनेके लिए खड़े होते हैं और आपसे यह कहते हैं कि आप इन स्कूलों और कालेजोंको तबतक न छोड़ें जबतक उनकी जगह नये स्कूल और कालेज स्थापित नहीं हो जाते, तब छात्र लोग सीटियाँ बजाकर उन्हें मंचसे उतार देते हैं। यह तो असहयोगकी शिक्षा नहीं है। यह भारतकी परम्परा नहीं है और इन पश्चिमी परम्पराओंसे आपका सम्बन्ध कमसे-कम रहे तो सर्वोत्तम होगा। बाबू विपिनचन्द्र पाल और मेरे विचारोंमें जमीन आसमानका अन्तर

१. १८५८–१९३२; बंगालके शिक्षा-शास्त्री, ओजस्वी वक्ता, पत्रकार, और राजनैतिक नेता।

है। मैं उन्हें कई वर्षोंसे जानता हूँ। तभीसे उनके और मेरे बीच यह मतभेद है। लेकिन फिर भी मैं इस आचरणका समर्थन नहीं कर सकता। भारतके युवक उनके प्रति या किसी अन्यके प्रति ऐसा भद्दा व्यवहार करें तो मैं उसको प्रोत्साहन देनेका अपराधी नहीं बन सकता। आखिर बाबू बिपिनचन्द्र पालने अपने विवेकके अनुसार देशकी सेवा की है और वे अब भी अनुभव करते हैं कि उनमें जितनी समझ है उसके अनुसार वे अपने देशकी सेवा कर रहे हैं। उन्होंने छात्रोंको नये स्कूल और कालेज स्थापित होने तक रुके रहनेकी जो सलाह दी है, वह बुरी है; लेकिन यह तो व्यक्तिगत रायकी बात हुई। किन्तु यहाँ तो अन्तर विचारोंमें ही है। वे सच्चे दिलसे विश्वास करते हैं कि छात्रोंसे अपनी मौजूदा पढ़ाई-लिखाई छोड़नेके लिए कहना ठीक नहीं है। किन्तु मेरा खयाल है कि इसकी अपेक्षा तो भारतके छात्रोंको अशिक्षित ही बने रहना चाहिए।[1]

श्री दास मुझे बताते हैं कि बाबू विपिनचन्द्र पालने अपने भाषणोंमें यह बात कभी नहीं कही। तब तो लोगोंका सीटी बजाकर उन्हें मंचसे उतार देना और भी बुरी बात है। सभी वक्ताओंकी बात बड़े ध्यानसे सुनना आपके लिए आवश्यक है। हम प्रत्येक वक्ताका विश्वास करें, यह आवश्यक है।

हमें इतना स्वतन्त्र होना चाहिए कि हम अपनी बुद्धिसे खुद फैसला कर सकें। जबतक हम बुरे-भलेमें कोई फर्क नहीं कर सकते, जबतक हम निर्णयकी गलती और बुद्धिमत्तापूर्ण सही सलाहमें अन्तर नहीं कर सकते और जबतक हम अपनी विवेक-शक्तिका उपयोग नहीं कर सकते, तबतक हम इस राष्ट्रको अभीष्ट लक्ष्यतक नहीं ले जा सकते। लेकिन हमको अपनी परम्परा नहीं भुला देनी चाहिए। जो वक्ता मंचपर भाषण देनेके लिए खड़ा हुआ हो उसका अपमान नहीं करना चाहिए। मैंने गुजरातके छात्रोंको जो उपाय बताया था वही आपको भी बताता हूँ। यदि आपका खयाल हो कि कोई वक्ता ढोंगी है — और भारतमें अब भी ढोंगी वक्ता हैं — आपका खयाल हो कि कोई वक्ता ऐसा है जो सच्चा नहीं है, तो भी आपको उसके भाषणमें सीटी बजानेका कोई अधिकार नहीं है। आप मंच और सभाको छोड़कर जा सकते हैं, इस बातका आपको अधिकार है। जब छात्रोंने श्रीमती बेसेंटके[2] भाषणमें सीटियाँ बजाई तो उससे मुझे बहुत ही दुःख हुआ। मैं अनुभव करता हूँ कि उन छात्रोंने जो अपनेको असहयोगी कहते हैं, इस देशकी अधिकतम कुसेवा की, और ऐसा काम किया जो असहयोगकी दृष्टिसे कलंककी बात है। मैंने उनसे कहा कि यदि वे श्रीमती बेसेंटका भाषण नहीं सुनना चाहते थे, यदि उनको ऐसा लगा था कि श्रीमती बेसेंटके कथनसे उनको क्षोभ होता है, यदि उनको लगा था कि श्रीमती बेसेंटने अपने ध्येयके प्रति न्याय नहीं किया है तो उनको इस बातका हक था कि वे सभासे चले जाते; किन्तु एक

१. यहाँ चित्तरंजन दास बीचमें बोले। उन्होंने कहा कि विपिनचन्द्र पालने जिन-जिन सभाओंमें भाषण दिया था उनमें वे मौजूद थे। उन्होंने छात्रोंको ऐसी सलाह कभी नहीं दी।

२. एनी बेसेंट (१८४७–१९३३); प्रसिद्ध थियोसॉफिस्ट और वक्ता; बनारसमें केन्द्रीय हिन्दू कालेज १८९८ में स्थापित किया; १९०७–१९३३ तक 'थियोसॉफिकल सोसायटी' की अध्यक्ष; 'इंडियन होम रूल लीग' की संस्थापिका और १९१७ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी अध्यक्ष।

आदरणीय महिलाके प्रति असम्मान दिखानेका उनको कोई हक नहीं था। मैं तो कहता हूँ कि यदि कोई ढोंगी वक्ता मंचपर खड़ा हो ही जाये तो भी शिष्टताका तकाजा है कि आप उसका भाषण भी अवश्य सुनें।

ढाकाके नवयुवको, मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप असहयोगके झंडेके नीचे आ जायें। कृपया यह समझ लें कि यह लड़ाई आत्म-शुद्धिकी लड़ाई है। इसका तकाजा है कि आप सब संयम रखें, खुद अपने दिमागसे सोचें और किसीके पीछे आँख मूँद-कर न चलें। मैं आपसे कहता हूँ कि आप दूसरोंकी रायके मुताबिक न चलें। मैं आपसे जो कह रहा हूँ, यदि आप भी ऐसा ही अनुभव करते हों और आपका हृदय भी यही गवाही देता हो, और यदि आपने मेरी बात पूरी तरह समझ ली हो, तभी आपका अपने स्कूलों और कालेजोंको छोड़ना ठीक है। जैसा मैंने कहा है वैसा ही यदि आप भी अनुभव करते हों तो आपका यह पुनीत कर्त्तव्य होगा — क्योंकि आपके माता-पिता शायद मेरे कथनका समर्थन न करें — कि यदि वे आपको स्कूलों और कालेजों-को न छोड़नेके लिए कहें तो आप आदरपूर्वक उनकी आज्ञाको अमान्य कर दें। लेकिन इस अवज्ञाकी शर्त पूर्ण विनम्रता और पूर्ण आत्मसंयम है, माता-पिताका अपमान करना नहीं। मैं भारतीय माता-पिताओंको जानता हूँ। इसलिए मैं जानता हूँ कि आप भारतके युवकगण सच्चे होंगे तो अपने माता-पिताको राजी कर सकेंगे और उनसे अपने स्कूल और कालेज छोड़नेकी अनुमति भी ले सकेंगे। मेरा खयाल है कि भारतीय माता-पिताओंको स्कूल और कालेज छोड़नेके विरुद्ध आपको चेतावनी देनेका पूरा अधि-कार होगा। वे आपसे उचित रूपसे कह सकते हैं कि आप किसी भले या बुरे वक्ताके जोशीले भाषणसे प्रवाहमें न बह जायें। इस प्रकार प्रवाहमें बह जाना आपका स्वभाव रहा है; इसलिए यदि आपके माता-पिता आपको चेतावनी दें तो आप उसपर पचास बार विचार करें। अक्लमंदी इसीमें है।

भारतीय युवको, यदि आप मेरी तरह यह मानते हों कि इन स्कूलों और काले-जोंको बिना शर्त छोड़ना आपका पवित्र कर्त्तव्य है, तो मैं आपसे कहता हूँ कि आप उसका तुरन्त पालन करें। लेकिन आप अपने कमरोंमें बैठकर ईश्वरसे प्रार्थना करें और देखें कि क्या वह सचमुच आपके अन्तःकरणकी आवाज है। और यदि आपको सन्तोष हो जाये, तो आप अपने माता-पिताके पास जाकर, दूसरे बड़े-बूढ़ों और अपने अध्यापकोंके पास जाकर उसकी फिर परीक्षा करें और यदि फिर भी आपका पूरा समाधान न हो पाये और आप यह अनुभव करें कि आपको इन स्कूलों और कालेजों-को छोड़ ही देना चाहिए तो वैसी स्थितिमें अपने माता-पिताके प्रति पूरा आदर रखते हुए भी इन स्कूलों और कालेजोंको छोड़ देना आपका पुनीत कर्त्तव्य है। यह हिन्दू शास्त्रोंकी आज्ञा है; यह 'कुरान शरीफ'की आज्ञा है। यदि आपको सन्तोष हो, तो आपको अपने स्कूल कालेज छोड़नेमें कोई झिझक नहीं होगी।

एक बात और; उसके बाद मैं भाषण समाप्त कर दूँगा। आप पुराने स्कूलों और कालेजोंकी जगह नये स्कूल और कालेज चाहते हैं। मैं इस बातको जानता हूँ। जब मैं आपसे कहता हूँ कि आप बिना शर्त स्कूलों और कालेजोंको छोड़ दें, तब मैं

जानता हूँ कि आपके लिए नये स्कूल और कालेज स्थापित करना नेताओंका कर्त्तव्य हो जाता है और आपके लिए जो सर्वोत्तम होगा वह अवश्य किया जायेगा। लेकिन मेरा निवेदन है कि आप अपने ऊपर पर्याप्त भरोसा रखें और अपने नेताओंपर भी पूरा भरोसा रखें। आप पहले जरूरत तो पैदा करें और ज्यों ही नेताओंको यह विश्वास हो जायेगा कि आप उन पुराने स्कूलों और कालेजोंमें नहीं जाना चाहते जो विश्व-विद्यालयोंसे सम्बद्ध हैं, त्यों ही उन्हें आप अपने लिए ऐसी संस्थाओंकी व्यवस्था करता पायेंगे। ईश्वर आपको इसकी शक्ति दे। ईश्वर आपको स्वास्थ्य दे। ईश्वर आपमें ऐसा विश्वास पैदा करे जिससे आपको अपना मार्ग स्पष्ट दिखाई दे।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १८-१२-१९२०

पश्चिम बंगाल सीक्रेट पुलिस रेकर्ड्स।

७६. पत्र : मगनलाल गांधीको

[कलकत्ता जाते हुए]
गुरुवार [१६ दिसम्बर, १९२०][१]

चि० मगनलाल,

कुछ ही घंटोंमें कलकत्ता पहुँच जाऊँगा। अगर डाक्टर मेहताके[२] लिए किसी तरह मकान बनवाना सम्भव हो तो बनवा देना। क्या हमें भी अच्छे बटवाला उम्दा सूत कातना नहीं सीख लेना चाहिए? अगर श्री कालेके[३] प्रयोगोंके फलस्वरूप सामान्य चर्खेपर भी ऐसा सूत काता जा सके तो अच्छा होगा, भाई लक्ष्मीदासका[४] ध्यान रखना। उनका स्वभाव मुझे तो बहुत ही अच्छा लगा है। कालेने जो चर्खा बनाया है, ऐसा उपाय करना कि वह मुतवातिर आठ घंटेतक चलाया जा सके।

दस्तावेज तैयार करानेके बारेमें क्या किया है सो लिखना। मेरा तो पूरा महीना यात्रामें निकल जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

१. गांधीजी ढाकासे कलकत्ता गुरुवारको पहुँचे थे और गुरुवार इसी तारीखको पड़ा था।

२. डा० प्राणजीवन मेहता, गांधीजीके मित्र, जिनके लिए आश्रमके समीप ही एक मकान बनवाया गया था।

३. एक विशेष प्रकारके चर्खेके सम्बन्धमें जो पारितोषिक घोषित किया गया था, श्री काले उस पारितोषिकके लिए होड़में शामिल हुए थे।

४. लक्ष्मीदास पु० आसर, सत्याग्रह आश्रम, साबरमतीके आश्रमवासी; इन्होंने खादी तथा ग्रामोद्योगोंमें विशेष प्रवीणता प्राप्त की थी।

पुनश्च:

इस बार तो रेवाशंकरभाई भी यात्रापर निकले हैं।

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९८४) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी

७७. 'गुरखा' जहाजपर बातचीत[1]

१६ दिसम्बर, १९२०

[भारतीय सज्जनने पूछा]: तब असहयोगका तात्कालिक हेतु तो अन्यायका विरोध करना ही हुआ न?

[गांधीजी]: विरोध नहीं। शुद्धीकरण; हमारे अपने शुद्धीकरणके द्वारा विरोधियोंका शुद्धीकरण।

[अंग्रेज]: और पापसे अपनेको अलग रखना?

गां०: निस्सन्देह, यही।

अं०: तब क्या आपको ऐसा लगता है कि आप यह शुद्धीकरण थोड़ा बहुत भी कर सके हैं?

गां०: मैं आजकल देशका पर्यटन कर रहा हूँ। देशमें लोगोंको आत्मनिग्रह और स्वावलम्बनका पाठ सीखते देखकर मैं तो आश्चर्यचकित रह गया हूँ। किसान वर्गमें भी इन दोनों बातोंका विकास हो रहा है और मुझे ऐसा लगता है कि ब्रिटिश अधिकारी भी इस प्रभावसे अछूते नहीं बचे हैं, उनके मन भी निर्मल होते जा रहे हैं।

अं०: इस शुद्धीकरणके द्वारा आप अंग्रेजोंमें क्या देखना चाहते हैं? अंग्रेजोंके व्यवहारमें क्या परिवर्तन लाना चाहते हैं?

गां०: मैं ऐसी स्थिति उत्पन्न करना चाहता हूँ जिसमें प्रत्येक अंग्रेज प्रत्येक भारतीयको अपना समकक्षी माने। अंग्रेज अभिमानके शिखरपर चढ़कर बातें करता है, उसे मैं नीचे जमीनपर उतारकर यह खयाल दिलाना चाहता हूँ कि हिन्दका सामान्यसे सामान्य मजदूर भी उसके समकक्ष है। अपने किसी भी व्यवहारमें वह भारतीयकी अवगणना न करे, अपने सारे व्यवहारमें वह उसे अपना समान भागीदार समझे, मैं ऐसी स्थिति उत्पन्न करना चाहता हूँ। इससे भिन्न दूसरी किसी भी शर्तपर हिन्दुस्तानमें उसके लिए स्थान नहीं है। अंग्रेज और भारतीय दोनोंमें परस्पर समतुल्य होनेकी भावनाका प्रसार हो, वे उसका साक्षात्कार करें — इतना-भर होनेसे मैं समझूँगा कि मेरे देशको

१. महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत। जब गांधीजी ढाकासे कलकत्ता जाते हुए नारायण गंजसे गोलंडोतक जहाजमें यात्रा कर रहे थे, यह बातचीत उसी दौरान हुई थी। जिन लोगोंके साथ गांधीजीकी यह बातचीत हुई उनमें से एक मित्र नामक भारतीय सज्जन थे और दूसरे मेयर नामक अंग्रेज। ये दोनों ही बैरिस्टर थे।

स्वाधीनता मिल गई। और आज आदर और प्रतिष्ठाकी जो झूठी कल्पना मनोंमें घर किये बैठी है, केवल उसका नाश हो जाये तो इतना काफी है। आज जहाँ जाते हैं वहाँ क्या देखनेको मिलता है? अंग्रेजोंसे भयभीत भारतीय; अपने विचारोंको दूसरोंसे छिपाते हुए भारतीय! इसकी अपेक्षा अधिक अवनतिजनक दृश्य और क्या हो सकता है?

अं० : आप कहते हैं कि प्रत्येक अंग्रेज भारतीय मजदूरको भी अपना समकक्ष माने। क्या यह आवश्यकतासे अधिक अपेक्षा करना नहीं है? प्रत्येक भारतीय सज्जन क्या मजदूरको अपना समतुल्य मानता है? आप जो यह कहते हैं, कि प्रत्येक अंग्रेजको प्रत्येक भारतीयसे ठीक वैसा व्यवहार करना चाहिए जैसा वह किसी दूसरे अंग्रेजसे करता है, सो क्या यह उचित है? एक अंग्रेज 'स्क्वायर' जैसे अपने अंग्रेज मजदूरके साथ व्यवहार करता है अवश्य वैसा ही बर्ताव भारतीय मजदूरके साथ अंग्रेजोंको करना चाहिए।

गां० : बहुत ठीक। आपने मेरी बात और अधिक सुन्दर ढंगसे कही। मेरे कहनेका यही अभिप्राय है।

भा० : तो फिर आपके कथनानुसार अत्याचारी सरकारके साथ असहयोगका तात्कालिक उद्देश्य भी शुद्धीकरण ही है? इसके बाद शुद्धीकरणसे अन्य ऐहिक लाभ मिलें या न मिलें, इसकी कोई चिन्ता नहीं है?

गां० : हमारी शुद्ध तपस्याके पूर्ण होनेपर ऐहिक लाभ उसमें से स्वयमेव फलीभूत होंगे। उदाहरणके लिए पंजाबके अत्याचारोंके सम्बन्धमें तब कुछ भी करनेको नहीं रह जायेगा। इसके बाद पंजाबके अत्याचारोंके एक भी अपराधीको हिन्दुस्तानमें खड़े होनेकी जगह नहीं मिलेगी। इतना ही नहीं, हमारी तिजोरीसे ऐसे किसी भी गुनहगारको वेतन अथवा पेन्शन देना सम्भव न होगा।

अं० : तब क्या आपने सिर्फ अंग्रेजोंके लिए सजा निर्धारित की है? भारतीयों — सामान्य भारतीयोंने भी तो गुनाह किये हैं, उनका क्या होगा?

गां० : यह प्रश्न आश्चर्यजनक है। हमारे गुनाहोंकी अपेक्षा हमें हजार गुना अधिक सजा मिल चुकी है। मैं विश्वासके साथ कहता हूँ कि जिन्होंने गुनाह किये थे, उन्हें तो सजा मिली ही, सैकड़ों निर्दोष व्यक्ति भी मारे गये, अनेक निर्दोष व्यक्तियोंको जेल जाना पड़ा। बच्चोंतकको कष्ट सहन करना पड़ा है। निर्दोष स्त्रियोंका अपमान हुआ है। जलियाँवालामें जो कत्लेआम किया गया वह भी निर्दोष व्यक्तियोंका ही था। इससे अधिक भी कोई सजा हो सकती है क्या? लेकिन मैंने तो अंग्रेज अधिकारियोंको सजा देनेकी बात ही नहीं की है। मैंने तो सिर्फ इतना ही कहा है कि उन्हें अब हिन्दुस्तानका पैसा नहीं मिलते रहना चाहिए, और उनके पद और उपाधियाँ समाप्त कर दी जानी चाहिए। उन्हें सजा देनेकी बात कही जाये तो उनमें से कितने ही लोगोंकी सजा तो सिर्फ फाँसी ही हो सकती है। पर मेरे धर्ममें इसका कोई स्थान नहीं है। हिन्दुस्तान क्या चाहता है, सो मैं नहीं जानता।

इसी प्रसंगमें मुझे एक बात याद आती है। श्री एन्ड्रयूजने जब जलियाँवाला बागके कत्लेआमकी 'ग्लैंकोंके कत्लेआम' के[1] साथ तुलना की थी तब मैंने तुरन्त ही 'यंग इंडिया' में ग्लैंकोंके कत्लेआमका विवरण प्रकाशित किया था। श्री एन्ड्रयूजके मनमें जलियाँवाला बागके कत्लेआमके प्रति कितनी घृणाका भाव होगा, इसे व्यक्त करनेके लिए ही मैंने इसे प्रकाशित किया। लेकिन उसे एक बार फिर पढ़ जानेसे मुझे लगा कि एन्ड्रयूजने कुछ अन्याय किया है और मुझे उस सम्बन्धमें बहुत दुःख हुआ। मैं प्रिंसिपल रुद्रसे[2] मिला; उनके साथ बातचीत की और देखा कि उनके विचार भी मेरे जैसे ही हैं। लेकिन आज मुझे श्री एन्ड्रयूजकी उस तुलनाकी यथार्थताका ध्यान आता है। जलियाँवाला बागका कत्लेआम ग्लैंकोंके कत्लेआमसे भी अधिक बुरा, अधिक निन्द्य था, ऐसा मुझे अब प्रतीत होता है। कारण कि ग्लैंकोके कालके और वर्तमान कालके सुधारोंमें जमीन-आसमानका अन्तर है।

भा० : सरकारने धर्मपर हमला किया है, ऐसा आप कैसे कहते हैं? सरकार तो विजयी मित्र-राज्योंके बड़े मण्डलमें एक हिस्सेदार मात्र ही है।

गां० : आप-जैसे व्यक्तिको आज भी ऐसा प्रश्न करते देखकर मुझे हैरानी होती है। टर्कीके नाशकी योजनामें इंग्लैंडका प्रमुख हाथ है।[3] ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीको[4] स्वयं अपनी करनीका फल चखना पड़ रहा है। वे अपने सदसद्‌विवेकके खिलाफ गये और फिर उसीकी तुष्टिके लिए उन्हें अपना वचनभंग[5] करना पड़ा; और इस प्रकार उन्होंने मुसलमानोंके हृदयोंको आघात पहुँचाया है।

भा० : अच्छा, चलिये अब दूसरे विषयोंपर विचार करें। आप स्कूलोंको खाली करवा रहे हैं लेकिन उनके स्थानपर शिक्षाकी क्या कोई अन्य व्यवस्था भी कर रहे हैं?[6]

* * *

भा० : तब क्या वर्तमान शिक्षा प्रणाली बुरी है?

गां० : यह प्रश्न उठता ही नहीं। तथापि उसका उत्तर देनेमें मुझे कोई अड़चन नहीं है। मैं कहता हूँ कि "हाँ, वह बुरी है।" शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी होनेसे विद्यार्थियोंके दिमागपर दोहरा बोझ पड़ जाता है। मैं अपने विचार तो क्या कहूँ? प्रोफेसर यदुनाथ सरकार[7]-जैसा व्यक्ति कहता है कि इस विदेशी भाषाके माध्यमसे

१. सन् १६९२ में विलियम तृतीय और मैरीके शासनकालमें स्कॉटलैंडमें यह कत्लेआम हुआ था।

२. सुशीलकुमार रुद्र, उस समय सेंट स्टीफेन्स कालेजके प्रिंसिपल।

३. प्रथम विश्वयुद्धकी समाप्तिपर शान्ति-सन्धिके अन्तर्गत।

४. लॉयड जॉर्ज।

५. ५ जनवरी, १९१८ का; देखिए "भाषण: विद्यार्थियोंकी सभा, कलकत्तामें", १४ दिसम्बर, १९२० की पा० टि० १।

६. यहाँ महादेवभाईने इतना ही लिखा है कि गांधीजीने इस प्रश्नके उत्तरमें, उस समय गुजरातमें चल रहे शिक्षा-आन्दोलनका विस्तृत विवरण दिया।

७. १८७०-१९५८; शिक्षाशास्त्री और इतिहासकार; कलकत्ता विश्वविद्यालयके उपकुलपति (१९२६-२८)।

शिक्षा प्राप्त वर्गका दिमाग निस्तेज हो गया है। हमारी कल्पना शक्ति अथवा सर्जना-शक्ति ही नष्ट हो गई है। हमारा सारा समय विदेशी भाषाके उच्चारण और उसके रूढ़िगत प्रयोगोंको याद करनेमें व्यतीत हो जाता है। यह एक बेगारका काम है और इसका परिणाम यह हुआ कि हम यूरोपीय सुधारोंके 'स्याही सोख' बन गये हैं। उनका उत्तम अंश लेनेके बदले क्षुद्र अनुकरणकर्त्ता बन गये हैं। दूसरा नतीजा यह हुआ है कि हममें और सामान्य वर्गके बीच बड़ी भारी खाई पड़ गई है। हम, जिस भाषामें वे समझ सकें उस भाषामें राजनैतिक विषय तो क्या, सामान्य शारीरिक स्वास्थ्य और अन्य सार्वजनिक हित सम्बन्धी बातें भी उन्हें नहीं समझा पाते। इस युगमें हम प्राचीन ब्राह्मणों-जैसे हो गये हैं। बल्कि उनसे भी गये गुजरे हो गये हैं। उनके हृदय मलिन नहीं थे। वे राष्ट्रीय सभ्यताके 'न्यासी'की तरह थे। हम तो वैसे भी नहीं रह गये हैं। हम अपनी शिक्षाका अनुचित उपयोग कर रहे हैं। सामान्य वर्गके साथ हमारा व्यवहार ऐसा है मानो हम उनसे श्रेष्ठ हों। मेरी अभिलाषा है कि आप इस सम्बन्धमें मेरे साथ जिरह करें। लेकिन मैं इतना अवश्य कहूँगा कि मेरे ये विचार आजके नहीं हैं; अनेक वर्षोंके अनुभवके फलस्वरूप मैं इन विचारोंपर पहुँचा हूँ।

अं० : इस दिशामें हमने विचार ही नहीं किया। इसलिए हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि हम इसपर विचार करेंगे।

गां० : यह ठीक है। एक बात कहना भूल गया। शिक्षाकी इस पद्धतिसे हमारी आत्माका हनन हो गया है, यह तो मैंने कहा ही नहीं। आप लोग धर्म-निरपेक्ष शिक्षाकी ही अर्चना करते आये हैं, इसलिए हिन्दुओंको धार्मिक शिक्षा तो कुछ मिल ही नहीं पाई। इंग्लैंडमें इसका दुष्परिणाम बिलकुल ऐसा नहीं हुआ क्योंकि वहाँ धर्मगुरु धार्मिक शिक्षा देनेका थोड़ा बहुत प्रबन्ध कर लेते हैं।

भा० : सच बात तो यह है कि लूटके धनसे आप अपने बालकोंको शिक्षा नहीं देना चाहते; ठीक है कि नहीं?

गां० : हाँ, इसके अलावा हमें शिक्षा लुटेरोंके झंडेके नीचे भी नहीं चाहिए। मेरा कहना है कि जिस सरकारके प्रति हमारे मनमें तनिक भी निष्ठा नहीं रही है, प्रेमभाव नहीं रहा है, उस सरकारके अधीन चलनेवाले स्कूलोंसे हमारा कोई लेना-देना नहीं होना चाहिए। मैं आपसे एक सीधी-सी बात कहता हूँ। एक समय ऐसा था जब मैं स्वयं 'गॉड सेव द किंग' (सम्राट् चिरजीवी हों) अतिशय उमंगसे गाता था; इतना ही नहीं, अपने अंग्रेजी न जाननेवाले लड़कोंको भी मैंने यह गीत कंठस्थ करवाया था। मैं आफ्रिकासे राजकोट आया था। मैंने ट्रेनिंग कालेजके विद्यार्थियोंको भी यह गीत सिखाया था। क्योंकि मैं समझता था कि सच्चे राजभक्त व्यक्तिको यह गीत आना चाहिए। लेकिन आज क्या स्थिति है? आज मैं इस गीतको अपने हृदयपर हाथ रखकर नहीं गा सकता और किसीको गानेके लिए भी नहीं कह सकता। एक व्यक्तिके रूपमें सम्राट् जॉर्ज बहुत जियें, ऐसा मैं कहूँगा, लेकिन जिस साम्राज्यने मनुष्य और भगवान्के आगे अपनेको गिरा दिया है वह एक क्षणके लिए भी टिके, ऐसी कामना मैं नहीं कर सकता।

भा० : आप कह चुके हैं कि शिक्षण पद्धति कैसी है, उससे आपको कोई सरोकार नहीं है।

गां० : हाँ, यह सच है।

भा० : हमारे विश्वविद्यालयोंका संचालन तो भारतीय करते हैं, उनसे सम्बन्धित नीति निर्धारित करनेवाले भी भारतीय होते हैं।

गां० : हाँ, यह बात सच है। विश्वविद्यालयवाले अगर मेरी बात मानें तो मैं उनसे कहूँगा कि आप अपने 'चार्टर' फाड़ डालें। ऐसा करनेके बाद विश्वविद्यालय हमारे ही हो जायेंगे। अगर इसके उत्तरमें वे यह कहें कि इससे सरकारकी ओरसे मिलनेवाला अनुदान बन्द हो जायेगा तो मैं उन्हें यह गारंटी देनेको तैयार हूँ कि पैसा मैं लाकर दूँगा। आपसे मैं सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि आप अपने विश्वविद्यालयोंको राष्ट्रीय बनायें। पंडितजीसे[1] भी मैंने यही कहा कि वाइसरायके चार्टरको वापस कर दें और महाराजाओंको[2] भी, अगर वे चाहें तो, उनका पैसा वापस कर दें। पैसा कम पड़ेगा तो भिक्षा माँगेंगे। यदि आपमें महाराजाओंसे दान माँगनेकी असाधारण योग्यता है तो सामान्य वर्गसे भीख माँगनेकी थोड़ी बहुत शक्ति मुझमें भी है।

भा० : लेकिन 'चार्टर' ने क्या बिगाड़ा है?

गां० : अरे 'चार्टर'के आनेसे वह सब-कुछ आ गया जो सरकार लाना चाहती है। 'चार्टर' है सिर्फ इसलिए हिन्दू विश्वविद्यालय ड्यूक ऑफ कनॉटको[3] सम्मानित करेगा। यह मैं कैसे सहन कर सकता हूँ? नहीं, मैं तो ठीक ही कहता हूँ कि श्रीमती बेसेंटने एक बार कहा था कि "तुम तो राज्यविप्लव — बलवा करवाना चाहते हो।" यह बात सच है। मेरा कहना सिर्फ इतना ही है कि यह विप्लव केवल 'क्रान्तिमूलक' नहीं होना चाहिए बल्कि विकासमूलक होना चाहिए। विप्लव तो होना ही चाहिए, ऐसा मुझे लगता है। उसके बिना मुक्ति नहीं है। देखो न, सरकारको तो उचित-अनुचितका विचार ही नहीं रह गया है। उसने अभी हाल ही में जो निर्लज्ज सार्वजनिक घोषणा की है, उसे देखो। उसमें बहुत आडम्बरपूर्ण वाक्यजालकी रचना करके कहा है कि फिलहाल तो हमने समाचारपत्रोंको छूट दे दी है। हम किसीकी जुबानपर ताला लगानेवाले नहीं हैं। तथापि वह क्या कर रही है? उसने पंजाबके शान्त कार्यकर्त्ता आगा सफदरके मुँहमें किस कारण ताला लगाया है? उनमें धर्मान्धता नामकी चीज नहीं; उनके जैसा शान्त कार्यकर्त्ता मैंने पंजाबमें नहीं देखा। इसके अलावा अभी उस दिन 'सर्वेन्ट' पत्रके बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्तीने मुझसे कहा कि उन्हें सरकारकी ओरसे एक 'चेतावनी' मिली है। सो किसलिए? 'यंग इंडिया'में प्रकाशित श्री राजगोपालाचारीके[4] "मतदाताओंको सूचना" नामक लेखको अपने पत्रमें प्रकाशित करनेकी वजहसे। यह स्थिति असह्य है।

१. पं० मदनमोहन मालवीय।

२. भारतीय राजा जिन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके लिए उदारतासे धन दिया था।

३. जो कि बहुत जल्द भारत आनेवाले थे।

४. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, (जन्म १८७९–); वकील, पत्रकार, लेखक और राजनीतिज्ञ; भारतके गवर्नर जनरल (१९४८-५०)।

भा० : अब अदालतोंके प्रश्नको लें। अदालतोंको बन्द करवाकर, वकीलोंसे उनकी वकालत छुड़ाकर आप क्या करना चाहते हैं?

गां० : सरकारकी प्रतिष्ठाको तोड़ना चाहता हूँ। ये अदालतें और स्कूल सरकारकी प्रतिष्ठाकी नींवको मजबूत बनाये रखनेके साधन हैं। सरकार इन्हीं वस्तुओंके द्वारा लोगोंको मोहजालमें फँसा रही है।

भा० : तब झगड़ोंका निबटारा किस तरह होगा?

गां० : मैं अपना अनुभव कहूँ? अपनी वकालतके दौरान ७५ प्रतिशत मामलोंका फैसला मैंने घर बैठे-बैठे ही किया। घर बैठे-बैठे झगड़े निपटानेमें मैं "सिद्धहस्त" माना जाता था। अपनी निष्पक्षताके लिए मैं वहाँ प्रसिद्ध हो गया था। फलतः मेरी ओरसे विरोधी पक्षको नोटिस मिलनेपर तुरन्त ही वह मेरे पास आता और फैसला करवानेकी माँग करता। इसलिए अनेक लोगोंको दो वकील रखने पड़ते। अगर उन्हें मेरी बात रास नहीं आती थी तो वे लड़नेके लिए दूसरे वकीलके पास जाते थे। मैं तो सिर्फ साफ मामलोंको ही हाथमें लेता था।

अं० : क्या आपका यह खयाल है कि काफी लोग इसके अनुसार चलेंगे?

गां० : ५० प्रतिशत मुकदमा लड़नेवाले लोग अदालतोंको छोड़ देंगे, परिणामतः ५० प्रतिशत मुकदमे कम हो जायेंगे। मैंने सुना है कि ५० प्रतिशत मुकदमें तो दलाल करवाते हैं। श्री दास कहा करते थे कि कलकत्तेमें ऐसी बात नहीं है। लेकिन दूसरोंने मुझे बताया कि श्री दासको इस बारेमें ठीक पता नहीं है।

कलकत्तेके एक वकील जो खिड़कीसे इस संलापको सुन रहे थे, बोल उठे : 'मुफस्सिल' तो "दलालों" से ही भरी हुई हैं। वहाँके ५० प्रतिशत मुकदमें इन दलालोंके ही बनाये हुए होते हैं, इस बातकी गवाही मैं देता हूँ।

भा० : होगा; लेकिन मैं शहरकी बात करता हूँ। 'बंगाल व्यापार संघ' ने एक 'पंच फैसला न्यायाधिकरण' की स्थापना की है तथापि व्यापारियोंका दलालोंके पास जाना कम नहीं हुआ है।

गां० : हो सकता है, क्योंकि वकीलोंकी संख्या कम नहीं हुई है।

भा० : एकाध व्यक्तिके वकालत छोड़नेका असर क्या होगा?

गां० : तुलनात्मक दृष्टिसे देखें तो कुछ-न-कुछ असर अवश्य होगा। पंडित मोतीलाल नेहरूके वकालत छोड़नेसे सरकारकी प्रतिष्ठाकी गिरती हुई इमारतको एक धक्का लगा है, ऐसा मैं अवश्य कहूँगा। सर हारकोर्ट बटलरसे पूछकर देखें।

अं० : आप मुकदमा चलानेवालोंको भी अदालतोंमें जानेसे रोक रहे हैं, यही बात है न?

गां० : जी हाँ।

अं० : लेकिन ऐसा कैसे सम्भव होगा? आपमें तो उनको विश्वास था। आप तो उनका ही काम लेते थे जो निर्दोष होते थे। आप उनके बारेमें तो कुछ नहीं जानते जिनका हृदय स्वच्छ नहीं है और जिनके हाथ रंगे हुए हैं। ऐसे लोगोंका आप क्या करेंगे? ऐसे मामले तो कदाचित् ही होते होंगे जिनमें दोनों पक्ष स्वच्छ और पवित्र हों।

गां० : ऐसे सब लोगोंको मैं निधड़क सरकारके हवाले कर दूँगा।

भा० : [दोनोंकी ओरसे] हम आपके साथ लड़ने नहीं आये हैं? आपको समझनेके लिए ही आये हैं, यह तो आप जानते ही हैं। अब एक ही सवाल हम और पूछेंगे। आपके अनुयायियोंका असहयोग वैर और तिरस्कारपर प्रतिष्ठित है, यह बात सच है कि नहीं?

गां० : हाँ, मद्रासके एक अंग्रेज भाईने मुझे इस सम्बन्धमें लिखा है।

अं० : मैं आपके सिद्धान्तको समझता हूँ, लेकिन आपके अनुयायियोंकी जुबानसे तो नित नया विष झरता है।

गां० : तथापि मेरा कहना है कि उदात्त कार्य रीझ कर करो या खीझकर, उसका फल प्राप्त हुए बिना नहीं रहता। सत्य भयसे बोला जाये अथवा जान-बूझकर तो भी क्या उस सत्यका परिणाम आये बिना रह सकता है?

भा० : आपका सिद्धान्त 'पापका तिरस्कार लेकिन पापीका तिरस्कार नहीं' है, जब कि आपके अनुयायियोंका सिद्धान्त ठीक इसके विपरीत है — 'पापीका तिरस्कार करो', पापका तिरस्कार करनेकी कोई जरूरत नहीं।

गां० : क्या यह कहकर आप अन्याय नहीं करते? कुछ लोग 'पाप और पापी दोनोंका तिरस्कार करते हैं।' पापका तिरस्कार करते हैं इसीलिए तो वे इतना त्याग कर रहे हैं। बड़े-बड़े बलिदान देनेके लिए तैयार हैं। क्या सिर्फ पापीका तिरस्कार करनेसे इतने बलिदान किये जा सकते हैं? कभी नहीं।

अं० : आपका मूल सिद्धान्त तो पापियोंका साथ न करना है; फिर आप अपने अपवित्र साथियोंके साथ किस प्रकार काम कर सकते हैं? आप-जैसी उच्च भूमिपर प्रतिष्ठित होकर कार्य करनेवाला व्यक्ति मलिन साधनोंसे क्यों कर काम लेता है?

गां० : जरा आप सरकारकी अपवित्रता और मेरे साथियोंकी अपूर्णताकी तुलना कीजिए। जरा अधिक विचार करके देखें तो आप समझ जायेंगे कि कोई भी सुधारक — मैं एक सुधारक हूँ — उसे जो साधन प्राप्त होते हैं उनसे काम लेनेके लिए बाध्य है; किन्तु मलिन साधनोंसे नहीं, बल्कि अपूर्ण साधनोंसे कहिए।

भा० : हमने आज आपको बहुत तकलीफ दी, माफ कीजिएगा। मैं अबतक 'असहयोग' के विरुद्ध संघर्ष करता आया हूँ, लेकिन आज ही समझ सका हूँ कि असहयोगके जिस स्वरूपके विरुद्ध में लड़ रहा था वह, आपसे जिस असहयोगके बारेमें बातचीत हुई है, उससे भिन्न है। हम दोनों आपके आभारी हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९–१२–१९२०

७८. पत्र : के० के० भट्टाचार्यको

[१६ दिसम्बर, १९२०][1]

प्रिय महोदय,

मुझे आपका गत २९ सितम्बरका पत्र अभी-अभी मिला। आप मुझे हड़तालका कुछ और विवरण तथा 'टाइम्स ऑफ आसाम'की कतरन भेज सकें तो अच्छा हो।

आपके विश्वस्त

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७२८५) की फोटो-नकल से।

७९. पत्र : सरलादेवी चौधरानीको[2]

१७ दिसम्बर, १९२०

तुम्हें कदाचित् मुझमें कहीं-कुछ घृणा दिखाई देती है और उसके कारण तुम मुझसे थोड़ा विरक्त हो जाती हो; किन्तु इसी कारण मैं तुमको और अधिक प्यार करता हूँ। यदि असहयोगमें रत होना मेरे लिए कोई राजनीतिक मामला होता तो उसपर तुम्हारा दुःख करना ठीक होता। पर सचाई तो यह है कि वह मेरा धर्म है। "मैं घृणाकी समस्त शक्तियोंको इकट्ठा करके उनको एक सही दिशामें मोड़ रहा हूँ।" जैसे तिरस्कार उद्धत सत्ताका लक्षण होता है, वैसे ही घृणा दुर्बलताकी निशानी है। यदि मैं अपने देशके लोगोंको इतना-भर समझा सकूँ कि हमें अंग्रेजोंसे डरनेकी जरूरत नहीं है तो फिर हम अंग्रेजोंसे घृणा करना बन्द कर देंगे। वीर पुरुष या स्त्री कभी घृणा नहीं करते। घृणा मूलतः कायरोंका दुर्गुण है। असहयोगका अर्थ है आत्म-शुद्धि। जब तुम चीनीको शुद्ध करती हो तब उसका मैल सतहपर आ जाता है। इसी प्रकार जब हम आत्मशुद्धि करते हैं तब हमारी दुर्बलता सतहपर आ जाती है।

१. गांधीजीको श्री भट्टाचार्य द्वारा लिखे गये २९ सितम्बर, १९२० (एस० एन० ७२८५)के पत्रपर उत्तर देनेकी यही तारीख दी हुई है।

२. यह पत्र सरलादेवीके उस पत्रके उत्तरमें लिखा गया था जिसमें उन्होंने गांधीजीके असहयोगमें रत होनेपर दुःख प्रकट किया था और अपना यह मत व्यक्त किया था कि असहयोगका आधार घृणा है। उन्होंने लिखा था: यदि आप घृणाको त्याग देते तो मैं आपको और भी अधिक प्यार करती।

किन्तु तुम्हारे पत्रके सम्बन्धमें जो बात अच्छी लगती है वह यह कि तुमने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है। मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम, मेरी शुद्धता और मेरी नेकदिलीमें तुम्हारा जो विश्वास है उसपर आधारित है। यदि मुझमें ये गुण न हों तो मैं निकम्मा हूँ। तब मैं अपने आपको तुम्हारे उन तमाम त्यागोंके अयोग्य मानूँगा जो तुमने अपने पहले पत्रमें लिखे थे।

तुम्हारे प्रति मेरा जो प्रेम है मैं उसका विश्लेषण करता रहा हूँ। मैंने आध्यात्मिक पत्नीका अर्थ निश्चित कर लिया है। यह स्त्री और पुरुषकी वह सहधर्मिता है जिसमें शारीरिक पक्षका सर्वथा अभाव होता है। इसलिए यह सहधर्मिता भाई-बहन और पिता-पुत्रीमें भी सम्भव है। यह केवल दो ऐसे व्यक्तियोंके बीच सम्भव है जो मनसा, वाचा और कर्मणा ब्रह्मचारी हों। मैं तुम्हारी ओर इसलिए आकर्षित हुआ कि मैंने अपने और तुम्हारे बीच आदर्शों और आकांक्षाओंकी समानता और पूर्ण आत्म-समर्पणकी भावना देखी। तुम पत्नी हो, क्योंकि तुमने हमारे समान आदर्शका अपनी अपेक्षा मुझमें अधिक विकास देखा। इस आध्यात्मिक सहधर्मिताको कायम रखनेके लिए हमारा पूर्ण एकीकरण आस्था-मूलक नहीं, ज्ञान-मूलक होना चाहिए। यह दो समान आत्माओंका मिलन है। यह सहधर्मिता उस स्थितिमें भी सम्भव है जब कोई पक्ष किसी दूसरेसे शारीरिक रूपमें विवाहित हो; किन्तु वह भी तभी जब वे दोनों ब्रह्म-चर्यका पालन करते हों। आध्यात्मिक सहधर्मिता पति और पत्नीके बीच भी सम्भव है। यह शारीरिक सम्बन्धोंसे परे होती है और मृत्युके उपरान्त भी कायम रहती है। मैंने जो-कुछ कहा है, उससे सार यह निकलता है कि आध्यात्मिक सहधर्मी इस जीवनमें या भावी जीवनमें भी शरीरतः कभी विवाहित नहीं हो सकते; क्योंकि वह सहधर्मिता तो तभी सम्भव है जब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी तरहकी वासना न हो। क्या तुम मेरी वैसी आध्यात्मिक पत्नी हो? क्या हममें वैसी उत्कृष्ट शुद्धता है, वैसा पूर्ण एकीकरण, वैसा पूर्ण आत्मिक संविलय, वैसी आदर्शोंकी समानता, वैसी आत्मविस्मृति, वैसी उद्देश्य-निष्ठा और वैसा पारस्परिक विश्वास है? जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो स्पष्ट कह सकता हूँ कि मेरे लिए तो यह केवल एक आकांक्षा-मात्र है। मैं तुम्हारे साथ ऐसे साहचर्यके अयोग्य हूँ। मुझमें जितनी वैचारिक शुचिता है, उससे कहीं अधिक ऊँची शुचिताकी आवश्यकता है। मैं तुम्हारे साथ उस तरहका पवित्र सम्बन्ध रखनेके अयोग्य इसलिए भी हूँ कि मुझे तुमसे बहुत अधिक शारीरिक लगाव है। शारीरिक लगावसे यहाँ मेरा मतलब यह है कि मेरे मनपर तुम्हारी दुर्ब-लताओंका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि मैं तुम्हारा आध्यात्मिक पति हूँ और उससे एकात्मभावकी अनुभूति होनी हो तो मुझे तुम्हारा गुरु नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत, तुम्हारे और मेरे बीच तो प्रायः अनेक तीव्र मतभेद भी हो जाते हैं। जहाँतक मैं समझ सका हूँ, हमारा सम्बन्ध भाई-बहिनका है। मुझे तुम्हारा अनुशास्ता बनना होगा और इस प्रकार तुमको झकझोरना होगा। मुझे तुमसे भाईके समान नम्र अनुरोध करना होगा और ऐसे ठीक शब्द चुननेकी सावधानी रखनी होगी, जैसा कि मैं अपनी सबसे बड़ी बहिनको समझानेके लिए करता हूँ। मुझे पिता, पति, मित्र, और

गुरु सभीका काम स्वयं नहीं करना चाहिए। मैंने जिस बड़े पत्रकी बात कही थी, वह यही है। मेरे हृदयके उत्कटतम प्रेम समेत,

तुम्हारा,
एल० जी०

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

८०. भाषण : नागपुरकी सार्वजनिक सभामें

१८ दिसम्बर, १९२०

हम दोनों भाई[१] पिछले कुछ महीनोंसे हिन्दुस्तानमें घूम रहे हैं। हमारे अध्यक्ष महोदयने मौलाना साहबका परिचय नहीं दिया है क्योंकि वे छिंदवाड़ामें[२] बहुत समय तक आपके मेहमान रहे हैं। वे छिंदवाड़ामें किस तरह सरकारके मेहमान बने और आज हम क्या करते हैं, यह आप जानते हैं। जिन वकीलोंने वकालत छोड़ दी है उन्हें मैं बधाई देता हूँ और कहता हूँ कि इतने-भरसे काम नहीं चलेगा। आपने नागपुरमें[३] कांग्रेस बुलाई है, उसे आप किस तरह शोभान्वित करेंगे? मध्यप्रान्तमें अच्छा काम हो रहा है तथा यहाँ होनेवाली कांग्रेसमें अच्छा काम होगा, ऐसा मैंने सुना है। मद्यपान छुड़वानेका आन्दोलन यहाँ अच्छी तरह चल रहा है, यह एक सुन्दर बात है। मेरा कहना है कि इसे छुड़वानेमें भी हमारी विजय निहित है। हम असहयोग करना चाहते हैं; इसलिए हमारा शराब पीना, नशेमें मत्त हो जाना और अभद्र व्यवहार करना शान्तिका मार्ग अपनाना कदापि नहीं है। अमन नहीं रखेंगे तो हम इस जन्ममें साम्राज्यको नहीं मिटा सकेंगे। इसे अगर हम दुरुस्त करना चाहते हैं अथवा मिटाना चाहते हैं तो हमारे पास शान्तिमय असहयोगके अलावा और कोई हथियार नहीं है। मैं कह रहा हूँ कि यह साम्राज्य शैतानियतसे भरा हुआ है। शैतानको मजबूर करना हो, दूर करना हो तो यह शैतानियतसे नहीं हो सकता। हमें खुदाकी ही मदद लेनी चाहिए। हमारी लड़ाई अधर्मके विरुद्ध धर्मकी लड़ाई है। पंजाब और खिलाफतके अन्यायके बावजूद साम्राज्य क्षमा नहीं माँगना चाहता। वह हमसे कहता है कि जो कहना या करना हो खिलाफत और पंजाबको भूलकर करो। जबतक हिन्दू और मुसलमानोंके बीच सच्ची एकता स्थापित नहीं हो जाती तबतक मैं दोनोंसे

१. गांधीजी और मौलाना शौकत अली।

२. जहाँ १९१५ के भारत रक्षा अधिनियमके अन्तर्गत मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली निगरानीमें रखे गये थे।

३. गांधीजी १८ दिसम्बरको नागपुर पहुँचे थे; कांग्रेस अधिवेशन २६ दिसम्बरको होनेवाला था।

कहता हूँ कि इस साम्राज्यको मिटाना असम्भव है। यह इसी शर्तपर सम्भव है। शान्तिमय असहयोग परम धर्म है। धर्म और अधर्मके बीच सहयोग कभी नहीं हो सकता। शैतानकी मददको छोड़ना एक बहादुरीका काम है। इसीलिए जमनालाल[1] आज इस सभाके अध्यक्ष हैं। जलते हुए घरको छोड़ते समय हम इस बातका विचार नहीं करते कि घर छोड़ा जाये या नहीं। कौंसिलमें जाकर न खिलाफतके प्रश्नको दुरुस्त किया जा सकता है और न पंजाबके प्रश्नको। स्वराज्य प्राप्तिके द्वारा ही पंजाबको न्याय दिलवाया जा सकता है।

सात करोड़ मुसलमान और तेंतीस करोड़ हिन्दू, एकताके सिवा किसी और तरह साथ नहीं रह सकते।

अभीतक हमने प्रस्ताव पास किये हैं, अब काम करनेका समय आया है। कांग्रेसका अधिवेशन होनेसे पहले अगर आप कुछ काम करके दिखाना चाहते हैं तो नागपुरके स्कूलों और कालेजोंको खाली कर देना चाहिए।

खापर्डे और मेरे बीच भारी मतभेद हैं, लेकिन उन्हें कोई परेशान करे सो मैं पसन्द नहीं करता। मेरी माँग तो यह है कि मैं जैसी स्वतन्त्रता चाहता हूँ वैसी ही स्वतन्त्रता उन्हें भी मिलनी चाहिए। हम अपने कार्योंका अच्छा नतीजा निकाल कर दिखायेंगे तो खापर्डे और अन्य सभी निश्चत रूपसे हमारे पक्षमें आ जायेंगे।

हममें ऐसी व्यवस्था करनेकी ताकत होनी चाहिए कि जिससे एक वर्षके भीतर ही हम सारा प्रबन्ध कर सकें। हमें विश्वास रखना चाहिए कि पंजाबके लिए हमें न्याय अवश्य मिल सकेगा। हम डरपोक हैं इसीलिए मुट्ठी-भर अंग्रेज यहाँ राज्य चलाते हैं। ऐसा विश्वासघात भविष्यमें न हो सके, इसके लिए स्वराज्य लेना है। जबतक हम ठोस कार्यके लिए तैयार नहीं होते तबतक कुछ नहीं कर सकते। मेरी समझमें नहीं आता, स्वदेशीमें क्या कुर्बानी है। हमारे लिए यह एक ऐसा अवसर है जो मिस्र और कोरियाके लोगोंको कभी नहीं मिला। हिन्दुस्तानमें तीस करोड़ लोग हैं। मिस्र में मुट्ठी-भर लोग हैं। समस्त देशोंके लिए हम दोनों भाई पदार्थपाठ हैं। जिस तरहसे एक माँके जाये दो भाई रहते हैं, हम वैसे रहते हैं। हम दोनों साफदिल हैं।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, खण्ड ५

१. जमनालाल बजाज (१८८९–१९४२); प्रसिद्ध गांधीवादी उद्योगपति जिन्होंने गांधीजीकी रचनात्मक योजनाओंमें भरपूर सहयोग दिया; गांधीजीके निकटतम साथियों और सलाहकारोंमें से एक।

८१. अन्त्यजोंके सम्बन्धमें और विचार

मुझे दुःख है कि अन्त्यजोंको लेकर जो वाद-विवाद चल रहा है उसे 'नवजीवन'में भी स्थान देना पड़ा है। तथापि इसका असहकारकी सफलतासे सम्बन्ध है इसलिए 'नवजीवन'के पाठक इसे स्थान देनेके लिए मुझे क्षमा करेंगे। 'नवजीवन'का कर्त्तव्य है कि उसके कार्यवाहक जिसे शुद्ध सत्य मानते हों, उसे पाठकोंके सम्मुख पेश करें।

असहकारका मार्ग जितना सरल है उतना ही विकट भी है। जिसकी समझमें आ जाये उसके लिए वह सहल है; दूसरोंके लिए विकट है। समझ न सकनेके कारण समय-समयपर उलझन होती रही है।

मुश्किलोंपर पर्दा डाले रहनेसे वे दूर नहीं हो जातीं। आ पड़नेवाली मुश्किलोंको तत्काल दूर करनेसे असहकार आसान होगा। आपसमें सहकार किये बिना हमें सरकारके विरुद्ध असहकारकी शक्ति प्राप्त नहीं होगी। छः करोड़ अन्त्यजोंको 'ढेढ़' मानकर तिरस्कार करके हम सफल नहीं होनेवाले। जिस साम्राज्यने हिन्दू-मुसलमानोंको लड़ाया है, वह साम्राज्य अन्त्यज और दूसरे हिन्दुओंके बीच लड़ाई करानेमें चूकनेवाला नहीं है।

हमें सावधान रहना चाहिए कि कोई निर्णय करते समय हम झूठी-सच्ची बातोंसे भ्रमित न हो जायें। अन्त्यजोंको विद्यापीठ[1] द्वारा मान्यता प्राप्त स्कूलोंमें स्थान दिये जानेका प्रस्ताव कोई नया नहीं है; यह तो विद्यापीठके संविधानमें निहित अर्थपर जोर-भर देता है। यह अर्थ श्री एन्ड्रचूजकी प्रेरणासे नहीं किया गया है; श्री एन्ड्रचूजने जो प्रश्न पूछा था, यह प्रस्ताव उसका उत्तर है। अन्य किसी व्यक्तिने भी अगर वह प्रश्न किया होता तो उसे भी यही उत्तर मिलता।

यह प्रस्ताव मेरा अथवा किसी एक व्यक्तिका नहीं है; विद्यापीठके नियामक मण्डलका है।[2] यह बात मैं पहले ही कह चुका हूँ।

इस प्रस्तावको आपद्धर्मके रूपमें नहीं, आवश्यक धर्मके रूपमें स्वीकार किया गया है।

इसको स्वीकार करनेके पीछे पश्चिमकी हवा नहीं है। ऐसा करके हिन्दू-धर्मको ही अंगीकार किया गया है। मैं स्वयं किसी दुनियावी स्वराज्यके यज्ञमें धर्मकी आहुति नहीं देना चाहता। स्वराज्यको मैं धर्मका आवश्यक अंग समझता हूँ, इसीलिए उसके लिए जी-जानसे जुटा हुआ हूँ।

धर्मयज्ञमें तो मैं देशकी आहुति देनेको भी तैयार हो जाऊँ, ऐसी मेरी भावना है। मेरा स्वदेशाभिमान धर्माभिमानसे मर्यादित है। इसलिए अगर देशहित, धर्महितका

१. गुजरात विद्यापीठ; जिसकी हाल ही में अहमदाबादमें स्थापना की गई थी और यह सरकारी चार्टरके बिना हुई थी; देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ४८४-८९।

२. देखिए "वैष्णवोंसे", ५-१२-१९२०।

विरोधी हो तो मैं देशहितको छोड़नेके लिए तैयार रहता हूँ। अन्त्यजको अस्पृश्य मानना मैं अधर्म समझता हूँ और अधर्मका आचरण करते हुए देशहित करनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मेरी दृढ़ मान्यता है कि देशमें जब सच्चे अर्थोमें धर्म-जागृति होगी तभी स्वराज्य मिलेगा। ऐसी जागृतिका समय आ गया जान पड़ता है। इसी कारण मैंने एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्तिको सम्भव माना है। मेरे यह सब लिखनेसे आप समझ गये होंगे कि मैं अस्पृश्यताको अधर्म मानता हूँ और इसी कारण अस्पृश्यताका दोष दूर करनेके कार्यमें रत हूँ।

कोई भी जीव जन्मसे ही अस्पृश्य है और उसे अस्पृश्य दशामें ही मरना चाहिए, मेरी मान्यता है कि यह हिन्दू-धर्म नहीं है, ऐसे अधर्मको धर्मका नाम देना और भी अधिक अधर्म करने जैसा है। व्यवहारमें आज अस्पृश्यता नहीं रह गई है। मैं इसी अस्पृश्यताका गुजरातके हिन्दुओंसे ज्ञानपूर्वक त्याग करनेका अनुरोध कर रहा हूँ। यदि वह धर्म होता और व्यवहारमें उसका लोप हो गया होता तो मैं विद्यापीठमें उसके पुनरुद्धारकी आकांक्षा करता। लेकिन यह अधर्म है ऐसा मानकर ही मैंने विद्यापीठके प्रस्तावका स्वागत किया है और प्रत्येक गुजरातीसे उसका स्वागत करनेकी विनती करता हूँ।

अनेक वर्षोंसे पड़ी हुई कुटेवको दूर करना मुश्किल है, यह मैं समझता हूँ। जो अस्पृश्यताको कुटेव मानकर एकाएक दूर नहीं कर सकते उनके प्रति मुझे हमदर्दी है। लेकिन जो धर्म मानकर उसका पोषण करते हैं उनपर तो मुझे दया ही आती है।

हिन्दू-धर्मके नामपर अथवा शास्त्रके नामपर जो कुछ कहा जाता है वह सब सच है, ऐसा मानना भयंकर है। इसीसे गुजराती हिन्दुओंसे मेरी प्रार्थना है कि वे शंकराचार्यकी अध्यक्षतामें हुए प्रस्तावसे भ्रमित न हों।

लेकिन निर्णयोंपर अमल करनेमें हमें शान्तिका पालन करनेकी बड़ी आवश्यकता है। और असहकार करते हुए तो और भी विशेष रूपसे। शास्त्री वसन्तरामजीके एक लेखसे मुझे पता चला कि उनपर आक्रमण किये जानेकी धमकी दी गई है। हम धार्मिक अथवा अन्य प्रकारके प्रश्नोंका निर्णय मारपीटके द्वारा नहीं कर सकते। विनम्रतापूर्वक दलीलोंके द्वारा ही हम सत्यासत्यका विचार कर सकेंगे। सब तरहके धर्म-संकटका निपटारा लोग अपने-अपने विचारोंको अमलमें लाकर ही कर सकेंगे; वैसा करनेसे सत्य स्वयमेव तिरकर ऊपर आ जायेगा। आकाशपर धूल उड़ानेसे वह आँखोंमें आ पड़ती है। यह तर्क देनेकी भी क्या जरूरत है? जिसे धूल उड़ानेमें रस आता है वह धूल उड़ाकर ही सारासारका अनुभव प्राप्त कर लेगा। अस्पृश्यताके पापसे चिपके रहकर स्वराज्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करना आकाशमें धूल उड़ाना है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १९–१२–१९२०

८२. टिप्पणियाँ

बहनोंका उदाहरण

भारतकी नारियोंसे हम बहुत सीख सकते हैं। काश कि अंग्रेज लोग तथा हममें से वे लोग जो असहयोगकी जरूरत या सामर्थ्यमें विश्वास नहीं करते, भारतकी नारियाँ असहयोगके समर्थनमें जो उत्साह प्रदर्शित कर रही हैं, उसे देखते। वे हर जगह सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें इकट्ठा हुई हैं। वे परदेसे बाहर निकली हैं और उन्होंने बाहर आकर मौलाना शौकत अलीको और मुझे दुआएँ दी हैं। उन्होंने सहज ही में आन्दोलनका शुद्ध स्वरूप पहचान लिया है। उनके दिलोंपर असर हुआ है। उन्होंने अपनी हीरे-मोतीकी चूड़ियाँ, कण्ठहार और अँगूठियाँ दे दी हैं। अमीर, गरीब सभी तरहकी औरतोंने आकर हमें अपनी दुआओंके साथ मूल्यवान उपहार भी दिये हैं; मूल्यावान इसलिए कि ये उपहार सर्वथा स्वेच्छापूर्वक दिये गये। उन्होंने यह भी समझ लिया है कि भारतकी गरीब नारीकी पवित्रता चरखेके संगीतमें निहित है। वे असहयोगके झंडेके नीचे घृणाके कारण इकट्ठा नहीं होतीं।

दूसरा पक्ष

परन्तु पुरुषवर्ग उतावला है और भारी भूल करता है; जैसी कि उन्होंने, पता चला है, दिल्ली और बंगालमें की है। एक ऐसे आदमीकी लाशको, जिससे तथाकथित असहयोगी लोग, (यदि वे असहयोगी थे तो) नफरत करते थे, दफनाने नहीं दिया गया। यह बहुत पापपूर्ण कृत्य था।[1] पूर्वी बंगालमें एक जगह एक उम्मीदवारपर, जो कौंसिलकी सदस्यताके लिए खड़ा हुआ था, पाखाना फेंका गया और एक मतदाताके कान इसलिए काट लिये गये कि उसने मत देनेका दुस्साहस किया था। ये बहुत बुरे काम हैं।[2] ये तो केवल हमारे अपने ही उद्देश्यको विफल करनेके तरीके हैं। असहयोग केवल अंग्रेजों और सरकारी अधिकारियोंकी हदतक ही अहिंसात्मक नहीं है। हमारे देशभाइयोंके सन्दर्भमें भी उसे उतना ही अहिंसात्मक होना चाहिए। कोई सहयोगी भी कर्म, वचन और विचारकी स्वतन्त्रताका उतना ही हकदार है, जितना कि बड़ेसे-बड़ा असहयोगी। असहयोग सभी तरहकी गुलामीके विरुद्ध है। अतएव जो असहयोगी हिंसाका सहारा लेता है, वह अपने ही उद्देश्यमें बाधा डालता है। यह अपने उद्देश्यमें विश्वासकी कमीका निश्चित चिह्न है।

और भी दमन

पता नहीं, दिल्लीकी वारदातके परिणामस्वरूप या अन्य किसी कारणसे, दिल्लीमें राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम फिर लागू हो गया है और कुछ स्वयंसेवक-दस्ते भंग

१. देखिए पृष्ठ ९९, पाद-टिप्पणी १ ।

२. ये दोनों घटनाएँ विधान परिषदोंके चुनावोंके दौरान नवम्बर १९२० में हुई थीं ।

कर दिये गये हैं।[1] मैं अधिक जानकारीके अभावमें, इस दमनकारी तरीकेके बारेमें अधिक नहीं कह सकता। परन्तु इतना जानता हूँ कि यदि आन्दोलनको शीघ्र ही सफलताकी स्थितितक पहुँचाना है तो उक्त दस्ते भंग करनेका आदेश, सभाओं, इश्तिहारों आदिका निषेध करनेवाली आज्ञा, सबका ईमानदारीसे पालन करना चाहिए। यदि जरूरत हो तो हमें बिना आम सभाओं और इश्तिहारोंके आन्दोलन चला सकनेमें समर्थ होना चाहिए। स्वयंसेवक दस्ते भंग करनेके आदेशका विशेष अर्थ नहीं है। संसारमें कोई भी सरकार किसी व्यक्तिको, यदि वह सेवा करना चाहे तो, रोक नहीं सकती। सेवा करनेके लिए उसे किसी बिल्लेकी जरूरत नहीं। परन्तु स्वयंसेवकोंको उस तरहका आचरण नहीं करना चाहिए जैसे आचरणकी बात पुलिसके बारेमें कही जाती है। उन्हें, जो व्यक्ति उनके विचारोंसे सहमत नहीं होते, उनको भय नहीं दिखाना चाहिए। वे राष्ट्रके सेवक हैं, मालिक नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२-१२-१९२०

८३. गोपनीयताका दोष

गोपनीयताकी वृत्ति भारतका एक अभिशाप है। यह अकसर देखनेको मिलती है। किसी अनजान परिणामके भयसे हम फुसफुसाकर बात करते हैं। इस गोपन वृत्तिने मुझे कहीं उतना अधिक परेशान कहीं नहीं किया जितना बंगालमें। वहाँ तो हर कोई आपसे "एकान्त" में ही बात करना चाहेगा। मुझे यह देखकर सबसे ज्यादा दु:ख हुआ कि भोलेभाले नवयुवक अपनी बात शुरू करनेसे पहले चारों ओर निगाह डालते हैं कि कहीं कोई तीसरा व्यक्ति तो उनकी बातचीत नहीं सुन रहा है। हर अजनबी आदमीपर खुफिया होनेका सन्देह किया जाता है। मुझे भी अजनबी लोगोंसे सावधान रहनेकी चेतावनी दी गई है। जब मुझे यह बताया गया कि जिस अज्ञात विद्यार्थीने विद्यार्थियोंकी सभाकी अध्यक्षता की थी, वह खुफिया विभागका था तब मेरा दु:ख सीमापर पहुँच गया। मैं कमसे-कम ऐसे दो प्रमुख नेताओंके नाम जानता हूँ, जो उच्च भारतीय समाजमें सरकारके गुप्तचर समझे जाते हैं।

मैं ईश्वरका आभार मानता हूँ कि विगत अनेक वर्षोंसे मैं गोपनीयताको पाप मानने लगा हूँ, विशेष रूपसे राजनीतिमें। हम जो-कुछ भी कहते और करते हैं, यदि उसमें ईश्वरकी उपस्थितिको साक्षीके रूपमें मानते होते तो हमारे पास संसारमें किसी-से गोपनीय रखनेको कुछ भी न होता; क्योंकि तब हम अपने सिरजनहारके सामने अपने मनमें भी दूषित विचार न रखते, उन्हें मुँहसे कहनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता। गन्दगी ही गोपनकी अपेक्षा रखती है। मनुष्यकी प्रवृत्ति गन्दगीको छिपानेकी होती है। हम गन्दी चीजें देखना या छूना नहीं चाहते, उन्हें हम दृष्टिसे परे कर

१. देखिए "तार: आसफ अलीको", ११-१२-१९२० या उसके बाद।

देना चाहते हैं। ऐसा ही हमारे बोलनेमें भी होना चाहिए। मैं कहूँगा कि हम जिन विचारोंको दुनियासे छिपाना चाहें, उन्हें सोचनेसे भी बचें।

छिपानेकी इस इच्छाने हममें कायरता पैदा की है और हमें बोलते समय कपट और दुराव-छिपावका सहारा लेनेको बाध्य कर दिया है। इस घातक और अपमानकारी खुफिया विभागसे मुक्ति पानेका सबसे अच्छा और शीघ्रताका उपाय हमारे लिए यही है कि हम एक बार हर बातपर खुले तौरसे विचार करनेका अन्तिम प्रयत्न करें, संसारके किसी भी व्यक्तिसे गुप्त बातचीत न करें और खुफिया पुलिससे डरना समाप्त कर दें, जिसे हमारे समस्त विचारों और योजनाओंको जाननेका अधिकार है। हमें उसकी उपस्थितिकी अपेक्षा करनी चाहिए और हर व्यक्तिसे अपने मित्र-जैसा बर्ताव करना चाहिए। मैं जानता हूँ कि अपनी बड़ीसे-बड़ी योजना खुले तौरपर तैयार करनेसे मुझे अत्यन्त सन्तोषजनक परिणाम मिले हैं। मेरे करीब कहीं कोई जासूस न हो, इस चिन्तासे कभी मैंने एक मिनट भी अपनी शान्ति नष्ट नहीं की। लोगोंको शायद मालूम नहीं होगा कि मैं जबसे भारतमें रह रहा हूँ, तबसे खुफिया विभागके लोग बराबर मेरे पीछे लगे रहे हैं। इससे मैं कभी चिंतित तो नहीं ही हुआ, उलटे खुफिया विभागके इन सज्जनोंसे मैंने मित्रके-जैसे काम लिये हैं; और इनमें से कई लोगोंने इस बातके लिए मुझसे क्षमा भी माँगी है कि उन्हें मजबूरन मुझपर जासूसी करनी पड़ी। आम तौरपर तो ऐसा ही होता रहा है कि मैंने उनकी उपस्थितिमें जो कुछ कहा है, वह पहले ही संसारके समक्ष प्रकाशित हो चुका है। परिणाम यह कि अब उनकी उपस्थितिपर मेरा ध्यान भी नहीं जाता और मैं नहीं समझता कि सरकारने अपने खुफिया विभागके जरिये मेरी कार्रवाइयोंपर निगाह रखकर कोई खास जानकारी हासिल की है। मेरी राय है कि ये एजेंट महज खानापूरीके लिए ही मेरे साथ लगे रहते हैं। वे मुझे कभी परेशान तो नहीं ही करते। मैं बंगालके, और बंगाल ही क्यों, सारे भारतके प्रत्येक नवयुवकके लाभार्थ अपने ये अनुभव प्रस्तुत करता हूँ। कोई यह न माने कि मुझपर चिढ़ पैदा करनेवाली निगरानी न रखनेका कारण मेरी सार्वजनिक स्थिति है; इसका कारण तो मेरे किसी काममें दुराव-छुपावका न होना है। यह बात बड़ी आसानीसे समझी जा सकती है कि जिस क्षण आप जासूसकी उपस्थितिसे डरना बन्द कर देते हैं और इसलिए उसके साथ, उसे जासूस मानकर बरतना छोड़ देते हैं, उसी क्षणसे उसकी उपस्थिति आपको नागवार नहीं लगती। जल्दी ही सरकार खुफिया विभाग रखनेमें शर्मिंदगी महसूस करने लगेगी, नहीं तो खुफिया पुलिस ही ऐसे कामसे आजिज आ जायेगी, जो उपयोगी नहीं बचता।

असहयोग तत्त्वतः एक शुद्धिकी प्रक्रिया है। वह लक्षणोंके बजाय कारणोंसे सम्बन्ध रखता है। खुफिया विभाग गोपनीयताका एक लक्षण है, और गोपनीयता उसका कारण है। गोपनीयताका निवारण बिना किसी अन्य प्रयत्नके खुफिया विभागको पूरी तरह समाप्त कर देगा। समाचारपत्र अधिनियम[1] (प्रेस ऐक्ट) कायरताके रोगका एक लक्षण है। यदि हम अपने इरादोंको निर्भीकतासे घोषित करें तो समाचारपत्र अधि-

१. १९१० का।

नियम अमलके अभावमें स्वयं ही समाप्त हो जायेगा। शुरुआत करनेवालोंको अपने तथाकथित दुस्साहसके लिए कष्ट भोगना पड़ेगा। मैंने सुना है कि कलकत्ताके "सर्वेन्ट" को इस धृष्टताके लिए चेतावनी दी गई है कि उसने 'यंग इंडिया' का[1] वह लेख पुनः प्रकाशित किया था, जिसमें श्री राजगोपालाचारी द्वारा मतदाताओंको दिये गये सराहनीय निर्देशोंका सार था। मैंने यह भी गौर किया है कि कलकत्तेमें मेरे भाषणके सबसे अधिक प्रभावशाली अंश, स्पष्ट ही, सेंसरके भयसे समाचारपत्रोंने छोड़ दिये हैं। यदि सम्पादक अपने विचार या जिन विचारोंको वह सही मानता है, परिणामके भयसे डरे बिना स्वतन्त्रतापूर्वक प्रकाशित नहीं कर सकता, तो मैं पत्रका पूरी तरह बन्द हो जाना बेहतर मानूँगा।

यद्यपि असहयोगको, समाचारपत्रोंकी जहाँ जो भी मदद मिले उसका प्रसन्नतासे उपयोग करना है, फिर भी अपनी मूल प्रकृतिके अनुसार उसे समाचार-पत्रोंपर निर्भर नहीं करना है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि हम जो भी विचार प्रकाशित करते हैं उससे सरकारको बुरा तो लगनेवाला है ही। जनतामें ज्यों-ज्यों इसका प्रचार बढ़ेगा, सरकार अपने अस्तित्वके लिए इसे बन्द करनेकी कोशिश करेगी। हम इस सरकार अथवा किसी भी सरकारसे आत्महत्या कर लेनेकी आशा नहीं कर सकते। उसे या तो अपने-आपमें सुधार करना होगा या फिर दमनका सहारा लेना पड़ेगा।

सामान्य तौरपर कोई भी निरंकुश शासन-तन्त्र, जैसी कि हमारी सरकार है, अपने-आपको सुधारनेसे पहले दमनका सहारा अवश्य लेगा। जो सरकारको नष्ट कर सकते हैं, या उसे पश्चात्ताप करनेके लिए विवश कर सकते हैं, ऐसे शक्तिशाली विचारोंको रोक देना तो सरकारी दमन शक्तिका सबसे मामूली प्रयोग होगा। इसलिए जबतक सभी समाचारपत्र निडर नहीं बन जाते, परिणामोंकी परवाह न करके केवल अपनी स्वतंत्रताकी रक्षाके लिए विचारोंसे असहमत होते हुए भी उनको प्रकाशित नहीं करते, तबतक हमें उनके प्रसारके लिए अन्य तरीके ढूंढ़ने ही होंगे। ऐसा कोई भी सम्पादक, जिसके पास अपने मौलिक विचार हैं या जिसके पास भारतकी बुराइयोंको दूर करनेके लिए कुछ उपयोगी सुझाव हैं, उन्हें प्रभावशाली ढंगसे लिख सकता है। सैकड़ों लोग उसकी नकल करके सैकड़ों प्रतियाँ तैयार कर सकते हैं, और इससे भी ज्यादा संख्यामें लोग हजारों श्रोताओंको ये विचार पढ़कर सुना सकते हैं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि असहयोगका समर्थन करनेवाले सम्पादकगण किसी भी हालतमें समाचार-पत्र अधिनियमके डरसे अपने विचार व्यक्त करनेसे नहीं चूकेंगे। उन्हें समझना चाहिए कि अपने विचार छिपाना पाप है, और ऐसा कोई समाचारपत्र निकालना जो उनके विचारोंको दमित करता हो, उनकी शक्तिका अपव्यय है। किसी सम्पादकके लिए अपने श्रेष्ठतम विचारोंको दबाना, अपने पेशेका, अपने धर्मका अनादर करना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २२–१२–१९२०

१. १० नवम्बर, १९२० का।

८४. भाषण : नागपुरकी बुनकर परिषद्में

२५ दिसम्बर, १९२०

अत्यन्त कार्यव्यस्त होनेपर भी मैं इस सभाके अध्यक्ष पदको स्वीकार करनेसे इनकार नहीं कर सका। मेरा धन्धा बुनकरका न होनेपर भी अब मैं अपने आपको किसान-बुनकर समझता हूँ। अदालतमें भी मैंने अपना यही धन्धा बताया है। मुझे लगता है कि जबतक बुनकरोंकी उन्नति नहीं होती तबतक हिन्दुस्तानकी उन्नति असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसीसे कांग्रेसके पिछले विशेष अधिवेशनमें इस विषयकी कुछ चर्चा की गई थी। हिन्दुस्तान जिस समय गुलामीकी जंजीरोंमें बँधा उस समय हिन्दुस्तानमें जैसा और जितना कपड़ा बनता था वैसा और उतना कपड़ा दुनियाके किसी अन्य देशमें नहीं बनता था। और इतनेपर भी तब यहाँ कपड़ेका एक भी कारखाना न था। उस समय खादीसे लेकर ढाकाकी मलमलतक तरह-तरहका कपड़ा यहाँ बनता था। उससे हिन्दुस्तानकी आवश्यकता पूरी होती थी और अतिरिक्त कपड़ा विदेशोंको भेज दिया जाता था। बाहरके देशोंके लोग भारतमें पर्यटनके लिए खिंचे चले आते थे। कताई मशीनके आविष्कर्ता हार्ग्रीव्जकी अपेक्षा पवित्र चरखेकी खोज करनेवाले व्यक्तिने अधिक प्रतिभाका परिचय दिया। हिन्दुस्तानमें तो उससे बढ़कर आविष्कारकी प्रतिभाका परिचय किसी अन्य व्यक्तिने नहीं दिया। जिस समय हिन्दुस्तान खुशहाल था उस समय मानों घर-घरमें सूतका कारखाना था। विधाताने यह सोचा था कि अगर हिन्दुस्तानको स्वतन्त्र रहना है तो हिन्दुस्तानकी स्त्रियोंको यह समझ लेना चाहिए कि प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा सूत तैयार करना उनका पवित्र धन्धा है। इसी कारण उसने सूत कातनेवाली किसी अलग कौमकी रचना नहीं की; प्रत्युत सब स्त्रियोंके लिए सूत कातना अनिवार्य कर दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनीने जिस दिन भारतमें कदम रखा उसी दिनसे भारतकी हालत गिरने लगी। तभीसे बुनकरों और कत्तिनोंने अपना-अपना धन्धा छोड़ना आरम्भ कर दिया। चम्पारनमें (अभी-अभीतक) जिस तरह लोगोंसे नीलकी पैदावार ले ली जाती थी, उसी तरह उन दिनों लोगोंसे सूत माँगा जाता था और वह भी इतना अधिक कि लोगोंने तंग आकर अपनी उंगलियाँ ही काट डालीं। इसके बाद यहाँ लंकाशायरका कपड़ा आने लगा। यदि आप धर्मका पुनरुद्धार करना चाहते हैं तो आप प्रायश्चितस्वरूप कातने और बुननेके प्राचीन धन्धेको पुनरुज्जीवित करें। हम धर्माचरण करना भूल गये, इसीसे हम स्वदेशीके नामपर दुराचरण कर रहे हैं। इसीलिए मैं कहता हूँ कि धर्मरक्षाके लिए आप नया सूत तैयार करें, नया कपड़ा बनायें। अगर आप ऐसा नहीं करेंगे तो हमें बाहरसे कपड़ा अवश्य मँगाना पड़ेगा। श्री फजलभाई[1] और श्री वाडियाका[2] कहना है कि अभी हम पचास वर्षतक अपनी जरूरतका कपड़ा तैयार नहीं कर सकते। गोखलेजी इसे सौ

१. व २. बम्बईके मिल-मालिक।

सालतक असम्भव मानते थे। यह इन लोगोंकी भूल है। उन्हें यह नही मालूम था कि हिन्दुस्तानके प्रत्येक घरमें चरखा और करघा रखा जा सकता है।

जबतक सूत कातने और बुननेकी प्रवृत्ति प्रचलित नहीं होती तबतक स्वदेशी-भंडारकी स्थापना करना देशहित नहीं, बल्कि पाप है। मुझे जो रूमाल दिया गया है उसमें विदेशी सूत काममें लिया गया है।

मुझे यहाँ बुनकर बहुत कम संख्यामें दिखाई दे रहे हैं। बुनकरोंके तीन वर्गोंमें से तीसरे वर्गके अस्पृश्य लोग यहाँ दिखाई नहीं दे रहे। मुझे एक सज्जनने लिखा था कि उन लोगोंको प्रवेश नहीं करने दिया जायेगा। मैंने कहा कि अगर आप उन्हें प्रवेश नहीं करने देंगे तो मैं चला जाऊँगा। जब आप दूसरा अधिवेशन करें तब इन बुनकरोंको अवश्य बुलाएँ।

आप अपने धन्धेको जिस ढंगसे चलाते हैं वह ठीक नहीं है। अगर आप इसे देशके लिए ही चलाना चाहते हैं तो आप नया सूत तैयार करके अथवा तैयार करवाके उससे कपड़ा बुनें। उससे कपड़ा बुननेमें दिक्कत तो होगी, लेकिन उतनी दिक्कत उठानी चाहिए। हिन्दुस्तानके बालक और बालिकाएँ अगर रोज एक घंटा सूत कातें तो जितनी कपास हम उत्पन्न करते हैं वह सब सूतके रूपमें आ जाये। आज हिन्दुस्तानके लिए महीन कपड़ा बनानेके लिए आग्रह करना मैं अपना धर्म नहीं समझता। मैं चाहता हूँ कि आज चारों ओर जो शोकाग्नि प्रज्ज्वलित है, अगर मेरा वश चले तो, मैं उसमें भारतके स्त्री-पुरुषोंको होम दूँ। बुनकरोंसे मेरा कहना है कि वे जो वस्त्र पहनते हैं वे उनके अपने बनाये हुए नहीं हैं, यह अत्यन्त खेदकी बात है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–१–१९२१

८५. भाषण: नागपुरके अन्त्यज सम्मेलनमें

२५ दिसम्बर, १९२०

इस सभाका अध्यक्ष-पद ग्रहण करके मुझे बड़ी खुशी हुई है।[1]

अन्त्यजोंसे इतर वर्गोंके लोगोंको इस सभामें उपस्थित देखकर मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है।

मैं अनेक वर्षोंसे अन्त्यज-वर्गकी स्थितिका अध्ययन कर रहा हूँ। इस विषयपर मैं अपने यहाँके बड़े-बड़े सुधारकोंसे भिन्न विचार रखता हूँ। सुधारक जिस ढंगसे कार्य करते हैं, मैं उस ढंगसे काम नहीं करता। मैं जबसे हिन्दुस्तान आया तबसे मैं सुधारकोंकी कार्य-पद्धतिपर गौर करता आ रहा हूँ। लेकिन मैं जो कार्य कर रहा हूँ

१. यह भाषण गांधीजीने हिन्दीमें दिया था जो उपलब्ध नहीं है। भाषण आरम्भ करनेसे पहले गांधीजीने श्रोताओंसे यह पूछा था कि क्या वे हिन्दी समझते हैं। श्रोताओंने इसका स्वीकारात्मक जवाब दिया था।

उसमें कोई कमी है अथवा दूसरों द्वारा किया गया कार्य मेरे कार्यकी अपेक्षा अधिक अच्छा है, ऐसा मुझे महसूस नहीं हुआ। उसमें कमी हो सकती है लेकिन मेरा अपना विश्वास तो यही है कि उसमें कोई कमी नहीं है।

मैं [अस्पृश्यता दूर करनेके लिए] जो करता हूँ वह कुछ इस तरह है। [मैं मानता हूँ कि] अस्पृश्यता पाप है, अतएव इस पापको दूर करना चाहिए। अस्पृश्यताको हटाना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, लेकिन उसे अन्त्यजोंके बीचमें से नहीं, इतर वर्गके हिन्दुओंमें से हटाया जाना चाहिए। अस्पृश्यता हिन्दू-धर्मके शरीरपर गुल्मके समान अतिवृद्धि है। मद्रासमें एक स्थानपर भाषण देते हुए मैंने कहा था कि जैसे हमारे साम्राज्यमें बहुत दुष्टता दिखाई देती है और हालाँकि मैं इसको दूर करना चाहता हूँ किन्तु कर नहीं पाता; वैसे ही हिन्दू-धर्ममें प्रविष्ट इस अस्पृश्यताको मैं दुष्टतापूर्ण मानता हूँ [और हटाना चाहता हूँ]।

स्वर्गीय गोखलेने दक्षिण आफ्रिकामें वहाँके सब तथ्योंको जाननेके बाद कहा था कि "हमारी हालत इतनी बुरी क्यों न हो?" जिस तरह हम अन्त्यजोंको अस्पृश्य समझते हैं उसी तरह यूरोपकी जनता भी हमें, हिन्दू-मुसलमान सबको अस्पृश्य समझती है। उनके साथ रहनेकी हमें अनुमति नहीं है, हमें उनके जितने अधिकार भी प्राप्त नहीं हैं। हिन्दू-समाजने अन्त्यजोंका जितना बुरा हाल किया, उतना दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंने भारतीयोंका किया है। भारतसे बाहर जितने ब्रिटिश उपनिवेश हैं उनमें भी हमारे साथ गोरोंका व्यवहार वैसा ही है, जैसा हिन्दुओंका अन्त्यजोंके प्रति है। इसी-लिए श्री गोखलेने कहा था कि "हमें अन्त्यजोंके प्रति दुष्टतापूर्ण व्यवहारका फल मिल रहा है; समाजने भारी अपराध किया है, भारी दुष्टताका परिचय दिया है इसीके फलस्वरूप दक्षिण आफ्रिकामें हमारी दुर्गति हुई है।" मैंने तुरन्त ही उनकी इस बातको स्वीकार कर लिया। यह बात बिलकुल सच थी। उसके बाद मुझे जो अनुभव हुए हैं, उनसे इस बातकी पुष्टि होती है।

मैं स्वयं हिन्दू हूँ, मैं दावा करता हूँ कि मैं एक कट्टर हिन्दू हूँ। उसमें भी खासकर मैं यह दावा करता हूँ कि मैं सनातनी हिन्दू हूँ। आज गुजरातमें हिन्दू-समाजके साथ मेरा जबर्दस्त झगड़ा चल रहा है। हिन्दू-समाज, विशेषतः वैष्णव समाज मेरे हिन्दू होनेके दावेको माननेसे इन्कार करता है; तथापि मैं अपने दावेपर दृढ़ हूँ और कहता हूँ कि मैं सनातनी हिन्दू हूँ। अस्पृश्यता हिन्दू-समाजका बहुत बड़ा दोष है। अन्य और बहुत सारे दोष हैं। लेकिन उन्हें आप यदि आज अथवा हजार साल बाद दूर करें तो भी वह क्षम्य होगा। लेकिन मैं अन्त्यजोंकी अस्पृश्यताकी बातको सहन नहीं कर सकता, उसे बरदाश्त करना सम्भव नहीं है। हिन्दू समाजका यह कर्त्तव्य है कि वह अस्पृश्यताको दूर करनेके लिए भारी तपश्चर्या करे। मैंने पहले भी कहा है और आज एक बार फिर हिन्दू-समाजसे कहता हूँ कि जबतक हिन्दू समाज अस्पृ-श्यताके पापसे मुक्त नहीं होता तबतक स्वराज्यकी स्थापना होना असम्भव है। यदि आपको मेरे ऊपर विश्वास हो तो मैं आपसे कहूँगा कि अन्त्यजके अस्पृश्य बने रहनेमें मुझे जितनी वेदना होती है उससे कहीं अधिक वेदना हिन्दू-धर्ममें अस्पृश्यता बने रहनेके

कारण होती है। हिन्दू-समाजमें अस्पृश्यताके तत्त्वकी मौजूदगीसे मुझे शर्मका अनुभव होता है और हिन्दू होनेका दावा करनेमें भी संकोच होता है। मुझसे पहले जो वक्ता[1] मराठीमें भाषण दे गये हैं उन्होंने मुझपर आक्षेप किया है कि हिन्दुस्तानने मुझे जिस पदपर प्रतिष्ठित किया है उसे मैंने स्वीकार नहीं किया है; मैं उसके योग्य तभी बनूँगा जब हिन्दू-धर्मसे अस्पृश्यता दूर हो जायेगी। (तालियोंकी गड़गड़ाहट) मैं जिस समय अपने हृदयगत उद्गारोंको व्यक्त कर रहा हूँ उस समय आप मुझे तालियोंकी गड़गड़ाहटसे न रोकें। मैं आपसे पूछता हूँ — अगर आप बता सकें तो बताइए कि क्या ऐसा भी कोई तरीका है जिससे कोई एक ही व्यक्ति किसी बहुत पुराने रिवाजको मिटा सकता है। मुझे यदि कोई यह बता सके कि ऐसा करें तो आज ही अस्पृश्यता दूर की जा सकती है तो मैं आज ही वैसा करूँ। लेकिन हिन्दू-समाजसे दोष स्वीकार करवाना और उस दोषको सुधारना कठिन काम है।

मैं जो कहता हूँ वही करता हूँ। मैं जो कर रहा हूँ उसमें मुझे अपनी धर्मपत्नीको साथ लेनेमें बहुत कष्ट उठाना पड़ा है, मुझे जो तपश्चर्या करनी पड़ी है उसके आधारपर मैं आपको — अन्त्यजोंको और हिन्दू-समाजको — बताना चाहता हूँ कि इस कार्यमें बहुत मुश्किलें हैं। लेकिन ऐसा कहनेसे मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि हमें यह कार्य बन्द कर देना चाहिए। हमें अपने कार्य करनेकी पद्धतिपर विचार कर लेना चाहिए। यही कारण है कि मुझे आपके प्रस्ताव पसन्द नहीं आते।

आप यह प्रस्ताव पास करना चाहते हैं कि देश-भरमें जितने देवालय हैं उनमें अन्त्यजोंको जानेका हक मिलना चाहिए। यह कैसे हो सकता है? हिन्दू-धर्ममें जबतक वर्णाश्रम धर्मको प्रधान पद प्राप्त है तबतक प्रत्येक देवालयमें प्रत्येक हिन्दूका प्रवेश पा सकना आज नहीं हो सकता। आज इसे हिन्दू-समाजमें स्थान देना असम्भव है। वह इसके लिए तैयार नहीं है। मेरा अनुभव है कि देवालयोंमें अन्त्यजोंके अलावा दूसरी अनेक जातियोंके लोग भी नहीं जा सकते। मद्रासमें कुछेक देवालयोंमें तो मैं भी नहीं जा सकता। मुझे इसके बारेमें दुःख नहीं होता। मैं यह भी कहनेके लिए तैयार नहीं कि यह हिन्दू-समाजके संकुचित दृष्टिकोणका परिचायक है अथवा यह कोई अन्याय है, दोष है। ऐसा हो भी सकता है; लेकिन इस बातकी विचाधारा क्या है, सो भी सोचा जाना चाहिए। यदि यह कार्य समाजमें अनुशासन बनाये रखनके उद्देश्यसे किया गया है तो सबको देवालय जानेका अधिकार प्राप्त होना चाहिए, यह बात मैं कदापि न कहूँगा। हिन्दुस्तानमें पृथक-पृथक सम्प्रदाय हैं, उन्हें मैं नष्ट नहीं करना चाहता। हिन्दू-समाजका पतन सम्प्रदायों अथवा वर्णाश्रम धर्मसे नहीं

१. एक प्रस्तावमें गांधीजीसे कांग्रेसके अध्यक्ष पदको स्वीकार करनेका अनुरोध किया गया था। प्रस्ताव पेश करनेवाले और उसका समर्थन करनेवाले वक्ताओंने कहा था, जैसा कि महादेव देसाईने अपनी रिपोर्टमें लिखा है: "...गांधीजीने अभीतक हम लोगों (अस्पृश्यों) के लिए कुछ भी नहीं किया है। उन्हें हमारे प्रयत्नोंसे सहानुभूति है। हमें अपनी स्थितिको सुधारनेके लिए गांधीजीकी सेवाओंकी कोई जरूरत नहीं है। उसे तो हम राज्य द्वारा अनुकूल कानून पास करवा करके भी सुधार सकते हैं लेकिन अस्पृश्यताको कानूनोंकी मददसे दूर नहीं किया जा सकता।"

हुआ है। जो पतन हुआ है वह तो वर्णाश्रम धर्ममें निहित सौन्दर्य और अनुशासनके त्यागसे हुआ है। आपको यह समझ लेना चाहिए कि वर्णाश्रम धर्म एक चीज है और अस्पृश्यता दूसरी चीज है। वर्णाश्रम धर्म दोषमय है, पापमय है — ऐसा कहना पाश्चात्य पद्धतिका अनुकरण करना है। मैं इसका अनुकरण नहीं करता। इसे अंगीकार करनेके कारण ही हिन्दुस्तानका पतन हुआ है। मैं सेंतमेंत अन्त्यजोंका आशीर्वाद और कृपा प्राप्त नहीं करना चाहता। इसलिए मैं साफ-साफ कह देना चाहता हूँ कि मैं इस कार्यमें बहुत हिचकिचाहटके साथ शरीक हुआ हूँ क्योंकि मैं अस्पृश्यताके दोषको मिटानेके लिए अन्त्यजों और सुधारकोंके साथ हूँ। दूसरी बातोंके सम्बन्धमें आप और वे लोग जो करना चाहते हैं, उन सबमें मैं शामिल नहीं हूँ। मैं किसी भी हिन्दूसे नहीं कह सकता कि प्रत्येक हिन्दू परस्पर एक-दूसरेके साथ खाये, पीये अथवा शादी विवाह करे। क्योंकि इसकी आवश्यकतामें मेरा विश्वास नहीं है। मेरा कहना है कि जो व्यक्ति इन तीनों बातोंका त्याग करता है वह संयमी हो सकता है और स्वच्छन्द [प्रवृत्तिका] भी हो सकता है। मेरी धारणा है कि यह त्याग सयमवृत्तिके द्वारा ही सम्भव है।

मैं स्वयं अन्त्यजोंके साथ खाता हूँ, पीता हूँ। एक अन्त्यज लड़कीको[1] भी मैंने गोद लिया है। यह लड़की मुझे प्राणोंसे भी प्यारी है। तथापि मैं हिन्दू समाजसे यह नहीं कहता कि वह अपनी त्यागवृत्ति छोड़ दे। मैं मानता हूँ कि मेरे जैसोंके लिए भी हिन्दू-समाजमें स्थान है। संन्यासी न होनेपर भी मैं जो कर रहा हूँ वैसा करनेवाले व्यक्तियोंके लिए हिन्दू समाजमें स्थान है। मुसलमान मुझे कुछ खानेकी वस्तु दे तो मैं उसे खा लूँगा। उसी तरह अन्त्यजोंके पाससे भी मैं खाद्यवस्तु ले सकता हूँ। लेकिन मैं हिन्दुओंको ऐसा करनेके लिए बाध्य नहीं करना चाहता, क्योंकि ऐसा करनेसे अनुशासन भंग होता है। इसमें हिन्दू संसारकी रक्षा समाहित है। वर्णाश्रमको अथवा खानेपीनेके व्यवहारको मिटाना और अस्पृश्यताको मिटाना — एक ही चीज नहीं है। एक संयम है जब कि दूसरी दुष्टता है। मैं विद्यार्थी हूँ और [इस विषयपर] अध्ययन कर रहा हूँ। इसलिए जिस दिन मुझे लगेगा कि यह मेरी भ्रान्ति थी, उसी दिन मैं अपनी भूल स्वीकार कर लूँगा। लेकिन अभी तो मैं यह कहनेको तैयार हूँ कि जो अस्पृश्यताका बचाव कर रहे हैं उनमें तो मैं पाखण्ड और दुष्टता ही देखता हूँ। वे जिस बातके पक्षमें तर्क दे रहे हैं, वह दुष्टता है।

मैंने अपनी सीमा, मेरा काम और उसकी पद्धति आपको बता दी है। मैं नहीं मानता कि सुधारक अन्त्यजोंके बीच काम करके, उन्हें शिक्षा देकर अस्पृश्यताके दोषको मिटा सकते हैं। मैं ऐसे अनेक लोगोंको जानता हूँ कि जो प्लेटफॉर्मपर खूब बोलते हैं, लेकिन जब स्पर्श करनेका प्रसंग आता है तब दूर हट जाते हैं। मेरी पद्धति इससे भिन्न है और मैं कहना चाहता हूँ कि इस तरीकेसे सुधार नहीं होते। लेकिन दूसरी

१. दूधाभाईकी सुपुत्री लक्ष्मी। यह लोग मई १९१५ में आश्रमकी स्थापना होनेके बाद ही आश्रममें आकर रहने लगे थे। अक्तूबर १९२० को उसे गांधीजीको सौंप दिया गया था। देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ३५१, ३६१-६२।

और जो लोग यह कहते हैं कि जब हिन्दू-समाजको समझ आयेगी तब हम यह कार्य करेंगे, मुझे उन लोगोंसे चिढ़ होती है। मैं अन्त्यजोंसे हमेशा कहता आया हूँ कि ऐसे पापके प्रतिरोधमें मैं स्वयं तो अवश्य ही असहकार करूँगा। यहाँ उपस्थित अन्त्यजेतर लोगोंको भी मैं बता देना चाहता हूँ कि यदि कभी ऐसा अवसर आये कि मुझे अकेले ही समाजके इस पापके विरुद्ध — समस्त हिन्दू समाजके विरुद्ध असहकार करना पड़ा तो मैं करूँगा। साम्राज्यकी दुष्टताको समाप्त करना मुझे इतना कठिन नहीं लगता। उसकी दुष्टता दुनियावी है। अस्पृश्यताकी दुष्टताने धार्मिक रूप ले लिया है। हिन्दू तो अन्त्यजोंको छूना पाप मानते हैं। उन्हें समझाना कठिन काम है। हममें इतनी जड़ता और आलस्य आ गया है, हम इतने ज्यादा दुःखोंमें डूब हुए हैं कि हम सोच भी नहीं सकते; हमारे धर्माधिकारी भी अज्ञानमें इतने अधिक डूबे हुए हैं कि उन्हें समझाया भी नहीं जा सकता। अस्पृश्यता दोषके निवारणका अर्थ ही यह है कि इसे हिन्दू-समाजसे स्वीकृति दिलवाई जाये। अन्त्यज करोड़ों हिन्दुओंका नाश करके अस्पृश्यताके दोषको मिटा सकें, यह असम्भव है। 'वेद' में अथवा 'मनुस्मृति' में अगर अस्पृश्यताका आदेश हो तो 'वेद' को बदलना चाहिए। लेकिन धर्मग्रन्थोंकी रचना कौन कर सकता है? मैं संसारी हूँ, धर्माधिकारी होनेका दावा नहीं करता, मैं स्वयं अनेक दोषोंसे भरा हुआ हूँ, हिन्दू-समाजके लिए मैं धर्मनीति कैसे निर्धारित कर सकता हूँ? मैं तो अगर कुछ कर सकता हूँ तो स्वयं उनकी दयाका पात्र बनकर ही।

इस काममें भारी मुश्किलें हैं लेकिन अगर हमारे सुधारक इतना समझ लें कि हिन्दू-समाजको मिटाकर यह दोष दूर करना असम्भव है तो उन्हें विश्वास हो जायेगा कि वे अपनी सहिष्णुतासे ही इस दोषको दूर कर लेंगे। अन्त्यज भाइयोंसे मैं यह कहता हूँ कि आप मेरे जैसे ही हिन्दू हैं। हिन्दुत्वके, मेरे जितने ही अधिकार आपको हैं। आप हिन्दू-धर्मको ठीक-ठीक समझेंगे तो अस्त्र आपके हाथमें ही है। ठीक उसी तरह जिस तरह साम्राज्यको मिटानेके अस्त्र हमारे हाथमें हैं। जिस तरह भीख माँगनेसे स्वराज्य नहीं मिल सकता, उसी तरह अस्पृश्यताको दूर करनेका उपाय भी अन्त्यजोंके ही हाथमें है।

अन्त्यज अगर मुझसे कहें कि हम असहकार सीखेंगे तो मैं अवश्यमेव उन्हें आजसे ही असहकारकी शिक्षा देना चाहूँगा। असहकार आत्म-शुद्धिकी क्रिया है। हिन्दुस्तान अन्य देशोंसे भिन्न राष्ट्र है। इसलिए हमें जो करना है वह अंग्रेजोंको तंग करके नहीं। लेकिन आत्मशुद्धि कैसे करें? हिन्दू समाज कहता है कि अन्त्यज दारू पीते हैं, चाहे जो खाते हैं, शौचके नियमोंका पालन नहीं करते, वे गो-हत्या तक करते हैं। मैं यह बात नहीं मानता। जो हिन्दू होनेका दावा करता है वह गोमांस नहीं खा सकता। अन्त्यज असहकार करना चाहते हों तो उन्हें मद्यपान और मांस-भक्षण छोड़ना होगा। कमसे-कम गौहत्याको तो छोड़ना ही पड़ेगा। मैं चमारोंसे उनका काम छोड़नेकी बात नहीं कहता। अंग्रेज यह काम करते हैं तो भी हम उन्हें सलाम बजाने जाते हैं। आज तो ब्राह्मण भी यह काम करते हैं। पाखाना साफ करनेमें मैं मलिनता नहीं देखता। यह काम मैंने स्वयं बहुत किया है और मुझे यह अच्छा लगता है। मेरी

माँने मुझे सिखाया है कि यह काम पवित्र है। यह काम मैलेसे सम्बन्धित होनेके बावजूद है तो पवित्र ही। इस कामको जो पवित्र समझकर करता है वह स्वर्ग जाता है। इस कामको न छोड़ते हुए भी आप हिन्दू धर्ममें रह सकते हैं। आपको अगर कोई जूठा अथवा रँधा हुआ खाना भी दे तो आप उसे अस्वीकार करें और कच्चे अन्नकी माँग करें। आप सफाईसे रहें। पाखाना साफ करनेके बाद आप अपने वस्त्र बदल डालें। मैला साफ करनेके बावजूद, जैसे मेरी माँ साफ रहती थीं, वैसे ही आप साफ रहें। बदलनेके लिए वस्त्र हमें कहाँसे मिलेंगे, ऐसा आप पूछेंगे; आप हिन्दू-समाजसे यह कह सकते हैं कि हमें पन्द्रह, बीस, तीस अथवा जितने रुपयोंके हम योग्य हैं उतने न मिलें तो हम काम नहीं करेंगे। आप उससे यह कह सकते हैं कि जैसे बढ़ई, लुहार तुम्हारा काम करते हैं वैसे हम भी समाजका आवश्यक काम करते हैं। आप निडर बनें। मैं गुजरातके अन्त्यजोंको पहचानता हूँ, उनके स्वभावसे वाकिफ हूँ। उन्हें मैं यही सिखा रहा हूँ कि आप अस्पृश्यताके दोषको अपने बलसे दूर करें, आप कट्टर हिन्दू बनें जिससे हिन्दू-समाज घृणा न करके आपकी पूजा करे।

मैं यह कार्य आपकी मार्फत अथवा हिन्दू-समाजकी मार्फत ही करवाना चाहता हूँ। मैं आपसे कहता हूँ कि आप जो हक माँग रहे हैं उसके योग्य बनें। मेरा आशय यह नहीं है कि आप योग्य नहीं हैं। मैं जब हिन्दुस्तानसे स्वराज्यके योग्य बननेकी बात कहता हूँ तब मैं हिन्दुस्तानको अयोग्य नहीं मानता; मैं उसे और भी अधिक योग्य बननेके लिए कहता हूँ। उसी तरह अन्त्यजोंसे कहता हूँ कि आपका अधिकार स्वतन्त्र होनेका है, प्रत्येक हिन्दूके साथ समानाधिकार प्राप्त करनेका है; लेकिन मैं तो आपसे तपश्चर्या करके और भी अधिक योग्य होनेको कहता हूँ।

तपश्चर्याके बारेमें मैं अपने जीवनके दो अनुभव आपसे कह देना चाहता हूँ। अहमदाबादमें सत्याग्रहाश्रम खोलनेके बाद मैंने दूधाभाई नामक एक अन्त्यज और उनकी पत्नीको आश्रममें रखा और जब मैंने उन्हें रखा तब हिन्दू समाजने क्या किया? हम जिस कुएँसे पानी भरते थे उस कुएँसे दूधाभाईकी पत्नीको पानी नहीं लेने दिया। मैंने कहा कि दूधाभाईको पानी नहीं भरने दोगे तो मैं भी इस कुएँसे पानी नहीं लूँगा। उस कुएँसे पानी भरनेका मुझे अधिकार था लेकिन मैंने उसे छोड़ दिया। दूधाभाईने क्या किया? दूधाभाई तो स्वच्छ थे। वे तो उन्हें जितनी गालियाँ सुननेको मिलती थीं, सुन लेते थे। इस तपश्चर्यासे तीन दिनोंके भीतर कष्ट दूर हो गया और लोग समझ गये कि उस कुएँसे दूधाभाई भी पानी भर सकते हैं। इन्हीं दूधाभाईकी लड़की लक्ष्मी आज मेरे घरमें लक्ष्मीके समान घूमती फिरती है। आप सब अगर दूधाभाई-सी तपश्चर्या सीख लें तो आपके दुःख आज ही मिट जायें।

अब अन्त्यजेतर हिन्दुओंसे कहता हूँ कि आप भी बहादुर बनें और अपने पापको दूर करें। मैं अपनेको धार्मिक मानता हूँ। आप कह सकते हैं कि यह मेरा भ्रम है। किन्तु मेरी मान्यता है कि जबतक आप इस पापसे मुक्त नहीं हो जाते, अन्त्यजोंसे क्षमा नहीं माँगते तबतक दूसरे अनेक कष्ट आपके माथेपर मँडराते रहेंगे। अस्पृश्यता पाप है ऐसा समझना चाहिए। आप सोच-समझकर अपना यह पाप धो डालें तो आप आज ही स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकते हैं।

अब दूसरा दृष्टान्त पेश करके मैं आपको हिन्दू-धर्मकी सरलताकी झाँकी दिखाना चाहता हूँ। मैं जब दक्षिण आफ्रिकासे भारत आया उस समय नायडू नामका एक पंचम (अन्त्यज) लड़का मेरे साथ था। भाई नटेसन[1] अन्त्यजोंका महान काम करनेवाले एक सज्जन हैं। अहमदाबाद जाते हुए मद्रासमें मैं उनके घर ठहरा था। मेरे अनेक मित्रोंने मुझसे कहा था कि तुम यह क्या कर रहे हो? नटेसनकी माता इतने पुराने विचारोंकी हैं कि अगर उन्हें पता चल गया कि तुम उनके घर एक अन्त्यजको ले आये हो तो वे प्राण ही त्याग देंगी। मैंने कहा कि लड़केका त्याग करनेसे बेहतर यही होगा कि मैं नटेसनके घर न जाऊँ। लेकिन नटेसन तो सरल चित्तके व्यक्ति हैं। उन्होंने अपनी माताके पास जाकर सारी हकीकत कह दी। माताजीने कहा कोई हर्ज नहीं है; उन्हें आने दो। वे समझ गई कि मेरे साथ आनेवाला अन्त्यज मलिन हो ही नहीं सकता। और मैंने भी इस लड़केकी सारी मलिनता धो डाली थी। हम उनके घरमें ठहरे और जिस कुएँसे नटेसनकी माता पानी लेती थीं उसी कुएँसे हमने भी पानी लिया। इस किस्सेसे इतना समझमें आ सकता है कि सभी अन्त्यजेतर नटेसनकी-सी पवित्रता और सरलतासे अपनी माताओं और बहनोंको समझा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि इस प्रश्नका समाधान अन्त्यजेतरोंकी सरलता और अन्त्यजोंकी तपश्चर्यासे ही होगा।

परमेश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि वह अन्त्यज भाइयोंको धैर्य और सन्मति दे जिससे कि वे अपने धर्मका त्याग न करें। हिन्दुओंके लिए मेरी प्रार्थना है कि हे ईश्वर, तू हिन्दू-समाजको इस पापसे, इस दुष्टतासे, मुक्त कर!

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २–१–१९२१

८६. टिप्पणियाँ

'नवजीवन'की भाषा

मैं अपनी इस व्यस्त यात्राके अपने समस्त अनुभवों और विचारोंको जितने विस्तारसे लिखना चाहता हूँ उतने विस्तारसे नहीं लिख पाऊँगा; फलतः फिलहाल संक्षिप्त टिप्पणियोंसे ही सन्तोष मानकर कुछ जरूरी विचारों और अनुभवोंको पाठकोंके सामने प्रस्तुत करनेकी अनुमति चाहता हूँ।

'नवजीवन' गाड़ीवान और मजदूर पढ़ते हैं, यह बात मुझे अच्छी लगती है। उनमें से दो पाठकोंने मुझे लिखा है कि मुझे 'नवजीवन' में 'अस्पृश्यता', 'महाराष्ट्र-यात्रा' आदि कठिन शब्दोंका प्रयोग नहीं करने देना चाहिए। ऐसे पाठकोंको मैं सन्तुष्ट करना चाहता हूँ; लेकिन मैं साथ ही भाषाको बिगाड़ना भी उचित नहीं समझता

१. जी० ए० नटेसन, लेखक, पत्रकार और राष्ट्रवादी राजनीतिज्ञ; सम्पादक, **इंडियन रिव्यू**, मद्रास।

और फिर मजदूरोंको भी साधु-भाषा समझनेके लिए थोड़ी मेहनत कर लेनी चाहिए। जिन शब्दोंका अर्थ समझमें नहीं आता उनका अर्थ उन्हें दूसरोंसे समझ लेना चाहिए।

हमारी गुजराती भाषाका प्रयोग तीन वर्गोंके लोग करते हैं: हिन्दू, मुसलमान और पारसी। तीनोंने ही भाषाको अलग-अलग रूप दिया है। हम परस्पर एक-दूसरेसे इतनी दूर-दूर रहते हैं कि तीनों एक-दूसरेकी भाषासे परिचित नहीं हो पाते। पारसियोंकी लिखी हुई पुस्तकोंको हिन्दू कदाचित् ही पढ़ते हों। यह सच है कि उनमें खबरदार[1] जैसे लेखकोंकी कृतियाँ भी मिलती हैं जिन्हें सब लोग पढ़ते हैं; लेकिन ये अपवाद-रूप हैं। सामान्यतः पारसी लेखक पारसियोंके लिए, मुसलमान लेखक मुसलमानोंके लिए और हिन्दू लेखक हिन्दुओंके लिए लिखता है। जब हममें परस्पर ऐक्यकी भावना पैदा होगी और मुख्यतः अपने स्कूलोंमें अपनी गुजराती भाषाके माध्यमसे शिक्षा लेना शुरू करेंगे तथा गुजराती लोग गुजराती भाषाको उचित मान देंगे तब हम सब एक भाषामें लिखने लगेंगे। इस बीच 'नवजीवन' की भाषा जितनी हो सके उतनी सादा रखनेका प्रयत्न किया जाता है, लेकिन कुछ-एक ऐसे शब्दोंका प्रयोग किये बिना काम नहीं चलता, सम्भव है जिनका अर्थ, मुसलमान पाठक तुरन्त न समझ सकें। उन्हें वैसे शब्दोंको सीख लेनेकी थोड़ी कोशिश करनी चाहिए।

राष्ट्रभाषा

भाषापर विचार करते समय मुझे हिन्दुस्तानीका अपना अनुभव याद आता है। मेरी हिन्दुस्तानीमें व्याकरण-सम्बन्धी दोष बहुत होता है। तथापि लोग मेरी हिन्दुस्तानी प्रेमपूर्वक सुनते हैं। अनेक स्थानोंपर मैंने विद्यार्थियोंसे कहा है कि मैं अंग्रेजीमें बोलनेके लिए तैयार हूँ; तब भी वे लोग मेरा हिन्दुस्तानीमें ही बोलना पसन्द करते हैं। ऐसे प्रसंग विशेष रूपसे तीन जगह — इलाहाबाद, पटना और नागपुरमें आये हैं। मेरे वैकल्पिक प्रस्तावपर भी विद्यार्थियोंने हिन्दुस्तानीमें ही बोलनेकी माँग की। सब लोगोंकी धारणा थी कि ढाकामें अंग्रेजी बोले बिना मेरा निस्तार नहीं होगा; लेकिन वहाँ भी लोगोंने हिन्दुस्तानीमें ही बोलनेकी माँग की और मेरे हिन्दुस्तानी भाषणको ध्यानपूर्वक सुना। मैं देखता हूँ कि मेरे जैसे सार्वजनिक कार्य करनेवाले लोगोंके लिए, जो हिन्दी अच्छी तरह बोल लेते हैं, सारे हिन्दुस्तानमें कार्य करनेका मार्ग सरल हो जाता है। सिर्फ बंगाल और मद्रास प्रदेशमें ही थोड़ी मुश्किल होती है। जैसे-जैसे सामान्य वर्गमें जागृति होती जायेगी वैसे-वैसे सार्वजनिक वक्ताओंका अपने-अपने प्रान्तोंसे बाहर हिन्दुस्तानी बोले बिना काम नहीं चलेगा, यह बात अनुभवसे सिद्ध होती जाती है। गुजरातके उन वक्ताओंके लिए, जो सारे हिन्दुस्तानमें काम करना चाहते हों, हिन्दुस्तानी सीखना नितान्त आवश्यक है।

स्त्रियोंमें जागृति

जो बात भाषापर लागू होती है वही बात स्त्रियोंपर भी लागू होती है। अपनी मातृभाषा और राष्ट्र-भाषाका तिरस्कार करके हमारा शिक्षित वर्ग जनतासे दूर जा पड़ा है। उसी तरह हमने स्त्री-समाजका भी तिरस्कार किया है। उनका राष्ट्रीय-

१. अर्देशर फरामजी 'खबरदार', एक पारसी कवि।

जीवनमें कोई भाग नहीं है, ऐसा हम निश्चित रूपसे मान बैठे हैं। इसीसे उन्होंने आजतक सार्वजनिक जीवनमें कभी कोई भाग नहीं लिया। भाषाके सम्बन्धमें हमने यही माना है कि अंग्रेजी शिक्षा पाये बिना, हाईस्कूलों और कालेजोंमें पढ़े बिना हमें देशसेवा करना आ ही नहीं सकता। सरकारने यह विचार हमारे मस्तिष्कोंमें भर दिया है और अब उसे निकालनेमें हमें दिक्कत महसूस होती है। जबतक बी० ए० पास न कर लें तबतक सरकारी नौकरी नहीं मिलती, जबतक नौकरी नहीं मिलती तबतक सत्ता नहीं मिलती और जबतक सत्ता हाथ नहीं आती तबतक हमें चैन नहीं पड़ता। फलस्वरूप हमने मान लिया है कि अंग्रेजी शिक्षाके बिना हम देशसेवा नहीं कर सकते। इतनी शिक्षा प्राप्त की और हम 'साहब' बन गये। जैसे ये विदेशी 'साहब' आम जनताको अस्पृश्य मानते हैं वैसे ही इन देशी साहबोंने भी उसे अस्पृश्य माना। यही कारण है कि अबतक जनसमाजने राष्ट्रीय जीवनकी प्रगतिमें बहुत कम भाग लिया है।

मैं हजारों बहनोंसे मिला हूँ। उनसे मैंने स्वराज्यके बारेमें बातचीत की है। उनसे मैंने पंजाबके सम्बन्धमें बातचीत की, उनमें स्वदेशीका प्रचार किया, और उन्हें यह समझाया कि स्वराज्य-प्राप्तिके लिए असहयोग ही आज एकमात्र धर्म क्यों है। वे बहनें यह सब समझ गई। ये बहनें कोई अंग्रेजी पढ़ी-लिखी नहीं हैं। सभी धनिक और निर्धन, लेकिन विशेष रूपसे अपढ़ बहनोंने आशीर्वाद दिया और अपने जेवरात भेंट किये। किसीने हीरे-मोती जड़ी चूड़ियाँ दीं, किसीने मोतियोंकी माला दी, किसीने हीरेकी अँगूठी दी और किसीने अपनी सोनेकी जंजीर दी। सोनेकी अँगूठियोंकी तो कोई गिनती ही नहीं। गरीब बहनोंने अपनी चाँदीकी पायलें और अन्य गहने दिये। गुजरात, दक्षिण, संयुक्त प्रान्त, बिहार, बंगाल और मध्यप्रान्तमें मैंने बहनोंसे बात की और बातकी-बातमें लगभग पचास हजार रुपयेके आभूषण और नकद रुपये प्राप्त हुए। ये आभूषण किसीने संकोचवश नहीं दिये; बल्कि सोच-समझकर और यह प्रतिज्ञा करके दिये कि वे स्वराज्य मिलनेतक नये आभूषण नहीं बनवायेंगी। तब मैं यह कैसे न मानूं कि जहाँ स्त्रियोंमें ऐसी जागृति आ गई है वहाँ स्वराज्य एक वर्षमें मिलकर ही रहेगा? और फिर यह तो शुरुआत है। स्त्रियाँ रुपया देनेके लिए तैयार होकर नहीं आई थीं, अनेक स्त्रियाँ अपने पतियोंसे सलाह करके नहीं आई थीं, इसपर भी जब इतना पैसा मिला है तब मैं कैसे विश्वास न करूँ कि स्त्रियोंके आभूषणोंके थोड़ेसे त्यागसे ही हिन्दुस्तानमें नई पाठशालायें खोली जा सकती हैं और चलाई जा सकती हैं।

पारसी रुस्तमजीका[1] दान

नेटालके प्रसिद्ध सेठ रुस्तमजी जीवनजीने मुझे पत्र[2] लिखा है। उन्होंने लिखा है:

१. दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रह आन्दोलनमें गांधीजीके एक प्रमुख सहयोगी। देखिए खण्ड ८, ९ और १०।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें चार स्थानोंपर स्कूलोंकी इमारतें बनानेके लिए चालीस हजार रुपये देनेकी बात कही गई थी, बशर्ते कि स्थानीय जनता उनका संचालन-भार अपने ऊपर ले ले।

सेठ रुस्तमजीको दक्षिण आफ्रिकामें सब लोग जानते हैं। उन्होंने सार्वजनिक जीवनमें हमेशा पूरा-पूरा भाग लिया है। उन्होंने दान भी बहुत दिया है। सत्याग्रहके समयमें उन्होंने एक वर्षकी कड़ी कैद भी भोगी थी। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता स्थापित करनेमें खूब भाग लिया। अब वे हिन्दुस्तानकी सार्वजनिक प्रवृत्तिमें अपना योग दे रहे हैं। इस दानका उपयोग किस तरह किया जाये, इस बारेमें मैं मित्रोंसे परामर्श करूँगा और जो निर्णय होगा उसे कुछ समयमें प्रकट करूँगा। इस बीच इतना ही कहता हूँ कि पारसियोंपर यह जो आरोप लगाया जाता है कि वे असहयोग आन्दोलनमें भाग नहीं लेते, उसे पारसी रुस्तमजीने झूठा सिद्ध कर दिखाया है और यह बात ध्यान देने योग्य है कि बम्बईके प्रसिद्ध धनाढ्य सेठ बोमनजी भी आन्दोलनमें भाग ले रहे हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि असहयोग आन्दोलन इतना शुद्ध है कि उससे पारसी, ईसाई अथवा यहूदी कोई भी, जिन्होंने इस देशको अपना देश बना लिया है, कदापि अलग नहीं रह सकते।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-१२-१९२०

८७. भाषण : नागपुरके कांग्रेस अधिवेशनमें[1]

२६ दिसम्बर, १९२०

गांधीजीने . . . इच्छा व्यक्त की कि सभापतिका भाषण आदर और धैर्यके साथ सुना जाये। भारत एक बड़े विवादमें फँसा हुआ है। देश दो शिविरोंमें विभक्त है। मैं चाहता हूँ कि दोनों पक्ष सभापतिका भाषण धैर्यसे सुनें और उनके आदेशका पालन करें। सभापति सत्याग्रही हैं। सम्भव है कि उनके सभी निष्कर्ष सबको अच्छे न लगें। मैं चाहूँगा कि जो उनसे भिन्न मत रखते हों वे भी सम्मानपूर्वक उनकी बात सुनें।

आगे बोलते हुए उन्होंने कहा कि मैं पंडालमें किसीको सिगरेट पीते देख रहा हूँ, इससे खतरा हो सकता है। उन्होंने श्रोताओंसे अपील की कि पंडालमें सिगरेट न पियें और कहा कि खतरेके अलावा धूम्रपान भारतीय शिष्टाचारके भी विपरीत है। अन्तमें उन्होंने श्रोताओंसे फिर अपील की कि वे हर वक्ताकी बात धैर्यसे सुनें और कहा कि आपकी खामोशीसे मुझे विश्वास हो जायेगा कि ईश्वर भारतीयोंको अपना यह आध्यात्मिक उद्देश्य प्राप्त करनेमें उनकी मदद करेगा। उन्होंने श्रोताओंसे यह अनुरोध किया कि वक्ता जिस भाषामें भाषण देना चाहें, उसीमें उन्हें सुनें। उन्होंने कहा कि

१. यह भाषण कांग्रेसके नागपुर अधिवेशनके उद्घाटन दिवसपर दिया गया था, जब गांधीजीने श्री विजयराघवाचार्यको कांग्रेसका अध्यक्ष चुननेके प्रस्तावका अनुमोदन किया था।

मैं स्वयं तो हिन्दीको ही कांग्रेसकी भाषा बनाना चाहूँगा; परन्तु फिलहाल उसे अमलमें नहीं लाया जा सकता।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३०–१२–१९२०

८८. भाषण : कांग्रेस चुनावोंपर[1]

२६ दिसम्बर, १९२०

श्री गांधीने . . . सभी असहयोगवादियोंको समझाया कि उनकी कुछ भी शिकायतें क्यों न हों और चुनाव चाहे ठीक हुए हों या गलत, उन्हें आवेश या हिंसाका कोई प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। यदि श्री सी० आर० दास ईमानदारीसे घोषित करें कि आज सुबह हुए चुनाव ठीक तरहसे किये गये हैं, तो मैं बंगालके असहयोगियोंसे उस निर्णयको स्वीकार कर लेनेको कहूँगा, और यदि फिर भी उन्हें कोई शिकायत हो तो मैं उन्हें सलाह दूँगा कि वे विषय समितिसे अलग हो जायें और कांग्रेसकी कार्यवाहियोंमें कोई सक्रिय भाग न लें। मैं खुद भी उनके साथ बाहर चला जाऊँगा और उनके साथ रहूँगा। कांग्रेसके अन्दरका काम मैं श्री शौकत अलीके ऊपर छोड़ दूँगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३०–१२–१९२०

८९. भाषण : कांग्रेसके नये सिद्धान्तपर[2]

२८ दिसम्बर, १९२०

जिस प्रस्तावको प्रस्तुत करनेका गौरव मुझे प्राप्त हुआ है, वह इस प्रकार है:

> भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका उद्देश्य भारतीयों द्वारा सभी उचित और शान्तिपूर्ण उपायोंसे स्वराज्य प्राप्त करना है।

मैं यह प्रस्ताव थोड़ेसे अंग्रेजी शब्दोंमें पेश करके ही अपनी बात समाप्त कर दूँगा, और आपका ज्यादा समय नहीं लूँगा। मैं उसे समझानेके दायित्वसे पहले ही मुक्त हो चुका हूँ; क्योंकि लाला लाजपतराय आ गये हैं और उन्होंने आपको अंग्रेजीमें

१. यह भाषण नागपुर कांग्रेसमें उस समय दिया गया था जब गांधीजीने विषय-समितिके लिए प्रतिनिधियोंके सुबह हुए चुनावके सम्बन्धमें शिकायतें सुनीं। अन्तमें अध्यक्षने फिरसे चुनावोंका आदेश दिया था।

२. नागपुर कांग्रेसके समय विषय समितिकी बैठकमें सिद्धान्त सम्बन्धी प्रस्तावके मसविदेपर बहस शुरू होनेके अवसरपर यह भाषण दिया गया था।

इस प्रस्तावको समझानेका काम अपने ऊपर ले लिया है। मैं उन लोगोंसे व्यक्तिगत तौरपर सिर्फ थोड़े-से शब्द कहना चाहता हूँ, जो मेरी हिन्दुस्तानीमें कही बातें समझ नहीं पाये होंगे। मेरी नम्र रायमें यदि कांग्रेस इस प्रस्तावको सर्वसम्मतिसे स्वीकार कर लेती है तो यह उसके लिए सबसे सही बात होगी।

जहाँतक मैं समझता हूँ, इस मंचसे केवल दो प्रकारकी आपत्तियाँ व्यक्त की जायेंगी। एक तो यह कि हम आज अंग्रेजोंसे सम्बन्ध-विच्छेद करनेकी बात न सोचें। लेकिन मेरा कहना यह है कि किसी भी मूल्यपर अंग्रेजोंसे सदा सम्बन्ध बनाये रखने-की बात सोचना राष्ट्रीय प्रतिष्ठाके लिए अपमानजनक है। (हर्षध्वनि)। हम एक गम्भीर अन्याय झेल रहे हैं, जिसे दूर करवाना हर भारतीयका व्यक्तिगत कर्त्तव्य है। ब्रिटिश सरकार न केवल अन्यायका निवारण करनेसे इनकार करती है, बल्कि अपनी गलती माननेसे भी इनकार करती है, और जबतक उसका यह रुख बना रहता है, हम यह नहीं कह सकते कि हम जो-कुछ भी पाना चाहते हैं, वह अंग्रेजोंसे सम्बन्ध बनाये रख कर ही पाना चाहते हैं। हमारे रास्तेमें कैसी भी कठिनाइयाँ हों, पर हमें संसारके और सारे भारतके सामने स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिए कि यदि अंग्रेजोंसे हमें यह साधारण न्याय भी प्राप्त नहीं होता तो सम्भव है कि हम उनसे सम्बन्ध-विच्छेद कर दें। मैं यह कदापि नहीं कहूँगा कि हम हर हालतमें अंग्रेजोंसे सम्बन्ध समाप्त कर देना चाहते हैं। यदि अंग्रेजोंसे सम्बन्ध रखनेसे भारत प्रगति करता है तो हम वह सम्बन्ध नष्ट नहीं करना चाहते। परन्तु यदि यह सम्बन्ध हमारे राष्ट्रीय सम्मानके विरुद्ध पड़ता हो तो यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसे नष्ट कर दें। (हर्ष-ध्वनि)। इस प्रस्तावमें दोनों तरहके लोगोंके लिए गुंजाइश है; उन लोगोंके लिए भी जो विश्वास करते हैं कि अंग्रेजोंसे सम्बन्ध बनाये रखकर हम अपने-आपको शुद्ध बना सकते हैं और अंग्रेजोंका हृदय भी निर्मल कर सकते हैं, तथा उन लोगोंके लिए भी जो ऐसा नहीं मानते। उदाहरणार्थ श्री एन्ड्रयूजको लीजिए जो दूसरे किस्मका विचार रखनेवालोंमें सबसे आगे हैं। वे कहते हैं कि भारतके लिए अंग्रेजोंसे सम्बन्ध रखनेकी सारी आशा नष्ट हो गई है। वे कहते हैं कि पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद होना चाहिए, पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। (हर्षध्वनि)। इस प्रस्तावमें जिस नीतिका अनुमोदन किया गया है, उसमें श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज-जैसे व्यक्तिके लिए भी काफी गुंजा-इश है। दूसरा उदाहरण लीजिए, जिसमें मेरे-जैसे आदमी या मेरे भाई शौकत अली हैं। यदि हमें सदैव यह सिद्धान्त मानना हो कि चाहे ये अन्याय दूर किये जायें या नहीं, हमें तो ब्रिटिश साम्राज्यके अन्दर ही अपना विकास करना है तो फिर हमारे जैसोंके लिए उसमें कोई स्थान नहीं होगा। प्रस्तुत प्रस्ताव इतना लचीला है कि दोनों तरहके मतोंका समावेश कर सकता है। अंग्रेजोंको सावधान रहना होगा कि यदि वे न्याय नहीं करना चाहते, तो प्रत्येक भारतीयका यह अनिवार्य कर्त्तव्य है कि वह उस साम्राज्यको नष्ट कर दे।

इसके अलावा, तरीकोंके बारेमें भी हममें कुछ मतभेद हैं। चूँकि मुझे उत्तर देनेका अधिकार होगा, इसलिए उस प्रश्नपर मैं अभी कुछ नहीं बोलना चाहूँगा।

इस समय मैं अपनी बात एक निजी अपीलके साथ समाप्त करना चाहूँगा। इस सम्बन्धमें आपका ध्यान मैं बंगाल-कैम्पमें हुई कलकी घटना और उसके सबककी ओर दिलाऊँगा। यदि आप स्वराज्य चाहते हैं तो स्वराज्य कैसे पाया जाये इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण आपके सामने प्रस्तुत है। बंगालके प्रतिनिधियोंके शिविरमें थोड़ी-बहुत हाथापाई हुई, थोड़ी-बहुत कहा-सुनी हुई, और थोड़ा-बहुत मतभेद प्रकट किया गया, जैसा मतभेद, जबतक संसार रहेगा, हमेशा ही रहेगा। मैं जानता हूँ कि पति और पत्नीके बीच भी मतभेद होते हैं, क्योंकि मैं भी पति हूँ। मैंने माता-पिता और बच्चोंमें मतभेद देखे हैं, क्योंकि मैं भी चार बेटोंका बाप हूँ। जहाँतक शारीरिक शक्तिका सम्बन्ध है, वे सभी इतने सशक्त हैं कि अपने पिताको परास्त कर सकते हैं। इस प्रकार मुझे पति और पिताका वह विविध अनुभव प्राप्त है। मैं जानता हूँ कि हममें हमेशा छुट-पुट झगड़े होंगे, हममें हमेशा मतभेद रहेंगे। परन्तु कलकी घटनासे मिलनेवाली जिस शिक्षाकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ वह यह है कि मुझे दोनों ही दलोंके[1] सामने बोलनेका गौरव और सौभाग्य मिला। उन्होंने मेरी बात पूरे ध्यानसे सुनी और उससे भी बड़ी बात यह कि मैंने उन्हें जो विनम्र सलाह दी उसे स्वीकार करके उन्होंने मेरे प्रति अपने लगाव, स्नेह और अपनत्वका परिचय दिया। मैंने उनसे कहा कि: "मैं यहाँ कोई फैसला देने नहीं आया हूँ; फैसला तो केवल हमारे सम्मान्य अध्यक्ष करेंगे। परन्तु मैं आपसे कहूँगा कि आप अध्यक्षके पास न जायें। आपको उन्हें परेशान करनेकी जरूरत नहीं है। यदि आप सशक्त हैं, यदि आप बहादुर हैं, यदि आप स्वराज्य पानेको कटिबद्ध हैं और यदि आप वास्तवमें कांग्रेसके सिद्धान्तोंमें परिवर्तन करना चाहते हैं, तो आप अपना क्रोध काबूमें रखें, अन्यायके विरुद्ध आपके हृदयमें भावना मचले तो उसे आप रोकें और उन बातोंको यहीं, इसी जगह भुला दें।" मैंने उन्हें अपने मतभेद भुला देनेको कहा, एक दूसरेकी गलतियाँ भुला देनेको कहा। मैं वह सारी बात नहीं दुहराना चाहता, न उसका इतिहास सुनाना चाहता हूँ। शायद आपमें से अधिकांश वह सब जानते भी होंगे। मैं तो इस तथ्यकी ओर आपका ध्यान-भर दिला देना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि उन्होंने अपने मतभेद सुलझा लिये हैं। आशा तो यही करता हूँ कि सुलझा लिये होंगे; परन्तु मैं जानता हूँ कि उन्होंने मतभेद भुला देनेका फैसला किया। उन्होंने अध्यक्षको परेशान न करनेका फैसला किया। उन्होंने यहाँ या विषय-समितिमें कोई प्रदर्शन न करनेका फैसला किया और उन्होंने मेरी उस सलाहको माना; मैं उनका पूरा सम्मान करता हूँ।[2] मैं अपने बंगाली मित्रों तथा अन्य सभी मित्रोंसे जो इस महान सभामें एक निश्चित संकल्प लेकर आये हैं, केवल यह चाहूँगा कि वे सिर्फ अपने देशके कल्याणके लिए प्रयत्न करें, अपने-अपने हकोंके लिए प्रयत्न करें, राष्ट्रीय सम्मानकी रक्षा-

१. एक दलके नेता श्री चित्तरंजन दास थे, और दूसरे दलके श्री जितेन्द्रलाल बनर्जी।

२. अफवाह थी कि जितेन्द्रलाल बनर्जीका नेतृत्व माननेवाला दल कांग्रेस अधिवेशनमें भाग नहीं लेगा, क्योंकि विषय-समितिके चुनावके सम्बन्धमें मतभेद हैं; किन्तु सभी बंगाली प्रतिनिधियोंने कांग्रेसके खुले अधिवेशनमें भाग लिया।

के लिए प्रयत्न करें। इसके अतिरिक्त उनकी और कोई कामना न हो। मैं आप सबसे उनका अनुकरण करनेकी अपील करूँगा जिन्होंने क्षोभका अनुभव किया था और जिन्हें ऐसा लगा था कि मानों उनके सिर तोड़ दिये गये हैं। मैं जानता हूँ कि कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें[२] हमने जिस महान संघर्षका सूत्रपात किया है, उसका अन्त होनेसे पहले शायद हमें खूनके समुद्रमें नहाना होगा; परन्तु हमारे बारेमें या हममें से किसीके लिए भी कोई यह न कहने पाये कि रक्तपातके दोषी हम हैं। आप ऐसा आचरण करें जिससे आगे आनेवाली पीढ़ियाँ यही कहें कि हमने कष्ट झेले, हमने किसी दूसरेका नहीं अपना ही रक्त बहाया; और इसलिए मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं है कि मैं उन लोगोंके प्रति अधिक सहानुभूति नहीं दिखाना चाहता जिनके सिर टूटे या जिनके बारेमें बताया जाता है कि उनकी जानको भी खतरा था। इससे क्या फर्क पड़ता है? कमसे-कम, अपने देशवासियोंके हाथों मरना किसी अन्य मृत्युसे कहीं बेहतर है। हमें किस बातका और किससे बदला लेना है? इसलिए मैं आपमें से हर व्यक्तिसे कहता हूँ कि यदि किसी भी समय किसी देशभाईके खिलाफ आपका खून खौले — चाहे वह देशभाई सरकारी नौकरीमें, गुप्तचर या खुफिया विभागमें ही क्यों न हो — तो आप इस बातकी सावधानी बरतेंगे कि आप नाराज नही होंगे और चोटके बदले चोट नहीं करेंगे। समझ लीजिए, जिस क्षण आप किसी जासूसकी चोटका जवाब देते हैं, आपका उद्देश्य विफल हो जाता है। आपका आन्दोलन अहिंसात्मक आन्दोलन है, और इसलिए मैं आपमें से प्रत्येकसे कहता हूँ कि बदलेमें चोट न करें वरन् अपना सारा क्रोध काबूमें रखें, उस क्रोधको मनसे दूर करें, और तब आप अधिक बहादुर आदमी बनेंगे। मैं यहाँ उन लोगोंको बधाई देता हूँ, जिन्होंने अध्यक्षके पास जाने और विवादको उनके सामने रखनेसे अपने आपको रोका है। इसलिए मैं उन लोगोंसे, जो मनमें अन्यायका अनुभव करते हैं, कहूँगा कि अगर वे उसे भूल गये हों तो अच्छा ही किया है, और यदि वे नहीं भूल सके हों तो मैं उनसे वह बात भूल जानेकी कोशिश करनेका अनुरोध करूँगा — और यही वह सबक है जिसकी ओर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता था।

यदि आप इस प्रस्तावको पास करना चाहते हैं तो केवल जोशके साथ इसके पक्षमें 'हाँ' कह कर ही पास न करें; हालाँकि मैं इस प्रस्तावके लिए आपकी उत्साह-पूर्ण स्वीकृति भी चाहता हूँ, परन्तु मैं चाहता हूँ कि इस प्रस्तावको पास करते समय आपके मनमें यह विश्वास और संकल्प हो — ऐसा विश्वास और संकल्प जिसे इस धरतीपर कोई शक्ति डिगा न सके — कि आप शीघ्रसे-शीघ्र स्वराज्य हासिल करने-को कटिबद्ध हैं और आप स्वराज्य उन्हीं तरीकोंसे पाना चाहते हैं जो उचित हैं, सम्माननीय हैं, अहिंसात्मक हैं और शान्तिपूर्ण हैं। आपने इस बातका निश्चय किया है। आपने निश्चय किया है कि जहाँतक आज हम देख सकते हैं, हम लोग इस सर-कारसे हथियारोंसे संघर्ष नहीं कर सकते, परन्तु उस शस्त्रसे लड़ सकते हैं जिसे मैंने बहुधा आत्माकी शक्ति कहा है। वह आत्मिक शक्ति किसी एक व्यक्ति या संन्यासी या तथाकथित किसी संतकी कोई निजी पूँजी नहीं है। आत्माकी शक्ति प्रत्येक मान-

२. जो कलकत्तामें सितम्बर १९२० में हुआ था।

वकी — चाहे वह स्त्री हो या पुरुष — सम्पत्ति है, और इसलिए मैं अपने देशवासियोंसे कहता हूँ कि यदि वे यह प्रस्ताव स्वीकार करना चाहते हैं तो इसे उसी दृढ़ संकल्पके साथ स्वीकार करें। वे यह समझें कि इसका शुभारम्भ मैंने जिन परिस्थितियोंका अभी उल्लेख किया है, वैसी अच्छी और अनुकूल परिस्थितियोंमें हुआ है। मैं अपनी बात कह चुका। यदि मुझे कुछ और समझाना है तो मैं अपने जवाबमें समझाऊँगा। मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने मेरी बात इतने धैर्यके साथ सुनी। ईश्वर करे कि आप सब इस प्रस्तावको सर्वसम्मतिसे पास करें। ईश्वर आपको इस प्रस्तावको सफल बनानेकी, और वह भी एक सालके भीतर ही सफल बनानेकी शक्ति और योग्यता दे। (जोरसे और देरतक हर्षध्वनि।)[1]

[अंग्रेजीसे]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३५वें अधिवेशनकी रिपोर्ट

१. श्री मु० रा० जयकरने अपनी पुस्तक **द स्टोरी ऑफ माई लाइफ**, खण्ड १, पृष्ठ ४१४-५ में (एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९५८) निम्नलिखित अनुच्छेदोंको गांधीजीके इस भाषणका अंश बताते हुए उद्धृत किया है:

"[१९०७ की सूरत कांग्रेससे अबतक]" लगभग १३ वर्ष गुजर चुके हैं और तबसे अनेक घटनाएँ हुई जो इसे जरूरी बल्कि अनिवार्य बना देती है कि कांग्रेसका सिद्धान्त बदला जाये। मैं यहाँ यह कहनेको तैयार हूँ कि उसे प्रस्तावित तरीकेके अनुसार परिवर्तित करनेसे बेहतर कोई तरीका नहीं है। मैं कहता हूँ कि यह उस नीतिका ही विकसित रूप है जो कलकत्तामें पिछले अधिवेशनमें असहयोग प्रस्ताव पास करते समय अपनाई गई थी। इस सिद्धान्त-परिवर्तनका उद्देश्य क्या है? इसका उद्देश्य है ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश सरकारको सूचित करना कि यद्यपि फिलहाल हमारा उद्देश्य, सीधा उद्देश्य, यह नहीं है कि हम ब्रिटिश साम्राज्यसे बाहर निकल जायें, लेकिन यदि हम उसमें रहते हैं तो किसीके आदेशसे नहीं रहेंगे। हम साम्राज्यमें रहेंगे तो अपने मनसे, अपनी स्वतन्त्र इच्छासे रहेंगे।

"स्वराज्य" शब्दका प्रयोग जान-बूझकर किया गया है, ताकि किसी राष्ट्रमण्डलके स्थापित होनेपर यदि हम उसमें रहना चाहें तो रहें और जब चाहें उससे बाहर निकल जायें।"

"मैं आपको एक बात बताना चाहता हूँ: रास्ते लम्बे और कष्टकर हो सकते हैं। मंजिल भी दूर हो सकती है, यद्यपि मैं आशा करता हूँ कि वह दूर नहीं है। काम कठिन हो सकता है परन्तु ३१ करोड़ ५० लाख लोगोंके इस राष्ट्रके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। यदि हम अपना कर्त्तव्य करनेका निश्चय कर लें, अपना कर्त्तव्य मर्दानगीके साथ, निर्भय होकर और देशके हितमें निःस्वार्थ भावनासे करनेका निश्चय कर लें, तो हम अपना लक्ष्य शीघ्र पा सकेंगे।"

९०. भाषण : विषय समितिकी बहसकी समाप्तिपर[1]

२८ दिसम्बर, १९२०

मेरे सामने साम्राज्यमें बने रहनेसे सम्बन्धित मूल प्रस्ताव और उसमें से गणराज्य शब्द निकाल देनेसे सम्बन्धित संशोधन और अन्य विविध संशोधन मौजूद हैं। मैं अब भी कहता हूँ कि अगर हमारी शिकायतें दूर नहीं की जाती तो हमें अंग्रेजोंसे सम्बन्ध तोड़ लेने चाहिए। संविधानमें परिवर्तन करनेका कारण यही है। यदि हमारी शिकायतें दूर कर दी जाती हैं तो परस्पर बातचीतके द्वारा स्वराज्यके सम्बन्धमें कोई-न-कोई समझौता किया जा सकता है। इसमें छल-प्रपंचका नाम भी नहीं है। कांग्रेसके ध्येयको जिस रूपमें प्रस्तुत किया गया है उससे तो दोनों पक्षोंके लिए द्वार खुला रहता है। और अगर इसका नाम छल-प्रपंच है तो हमें इसका स्वागत करना चाहिए। वैध और शान्तिपूर्ण साधन कांग्रेसके ध्येयकी नींव है। यूरोपीयोंसे हमें स्पष्ट कह देना चाहिए कि हमारे देशमें उनका जीवन पूरी तरह सुरक्षित है। उनकी तोपें आदि विनाशके साधन नहीं, हमारे लिए सिर्फ खिलौने हैं। इस समय तो हिंसाकी कोई भी सम्भावना नहीं है। अबतक हम केवल शिक्षित-वर्गसे ही सहयोग लेते थे; अब हमें जनतासे काम लेना है। अनुचित साधनोंसे लिया जा सकनेवाला स्वराज्य भी अनुचित ही है। यदि हम इस्लामको अपमानसे मुक्त कराना चाहते हैं तो हमें शान्ति बनाये रखनी चाहिए, नहीं तो यह आन्दोलन समाप्त हो जायेगा। अगर हम हिंसा करने लगें तो कांग्रेस गैर-कानूनी संस्था कही जाने लगेगी और उसे कुचल दिया जायेगा। हमें अपने लक्ष्यकी प्राप्ति सम्मानपूर्ण साधनोंसे करनी चाहिए। 'उत्तरदायी सरकार' शब्द तो भुलावेमें डालनेवाले शब्द हैं। हिन्दुस्तानमें तानाशाही कभी नहीं आ सकती; क्योंकि हमारा स्वराज्य तो हिन्दुस्तानकी जनताका स्वराज्य होगा। यदि भारतके लोगोंको ही तानाशाहीकी जरूरत होगी तो उसे कोई रोक नहीं सकेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-१-१९२१

१. कांग्रेसके सिद्धान्त सम्बन्धी प्रस्तावके मसविदेपर।

९१. भाषण : कांग्रेसके सिद्धान्त सम्बन्धी प्रस्तावपर

२८ दिसम्बर, १९२०

इस प्रस्तावका अर्थ यह है कि इस राष्ट्रीय सभाका उद्देश्य स्वराज्य प्राप्त करना है और उसे प्राप्त करनेका उपाय यही है कि हमारे साधन न्याययुक्त, शुद्ध और शान्तिपूर्ण हों। महासभाकी यह धारणा है कि स्वराज्य जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी प्राप्त किया जाये; यदि वह आज ही मिल सकता हो तो आज ही प्राप्त किया जाये।

स्वराज्य प्राप्तिके लिए क्या करना चाहिए, महासभाने इस प्रस्तावमें यह भी बताया है। प्रस्तावमें लिखा है कि स्वराज्य हमें तलवारके जोरसे प्राप्त नहीं करना है, स्वाधीनता हमें झूठ बोलकर अथवा सत्यके अवलम्बनको छोड़कर प्राप्त नहीं करनी है; अपितु जैसे हमारा ध्येय शुद्ध है वैसे ही हमारे साधन भी शुद्ध होने चाहिए। अतएव इस प्रस्तावका अर्थ यह है कि हम स्वराज्य प्राप्त करनेका दृढ़ निश्चय करें और उसकी प्राप्तिके निमित्त न्याय, सत्य और शान्तिके मार्गको अपनायें।

मैं अपनेको खुशकिस्मत समझता हूँ कि मुझे ऐसे महत्वपूर्ण प्रस्तावको महासभाके सम्मुख प्रस्तुत करनेका सुअवसर मिला है। मैं आपको बताता हूँ कि आजतक तो महासभाका उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत जैसे अन्य उपनिवेश उत्तरदायी औपनिवेशिक शासनका उपभोग कर रहे हैं, हमें भी इसके अन्तर्गत वैसा उत्तरदायी औपनिवेशिक शासनाधिकार प्राप्त हो जाये और वह भी कानून सम्मत तरीकेसे। यहाँ कानूनका अर्थ है ब्रिटिश साम्राज्यका कानून। "ब्रिटिश सरकार खिलाफतके प्रश्नका सन्तोषजनक समाधान न करे अथवा पंजाबपर किये गये अत्याचारोंमें न्याय प्रदान करना तो एक तरफ रहा, अपनी भूलतक स्वीकार न करे तो भी हम उस सरकारके कानूनको मानें और यदि हमें महासभामें रहना हो तो हम इस साम्राज्यको मिटानेकी बात भी नहीं कर सकते," आजतक कांग्रेसके संविधानका यह अर्थ था। लेकिन साम्राज्य इतना घोर अन्याय करे और उसका निराकरण न करे तो भी हिन्दू और मुसलमान उसे सहन कर लें, यह बात अब सम्भव नहीं है। फलतः इस प्रस्तावके द्वारा हम निश्चय करते हैं कि हमें स्वराज्य चाहिए; स्वराज्य प्राप्त करके ही हम पंजाब और खिलाफतके अत्याचारोंके सम्बन्धमें न्याय प्राप्त कर सकेंगे।

लेकिन स्वराज्य प्राप्तिके लिए मैं पश्चिमके साधनोंका उपयोग नहीं करना चाहता। मैं जानता हूँ, हिन्दू अथवा मुसलमान यह नहीं कहते कि हम अपनी स्वतन्त्रताके लिए तलवारका सहारा कभी नहीं लेंगे। लेकिन इतना तो सब समझते हैं कि आज जो हमें चाहिए उसे हम तलवारसे प्राप्त नहीं कर सकते और इसीलिए हम तर्केमवालात अथवा असहयोगका आन्दोलन चला रहे हैं। तलवारसे हम स्वयं अपनेको, अपने धर्मको, साम्राज्यको अथवा किसीको भी नहीं बचा सकेंगे। यदि आप मेरे

कथनको स्वीकार करते हैं तो मैंने आपके सामने जो प्रस्ताव रखा है, आप उसका विरोध नहीं करेंगे।

मैं जानता हूँ कि हमारे समझदार नेताओंमें दो पक्ष हैं। उनमें से एकमें, मेरे बड़े भाई मदनमोहन मालवीय हैं। पंडितजी आज बुखार और जुकामसे पीड़ित हैं; इस वजहसे वे अपने विचार व्यक्त करनेके लिए आपके सम्मुख नहीं आ सके हैं। इसलिए मैं आपको उनके कथनका आशय संक्षेपमें सुनाऊँगा। आप जानते हैं कि पंडित-जी जैसे राष्ट्रसेवी बहुत नहीं हैं। उनके जैसे राष्ट्रसेवीके विचार अगर आप न भी मानें तो भी आपको उन्हें शान्तिपूर्वक और सम्मानपूर्वक सुनना चाहिए। उनका कहना है कि ब्रिटिश साम्राज्यको मिटानेकी बात करना हमारी शक्तिसे बाहर है। जो हिन्दुस्तान निःशस्त्र है, अपेक्षाकृत कम शक्तिसम्पन्न है, वह ऐसे जबर्दस्त साम्राज्यको किस तरह मिटा सकता है? उनके कथनानुसार हमें अपनी ताकतसे बाहरकी बातें कह-कह कर लोगोंको भरमाना नहीं चाहिए। वह मनुष्य मूर्ख है जो इस तरह लोगोंको उनकी ताकतसे बाहरके कार्य करनेके लिए उकसाता है। उनके कथनके मुताबिक अगर यह काम जनताकी ताकतसे बाहर है तो मुझे उनकी सलाह मान लेनी चाहिए। लेकिन इस सम्बन्धमें मेरा मत उनसे भिन्न है। मेरी मान्यता है कि प्रत्येक स्त्री और पुरुषमें स्वराज्य प्राप्त करनेकी शक्ति है। जबतक हमारा यह विश्वास है कि इस शरीरमें आत्माका वास है तबतक हम स्वराज्यके योग्य हैं, ऐसी मेरी मान्यता है। तैंतीस करोड़ हिन्दू मुसलमान दोनों अपने-अपने धर्मोंपर आरूढ़ हैं, वे खुदाका नाम लेनेवाले और ईश्वरके नामपर मृत्युका भी स्वागत करनेवाले हैं। एक गायकी हत्या-पर हजार हिन्दू खून लेने-देनेके लिए तैयार हो जाते हैं। एक मुसलमानके अपमानका बदला लेनेकी खातिर अनेक मुसलमान भी इसी तरह तैयार हो जाते हैं। जबतक हिन्दुस्तानमें ऐसे हिन्दू और मुसलमान विद्यमान हैं तबतक मैं यह कदापि नहीं कहूँगा कि हिन्दुस्तानके लिए स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव है; और तबतक मैं स्वराज्यके अपने इस आदर्शको छोड़ नहीं सकता।

इस साम्राज्यने हमपर इतने अधिक अत्याचार किये हैं कि उसके झंडेके नीचे रहना ईश्वरके प्रति द्रोह करना है। इसलिए मेरी आप सबसे नम्र प्रार्थना है कि आप इस प्रस्तावका अनुमोदन करें।

हममेंसे जिन्हें ऐसा प्रतीत होता हो कि हम अशक्त हैं, शक्तिसे स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते, उन्हें तो यह ध्येय स्वीकार्य होना ही चाहिए कि हम शान्तिसे और सत्यपर आरूढ़ रह कर ही स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं। इससे हम उच्चसे-उच्च आदर्शको अपने सम्मुख रख सकते हैं।

जिनको ऐसा आभास होता हो कि आगे-पीछे यह साम्राज्य शायद हमारी बात समझ जायेगा, अन्ततः उसे सुनेगा और समझेगा तथा न्याय प्रदान करेगा; हम विधान मण्डलोंमें जाकर उसे समझा सकेंगे, वे भी इस प्रस्तावसे कांग्रेसमें रह सकेंगे।

हम साम्राज्यको दण्ड देना नहीं चाहते; हम उसके साथ सारे सम्बन्ध तोड़कर ही स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, ऐसी कोई बात भी इस प्रस्तावमें नहीं आती। यही

साम्राज्य अगर हमें न्याय देनेके लिए तैयार हो, हमारे अधिकार देनेके लिए तैयार हो तो हम उसके अधीन रहनेके लिए तैयार हैं। इसे मैं न्यायका पक्ष कहता हूँ, इस पक्षपर चलनेमें कोई विघ्न-बाधा नहीं है।

इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि अगर आपको यह प्रस्ताव स्वीकार हो कि हमें स्वराज्य लेना है और जिस ढंगसे इस प्रस्तावमें बताया गया है, उसी ढंगसे स्वराज्य लेना है, तो आप अपने हृदयमें इसकी दृढ़ प्रतिज्ञा करें। सिर्फ प्रस्ताव पास करनेसे काम खत्म नहीं हो जाता। आप प्रतिज्ञा करेंगे तो स्वराज्य अवश्य प्राप्त करेंगे और पंजाबके अत्याचारों और खिलाफतके अन्यायका निराकरण करा सकेंगे।

आपके सम्मुख ऐसे वक्ता भी आयेंगे जो कहेंगे कि हम अपने उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिए चाहे जैसे साधनोंका प्रयोग कर सकते हैं। इसका उत्तर मैं प्रसंग आनेपर दूँगा। फिलहाल तो में इतना ही कहता हूँ कि यदि हम महासभाका ध्येय निश्चित करना चाहते हैं तो उसे हमें वर्तमान परिस्थितियोंको ध्यानमें रखते हुए ही निश्चित करना चाहिए। मेरा अपना धर्म तो यही है कि हिंसासे मुझे स्वराज्य मिलता हो तो मुझे वह नहीं चाहिए। हिंसासे मुझे मोक्ष भी मिले तो मुझे मंजूर नहीं। अगर हिंसासे ईश्वरभक्ति भी सम्भव हो तो मुझे वह भक्ति भी नहीं चाहिए। इस प्रस्तावमें आज अहिंसा और सत्यके जो साधन बताये गये हैं वे ही आपके लिए उचित हैं। उन्हीं साधनोंसे आप अपने ऊपर किये गये अत्याचारोंका परिमार्जन करा सकेंगे।

मैं आपको ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहता। आज हिन्दुस्तानमें चारों ओर कितनी जागृति हुई है, यह मैं जानता हूँ और इसीलिए यह मानता हूँ कि मुझे आपसे कुछ ज्यादा कहने-सुननेकी जरूरत नहीं है।

अपनी बातको खत्म करनेसे पहले मैं आपके सामने आदर्श पाठकी तरह एक घटनाकी बात प्रस्तुत करना चाहता हूँ। कल बंगालके शिविरमें कुछ झगड़ा हो गया था। उसकी खबर सुनकर मुझे दुःख हुआ। स्वाधीनता कैसे प्राप्त की जा सकती है — यह बतानेके विचारसे मैं वहाँ गया। मैंने अपनी बात बड़े आदरसे कही। मैंने उनसे कहा कि आपमें से कौन-सा पक्ष न्यायपर है और किस पक्षने भूल की है, मैं यह नहीं कह सकता; लेकिन यदि आप पारस्परिक अनबनको दूर करना चाहते हैं, हिन्दुस्तानके लिए स्वराज्य लेना चाहते हैं, अपने हृदयोंको शुद्ध और विकाररहित करना चाहते हैं तो आप इस सारी घटनाको भूल जायें। आप अपने झगड़े यहीं समाप्त कर दें। दोनों पक्ष यह बात समझ गये। हम स्वराज्य चाहते हैं तो अगर हमारे भाईने हमें नुकसान पहुँचाया हो अथवा हमारा सिर फोड़ दिया हो तो भी हमें सरकारके पास नहीं जाना चाहिए। हम अध्यक्षके पास भी क्यों जायें? मुझे कोई लाठी लेकर मारे तो मैं उसके सामने झुक जाऊँगा, क्योंकि उसे जीतनेका यही अवसर है। अगर हमने यह न किया तो हम कुछ नहीं कर सकेंगे। यदि आप दृढ़ हैं, बहादुर हैं, स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए कृत-संकल्प हैं और सचमुच महासभाके ध्येयमें परिवर्तन कराना चाहते हैं तो आपको अपने क्रोधका शमन करना होगा। अन्यायकी कोई भी भावना यदि आपके हृदयको कचोटती है तो आपको अपनी इस भावनाको दबाना पड़ेगा और

सब भूल जाना पड़ेगा। अतएव बंगाली भाइयों और अन्य सब लोगोंसे, जो इस महती सभामें दृढ़ निश्चय करके शामिल हुए हैं, मैं यही माँगता हूँ कि आप देशको सुदृढ़ बनानेके अलावा किसी और वस्तुके लिए प्रयत्न न करें, आप अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके प्रयत्नके अतिरिक्त किसी अन्य बातकी चिन्ता न करें; अपने देशके सम्मानकी रक्षा करनेके अलावा किसी दूसरी बातपर ध्यान न दें। कल जितने लोगोंके हृदयोंको चोट पहुँची और जिन्हें शारीरिक आघात लगे [उन्होंने शान्ति रखी]। मैं आपमें से हर व्यक्तिको उन लोगोंका अनुकरण करनेकी सलाह देता हूँ। (हर्षध्वनि)। महासभाके विशेष अधिवेशनमें हम जिस महान युद्धके लिए मैदानमें उतरे हैं उसके खतम होनेतक कदाचित् हमें खूनका समुद्र तैरना पड़े। लेकिन हमपर अथवा हममें से किसीपर खून वहानेका आरोप नहीं लगाया जाना चाहिए ताकि आनेवाली पीढ़ियाँ यह कह सकें कि हमने सहनशीलता दिखाई है, हमने दूसरोंके प्राणोंकी नहीं, बल्कि अपन प्राणोंकी आहुति दी है। इसलिए मैं जरा भी हिचके बिना कहता हूँ कि जिनके सिर फूटे और जिनकी जानें जोखिममें पड़ीं उनके प्रति मैं अधिक सहानुभूति नहीं दिखाना चाहता। इसमें हमारा क्या गया? अपने देशभाइयोंके हाथों मरना तो अधिक अच्छा है। हम किसलिए और किससे प्रतिशोध लें? यदि कोई जासूस अथवा सरकारी अधिकारी मुझे मारे तो भी मैं उसके विरुद्ध सरकारसे नहीं ईश्वरसे फरियाद करूँगा। हम जबतक परस्पर पूर्ण सहयोग नहीं करते तबतक स्वाधीनता नहीं मिल सकती। बंगाली भाइयोंने दंगा किया; लेकिन वे समझ गये और तुरन्त सावधान हो गये। जो हिंसाको धर्म समझते हैं उनसे मैं कुछ नहीं कहना चाहता, लेकिन जो अपनेको असहयोगी बताते हैं उनसे मैं अवश्य अधिकारपूर्वक कह सकता हूँ। उन्होंने क्रोध न करनेका वचन दिया है। मैं बंगालके प्रतिनिधि भाइयोंको इस अवसरपर बधाई देता हूँ। अगर आप सब उन लोगोंके समान ही आचरण करेंगे तो मुझे रंच-मात्र भी शंका नहीं कि आप स्वराज्य अवश्य प्राप्त कर सकेंगे। अपने मारनेवालेको क्षमा प्रदान करना कायरता नहीं है। यदि कोई मुझे मारे तो मैं उसे कायरताके कारण सहन नहीं करूँगा। मैं जानता हूँ कि सचमुच कायर तो वह है। यदि इस कारण तरस खाकर जिसने मुझपर अत्याचार किया ही ऐसे व्यक्तिको मैं माफ कर देता हूँ तो यह बहादुरीकी बात है। इस प्रस्तावको आपके सम्मुख प्रस्तुत करते समय यह पदार्थ-पाठ आपके सामने प्रस्तुत है।

इसके साथ-साथ ही मैं आपसे अटल श्रद्धा और निश्चयकी भी आशा करता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपने जितनी जल्दी हो उतनी जल्दी स्वराज्य प्राप्त करनेका निश्चय किया है; और आप इस स्वराज्यको विधिसम्मत, सम्मानजनक, अहिंसात्मक और शान्तिपूर्ण साधनोंसे ही प्राप्त करना चाहते हैं। शस्त्रसे हम सरकारका मुकाबिला कर सकें--यह सम्भव नहीं है; आत्मबल ऐसी चीज है जिससे हम सरकारसे जूझ सकते हैं। इस आत्मबलको दिखानेकी शक्ति किसी संन्यासी अथवा तथाकथित महात्मामें ही हो, सो बात नहीं है। आत्मबल दिखानेकी शक्ति हर स्त्री अथवा पुरुषमें है। फलतः मेरे देशबन्धु अगर इस प्रस्तावको स्वीकार करना चाहते हैं तो मैं उनसे

कहता हूँ कि उसे वे दृढ़ निश्चयसे स्वीकार करें और समझ लें कि जैसा मैंने ऊपर बताया, यह प्रस्ताव शुभ मुहूर्तमें ही स्वीकार किया गया है। भगवान करे आप इस प्रस्तावको सर्वसम्मतिसे स्वीकार करें और वह आपमें इसे एक वर्षके भीतर कार्यान्वित करनेका बल और धैर्य उत्पन्न करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-१-१९२१

९२. भेंट: 'टाइम्स ऑफ इंडिया'के प्रतिनिधिसे[1]

[२९ दिसम्बर, १९२० के पूर्व]

प्रतिनिधिके यह पूछनेपर कि विगत तीन महीनेकी अपनी गतिविधियोंसे श्री गांधीने क्या अनुभव किया, उन्होंने कहा:

इन तीन महीनोंके व्यापक अनुभवकी स्वयं मेरे मनपर तो यह छाप पड़ी है कि असहयोग आन्दोलन अब जम गया है, और बम्बईमें श्रीमती बेसेंटकी सभामें, दिल्लीके कुछ स्थानोंमें, और बंगाल तथा गुजरातमें भी, हुल्लड़बाजीकी जो घटनाएँ हुई, वैसी इक्की-दुक्की घटनाओंके बावजूद मैं निश्चय ही इसे एक शुद्धीकरणका आन्दोलन मानता हूँ। लोग दिन-प्रतिदिन अहिंसाकी भावना ग्रहण करते जा रहे हैं — भले ही वे बराबर इसे सिद्धान्तके रूपमें ही ग्रहण न करके एक अनिवार्य नीतिके रूपमें ही ग्रहण करते हों। अगर जनता अहिंसाकी भावनाको पूरी तरह अपनाले तो मैं उससे बड़े विस्मय-कारी परिणामोंकी अपेक्षा रखता हूँ — कहूँ तो यहाँतक कि सर जगदीशचन्द्र बसुकी खोजोंसे भी अधिक विस्मयकारी परिणामोंकी। जिस क्षण सरकारको पूरी तरह यह विश्वास हो जायेगा कि हम हिंसासे काम नहीं लेंगे, उसी क्षण वह अपना रवैया बदल देगी। वह जानबूझकर और इच्छापूर्वक तो यह विश्वास नहीं करेगी, लेकिन अगर उसे विश्वास हो जाये तो वह अपना रवैया बदलेगी अवश्य।

[भेंटकर्त्ता:] रवैया बदलेगी — यानी किस दिशामें?

[गांधीजी:] निश्चय ही उस दिशामें जिस दिशामें हम चाहेंगे — यानी कि यह राष्ट्र जो-कुछ कहेगा सरकारको उसका खयाल रखना पड़ेगा।

कृपया जरा और विस्तारसे समझायें।

मेरा मतलब यह है कि लोग अपने निश्चित संकल्प और आत्मबलिदानके बल-पर खिलाफत और पंजाबके सम्बन्धोंमें किये गये अन्यायका परिशोधन करा सकेंगे और अपनी पसन्दका स्वराज्य भी हासिल करेंगे।

१. इस भेंटका विवरण २९-१२-१९२० के **यंग इंडिया**, और ५-१-१९२१ की **अमृत बाजार पत्रिकामें** भी छपा था।

लेकिन स्वराज्यसे आपका क्या मतलब है और उसमें सरकार कहाँ आती है — वह सरकार, जिसके बारेमें आपने कहा कि अनजाने ही वह अपना रवैया बदलेगी ?

मेरे स्वराज्यका मतलब है, अभी कुछ समयके लिए भारतमें आधुनिक अर्थोंमें संसदीय सरकारकी स्थापना; वह सरकार हम ब्रिटेनवालोंके सौजन्यसे भी प्राप्त कर सकते हैं और जरूरत हुई तो उनके बिना भी।

"उनके बिना" से आपका क्या मतलब है ?

इस आन्दोलनका उद्देश्य वर्तमान सरकारको उस स्वार्थ और लालचसे मुक्त कराना है, जिसकी प्रेरणा-शक्ति उसके हर कामके पीछे होती है। अब यही मान लीजिए कि हम उससे अपने सारे सम्बन्ध तोड़कर उसके लिए अपने लोभ-लालचको तुष्ट करना असम्भव बना दें। उस हालतमें वह भारतमें नहीं रहना चाहेगी, जैसा कि सोमालीलैंडमें हुआ। जब सरकारने देखा कि वहाँ शासन करते रहनेमें तो कोई फायदा ही नहीं है, उसने तुरन्त उस देशको छोड़ दिया।

लेकिन व्यवहारमें यह योजना किस तरह काम करेगी ?

मैंने आपसे जो-कुछ कहा है, वह कभी बहुत आगे जाकर हो तो हो। अभी तो मैं अपेक्षा यही रखता हूँ कि हमें उनके बिना यह नहीं करना होगा। जहाँतक मैं अंग्रेज लोगोंको समझता हूँ, उससे तो मुझे यही लगता है कि वे अवश्यम्भावीको सर झुका कर स्वीकार कर लेंगे। जब जनमत सचमुच एक प्रभावकारी रूप धारण कर लेगा तो वे इसके बलको पहचान लेंगे। और तब, किन्तु केवल तभी, वे उस घोर अन्यायको समझेंगे जो साम्राज्यके मन्त्रियों और उनके भारत-स्थित प्रतिनिधियोंने उनके नामपर किया है। उस समय वे भारतीय जनताकी इच्छाके अनुसार दोनों अन्यायोंका परिशोधन करेंगे, और भारतकी जनता अपने चुने हुए नेताओंके द्वारा जिस ढंगके संविधानकी माँग करेगी, अंग्रेज लोग ठीक उसी ढंगका संविधान भी उसे देंगे।

मान लीजिए कि ब्रिटिश सरकार यह मानकर कि भारतसे अब कोई लाभ नहीं हो रहा है, इस देशको छोड़कर चली जाये, तो उस हालतमें भारतकी स्थिति क्या होगी ?

यह आसानीसे समझा जा सकता है कि उस समयतक भारत या तो एक विशिष्ट आध्यात्मिक ऊँचाईपर पहुँच चुका होगा या हिंसाका विरोध हिंसासे करनेकी क्षमता प्राप्त कर चुका होगा। उस हालतमें वह एक बहुत जबरदस्त संगठन-क्षमताका विकास कर चुका होगा और इसलिए समयकी माँग पूरी करनेके लिए हर तरहसे तैयार होगा।

तो आपका मतलब यह है कि अगर ऐसी स्थिति आई कि ब्रिटेन इसे छोड़कर चला जाये तो जिस क्षण वह इसे छोड़कर जायेगा उस क्षणतक भारत हर तरहसे तैयार और समर्थ होगा और उसके लिए परिस्थितियाँ इस दृष्टिसे अनुकूल रहेंगी कि वह एक चलते हुए संस्थानकी तरह यहाँका प्रशासन संभाल सके और उसका संचालन राष्ट्रके कल्याणके लिए कर सके ?

पिछले कुछ महीनोंमें मैंने जो अनुभव प्राप्त किये उनकी बदौलत मेरा मन इस आशासे भर गया है कि मै जिस एक सालके भीतर भारतके लिए स्वराज्य

प्राप्त करनेकी उम्मीद रखता हूँ, उसके शेष नौ महीनोंमें हम इन दोनों अन्यायोंका परिशोधन करवा लेंगे और भारतकी जनताकी इच्छाके अनुसार स्वराज्य स्थापित होते भी देखेंगे।

लेकिन इन नौ महीनोंके अन्तमें इस वर्तमान सरकारकी क्या स्थिति होगी?

आप देखेंगे कि शेर और बकरी एक ही घाटपर पानी पी रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-१२-१९२०

अमृतबाजार पत्रिका, ५-१-१९२१

९३. टिप्पणियाँ

'घृणाका सिद्धान्त'?

'इंडियन इंटरप्रेटर'के पास असहयोगके खिलाफ कहनेको बहुत-कुछ है। बड़ा अच्छा हो, अगर सम्पादक सार्वजनिक प्रश्नोंपर विचार व्यक्त करनेसे पहले उन्हें समझनेकी कोशिश करें। 'इंडियन इंटरप्रेटर' ईसाइयोंकी धार्मिक पत्रिका है। किसी भी धार्मिक विषयोंसे सम्बन्धित एक जिम्मेदार पत्रिकासे आशा की जाती है कि वह जिन विषयोंका विवेचन करे उनकी उसे पूरी जानकारी हो।

> **'इंटरप्रेटर' लिखता है: "भारत कभी सार्वजनिक घृणाके बलपर एकता हासिल नहीं कर सकता। और जहाँतक कोई तटस्थ पर्यवेक्षक समझ सकता है, आदर्शवादी श्री गांधीने इसी उपायका सहारा लिया है।"**

श्री स्टोक्स[1], जिन्होंने एक तटस्थ पर्यवेक्षककी तरह आन्दोलनका अध्ययन करनेकी कोशिश की है, कहते हैं कि वह घृणापर आधारित नहीं है। मैं स्वयं भी यही बात कह चुका हूँ। लेकिन पूर्वग्रह कठिनाईसे खत्म होते हैं। यह भाग-दौड़का जमाना है और इस भाग-दौड़में आधुनिक पत्रकारिताका बहुत बड़ा योगदान है। इस ज़मानेमें लोग अपर्याप्त तथ्योंके आधारपर जल्दबाजीमें निष्कर्ष निकाल लेते हैं, और इस तरह, अनजाने ही सही, अपने पूर्वग्रहोंको और भी पुष्ट करते हैं।

एक सामान्य खतरा

एक सामान्य खतरे, सामान्य कष्टने हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक सूत्रमें बाँध दिया है। मैं कष्टसे अधिक पावन बनानेवाली कोई अन्य चीज नहीं जानता। संकट अजनबियोंको भी सहचर बना देता है और हम तो अजनबी नहीं, पड़ोसी हैं, एक ही धरतीके बेटे हैं, जो संकटके कारण एक-दूसरेके और भी समीप आ गये हैं।

१. इन्होंने भारतको ही अपना देश बना लिया था और असहयोगमें खास दिलचस्पी रखते थे; देखिए अगला शीर्षक।

'ब्रिटिश शासन एक बुराई'?

लेकिन 'इंटरप्रेटर'का यह पूछना ज्यादा विषय-संगत है कि:

> **क्या श्री गांधी बिना किसी दुविधा-संकोचके ऐसा मानते हैं कि भारतमें ब्रिटिश शासन सर्वथा बुरा है; और क्या भारतके लोगोंको ऐसी शिक्षा देनी है कि वे भी उसे ऐसा ही मानें? वे अवश्य ही ब्रिटिश शासनको इतना अधिक खराब मानते हैं कि उनकी दृष्टिमें उसके अन्यायोंका पलड़ा उससे होनेवाले लाभोंसे कहीं भारी है; क्योंकि ऐसा होनेपर ही अपनी अन्तरात्मा या ईसा मसीहके सामने असहयोगका औचित्य सिद्ध किया जा सकता है।"**

मैं तो इसके उत्तरमें पूरी शक्तिसे "हाँ" ही कहूँगा। जबतक मैं मानता था कि ब्रिटिश साम्राज्य जो-कुछ करता है, वह कुल मिलाकर अच्छा ही है, तबतक मैं उसकी गलतियोंको क्षणिक भूलें मानता रहा और उनके बावजूद उससे चिपका रहा। मुझे अपने ऐसा करते रहनेका कोई खेद भी नहीं है। परन्तु अब जब कि मेरी आँखें खुल चुकी हैं, इस साम्राज्यसे, जबतक वह अपनी दूषित प्रवृत्ति नहीं छोड़ देता, अपना सम्बन्ध बनाये रखना पाप है। यह बात मैं बहुत दुःखके साथ लिख रहा हूँ और यदि मुझे मालूम हो जाये कि मैं गलतीपर हूँ, या मेरा वर्तमान रुख प्रतिक्रियात्मक है, तो मुझे खुशी होगी। इस देशको चूसकर यह साम्राज्य लगातार अपना घर भर रहा है, इसने पंजाबके पौरुषका अपहरण किया है और मुसलमानोंकी भावनाको धोखा दिया है। इन तीनों चीजोंको मैं भारतकी तीन-तरफी लूट मानता हूँ। ब्रिटिश साम्राज्यके शान्ति और व्यवस्थाके वरदानोंको मैं अभिशाप समझता हूँ। यदि हमपर शस्त्रके बलसे शान्ति थोपनेवाला ब्रिटिश शासन भारतमें न होता तो बजाय इसके कि हम पूरी तरहसे खुदको लाचार महसूस करते, जैसा कि आज कर रहे हैं, हम कमसे-कम अन्य राष्ट्रोंकी तरह बहादुर स्त्री-पुरुष तो बने रहते। किसी भी आत्मसम्मानी राष्ट्रको अपनी अवमानना और पतनकी कीमतके बदलेमें सड़कों और रेलोंके "वरदान" स्वीकार नहीं होंगे। शिक्षाका "वरदान" तो स्वातन्त्र्य-लाभकी प्रगतिके मार्गमें सबसे बड़ी रुकावट साबित हो रहा है।

शुद्धीकरणका आन्दोलन

सच तो यह है कि अहिंसाके कारण असहयोग एक धार्मिक और शुद्धीकरणका आन्दोलन बन गया है। यह राष्ट्रको प्रतिदिन शक्ति प्रदान कर रहा है, उसे उसकी दुर्बलताएँ दिखाता है और उन्हें दूर करनेका उपाय सुझाता है। यह आत्मनिर्भरताका आन्दोलन है। यह विचारोंमें क्रान्ति लाने और चिन्तनकी प्रेरणा देनेकी दृष्टिसे सबसे जबरदस्त शक्ति है। यह स्वयं आगे बढ़कर कष्ट झेलनेका आन्दोलन है, और इसलिए ज्यादती या अधीरतापर स्वतः नियन्त्रण रखता है। राष्ट्रकी कष्ट-सहनकी क्षमता स्वतन्त्रताकी दिशामें उसकी प्रगतिका नियमन करती है। इसके बलपर हर प्रकारसे बुराईसे अलग रहा जा सकता है और इस तरह यह बुराईकी शक्तियोंको बिलकुल पंगु बना देती है।

फीजीकी पुकार

अन्यत्र प्रकाशित एक अन्य पत्रसे[1] भी आन्दोलनको जोरदार समर्थन मिलता है। मेरे सम्माननीय पत्र-लेखकने उन कारणोंका विश्लेषण किया है जिनके कारण हमारे देशभाई इतनी बड़ी संख्यामें वापस लौटे, और लौट रहे हैं। फीजीमें औरतोंपर भी मुकदमे चलाये गये, उन्हें कारावास दिया गया। निःसन्देह कोई कारण नहीं कि स्त्री होनेके कारण कोई व्यक्ति प्रमाणित अपराधके लिए दण्डसे बरी हो जाये। परन्तु फीजीसे प्राप्त सभी ब्यौरोंसे साबित होता है कि फीजीमें जो मुकदमे चलाये गये वे बहुत-कुछ पंजाबके मुकदमों-जैसे ही थे। आतंक फैलानेका यह तरीका थोड़ी-सी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए संघर्ष कर रही एक जातिको कुचलनेके लिए ही अपनाया गया है। मुझे लगता है कि फीजीको कांग्रेसका एक शिष्टमण्डल भेजकर हम अपने पीड़ित देशभाइयोंको कोई भी राहत नहीं दे सकेंगे। मैं फीजी सरकारपर कतई कोई विश्वास नहीं करता। वह जाँच करनेके लिए शिष्टमण्डलको कोई सुविधा नहीं देगी। शायद भारत-सरकार शिष्टमण्डलकी भारतसे रवानगी ही रोक दे। मेरे लिए फीजीका संकट असहयोग आन्दोलनको तीव्र करनेका अतिरिक्त कारण प्रस्तुत करता है। इस बीच हमें चाहिए कि जो लोग भारत वापस लौटें, उनकी देख-भालके लिए जितना भी कर सकें, हम करें।[2] ऐसा न हो कि हम वापस आनेवाले भारतीयोंको उनके भाग्यके भरोसे छोड़ दें, और वे निराश होकर फिर फीजी वापस चले जानेकी सोचने लगें। इसलिए मुझे खुशी है कि जो लोग वापस आये हैं, श्री अ० वि० ठक्कर[3] और शान्तिनिकेतनके श्री बनारसीदास[4] उनकी देखभाल कर रहे हैं। श्री ठक्करने अभी-अभी पुरीमें[5] अपना कठिन काम समाप्त किया है और श्री बनारसीदास श्री सी० एफ० एन्ड्रयूजको उनके मानव-हितके कार्योंमें सहायता दे रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९-१२-१९२०

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२. जनवरी १९२० में फीजी सरकारने भारतीय मजदूरोंके गिरमिट रद कर दिये, और उनमें से जो भारत वापस जाना चाहते थे उन्हें जल्दी स्वदेश वापस भेजनेका प्रबन्ध किया गया। परिणामस्वरूप बड़ी संख्यामें लोग फीजीसे लौटे। बहुतेरे तो भारतमें एक तरहसे तबाह हालतमें लौटे।

३. अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर (१८६९-१९५१); एक गुजराती इंजीनियर; सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके आजीवन सदस्य; जीवन-भर सेवाका और हरिजन-कल्याणका काम करते रहे।

४. बनारसीदास चतुर्वेदी, हिन्दी लेखक और पत्रकार; १९२० के जुलाई मासमें चीफ्स कालेज, इन्दौरसे इस्तीफा दिया और बादमें शान्तिनिकेतनमें एण्ड्रयूजके साथ काम करने लगे; **चार्ल्स फ्रीअर एण्ड्रयूज** नामक जीवनीके सह-लेखक; १९५२ से १९६४ तक राज्य सभाके मनोनीत सदस्य।

५. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ २९९-३००, ३१६-१७।

९४. मेरे लिए एक ही डग आगे देखना काफी है

श्री स्टोक्स एक ऐसे ईसाई हैं जो परमात्माके दिखाये हुए पथपर चलना चाहते हैं। उन्होंने भारतको अपना घर बना लिया है। भारतकी मैदानी आबादीसे दूर, कोटागिरिकी पहाड़ियोंमें उन्होंने अपना निवास-स्थान बनाया है और वहाँ वे पहाड़ी जनताकी सेवा कर रहे हैं। वहींसे वे असहयोग आन्दोलनकी गतिविधि देख रहे हैं। कलकत्ताके 'सर्वेन्ट' नामक पत्र तथा अन्य समाचारपत्रोंमें उन्होंने असहयोगपर तीन लेख लिखे हैं। बंगालका दौरा करते समय मुझे इन लेखोंको पढ़नेका सौभाग्य मिला। श्री स्टोक्स असहयोगको सही मानते हैं, किन्तु उसकी पूर्ण सफलता, अर्थात् अंग्रेजोंके भारत छोड़ देनेके सम्भावित परिणामोंसे वे डरते हैं। कल्पनामें उनकी आँखोंके सामने भारतकी ऐसी तस्वीर उभर आती है जिसमें उत्तर-पश्चिमसे वह अफगानोंसे आक्रान्त है और उधर पहाड़ियोंकी ओरसे आकर उसे गोरखे लूट रहे हैं। मैं तो कार्डिनल न्यूमैनके शब्दोंमें यही कहूँगा कि "मैं सुदूर भविष्यकी चिन्ता करनेको नहीं कहता; मेरे लिए तो एक ही कदम आगे देखना काफी है।" यह आन्दोलन मुख्यतः धार्मिक है। ईश्वरसे डरनेवाले हर व्यक्तिका कर्त्तव्य है कि परिणामकी चिन्ता किये बिना वह हर बुराईसे अपनेको अलग रखे। उसे यह विश्वास होना चाहिए कि अच्छे कामका परिणाम अच्छा ही होगा; और मेरी रायमें 'गीता'के निष्काम कर्मका यही सिद्धान्त है। ईश्वरकी ओरसे उसे भविष्यकी चिन्ता करनेकी छूट नहीं है। वह सत्यका अनुसरण करता है, चाहे इसके लिए उसे अपने प्राणोंको ही संकटमें क्यों न डालना पड़े। वह जानता है कि धर्म-पथपर चलते हुए मरना अधर्मका जीवन जीनेसे बेहतर है। इसलिए जिस किसीको यह विश्वास हो कि यह सरकार अधर्मके काम करती है, उसके लिए सरकारसे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ लेनेके सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

फिर भी, अंग्रेजोंके भारतसे एकदम चले जानेपर ज्यादासे-ज्यादा बुरा परिणाम क्या हो सकता है, उसपर भी हम विचार कर लें। गोरखे और पठान हमपर आक्रमण करेंगे तो उससे क्या होगा? निश्चय ही वर्तमान सरकार बराबर हमारे साथ जो नैतिक और शारीरिक हिंसा करती रहती है, उसकी अपेक्षा हम उनकी हिंसासे अधिक अच्छी तरह निपट सकेंगे। श्री स्टोक्स, लगता है, शारीरिक शक्तिके प्रयोगके खयालको त्याग नहीं पाये हैं। निःसन्देह एकताके सूत्रमें बँधे भारतके राजपूत, सिख और मुसलमान वीरोंपर भरोसा किया जा सकता है कि वे उन आक्रमणकारियोंका — चाहे वे किसी एक तरफसे आयें या हर तरफसे आयें — मुकाबला कर सकेंगे। लेकिन जो सबसे बुरी स्थिति हो सकती है, उसीकी कल्पना कीजिए: जापान बंगालकी ओरसे हमला करता है, गोरखे पहाड़ियोंकी ओरसे और पठान उत्तर-पश्चिमकी ओरसे धावा बोल देते हैं। उस हालतमें यदि हम उन्हें शुरूमें ही बाहर न खदेड़ सकें, तो हम उनसे सुलह कर लेंगे और अवसर मिलते ही उन्हें बाहर भगा देंगे। जो राज्य जाने-माने

तौरपर अन्यायपूर्ण है, उस राज्यकी सत्ता स्वीकार करनेकी अपेक्षा तो यह अधिक पौरुषपूर्ण मार्ग होगा।

परन्तु मैं ऐसी किसी निराशापूर्ण सम्भावनाकी कल्पना नहीं करता। यदि अहिंसाके रास्तेसे यह आन्दोलन सफल होता है — और श्री स्टोक्सने अपने लेखका प्रारम्भ ही इसी कल्पनाके आधारपर किया है — तो अंग्रेज चाहे यहाँ रहें या यहाँसे चले जायें, वे जो-कुछ भी करेंगे मित्रोंकी तरह ही करेंगे, और जैसा दो साझेदारोंके बीच किसी अच्छे समझौतेमें होता है, उसी तरह करेंगे। मैं अभीतक मानव-प्रकृतिकी नेकीमें विश्वास करता हूँ, चाहे वह मानव अंग्रेज हो या कोई और। इसलिए मैं ऐसा नहीं मानता कि अंग्रेज यहाँसे "रातोंरात" चले जायेंगे।

और फिर, क्या मैं गोरखों तथा अफगानोंको ऐसा चोर-डाकू मानूँ, जिनमें कोई सुधार हो ही नहीं सकता और जिनपर पावनकारी शक्तियाँ कोई असर डाल ही नहीं सकतीं? मैं तो ऐसा नहीं मान सकता। यदि भारत पुनः अपनी आध्यात्मिकताकी राहपर चलने लगता है तो उसका असर पड़ौसी जातियोंपर भी होगा। वह इन मेहनती किन्तु निर्धन जातियोंके कल्याण-कार्यमें भाग लेगा और यदि जरूरी हुआ तो मदद भी देगा — किसी भयसे नहीं बल्कि पड़ौसीके कर्त्तव्यकी भावनासे प्रेरित होकर। ब्रिटेनके साथ-साथ वह जापानसे भी निपट चुकेगा। जो चीजें यहाँ तैयार की जा सकती हैं, यदि भारत, वैसी एक भी विदेशी चीजका इस्तेमाल करना पाप समझने लग जाता है तो जापान भारतपर कभी आक्रमण नहीं करना चाहेगा। भारत अपने खाने-भरको पर्याप्त अन्न पैदा कर लेता है और भारतके स्त्री-पुरुष बिना कठिनाईके इतना कपड़ा तैयार कर सकते हैं कि वे नंगे न रहें और गर्मी-सर्दीसे अपनेको बचा सकें। हमपर आक्रमण तभी किया जायेगा जब हम दूसरे राष्ट्रोंके साथ इस तरहका व्यवहार रखेंगे जैसे हम उनपर निर्भर हों। इस तरहके व्यवहारसे उनका लोभ बढ़ेगा। हमें हर देशसे स्वतन्त्र रहना सीखना चाहिए।

इसलिए चाहे अन्ततोगत्वा हमें सफलता हिंसासे मिले या अहिंसासे, मेरी रायमें उसके बादके आसार उतने बुरे नहीं हैं, जितने कि श्री स्टोक्स सोचते है। मेरी रायमें, ऐसे किसी परिणामकी कल्पना नहीं की जा सकती जो हमारी आजकी हीन और असहाय अवस्थासे अधिक बुरी हो। और निर्भयता तथा विश्वासके साथ असहयोग और त्यागके खुले और सम्माननीय कार्यक्रमको, जिसे हमने अपने लिए तैयार किया है, अपनानेसे ज्यादा अच्छा और कोई काम हम नहीं कर सकते।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९–१२–१९२०

९५. जाति बनाम वर्ग

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, और इसलिए उसे सामाजिक संगठनका कोई-न-कोई तरीका निकालना ही पड़ता है। हमने अपने देश भारतमें जाति-व्यवस्था विकसित की है और यूरोपवालोंने वर्ग-व्यवस्था की है। लेकिन इनमें से किसीमें वह संहति और स्वाभाविकता नहीं है, जो परिवारमें पाई जाती है, क्योंकि परिवार शायद एक ईश्वर-प्रदत्त संस्था है। अगर जाति-प्रथाने कुछ बुराइयोंको जन्म दिया है तो वर्ग-व्यवस्थाने भी उससे कुछ कम बुराइयोंको जन्म नहीं दिया है।

अगर वर्ग-व्यवस्था कुछ सामाजिक मूल्योंको कायम रखनेमें सहायक होती है तो जाति-प्रथा भी इस दिशामें, उससे अधिक नहीं तो उसके बराबर ही सहायक है। जाति-प्रथाकी खूबी इस बातमें है कि इसका आधार धन नहीं है। इतिहास साक्षी है कि दुनियामें पैसा सबसे बड़ी विघटनकारी शक्ति है। शंकराचार्य कह गये हैं, धनकी कलुषता पारिवारिक सम्बन्धोंकी पवित्रताको भी सुरक्षित नहीं रहने देती। जाति-प्रथा परिवारके सिद्धान्तका विस्तारमात्र है। दोनोंकी संचालक शक्ति रक्त-सम्बन्ध और वंश-परम्परा ही हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिक यह सिद्ध करनेकी कोशिशमें लगे हुए हैं कि वंश-परम्परा एक भ्रम-मात्र है, और जो-कुछ है वह वातावरण ही है। बहुत-से देशोंके पुराने अनुभव इन वैज्ञानिकोंके निष्कर्षोंको गलत सिद्ध कर देते हैं। लेकिन अगर वातावरणके सिद्धान्तको स्वीकार भी कर लिया जाये तो यह आसानीसे सिद्ध किया जा सकता है कि उपयुक्त वातावरण बनाये रखने और विकसित करनेमें वर्गसे कहीं अधिक सहायक जाति हो सकती है। आंग्ल-सैक्सन जातिके लोग स्वभावसे ही ऐसे होते हैं कि वे अपने दृष्टिकोणके अलावा किसी औरका दृष्टिकोण समझ ही नहीं पाते। इसलिए जो भी चीज उनकी प्रकृतिके विरुद्ध जाती है, उसके प्रति उनका तीव्र विरोध करना आसानीसे समझा जा सकता है। लेकिन भारतीयोंको — चाहे वे हिन्दू हों या ईसाई — इतना तो समझ ही सकना चाहिए कि जाति-प्रथाके पीछे कोई अहंकारपूर्ण श्रेष्ठताकी भावना नहीं है, यह आत्मसंस्कारकी विभिन्न प्रणालियोंका एक विभाजन-मात्र है। यह सामाजिक संस्थिति और प्रगतिके बीच तालमेल बनाये रखनेका सबसे अच्छा तरीका है। जैसे परिवारकी भावना एक-दूसरेको प्यार करने-वाले और परस्पर रक्त-सम्बन्ध तथा अन्य सम्बन्धोंसे बँधे लोगोंको एक करती है, वैसे ही जाति भी एक विशेष ढंगसे शुद्ध जीवन बितानेवाले परिवारोंको (न कि एक खास जीवन-स्तर, यानी एक खास आर्थिक-जीवन-स्तरवाले परिवारोंको) आपसमें एक करनेकी कोशिश करती है। यह जो नहीं करती वह यह है कि अमुक परिवार किस विशेष जातिका है, इस बातका निर्णय किसीकी सनकपर या चन्द व्यक्तियोंके पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोणपर नहीं छोड़ देती। यह वंश-परम्पराके सिद्धान्तमें विश्वास करती है और चूँकि यह मात्र एक रहन-सहनकी प्रणाली है, इसलिए यह ऐसा मानकर नहीं

चलती कि अगर कोई व्यक्ति या परिवार अपने रहन-सहनका ढंग अच्छा बनानेके लिए उसमें कुछ परिवर्तन करके भी उस समुदायमें बना रहे तो इसमें कोई बड़ा अन्याय हो जायेगा। जैसा कि हम सभी जानते हैं, सामाजिक जीवनमें परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे आता है, और इस प्रकार जाति-व्यवस्थामें, दरअसल, इस बातकी छूट रहती है कि जीवन-पद्धतिमें जो परिवर्तन आयें उनके अनुसार नये समुदायोंका गठन किया जाये। लेकिन ये परिवर्तन चुपचाप और बहुत सहज तरीकेसे होते हैं — ठीक वैसे ही जैसे बादलोंके आकारमें होते रहते हैं। मानव-समाजकी इससे अधिक सामंजस्यपूर्ण किसी व्यवस्थाकी कल्पना करना कठिन है।

जाति उच्चता या नीचताका बोधक नहीं है। यह तो अलग-अलग दृष्टिकोणों और तदनुरूप जीवन-पद्धतियोंकी स्वीकृति-मात्र है। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि जाति-प्रथामें एक प्रकारकी श्रेणियाँ बन गई हैं, लेकिन इसे ब्राह्मणोंका काम नहीं कहा जा सकता। जब सभी जातियाँ जीवनके एक सामान्य लक्ष्यको स्वीकार करके चलती हैं तो श्रेणियाँ बन जाना अवश्यम्भावी है, क्योंकि सभी जातियाँ उस आदर्शको समान रूपसे चरितार्थ नहीं कर सकतीं। अगर सभी जातियाँ मानें कि निरामिष भोजन सामिष भोजनसे अच्छा है, तो जो जाति निरामिष भोजी है उसे बाकी सभी जातियाँ ऊँची नजरोंसे तो देखेंगी। भारतमें कुछ उपजातियाँ भी हैं, जो सदासे एक-दूसरेकी समकक्षी रही हैं, लेकिन कभी भी उनका आपसमें रोटी-बेटीका सम्बन्ध नहीं रहा है। जैसे हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग धर्म माननेके कारण अपनेको एक-दूसरेसे नीच नहीं समझते, या जैसे दक्षिण भारतमें कोई ब्राह्मण या लिंगायत एक साथ खान-पान नहीं करता, उसी तरह सभी जातियाँ अपने खान-पानका सम्बन्ध अपनी-अपनी जातिमें ही सीमित रख सकती हैं। दूसरी जातियोंने ब्राह्मणों या वैष्णवोंके खान-पानके स्तरको सबसे अच्छा मानकर ही तो "पवित्रतर" जातियोंके हाथों दिया गया भोजन खाना स्वीकार किया है।

स्पर्श, पीना, खाना और विवाह — ये निजी मामले हैं। लेकिन किसीका स्पर्श करनेसे इनकार करके तो आप लगभग उससे किसी तरहका सम्बन्ध रखनेसे ही इनकार कर देते हैं। इस तरह उसके लिए सामाजिक प्रगतिके सारे सुधार अलभ्य हो जाते हैं। उदाहरणके लिए स्पृश्य जातियोंके सभी लोग कथा-कीर्तनमें शामिल हो सकते हैं। वे मन्दिरोंमें जा सकते हैं और इस तरह धर्म-कर्म तथा कला आदिकी मुफ्त शिक्षा पा सकते हैं। मन्दिरोंमें स्पृश्य जातियोंके सभी लोग स्नेह और सेवा तथा सभ्यताके वरदानोंका परस्पर आदान-प्रदान करते हैं। लेकिन 'अस्पृश्य' लोग सहज ही इन सभी लाभोंसे वंचित हो जाते हैं। कई स्थानोंमें वे गाँवसे बाहर रहनेको मजबूर होते हैं, और इस तरह उनके जान-मालको भी सुरक्षा नहीं मिल पाती। जहाँतक श्रमके सामाजिक विभाजनकी बात है, वे समाजके लिए एक सबसे महत्वपूर्ण काम करते हैं, लेकिन जातियोंके पारस्परिक सहयोग और सम्बन्धसे जिस महान सामाजिक जीवनका विकास होता है, उसके वरदानोंसे वे वंचित रह जाते हैं। अस्पृश्यताने "दलित" वर्गोंको हिन्दू समाजका एक सर्वथा उपेक्षित अंग बना दिया है। खान-पानके सवालका

कोई सामाजिक महत्व नहीं हैं, या नहीं होना चाहिए। यह तो मात्र शारीरिक भूखकी तुष्टि है। दूसरी ओर खान-पान सम्बन्धी निषेध इन्द्रियोंको संयमित रखनेका एक तरीका है। खान-पानके सम्बन्धमें से भ्रातृत्व-भावको कभी कोई खास उत्तेजन मिलते नहीं देखा गया है। लेकिन इस सम्बन्धमें संयम बरतनेसे इच्छा-शक्तिके विकासमें और कुछ सामाजिक मूल्योंको कायम रखनेमें बड़ी सहायता मिली है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २९–१२–१९२०

९६. विद्वान नरसिंहरावके प्रति

गुजरातके प्रसिद्ध विद्वान नरसिंहरावने[1] जो खुला पत्र लिखा है वह अनायास ही मेरी दृष्टिमें आ गया। मुझे समाचारपत्र पढ़नेका समय कदाचित् ही मिल पाता है और यात्राके दौरान समाचारपत्र मिलते भी कभी-कभी ही हैं, अतएव मैं प्रायः ऐसे लेखोंको पढ़े बिना रह जाता हूँ।

अगर मैं उपरोक्त पत्र न पढ़ता तो ठीक न होता। श्री नरसिंहरावने अत्यन्त प्रेमभाव और निर्मल हृदयसे यह पत्र लिखा है। यह मैं स्पष्ट देख सकता हूँ कि मेरी वर्तमान प्रवृत्तिसे उन्हें दुःख हुआ है। उनका पत्र पढ़कर दूसरोंको भी उन्हीं जैसा लग सकता है। कुछ विस्तारके साथ कह कर भी अगर मैं इस दुःखका निराकरण कर सकूँ तो मुझे प्रसन्नता होगी। मैं पत्रका उत्तर देनेका प्रयत्न करता हूँ।

नरसिंहरावजीका पत्र इस एक मान्यतापर आधारित है कि जिस सात्विक और धार्मिक भावनाके दर्शन उन्होंने मुझमें सन् १९१५में और उसके बाद भी किये थे। वे उन्हें आज दिखाई नहीं पड़ते। उनकी धारणा है कि आज मैं राजनीतिके सागरमें गोते खा रहा हूँ और मोहमें पड़ा हुआ हूँ।

मेरी आत्मा कहती है कि मैं जैसा १९१५में था वैसा ही आज भी हूँ। मेरी धर्म और न्यायवृत्ति आज [पहलेसे] अधिक जागृत है।

मुझे आशंका है कि नरसिंहराव मेरे भूतपूर्व जीवनसे अपरिचित हैं। मैंने अपना सारा जीवन राजनीतिमें ही व्यतीत किया है। मैं धार्मिक प्रवृत्तिको राजनीतिक प्रवृत्तिसे भिन्न नहीं मानता। मैंने सदा "राजनीतिमें धर्मवृत्तिका समावेश"[2] करनेके गोखलेके मन्त्रको ठीक माना है, और उसपर यथाशक्ति अमल किया है।

सरकारके विषयमें मैं जिन विशेषणोंका प्रयोग करता हूँ वैसे विशेषणोंका प्रयोग मैंने दक्षिण आफ्रिकामें सत्याग्रह युद्धके समय किया था। मैंने कभी नहीं माना कि उनका उपयोग करते समय मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। कुछेक अंग्रेज मित्र अवश्य

१. १८५९–१९३७; गुजराती कवि और साहित्यकार; गुजरातीके प्रोफेसर, एलफिन्स्टन कालेज, बम्बई।

२. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ८२-८३ और खण्ड १४, पृष्ठ १८८।

ऐसा मानते थे। उन्होंने अपनी इस मान्यताके लिए अन्तमें पश्चात्ताप किया। उनमें से नेटालके एक स्वर्गीय श्री एस्कम्ब थे और दूसरे दक्षिण आफ्रिकाके वर्तमान प्रधान मन्त्री जनरल स्मट्स हैं।

'प्रेमल ज्योति'के[1] भजनकी झंकार आज भी मेरे कानोंमें गूँजती है। आज भी उसका आदेश मेरा लक्ष्य है। आज भी मैं प्रतिक्षण ईश्वरीय प्रेरणाकी याचना कर रहा हूँ।

तथापि पाश्चात्य संस्कृतिको भूल जानेकी सलाह मैंने उस समय भी दी थी। इस संस्कृतिके अनुकरणमें हिन्दुस्तानका नाश मुझे सन् १९०८में स्पष्ट रूपसे दिखाई दिया। अपनी इस मान्यताको सबसे पहले मैंने एक अंग्रेज रईसके[2] सामने व्यक्त किया और जब मैं इंग्लैंडसे दक्षिण आफ्रिका वापस आ रहा था तब उसी वर्ष (१९०८में)[3] 'इंडियन ओपिनियन'में उसे प्रकाशित किया। अन्तमें वे लेख 'हिन्द-स्वराज्य'[4] नामक पुस्तकके रूपमें संग्रहीत हुए। मैं उसे अथवा इसके अनुवादको श्री नरसिंहरावसे पढ़ जानेकी प्रार्थना करना चाहता हूँ। उससे उन्हें मेरी आधुनिक प्रवृत्तिके सम्बन्धमें अधिक जानकारी मिल जायेगी।

लेकिन पाश्चात्य संस्कृतिके त्यागका अर्थ सब अंग्रेजी वस्तुओंका त्याग अथवा अंग्रेज जनताके प्रति द्वेषभाव मैंने कभी नहीं माना और आज भी नहीं मानता। मैं 'बाइबिल'का पुजारी हूँ। यीशु द्वारा पर्वतपर दिया गया उपदेश मेरे लिए आज भी मंगलमय है। उसके मधुर वाक्य आज भी मेरे हृदयके सन्तापको शीतल कर सकते हैं। रस्किन और कार्लाइलके कितने ही लेखोंको मैं आज भी प्रेमभावसे पढ़ता हूँ। अनेक अंग्रेजी भजनोंके सुर और उनकी कड़ियाँ आज भी मुझे अमृत-तुल्य लगती हैं। ऐसा होनेपर भी पाश्चात्य पद्धतिके त्यागको मैं इष्ट मानता हूँ, धर्म समझता हूँ।

पाश्चात्य संस्कृति अर्थात् पश्चिममें मान्य आजके आदर्श और उनपर प्रतिष्ठित पाश्चात्य प्रवृत्तियाँ। पशुबलको प्रधानपद, धनको भगवानका ओहदा, ऐहिक सुखकी प्राप्तिमें समयका अपव्यय, अनेक प्रकारके दुनियावी भोगोंको पानेके लिए अद्भुत साहस, यान्त्रिक शक्तिको बढ़ानेके निमित्त मानसिक शक्तियोंका असीमित प्रयोग, संहारक अस्त्रोंकी खोज निकालनेमें करोड़ों रुपयोंका खर्च और यूरोपसे बाहरके राष्ट्रोंकी जनताको हीन समझना धर्म। इस संस्कृतिको मैं सर्वथा त्याज्य मानता हूँ।

यह सब होनेके बावजूद मैं अंग्रेजी राज्यके आंचलको पकड़े हुए था क्योंकि मैंने भ्रान्तिवश मान लिया था कि उसमें उपर्युक्त संस्कृतिको खण्डित करनेका साहस

१. न्यूमैनकी कविता, "लीड काइन्डली लाइट" का नरसिंहराव दिवेटिया द्वारा किया गया गुजराती अनुवाद।

२. सम्भवतः लॉर्ड ऍम्टहिल; जिनसे गांधीजीकी मुलाकात १९०९ में इंग्लैंडमें हुई थी।

३. यह वस्तुतः १९०९ होना चाहिए। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके शिष्टमण्डलके एक प्रतिनिधिके रूपमें गांधीजी इस वर्ष मध्य जुलाईसे लेकर १३ नवम्बर तक इंग्लैंडमें थे।

४. जनवरी १९१० में; **हिन्द-स्वराज्य**का एक अंग्रेजी अनुवाद, जो स्वयं गांधीजीने किया था, इसी वर्ष मार्च महीनेमें प्रकाशित हुआ था। देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६-६९।

है। अब मैं मानता हूँ कि अंग्रेजी-राज्यमें जितनी शैतानियत है उतनी कदाचित् जर्मनोंमें भी नहीं है। मेरी यह मान्यता गलत हो तो भी दोनों कमसे-कम एक जैसे तो अवश्य हैं।

तुलसीदासने रावण-राज्यकी जिन-जिन विशेषताओंका वर्णन किया है वे सबकी सब अंग्रेजी राज्यपर चरितार्थ होती हैं, इसीसे मैं इसे रावण-राज्य कहता हूँ। मेरे इस कथनमें कोई रोष नहीं है, "पुण्यप्रकोप" भी नहीं है। यह तो शान्तचित्त हो अच्छी तरहसे सोच-विचारके बाद निकाला हुआ निष्कर्ष है। तथापि प्रत्येक अंग्रेज अथवा अंग्रेज अधिकारी राक्षस है, मेरे कहनेका आशय यह नहीं है। फिर भी प्रत्येक अधिकारी राक्षसी तन्त्रको चलानेवाला होनेके कारण जाने-अनजाने अन्यायका, दगाका और अत्याचारका साधन बन जाता है। ऐसी मेरी मान्यता होनेके बावजूद अगर मैं इसे छिपाता हूँ तो कहा जायेगा कि मैंने सत्यका अनादर किया। चोरको चोर और पापीको पापी कहनेमें अविवेक नहीं है और न ही यह बैल हाँकनेवाले किसान द्वारा दी जानेवाली गालीके समान [बुरी आदत ही] है। इसके विपरीत अगर यह बात शुद्ध मनसे कही गई हो तो यह प्रेमकी सूचक हो सकती है।

यदि मैंने इस जीवनमें किसी भी वस्तुका अनन्य दृढ़ताके साथ सेवन किया है तो वह है अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्यका। इन तीनोंका पालन करना कितना कठिन है, इसे मेरी अन्तरात्मा ही जानती है। और मेरी मान्यता है कि मैंने इन तीनोंका कर्म और वचनसे अच्छी तरह पालन किया है। मेरे मनमें क्रोधका भाव कभी उत्पन्न नहीं हुआ, ऐसा कहूँ तो यह असत्य भाषण होगा; मनमें विषय वासना नहीं जगी ऐसा कहूँ तो पापी बनता हूँ; तथापि मेरी मान्यता है कि अगर इन तीनों वस्तुओंका मन, वचन और कर्मसे सर्वांग पालन करनेकी पूरी-पूरी शक्ति मुझमें होती तो नरसिंहरावके मनमें जिस संशयका उदय हुआ वह कदापि न होता। इतना कहनेके बाद भी मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि मैं जनरल डायरका लेशमात्र भी बुरा नहीं चाहता, न उन्हें उपदेश देनेकी मुझे कोई इच्छा ही है। अगर वे बीमार पड़ जायें तो मैं प्रेमपूर्वक उनकी तीमारदारी करूँ। लेकिन अपने पैसेमें से उन्हें पेन्शन देकर उनके पापमें मैं कभी भी भागीदार नहीं बन सकता। उनके पाशविक कृत्यको मैं कम महत्व दूं यह नहीं हो सकता। उनका कृत्य पैशाचिक था, इस सम्बन्धमें मुझे जरा भी शंका नहीं है। उनके कृत्यको अंग्रेजोंने "विचारदोष" मानकर उनके पापको अपने ऊपर ओढ़ लिया है।

यीशुने अपने युगको 'सर्पयुग' कहा था सो कोई क्रोधमें नहीं कहा था। जहाँ सच बोलते हुए सब लोग डरते थे वहाँ यीशुने सच बोलनेका दायित्व अपने ऊपर लेकर स्पष्ट भाषामें हर तरहके दम्भ, दर्प और झूठका वर्णन करके निर्दोष व्यक्तियोंको उनसे सावधान किया उन्हें और बचाया था। महात्मा बुद्ध जब भेड़के बच्चेको अपने कन्धे-पर उठाकर उस स्थानपर पहुँचे जहाँ अत्याचारी ब्राह्मण पशुवध कर रहे थे तब उन्होंने उन लोगोंको जिस भाषामें सम्बोधित किया वह भाषा कोमल नहीं थी, फिर भी वह उनकी आत्माके प्रेमसे सराबोर थी। उनकी तुलनामें मैं कौन हूँ? तिसपर भी इसी

जीवनमें प्रेमकी हदतक उनकी बराबरी करनेकी अभिलाषा रखता हूँ। इसके लिए पाठक मुझे उद्धत मानेंगे। श्री नरसिंहरावके ही हमनाम गुजरातके नरसिंह मेहता मेरे परम आदर्श हैं। उनका प्रेम बुद्धके प्रेमसे कुछ कम नहीं था।

सम्भव है कि मैं भूल कर रहा होऊँ, अंग्रेजोंके प्रति अन्याय कर रहा हूँ अथवा इतिहासको मैंने गलत समझा हो। लेकिन मेरी प्रवृत्ति वैरसे भरी हुई है अथवा वह कम धार्मिक है, यह बात कतई नहीं है। जो मित्र भ्रान्तिमें पड़कर मेरी ओरसे सफाई देना चाहते हैं, उनसे मेरी प्रार्थना है कि पहले वे मुझे अच्छी तरह जान लें। मैं निर्मल बनने और रहनेका प्रयत्न करता हूँ; किन्तु भूलसे भरा हूँ और भूल सुधारनेको तत्पर हूँ। इस जगतमें मेरे पास ऐसी कोई चीज़ नहीं है जिसे मैं छिपाना चाहूँ। जो विचार मुझे सूझते हैं उन्हें मैं तुरन्त व्यक्त कर देता हूँ। लेकिन मैं बहुत ज्यादा सोच-समझकर कार्य करनेवाला व्यक्ति होनेके कारण एकाएक अपने मतको छोड़ नहीं सकता। कोई आश्चर्य नहीं कि इसके कारण मेरे साथी मुझे 'स्वेच्छाचारी' मानते हों। मैं 'स्वेच्छाचारी' नहीं हूँ, ऐसी मेरी विनम्र मान्यता है। स्वेच्छाचारी व्यक्ति दूसरोंकी सुनना ही नहीं चाहता। मुझे तो याद पड़ता है कि मैं बच्चोंतक की भी बात सुनता हूँ और उनसे मैंने बहुत सीखा है। मैंने अहीरों और किसानोंसे भी बहुत ज्ञान प्राप्त किया है।

मैंने ऊपर 'साथी' शब्दका प्रयोग किया है। "मेरे अपने कोई अनुयायी नहीं हैं। मेरे विचारोंके अनुयायी भले ही हों।" मेरे इस कथनको श्री नरसिंहरावने 'शब्द-जाल' मानकर अनजाने ही मेरे साथ अन्याय किया है। मैंने किसीको धर्मगुरुका पद प्रदान नहीं किया और मैं खुद अपनेको उस पदके योग्य नहीं समझता। जबतक मन, वचन और कर्मसे यम-नियम आदि व्रतोंका पूरी तरहसे पालन करनेकी शक्ति मुझमें नहीं आती तबतक मैं अनेक भूलें कर सकता हूँ। ऐसा व्यक्ति किसीको शिष्य नही बना सकता। कुछ वर्ष पहले मैंने एक ही मित्रको, और वह भी उनके आग्रहवश ही, शिष्य बनानेकी भूल की थी। उसमें मुझे धोखा खाना पड़ा। मेरा गुरुपन चल ही न सका। मेरी परीक्षा मिथ्या सिद्ध हुई।

इस युगमें किसीको गुरु बनाने अथवा किसीका गुरु बननेकी बातको मैं बहुत जोखिमकी बात समझता हूँ। गुरुमें हम पूर्णताकी कल्पना करते हैं। अपूर्ण मनुष्योंको गुरु बनाकर हम अनेक भूलोंके शिकार बन जाते हैं। इसीसे मैंने जानबूझकर कहा है कि मेरे विचारोंका अनुसरण करनेवाले व्यक्ति मुझे पसन्द हैं; अनुयायी मैं नहीं चाहता। विचारोंका अनुसरण करनेमें ज्ञानकी आवश्यकता है और मनुष्यका अनुसरण करनेमें श्रद्धा प्रधान है। मैं अपनी श्रद्धा-भक्ति नहीं चाहता। अपने विचारोंके प्रति भक्ति अवश्य चाहता हूँ। और वह तो ज्ञानपूर्वक ही हो सकती है। तिसपर भी मैं जानता हूँ कि फिलहाल अनेक लोग मुझपर मोहित होनेके कारण मेरे विचारोंका अनुसरण करते हैं। उनके पापोंको मैं अपने ऊपर नहीं ओढ़ता क्योंकि उन्हें मैं अपना अनुयायी नहीं मानता। अपने अनुयायी और अपने विचारोंके अनुयायियोंके बीच उतना ही फर्क है जितना, ग्लैडस्टनके अनुसार, एक व्यक्तिको मूर्ख कहने और उसके विचारोंको मूर्खतापूर्ण कहनेमें है।

लेकिन श्री नरसिंहरावको मुझमें कुछ अन्य दोष भी नजर आते हैं जो गुरुओंमें विशेष रूपसे होते हैं। मैं चरणस्पर्शके सामने सत्याग्रह नहीं करता — उसकी निन्दा करनेके बावजूद — लोगोंको चरणस्पर्श करने देता हूँ, यह क्या है? मैं विनयपूर्वक इन भाईको बताना चाहता हूँ कि चरण-स्पर्श सत्याग्रहका विषय नहीं है। इसके मूलमें कोई दोष अथवा पाप नहीं है जिसके विरुद्ध सत्याग्रह किया जाये। और फिर असंख्य सीधे-सादे स्नेहशील किसानोंको, जिन्हें हमेशासे चरणस्पर्श करनेकी आदत पड़ गई है, एकाएक कौन समझा सकता है? मैं श्री नरसिंहरावको विश्वास दिलाता हूँ कि चरण-स्पर्श अथवा जयघोषसे मैं बहुत घबराता हूँ। भाई शौकत अली मुझे चरणस्पर्श रूपी प्रहारोंसे बचानेकी हमेशा बहुत कोशिश करते हैं, बहुत सारे स्वयंसेवकोंकी भी यही कोशिश रहती है लेकिन इससे मैं पूरी तरहसे छुटकारा नहीं पा सका हूँ। इसके विरुद्ध उपवास रखकर अथवा मौनव्रत द्वारा सत्याग्रह करनेकी मेरी हिम्मत नहीं, इच्छा नहीं। जयघोषसे मुझे इतनी अकुलाहट होती है कि मैं कई बार सचमुच अपने कानोंमें रुई देता हूँ। पूजासे भ्रमित न होने और तिरस्कारसे अपने कर्त्तव्यका त्याग न करनेका मैं नरसिंहरावको विश्वास दिलाता हूँ।

श्री नरसिंहरावने मुझे बांदरा प्वाइन्टपर[1] आनेका आमन्त्रण दिया है। मैं वहाँ केवल साधु पुरुष दयाराम गिदुमलसे[2] मिलनेके लिए जाना चाहता था। उनके विषयमें मैंने हैदराबादमें उनके परिवारके लोगोंसे कुछ बातें सुनी थीं। श्री नरसिंहरावने उन्हें अपने घरमें परम सम्मानित अतिथिके रूपमें रखकर बहादुरी दिखाई है, उसके लिए वहाँ जाकर उन्हें बधाई देनेका भी मेरा उद्देश्य था। अत्यधिक व्यस्त होनेके कारण मैं अपने इस उद्देश्यको पूरा न कर सका।

बांदरा प्वाइन्टपर जाकर मुझे आश्वासन मिलेगा अथवा वहाँ मुझे 'प्रेमल ज्योति'-के विशेष रूपसे दर्शन होंगे, ऐसी मुझे आशा नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व बांदरामें जाकर रहनेका अवसर मुझे मिला था लेकिन मैंने उसे जानबूझकर त्याग दिया था। बम्बईका कसाईघर बांदरामें है। मैं जब-जब बांदरासे होकर निकलता हूँ तब-तब वह कसाई-घर मेरे हृदयको बेधता है। बांदरामें चाहे कितने ही सुन्दर दृश्य क्यों न हों, वे सब मुझे निर्दोष पशुओंके रक्तसे सने हुए जान पड़ते हैं और इसीसे वहाँ जाते हुए मेरी आत्मा दुःखी होती है। ऐसा दूसरा स्थान कलकत्ता है, वहाँ रहना भी मुझे विषम लगता है। वहाँ हिन्दूधर्मके नामपर असंख्य बकरोंका कत्ल होता है। वह मुझसे सहन नहीं किया जाता। तथापि मैं बांदरा जानेका प्रयत्न अवश्य करूँगा। लेकिन उद्देश्य तो अभी पहला ही रहेगा। और 'प्रेमल ज्योति'की झाँकी तो मुझे जब वह निर्मल संयमसे हृदय-मन्दिरमें विभूषित होती है, मिल जाती है और परम शान्ति प्रदान करती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-१२-१९२०

१. बम्बईमें; नरसिंहराव इस समय वहाँ रहते थे।

२. १८५७-१९३९; समाज-सुधारक; सेवासदन, बम्बईके संस्थापक।

९७. भाषण : विदेशोंमें प्रचारपर[1]

२९ दिसम्बर, १९२०

इस समाचारपत्रका मूल्य उसकी उपयोगिताके मुकाबिलेमें बहुत ज्यादा है। इसका प्रभाव अंग्रेज लोगोंकी सम्मतिपर लगभग नगण्य है। अंग्रेज लोगोंकी भारततक पहुँचाई जाने योग्य रायके वाहनकी तरह भी यह समाचारपत्र कोई जागरूक साधन नही है। अब चूँकि हमने असहयोग छेड़ ही दिया है और हम स्वावलम्बी बननेका संकल्प कर चुके हैं इसलिए हमारा ब्रिटिश कमेटीको भंग कर देना और 'इंडिया' का प्रकाशन बन्द कर देना संगत होगा। अपना समस्त ध्यान और अपने सर्वोत्तम कार्यकर्ताओंको भारतके कल्याणार्थ केन्द्रीभूत करना मैं कहीं ज्यादा पसन्द करूँगा; फसल तो बहुत अच्छी है लेकिन काटनेवाले कम हैं। हम अपना एक भी कार्यकर्ता विदेशोंमें प्रचार करनेके लिए नहीं दे सकते।

अगर हम ब्रिटिश कमेटीको कायम रखते हैं तो हमें अपने अनुष्ठानके सम्बन्धमें सहायता मिलनेकी अपेक्षा हानि होनेकी अधिक सम्भावना है। यदि हम यहाँ थोड़ा बहुत काम भी करते रहें तो हमें प्रचारकी जरूरत नहीं पड़ेगी। मैं चाहता हूँ कि अन्य देश मेरी बात समझनेका प्रयास करें। वहाँके लोग कामकी बातको ही — केवल कामको — समझते हैं। जब कभी हम किसी एक भी ठोस तथ्यको प्रसारित कर पाये हैं, हमारे विरोधियोंने तरह-तरहकी हिकमतोंसे उसका खण्डन किया है। आप ब्रिटिश लोगोंको उनकी नेकनीयतीपर छोड़ दीजिए, तब एजेंसीकी मार्फत समाचारोंको न भेज-कर आप जो त्याग करेंगे उसकी भावनाको समझ जायेंगे। कामको देखते हुए हमारी संख्या बहुत ही कम है। हमें अपने सभी साधनोंको काममें लाना चाहिए। अच्छा हो यदि हम ४५,०००) रुपया यहाँ खर्च करें।

[अंग्रेजीसे]

महात्मा, खण्ड २; तथा महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

---

१. यह भाषण नागपुर कांग्रेस अधिवेशनमें इस आशयका प्रस्ताव पास करते समय दिया गया था कि ब्रिटिश कांग्रेस कमेटीके तथा उसके पत्र, **इंडिया**को जो पिछले ३० वर्षोंसे लन्दनसे प्रकाशित होता था, बन्द कर दिया जाये। द्वितीय अनुच्छेद महादेव देसाई (२९ दिसम्बर, १९२०) की हस्तलिखित डायरीमें इस भाषणको एक हिस्सेके रूपमें दिया गया है; और **महात्मा,** खण्ड २ से लिया गया प्रथम अनुच्छेद भी, जो बिना तारीखका है, उसी भाषणका अंश प्रतीत होता है।

१८. असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावका मसविदा[1]

[३० दिसम्बर १९२० के पूर्व]

यह कांग्रेस उस प्रस्तावपर, जिसे पिछले विशेष अधिवेशनमें[2] पारित किया गया था और जिसमें सरकारके प्रति प्रगतिशील अहिंसात्मक असहयोगका इसलिए परामर्श दिया गया था कि खिलाफत तथा पंजाबकी गलतियाँ ठीक की जा सकें और स्वराज्य प्राप्त किया जा सके, फिरसे जोर देते हुए यह विचार व्यक्त करती है कि अब समय आ गया है कि "क्रमशः" शब्दको उन अनुच्छेदोंसे निकाल दिया जाये जिनमें कहा गया था कि सम्बद्ध अथवा सहायता पानेवाले स्कूलों तथा कालेजोंमें पढ़नेवाले लड़कोंको पढ़ने न भजा जाये तथा वकील लोग ब्रिटिश कचहरियोंमें वकालत करना बन्द कर दें। इसलिए वह प्रस्ताव रखती है कि "क्रमशः" शब्द हटा दिया जाये।

राष्ट्रने अबतक असहयोगके कार्यक्रमको चलाने और विशेष तौरसे वोटरों द्वारा कौंसिल निर्वाचनोंका[3] बहिष्कार किये जानेमें जो प्रगति की है उसपर यह कांग्रेस उसे बधाई देती है और विश्वास प्रकट करती है कि जो लोग मतदाताओंके निश्चित मतकी अवहेलना करके चुनावमें खड़े होकर कौंसिलोंमें चले गये हैं वे वहाँसे इस्तीफा दे देंगे। इस कांग्रेसके विचारमें कौंसिलके सदस्योंका अपनी सीटपर जमे रहना गणतन्त्रके सिद्धान्तका प्रत्यक्ष अनादर होगा।

यदि विभिन्न चुनाव क्षेत्रोंके वोटरों द्वारा घोषित उनकी इच्छाके बावजूद तथा-कथित प्रतिनिधि अपनी सीटोंपर जमे रहते हैं तो कांग्रेसका ऐसा मत है कि वोटरोंको चाहिए कि वे दृढ़ निश्चय कर लें कि उन प्रतिनिधियोंके पास किसी प्रकारकी कोई राजनैतिक सेवा लेनेके लिए न जायेंगे और यदि प्रतिनिधि भी उनकी ऐसी कोई सेवा करेंगे तो वे उसे स्वीकार नहीं करेंगे।

यह कांग्रेस उस शिक्षाके तुरन्त रोक दिये जानेपर सबसे अधिक जोर देती है जिसे देशके युवक ऐसी सरकारके तत्त्वावधान अथवा प्रभावमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपमें पा रहे हैं, जिसने सत्याग्रहके वर्षके[4] अन्तर्गत भारतके मुसलमानोंकी पवित्र भावनाओंकी पूर्ण अवहेलना की है और जिसने पंजाब शासन-विभागके निरंकुश अत्याचारोंके कारण समस्त भारतमें उत्पन्न हुई उद्विग्नताकी ओरसे कानमें तेल डाल लिया है और इस कारण जिसपर राष्ट्रका विश्वास नहीं रहा है। वह अभिभावकोंको सरकारी स्कूलों तथा

१. यह प्रस्ताव कांग्रेसके नागपुर अधिवेशनमें ३० दिसम्बर, १९२० को पास हुआ था और चित्तरंजन दास द्वारा पेश किया गया था। गांधीजी द्वारा लिखित बिना हस्ताक्षरके इस मसविदेपर अंकित है "केवल निजी वितरण और परामर्शके लिए"। पारित प्रस्तावके पाठके लिए देखिए परिशिष्ट १।

२. सितम्बर १९२० में कलकत्तेमें हुआ।

३. नवम्बर १९२० में।

४. १९१९।

कालेजोंसे अपने बच्चे हटा लेने तथा १६ या उससे अधिक आयुके बच्चोंको ऐसे स्कूलों तथा कालेजोंसे अलग हो जानेकी सलाह देती है।

देशके नवयुवकोंकी शिक्षा स्वतन्त्र और स्वच्छ वातावरणमें जारी रखनके लिए यह कांग्रेस सहायता प्रदत्त अथवा सम्बद्ध संस्थाओंके मालिकों, ट्रस्टियों, शिक्षाविदों, संचालकों और शिक्षकोंको सलाह देती है कि वे सरकारसे सहायता लेना बन्द कर दें और अपने-अपने स्कूलोंकी सम्बद्धता त्याग दें तथा उन्हें सरकारी नियन्त्रणसे पूरी तरह स्वतन्त्र कर लें। वह देशके मालदार पुरुषों तथा शिक्षा विशेषज्ञोंसे यह अनुरोध भी करती है कि राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, नये स्कूल तथा कालेजोंको खोलनेकी व्यवस्था की जाये ताकि प्रत्येक बच्चेको राष्ट्रकी आवश्यकताके अनुसार उपयुक्त शिक्षा प्राप्त हो सके।

यह कांग्रेस वकीलोंसे अपील करती है कि देशमें जो नवीन भावना जागृत हो गई है वे उसे पहचानें और अपनी वकालत छोड़कर अपना ध्यान केवल मुकदमे लड़नेवालोंसे अदालतोंके बहिष्कार और झगड़ोंको निजी पंचायतों द्वारा तय करवानेकी ओर लगायें। यह कांग्रेस धनाढ्य व्यक्तियोंसे अपील करती है कि वे जरूरतमन्द वकीलोंकी धनसे सहायता करके उनका मार्ग सुगम बनायें।

यह कांग्रेस पुलिस, फौज तथा जनसाधारणके बीच नित्य मित्रताको बढ़ते हुए देख रही है और आशा करती है कि जो लोग पुलिस अथवा सेनामें काम करते हैं वे जनताके कष्टोंको अपना कष्ट समझ कर अपने ऊपर लगाये गये इस लांछनको मिटा देंगे कि वे सिद्धान्तहीन भाड़के टट्टू हैं और जनताकी भावनाओंके प्रति कोई आदरभाव नहीं रखते।

यह कांग्रेस सरकारी नौकरी करनेवाले सभी लोगोंसे अपील करती है कि वे वफादारीके साथ नौकरीकी शर्तोको निभाते हुए आत्म-शुद्धिके लिए की गई राष्ट्रकी पुकारका जवाब दें और लोगोंके साथ अत्यन्त दयालुता और ईमानदारीका व्यवहार करते हुए राष्ट्रीय कार्यमें अन्य रूपसे सहायक हों और निडर होकर खुलेआम सभी सार्वजनिक सभाओंमें जायें; किन्तु कोई सक्रिय भाग न लें।

यह कांग्रेस देशके पूँजीपतियों, व्यापारियों, व्यवसायियों और दूकानदारोंसे कहती है कि वे अपने-अपने-धन्धोंमें देशभक्तिकी भावनाका संचार करके राष्ट्रीय कार्यमें हाथ बँटायें और हाथ कताई और हाथ बुनाईको प्रोत्साहन देकर देशकी आवश्यकताके अनुसार कपड़ा तैयार करनेकी गति बढ़ा कर विलायती मालके बहिष्कारका आन्दोलन चलानेमें सहायक बनें।

यह कांग्रेस असहयोगके प्रस्तावमें आये हुए अहिंसा सम्बन्धी भागपर विशेष जोर देना चाहती है तथा राष्ट्रका ध्यान इसकी ओर खींचना चाहती है कि अहिंसा वाणी और कर्मसे परस्पर हमारे बीच उतनी ही आवश्यक है जितनी वह राष्ट्र और सरकारके बीच आवश्यक है। इस कांग्रेसका मत है कि हिंसाकी प्रवृत्ति न केवल वास्तविक लोकतन्त्रकी आत्माके स्वतन्त्र विकासके विपरीत जाती है बल्कि वह वास्तवमें आवश्यकता हुई तो कर बन्दीतक ले जानेवाली असहयोगकी तीन मंजिलोंको कार्यान्वित करनेमें बाधा पहुँचाती है।

अन्तमें खिलाफत और पंजाब सम्बन्धी सरकारकी गलतियोंको दूर करने तथा एक सालमें स्वराज्यकी स्थापना करनेके लिए यह कांग्रेस समस्त सार्वजनिक संस्थाओंसे, चाहे वे कांग्रेससे सम्बद्ध हों चाहे न हों, सानुरोध निवेदन करती है कि वे अपनी पूर्ण शक्ति अहिंसा और सरकारके प्रति असहयोगकी वृद्धिमें लगायें। असहयोग आन्दोलन जनताके बीच परस्पर पूर्ण सहयोग द्वारा ही सफल हो सकता है। यह कांग्रेस संस्थाओंको हिन्दू-मुस्लिम एकता बढ़ाने तथा सभी प्रमुख हिन्दुओंसे जहाँ-कहीं ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंके झगड़े हो उन्हें समाप्त करने तथा हिन्दुत्व को छुआछूतके कलंकसे मुक्त करनेकी दिशामें विशेष प्रयास करने और शंकराचार्य तथा अन्य हिन्दू आचार्योंसे अन्त्यज वर्गोंके साथ किये जानेवाले व्यवहारके सम्बन्धमें हिन्दू-धर्ममें सुधार करनेकी बढ़ती हुई इच्छाको सहायता प्रदान करनेकी प्रार्थना करती है।

अंग्रेजी प्रति (जी० एन० ८२३०) की फोटो नकलसे।

९९. भाषण: नागपुर कांग्रेसमें असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावपर[1]

३०. दिसम्बर, १९२०

मैं आप लोगोंको बहुत देरतक रोकना नहीं चाहता लेकिन उन लोगोंके लिए जो हिन्दीका एक शब्द भी नहीं समझ सकते, यह जान लेना आवश्यक है कि यहाँ पिछले चौथाई अथवा आधे घंटेसे क्या होता रहा है। सबसे अधिक सम्मानित मुसलमानोंमें से एक मुसलमान भाई[2], जिन्हें जाननेका सौभाग्य मुझे सन् १९१५ से अर्थात् भारत आनेके पश्चात् पिछले चार या पाँच वर्षोंमें मिला है, अन्तरात्माके नामपर अपना एक संशोधन लेकर आगे आये हैं। उनके संशोधनका[3] आशय यह है कि आत्मा-सम्बन्धी अनुच्छेद-को न रखा जाये। वे उस अनुच्छेदको भी निकाल देना चाहते हैं जिसका आशय यह है कि आप १६ वर्षसे कम आयुके बच्चोंसे व्यक्तिगत अपीलें नहीं कर सकते। आपने इन दोनों वाक्यांशोंको देखा होगा। कानपुरके मौलाना हसरत मोहानीको उसी नगरके एक अन्य सुपरिचित तथा सम्मानित मौलानाका[4] समर्थन प्राप्त है और वे कहते हैं कि उन अनुच्छेदोंको निकाल देना चाहिए क्योंकि उनकी दृष्टिसे वे इस्लाम धर्ममें बताये गये कर्त्तव्योंके प्रतिकूल बैठते हैं। मैं अपने मुसलमान भाइयोंका ध्यान इस ओर आकर्षित करने-

१. इस अधिवेशनमें चितरंजन दास द्वारा प्रस्तुत असहयोग-सम्बन्धी जिस प्रस्तावका समर्थन और अनुमोदन गांधीजी, लाजपतराय तथा अन्य लोगोंने किया था, हसरत मोहानीने इसमें एक संशोधन पेश किया। उसका उत्तर गांधीजीने पहले हिन्दी और बादमें अंग्रेजीमें दिया। प्रस्तावके लिए देखिए परिशिष्ट १।

२. हसरत मोहानी।

३. इस संशोधनका अभिप्राय यह था कि प्रस्तावके उस भागमें से जिसमें विद्यार्थियोंकी पढ़ाई तत्काल और बिना शर्त छुड़वानेका जिक्र था — अन्तरात्मा-सम्बन्धी अनुच्छेद और उम्रकी सीमाका उल्लेख निकाल दिया जाये।

४. मौलाना अबुल कलाम आजाद।

का प्रयत्न करता आया हूँ कि उस प्रस्तावमें किसी भी कर्त्तव्यका उल्लंघन[1] तो है ही नहीं। इससे प्रकट होता है कि प्रस्तावका वास्तविक तात्पर्य या तो समझा ही नहीं गया है या गलत ढंगसे समझा गया है। कांग्रेसका प्रस्ताव मनुष्यकी अन्तरात्माको नहीं बाँधता है। उस प्रस्तावका मंशा कदापि व्यक्तिकी अन्तरात्माकी आवाजपर हावी होना नहीं है, और मैंने कांग्रेसके आदेशको भी कभी हौआ नहीं माना। आज भी, मेरा ऐसा खयाल है कि जो विचार इस सम्बन्धमें मेरा है वही अधिकांश लोगोंका है, मैं यह साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि मैं कांग्रेस अथवा उसके आदेशको कभी अन्धश्रद्धा-की चीज नहीं बनाना चाहता। जहाँ कहीं मेरी अन्तरात्मा किसी बातको माननेको तैयार न होगी और कांग्रेसके आदेशका विरोध करनेका संकेत करेगी, वहाँ मैं निश्चित रूपसे अन्तरात्माकी ही बात मानूँगा। इसलिए मैं अपने मुसलमान भाइयोंसे कहता रहा हूँ कि वह आत्माका मामला कदापि नहीं हो सकता। यदि एक भी मुसलमान यह सोचता है कि १६ वर्षके लड़केके लिए यह आत्मातक का प्रश्न नहीं हो सकता, उसे स्वयं कुछ सोचनेका अधिकार नहीं है उसे तो अपने माता-पिताकी आज्ञाओंका पालन ही करना चाहिए — यही तो उनके कथनका अभिप्राय निकलता है — तो वह बेशक ऐसा सोचे, ऐसा कहे; कांग्रेस उसे रोकेगी नहीं। लेकिन वह कांग्रेसका नाम लेकर ऐसा न कहे। कांग्रेसके प्रस्तावका अभिप्राय केवल इतना ही है। इसी प्रकार १२ सालवाले अथवा १६ सालसे नीची अवस्थाके लड़कोंके विषयमें समझा जाये। कांग्रेस यह जरूर कहती है कि आप लोग १६ वर्षसे कम उम्रवाले बालकोंके समक्ष भाषण न दें; क्योंकि वे कोमल अवस्थावाले होते हैं और हम नहीं जानते कि उनकी अन्तरात्माकी आवाज प्रबल होती है या नहीं। इसलिए कांग्रेस आदेश देती है कि आप उनकी सभामें न तो कोई भाषण दें और न उनसे कोई व्यक्तिगत अपील करें। अपील की जाये तो उनके माता-पितासे। हम अभीतक इसी प्रणालीपर चले हैं और यदि हमें जनसाधारणकी आत्मा तथा सभ्य संसारके मतके सामने अपनेको निष्कलंक बनाये रखना है तो इसी प्रणालीका अनु-सरण करते रहना अनिवार्य है। इसलिए मेरा निवेदन है हम इस प्रणालीको जो अपनाये हुए हैं सो ठीक और उचित है। यदि १२ सालका कोई ऐसा बालक है जिसे आत्मा-की आवाज सुनाई देती है तो उसे रोक सकनेवाली कोई शक्ति संसारमें नहीं है। लेकिन मैं उस लड़केकी आत्माको [जो नाबालिग है और] जिसके पिता मौजूद हैं जाग्रत नहीं करना चाहता, यह विशेषाधिकार उसके पिताका ही है। इस प्रस्तावका मतलब फकत इतना ही है। इसलिए मैं मुसलमान भाइयोंसे यह अनुरोध करता आया हूँ। मैंने यह तो उनसे पहले ही कह रखा है कि हम सामने आनेवाली हर बातको अन्तरात्माका मामला[2] नहीं कह सकते।

पं० मदनमोहन मालवीयने एक सन्देश भेजा है। मुझे आपको यह बताते हुए दुःख होता है कि वे बुखारसे पीड़ित हैं और रोग-शैयापर पड़े हुए हैं। उन्होंने मुझे कल यह

१. मौलाना हसरत मोहानीके प्रस्तावका मौलाना मुहम्मद अलीने विरोध किया था।

२. मौलाना हसरत मोहानीने बादमें अपना संशोधन वापस ले लिया। उन्होंने कहा कि गांधीजोने जो मौजूँ सफाई दी है उससे मेरे संशोधनकी जरूरत नहीं रह गई।

कहलवाया था कि वे उस प्रस्तावको देखना चाहते हैं। लेकिन वह उनके पास भेजा न जा सका। अब उन्होंने प्रस्ताव देख लिया है — और मुझे एक लिखित सन्देश भेजा है, जिसका आशय यह है कि वे इस प्रस्तावके पक्षमें कतई नहीं हैं। यदि वे यहाँ होते तो वे अपना विरोध प्रकट करते ही। मूल सिद्धान्तके प्रति भी उनकी कोई सहानुभूति नहीं है। उनका खयाल है कि देशवासियोंको अपना सन्देश भेज देना उनका कर्त्तव्य है, फिर निर्णय देशवासी स्वयं करें।

लाला लाजपतरायने आपके सामने पुलिसके विषयमें अपने विचार रखे। प्रस्तावके उपरोक्त भागकी व्याख्याके रूपमें जो कुछ उन्होंने कहा है उससे मैं शब्दशः सहमत हूँ। मैं सोचता हूँ कि यह ठीक ही है कि सरकारी नौकरीके लिए निर्धारित कर्त्तव्योंमें — वे नौकर चाहे नागरिक व्यवस्थामें हों, सेनामें हों चाहे पुलिस विभागमें हों — हस्तक्षेप न करें। लेकिन हम उनसे यह अवश्य कहें कि वे अपनी आत्माका हनन न करें। मैं इस बातको कुछ स्पष्ट करना चाहता हूँ। यदि मैं उन सिपाहियोंमें से एक होता, जिन्हें जलियाँवाले बागमें उन निरपराध व्यक्तियोंको गोली मार देनेके लिए जनरल डायरका हुक्म मिला था तो मैं उस हुक्मको पापमय मानता। मैं उसकी तामील न करना अपना कर्त्तव्य समझता और उसकी अवहेलना करके उसी स्थानपर गोलीसे मारा जाना अधिक पसन्द करता। मैं सैनिकोंके लिए आवश्यक अनुशासनसे परिचित हूँ। मैं कहता हूँ यदि किसी सिपाहीको अपने अफसरसे ऐसा हुक्म मिलता है जिसे वह धर्म अथवा देशके प्रति अपने कर्त्तव्योंके विपरीत पाता है तो निश्चय ही वह अपनी जिन्दगीका खतरा उठाकर उसकी अवहेलना कर सकता है। भले ही फिर उसे शिकायत करनेका भी अवसर न मिले; मगर वह अपने कर्त्तव्यका निर्णय तो कर ही सकता है। फौजी कर्त्तव्यका यह तकाजा है कि जो सैनिक ऐसे संकटके समयमें हुक्मकी तामील नहीं करता उसे गोली मार दी जाये और यदि वह गोलीसे मारा जाना पसन्द कर लेता है तो निश्चय ही हुक्मकी उपेक्षा करनेका उसे अधिकार है।

मैं इन शब्दोंके साथ आपसे अनुरोध करूँगा कि इस असहयोग प्रस्तावको हर्षध्वनिके साथ और परमात्मासे यह हार्दिक प्रार्थना करते हुए पास करें कि हमने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि हम कांग्रेसके प्रस्तावमें घोषित विधियों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करेंगे। आप यहाँसे जाते समय वे सारे मतभेद और कटुता या मनोमालिन्य भूल जायें जो पिछले तीन महीनोंमें हमें अपने सार्वजनिक जीवनमें नचाते रहे हैं। आप मन, वाणी और कर्मसे किसी प्रकारकी हिंसा न करें, चाहे वह सरकारसे सम्बन्धित हो, चाहे खुद हमीं लोगोंसे। मैं अपना दिया हुआ वचन दोहराता हूँ कि यदि आप केवल इतना ही करके दिखा सकें तो हमें अपने ध्येयकी प्राप्तिके लिए एक साल तो क्या, नौ महीने भी नहीं चाहिए। (जोरकी हर्षध्वनि तथा महात्मा गांधीका जय-घोष)[१]

[अंग्रेजीसे]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३५वें अधिवेशनकी रिपोर्ट

१. इसके बाद प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पारित हुआ और सभी संशोधन वापिस ले लिये गये।

१००. भाषण : तिलक-स्मारक स्वराज्य कोषपर[1]

नागपुर
३१ दिसम्बर, १९२०

मैं अभी-अभी सभापतिजीकी अनुमतिसे असहयोग प्रस्तावके उस भागके विषयमें कुछ बातें कह रहा था जिसे आप सब हर्षध्वनिके साथ स्वीकृत कर चुके हैं। मेरा मतलब अब अखिल भारतीय "तिलक स्वराज्य कोष" से है। मुझे आशा है कि सभी प्रतिनिधि इस कोषमें ज्यादासे-ज्यादा दान देंगे। इस प्रकार वे दो उद्देश्योंको साध सकेंगे। इस तरह वे एक ऐसे व्यक्तिकी स्मृति सँजोने और उसे अमर बनानेमें समर्थ होंगे जिसके प्रति समस्त देश बड़ी श्रद्धा रखता था और जिसने देश-सेवामें अपना जीवन ही उत्सर्ग कर दिया। मुझे किंचित् भी सन्देह नहीं है कि यह विशाल स्मारक जिसे आपने उस महापुरुषकी स्मृतिमें खड़ा करनेका निश्चय किया है, बड़ी शानके साथ सफल होगा। लेकिन ऐसी सफलता तभी सम्भव हो सकती है जब हममें से प्रत्येक भाई बहन मिलजुलकर हाथ बँटायें। आप लोगोंमें से जो सज्जन यहाँ अर्थात् पण्डाल छोड़नेके पहले धन देना चाहें वे दे सकते हैं; लेकिन मैं आशा करता हूँ कि जब आप अपने घर पहुँच जायेंगे तब भी आप इसे भूलेंगे नहीं बल्कि यथासम्भव दान देना अपना पवित्र कर्त्तव्य मानेंगे और इस आशा और पूर्ण विश्वासके साथ कि हमें एक सालमें स्वराज्य प्राप्त हो जायेगा, आगे भी देते रहेंगे। यदि हमने इस कार्यके लिए यथाशक्ति दान नहीं दिया तो मेरा खयाल है कि हम स्वराज्य पानेके योग्य नहीं माने जा सकेंगे। लेकिन आप तो स्वराज्य मिलना ही चाहिए यही मंत्र जपते हैं। यदि आप तसवीरके ऊपर लिखे शब्दों, "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है"[2] को देखें और यदि आप उनकी वह आशा एक वर्षमें ही पूरी कर दिखाना चाहें तो आपको इस स्मृति-चिह्नको सफल बनानेके लिए भरपूर कोशिश करनी होगी। आप अपना चन्दा प्रधान-मन्त्रीको भेज सकते हैं। मैं प्रसन्नताके साथ" "इंडियन सैंडो"[3] की ओरसे दिये गये १००१) रु० तथा दो अन्य बिलकुल अपरिचित व्यक्तियों द्वारा दी गई दो अंगूठियोंकी प्राप्तिकी घोषणा करता हूँ। (जोर की हर्षध्वनि)। मुझे यह घोषणा करते हुए भी बड़ा हर्ष हो रहा है कि सेठ जमनालाल बजाजने जो रोग-शैयापर पड़े हैं और स्वागत समितिके अध्यक्ष हैं, मुझे इस आशयका एक सन्देश भेजा है कि वे मुझे १ लाख रुपया सौंपना चाहते हैं। (जोरकी तथा देरतक हर्षध्वनि) जो इस सार्वजनिक कोषका भाग माना जायेगा; परन्तु उसका

१. २ अक्तूबर, १९२० को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने "तिलक मेमोरियल फंड" (तिलक स्मारक-कोष) इकट्ठा करनेके सम्बन्धमें निर्णय किया था परन्तु उस प्रस्तावको कार्यान्वित नहीं किया गया था। दिसम्बर १९२० में कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमें उक्त प्रस्ताव पास किया गया।

२. लोकमान्य तिलककी प्रसिद्ध उक्ति।

३. प्रोफेसर राममूर्ति जिन्होंने ऊपरका वाक्य सुनते ही चन्दा दिया था।

उपयोग विशेषतः उन वकीलोंके, जिन्हें वकालत छोड़ देनेके कारण कुछ सहायताकी आवश्यकता है अथवा उन लोगोंके, जो राष्ट्रीय सेवाके अतिरिक्त अन्य कोई कार्य न करते हों, भरण-पोषणके लिए किया जायेगा। (हर्षध्वनि)। सेठजीने मुझे यह आश्वासन भी दिया है कि वे इस कोषके लिए और भी धन एकत्र करनेका प्रयत्न करेंगे। मैं जानता हूँ कि आप लोग इस कोषकी सफलताकी दिशामें इसे एक बहुत ही शुभ प्रारम्भ मानेंगे। मेरी कामना है कि परमात्मा इस स्मारक कोष योजनाको सफल बनानेमें आपकी मदद करे।[1] मुझे विश्वास है कि वह सफल अवश्य होगी। (जोरकी हर्षध्वनि)

[अंग्रेजीसे]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३५ वें अधिवेशनकी रिपोर्ट

१०१. पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेस-रिपोर्टके गुजराती अनुवादकी प्रस्तावना

[दिसम्बर १९२०][2]

मुझे उम्मीद है कि प्रत्येक गुजराती इस अनुवादको पढ़ेगा और इसपर विचार करेगा।

मेरी रायमें अनुवाद अच्छा हुआ है, लेकिन मैं इसके सरल गुजरातीमें होनेके कारण ही इसको पढ़ जानेकी सिफारिश नहीं करता। पंजाबमें क्या हुआ[3], अगर यह बात हम पूरी तरह समझ जायें तो हम यह तुरन्त समझ जायेंगे कि अब हमारा क्या कर्त्तव्य है।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्टके गुजराती अनुवादसे।

१. इसके बाद पण्डालमें ही उपस्थित लोगोंने दानमें रकमें दीं। दूसरे दिन बम्बईके एक परोपकारी पारसी सज्जन, शावक्शा बमनजीने स्वराज्य मिलने तक १०,००० रु० माहवार दान देते रहनेका वचन दिया।

२. रिपोर्टके गुजराती अनुवादपर जो तारीख दी गई है, वह "मागशर, विक्रम सम्वत् १९७६ है।" यह स्पष्टतः गलत है। अंग्रेजी रिपोर्ट २५ मार्च, १९२० में प्रकाशित हुई थी। गुजराती अनुवाद मागशर १९७७ में प्रकाशित किया गया होगा जो ११–१२–१९२० से ९–१–१९२१ के बीचमें हो सकता है।

३. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १२८-३२२।

१०२. नागपुर अधिवेशनमें पास किया गया कांग्रेसका संविधान[1]

[दिसम्बर १९२०]

अनुच्छेद १

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका ध्येय भारतवर्षके निवासियों द्वारा समस्त उचित और शान्तिपूर्ण तरीकोंसे स्वराज्य प्राप्त करना है।

(टिप्पणी — यह अनुच्छेद पहले प्रस्तावके रूपमें पास हुआ)

कांग्रेसके अधिवेशन

अनुच्छेद २

(क) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका अधिवेशन वर्षमें एकबार साधारणतया बड़े दिनकी छुट्टियोंमें, पिछले अधिवेशनमें निश्चित स्थान अथवा अन्य किसी ऐसे स्थानपर हुआ करेगा जिसे इसके बाद उल्लिखित अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने निश्चित किया हो।

(ख) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा कांग्रेसका विशेष अधिवेशन या तो स्वयं उसीके प्रस्ताव द्वारा अथवा प्रान्तीय कांग्रस कमेटियों द्वारा बहुमतसे इस बातकी माँग पेशकी जानेपर जहाँ तय किया जाये, बुलाया जा सकता है। इस संविधानके अनुच्छेद उन संशोधनोंके साथ लागू होंगे जिन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ऐसे पृथक्-पृथक् अधिवेशनोंके लिए लागू करना आवश्यक समझे।

कांग्रेसके विभिन्न घटक

अनुच्छेद ३

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस संगठनके निम्नलिखित अंग होंगे।

(क) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस
(ख) प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी
(ग) जिला कांग्रेस कमेटी
(घ) उप-विभागीय ताल्लुका अथवा तहसील, फिरका अथवा अन्य स्थानीय कांग्रेस कमेटियाँ
(ङ) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी
(च) भारतके बाहर अन्य ऐसी कमेटियाँ भी जिन्हें कांग्रेस द्वारा इस सम्बन्धमें समय-समयपर मान्यता दी जाये।

१. यह नवीन संविधान गांधीजीने विधान समितिके अन्य सदस्योंके साथ पत्र-व्यवहार करके बनाया था। देखिए **आत्मकथा,** भाग ५, परिच्छेद ३८ तथा खण्ड १८, पृष्ठ ३-४, ३१०-१२, ४४९-५२।

(छ) वे संस्थाएँ जो समय-समयपर प्रान्तीय, जिला, ताल्लुका अथवा तहसील तथा अन्य स्थानीय कांग्रेस कमेटियों द्वारा निर्मित की गई हों; उदाहरणार्थ अधिवेशनकी स्वागत कारिणी समिति और प्रान्तीय, जिला ताल्लुका, तहसील अथवा अन्य स्थानीय सम्मेलन।

अनुच्छेद ४

कोई भी व्यक्ति पिछले अनुच्छेदमें उल्लिखित किसी भी संगठनका तबतक सदस्य नहीं हो सकता जबतक वह व्यक्ति, स्त्री अथवा पुरुष, २१ सालका न हो जाये तथा इस संविधानके प्रथम अनुच्छेद और कांग्रेसकी नियमावलीमें जो लक्ष्य और विधि उल्लिखित हैं उनकी स्वीकृति लिखित रूपमें न दे दे।

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी

अनुच्छेद ५

निम्नलिखित प्रान्त होंगे; उनके सामने उनके सदर मुकाम दिये गये हैं। जहाँ सदर मुकाम नहीं दिये गय हैं वहाँके लिए सम्बन्धित प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंको उन्हें समय-समयपर नियत करने या बदलनेका अधिकार होगा।

प्रान्त	भाषा	सदर मुकाम
१. मद्रास	तमिल	मद्रास
२. आन्ध्र	तेलुगु	
३. कर्नाटक	कन्नड़	गदग
४. केरल	मलयालम	कालीकट
५. बम्बई	मराठी तथा गुजराती	बम्बई
६. महाराष्ट्र	मराठी	पूना
७. गुजरात	गुजराती	अहमदाबाद
८. सिन्ध	सिन्धी	
९. संयुक्त प्रांत	हिन्दुस्तानी	इलाहाबाद
१०. पंजाब	पंजाबी	लाहौर
११. सीमा प्रदेश	हिन्दुस्तानी	पेशावर
१२. दिल्ली	हिन्दुस्तानी	दिल्ली
१३. अजमेर, मारवाड़ तथा राजपूताना	हिन्दुस्तानी	अजमेर
१४. मध्यप्रदेश	हिन्दुतानी	जबलपुर
१५. मध्यप्रदेश	मराठी	नागपुर
१६. बरार	मराठी	अमरावती
१७. बिहार	हिन्दुतानी	पटना
१८. उत्कल (उड़ीसा)	उड़िया	

१९. बंगाल तथा सुरमा घाटी	बँगला	कलकत्ता
२०. आसाम	असमिया	गोहाटी
२१. बर्मा	बर्मी	रंगून

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी समय-समयपर किन्हीं भी देशी रियासतोंको प्रान्तोंके साथ जोड़ सकती है और सम्बन्धित प्रान्तकी कांग्रेस कमेटी इस प्रकार जोड़ी गई देशी रियासतोंको अपनी परिसीमाके अन्तर्गत किसी भी जिलेको सौंप सकती है।

मौजूदा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ तदनुसार तुरन्त अपना पुनर्गठन करेंगी तथा इस प्रकारका पुनर्गठन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा संशोधित न किये जाने तक अन्तिम माना जायेगा।

अनुच्छेद ६

(क) जिन प्रान्तोंके नाम ऊपरके अनुच्छेदमें दिये गये हैं उनमें से प्रत्येक प्रान्तमें उसी प्रान्तके लिए प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी होगी।

(ख) तृतीय अनुच्छेदके अनुसार प्रत्येक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी जिला तथा अन्य कमेटियोंको संगठित करेगी और इस कमेटीको यह अधिकार होगा कि वह सदस्य बनानेकी शर्त निर्धारित करनेके लिए तथा उस प्रकारके कार्य संचालित करनेके लिए, जो इस संविधानसे अथवा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके द्वारा निर्मित नियमोंसे असंगत न बैठते हों, नियम बनाये।

(ग) प्रत्येक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीमें वे प्रतिनिधि होंगे जिन्हें प्रतिवर्ष जिला कमेटियाँ तथा अन्य कमेटियाँ प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा बनाये गये नियमोंके अनुसार चुनेंगी।

मताधिकार

अनुच्छेद ७

प्रत्येक व्यक्ति जो अनुच्छेद ४ में वर्णित निर्योग्यताओंसे मुक्त है तथा जो प्रति वर्ष चार आने शुल्कके रूपमें देता है, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों द्वारा नियन्त्रित किसी भी संस्थाका सदस्य बन सकता है।

निर्वाचकगण तथा प्रतिनिधि

अनुच्छेद ८

कांग्रेस अधिवेशनमें भेजे जानेवाले प्रतिनिधिको चुननेका उत्तरदायित्व विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंका होगा।

२१ वर्षसे कम अवस्थावाला या कांग्रेसके उद्देश्यमें विश्वास न रखनेवाला कोई भी व्यक्ति निर्वाचनके योग्य नहीं समझा जायेगा।

प्रतिनिधियोंकी संख्या प्रान्तके हर ५०,००० लोगोंपर एकसे-अधिक नहीं होगी। यदि किसी क्षेत्रमें ५० हजारसे कम निवासी हों तो भी एक ही प्रतिनिधि होगा। पिछली जनगणनाके अनुसार भारतीय रियासतें भी इसमें शामिल हैं; किन्तु भारतीय रियासतोंके

निर्वाचकोंमें शामिल किये जानेका यह अर्थ नहीं है कि कांग्रेस उन रियासतोंके घरेलू मामलोंमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप करे।

प्रतिनिधियोंके चुनावके लिए प्रत्येक कांग्रेस कमेटी नियम बनायेगी। इन नियमोंमें महिलाओं तथा अल्पसंख्यक वर्गोंके प्रतिनिधियोंका, विशेष स्वार्थों अथवा उन वर्गोंके प्रतिनिधि चुने जानेके सम्बन्धमें जिन्हें विशेष सुरक्षाकी आवश्यकता है, उचित ध्यान रखा जायेगा।

नियमोंमें मतदाता क्षेत्रोंके संगठनके लिए भी व्यवस्था होगी तथा राजनैतिक विचारोंके प्रत्येक वर्गको सानुपातिक प्रतिनिधित्व देनेके लिए एकल संक्रमणीय मत विधि निर्धारित की जायेगी।

प्रत्येक कांग्रेस कमेटी द्वारा बनाये गये नियम कांग्रेसके महामन्त्रियोंके पास ३० अप्रैल, १९२१ से पहले ही भेज दिये जायेंगे। प्राप्त हो जानेपर वे नियम मन्त्रियों द्वारा लोगोंकी जानकारीके लिए यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित कर दिये जायेंगे।

प्रत्येक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी कांग्रेसके आगामी अधिवेशनकी स्वागत समितिके पास निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी वर्णक्रमके अनुसार तैयार की गई एक सूची भेजेगी जिसमें प्रत्येकका पूरा नाम, व्यापार, उम्र, लिंग, धर्म तथा पता होगा। यह सूची समितिके पास प्रतिवर्ष दिसम्बरकी १५ तारीखतक पहुँच जानी चाहिए। किसी विशेष अधिवेशनके सम्बन्धमें सूची अधिवेशन करनेकी विज्ञापित तिथिसे १० दिन पहले भेजी जानी चाहिए।

अनुच्छेद ९

(क) प्रत्येक प्रान्तीय कांग्रेस समिति अखिल भारतीय कांग्रेस समितिको प्रतिवर्ष चंदेके रूपमें उतनी रकम अदा किया करेगी जो समय-समयपर अ० भा० समिति द्वारा निश्चित की गई हो।

(ख) कांग्रेस समितिका कोई भी सदस्य जबतक अपना बकाया चन्दा अदा नहीं कर देता, प्रतिनिधियों तथा डेलीगेटोंके निर्वाचनके अवसरपर मतदान न कर सकेगा।

प्रतिनिधिगण

अनुच्छेद १०

अनुच्छेद ८ में उल्लिखित प्रत्येक कमेटी बाकायदा चुने गये प्रतिनिधियोंको प्रमाण-पत्र प्रदान करेगी जो कि परिशिष्ट 'क' में लगे हुए फार्मके अनुरूप होंगे तथा जिनपर कमेटीके मन्त्रीका हस्ताक्षर होगा।

अनुच्छेद ११

प्रत्येक प्रतिनिधिको उसके द्वारा उपर्युक्त प्रकारका प्रमाणपत्र पेश किये जानेपर तथा कांग्रेस दफ्तरमें १० रु० की फीस जमा कर देनेपर एक टिकट मिलेगा। वह प्रतिनिधि उसी टिकटके बलपर कांग्रेस पण्डालमें प्रवेश पानेका अधिकारी होगा।

अनुच्छेद १२

कांग्रेसकी बैठकोंमें मत देने अथवा किसी अन्य प्रकारसे सभाके कार्यक्रममें भाग लेनेका अधिकार केवल प्रतिनिधियोंको होगा।

स्वागत समिति

अनुच्छेद १३

प्रदेश कांग्रेस कमेटी वार्षिक अधिवेशनसे कमसे-कम छः मास पहले स्वागत समिति बना लेगी जिसमें वे व्यक्ति भी सम्मिलित किये जा सकते हैं जो प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य नहीं हैं। स्वागत समितिका प्रत्येक सदस्य कमसे-कम २५ रु० देगा।

अनुच्छेद १४

स्वागत समिति अपने सभापति तथा अन्य पदाधिकारियोंको अपने सदस्योंमें से ही निर्वाचित करेगी।

अनुच्छेद १५

स्वागत समितिका यह कर्त्तव्य होगा कि वह कांग्रेस अधिवेशनका खर्च चलानेके लिए धन इकट्ठा करे, कांग्रेस अध्यक्षका चुनाव नीचे लिखे अनुच्छेदमें वर्णित प्रणालीके अनुसार करे तथा प्रतिनिधियों और अतिथियोंके आने-जाने और निवास इत्यादिकी पूरी व्यवस्था करे और यदि बन सके तो दर्शकोंके भी निवासादि की व्यवस्था करे। वह कार्यवाहीकी रिपोर्टकी छपाई और प्रकाशनका प्रबन्ध करे और आय-व्ययका विवरण कांग्रेस अधिवेशनकी समाप्तिके ४ माहके अन्दर ही प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके पास भेज दे।

अध्यक्षका निर्वाचन

अनुच्छेद १६

भिन्न-भिन्न प्रान्तीय कमेटियाँ जहाँतक सम्भव हो सके जूनके अन्ततक स्वागत-कारिणी समितिके पास उन व्यक्तियोंके नाम भेज देंगी जो उनकी सम्मतिमें कांग्रेसके अध्यक्ष पदके लिए उपयुक्त हैं। स्वागतकारिणी समिति यथासम्भव जुलाईके प्रथम सप्ताहमें अध्यक्ष पदके लिए सुझाये गये नाम समस्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंको उनकी अन्तिम सम्मतिके लिए भेज देगी; किन्तु अन्तिम रूपमें किसी एक ही व्यक्तिका नाम सुझाया जाना चाहिये, एकसे अधिकका नहीं। जहाँतक सम्भव होगा इन सिफारिशोंपर अपना निर्णय लेनेके लिए अगस्तके महीनेमें स्वागतकारिणी समितिकी बैठक हुआ करेगी। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंके बहुतमत द्वारा सुझाया हुआ व्यक्ति यदि स्वागतकारिणी समितिकी बैठकमें उपस्थित सदस्यों द्वारा, जिसकी बैठक इसी कामके लिए बलाई जाये, स्वीकृत कर लिया जाये तो वह व्यक्ति अगली कांग्रेसका अध्यक्ष होगा। परन्तु यदि स्वागत-कारिणी समिति प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों द्वारा प्रस्तावित अध्यक्षको स्वीकार करनेमें असमर्थ है अथवा इस प्रकार निर्वाचित अध्यक्ष इस्तीफा, मृत्यु अथवा अन्य किसी घटनाके

कारण सुलभ न हो सके तो मामलेको तुरन्त अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको सौंप दिया जाये जो इसका निर्णय यथासम्भव सितम्बरकी अन्तिम तिथिसे पहले कर देगी। हर हालतमें निर्वाचनका यह निर्णय अन्तिम होगा, किन्तु किसी भी हालतमें इस प्रकार निर्वाचित अध्यक्ष उस प्रान्तका निवासी नहीं होगा जिसमें कांग्रेसका अधिवेशन होने जा रहा है।

किसी भी विशेष अथवा असाधारण अधिवेशनके अध्यक्षका निर्वाचन अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा इसी विधिके अन्तर्गत किया जायेगा।

कांग्रेसका कोष

अनुच्छेद १७

(क) स्वागतकारिणी समिति अपने प्रान्तकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके जरिये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको साधारण अथवा असाधारण अधिवेशनमें प्राप्त प्रतिनिधि शुल्ककी आधी राशि कांग्रेस अधिवेशनके समाप्त होनेके दो सप्ताहके अन्दर ही सौंप देगी।

(ख) यदि स्वागतकारिणी समितिके पास अधिवेशनका समस्त व्यय उठानेके बाद कुछ धन बचता है तो वह उसे उसी प्रान्तकी कांग्रेस कमेटीके कोषमें दे देगी।

हिसाब-किताबकी जाँच

अनुच्छेद १८

स्वागतकारिणी समितिकी आय और व्ययकी जाँच किसी लेखा परीक्षक द्वारा अथवा ऐसे लेखा परीक्षकों द्वारा की जायेगी जिनकी नियुक्ति सम्बन्धित प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी द्वारा की जायेगी। हिसाबका ब्यौरा मय परीक्षककी रिपोर्टके प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी कांग्रेस अधिवेशन समाप्त होनेके छः माहके अन्दर ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको भेज देगी।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति

अनुच्छेद १९

पदेन सदस्योंके अतिरिक्त अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके ३५० सदस्य होंगे।

कांग्रेसके भूतपूर्व अध्यक्ष, महामन्त्रिगण और कोषाध्यक्ष पदेन सदस्य माने जायेंगे।

प्रत्येक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी अपने क्षेत्रके सदस्योंमें से अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्योंको नियत की हुई संख्यामें निर्वाचित करेगी।

सदस्य संख्या भाषाके सिद्धान्तपर किये गये प्रान्तोंके पुनर्विभाजनके अनुसार, जनसंख्याके आधारपर अथवा जो अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको अधिक न्यायोचित प्रतीत हो ऐसे अन्य किसी प्रकारसे नियत की जायेगी। नियत संख्या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा ३१ जनवरी, १९२१से पहले ही प्रकाशित कर दी जायेगी।

निर्वाचनका तरीका वैसा ही होगा जैसा कि प्रतिनिधियोंके निर्वाचनके लिए निर्धारित किया जा चुका है।

साधारण तौरपर, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका निर्वाचन नवम्बरमें हुआ करेगा।

इस संविधानके अन्तर्गत प्रथम अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका चुनाव ३० जून, १९२१को या उससे पहले होगा। तबतक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य जो अभी हालमें निर्वाचित हुए हैं कार्यभार संभालते रहेंगे।

अपने कर्त्तव्यके निर्वाहके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकें आवश्यकतानुसार या जब कभी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके १५ सदस्य अधियाचना द्वारा स्पष्ट रूपसे कारण बताते हुए बैठक बुलानेकी माँग पेश करें, बुलाई जा सकती हैं।

यह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी नई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके चुने जानेतक बनी रहेगी।

अनुच्छेद २०

सम्बन्धित प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके मन्त्रिगण इस प्रकार निर्वाचित सदस्योंको अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी सदस्यताके प्रमाणपत्र प्रदान करेंगे।

अनुच्छेद २१

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कांग्रेस द्वारा प्रतिवर्ष निर्धारित किये गये कार्यक्रमको चलानेके लिए कांग्रेसकी समितिके रूपमें काम करेगी और सालके बीचमें उठे सभी नये मामलोंको, चाहे वे कांग्रेसके द्वारा न भेजे गये हों, निबटायेगी। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको इस संविधानसे असंगत न पड़नेवाले नियम बनानेका अधिकार होगा।

अनुच्छेद २२

अधिवेशनके बाद पूरे वर्षके लिए कांग्रेसका अध्यक्ष ही अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका अध्यक्ष होगा।

महामन्त्रिगण

अनुच्छेद २३

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके तीन महामन्त्री होंगे जिनका चुनाव प्रतिवर्ष कांग्रेस करेगी। वे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके कार्यकी सालाना रिपोर्ट तैयार करेंगे तथा प्राप्त हुए कोषके पूर्ण आय-व्यय विवरणके साथ उसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी उस बैठकमें प्रस्तुत करेंगे जो कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनके स्थान तथा समयपर बुलाई जायेगी। तदनन्तर इस आय-व्यय लेखे तथा विवरणकी नकलें कांग्रेसके समक्ष प्रस्तुत की जायेंगी तथा अ० भा० कांग्रेस कमेटीको भेजी जायेंगी।

कार्यकारिणी समिति

अनुच्छेद २४

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी अपनी पहली बैठकमें एक कार्यकारिणी कमेटी नियुक्त करेगी जिसमें अध्यक्ष, महामन्त्रिगण, कोषाध्यक्षगण तथा ९ अन्य सदस्य होंगे। यह समिति अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा समय-समयपर सुपुर्द किये गये कार्योंको करेगी।

विषय निर्धारिणी समिति

अनुच्छेद २५

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य ही साधारण तथा असाधारण अधिवेशनके लिए विषय समितिके सदस्य होंगे।

अनुच्छेद २६

कांग्रेसके खुले अधिवेशनमें कमसे-कम दो दिन पहले विषय समितिकी बैठक होगी। इस सभामें मनोनीत अध्यक्ष सभापतिका आसन ग्रहण करेंगे तथा पदसे अलग होनेवाले मन्त्री कांग्रेसके अगले अधिवेशनके कार्यक्रमका मसविदा प्रस्तुत करेंगे, जिसमें वे प्रस्ताव भी सम्मिलित होंगे जिन्हें भिन्न-भिन्न प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंने कांग्रेसमें पेश किये जानके लिए भेजा हो।

अनुच्छेद २७

विषय समिति उपरोक्त कार्यक्रमपर विचार-विमर्श करनेके उपरान्त उन प्रस्तावोंको तैयार करेगी जिन्हें खुले अधिवेशनमें पेश किया जाना है।

अनुच्छेद २८

यथाशक्ति विषय निर्धारिणी समिति कांग्रेस अधिवेशनके दिनोंमें समय-समयपर मिलती रहेगी।

विवादास्पद विषय तथा अल्प संख्यकोंके हित

अनुच्छेद २९

विषय निर्धारिणी समिति द्वारा विचार-विमर्शके लिए कांग्रेसमें कोई भी ऐसा विषय प्रेषित नहीं किया जायेगा और न उसपर अधिवेशनमें अध्यक्ष द्वारा विचार-विमर्श करनेकी आज्ञा ही दी जायेगी जिसके बारेमें हिन्दू अथवा मुसलमान प्रतिनिधि समुदायके रूपमें अपनी संख्याके तीन-चौथाईके बहुमतसे एतराज करते हैं; और यदि किसी बहसके बाद ऐसा जान पड़े कि तीन-चौथाई हिन्दू अथवा मुसलमान प्रतिनिधि सामूहिक रूपसे तद्विषयक प्रस्तावके विरोधमें हैं तो वह प्रस्ताव छोड़ दिया जायेगा।

अनुच्छेद ३०

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको उन सब मामलोंके विषयमें नियम बनानेका अधिकार होगा जो संविधानमें नहीं आ पाये हैं और जो उसके अनुच्छेदोंसे असंगत नहीं बैठते।

अनुच्छेद ३१

इस धाराके अन्तर्गत संविधानके अबतकके मूल सिद्धान्त तथा सारे अनुच्छेद — उनके द्वारा जितने कार्य किये जा चुके हैं उन्हें मान्य रखते हुए — रद किये जाते हैं।

[अंग्रेजीसे]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३५वें अधिवेशनकी रिपोर्ट

१०३. कांग्रेस

कांग्रेसका सबसे बड़ा[1] और महत्त्वपूर्ण अधिवेशन आया और सम्पन्न हो गया। वर्तमान शासन-प्रणालीके विरुद्ध इतना बड़ा प्रदर्शन कभी नहीं हुआ था। सभापतिका[2] यह कथन बिलकुल सत्य ही है कि इस अधिवेशनमें सभापति और नेताओंने जनताका मार्गदर्शन नहीं बल्कि जनताने सभापति तथा नेताओंका मार्गदर्शन किया। सभामंचपर बैठे प्रत्येक व्यक्तिको यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि जनताने बागडोर स्वयं अपने हाथमें ले ली है। यों नेतागण तो इससे धीमी रफ्तारसे चलना ही पसन्द करते।

कांग्रेसने अपनी नई नीतिपर[3] पूरी तरह बहस करनेके लिए एक दिन दिया और फिर दो दिनकी खामोशीके बाद बड़ी एकता और दृढ़ताके साथ उसे स्वीकार कर लिया। केवल दो मत विरोधमें आये। असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावपर बहस करनेके लिए कांग्रेसने एक दिन दिया और प्रस्तावको अपूर्व उत्साहसे स्वीकार किया। उसने अधिवेशनका अन्तिम दिन संविधानकी शेष ३२ धाराओंको सुनने और उनपर विचार करनेके लिए दिया। मौलाना मुहम्मद अलीने ऊँची और साफ आवाजमें उन्हें पढ़ा और उनका शब्दशः अनुवाद किया। जो लोग अधिवेशनमें भाग ले रहे थे उन्होंने दिखा दिया कि वे धाराओंके वाचनको समझते जा रहे हैं, क्योंकि जब मौलाना साहब आठवीं धारापर पहुँचे तो विरोधकी आवाज उठी। इसमें कांग्रेस द्वारा देशी रिया-

१. दिसम्बर १९२० के कांग्रेस अधिवेशनमें १४,५८२ प्रतिनिधि आये थे। इससे पहले जितने अधिवेशन हुए उनमें से किसीमें प्रतिनिधियोंकी संख्या इतनी नहीं थी।

२. सी० विजयराघवाचार्य (१८५२–१९४३); प्रमुख वकील और सक्रिय कांग्रेसी।

३. कांग्रेसके नये संविधानका अनुच्छेद १, जिसमें कांग्रेसका उद्देश्य बताया गया था; देखिए पिछला शीर्षक।

सतोंके आन्तरिक मामलोंमें हस्तक्षेप न करनेका उल्लेख किया गया था। यदि धाराका तात्पर्य यह होता कि कांग्रेस देशी राज्योंमें रहनेवाले लोगोंकी भावनाओंको व्यक्त भी नहीं कर सकती तो वह उसे पास न करती। प्रसन्नताकी बात है कि एक प्रस्तावसे, जिसमें रियासतोंमें उत्तरदायी सरकारें स्थापित करनेका सुझाव दिया गया था, श्रोताओंको यह समझाया जा सका कि यह धारा रियासती प्रजाजनोंकी शिकायतों तथा आकांक्षाओंको व्यक्त करनेसे कांग्रेसको नहीं रोकती; लेकिन कांग्रेसपर उनके सम्बन्धमें वह कोई अमली कदम उठानेपर प्रतिबन्ध अवश्य लगाती है; उदाहरणके लिए, रियासतोंमें वहाँके राजाओंके किसी भी कार्यके विरुद्ध कांग्रेस प्रदर्शन नहीं कर सकती। कांग्रेस ब्रिटिश सरकारको आदेश देनेका दावा करती है; किन्तु अपने संविधानकी रूसे वह देशी रियासतोंके सम्बन्धमें वैसा दावा नहीं कर सकती।

इस प्रकार कांग्रेसने अधिकसे-अधिक विचार-विमर्श और चर्चाके बाद तीन महत्वपूर्ण कदम उठाये हैं। उसने स्पष्टतम शब्दोंमें पूर्ण स्वायत्त शासन प्राप्त करनेका अपना निश्चय जाहिर कर दिया है। अगर अब भी सम्भव हुआ तो वह इस लक्ष्यको अंग्रेजोंसे सम्बन्ध बनाये रखकर ही प्राप्त करेगी; किन्तु यदि आवश्यक हुआ तो उनसे अपना सम्बन्ध तोड़कर भी उसे प्राप्त करेगी। उसने संकल्प किया है कि वह इसमें केवल खरे तथा अहिंसात्मक साधनोंका ही उपयोग करेगी। कांग्रेसने अपने कामकाजकी व्यवस्थाके लिए संविधानमें मूलभूत परिवर्तन किये हैं और प्रतिनिधियोंकी संख्या स्वेच्छासे सीमित करके त्यागका परिचय दिया है। अब भारतकी जनसंख्याके प्रति ५० हजार लोगोंके पीछे एक प्रतिनिधि चुना जायेगा। उसने इस बातपर जोर दिया है कि ये प्रतिनिधि उन लोगोंके वास्तविक प्रतिनिधि हों जो देशके राजनीतिक जीवनमें भाग लेना चाहते हैं। और इस खयालसे कि इसमें सभी राजनीतिक दलोंका प्रतिनिधित्व हो, उसने "एकल संक्रमणीय मत"का सिद्धान्त स्वीकार किया है। उसने विशेष अधिवेशनमें[1] पास किये गये असहयोगके प्रस्तावको पुनः पुष्ट किया है और साथ ही उसे हर तरहसे परिवर्धित किया है।[2] इसने अहिंसाकी आवश्यकतापर जोर दिया है और कहा है कि स्वराज्य प्राप्तिके लिए भारतीय राष्ट्रके विभिन्न अंगोंके बीच पूर्ण ऐक्य होना जरूरी है। इसलिए इसने हिन्दू-मुस्लिम एकतापर आग्रह किया है। हिन्दू प्रतिनिधियोंने ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंके मतभेदोंको दूर करानेके लिए अपने नेताओंसे तथा अस्पृश्यताके जहरको दूर करनेके लिए अपने धर्माचार्योंसे अनुरोध किया है। कांग्रेसने स्कूल जानेवाले बच्चोंके माता-पिताओं तथा वकीलोंसे कहा है कि उन्होंने राष्ट्रके आह्वानपर काफी नहीं किया है; उन्हें इस दिशामें अधिक प्रयत्न करना चाहिए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो वकील वकालत छोड़ देनेके अनुरोधपर शीघ्र ही अमल नहीं करते और जो माता-पिता अपने बच्चोंको सरकारी या सरकारी सहायता-प्राप्त विद्यालयोंमें भेजनेपर आग्रह रखते हैं, वे देखेंगे कि वे देशके सार्वजनिक जीवनसे बहिष्कृत होते जा रहे हैं। देशकी पुकार है कि भारतके सभी स्त्री और पुरुष

१. कलकत्तामें सितम्बर १९२० में हुए विशेष अधिवेशनमें।

२. नागपुरमें स्वीकृत असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव; देखिए परिशिष्ट १।

अपना-अपना हिस्सा पूरी तरह बँटायें। असहयोग-सम्बन्धी प्रस्तावकी तफसीलपर मैं बादमें लिखूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-१-१९२१

१०४. नैतिक मूल्य

नीचे एक अंग्रेज मित्रके पत्रका अंश दे रहा हूँ। अंग्रेज मित्रोंके पत्र पाकर मुझे बड़ी खुशी होती है। मैं जानता हूँ कि बहुत-से ऐसे ईमानदार अंग्रेज हैं जो सहानुभूतिके साथ असहयोग आन्दोलनपर ध्यान देकर उसे समझनेकी कोशिश कर रहे हैं; और अगर सम्बन्धित नैतिक प्रश्नोंके बारेमें उनके मनमें कोई शंका न रह जाये तो वे खुशीके साथ इसमें हाथ बँटा सकते हैं। यह पत्र इसी बातका उदाहरण है।

> मेरा खयाल है, आप नैतिक शक्तिके बलपर भारतमें स्वराज्य स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं और आपको भरोसा है कि आत्म-त्यागसे यह नैतिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है। मैं इतना निवेदन कर देना चाहूँगा कि विचार तो एकदम उत्कृष्ट है। लेकिन क्या इसमें यह आशंका ही नहीं है कि आप जिस साधनको — अर्थात् असहयोगको — अपनाकर चल रहे हैं, अगर उसका प्रयोग हर सम्बन्धित व्यक्तिके विशुद्ध निःस्वार्थ भावसे काम करनेको तैयार होनेसे पहले किया गया तो अन्ततः आपको निराश होना पड़ेगा? यदि ध्येय नैतिक सफलता हो तो उस लक्ष्यतक पहुँचनेका साधन भी वैसा ही होना चाहिए।
>
> मैं भी बड़ी आतुरतासे उस दिनकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जब समस्त भारत ही नहीं, समस्त मानव-जाति नीचे बताये गये ढंगके स्वराज्यका उपभोग करेगी:
>
> मानव-जाति सृष्टिके पशुता और नैतिकताके संगमस्थानपर खड़ी है। स्रष्टाने उसे अपनी मर्जीका मालिक बनाया है; वह अपने भौतिक ढाँचे, यानी शरीर, और अपने नैतिक स्वरूप यानी चारित्र्यकी माँगोंको तोल सकता है और निर्णय कर सकता है कि वह इनमें से किन्हें स्वीकार करे। इस तरह वह अपने चरित्रके माध्यमसे सृष्टिके आदि कारण, अर्थात् परमात्माके अमूर्त स्वरूपको ससीम (अर्थात् चरित्र)के भीतर व्यक्त कर सकता है। जब मानव-जातिका प्रत्येक घटक, प्रत्येक व्यक्ति, अपने प्रत्येक विचार, वाणी और कर्ममें नैतिक मूल्योंको प्राथमिकता देना सीख जायेगा और बराबर नैतिकताकी माँगोंको ही प्राथमिकता देगा, तो स्पष्टतः उसका परिणाम आत्म-त्याग होगा। नैतिकताकी माँगोंको प्राथमिकता देनेकी बात इसलिए कही कि सृष्टिकी परम्परामें

नैतिक बुद्धिका दर्जा शरीरसे ऊपर है और अगर कोई अन्यथा आचरण करता है तो उसका मतलब सर्वशक्तिमान प्रभुकी सत्ताको चुनौती देना होगा। मानव-जातिमें इस प्रकार आत्म-त्यागकी भावना आ जानेपर प्रत्येक मानव सहज ही दूसरे मानवको प्यार करने लगेगा और यह सच्चा स्वराज्य इस समस्त मानव-जातिको एक सूत्रमें बाँध देगा।

लेकिन दूसरी ओर क्या यह सम्भव भी नहीं है कि अगर आप प्रारम्भ असहयोगसे करते है तो आपका यह नैतिक लक्ष्य गौण हो जायेगा और निम्नतर भौतिक आकांक्षाओंकी पूर्ति ही मुख्य हो जायेगी? उस हालतमें अगर आप सफल भी हो जाते हैं तो क्या यह सम्भावना दिखाई नहीं देती कि आप अनजाने ही अपने प्रयत्नोंका सार-तत्व ही खो बैठेंगे और अपने सहयोगियोंको, आज वे जिस हदतक पशु हैं, उससे भी अधिक पशु बना देंगे? जो राष्ट्र अभी स्वयं स्वार्थको जीतना सीख नहीं पाया है लेकिन एक आत्मत्यागी नेताका अनुसरण करनेका प्रयत्न कर रहा है, उस राष्ट्रके असहयोगकी अपेक्षा आत्मत्यागी राष्ट्रके आत्म-त्यागी प्रतिनिधियोंके सहयोगसे स्वार्थ-रहित सरकारकी जल्दी स्थापना हो सकना कहीं अधिक सरल है।

आप इन तथ्योंपर थोड़ा विचार कीजिए। आप जो-कुछ भी करें उसे तो समस्त मानव समाजके हितमें होना चाहिए; और नैतिक मूल्योंको गौण स्थान तो किसी भी हालतमें नहीं दिया जाना चाहिए — गौण जान पड़नेवाले मामलोंमें भी नहीं, अन्यथा उपचार रोगसे भी अधिक बुरा सिद्ध हो सकता है।

प्रारम्भका एक वाक्य छोड़कर, मैंने यह पत्र पूराका-पूरा दे दिया है। नाम नहीं प्रकाशित किया है, क्योंकि मुझे ठीक-ठीक मालूम नहीं कि पत्र-लेखक अपना नाम प्रकाशित कराना पसन्द करेंगे या नहीं। उनकी नैतिक उलझन सावधानीसे विचार करने योग्य है। मेरी समझमें विचारोंमें उलझनके कारण बात इस तरह कही गई है। मैं बराबर यह दिखानेका प्रयत्न करता रहा हूँ कि असत् साधनसे कभी कोई सदुद्देश्य पूरा हो ही नहीं सकता। लेखक जिस बातपर शंका कर सकता है और कर भी रहा है वह है आम असहयोगियोंका मंशा। मैं स्वीकार करता हूँ कि सभी असहयोगी प्रेमकी भावनासे प्रेरित नहीं हैं। वे एक निरर्थक घृणाभावसे प्रेरित हैं। निरर्थक इसलिए कि असहयोगकी योजनामें इतने सारे असहयोगियोंकी घृणा [भी] कोई अर्थ नहीं रखती। कोई व्यक्ति घृणासे प्रेरित होनेपर अपना बलिदान नहीं करता, बल्कि असहाय होकर जिसे अपना शत्रु मानता है उसे चोट पहुँचानेकी कोशिश करता है। असहयोगमें जिस परिणामकी कामना की जा रही है वह अन्यायीको दण्ड देना नहीं, बल्कि उससे न्याय प्राप्त करना है। घृणाका उद्देश्य कभी न्याय प्राप्त करना नही होता; उसका उद्देश्य तो सिर्फ प्रतिशोध होता है। घृणा मनुष्यको क्रोधान्ध बनाती है। अमृतसरमें भीड़की घृणाका परिणाम यह हुआ कि निर्दोष लोगोंको प्राण गँवाने पडे।[1] लेकिन असहयोगीकी

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १८३-८७।

घृणा घूमघामकर उसीके पास लौट आती है और इसलिए उसका कोई अर्थ नहीं रह जाता। वह उसे पवित्र बनाती है और जिसके प्रति घृणा व्यक्त की जाती है उसे इस बातकी प्रेरणा देती है कि वह अपने-आपको सुधारे, अपने गलत आचरणसे विमुख हो। इस तरह कोई असहयोगी असहयोगका प्रारम्भ तो एक शत्रुके रूपमें ही करता है, किन्तु अन्ततः उसका रूप मित्रका बन जाता है। कोई व्यक्ति कोई सही काम किस भावसे करता है, इससे क्या फर्क पड़ता है? सही काम तो सही ही है, चाहे वह किसी नीतिके वश किया जाये अथवा वह स्वयंमें एक उद्देश्य हो। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि अगर कोई कदम नीतिके वशीभूत होकर उठाया जाता है तो उसका वांछित परिणाम न निकलनेपर उसके वापस ले लिये जानेका भी खतरा रहता है। लेकिन ऐसा खतरा रहता है, इस तथ्यको स्वयं किसी सत्कार्यकी नैतिकताके विरुद्ध कोई दलील नहीं माना जा सकता।

पत्र-लेखकने जो समाधान दिया है, वह असम्भव है। वे चाहते हैं कि असहयोगी पहले पूर्णताको प्राप्त करें। लेकिन वे भूल जाते हैं कि अगर हम पूर्ण होते तो असहयोगकी कोई जरूरत ही नहीं पड़ती, क्योंकि तब कोई भी व्यक्ति बुराईके साथ सहयोग करता ही नहीं। असहयोग अपने-आपको पवित्र बनाने, पूर्ण बनानेका एक प्रयत्न है। और अधिकांश लोग शुद्धीकरणके मार्गपर विश्वासके कारण चलते हैं, ज्ञानके कारण नहीं। दूसरे शब्दोंमें, एक आत्मत्यागी नेताका अनुसरण करनेवाले स्वार्थी असहयोगी अन्तमें जो-कुछ कर दिखायेंगे वह अच्छा ही होगा; क्योंकि उनके कामोंसे असहयोग आत्मत्यागका एक सिद्धान्त ही सिद्ध होगा।

अंग्रेजोंकी मुख्य कठिनाई तो सचमुच यह माननेमें है कि उनका शासन भारतके लिए एक खालिस बुराई है; अर्थात् उसने हर महत्त्वपूर्ण मामलेमें भारतका अकल्याण किया है। भारत आज आर्थिक दृष्टिसे पहलेसे विपन्न है, उसके पौरुषका ह्रास हुआ है, उसकी आध्यात्मिकताका क्षय हो गया है और उसके बेटोंमें अपनी रक्षा करनेकी शक्ति भी नहीं रह गई है। बुराईके साथ किसी तरहका सम्बन्ध रखना पाप है। अच्छाई और बुराईका, ईश्वर और शैतानका, कहीं कोई मेल नहीं हो सकता। पत्र-लेखक महोदय मुझसे थोड़ा विचार करनेको कहते हैं। विचार तो मैंने तीस वर्षों-तक किया और आखिर इसी अन्तिम निष्कर्षपर पहुँचा कि अपने वर्तमान रूपमें अंग्रेजी शासन भारतके लिए अभिशाप सिद्ध हुआ है। मैं कहूँगा, अंग्रेज लोग ही तनिक रुककर विचार करें कि उनकी आँखोंके आगे ही यह क्या हो रहा है। वे तनिक अपने ही भीतर झाँककर देखें। क्या वे मुझसे उस सरकारसे सहयोग करनेको कहेंगे जिसने भारतके मुसलमानोंके साथ धोखेबाजी की है और पंजाबमें मानवताकी हत्या की है? अंग्रेज लोग जलियाँवाला बागके नर-संहारको निर्णयकी भूल-भर कहना छोड़ें; और जब उनके प्रधान मन्त्री यह कहें कि उन्होंने भारतके मुसलमानोंको दिये गये अपने गम्भीर वचनको नहीं तोड़ा है[1] तो उनके इस कथनपर विश्वास न करें। हमारा उद्देश्य न्यायसंगत है और उतना ही न्यायसंगत है उसे प्राप्त करनेका हमारा साधन। अल-

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ४४८-४९ और ४९८-५०२।

बत्ता, जिस भावनासे प्रेरित होकर लोग काम कर रहे हैं, वह सर्वथा शुद्ध नहीं है। अगर वह भावना भी उद्देश्य और साधनकी तरह ही विशुद्ध होती, तो यह संघर्ष इतना लम्बा खिचता ही नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-१-१९२१

१०५. भाषण : छिन्दवाड़ामें

६ जनवरी, १९२१

भाइयो और बहनो,

पिछले तीन वर्षोंसे मैं आपके शहरमें आनेकी कोशिश कर रहा था। हिन्दुस्तान आनेके बाद जिनसे मेरा परिचय हुआ ऐसे मुसलमान भाइयोंमें सबसे पहले अली भाई थे। जबसे वे नजरबन्द[1] किये गये हैं तभीसे मैं उनसे मिलनेकी अनुमति लेनेकी कोशिश कर रहा था, लेकिन वह मुझे नहीं मिली।

अली भाइयोंके मनमें छिंदवाड़ाके प्रति बहुत अनुराग है। पहले हमारा करार यह था कि मैं बम्बई होता हुआ कुछ समय आराम करनेके लिए अहमदाबाद जाऊँ; लेकिन वे मुझे छिंदवाड़ा ले आये हैं जिससे उन्हें इतना अधिक प्रेम है, जिसकी उन्होंने सेवा की है और जिसने बदलेमें उनकी भी बहुत सेवा की है तथा उससे उन्हें बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं।

मध्यप्रान्तमें कांग्रेसका अधिवेशन हुआ है[2] इससे उसके गौरवमें निस्सन्देह वृद्धि हुई है; लेकिन कांग्रेसने वहाँ जो प्रस्ताव पास किया उससे उसकी प्रतिष्ठामें चार चाँद लग गये हैं। हिन्दुस्तान और मध्यप्रान्तका यह सौभाग्य है कि कलकत्तामें[3] जो कुछ हुआ उससे हम नागपुरमें एक कदम भी पीछे नहीं हटे बल्कि आगे ही बढ़े हैं। यदि हम खिलाफतके अपमानका परिमार्जन कराना चाहते हों, पंजाबके अन्यायका निराकरण कराना चाहते हों तथा स्वराज्यकी स्थापना करना चाहते हों तो हमारा कर्त्तव्य क्या है, यह बात हमें नागपुर अधिवेशनमें बताई गई है। हम सरकारी उपाधियोंसे विभूषित लोगोंसे जो कुछ कहना चाहते थे सो सब कह चुके हैं। उपाधियोंको बरकरार रखने अथवा उनका त्याग करनेकी जिम्मेदारी कांग्रेसने उन्हींपर डाली है, इसीसे इस बारके स्वीकृत प्रस्तावमें[4] उनका उल्लेखतक नहीं किया गया है। अब देशका कोई बच्चा भी ऐसा न होगा जिसे इन उपाधिधारी लोगोंसे किसी प्रकारका भय अथवा उनकी उपाधियोंके प्रति मनमें आदर-भाव हो।

१. छिंदवाड़ा (मध्यप्रान्त)में; १९१५ के भारत रक्षा अधिनियमके अन्तर्गत।
२. दिसम्बर १९२० में नागपुरमें।
३. सितम्बर १९२० के कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें।
४. सम्भवतया गांधीजीका संकेत असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावकी ओर है।

कांग्रेसने वकीलोंसे वकालतका धन्धा छोड़नेकी दिशामें और अधिक प्रयत्न करने तथा देशकी सेवाके लिए अपना सारा समय अर्पण कर देनेका अनुरोध किया है। जिन वकीलोंने इतनी भी बचत नहीं की है कि गुजारा चल सके उन वकीलोंको कांग्रेस गुजर करने लायक पैसा अवश्य देगी। वकील अदालतोंमें अपनी शक्ति और समयका अपव्यय कर रहे हैं। देशके कार्योंके लिए उसकी बहुत ज्यादा जरूरत है।

कांग्रेसने विद्यार्थियोंके सम्बन्धमें उनके माता-पिताओंका क्या कर्त्तव्य है, इसका भी निर्देश किया है। मैं इस समय उन सबके समर्थनमें कोई दलील न देकर कांग्रेसके उक्त निर्देशको ही आपके सम्मुख प्रस्तुत करना चाहता हूँ। आपका फर्ज बालकोंको स्कूलोंसे निकालनेके साथ-साथ उन्हें अन्य कार्योंमें निरत करना भी है। अगर उन्हें शिक्षा दी जा सकती हो तो आपको उसका प्रबन्ध करना चाहिए और यदि फिलहाल शिक्षा न दी जा सके तो आप उन्हें देशके अन्य कार्योंमें लगायें। मैं नहीं मानता कि कोई भी बालक ऐसा होगा जो पंजाबमें हुए अत्याचारों और खिलाफतके प्रश्नपर किए गए अन्यायको सुनकर यह न कहे "मैं इस राज्यको निर्मूल करना चाहता हूँ।" मगर कोई विरला विद्यार्थी ऐसा हो भी जो यह न समझता हो तो मैं उससे कहूँगा कि भाई तुमको तुम्हारा स्कूल मुबारक रहे। कांग्रेसने पन्द्रह वर्षसे अधिक उम्रके विद्यार्थियोंको सरकारी स्कूलों और कालेजोंको तुरन्त छोड़ देनेकी सलाह दी है।

ठीक यही बात सैनिकोंपर भी लागू होती है। कांग्रेसने सैनिकोंसे भी अपना कर्त्तव्य पूरा करनेका अनुरोध किया है। राजभक्ति देशभक्तिकी अनुवर्तिनी है और जिस समय राजभक्ति देशभक्तिके आड़े आती है उस समय राजभक्तिको छोड़कर देशभक्तिको स्वीकार करना मनुष्यका धर्म हो जाता है। यदि डायर-जैसा कोई अत्याचारी बेहूदा हुक्म दे तो आप उसके हुक्मको माननेकी अपेक्षा बहादुरीसे उसकी गोली खाकर मरना स्वीकार करें। जलियाँवाला बागमें मारे गये लोगोंके समान निर्दोष लोगोंको गोलीसे उड़ानेकी बनिस्बत खुद गोली खानेके लिए तैयार रहना अधिक अच्छा है। आप अपने देशबन्धुओंके प्रति दयावान बनें। अपने पदका अनुचित उपभोग करके उनपर अत्याचार करनेके बजाय आप उन्हें अपना ही समझकर उनके रक्षक बनें। आपको जो धन मिलता है उसे देशके हित खर्च करनेसे आपको कोई नहीं रोक सकता। आप जो कुछ बचाते हैं उसे प्रकट रूपसे दान दें। आप सार्वजनिक सभाओंमें निर्भय होकर आ सकते हैं। यह सच है कि आप भाषण नहीं दे सकते, लेकिन यदि आप अपने देशकी हलचलोंसे वाकिफ रहनेके लिए सभाओंमें आयें तो सरकार आपको इससे नहीं रोक सकती। इन सब बातोंके अलावा कांग्रेसने स्वदेशीपर ज्यादा जोर दिया है। जब इस देशमें लंकाशायरका कपड़ा आना बन्द हो जाये तब आप समझें कि अब भारतकी स्वाधीनताकी नींव रख दी गई है। किन्तु फिर आप यह न समझें कि लंकाशायरकी जगह जापानको देकर आप अपने उद्देश्यको प्राप्त कर लेंगे। हमारी मुक्ति चरखेमें है। हर घरमें चरखेकी प्रतिष्ठा करनेकी जरूरत है। यदि अभी देशका हरएक व्यक्ति —— स्त्री, पुरुष और बालक —— अपने-अपने खाली वक्तमें थोड़ा बहुत सूत कातनेका व्रत ले तो हम देखते-देखते अपने देशवासियोंके शरीर ढकनेके लिए विदेशी कपड़ेपर निर्भर न रहेंगे और प्रतिवर्ष साठ करोड़ रुपया भी बचा लेंगे।

इतना ही हिन्दू-मुस्लिम एकताका महत्त्व भी है। जिस तरह हम अंग्रेजोंकी गर्दनोंको नहीं काटना चाहते, उसी तरह हम परस्पर एक दूसरेकी गर्दनोंपर भी छुरी चलाना नहीं चाहते। हमें भाई-भाई बनकर रहना है। शैतान हमेशा छिद्रोंका लाभ उठाता है। इसलिए छिद्रोंको भरना ही हमारा काम है।

जिस तरह हिन्दुओं और मुसलमानोंको मिलजुल कर रहनेकी जरूरत है, उसी तरह हिन्दुओंके लिए यह आवश्यक है कि वे अस्पृश्यताके कलंकको मिटाकर हिन्दू धर्मके कलंकको दूर करें। कांग्रेसने सब हिन्दुओंसे अस्पृश्यताकी कुप्रथाको छोड़नेकी विनती की है। आप यह तो अवश्य मानेंगे कि सरकार जिस तरह हिन्दुओं और मुसलमानोंकी अनबनका फायदा उठानेसे नहीं चूकती, उसी तरह वह इस प्रथाके कारण हिन्दुओंमें फैले हुए असन्तोषसे भी पूरा-पूरा फायदा उठानेसे नहीं चूकेगी। जबतक हममें ऐसी खामियाँ हैं तबतक हमारे स्वराज्य प्राप्त करनेके प्रयत्नमें अगर हमें असफलता मिले तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

नागपुर कांग्रेसमें सर्वसम्मतिसे पास किया गया प्रस्ताव[1] संक्षेपमें यही है। उसपर अमल करनेमें ही हमारी कसौटी होगी। हमने एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्त करनेका बीड़ा उठाया है। यदि सरकार अपनी शैतानियतको भूलकर और हमें सन्तुष्ट करके हमारी इच्छानुकूल यहाँ रहनेके लिए तैयार हो तो हम उसे रखना चाहते हैं; लेकिन यदि वह अपनी शैतानियतसे बाज न आये और हमें दबाना चाहे तो मेरा कहना है कि ऐसी सरकारको नष्ट करना ही हमारा धर्म हो जाता है। यह बात अगर आज हो सकती हो तो उसके लिए मैं कलतक रुकनेके लिए तैयार नहीं हूँ। मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि वह हमें इस भारी लड़ाईमें आवश्यक बलिदान करनेकी शक्ति प्रदान करे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-१-१९२१

१०६. पत्र : कस्तूरी रंगा आयंगारको

[नागपुर]
८ जनवरी, १९२१

प्रिय श्री कस्तूरी रंगा आयंगार,[2]

आपका यह आश्वासन पाकर कि आप असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावसे पूर्णतः सन्तुष्ट हैं और आप कांग्रेस द्वारा दो बार स्वीकृत विस्तृत प्रोग्रामका विरोध न करेंगे, प्रसन्नता

१. असहयोग सम्बन्धी।

२. पत्रकार और मद्रासके कांग्रेसी नेता; **हिन्दू**के सम्पादक; जिन्होंने सत्याग्रह जाँच समितिके सदस्यकी हैसियतसे उक्त समितिमें तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा नियुक्त अन्य अनेक उप-समितियोंमें कार्य किया था।

हुई। आशा है कि आप अपने समाचारपत्रमें[1] इसका वर्णन मुक्त कंठसे करेंगे। यदि हमें एक सालके अन्दर ही स्वराज्य प्राप्त करना है तो हमारे लिए आन्दोलनको अधिकसे-अधिक शक्ति सम्पन्न करना आवश्यक है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१०७. पत्र : लाजपतरायको

८-९ जनवरी १९२१[2]

मुझे आशा है कि आप पं० गंगारामके मामलेकी[3] जाँच पड़ताल कर रहे हैं। जो पत्र मुझे मिले हैं उनसे उनपर बड़ा कलंक लगता है। लेकिन मैं उन पत्रोंके बारेमें तबतक कुछ भी प्रकाशित नहीं करूँगा जबतक मुझे इस सम्बन्धमें आपका पत्र प्राप्त न हो जाये।

क्या आप पंजाबमें असहयोग आन्दोलनके संगठनका भार लेना स्वीकार कर सकते हैं? मुझे मालूम है कि लाला हरकिशनलालका आन्दोलनके खिलाफ होना आपकी सबसे बड़ी कठिनाई है। परन्तु जबतक जनता साथ देती है तबतक असहयोगकी आवश्यकता और उपयोगितामें विश्वास रखनेवालोंका कर्त्तव्य बिलकुल स्पष्ट है। श्री मालवीयजी तथा लाला हरकिशनलाल दोनों ही सच्चे और बहादुर व्यक्ति हैं इसलिए मुझे तो यही लगता रहता है कि जब उन्हें अपनी स्थितिकी सहज कमजोरी तथा असत्यका आभास होगा तब वे अपने-आप हमारी बात मान लेंगे। मुझे यकीन है कि आप २० तारीखको कार्यकारिणी समितिकी बैठकके[4] लिए जरूर बम्बई पहुँचेंगे।

मैं आपको इस बातका यकीन दिलाना चाहता हूँ कि हमारा भारतके बाहर प्रचार करनेके लिए धन भेजना ठीक नहीं है। यह एक विचित्र संयोग है कि मुझे अभी अमेरिकाके एक मित्रका पत्र भी मिला है जो मेरे इस विचारको और भी पक्का बना देता है। यह वर्ष हमारी कसौटीका है। मेरी प्रार्थना है कि इसमें एक-एक कौड़ी भी बचाई जानी चाहिए। आज हम जितने आदमी और जितना

१. **हिन्दू**

२. मूल पत्रसे यह स्पष्ट नहीं होता कि पत्र ८ को लिखा गया था या ९ को।

३. पं० गंगारामने पंजाबमें राष्ट्रीय स्कूल खोले थे; जनताने उनके विरुद्ध कुछ आरोप लगाये थे। देखिए "पत्र : गंगाराम शर्माको", २१-२-१९२१।

४. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी।

धन जुटा सकते हैं हमें उन सबकी आवश्यकता है। लेकिन इस विषयमें और बातें मुलाकात होनेपर होंगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१०८. नागपुर कांग्रेस

कांग्रेसने क्या किया? हमें क्या करना चाहिए? अहमदाबादका[1] क्या कर्त्तव्य है? प्रत्येक व्यक्तिके मनमें ये तीनों प्रश्न उठने चाहिए। कांग्रेसने हमें नया संविधान[2] दिया, सर्वसम्मतिसे शान्तिमय असहयोगका प्रस्ताव पास किया। कांग्रेसका इतना जोरदार अधिवेशन कभी नहीं हुआ। कांग्रेसने इतनी दृढ़तासे पहले कभी विचार नहीं किया। संविधानमें महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। कांग्रेसके उद्देश्यपर खूब चर्चा हुई और दो रात और एक दिन विचार-विमर्श करनेके बाद अन्ततः प्रान्त-प्रान्तके मत लिये गये और उद्देश्यमें किये गये परिवर्तनको लगभग सर्वसम्मतिसे स्वीकार कर लिया गया।

नया उद्देश्य यह है कि हमें अपनी कल्पनाका स्वराज्य प्राप्त करना चाहिए। यह स्वराज्य, ब्रिटिश सम्बन्ध रहे तो रखकर और यदि वह सम्बन्ध सन्तोषजनक न हो तो तोड़कर भी प्राप्त करना है। अगर इस सम्बन्धको बने रहना है तो वह केवल उसी रूपमें रह सकता है जो कांग्रेसके लिए अपने उद्देश्यको पूर्णतया फलीभूत कर सकनेमें बाधक न बने अर्थात् अंग्रेजोंको अपनेको श्रेष्ठ समझनकी भावनाको भुला देना चाहिए। जबतक हमें ऐसा एहसास हो कि मुट्ठीभर अंग्रेज हमपर राज्य चला रहे हैं तबतक हमें अंग्रेजोंके साथ सम्बन्ध रखना असह्य ही लगना चाहिए। ऐसा स्वराज्य प्राप्त करनेके उपाय भी कांग्रेसने सुझाये हैं। हमें शान्ति और शुद्ध साधनोंके द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना है, ऐसा कांग्रेसने निश्चय किया है। झूठ, युक्ति, दम्भ और ढोंग आदिको यहाँ अवकाश नहीं है। हमें सच्चे मार्गको अपनाना और उसपर चलते हुए मारना नहीं बल्कि मरना — 'मरकर जीनेका मन्त्र' सीखना है। इस मन्त्रका अनुसरण करनेके कारण ही यह जगत चल रहा है। बीजके नष्ट होनेपर ही धान पकता है। यज्ञ किये बिना खाना चोरी है। बलिदानसे ही स्वराज्यकी प्राप्ति होगी और यदि यह बलिदान, यह कुर्बानी पवित्र-पाक होगी तभी ईश्वरको भी अच्छा लगेगा।

१. कांग्रेसका अगला अधिवेशन, दिसम्बर १९२१ को अहमदाबादमें होनेवाला था।
२. देखिए "नागपुर अधिवेशनमें पास किया गया कांग्रेसका संविधान", दिसम्बर १९२०।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि आजतक चाहे जो और चाहे जितने व्यक्ति कांग्रेसके प्रतिनिधि बन सकते थे; अब ऐसा नहीं हो सकता। अब हिन्दुस्तानकी एक लाख आबादीके पीछे दो व्यक्ति ही प्रतिनिधि बन सकेंगे अर्थात् सारे देशके लगभग छः हजारसे अधिक प्रतिनिधि नहीं हो सकते।[1] मेरे विचारानुसार तो यह संख्या भी ज्यादा है। इसका एक दुष्परिणाम तो यह होगा कि जहाँ कांग्रेसका अधिवेशन होगा वहाँके प्रतिनिधि तो पूरी संख्यामें भाग ले सकेंगे लेकिन दूरस्थ प्रान्तोंके ज्यादा प्रतिनिधियोंको भेजना मुश्किल बात होगी। तथापि इतना लाभ तो अवश्य है कि एक निश्चित सीमा निर्धारित कर दी गई है। चुनाव करवानेकी पद्धतिमें परिवर्तन किया गया है। अबसे लाखों व्यक्तियोंकी पसन्दपर ही प्रतिनिधियोंका चुनाव होगा और इसमें मुसलमानों, स्त्रियों और अन्त्यजोंके, जो अबतक भाग नहीं ले सकते थे, भाग लेनेकी व्यवस्था करके इसे अनिवार्य बना दिया गया है। कांग्रेसके किसी भी मण्डलमें शामिल होनेके इच्छुक व्यक्तिको चार आना शुल्क देने और कांग्रेसके उद्देश्योंको स्वीकार करनेपर शामिल होनेकी अनुमति दी गई है। प्रत्येक पक्षके लोग चुने जा सकें इस उद्देश्यसे ऐसी व्यवस्था की गई है कि एक व्यक्ति एक ही मत दे। यदि किसी उम्मीदवारको उस मतकी जरूरत न हो तो वह दूसरे उम्मीदवारको दिया जा सकता है। प्रान्तोंके हिस्से भी भाषाके आधारपर ही किये गये हैं। कांग्रेसके इस संविधानके अनुसार अगर प्रत्येक प्रान्तसे काम लिया जाये तो सिर्फ इसीसे हम बहुत आगे बढ़ सकते हैं, क्योंकि जहाँ हममें संघशक्ति और योजनाशक्तिका विकास हुआ वहाँ हमें स्वराज्य मिला ही समझिए, इसके लिए मुख्य रूपसे जनताके एक-एक वर्गमें राष्ट्रीय भावना पैदा करनेकी जरूरत है।

शान्तिमय असहयोगका प्रस्ताव पास करके कलकत्तामें हुई विशेष कांग्रेसके प्रस्तावकी पुष्टि कर दी गई है[2] और उसमें कुछ और बातें भी जोड़ दी गई हैं। इस प्रस्तावको पसन्द करनेवालोंके लिए यह जरूरी हो गया है कि वे निम्नलिखित बातोंपर अमल करें।

१. जिन लोगोंके पास खिताब हैं वे अपने खिताबोंको छोड़ दें।

२. माँ-बाप वर्तमान सरकारके अन्तर्गत चलनेवाले स्कूलोंसे अपने बच्चोंको निकाल लें और उनके लिए अपने घरोंमें अथवा राष्ट्रीय स्कूलोंमें किसी किस्मकी व्यवस्था करें।

३. सोलह वर्षकी आयुके विद्यार्थियोंको अगर इस बातका विश्वास हो गया हो कि जिस सरकारको सुधारने, अथवा समाप्त करनेका जनताने निश्चय किया है उस सरकारके अधीन पढ़ना पाप है तो उन्हें तुरन्त स्कूलोंको त्याग करके मनोनुकूल प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

४. वकील जितनी जल्दी हो सके वकालतके धन्धेको छोड़ दें और जनताकी सेवामें जुट जायें।

१. पुराने संविधानके अन्तर्गत १४,५८२ प्रतिनिधियोंने नागपुर कांग्रेसमें भाग लिया था।

२. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ २४७-४८।

५. व्यापारी लोग समय रहते जैसे-तैसे विदेशी व्यापार और सम्बन्धोंको तोड़ डालें और हाथसे कातने और बुननेके कामको प्रोत्साहन दें।

६. विधान परिषदोंके[1] उन प्रतिनिधियोंको, जो मतदाताओंके विरोध करनेके बावजूद निर्वाचित हुए हैं, विधान परिषदोंसे त्याग-पत्र दे देना चाहिए और जो जनमतके विरोध करनेके बावजूद त्याग-पत्र न दें उनसे मतदाताओंको राजनीति सम्बन्धी कोई कार्य नहीं लेना चाहिए।

७. सिपाहियों और अन्य सरकारी नौकरोंको कौमके प्रति नम्रता, दया और सत्यका व्यवहार करना चाहिए; वे राजनैतिक सभाओंमें भाग लें किन्तु भाषण न दें और स्वराज्यके आन्दोलनमें खुले रूपसे धन दें।

८. सिपाहियोंको अपनी नौकरीको अपने धर्म अथवा देशसे ज्यादा प्रिय नहीं समझना चाहिए और उनपर जो आरोप लगाये जाते हैं उन्हें अपने सद्व्यवहारसे मिथ्या सिद्ध कर देना चाहिए। उन्हें बता देना चाहिए कि वे अपनी कौमके प्रति भावना-हीन भाड़ेके टट्टू नहीं हैं।

९. प्रत्येक स्त्री-पुरुषको भरसक स्वार्थ त्याग करना चाहिए।

१०. सबको यह समझना चाहिए कि शान्तिमें ही हमारी विजय निहित है और उस शान्तिको हमें सिर्फ सरकारके साथ ही बनाये रखना है सो बात नहीं; बल्कि हमें परस्पर एक-दूसरेके साथ भी शान्तिको बनाये रखना है। शान्ति रखना अर्थात् मारपीट न करना, इतना ही नहीं वरन् गाली-गलौज न करना भी है।

११. सबको हिन्दू-मुसलमानोंके बीच ऐक्य भावको बढ़ाना चाहिए और उसी प्रमाणमें हिन्दुस्तानमें एक-दूसरेके बीचकी कटुताको दूर करना चाहिए। ब्राह्मण और ब्राह्मणेत्तर झगड़ेको मिटाना और अस्पृश्यताके पापको दूर करना चाहिए।

इतना यदि हम एक वर्षके भीतर कर सकें तो एक वर्षमें ही हमें स्वराज्य मिल जाये। अगर हम इसमें देर करेंगे तो स्वराज्य भी देरीसे मिलेगा।

हमारा कर्त्तव्य स्पष्ट है। हममें से प्रत्येक व्यक्तिको अपनी सामर्थ्य-भर बलिदान देना चाहिए। हम अन्य लोगोंसे भी ऐसा ही करनेको कहें। इसके लिए नई पद्धतिके अनुसार तुरन्त सभाएँ आदि करनी चाहिए। अब आगामी कांग्रेसमें एक भी ऐसा प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए जिसके बच्चे सरकारी स्कूलोंमें जाते हों, जो स्वयं वकालतका धन्धा करता हो और जिसने अपने ऊपर लागू होनेवाली शर्तोंका पालन नहीं किया हो। इसलिए प्रत्येक प्रतिनिधिके शरीरपर — फिर चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष — हाथसे कते सूतके, हाथसे बुने हुए वस्त्र ही होने चाहिए। ऐसे सात हजार प्रतिनिधियों और अन्य कार्यकर्ताओंके होनेपर हम कहाँसे-कहाँ पहुँच जायेंगे, यह समझना कोई कठिन कार्य नहीं है।

आगामी कांग्रेसको अहमदाबादमें होनेका आमन्त्रण दिया गया है; अर्थात् अहमदाबादने नवीन संविधानको सफल बनानेकी प्रतिज्ञा ली जान पड़ती है। अहमदाबादके लिए यह भारी सम्मान प्राप्त करनेके साथ एक जोखिमको अपने सरपर लेना भी है।

१. विधान परिषदोंके चुनाव नवम्बर १९२० में हुए थे।

अहमदाबादका मान गुजरातका मान है और गुजरातका मान हिन्दका मान है। अगर हम आजसे ही जुट जायें तभी अवसरके अनुकूल पूरी तैयारी कर सकेंगे। क्या करना चाहिए, इसपर बादमें विचार करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-१-१९२१

१०९. टिप्पणियाँ

लोकमान्य तिलक राष्ट्रीय स्वराज्य कोष

असहयोगके प्रस्तावके साथ-साथ लोकमान्यकी स्मृतिमें स्वराज्य कोषके लिए चन्दा इकट्ठा किए जानेका प्रस्ताव भी पास किया गया है। कांग्रेसके पिछले अधिवेशनमें उस कोषमें पैसा भी जमा किया गया था। इसमें तो तनिक भी सन्देह नहीं कि इस कोषमें यथाशक्ति चन्दा देना सभीका कर्त्तव्य है। थोड़े लोग ज्यादा पैसा दें, इसकी अपेक्षा ज्यादा लोग थोड़ा-थोड़ा पैसा दें और इस तरह बहुत-सा धन एकत्रित हो जाये, इसमें हमारी शोभा है; स्वर्गीय श्री तिलकको 'लोकमान्य' की जो उपाधि दी गई थी उसकी सार्थकता भी इसीमें है। एक व्यापारी एक करोड़ रुपया दे दे, इसमें तिलककी 'लोक-मान्यता' नहीं है; अपितु करोड़ों स्त्री-पुरुषोंसे हम करोड़ रुपया इकट्ठा करें, उसका महत्व अधिक होगा और उससे लोकमान्यकी लोकमान्यता अधिक प्रमाणित होगी। इस कोषको इकट्ठा करनेमें हमारा अपना स्वार्थ है, क्योंकि हमें उसका उपयोग अपनी भलाईके लिए करना है। स्वराज्य लोकमान्यका जीवन-मन्त्र था। हमारे लिए वह हमारे परित्राणका द्वार है, हमारे सुखकी चाबी है, गरीबोंकी भूखके निवारणका उपाय है, नंगोंको ढकनेका साधन है, और पापोंको नाश करनेका हथियार है। अतएव लोकमान्यकी पूजामें अपनी ही हित-सिद्धि निहित है। इस कोषको इकट्ठा करनेमें ढील नहीं की जानी चाहिए, संकोच नहीं किया जाना चाहिए। चूँकि हमें इस कोषके लिए असंख्य लोगोंसे चन्दा उगाहना है; इसलिए चन्दा उगाहनेवाले लोग भी बहुत होंगे। उन्हें ईमानदारीकी प्रतिज्ञा लेकर इस कामको हाथमें लेना होगा। इस वर्ष हमें एक ही कोष और वह लोकमान्यके नामपर इकट्ठा करना है। इसे इकट्ठा करनेमें प्रत्येक योग्य प्रवृत्तिको आश्रय मिल सकता है। कोषकी रकम एक करोड़ रुपयेसे कदापि कम नहीं होनी चाहिए; हमें इस बातपर आग्रह रखना चाहिए। इस रकमसे हम अपनी जरूरी शालाएँ खोल सकते हैं और ऐसे अनेक काम कर सकते हैं।

इस कोषको इकट्ठा करनेके लिए हमें गाँव-गाँव जाना चाहिए। हर शहरके, हर मुहल्लेके लोगोंतक स्वराज्यका पैगाम पहुँचाना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि लोग यह काम बिना किसी विलम्बके हाथमें ले लेंगे।

ड्यूक ऑफ कनॉट

अब माननीय ड्यूक ऑफ कनॉटके यहाँ पधारनेका समय आ गया है। हमारा उनसे बैर नहीं है। वे अच्छे व्यक्ति हैं; लेकिन वे अंग्रेजी-शासनके अधीन हैं। फिलहाल तो

वे सम्राट्के एलची हैं। अंग्रेजोंकी सत्ताको मजबूत करना ही उनका उद्देश्य है। उनके आगमनका परिणाम वर्तमान राज्याधिकारियोंके पदोंमें वृद्धि भी हो सकता है। यदि हम उनका सम्मान करते हैं तो वह हमारे लिए अपनी गुलामीका सम्मान करनेके समान होगा। यदि हम इस शासन-सत्ताके मदको उतारना चाहते हैं तो हमारा धर्म है कि हम ऐसा कोई भी कार्य न करें जिससे उसके मदमें वृद्धि हो सके। हमें अगर विश्वास हो जाये कि नई धारासभाओंसे हमें कुछ लाभ नहीं होगा तो हम उनकी प्रतिष्ठामें वृद्धि करनेके लिए आनेवाले मनुष्यका स्वागत नहीं कर सकते। इसलिए ड्यूक ऑफ कनॉट जहाँ-जहाँ जायें वहाँ-वहाँ लोगोंको अपने घरोंके द्वार बन्द करके अन्दर बैठे रहना चाहिए; रोशनी हो तो उसे देखने नहीं जाना चाहिए और कोई अन्य उत्सव हो तो उसमें भाग नहीं लेना चाहिए। हमारे पास इस सत्ताके प्रति अपनी नापसन्दगी जाहिर करनेका सिर्फ यही रास्ता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९–१–१९२१

११०. स्मरणांजलि

समुद्रकी अथाह, अँधेरी कन्दराओंमें, सबकी दृष्टिसे दूर,
शुद्ध, सात्विक किरणोंकी आभा बिखेरनेवाले रत्नोंका ढेर पड़ा होता है।
और निर्जन बन-प्रान्तरोंमें फूल भी, न जाने कितने खिलते हैं;
लेकिन रेगिस्तानी हवाओंको अपना सौरभ लुटाकर अनदेखे ही मिट जाते हैं।

जब मैं अपने उस दिवंगत मित्र और सहयोगीके विषयमें सोचता हूँ तो सहज ही ग्रे-रचित शोक-गीतकी ये स्मरणीय पंक्तियाँ ध्यानमें आ जाती हैं। गत ४ अगस्तको नागपुरमें मृत्युने उसे ग्रस लिया, लेकिन अपने सगे-सम्बन्धियों और मित्रोंके अतिरिक्त उस हुतात्माके लिए आँसू बहानेवाला और कोई नहीं था। अमरावतीके यादवड़कर पटवर्धन ख्यातिसे कोसों दूर थे, लेकिन वे उन लोगोंकी तुलनामें राष्ट्रके कुछ कम निष्ठावान् सेवक नहीं थे, जो जनताकी आँखोंके सामने प्रकाशमें काम करते हैं और इस तरह अति उदार जनसमुदायसे, जो अक्सर विचार-शून्य भी हुआ करता है, प्रशस्ति प्राप्त करते हैं। पटवर्धनने बम्बई विश्वविद्यालयसे कानूनके स्नातककी उपाधि प्राप्त की थी, किन्तु उन्होंने कभी वकालत नहीं की। मुझे सर्वप्रथम सन् १९१५ में उन्हें जाननेका सौभाग्य मिला था। वे बराबर आश्रममें[1] रहे। उनके चरित्रकी सौम्यता, सादगी अपनेको शून्य कर रखनेका स्वभाव, सहज विनम्रता, दृढ़ता और उन्हें जो भी काम दिया जाता था उसके प्रति उनकी निष्ठा — इन गुणोंपर मैं मुग्ध था। उन्होंने बिना किसी

१. साबरमती आश्रम, अहमदाबाद।

पारिश्रमिकके 'यंग इंडिया' के लिए एक सालसे अधिक समयतक उप-सम्पादकके रूपमें काम किया। वे कांग्रेस[1] अधिवेशनमें शामिल हुए थे, और अब शोलापुरमें असहयोगके लिए काम करनेके उद्देश्यसे वहाँ जानेकी तैयारी कर रहे थे। किन्तु ईश्वरकी इच्छा कुछ और ही थी। पिछले कुछ समयसे वे रुग्ण थे, लेकिन हमने आशा यही की थी कि वे शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेंगे। लेकिन कांग्रेस अधिवेशनके समय ही अचानक उनका स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया और इसबार वे खाट नहीं छोड़ पाये। उन्होंने 'भगवद्गीता' के दूसरे अध्यायके अन्तिम श्लोकोंका जप करते हुए शरीर-त्याग किया। बहुतसे हैम्डन[2], राष्ट्रके बहुत-से मूक और सच्चे निर्माता, इसी तरह संसारसे चले जाते हैं। मैं पटवर्धन को "शुद्ध, सात्विक किरणोंकी आभा बिखेरनेवाला रत्न" ही मानता था। उनके मित्रगण उनकी योग्यतासे परिचित थे। ईश्वर उनकी आत्माको शान्ति दे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२–१–१९२१

१११. टिप्पणियाँ

'सबसे कृतघ्न आदमी'

हम अन्यत्र श्री एडवर्ड फॉयका पत्र दे रहे हैं।[3] यह पत्र भी उन पत्रों जैसा ही है जैसे अंग्रेज लोग मुझे अक्सर लिखते रहते हैं। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि पत्र लिखनेवाले सज्जनने जो-कुछ लिखा है, वे अपने मनमें उसीपर विश्वास भी करते हैं। यह दुःखकी बात है कि ब्रिटिश शासनके सम्बन्धमें किसी भी सामान्य अंग्रेजके विचार मेरे, और मेरा खयाल है, हर सामान्य भारतीयके विचारोंसे भिन्न हैं। मैं नहीं समझता कि मैं कुछ विशेष कृतघ्न स्वभावका आदमी हूँ। सच तो यह है कि किसीकी तनिक-सी कृपा भी मुझे कृतज्ञतासे भर देती है। मैं किसीको दोषी भी जल्दी ही नहीं मान लेता; फिर भी, मुझे कृतज्ञता प्रकट करने योग्य कोई बात ब्रिटिश शासनमें दिखाई नहीं देती। अगर अंग्रेजोंने जर्मनोंसे लड़कर उन्हें रोका न होता तो भी मेरी समझमें

१. दिसम्बर १९२० में नागपुरमें आयोजित कांग्रेसके ३५वें अधिवेशनमें।

२. **जॉन हैम्डन** (१५९४–१६४३); एक अंग्रेज देशभक्त।

३. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। लेकिन, उससे सम्बद्ध कुछ अंश इस प्रकार हैं: "मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है. . . कि आप दुनियाके सबसे कृतघ्न आदमी हैं. . . अगर भारतको जर्मनीके फौलादी शिकंजेसे बचानेवाली ब्रिटिश सरकार न होती तो आज आपकी क्या दशा होती? . . . सरकार हिन्दू धर्म और इस्लाम, दोनोंको समाप्त कर देना चाहती है. . . यह बात बिलकुल गलत है. . . आप झूठमूठ अहिंसाकी बात करते हैं, लेकिन आपके मनमें ठीक इससे उलटा भाव है. . . आप असहयोगकी असफलताको छिपानेके लिए हिंसाको उभारनेकी कोशिश कर रहे हैं। आप शान्तिके शत्रु हैं, . . . इस अन्तिम घड़ीमें भी सूझ-बूझसे काम लीजिए और सारा आन्दोलन बन्द करके. . . सुधारोंको सफल बनानेमें सरकारके साथ सहयोग कीजिए. . . क्योंकि ये सुधार ही भारतको जल्दीसे-जल्दी स्वराज्य दिला सकते हैं।" **यंग इंडिया,** १२–१–१९२१।

वे भारतपर कब्जा नहीं करते। मैं यह माननेको भी तैयार नहीं हूँ कि अगर दो बुरे शासनोंके बीच चुनाव करना पड़ता तो जर्मन-शासन अधिक बुरा साबित होता। फिर ब्रिटेन जर्मनीके खिलाफ भारतकी खातिर तो नहीं लड़ा था। दूसरी ओर, मैं मानता हूँ कि ब्रिटिश शासनने हमारी धार्मिक भावनाकी जड़पर आघात किया है और अंग्रेजोंने जानबूझकर इस्लामके प्रभावको कमजोर बनानेकी कोशिश की है। ब्रिटिश सरकारने ईसाई चर्च संगठनके साथ पक्षपात किया है। अगर इस पक्षपातसे भारतीय करदाताओंका नुकसान न होता तो व्यक्तिशः मैं इसपर कोई आपत्ति नहीं करता। मैं सुधारोंमें[1] भी खुशी-खुशी हाथ बँटाता, अगर उससे खिलाफत और पंजाब सम्बन्धी अन्यायोंका परिशोधन होता और देश स्वराज्यकी दिशामें आगे बढ़ता। लेकिन, इसके विपरीत, मेरा तो निश्चित मत है कि सुधारोंसे भारतकी कोई खास भलाई होनेवाली नहीं है। उनसे हमें वास्तविक स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता; और मेरे लिए या किसी भी भारतीयके लिए खिलाफत तथा पंजाब सम्बन्धी अन्यायोंको भूलना असम्भव है। अन्तमें मैं श्री फॉय तथा उन जैसे अन्य अंग्रेजोंको विश्वास दिलाता हूँ कि असहयोग विफल नहीं हो रहा है, और मैं या मेरा कोई भी सहयोगी इसकी विफलतापर परदा डालनेके लिए हिंसाका समर्थन नहीं कर रहा है। सच तो यह है कि हम अपनी तरफसे हिंसाको रोकनेके लिए पूरी कोशिश कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि हमारी सफलता प्रत्येक अंग्रेजकी जानको अपनी जानकी तरह ही मूल्यवान् समझनेमें निहित है। हम जिस लड़ाईमें जुटे हुए हैं, वह अच्छाई और बुराईकी लड़ाई है। व्यक्तियोंके रूपमें अंग्रेजोंसे हमारा कोई झगड़ा नहीं है। हम उस प्रणालीको सुधारने या समाप्त कर देनेका प्रयत्न कर रहे हैं, जो अच्छेसे-अच्छे अंग्रेजोंको भी बुराई, भ्रष्टाचार, लूट-खसोट और एक सम्पूर्ण राष्ट्रको अपमानित करनेमें अपना हाथ बँटानेपर बाध्य करती है।

'बदमाश रोमवाले'

दूसरे ढंगके पत्रोंका एक नमूना है श्री पेनिंगटनका पत्र। श्री पेनिंगटनकी पूंछमें डंक तो होता ही है। उन्हें अपनी बातके सही होनेका कितना विश्वास है। उनका कहना है कि जिस तरह बदमाश रोमवालोंने ब्रिटेनका साथ छोड़ दिया उसी तरह अंग्रेज लोग भारतका साथ छोड़कर नहीं जा सकते क्योंकि उससे भारतको अराजकताकी स्थितिका सामना करना पड़ेगा और वे मुझसे भी यही महसूस करनेकी आशा करते हैं। काश कि अंग्रेज लोग भी उतने ही बदमाश होते जितने रोमवाले थे या अराजकताकी ओरसे उतने ही उदासीन होते जितना उदासीन इस धरतीका पुत्र, मैं हूँ। कारण, मैं सचमुच ऐसा मानता हूँ कि योजनापूर्वक सारे राष्ट्रका अपमान करने और उसे पुंसत्वहीन बनानेकी इस प्रक्रियाके जारी रहनेसे तो अराजकता ही अच्छी है। जिस सरकारका एकमात्र उद्देश्य भारतके साधनोंसे नाजायज फायदा उठाते रहनेके लिए उसे गुलामीमें जकड़ रखना है, उसे समाप्त करनेकी अपेक्षा अराजकतामें से व्यवस्थाका निर्माण करनेमें मैं अपने आपको अधिक समर्थ मानता हूँ। मुझे ब्रिटिश शासनके लोक-कल्याणकारी

१. सन् १९१९ के मॉन्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार।

स्वरूपमें विश्वास नहीं है। और अब मैं मानता हूँ कि श्री पेनिंगटनको मेरा यह आश्वासन ठीक-ठीक समझमें आ जायेगा कि अगर मैं अंग्रेजोंसे भारतका सम्बन्ध बनाये रखूँ तो उसका कारण हमें उनसे प्राप्त हो सकनेवाली अपमानजनक सुरक्षा नहीं होगी बल्कि सिर्फ यह विश्वास ही होगा कि मानव-स्वभाव मूलतः अच्छा है; और इसीलिए सिद्धान्त और व्यवहार, दोनों ही दृष्टियोंसे समानताके आधारपर स्थित सहयोगपर मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। मुझे यह आशंका भी नहीं है कि अंग्रेजोंके भारतसे जाते ही दूसरे राष्ट्र भारतपर टूट पड़ेंगे, और उसका आधार भी मेरा यही विश्वास है। मान लीजिए, वे भारतपर टूट ही पड़ें तो भी भारत या तो असहयोगके इसी अद्वितीय अस्त्रसे उनका मुकाबला करेगा, या किसी राष्ट्रवादी प्रताप या अकबरको जन्म देगा जो कारगर ढंगसे अनुशासित पशुबलका उपयोग करेगा, क्योंकि अंग्रेजोंके भारतसे चले जानेपर इस देशको अशक्त और पुंसत्वहीन बनाकर रखनेवाली ताकत हट जायेगी। श्री पेनिंगटन यह भी भूल जाते हैं कि अन्य आक्रमक शक्तियोंकी अच्छाई न सही, अंग्रेजोंके चले जानेके बाद उन शक्तियोंकी पारस्परिक ईर्ष्या ही इस अभागे देशको विदेशियोंके लोभका शिकार होनेसे बचा कर रखेगी। जहाँतक अहिंसाके कारगर होनेकी शक्तिमें मेरे विश्वासकी बात है, वह तो न कभी कमजोर पड़ा है और न पड़ेगा। मैं पत्र-लेखकको आगाह कर देना चाहता हूँ कि वे ब्रिटिश अखबारोंमें छपे पक्षपातपूर्ण विवरणोंका विश्वास न करें। सभी जानते हैं कि अभीतक यह आन्दोलन बिलकुल ही अहिंसक ढंगसे चलता रहा है। इक्के-दुक्के स्थानोंपर हममें आपसमें ही कुछ हुल्लड़बाजी हुई है। लेकिन इस आन्दोलनको ऐसी हुल्लड़बाजीसे भी अलग रखनेकी हर चन्द कोशिश की जा रही है। इस आन्दोलनकी कमजोरियाँ बताते रहनेसे यह कहीं अधिक लाभदायक होगा कि पेनिंगटन यह प्रयत्न करें कि सरकार खिलाफत तथा पंजाब सम्बन्धी अन्यायोंका परिशोधन करनेके लिए गलत रास्तेको छोड़कर सही रास्ता अपनानेको मजबूर हो और भारतमें स्वराज्य स्थापित करनेके लिए एक सम्मेलन बुलाये।

असहिष्णुता

अब मैं भारतीय मित्रोंसे प्राप्त समाचारोंको लेता हूँ। बंगालके चार मुसलमानोंने एक पत्र भेजा है। एक हस्ताक्षरकर्त्ता वकील हैं। इन पत्रलेखकोंको इस आन्दोलनके सफल या इस उद्देश्यके न्यायसंगत होनेमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु उन्हें शब्दोंकी हिंसा के बाद लोगोंके कर्मकी हिंसापर भी उतारू हो सकनेकी आशंका है। उन्होंने उस असहिष्णुताका उल्लेख किया है, जो कहते हैं, श्री विपिनचन्द्र पाल और श्री फजलुल हकके[1] प्रति दिखाई गई। मैं उनकी इस बातसे सहमत हूँ कि असहिष्णुतासे हमें कोई लाभ नहीं हो सकता और अगर वह हिंसाका रूप धारण कर ले तो आन्दोलनको हानि पहुँच सकती है। मैं कह चुका हूँ कि जब किसी वक्ताकी बात अरुचिकर और बुरी लगे तो, निःसन्देह, हमें वहाँसे उठकर चले जानेका अधिकार है, लेकिन शोरगुल मचाकर

१. एक राष्ट्रवादी मुसलमान नेता, जो बादमें द्वितीय विश्व-युद्धके समय बंगालके मुख्यमन्त्री बनाये गये थे।

वक्ताको परेशान करनेका अधिकार नहीं है। एक सहिष्णु सरकारके बदले हम किसी असहिष्णु लोकतन्त्रकी स्थापना तो नहीं ही करना चाहते। असहयोग पशु-बलके मुकाबले जनमतके बलकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेका प्रयास है।

सार्वजनिक अपव्यय

इन्हीं पत्र-लेखकोंने यह भी लिखा है:

हमें बड़े दुःखके साथ आपका ध्यान बहुत-से लोगोंके इस सन्देहकी ओर भी आकृष्ट करना पड़ रहा है कि बड़े-बड़े भोज देकर, पहले दर्जेमें यात्रा करके, बिना किसी जरूरतके टैक्सी वगैरह किरायेपर लेकर तथा अन्य अनेक तरीकोंसे भी नेतागण सार्वजनिक कोषका, जिसमें भिखमंगोंतक का योगदान है, अपव्यय कर रहे हैं।

किसीका नाम नहीं दिया गया है। लेकिन मुझे लगता है, आक्षेप अली बन्धुओं-पर है। मुझे स्वयं भी अपना अपराध स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि इधर अपनी बीमारीके बादसे मैं भी दूसरे दर्जेमें ही यात्रा कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि मौलाना शौकत अलीके लिए तीसरे दर्जेमें यात्रा करना लगभग असम्भव है। जो कार्यकर्त्ता ऐसे किसी कारणसे दूसरे दर्जेमें चलनेपर मजबूर नहीं हैं, उन्हें भी वे दूसरे दर्जेमें ले जाते हैं — इसे कार्यकर्त्ताओंके प्रति उनकी अनावश्यक दयालुता अवश्य मानी जायेगी। इसका कारण उनका उदार स्वभाव है। मुझे भरोसा है कि वे सार्वजनिक पैसेके मामलेमें कमसे-कम उतनी सावधानी तो अवश्य ही बरतते हैं जितनी कि अपने पैसेके बारेमें बरतते हैं। शानदार भोजोंमें उनके द्वारा कभी पैसा बरबाद करनेकी बात मुझे नही मालूम। और टैक्सी वगैरहपर तो वे बेकार पैसा खर्च नहीं ही करते। वे अपने-आपको और अपने साथियोंको जितनी सुख-सुविधा देते हैं, उसका खर्च आमतौर पर वे अपने मित्रोंकी जेबसे चुकता करा देते हैं। फिर भी, मुझे पत्रकी यह बात अच्छी लगी। वैसे मैंने उन्हें बहुत निकटसे देखा है और लगभग एक सालसे उन्हींके साथ यात्रा करता रहा हूँ। इसलिए मैं कह सकता हूँ कि जिन हजारों लोगोंका उनपर विश्वास है, उन्हें अब भी उनकी ईमानदारीपर शक करनेका कोई कारण नहीं है। उन्हें समझना चाहिए कि श्री शौकत अली और उनके भाई जनताके ईमानदार, योग्य और अत्यन्त साहसी सेवक हैं।

गाँवोंमें प्रचारकार्य

इन पत्रलेखकोंने और भी बहुतसे विषयोंपर लिखा है। वे पूछते हैं कि गाँवोंमें प्रचार-कार्य कैसे चलाया जाये। उत्तर बहुत सीधा-सादा है। हर ग्रामवासीको — चाहे वह मर्द हो या औरत — कांग्रेसमें शामिल होना चाहिए और औरतोंको हर गाँवमें एक स्कूल खोलना चाहिए तथा हर घरमें चरखेको दाखिल करना चाहिए। ऐसा शायद ही कोई गांव हो जहाँ कोई मन्दिर या मसजिद न हो। इन मन्दिरों या मसजिदोंके अहातोंमें राष्ट्रीय स्कूल खोले जाने चाहिए और लड़कों और लड़कियोंको सीधी-सादी शिक्षा देनी चाहिए। अगर मेरी चले तो मैं हर स्कूलमें कताई अनिवार्य कर दूँ।

कोई भी ग्रामशाला चलानेका खर्च उस गाँवकी सामर्थ्यसे अधिक नहीं होना चाहिए। ये शालाएँ हमारे बच्चोंमें साहस और विश्वास भरनेवाली संस्थाएँ होंगी। कताई और बुनाईसे हर गाँवको आत्मनिर्भर बना देना चाहिए। स्वराज्यकी स्थापनाके पहले ही भारतके जीवनको राष्ट्रीय आधारपर शान्तिपूर्ण ढंगसे संगठित कर देना जरूरी है। अगर सच्चे मनसे प्रयास किया जाये तो दुनियाकी कोई भी ताकत इस राष्ट्रको अपने लक्ष्यकी ओर बढ़नेसे रोक नहीं सकती। कालेजका हर ईमानदार और बहादुर छात्र यह महान् कार्य अपने हाथोंमें ले सकता है। इसके लिए पहलेसे किसी शिक्षाकी जरूरत नहीं है। जरूरत सिर्फ उन दो गुणोंकी है, जिनका उल्लेख मैंने किया है।

और भी आलोचक और भी आलोचनाएँ

सारी बातोंको प्रकाशित या उनका उल्लेख न कर पानेके लिए, आशा है पत्र-लेखक मुझे क्षमा करेंगे। मेरे लिए वह सम्भव नहीं है। मेरे सामने ध्यान देने लायक दो प्रचार-पुस्तिकाएँ पड़ी हुई हैं, एक कलकत्ताके श्री चटर्जीकी लिखी हुई है और उसकी भूमिका श्री शास्त्रियरने[1] बहुत ही प्रभावशाली शैलीमें लिखी है। मैं यह पुस्तिका अभी पढ़ नहीं पाया हूँ। दूसरी नागपुरके प्रो० राजूने लिखी है। प्रो० राजूकी पुस्तिकाको भी मैं अभी सरसरी नजरसे ही देख पाया हूँ। उसमें उन्होंने असहयोगके पक्षकी धज्जियाँ उड़ानेकी कोशिश की है। यह पुस्तिका इसलिए पढ़नी पड़ी कि मैं नागपुरमें प्रिंसिपल चैशायरके साथ उनसे भी मिलनेकी उम्मीद कर रहा था। लेकिन प्रशासनने मंजूरी नहीं दी, सो उनसे मिल नहीं पाया। प्रो० राजूकी पुस्तिकापर विस्तारसे लिख सकनेके लिए मेरे पास समय नहीं है। मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि उन्होंने इस आन्दोलनका अध्ययन सतही तौरपर ही किया है और उतने ही सतही तौरपर मेरे साधनपर भी विचार किया है। ऐसा लगता है कि वे मेरे कुछ मूलभूत विचारोंसे भी परिचित नहीं हैं। उन्होंने मुझपर बहुत-से ऐसे विचार आरोपित किये हैं, जो कभी मेरे मनमें रहे ही नहीं। उन्होंने पाठकोंके सामने मेरे विचारोंका विकृत चित्र ही पेश किया है। जिसने कभी इस आन्दोलनका या मेरे विचारोंका अध्ययन न किया हो इस पुस्तिकासे वही भ्रमित हो सकता है। उनके निष्कर्ष स्पष्टतः बेतुके हैं; मैं यहाँ उनमें से सिर्फ एकको ही पेश करके सन्तोष करता हूँ। वे कहते हैं:

> **श्री गांधीका दावा है कि वर्तमान असहयोग आन्दोलन अहिंसात्मक है लेकिन हम इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि अहिंसात्मक होना तो दूर, निश्चित रूपसे इसका मंशा और उद्देश्य हिंसा करना ही है।**

'यंग इंडिया' के पाठकोंको इस आन्दोलनके अहिंसात्मक स्वरूपके बारेमें आश्वस्त करानेकी कोई जरूरत नहीं। श्री राजू गलत तथ्योंके आधारपर ऊटपटाँग सम्भावनाओंकी कल्पना करके इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं। उनकी पुस्तिकापर विस्तारपूर्वक विचार न करनेके लिए मैं उनसे क्षमा चाहता हूँ। मैं श्री राजूसे और जिन लोगोंपर

१. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री (१८६९–१९४६); विद्वान, राजनीतिज्ञ और १९१५ से १९२७ तक भारत सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के अध्यक्ष।

उनकी दलीलका प्रभाव पड़ा हो उन लोगोंसे भी कहूँगा कि वे 'यंग इंडिया' की फाइल उलटकर देख जायें। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उन्हें श्री राजू द्वारा पेश की गई सभी दलीलोंका जवाब उसमें मिल जायेगा।

"गांधी सिगरेट!"

मेरे नामका जितना भी दुरुपयोग किया गया है, उनमें से कोई भी मेरे लिए उतना अपमानजनक नहीं है जितना कि जानबूझकर एक कम्पनीका अपनी सिगरेटोंके साथ उसका जोड़ दिया जाना है। एक मित्रने मेरे पास एक लेबिल भेजा है, जिसपर मेरी तसवीर छपी हुई है। सिगरेटका नाम "महात्मा गांधी सिगरेट" रखा गया है। मैं तो धूम्रपानसे उतना ही भय खाता हूँ जितना शराबखोरीसे। धूम्रपानको मैं दुर्व्यसन मानता हूँ। इससे व्यक्तिकी बुद्धि और विवेक कुण्ठित हो जाते हैं। यह एक तरहसे शराबसे भी बुरा है, क्योंकि इसका असर आसानीसे स्पष्ट दिखाई नहीं देता। एक बार अगर किसीको इसकी लत लग गई, तो इससे छुटकारा पाना कठिन ही होता है। और यह एक खर्चीला दुर्व्यसन है। इससे साँसमें दुर्गन्ध पैदा हो जाती है, दाँतोंका रंग खराब हो जाता है और कभी-कभी कैंसर भी हो जाता है। यह एक गन्दी आदत है। मैंने किसीको अपने नामको सिगरेटोंके साथ जोड़नेकी अनुमति नहीं दी है। अगर यह अज्ञात सिगरेट कम्पनी बाजारमें पहुँची सिगरेटोंपरसे लेबिल हटा ले या अगर जनता ऐसे लेबलवाली सिगरेटें न खरीदे तो मैं आभार मानूँगा।

सच्ची योग्यता

मुझे इस आशयकी भी सूचना दी गई है कि एक लड़की अपनेको मेरी बेटी बताते हुए देशमें घूम रही है। खबर मिली है कि द्वारिका, छपरा और नेपालमें भी देखी गई। यहाँ मैं आपको बता दूँ कि मुझे किसी भी लड़कीका पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं है। और न मैंने किसीको किसी तरहके प्रचारके सिलसिलेमें अपने नामका उपयोग करनेका ही अधिकार दिया है। मुझसे सम्बन्धित सभी कार्यकर्त्री बहनोंको लोग अच्छी तरह जानते हैं; और उनके हाथमें जो भी काम हो, उसे करनेके लिए उन्हें मेरे नामका उपयोग करनेकी जरूरत नहीं है। ऐसी उलझनोंसे निबटनेका सबसे अच्छा रास्ता यह है कि जो लोग मेरे साथ, या मेरे ही साथ क्यों, किसी भी सार्वजनिक कार्यकर्त्ताके साथ अपना सम्बन्ध बतायें, उनकी बातोंको कोई महत्व ही न दें। आज जब हमारे पास हजारों कार्यकर्त्ता हैं तब उचित यही होगा कि हरएककी परीक्षा उसके अपने गुणोंके आधारपर हो; उसमें इस बातका विचार न हो कि वह किसका कौन है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-१-१९२१

११२. प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंके नियमोंका मसविदा

१. नये संविधानके[1] अनुसार नये बनाये गये प्रान्तमें[2] पुरानी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी या पुरानी जिला कांग्रेस कमेटी, प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी बन जायेगी।

२. वर्तमान सदस्य जो कांग्रेसके नये ध्येय और साधनोंको स्वीकार करते हैं, तुरन्त प्रान्तको जिलोंमें बाँटनेकी कार्रवाई करेंगे। वर्तमान राजनीतिक जिले जहाँ-कहीं सम्भव होगा, ज्योंके-त्यों रहेंगे।

३. इस प्रकारका प्रत्येक जिला ताल्लुकों या तहसीलोंमें विभक्त कर दिया जायेगा; किन्तु यथासम्भव वर्तमान विभाजन ज्योंके-त्यों रखे जायेंगे।

४. प्रत्येक ताल्लुका फिरकों या मंडलोंमें विभक्त कर दिया जायेगा।

५. प्रत्येक वर्तमान जिला कमेटी उन ग्रामीणोंमें से, जो उसके अधिकार-क्षेत्रमें है, संविधानके अनुसार वांछनीय संख्यामें सदस्य बनायेगी और वे सदस्य कांग्रेसके प्रतिनिधियों और विभिन्न जिला कांग्रेस कमेटियोंमें भेजे जानेवाले प्रतिनिधियोंका चुनाव करेंगे।

६. प्रत्येक सोमवारको वर्णानुक्रमसे सदस्योंकी एक सूची बनाकर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीको भेजी जायेगी। इस सूचीमें प्रत्येक सदस्यका पूरा नाम, पता और व्यवसाय लिखा होगा।

७. प्रत्येक जिला कमेटीका दायित्व होगा कि वह सदस्योंसे सदस्यताका शुल्क इकट्ठा करे और उसका आधा अंश नियम ६ में उल्लिखित सूची भेजते समय उसके साथ ही प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीको भेजे।

८. जिस गाँवके कांग्रेस संगठनमें गाँवके ५ से अधिक सदस्य हों वह अपना मन्त्री, कोषाध्यक्ष, अध्यक्ष तथा दो और सदस्य चुनेगा, जो गाँवकी पंचायतका काम करेंगे।

९. यह पंचायत गाँवमें रहनेवाले प्रत्यक बालक या बालिकाको प्राथमिक शिक्षा देने, प्रत्येक घरमें चरखे पहुँचाने तथा गाँवमें रोग-निवारण तथा सफाईकी व्यवस्था करेगी, और उसका यह दायित्व भी होगा कि वह कांग्रेसके असहयोग-विषयक प्रस्तावसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य सब बातोंको, जहाँतक वे गाँवपर लागू होती हैं, कार्यान्वित करे।

१०. जिला कमेटीका यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपने क्षेत्रके ग्राम-संगठनों तथा अन्य संगठनोंके कामकी देखरेख और नियमन करे।

११. हर जिला कांग्रेस कमेटीमें दस सदस्य होंगे, जिनका चुनाव विभिन्न संगठनोंके सदस्य करेंगे और जहाँतक सम्भव होगा इसमें जिलेकी मुसलमान आबादीके

१. देखिए "नागपुर अधिवेशनमें पास किया गया कांग्रेसका संविधान", दिसम्बर १९२०।

२. कांग्रेसके नये संविधानके अन्तर्गत भाषाके आधारपर नये सिरेसे कांग्रेसके प्रान्त बनाये गये थे।

अनुपातसे मुसलमान और यथासम्भव कमसे-कम एक स्त्री और एक दलित वर्गीय सदस्य भी लिये जायेंगे।

१२. इस प्रकार चुनी गई जिला कांग्रेस कमेटीके प्रतिनिधि अपनेमें से अपना अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष और मन्त्री चुनेंगे।

१३. जिला कमेटियोंके लिए चुने गये प्रतिनिधि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंके लिए प्रतिनिधि चुनेंगे और इस चुनावमें नियम संख्या ११में दी गई व्यवस्था लागू होगी। इनकी संख्या कांग्रेस महासमितिके लिए निर्धारित सदस्य-संख्यासे १० अधिक होगी।

१४. इस प्रकार चुने गये प्रतिनिधि अपनेमें से अध्यक्ष, मन्त्री, कोषाध्यक्ष और चार अन्य सदस्य चुनेंगे। ये लोग प्रान्तीय कार्योका संचालन करेंगे और कांग्रेसके समय-समयपर स्वीकृत किये गये प्रस्तावोंको उचित रूपसे कार्यान्वित करनेके लिए प्रान्तीय कमेटीके प्रति उत्तरदायी होंगे।

१५. जिला कांग्रेस कमेटियोंके प्रतिनिधियोंका चुनाव २१ फरवरी, १९२१को होगा और वह १५ फरवरीको ५ बजे सायंकालतक बने सदस्योंकी सूचीके आधारपर किया जायेगा।

१६. चुनाव प्रत्येक जिला कांग्रेस कमेटी द्वारा निश्चित की गई किसी सुविधा-जनक जगहमें खुले रूपमें और इसी निमित्त बुलाई गई निर्वाचकोंकी सभामें किया जायेगा। निवृत्त होनेवाली कमेटीका मन्त्री इस सभाका संयोजक और चुनाव अधि-कारी होगा।

१७. प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके प्रतिनिधियोंका चुनाव ४ मार्च, १९२१को प्रान्तके प्रधान कार्यालयमें होगा। निवृत्त होनेवाली प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीका मन्त्री इसका संयो-जक और चुनाव अधिकारी होगा।

१८. प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके निर्वाचक अपना मतपत्र डाकसे भेज सकते हैं।

१९. मन्त्री चुनावके परिणामोंको समाचारपत्रोंको प्रकाशनार्थ भेजेगा।

२०. प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों और जिला कांग्रेस कमेटियोंके मन्त्री जहाँतक सम्भव हो, पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता हों और यदि जरूरत हो तो उनको प्रान्त या जिलेके कोषमें से वेतन भी दिया जाये।

२१. कांग्रेस अधिवेशनके प्रतिनिधियोंका चुनाव १५ नवम्बर, १९२१ को होगा।

२२. प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी हरएक ताल्लुकेके लिए यथासम्भव आबादीके अनु-पातसे चुने जानेवाले प्रतिनिधियोंकी संख्या निर्धारित कर देगी, और चुनाव ताल्लुकेके उस केन्द्रीय स्थानमें किया जायेगा, जिसे जिला कांग्रेस कमेटी निश्चित करेगी और जिला कांग्रेस कमेटी द्वारा मान्य एजेंट उसकी देखरेख करेंगे।

२३. चुनावोंका परिणाम सम्बन्धित जिला कमेटियोंको अधिकसे-अधिक दिसम्बर १९२१ तक भेज दिया जायेगा।

२४. प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक महीनेमें कमसे-कम एक बार होगी और उसमें जिला संगठनोंकी रिपोर्टोंपर विचार किया जायेगा तथा कांग्रेस द्वारा स्वीकृत प्रस्तावोंको कार्यान्वित करनेके लिए कदम उठाये जायेंगे।

२५. ये नियम ३१ दिसम्बर, १९२१ तक एक सालके लिए लागू रहेंगे किन्तु इनमें इससे पहले समय-समयपर नई प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी सुधार, परिवर्तन और संशोधन कर सकती है।

* * *

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियोंके कार्यकी सुविधाके लिए मैंने ऊपर दिये गये नियम बनानेकी धृष्टता की है। कमेटियाँ स्वभावतः इनमें जैसा चाहें फेरफार कर सकती हैं या इन्हें बिलकुल नामंजूर कर सकती हैं। ये नियम केवल मार्गदर्शनकी दृष्टिसे सामने रखे गये हैं। अगर जूनकी समाप्तिसे पहले इस नये तन्त्रको चालू करना है, जैसा कि नये संविधानके अन्तर्गत अनिवार्य है, तो हमें देर नहीं करनी चाहिए। यदि हम नये संगठनको व्यवस्थित और सुचारू रूप प्रदान कर सकें और लाखों स्त्री-पुरुषोंको सक्रिय कार्यकर्ता, असहयोगके प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके लिए कृतसंकल्प कार्यकर्त्ता बना सकें तो यह बात आसानीसे समझी जा सकती है कि हम अवश्य ही एक वर्षमें शान्तिपूर्ण और रक्तहीन क्रान्ति कर सकेंगे। असहयोगकी समस्त योजना इस मान्यतापर आधारित है कि इस देशपर अंग्रेजोंका नियन्त्रण लोगोंके ऐच्छिक सहयोगपर निर्भर है। यह सच है कि लोग यह सहयोग अनजाने ही देते हैं; और यह भी बिलकुल सच है कि इसका कारण भय है; और इसका कारण वे प्रलोभन हैं, जिन्हें देकर अंग्रेज हममें से कुछ लोगोंको लुब्ध करते आये हैं। इस दृष्टिसे वर्तमान आन्दोलन यह दिखानेका एक प्रयत्न-भर है कि हम जिस क्षण अंग्रेजोंको अपना यह ऐच्छिक सहयोग देना बन्द कर देंगे, जिस क्षण हम उनका भय त्याग देंगे और उनके प्रलोभनमें आनेसे इनकार कर देंगे उसी क्षण हम लोग स्वतन्त्र हो जायेंगे। मैं मानता हूँ कि हममें से बहुत लोग इस कार्यको जितना कठिन मानते हैं, यह उतना कठिन नहीं है। इस चालू वर्षमें यह मालूम हो जायेगा कि मेरा यह विश्वास सही है या नहीं। कांग्रेसके पण्डालमें[1] जो हजारों लोग इकट्ठे हुए थे, उनका विश्वास भी वही था जो मेरा है। अब अपने इस विश्वासको कार्यरूप देना उनका काम है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२–१–१९२१

१. दिसम्बर १९२० में नागपुरमें हुए कांग्रेस अधिवेशनमें।

११३. विनम्रताकी जरूरत

अहिंसाकी भावना लाजमी तौरपर विनम्रताकी ओर ले जाती है। अहिंसाका मतलब है उस भगवानपर पूरा भरोसा करना जो सदासे सबका सहारा रहा है। अगर हम उसकी मदद चाहते हैं तो हमें अहंकार छोड़कर और पश्चात्ताप-भरे दिलसे उसकी शरणमें जाना चाहिए। कांग्रेसके अधिवेशनमें असहयोगियोंको जो आश्चर्य-जनक सफलता मिली उसका उन्हें बेजा फायदा उठानेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। व्यवहारमें हमें आमके पेड़के जैसा होना चाहिए, जो फल आनेपर झुक जाता है। उसकी शानदार विनम्रता ही उसकी शोभा है। लेकिन यह सुना जाता है कि मतभेद रखनेवालोंके साथ असहयोगियोंका व्यवहार अविनीत और असहिष्णु होता है। वे अगर इस तरह इतराने लगे तो मैं इतना ही जानता हूँ कि वे अपनी गरिमा और अपना गौरव सभी-कुछ खो बैठेंगे। अभीतक की अपनी प्रगतिपर हमें असन्तोष भले ही न हो, परन्तु अभी गर्व करने लायक भी हमने क्या पा लिया है? गर्वसे फूल उठना तो दूर, उचित गर्व कर सकनेके लिए भी अभी हमने जितना त्याग किया है, उससे बहुत ज्यादा त्याग हमें करना होगा। कांग्रेसके अधिवेशनमें शरीक होनेवाले हजारों लोगोंने अहिंसाके सिद्धान्तका बौद्धिक समर्थन तो बेशक किया, मगर उसपर आचरण बहुत कम कर रहे हैं। वकीलोंकी बात छोड़ भी दें तो ऐसे कितने माता-पिता हैं जिन्होंने अपने बच्चोंको स्कूलोंसे हटा लिया है? असहयोगके पक्षमें मत देनेवाले ऐसे कितने लोग हैं जो चरखा चलाते हैं या जिन्होंनें विदेशी कपड़ेका इस्ते-माल पूरी तरह छोड़ दिया।

असहयोग आन्दोलनमें डींग हाँकने, शेखी बघारने या झाँसा देनेसे काम नहीं चल सकता। यह तो हमारी ईमानदारीकी कसौटी है। यह आन्दोलन हमसे ठोस और मूक बलिदान चाहता है। यह हमारी ईमानदारी और राष्ट्रके कामके हमारे सामर्थ्यको चुनौती है। इस आन्दोलनका मकसद तो विचारोंको कार्यरूप देना है। हम जितना ही ज्यादा काम करते हैं हमें उतना ही ज्यादा यह पता चलता है कि हमने जितना सोचा था, उससे कहीं अधिक काम करनेकी जरूरत है। अपनी अपूर्णताके इस खयालसे तो हममें विनम्रता ही आनी चाहिए।

असहयोगी अगर लोगोंका ध्यान अपनी बातोंकी ओर खींचना चाहता है, अगर वह उनके सामने कोई मिसाल पेश करना चाहता है तो ऐसा वह हिंसाके जरिये नहीं, बल्कि शीलयुक्त विनम्रताके जरिये ही करता है। वह बोल कर नहीं, ठोस कामके द्वारा लोगोंको अपने पंथ और मतका परिचय देता है। अपने सिद्धान्तकी सचाईमें पक्की आस्था ही उसकी ताकत है। और यह आस्था उसके विरोधीमें भी उस समय सबसे अधिक जाग्रत होने लगती है जब वह विरोधका उत्तर अपनी वाणीसे न देकर सिर्फ अपने कामसे देता है। वाणी, खास तौरपर अभिमानसे भरी उद्धत वाणी विश्वासकी

कमीको जाहिर करती है और विरोधीके मनमें उस कामकी सचाईके बारेमें ही सन्देह पैदा कर देती है। अतएव, विनम्रता जल्दीसे-जल्दी सफलता पा लेनेका गुर है। मैं आशा करता हूँ कि हरेक असहयोगी विनम्रता और आत्म-संयमकी जरूरतको समझेगा। चूँकि हमसे यह बिलकुल ही छोटी बात अपेक्षित है और इसे कर दिखाना बिलकुल हमारे हाथकी बात है, इसीलिए मैंने यह विश्वास दिलानेकी हिम्मत की है कि एक सालसे भी कम समयमें स्वराज्य हासिल किया जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२–१–१९२१

११४. आन्दोलनके लिए धन कहाँसे लाया जाये

कांग्रेसके असहयोग प्रस्तावका[1] हर देशभक्तको बहुत ध्यानसे अध्ययन करना चाहिए। अगर लोग उतनी ही लगनसे काम भी करें जितने उत्साहसे उन्होंने इस प्रस्तावकी ताईद की है तो स्वराज्य एक सालके अन्दर हासिल किया जा सकता है। सिर्फ प्रतिनिधियोंने ही असहयोगको जरूरी समझा और बताया हो, ऐसी बात नहीं है; अधिवेशनमें आये हुए हजारों दर्शकोंने भी इस कार्यक्रमके बारेमें अपना पूरा समर्थन कई तरहसे जाहिर किया है।

क्रिसमस सप्ताहमें[2] सिर्फ प्रस्ताव पारित कर लेने और फिर अगले क्रिसमसतक सारा साल सोते रहनेके दिन अब लद गये। जो कहते कुछ, और करते कुछ हैं, ऐसे लोगोंके लिए कांग्रेसके अधिवेशनोंमें भाग ले पाना दिनोंदिन मुश्किल होता जायेगा। सभीका यह कर्त्तव्य है कि वे सरकारी या सरकार-नियन्त्रित शिक्षण संस्थाओंमें से अपने बच्चोंको हटा लें। सभीका कर्त्तव्य है कि वे विदेशी चीजोंका कमसे-कम इस्तेमाल करें और सिर्फ हाथकते सूतके हाथसे बुने हुए कपड़ेको ही काममें लायें। सभीका कर्त्तव्य है कि वे तिलक स्मारक स्वराज्य-कोषमें पैसा दें। यह असहयोग आन्दोलन तो आत्म-निरीक्षणका, दिल टटोलनेका आन्दोलन है। कार्यकर्त्ताओंको चाहिए कि वे जनताको उसके कर्त्तव्यके प्रति बराबर सचेत करते रहें। इस कार्यक्रमको लागू करानेके लिए कांग्रेसके पूरे संगठनका इस्तेमाल किया जाना चाहिए। [कांग्रेसके] नये संविधानने कार्यकर्त्ताओंको यह मौका दिया है कि वे कार्यक्रमको तफसीलवार पूरा करनेके लिए जनताको एक सालके अन्दर-अन्दर संगठित कर सकें। अगर भारतका विशाल जन-समुदाय सजग रहकर प्रयत्न करे तो स्वराज्यकी उसकी जायज इच्छाको कोई दबा नहीं सकता। अगर हम शिक्षण संस्थाओंका राष्ट्रीयकरण और अदालतोंका बहिष्कार कर दें और अपनी जरूरतका सारा कपड़ा खुद बनाने लगें तो उसका मतलब होगा कि हमने अपना राजकाज खुद चलानेका अपना अधिकार सिद्ध कर दिया है, और तब

१. देखिए परिशिष्ट १।

२. कांग्रेसका वार्षिक अधिवेशन सामान्यतः दिसम्बरके आखिरी हफ्तेमें हुआ करता था।

दुनियाकी कोई ताकत हमारे उद्देश्यको विफल नहीं कर सकेगी। कुछ ही हजार निःस्वार्थ, ईमानदार और मेहनती कार्यकर्त्ताओंकी मददसे, ऊपर बताय हुए तीनों कामोंको बगैर किसी खास मुश्किलके पूरा किया जा सकता है।

लेकिन इस लेखमें तो मैं आर्थिक कठिनाइयोंके बारेमें विचार करना चाहता हूँ। अखिल भारतीय तिलक स्मारक स्वराज्य-कोष इतना बड़ा तो होना ही चाहिए कि उससे राष्ट्रीय संस्थाओं और आन्दोलनकी सारी जरूरतें पूरी हो सकें। इस काममें देशके हजारों धनवानोंके सहयोगका हम स्वागत करते हैं, फिर भी हमारा असली सहारा तो आम जनतासे मिलनेवाला एक-एक पैसा ही है। समझ-बूझकर दिया हुआ हर पैसा, देनेवालेके स्वराज्य स्थापित करनेके निश्चय का प्रतीक होगा। मैं तो यहाँ तक कहना चाहता हूँ कि राष्ट्रकी जनता अपनी बेकारकी जरूरतों, बुरी आदतों और दुर्गुणोंका परित्याग कर दे तो केवल इसीसे आन्दोलनके लिए जरूरी धनका प्रबन्ध हो सकता है।

अगर भारतीय महिलाएँ अपने बेकारके गहने राष्ट्रको सौंप दें, अगर शराबी शराब पीना छोड़कर उस पैसेका आधा आन्दोलनको दे दें, अगर तम्बाकू पीनेवाले देशके स्वतन्त्र होने तक धूम्रपान न करें और बचतका आधा पैसा इस कामके लिए दे दें तो आन्दोलनको सफलतासे पूरा करनेके लिए जितना धन जरूरी है, हमें मिल जायेगा। मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि मध्यप्रान्तमें शराबखोरीके खिलाफ बड़ा भारी आन्दोलन चल रहा है। मैं समझता हूँ कि उस आन्दोलनकी वजहसे हजारों शराबियोंने इस बुरी लतसे छुटकारा पा लिया है। अगर शराबकी लतको मिटानेके लिए कोई संगठित प्रयत्न किया जाये तो वह असहयोगकी बहुत बड़ी जीत होगी। मुझे पूरा विश्वास है कि जिन लोगोंकी यह बुरी लत छुड़ाई जायेगी वे इससे होनेवाली बचतका एक भाग खुशी-खुशी और कृतज्ञताके साथ आन्दोलनके लिए दे देंगे।

हम लोग गरीब हैं और दिनोंदिन ज्यादा गरीब होते जा रहे हैं। इसलिए अगर हमें आम जनतामें से धन-संग्रह करना है तो आत्म-निरोधके द्वारा ही हम यह काम कर सकते हैं। कुछ-न-कुछ तो हमेशा ऐसा रहता ही है जिसे हम देशके लिए छोड़ सकते हैं। बिना किसी हिचकिचाहटके मैं धर्मपरायण लोगोंको यह सुझाव देता हूँ कि अगर वे अपनी दानशीलताका उपयोग स्वराज्यका मन्दिर बनानेके लिए करें, तो उसका इससे ज्यादा अच्छा उपयोग दूसरा हो ही नहीं सकता। कांग्रेसकी महासमिति द्वारा नियुक्त कार्यसमिति धन-संग्रहकी कोई तजवीज जरूर पेश करेगी। लेकिन मैं स्वयंसेवी कार्यकर्त्ताओंसे कहूँगा कि वे आम जनतामें आत्म-निरोधकी आदत डालकर उस योजनाकी सम्पूर्ति कर सकते हैं।

इस दिशामें अलग-अलग प्रान्तोंके बीच स्वस्थ प्रतियोगिता होनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-१-१९२१

११५. तार : जयरामदास दौलतरामको

१२ जनवरी, १९२१

आपका तार मिला। मैं यहाँ उन्नीसतक हूँ, उसके पश्चात् बम्बई।[1] फिलहाल मुझे वहाँ खींचनेका प्रयत्न न कीजिए।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२१, पृष्ठ ९९

११६. भाषण : गुजरात महाविद्यालयके विद्यार्थियोंके समक्ष[2]

१३ जनवरी, १९२१

मुझे उम्मीद थी कि जब मैं यात्रासे[3] वापस आऊँगा तब तुमसे मिलूँगा, तुम्हारे साथ सलाह-मशविरा करूँगा, सुख-दुःखकी बातें करूँगा और अपनी यात्राके अनुभवोंके कुछ उद्धरण तुम्हें सुनाऊँगा। उस समय मुझे खबर नहीं थी कि जो सन्देश पिछले दो दिनोंसे मैं सभी लोगोंको दे रहा हूँ, वही तुम्हें भी दूँगा। मैं आज तुम्हारे सामने जो बात रखनेवाला हूँ वह कोई नई बात नहीं है। मेरे मनमें तो वह शुरूसे ही है। मैं इसपर समय-असमय विचार करता रहा हूँ और मैंने इसपर अमल भी किया है। लेकिन मैं अपने जीवनमें अमुक वस्तुओंको दिनके उजाले-सा साफ-साफ अमुक समयपर ही देख पाता हूँ; जिस तरह रौलट अधिनियम-आन्दोलनके समय नडियादमें एक दिन[4] मुझे एकाएक यह सूझ गया कि कानूनका सविनय-भंग करनेके लिए अभी राष्ट्र तैयार नहीं है। नडियादमें मैं खुद रहा था और अपनी मान्यताके अनुरूप मैंने बड़ेसे-बड़ा काम किया था।[5] वहाँके लोग अपना आपा खो बैठे और उन्होंने एक भारी भूल कर डाली।[6] मैंने देखा कि कानूनका सविनय-भंग वही लोग कर सकते हैं जो भयवश नहीं वरन् सोच-समझकर जीवन-भर कानूनको मानते आये हों।

१. २० जनवरी १९२१को कांग्रेसकी कार्यकारिणी समितिकी बैठक बम्बईमें होनेवाली थी।

२. गुजरात विद्यापीठका अपना कालेज; १५ नवम्बर, १९२०को अहमदाबादमें संस्थापित।

३. १६ नवम्बर, १९२० से १० जनवरी, १९२१ तक गांधीजी यात्रापर थे।

४. १८ अप्रैल, १९१९को गांधीजीने आन्दोलनको अस्थायी रूपसे स्थगित करनेकी सलाह दी थी।

५. १९१८के ग्रीष्ममें खेड़ा सत्याग्रहके दौरान नडियाद गांधीजीका मुख्य कार्यालय था। देखिए खण्ड १४।

६. १०, ११ और १२ अप्रैल १९१९को गांधीजीके गिरफ्तार किये जानेके समाचारपर हुए उपद्रवोंके दौरान; देखिए खण्ड १५।

मुझे अपने अस्त्र नीचे रख देने पड़े। इस तरह मुझे किसी वस्तुका किसी विशेष समयपर एहसास हो जाता है। मैं जब विद्यार्थी था तब मुझे ज्यामिति समझमें नहीं आती थी। १३ प्रमेय हो जानेतक मुझे यही पता नही चला था कि ज्यामिति क्या चीज है। लेकिन बादमें जब शिक्षकने ब्लैकबोर्डपर १३वाँ प्रमेय समझाया तब एकाएक मेरे अन्तरमें उजाला हो गया, तबसे मैं रसपूर्वक ज्यामिति सीखने लगा। ठीक उसी तरह आज तीन-चार दिनसे एक बात मेरे मनमें स्पष्ट हो गई है। यदि हम असहयोगको सफल बनाना चाहते हों, यह चाहते हों कि विद्यार्थी इसमें भाग लें और हम एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्त कर लें तो हमें क्या करना चाहिए? जिस वस्तुको मैं पहलेसे मानता आया हूँ उसी वस्तुको मैं इस समय आपके सामने पेश करता हूँ। मेरा तो इस वस्तुमें प्रारम्भसे ही अटल विश्वास रहा है, तथापि इसके एक पहलूको मैंने आज जैसा समझा है वैसा पहले कभी न समझा था।

मैं कुलपतिकी हैसियतसे तुम्हें कुछ कहने नहीं आया हूँ, बड़े भाई अथवा गुरु-जनके रूपमें सलाह देने और परामर्श करनेके लिए आया हूँ। यह सलाह देनेका आग्रह तो मैं अवश्य करूँगा। जिस दृढ़ता और विश्वासके साथ आज मैं यह बात तुमसे कहूँगा उस विश्वास और दृढ़ताके साथ मैंने यह पहले कभी तुमसे नही कही है। स्कूल छोड़ना, शिक्षा विहीन होना तो आत्मघात करनेके समान है, यदि तुम्हारा यह खयाल हो तो मैं तुमसे कहूँगा कि स्कूल जानेके पापके बजाय तुम आत्मघात ही करो। ईश्वर तुम्हें इस आत्मघातके लिए क्षमा करेगा। अभीतक मैं तुमसे अनेक दिलचस्प बातें कहता आया हूँ, लेकिन आज तो मैं यह कहनेके लिए आया हूँ कि यदि तुम असहयोगको सफल बनाना चाहते हो तो तुम अपने समयमें से प्रतिदिन एक-एक घंटा सूत कातनेके लिए दो। यह तुम्हें नई बात लगेगी, इससे तुम्हें आघात पहुँचेगा। जिनके मनमें स्नातक बननेकी आकांक्षा है और जिन्हें यह विश्वास दिलाया गया है कि यह विद्यापीठ उन्हें स्नातककी उपाधि प्रदान करेगी उनसे मैं कहता हूँ कि आज हिन्दुस्तानके लिए चरखा चलाना ही सबसे बड़ी उपाधि पाना है। मैं इसे इतना अधिक महत्व इसलिए देता हूँ कि इस समय मेरी विचारसरणीका प्रवाह जितना तीव्र है उसका उतना ही प्रवाह मैं तुम सबमें भी देखना चाहता हूँ।

हिन्दुस्तानके गुलाम हो जानेका एकमात्र कारण यही है कि हमने स्वदेशीका त्याग कर दिया। हिन्दुस्तानमें सूत कातनेका धन्धा कोई अलग धन्धा नहीं था, सभी वर्गोंकी हरेक स्त्री सूत काता करती थी। कितने ही पुरुष भी काता करते थे। ढाकाकी मलमलका सूत कातनेवाले पुरुष थे। लेकिन यह तो मैंने धन्धा करनेवाले थोड़े लोगोंकी बात की। सामान्य रूपसे कातना धन्धा नहीं वरन् कर्त्तव्य समझा जाता था, धर्म माना जाता था। जबतक हिन्दुस्तानमें लोग चरखा कातते थे तबतक हिन्दुस्तान आबाद था, समृद्ध था। हमारा इतिहास बताता है कि हाथसे कते और बुने कपड़ेसे न केवल देशकी भीतरी जरूरत पूरी होती थी वरन् उसका निर्यात भी किया जाता था। ईस्ट इंडिया कम्पनीने जैसे बना वैसे कपड़ा बनानेके इस उद्योगको नष्ट कर दिया। करोड़ों रुपये कमानेके लिए उसने लड़ाइयाँ कीं, बन्दरगाहोंको हस्तगत किया, व्यापारको हाथमें

किया और अन्तमें राज्यकी स्थापना की। हम जबतक पश्चात्ताप नहीं करते, बाप-दादोंपर हुए अत्याचारोंका प्रायश्चित नहीं करते तबतक हम स्वराज्य कैसे ले सकते हैं? अत्याचारीको दण्ड देकर हम उसे कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। दण्ड देनेकी पद्धतिका हमें त्याग करना होगा। दूसरेको दण्ड देकर नहीं वरन् आत्मशुद्धिसे ही शक्ति प्राप्त करके हमें अंग्रेजोंको राज्य करनेसे रोकना चाहिए। हमारी अपवित्रताके कारण ही वे राज्य कर रहे हैं; कर पा रहे हैं — ऐसा अगर तुम मानते हो और केवल निर्मल साधनोंके द्वारा ही स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हो तो क्या करना चाहिए? प्राय-श्चित्त करना चाहिए, छोड़े हुए कातनेके धन्धेको फिरसे हाथमें ले लेना चाहिए। तुम कहोगे कि यह कार्य तो स्त्रीवर्गका है। उससे हम कातनेके लिए कहनेको तैयार हैं। मैं कहूँगा कि इतने-भरसे काम नहीं चलेगा। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमने पंजाबकी स्त्रियोंकी इज्जतको लुटते देखा; इसका प्रायश्चित् भी हम पुरुष कातनेके द्वारा ही कर सकते हैं। हमें कातनेका धन्धा अपना धन्धा छोड़कर नहीं अपनाना है वरन् फुरसतके समयका धन्धा मानकर इसे अपनाना है और इस तरह हिन्दुस्तानका उद्धार करना है। हमारा प्रायश्चित्त पूरा तो तभी होगा जब स्त्री, पुरुष और बच्चे सब कातने लगेंगे। ब्रिटिश मालका बहिष्कार करनेके हिमायती लोग लंकाशायरको पछाड़नेके लिए बहि-ष्कारकी बात करते हैं लेकिन दूसरोंको पछाड़नेकी बात करनेकी अपेक्षा मुझे यह करना अधिक अच्छा लगता है कि कोई हमें पछाड़ न सके। जापान, विलायत और अमेरिकाका रास्ता यदि बन्द करना हो तो हमें अपनी जरूरतका सारा कपड़ा अपने घर ही तैयार कर लेना चाहिए। जबतक हम सूतका उत्पादन नहीं करेंगे, तबतक हम अपनी जरूरतके लायक कपड़ा नहीं बुन पायेंगे। अनुभवी व्यापारियोंका कहना है कि यदि हम अपनी आवश्यकताका सब कपड़ा मिलोंकी मार्फत प्राप्त करना चाहते हैं तो उतनी मिलोंको स्थापित होनेमें पचास वर्ष लगेंगे। तब नौ मासमें यह कार्य कैसे सधेगा? मिलोंसे तुम कदापि करोड़ों व्यक्तियोंका उद्धार नहीं कर सकोगे, जो अनेक भाई और बहन नंगे फिरते हैं उनका शरीर नहीं ढंक सकोगे। कोई भी राष्ट्र सिर्फ खेती-बाड़ीपर निर्भर नहीं रह सकता। खेतीके साथ-साथ किसी सहायक धन्धेकी आव-श्यकता रहती ही है। वह धन्धा कताई-बुनाईका है। उसका जबतक हम पुनरुद्धार नहीं करते, उसमें पारंगत नहीं हो जाते तबतक कोई और दूसरी शिक्षा व्यर्थ है।

यह सब कहकर मैं सिद्ध करना चाहता हूँ कि यदि यह बात तुम्हें सच जान पड़ती हो — और राष्ट्रीय कांग्रेस महासभाने एक प्रस्ताव पास करके इस बातकी सचाई-को खुले रूपमें मान लिया है — तो हमें इस समय क्या करना चाहिए? यदि नौ महीनोंमें स्वराज्य प्राप्त करना हो तो विद्यार्थियोंके लिए सच्ची विद्या यही है कि वे हिन्दुस्तानसे कपड़ेका अभाव मिटायें। आज हिन्दुस्तानमें कपड़ेका जितना अभाव है उतना अनाजका नहीं है। इस कपड़ेके कारण प्रतिवर्ष देशसे साठ करोड़ रुपये बाहर चले जाते हैं। हिन्दुस्तान आज चालीस करोड़ पौंड सूत बाहरसे मँगवाता है। इतना सूत हमें घरमें ही कात लेना चाहिए। बुनकरोंकी हमारे यहाँ कोई कमी नहीं है, कमी तो आज कातनेवालोंकी है। बुनकरोंकी संख्याके ठीक-ठीक आँकड़े मुझे अभी नहीं मिले हैं

लेकिन उनकी संख्या पचास लाख अथवा उससे भी अधिक है। यदि इस पैसेको बचाना हो तो हमें आज ही सूत कातना आरम्भ कर देना चाहिए। साठ करोड़ रुपयेका व्यापार देशमें ही करनेसे कितने व्यक्तियोंको रोजी मिलेगी, इसपर विचार करो। कपड़ेका घी की तरह उपयोग करना चाहिए। हमारी ऐसी स्थिति नहीं है कि हम चाहे जितना कपड़ा उपयोगमें लायें। यदि एक ही पोशाकसे काम चले तो हमें दूसरी पोशाक नहीं पहननी चाहिए। छोटी धोतीसे निर्वाह हो सके तो लम्बी धोती नहीं पहननी चाहिए। साठ करोड़ रुपयेकी बचत करनेकी खातिर इतना ही बड़ा बलिदान करना होगा।

विद्यार्थी यदि इस साल पूरे समय इस कामको हाथमें ले लें तो महासभाके प्रस्तावानुसार एक वर्षके अन्दर ही स्वराज्यकी प्राप्ति हो सकती है। लेकिन इसके लिए बहुत ज्यादा प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। अमुक शर्तोंके पूरा होनेके बाद तुम अपने ध्येयको प्राप्त कर सकते हो। विद्यार्थी अपने अध्ययनको छोड़कर हिन्दुस्तानके निमित्त मजदूर बनें। अपने श्रमके बाद अगर तुम कोई पारिश्रमिक न लो तो यह तुम्हारी मेहरबानी है लेकिन जो लेना चाहें, वे खुशीसे ले सकते हैं।

यदि मैं तुम्हें सलाह देने योग्य हूँ तो मैं तुम्हें सलाह दूँगा कि तुम अपने कालेजोंको छोड़ दो। स्वराज्यके लिए चल रही लड़ाईमें अगर तुम पूरा-पूरा भाग लेना चाहते हो तो हिन्दके लिए जितना सूत कात सको, कातो। रोज छः घंटे और अगर इतना सम्भव न हो तो कमसे-कम चार घण्टे सूत कातो। तुम पढ़ाई बिलकुल ही छोड़ दो, ऐसा मेरा आग्रह नहीं है। छोड़ दोगे तो उससे तुम्हारी विचारशक्ति कम हो जायेगी, ऐसा भी मैं नहीं मानता। जिसका मन मलिन नहीं है उसकी विचारशक्ति कभी मन्द नहीं पड़ती। मेरा अपना तो यह अनुभव है कि जब मैं जेलमें था और जब मुझे पढ़नेको एक भी पुस्तक नहीं मिलती थी तब मैं अधिक विचार कर पाता था। हमारा दिमाग पढ़-पढ़कर सड़ गया है। इसीसे मैंने तुमसे कहा है कि तुम छः घंटे सूत कातो और बाकी समयमें पढ़ो। तुमसे तो मैं यह भी कहता हूँ कि तुम कातनेके इस काममें पारंगत हो जाओ तो तुम गाँवोंमें भी जा सकते हो। तुममें इतना आत्म-विश्वास न हो तो तुम कालेजमें बने रह सकते हो। लेकिन मेरा तो इतना दृढ़ विश्वास है कि सब लोगोंके प्रतिदिन चार-छः घण्टे सूत काते बिना हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। एक महीनेमें, बहुत हुआ तो तीन महीनोंमें तुम कातना सीखकर गाँवोंमें जानेके लिए तैयार हो जाओगे और वहाँ उसका प्रचार कर सकोगे। सूतके अभावको मिटाकर हम हिन्दुस्तानको जितना आगे ले जा सकेंगे उतना किसी अन्य चीजसे नहीं ले जा सकते। और फिर अब तो हमें कांग्रेसके संविधानके अनुसार मतदाताओंको तैयार करवाना है; अगर हम इस कार्यको हाथमें न लेंगे तो यह कैसे होगा? गुजरातके गाँवोंमें आज मैं क्या सन्देश पहुँचा सकता हूँ? अंग्रेजोंको गाली देनेके लिए कहूँ? अथवा उन्हें तलवार और बन्दूक दूँ? मेरा सन्देश आज यह है कि सब सूत कातनेके कार्यमें जुट जाओ। गाँवका कोई भी व्यक्ति अहमदाबादसे कपड़ा खरीद कर ले जाता है तो मुझे बहुत दुःख होता है। मेरा स्वदेशी धर्म यह है कि प्रत्येक गाँव अपनी जरूरत-की चीजें स्वयं तैयार कर ले। इस प्राचीन प्रथाको यदि हम फिरसे वापस ला सकें तो इस हिन्दुस्तानपर कोई अपनी कुदृष्टि नहीं डाल सकेगा। मैं आचार्य और अध्या-

पकोंसे प्रार्थना करता हूँ कि आप कमसे-कम एक वर्षके लिए इसी पद्धतिको अंगीकार करें और विद्यार्थियोंको गाँवोंमें भेजनेके लिए तैयार करें।

इस वर्षके दौरान अगर तुम्हें इतनी ही शिक्षा मिले तो काफी है; अपनी गुजराती सुधारो, अंग्रेजीका त्याग करो, हिन्दुस्तानी सीखो, उर्दू लिपि सीख लो और चरखा चलाना सीख लो। इतना करोगे तो हम आगामी वर्षके लिए तैयार हो जायेंगे। मेरी तो कामना है कि स्वराज्य मिलनेतक इसी पद्धतिको जारी रखो। यदि ऐसा न बने तो कमसे-कम एक वर्षके लिए तो इसे जारी रखो ही। यही मेरा आजका सन्देश है।

तुम्हारे मनमें जो कोई शंका हो उसे निधड़क होकर पूछो। मैं नहीं चाहता कि कोई भी ऐसा विद्यार्थी जिसे इस कार्यक्रमके प्रति श्रद्धा न हो, इसे मान ले। तुम्हारी बुद्धि और हृदय अगर इस बातको कबूल करे तभी मेरी बात मानना।

प्र० – माँ-बाप कहेंगे कि महाविद्यालयमें तुम्हें पढ़ने भेजा था, चरखा चलाने नहीं।

उनसे कहना कि कातना सीखना भी पढ़ना ही है।

माँ-बाप गाँवोंमें जानेके लिए मना करेंगे और कहेंगे कि घर ही बैठे रहो।

तो तुम घर बैठकर कातो, यह तो अच्छी बात है। कातनेकी भी मनाही करें तो उन्हें विनयपूर्वक समझाना। सारा दिन चरखा कातनेवाले लड़केसे माँ-बाप एक दिन, दो दिन, बहुत हुआ तो चार दिन लड़ेंगे लेकिन बादमें जरूर समझ जायेंगे। मैंने ऐसे भी माँ-बाप देखे हैं जो ऐसी बात कहते हैं कि जिसके कारण लड़के झूठ बोलने लगते हैं। लड़का अगर झूठ नहीं बोलता, सचपर दृढ़ रहता है तो वे खीझ उठते हैं; लेकिन दो-चार दिन खीझनेके बाद खुद-ब-खुद चुप हो जाते हैं। तुममें इतनी दृढ़ता तो होनी ही चाहिए। कालेजके विद्यार्थीसे मैं इतनी दृढ़ताकी उम्मीद अवश्य रखता हूँ।

चरखेसे असहयोगकी लड़ाईमें क्या मदद होगी?

चरखेसे हिन्दुस्तानकी आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त की जा सकेगी। जबतक आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं मिलती तबतक हम स्वराज्यका उपभोग नहीं कर सकते। हम बिना साबुन, सुई और आलपिनके निभा सकते हैं, लेकिन कपड़ेके बिना नहीं। इससे हर वर्ष आर्थिक नुकसानमें वृद्धि होती चली जाती है। सरकारी लश्करका भारी खर्च हमें उठाना ही पड़ता है, साठ करोड़ रुपया हम कपड़ेमें दे देते हैं और अन्य व्यर्थकी चीजोंमें जो धन खर्च होता है सो अलग। यदि यह सत्य है तो हमें आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेनी चाहिए। अगर साठ करोड़ रुपया हम बचा सकते हों तो हमें बचा लेना चाहिए। साठ करोड़ बचायेंगे तो हममें और भी रुपया बचानेकी शक्ति आयेगी अथवा उन वस्तुओंका आयात करनेमें भी हम सक्षम हो जायेंगे। आलपिन अथवा घड़ियोंके कारखानेके न होनेसे हिन्दुस्तानका भाग्य नहीं फूटता। लेकिन कपड़ेके अभावके कारण भारत सचमुच वैधव्य-जैसी स्थितिमें पड़ा है।

चरखेके दाखिल किये जानेसे विद्यार्थियोंमें खलबली मच जायेगी।

खलबलीसे ही विद्यार्थी उन्नतिकी ओर अग्रसर होते हैं। खलबली मचाना तो मेरा और अध्यापकोंका धर्म है। अभी तो विद्यार्थी जागते हुए भी सोये-से हैं। जहाँ माँ-बापके साथ, जगत्के साथ और अपने साथियोंके साथ इस तरहकी लड़ाई होती है वहाँ सम्भवतः कुछ जागृति ही आती है, उससे पतन नहीं होता।

विद्यार्थी वर्गकी बनिस्बत आप अन्य वर्गोंसे कातनेके लिए क्यों नहीं कहते? विद्यार्थियोंसे किसलिए पढ़ाई बन्द करनेके लिए कहते हैं?

कातना पढ़ाई नहीं है, यह मानना हमारी पहली भूल है; बलिदान शिक्षा नहीं है, ऐसा मानना दूसरी भूल है। यदि सब लड़के कल समझ जायें कि शिक्षाका बलिदान करना देश सेवा करना है तो मैं उसी क्षण यह समझूँगा कि मेरा एक वर्षका काम पूरा हो गया।

चरखेसे जीवन-निर्वाह किस तरह हो सकेगा?

बुद्धिका उपयोग करनेवाला कमाई भी कर सकता है। लेकिन फिलहाल तो चरखे-को मैं आपद्-धर्मके रूपमें स्वीकार करता हूँ। हिन्दुस्तानके सब विद्यार्थी अगर हर रोज चार घंटे सूत कातनेकी प्रतिज्ञा करें तो एक महीनेमें सूतके भाव कम हो जायें।

स्कूलोंमें ऐसा परिवर्तन करनेसे क्या असहयोगके आन्दोलनको धक्का नहीं पहुँचेगा?

नहीं। सरकारी स्कूलोंको छोड़नेवालोंको इस मान्यताके साथ स्कूलोंको छोड़ना होगा कि सरकारी शिक्षा मलिन वस्तु है। अगर वे इस विद्यापीठके लालचसे ही उन्हें छोड़ेंगे तो उन्हें वे कालेज मुबारक रहें। जिनका ध्येय विद्यार्थियोंको केवल अक्षर-ज्ञान देना ही हो वे अवश्य अलग कालेजोंकी स्थापना करें किन्तु अगर हमें ऐसा लगता हो कि हमारा यही कर्त्तव्य है और एक वर्षतक यह काम करेंगे तो देशको लाभ होगा तथा हम स्वराज्यके साधन बनेंगे तो हमें यह काम करना ही चाहिए।

क्या आप मानते हैं कि आपके इस नये विचारके लिए देशका वातावरण तैयार है? क्या आप एकदम लड़ाईके 'टर्किश बाथ'की अन्तिम कोठरीमें प्रजाको धकेल देना चाहते हैं?

मैं जानता हूँ कि वातावरण तैयार है, इसीसे तो मैं यह कहता हूँ। गत तीन महीनोंमें देशने बहुत प्रगति की है। वातावरण रेलवेकी गतिसे नहीं बल्कि जैसे बरफ गिरती है वैसे ज्यामितिकी पद्धतिसे तैयार हो रहा है। मैंने आठ वर्ष पहले लिखा था कि हिन्दुस्तानको यह रास्ता ग्रहण करना होगा। उस समय मैं जानता नहीं था कि जनवरी १९२१ की तेरह तारीखको मैं तुम लोगोंसे इसके बारेमें बात करूँगा।

देश-सेवा करनेसे पहले क्या कुटुम्बकी सेवा नहीं करनी चाहिए?

जरूर करनी चाहिए। लेकिन कुटुम्ब सेवा लोक सेवाकी विरोधी नहीं हो सकती। पहले अपनी सेवा, फिर कुटुम्ब सेवा, उसके बाद गाँव सेवा और अन्तमें देश-सेवा, मैं इस क्रमको मानता हूँ। लेकिन कोई भी सेवा जगत्के कल्याणके विरुद्ध नहीं होनी चाहिए। देशकी ऐसी दरिद्रावस्थाके समय कुटुम्ब सेवाके नामपर बहनके विवाहमें बीस हजार रुपया खर्च नहीं किया जा सकता।

देशकी रक्षाके लिए पुलिसकी जरूरत पड़ेगी। आप चरखेके बदले हमें कवायद सिखाकर उस कामके योग्य क्यों नहीं बनाते?

मैं तुम लोगोंको पुलिसका कार्य कैसे सिखा सकता हूँ? जहाँ भय हो वहाँ जाकर खड़े रहनेकी शक्ति आनी ही चाहिए। तुम क्या यह कहना चाहते हो कि चैनसे उच्च-शिक्षा प्राप्त करनेके बाद ही तुम स्वराज्यकी पैरवी करोगे?

स्वराज्यका क्या अर्थ है?

हमारे हाथमें सेना-विभागका अधिकार आये, भूमिकी आय और उसपर होने-वाले व्ययका अधिकार आये, महसूलकी व्यवस्था हमारे हाथमें आये और अदालतें आयें –– इसका नाम स्वराज्य है। ऐसा स्वराज्य मिलनेका अर्थ यह हुआ कि हम सब तरहके अत्याचारोंको बन्द कर सकेंगे। किन्तु सूत कातकर आर्थिक स्वतन्त्रता आज ही प्राप्त की जा सकती है। चरखेके द्वारा यह सहज है, राष्ट्र कदाचित् आज इस हेतुको करनेके लिए तैयार न हो।

आप बारम्बार 'लड़ाईकी स्थिति', 'लड़ाईकी स्थिति' कहा करते हैं तो क्या यह 'लड़ाई स्वयंसेवकोंकी सेना' तैयार किये बिना लड़ी जा सकेगी? विद्यार्थियोंको सैनिक शिक्षा भी दी ही जानी चाहिए। क्या फिलहाल चरखेके बदले उसपर अधिक ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है?

सैनिक शिक्षा तो बहुत कम समयमें दी जा सकती है और फिर सैनिक शिक्षाका क्या अर्थ है? बहादुरी। तो बहादुरी क्या पटा-बनेटी खेलनेसे आती है? शहरमें फिरसे दंगे-फसाद हों और लोग घरोंको आग लगाने लगें तो घटनास्थलपर तुरन्त दौड़कर बीच-बचाव करनेवाला व्यक्ति अगर यह कहे कि मुझे मारनेके बाद ही तुम घर जला सकोगे तो वह व्यक्ति ही सच्चा वीर है। उस समय क्या आदेश जारी किये जा सकते हैं? 'मार्च' 'क्विक मार्च' सुननेतक क्या खड़े ही रहोगे? उस समय तो कवायद भी भूल जाओ। ऐसे अवसरपर तो मैं यही कह सकता हूँ कि तुम जितना तेज दौड़ सको उतना तेज दौड़कर एक जगहपर पहुँचो। अगर ऐसा प्रसंग आये तो मैं किसीको भी साथ लिये बिना –– जूता पहनता होऊँ तो उसे भी छोड़कर –– दौड़ूँ और जाकर भस्म हो जाऊँ। मैं यदि ऐसा न करूँ तो कहना कि गांधीकी बड़ी-बड़ी बातें झूठ थीं।

अगर सरकार हमारी सब माँगोंको मान ले और सिर्फ खिलाफतकी माँगको पूरा न करे तो हमें लड़ाई चालू रखनी चाहिए न?

जरूर, इस्लामकी रक्षा करते हुए मैं हिन्दू धर्मकी रक्षा करनेकी तालीम ले रहा हूँ, ऐसा मैंने अनेक बार कहा है। इस्लामको बचानेकी बातमें ही गो-रक्षाकी बात समाई हुई है। और जबतक हिन्दुस्तानमें एक भी गायकी हत्या की जाती है तबतक मेरे मांस, स्नायु और रुधिरका पानी बन रहा है। मैं गो-रक्षा करनेकी तालीम ले रहा हूँ, तपश्चर्या कर रहा हूँ, अनेक विभूतियोंको प्राप्त कर रहा हूँ और गो-रक्षाके इस मन्त्रको जपते-जपते ही मैं मरूँगा।

चरखेका ध्यान करने मात्रसे हमारी वर्तमान शिक्षा समाप्त हो जायेगी, क्या आप ऐसा नहीं मानते?

चरखेकी प्रवृत्ति द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके बाद ही हम अक्षर-ज्ञानके योग्य होंगे। अतएव चरखेकी इस प्रवृत्तिके द्वारा हमारी वर्तमान शिक्षाका विकास ही होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–१–१९२१

११७. तार : मौलाना अब्दुल बारीको[1]

१५ जनवरी, १९२१

मेरे नाम आपका तार शौकत अलीने पता बदलकर यहाँ भेजा। शान्ति स्थापनाके निमित्त आप जरूर बीचमें पड़ें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९११, पृष्ठ ७२

११८. यादवडकर पटवर्धन

कुछ ही महीनोंकी अवधिमें मैं अपने दो साथियोंसे वंचित हो गया हूँ। दोनों ईश्वरभक्त थे। दोनों कौमके सेवक थे, किन्तु उनकी सेवा अदृश्य होती थी। एक थे ब्रजलाल भीमजी[2]; बालकोंका एक कलश कुएँमें गिर गया था, वे उसे निकालनेके लिए कुएँमें घुसे और जब रस्सी पकड़कर निकल रहे थे तभी चढ़ते-चढ़ते थक गये, अतः फिसलकर गिर पड़े और इस तरह प्राण त्यागे।

दूसरे भाई पटवर्धनको ज्वर आता था। वे 'यंग इंडिया' के काममें मदद करते[3] और अपनी जीविका आप चलाते थे। इस बीच वे बीमार पड़ गये और स्वस्थ होनेके लिए अपने भाईके पास अमरावती चले गये। वे यह मानकर कि अब स्वस्थ हो गये हैं, नागपुर कांग्रेस अधिवेशनमें भाग लेने आये और वहाँ फिर बीमार पड़ गये। इस बारके बुखारने उनके प्राण ही ले लिये। उस समय उनके पास निकटके सगे-सम्बन्धियों और दो तीन मित्रोंके अलावा और कोई न था। इस तरह पटवर्धन एकादशीके दिन परलोक सिधार गये।

उनके-जैसे अथवा ब्रजलाल-जैसे लोक-सेवक मैंने कम ही देखे हैं। उनकी भाषणों-द्वारा अथवा दूसरी किसी तरह आगे आकर काम करनेकी आदत नहीं थी; तथापि राष्ट्र तो ऐसे सेवकोंसे ही उन्नति करता है। पटवर्धनकी सत्यवादिता, निरभिमानिता और तन्मयताका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। उन्होंने बम्बई विश्वविद्यालयसे बी० ए० एल एल० बी० की परीक्षा पास अवश्य की लेकिन कभी वकालत नहीं की। वे सन्

१, मौलाना अब्दुल बारी (१८३८–१९२६); लखनऊके एक राष्ट्रवादी मुसलमान; जिन्होंने खिलाफत आन्दोलनमें प्रमुख भाग लिया और अपने अनुयायियोंसे गो-हत्या न करनेका अनुरोध किया। १९२१ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

२. एक आश्रमवासी; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ५५८।

३. उप-सम्पादकके रूपमें।

१९१६ से आश्रममें रहते थे और जो काम उनके हिस्सेमें आता था उसे चुपचाप करते रहते थे। उन्होंने ऐसी ही आदत डाल ली थी। कांग्रेस अधिवेशनके बाद उनका विचार शोलापुर जाकर असहयोगका काम शुरू करनेका था। उनके अन्त समयका चित्रण करते हुए एक साथी लिखते हैं :

> **जिस समय हम वहाँ पहुँचे उस समय वे अन्तिम श्वासें ले रहे थे, उनकी चेतनाशक्ति क्षीण थी, तथापि थोड़ी देर बाद अर्थात् नौ-साढ़े नौ बजे मैंने उन्हें जरा बोलते देखा। मैंने कहा : "सरकार! (पटवर्धनका प्यारका नाम) शान्त रहो।" इसपर उन्होंने मुझे स्पष्ट उत्तर दिया : "शान्ति ही है!" थोड़े क्षण बाद बोले : "वास्तविक वस्तु दूसरी कोई नहीं है; एक ही है।" उनके सन्निपातकी अवस्था बीत चुकी थी। सबने स्पष्ट देखा कि वे किसी अन्य वस्तुका नहीं बल्कि सिर्फ सत्-चित्का ही स्मरण कर रहे थे। कुछ देर बाद मैंने पूछा : "क्या हम 'स्थितप्रज्ञ' का पाठ करें?" अपने आन्तरिक आनन्दको व्यक्त करते हुए वे स्वयं ही स्थितप्रज्ञका पाठ करने लगे।**

इसके बाद पटवर्धनने और अन्य लोगोंने किस तरह एकाधिक बार 'गीता' के इस भागका पाठ किया, उसका वर्णन है।

यह कोई मृत्युकी निशानी नहीं है, यह तो उनके अमर होनेका लक्षण है। पटवर्धनकी मृत्युपर स्वार्थवश उनके साथी भले ही रोयें। पटवर्धनकी स्मृतिसे वे और भी अधिक कर्त्तव्यपरायणता सीख सकते हैं। पटवर्धन मरकर भी जीवित हैं। वे तो मरकर भी स्वराज्यकी सेवा कर रहे हैं।

भारतमें कितने ही ऐसे अदृश्य सेवक पड़े होंगे। लेकिन उनकी ओर कौन ध्यान देता है। और ध्यान देनेकी जरूरत भी क्या है? सच्चे साधु-सन्त अप्रकट रहकर ही सेवा करते हैं। पाण्डव सिर्फ पाँच ही नहीं हो सकते। अर्जुन-जैसे भक्त, भीम-जैसे योद्धा, युधिष्ठिर-जैसे सत्यवादी जगत्में अवश्य ही हैं। वे प्रसिद्धिको जानते तक नहीं, उसकी उन्हें कोई इच्छा भी नहीं। मेरी कामना है, भारतमाता पटवर्धन-जैसे अनेक सेवकोंको जन्म दे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १६–१–१९२१

११९. बंगालके नवयुवकोंसे

मेरे नौजवान मित्रो,

आपने राष्ट्रके आह्वानपर जो कुछ भी किया है, उसका विवरण मैंने अभी-अभी पढ़ा है। यह आपके लिए और बंगालके लिए भी गौरवकी बात है। मैंने इससे कमकी आपसे उम्मीद भी नहीं की थी, बल्कि मैं इससे भी ज्यादाकी उम्मीद करता हूँ। बंगाल प्रखर बुद्धि-बलसे सम्पन्न है, उसका हृदय और भी विशाल है तथा हमारा देश जिन आध्यात्मिक परम्पराओंके लिए विशेष रूपसे विख्यात है उन परम्पराओंके क्षेत्रमें भी वह अन्य प्रान्तोंसे बढ़-चढ़कर है। हिन्दुस्तानके अन्य लोगोंकी अपेक्षा आप अधिक कल्पनाशील, अधिक आस्थावान तथा अधिक संवेदनशील हैं। आपपर कायरताका जो आरोप लगाया जाता है, उसे आपने एकाधिक अवसरोंपर झूठा सिद्ध कर दिया है। इसलिए कोई कारण नहीं कि बंगाल जिस तरह पहले देशका नेतृत्व करता रहा है, वैसा ही अब भी क्यों न करे।

आपने कदम आगे बढ़ा दिया है, अब आप पीछे नहीं हटेंगे। आपको विचार करनेके लिए बहुत समय मिला। आपने काफी सोच लिया है, विचार लिया है। कांग्रेस-के उस अधिवेशनका[1] आयोजन आपने ही किया था जिसमें राष्ट्रको असहयोगका अर्थात् आत्मशुद्धि, आत्मत्याग, साहस और आशाका सन्देश दिया गया। नागपुर कांग्रेसने[2] उस प्रथम घोषणाकी पुष्टि की, उसका स्पष्टीकरण और विस्तार किया। असहयोगकी प्रथम घोषणा मतभेद, सन्देह और आपसी फूटके वातावरणमें की गई थी। लेकिन जब [नागपुरमें] वही घोषणा दुबारा की गई तो उस समय हर्ष, जयघोष और लगभग पूर्ण मतैक्यका वातावरण व्याप्त था। यह आपकी इच्छापर निर्भर करता था कि आप उसे स्वीकार करें अथवा वैसा करनेमें आगा-पीछा करें। आपने बेहतर रास्ता अप-नाया, हालाँकि दुनियादारीके लिहाजसे इसे जरा कम सावधानीका रास्ता ही कहा जायेगा। अब आप अपनी आत्माको तथा इस उद्देश्यको नुकसान पहुँचाये बिना पीछे नहीं हट सकते।

वर्तमान शासन-प्रणाली और सबसे बढ़कर पाश्चात्य शिक्षाने हमें जिस व्यामोहमें डाल रखा है उसीके कारण आज हम इस सवालपर तर्क-वितर्क कर रहे हैं, अन्यथा यहाँ तर्क-वितर्ककी कोई गुंजाइश ही न थी। क्या बहादुर अरब लोगोंके लिए यह सम्भव है कि जो लोग उन्हें बन्धनमें रखना चाहते हों, उन्हींके तत्वावधानमें अपनी शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करते हुए अपनी आजादी भी कायम रख सकें? अगर कोई उन्हें यह सुझाव देनेकी हिमाकत करे कि वे अपने आक्रान्ताओं द्वारा स्थापित स्कूलोंमें शिक्षाके लिए जायें तो वे उस व्यक्तिका मखौल ही उड़ायेंगे। क्या हमारी स्थिति उनसे भिन्न है?

१. कलकत्तामें सितम्बर १९२० में आयोजित कांग्रेसका विशेष अधिवेशन।

२. दिसम्बर १९२० की।

भिन्न हो, तो भी जब हमें उस सरकार द्वारा संचालित स्कूलोंको छोड़ देनेके लिए कहा जाता है जिसे हम, सही अथवा गलत, अपनी इच्छाके अनुरूप झुकाना अथवा समाप्त कर देना चाहते हैं, तो क्या यह बात [अरबोंकी अपेक्षा] हमारे मामलेमें अधिक औचित्यपूर्ण नहीं है?

जबतक राष्ट्रका कमसे-कम एक वर्ग भी स्वराज्यके लिए कार्य करने और आत्म-बलिदान करनेके लिए तैयार नहीं होता तबतक हम स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते। सरकार मौखिक तर्कोंके आगे नहीं झुकेगी; वीरतापूर्ण और सच्चे कार्योंका ही वह आदर कर सकती है।

सरकार तलवारकी बहादुरीको तो समझती है। उसने इस बातकी पूरी तैयारी कर ली है कि यदि हम शस्त्रबलका प्रयोग करें तो उसका बाल भी बाँका न हो सकेगा। सरकारमें कितने ही लोग हैं जो हमारे हिंसा करनेपर खुश होंगे। हिंसाका सामना करने और उसे कुचल देनेकी कलामें उससे पार नहीं पाया जा सकता। इसलिए हम उसकी हिंसा कर सकनेकी शक्तिको अहिंसा द्वारा व्यर्थ करना चाहते हैं। जिसके प्रति हिंसा की जाती है अगर उसपर उसकी कोई प्रतिक्रिया होना बन्द हो जाये तो हिंसा अपने आप मर जाती है। अहिंसा असहयोगकी इमारतकी आधार-शिला है। अत-एव मुझे उम्मीद है कि आप उन लोगोंके प्रति उतावलेपन अथवा आवेशसे काम न लेंगे जो आपके विचारोंसे सहमत न हों। असहिष्णुता हिंसाका एक प्रकार है और इसलिए हमारे सिद्धान्तके विरुद्ध है। अहिंसामय असहयोग स्वाधीनताका पदार्थ-पाठ है। जिस क्षण यह निश्चित हो जायेगा कि बड़ीसे-बड़ी उत्तेजनाके बावजूद हम अहिंसापर दृढ़ रहेंगे उसी क्षण हमें अपने लक्ष्यकी प्राप्ति हो जायेगी, क्योंकि यही वह क्षण होगा जब हम पूर्ण असहयोग कर सकेंगे।

मैं आपसे कहूँगा कि अभी मैंने जो कल्पना आपके सामने रखी है उससे आप घबरायें नहीं। लोग अंकगणितके अनुसार आगे नहीं बढ़ते, ज्यामितिके अनुसार भी नहीं। राष्ट्रोंका पतन एक ही दिनमें होते देखा गया है, एक ही दिनमें उनका उत्थान होते भी देखा गया है। भारतके लिए इस बातको समझ सकना कुछ इतना कठिन नहीं कि तीस करोड़ व्यक्ति जिस क्षण अपने बलको पहचान लें, उसी क्षण इस बलका उपयोग किये बिना ही वे मुक्त हो जायेंगे? चूँकि हममें अबतक राष्ट्रीय चेतना नहीं आई है, इस-लिए हमारे शासक हमें एक-दूसरेके विरुद्ध लड़ाते रहे हैं। जिस क्षण हम परस्पर लड़नेसे इनकार कर देंगे, उसी क्षण हम स्वयं अपनी किस्मतके मालिक बन जायेंगे, वे नहीं रहेंगे।

असहयोगकी योजनामें सबसे पहले उन संवेदनशील वर्गोंको लिया गया है जिनपर सरकार अपने जादूका अधिक असर डाल सकी है और जो जाने-अनजाने सरकारके जालमें जा फँसे हैं। उदाहरणके लिए, हम स्कूलोंमें पढ़नेवाले नौजवानोंके वर्गको ले सकते हैं।

हम यदि सोचें तो देखेंगे कि व्यक्तिगत रूपसे लोगोंको जो बलिदान करना होगा वह अत्यल्प है; क्योंकि सम्पूर्ण बलिदान तो हम इतने सारे लोगोंमें बँटा हुआ है। बलिदानमें आपका हिस्सा क्या होगा? यही न कि एक साल अथवा जबतक स्वराज्य

नहीं मिल जाता तबतक आपको अपनी किताबी शिक्षा बन्द रखनी होगी। अगर मैं सब विद्यार्थियोंमें अपने जैसे विश्वासका संचार कर सकूं, तो निश्चित है कि उन्हें अपनी पढ़ाई एक सालतक भी बन्द नहीं रखनी पड़ेगी।

मैं आपसे स्थगित पढ़ाईके स्थानपर जहाँतक हो सके, एक वर्षकी इस निश्चित अवधि ही के अन्दर स्वराज प्राप्त करनेके तरीकोंका अधिकसे-अधिक शान्त ढंगसे अध्ययन करनेका अनुरोध करूँगा। मैं आपके हाथोंमें चरखा देता हूँ। मेरा कहना है कि यही भारतकी आर्थिक मुक्तिका आधार है।

लेकिन अगर आपकी इच्छा हो तो इसे अस्वीकार करके, श्री दासने[1] आपके लिए जिस कालेजकी व्यवस्था करनेका वचन दिया है, उसमें खुशीसे जा सकते हैं। गुजरातके नेशनल कालेजके[2] आपके साथी विद्यार्थियोंमें से अधिकांशने प्रतिदिन कमसे-कम चार घंटे चरखा कातनेका व्रत लिया है। एक सुन्दर कलाको सीखने और साथ ही नंगोंको वस्त्र प्रदान करनेमें कोई बड़ा त्याग करनेकी बात नहीं है।

सरकारी कालेजोंका परित्याग करके आपने अपना फर्ज अदा किया है। मैंने तो आपको, सिर्फ यह दिखाया है कि आपके पास जो समय है, उसे सबसे आनन्ददायक और लाभप्रद तरीकेसे कैसे बिताया जा सकता है।

ईश्वर आपको अपने निश्चयपर अटल रहनेके लिए बल और साहस प्रदान करे।

आपका शुभचिन्तक,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १९-१-१९२१

१२०. टिप्पणियाँ

लॉर्ड रीडिंग[3]

नये वाइसरायकी नियुक्तिकी जिस घोषणाका[4] इतने दिनोंसे इन्तजार था वह कर दी गई है। लेकिन अगर आजसे दो साल पहले [इंग्लैंडके] लॉर्ड चीफ जस्टिसको वाइसराय नियुक्त किया जाता तो लोगोंको आश्चर्य होता; वे इस बातकी तारीफ भी करते। लेकिन आज तो वे इस ओरसे बिलकुल ही उदासीन हैं, और यह ठीक भी है। मौजूदा हालतको देखते हुए तो एक फौजी तानाशाह भी अगर अच्छा न होता तो कुछ

१. चित्तरंजन दास कलकत्तामें एक राष्ट्रीय कालेज प्रारम्भ करनेवाले थे।

२. यह कालेज अहमदाबादमें खोला गया था।

३. रूफ़स डैनियल आइजक्स (१८६०–१९३५); रीडिंगके प्रथम मार्क्विस; ब्रिटिश राजनीतिज्ञ; इंग्लैंडके लॉर्ड चीफ जस्टिस, १९१३-२१; भारतके वाइसराय और गवर्नर-जनरल, १९२१-२६; इंग्लैंडके प्रथम राष्ट्रीय मंत्रिमंडलमें विदेश मन्त्री, १९३१।

४. यह घोषणा ९ जनवरी, १९२१ को की गई थी।

बुरा भी न रहता। साथ ही लॉर्ड रीडिंगकी नियुक्ति, शायद, इस हकीकतकी भी मूक स्वीकृति है कि हमारी लड़ाई अहिंसात्मक है और इसलिए इस समय कानूनकी बारीकियोंको समझनेवाला राजनीति-कुशल व्यक्ति ही सम्राट्का सबसे अच्छा और उपयुक्त प्रतिनिधि हो सकता है। लॉर्ड रीडिंगने सही काम करनेका इरादा जाहिर किया है। उनके इरादेमें मुझे कोई शक नहीं है; लेकिन हुकूमतके जिस तन्त्रको चलानेके लिए वे आ रहे हैं वह उन्हें सही काम नहीं करने देगा। भारतका तो यही तजुर्बा रहा है। अगर वे सही काम करनेमें कामयाब हो गये तो मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि उन्हें इस तन्त्रको नष्ट करने या उसका आमूल सुधार करनेमें भी जरूर कामयाबी मिलेगी। या तो वे इस शासन-प्रणालीको अपने ढर्रेपर ले आयेंगे, या खुद उसीके ढर्रेमें ढल जायेंगे।

'इंडिया' और ब्रिटिश कमेटी

'क्रॉनिकल' अखबारने ब्रिटिश और 'इंडिया' अखबारको बन्द करनेके फैसलेको[1] खेदजनक कहा है। इस रायके समर्थनमें यह दलील दी गई है कि संविधान समितिने उन्हें खत्म करनेकी सलाह नहीं दी थी, और यह भी कि दोनों अच्छा काम कर रहे थे। यह सच है कि संविधान समितिने उन्हें खत्म करनेकी सिफारिश नहीं की थी। मगर यह भी याद रखना चाहिए कि वह समिति अमृतसर कांग्रेसके समय बनी थी और उसकी रिपोर्ट, कांग्रेसके जिस विशेष अधिवेशनमें[2] असहयोगका प्रस्ताव मंजूर किया गया, उसके पहले ही तैयार हो गई थी। उसके बादसे तो बहुत-सी ऐसी बातें हो गई हैं, जिन्होंने विदेशोंमें प्रचार और ब्रिटिश समितिके बारेमें हमारे और सारे देशके विचारोंमें क्रांतिकारी तबदीलियाँ कर दी हैं। उन्हें सैद्धान्तिक कारणोंसे ही बन्द किया गया। यह महसूस किया गया कि सरकारसे असहयोग करनेवाली कांग्रेस अपनी मददके लिए विदेशमें कोई संस्था रख नहीं सकती। कांग्रेसने असहयोगके भरोसे अन्य सभी सहारोंको जान-बूझकर ही तिलांजलि दे दी है। उसने आत्म-निर्भर होनेका फैसला किया है। जिस रूपमें उस कमेटीका गठन किया गया था, उस रूपमें वह कार्यक्षम थी या नहीं, यह सवाल अब कोई मतलब नहीं रखता। इस बदली हुई हालतमें कांग्रेसके लिए यह शोभाकी बात नहीं है कि वह प्रचार-कार्यके लिए विदेशमें संस्था बनाये रखकर उसका खर्च उठाती रहे। राष्ट्रने इसके विषयमें जो कारगर निर्णय कर दिया है उसे भ्रामक बातोंसे मिटाया नहीं जा सकता।

* * *

आप चाहे इस हकीकतका ढिंढोरा पीटें या न पीटें, मगर सचाई तो यही है कि शरीरको जरूरी खाना न मिले तो वह नष्ट हो जाता है। हम इस हकीकतका ढोल पीटें या चुप रहें मगर सचाई तो यही है कि अगर हम सरकारको सहयोग देना बन्द कर दें तो वह उसी समय अपनी मौत मर जायेगी। व्यक्तिशः मुझे तो वह प्रस्ताव

१. देखिए "भाषण: विदेशोंमें प्रचारपर", २९-१२-१९२०।

२. सितम्बर १९२० में कलकत्तामें हुआ कांग्रेसका विशेष अधिवेशन।

भी पसन्द नहीं है जिसमें व्यवस्था की गई है कि विदेशोंमें प्रचारार्थ कांग्रेस महासमिति, जब और जैसे चाहे, एक निश्चित रकम खर्च कर सकती है। हमें तो सारे पैसेकी देशमें ही जरूरत है। ४५,००० रुपये प्रचार और विज्ञापनबाजीमें फूँकनेके बदले में तो उस रुपयेके चरखे खरीदना या प्राथमिक पाठशालाएँ खोलना बहुत बेहतर समझूँगा। हर अच्छा काम खुद ही अपना विज्ञापन होता है। मैं आशा करूँगा कि अब भी वह सारा पैसा किसी ज्यादा अच्छे कामके लिए जरूर बचा लिया जायेगा। जहाँतक 'इंडिया' अखबारका सवाल है, हम उसके बिना ही अच्छे हैं। उस अखबारने हमें झूठी आशाएँ बँधा रखी थीं। यहाँ अंग्रेज जातिकी भी उतनी ही नैतिक जिम्मेदारी है, उसकी भी उतनी ही परीक्षा हो रही है, जितनी कि हमारी। अगर वे खुदगर्जी और बेईमानीसे भरे हुए अखबारोंके बहकावेमें आना चाहें तो हम क्या कर सकते हैं? पंजाबकी घटनाओंपर क्या हमने कांग्रेसकी रिपोर्ट[1] प्रकाशित नहीं की? मगर उसपर कौन यकीन करता है? श्री मॉण्टेग्युको[2] उसपर यकीन नहीं और ब्रिटिश प्रजा उनकी हाँ में हाँ मिलाती है। झूठी और मनगढ़न्त बातोंका प्रचार करनेमें सिर्फ अमेरिकी पत्रकार ही ब्रिटिश पत्रकारोंको मात दे सकते हैं। मैं हारनेके लिए इस होड़में शरीक नहीं होऊँगा, क्योंकि यह बराबरीका मुकाबला नहीं है।

सनसनी फैलानेवाली और असत्यपर आधारित पत्रकारिता और इसी कोटिकी सार्वजनिक जीवनकी बुराइयोंसे संघर्ष करनेके लिए हमें नये तरीके अपनाने होंगे। कांग्रेसने ब्रिटिश कमेटी और उसके मुखपत्र 'इंडिया'को बन्द करके इस दिशामें रहनुमाई की है।

दूषित पैसा

सिन्धके एक आदरणीय मित्रने कई सवाल पूछे हैं। पत्र व्यक्तिगत होनेके कारण मैं उनका नाम नहीं दे रहा हूँ। उनका पहला सवाल है:

> **असहयोग आन्दोलनके पहले चरणका एक कार्यक्रम यह है कि सरकारी और सरकारसे मदद पानेवाली शिक्षण संस्थाओंमें से विद्यार्थियोंको हटा लिया जाये। इसका कारण आप यह बताते हैं कि इन संस्थाओंको चलानेके लिए जो पैसा दिया जाता है वह चूँकि सरकारके पाससे आता है इसलिए दूषित है, जब कि वास्तवमें वह पैसा हमारे द्वारा दिया हुआ और हमारा ही है। फिर उसी सरकारसे शिक्षा, सफाई, जल-व्यवस्था आदि नगरपालिकाओंसे सम्बन्धित कामोंके लिए पैसा न लेनेकी कोई बात आन्दोलनके पहले चरणमें नहीं रखी गई है। तो क्या सरकार नगरपालिकाओंको शिक्षाके लिए जो पैसा देती है, सिर्फ वही दूषित है और नगरपालिकाओं द्वारा किये जानेवाले दूसरे कामोंके लिए दिया जानेवाला पैसा दूषित नहीं है?**

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १२८-३२२।
२. भारत मन्त्री।

सरकार दूसरे कामोंके लिए जो पैसा देती है वह भी बेशक उतना ही दूषित है, लेकिन हमारा असहयोग अभी दूसरी बातोंके साथ-साथ शिक्षण संस्थाओंतक ही सीमित है, क्योंकि इन संस्थाओंके जरिये सरकार एक खास तरीकेसे शक्तिसंचय करती है। यह याद रहे कि हम सभी शिक्षण संस्थाओंका बहिष्कार कर रहे हैं, चाहे वे मदद पानेवाली हों या केवल सम्बद्ध। इन संस्थाओंके जरिये पढ़नेवाले सरकारके दुष्प्रभावोंके परिणामकी हम रोकथाम कर रहे हैं। यह दुष्प्रभाव ही इसका निर्णायक कारण है।

नगरपालिकाओंमें सहयोग

वे मित्र आगे लिखते हैं:

> **मैं एक निर्वाचित पार्षद हूँ। मेरा ऐसा अनुभव है कि हमें अपने कामके हर दौरमें सरकारसे सहयोग करना पड़ता है। अगर सरकार, जैसा कि हम विश्वास करते हैं, बुरी और अन्यायी है तो उससे अदालतों और धारासभाओंमें असहयोग, मगर म्युनिसिपैलिटियोंमें सहयोग करते रहना कहाँतक वाजिब और युक्तियुक्त है?**

यह सवाल बड़ा ही माकूल और मुनासिब है। लेकिन अगर हम इस बातको समझ लें कि नगरपालिकाएँ कौन्सिलोंकी तरह सरकारकी ताकतको मजबूत नहीं करतीं तो बहुत हदतक सन्देहका निवारण हो जायेगा। एक बार यह मान लेनेके बाद कि सरकारी तन्त्र बुरा है, इस बातकी जरूरत भी माननी ही होगी कि हमें ऐसा कुछ न करना चाहिए जो उस तन्त्रकी ताकतको बढ़ानेवाला हो। नगरपालिकाओंसे निकल आनेकी जरूरतसे भी मैं इनकार नहीं करूँगा। अगर कोई पार्षद या कोई नगरपालिका यह महसूस करे कि वह मौजूदा शासन-तन्त्रकी मदद कर रही है तो उसे वहाँसे निकल आने या अपने-आपको भंग कर देनेकी पूरी आजादी है। कांग्रेसका प्रस्ताव तो एक इशारा है कि सामूहिक रूपसे सारा राष्ट्र कहाँतक जा सकता है या उसे जाना चाहिए। लेकिन व्यक्तिगत रूपसे कौन कितना त्याग करे, इसकी कोई सीमा नहीं हो सकती।

अन्तरात्मा या इष्ट-सिद्धि

यह योग्य मित्र आगे लिखते हैं:

> **लेकिन अगर हम धर्म या अन्तरात्माको आधार न बनायें बल्कि सिर्फ यह कहें कि हम इस सरकारको असहाय कर देना चाहते हैं और इसके लिए उन सब उपायोंको (बशर्ते कि वे शान्तिपूर्ण और नैतिक हों) काममें लायेंगे, जो हमारे उद्देश्यको पूरा करनेवाले हों, तो हमारा आचरण सर्वथा युक्तियुक्त होगा। उस हालतमें यह सवाल रह ही नहीं जायेगा कि सरकारसे मिलनेवाला पैसा दूषित है या नहीं। अगर हम समझें कि अभी सरकारको कमजोर करनेके काममें मदद मिलती है तो सरकारी और सरकारसे मदद पानेवाली शिक्षण संस्थाओंमें से विद्यार्थियोंको हटानेका काम तो हम फिर भी कर ही सकते हैं।**

तब विद्यार्थियोंको शिक्षण संस्थाओंमें से निकालनेकी बात धर्म या अन्तरात्मापर आधारित न होकर शुद्ध रूपसे इष्टसिद्धिके सिद्धान्तपर आधारित होगी।

इष्टसिद्धि बदनाम शब्द है और मुझे इससे डर लगता है। आमतौर पर इष्टसिद्धिमें नैतिकताकी चिन्ता नहीं की जाती और हिंसाका सहारा लेनेमें भी कोई एतराज नहीं होता। लेकिन लेखकने इसका उपयोग इसके मूल अर्थमें करके इसका दंश दूर कर दिया है। सो इस तरह कि वे नैतिक और शान्तिपूर्ण उपायोंका इस्तेमाल करने पर जोर देते हैं। इसलिए उनकी बातसे मेरी कोई तकरार नहीं है, वह प्रशंसनीय है। मैंने असहयोगको धर्मके ही अर्थोंमें प्रस्तुत किया है, क्योंकि मैं राजनीतिमें उसी हदतक शामिल हूँ जिस हदतक उससे मेरे धर्मका, मेरी धार्मिकताका विकास होता है। पत्रलेखक महोदयने इसे राजनैतिक अर्थोंमें प्रस्तुत किया है। मैं निवेदन करूँगा कि जिस रूपमें उसे मैंने प्रस्तुत किया है, उस रूपमें उसमें गलतियोंकी कम गुंजाइश है। राजनैतिक कार्यक्रमकी तरह धार्मिक कार्यक्रममें भी सीढ़ियाँ तो रहती ही हैं। बुनियादी फर्क यह है कि जिस कार्यक्रमकी कल्पना धार्मिक भावनापर आधारित हो, उसमें दावपेंचकी, या उन चीजोंसे समझौतेकी गुंजाइश नहीं होती जो कुछ महत्त्व रखती हैं। हमारा मौजूदा असहयोग आन्दोलन एक बुरी सरकारको ठप्प करनेके लिए उतना नहीं है जितना यह दिखानेके लिए कि हम बुराईके खिलाफ हैं। इसलिए उसका उद्देश्य ध्वंस नहीं, निर्माण है। यह रोगके लक्षणोंका नहीं, उसके मूल कारणोंका इलाज है। नीचेके अनुच्छेदसे मेरा मतलब शायद, और भी साफ हो जायेगा।

"निष्क्रिय प्रतिरोध" (पैसिव रेजिस्टेंस)

सातुरसे एक सज्जन लिखते हैं:

"निष्क्रिय प्रतिरोधी बहिष्कारको ठीक नहीं मानता, वह कभी भी सरकारको परेशानीमें नहीं डालता।" लेकिन असहयोगी सरकारको ठप कर देना चाहता है और उसका सारा कारोबार (कौंसिलों, मदद पानेवाले स्कूलों आदिके) बहिष्कारपर निर्भर करता है। क्या निष्क्रिय प्रतिरोध करनेवाला व्यक्ति असहयोगी हो सकता है? मैंने आपके ही वाक्यका उद्धरण आरम्भमें दिया है।

सातुरके पत्र-लेखकने मेरा जो वाक्य उद्धृत किया है, वह बिलकुल सही है। लेकिन मैंने बात जिस प्रसंगमें कही थी वह प्रसंग उन्होंने नहीं दिया। बहिष्कार शब्दका प्रयोग केवल उसके पारिभाषिक अर्थमें ही किया गया है — अर्थात् दण्ड देनेकी भावनासे प्रेरित होकर, विदेशी चीजोंसे भिन्न, केवल ब्रिटिश मालके बहिष्कारके अर्थमें। मेरा ऐसा खयाल है कि ब्रिटिश मालके बहिष्कारकी निरर्थकताको तो प्रायः सभी समझते हैं। लेकिन शुचिता लानेके खयालसे किया गया बहिष्कार न केवल सही, बल्कि जरूरी भी है। इस हिसाबसे कौंसिलों आदिका, जो आज एक बुरी ताकतका प्रतीक बन गई हैं, बहिष्कार अच्छी ही बात है। निष्क्रिय प्रतिरोध कोई सही और सटीक अर्थ देनेवाला शब्द-पद नहीं है। मुझे इसकी ठीक-ठीक परिभाषा देखनेको कभी नहीं मिली; इसलिए खुद मैंने इसकी परिभाषा करनेकी कोशिश की है। लेकिन

जहाँतक पत्रलेखकका सम्बन्ध है, मेरा इतना ही कहना काफी होगा कि असहयोग आंशिक रूपमें निष्क्रिय प्रतिरोध है। दोनोंमें से कोई भी सरकारको परेशानीमें नहीं डालता। लेकिन दोनोंमें से किसीकी भी कार्रवाइयोंका नतीजा सरकारके लिए परेशानी हो सकता है। दोनोंका लक्ष्य आन्तरिक शुद्धि और विकास ही है। जबर्दस्ती घुसनेवालेके खिलाफ जो अपना दरवाजा बन्द कर लेता है, क्या वह उसे परेशान करता है? या अगर कोई शराबी शराब पीना छोड़ दे और जिस शराबखानेका वह ग्राहक है उस शराबखानेसे शराब खरीदना बन्द कर दे तो उसका यह काम शराबकी दुकानके मालिकको क्या परेशानीमें डालनेवाला कहा जायेगा?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-१-१९२१

१२१. स्वराज्यका गुर

कांग्रेसके प्रस्तावमें स्वदेशी और उसके लिए व्यापारियों द्वारा ज्यादासे-ज्यादा त्याग करनेके महत्वपर ठीक ही जोर दिया गया है।

पिछली डेढ़ शताब्दीसे देशका जो आर्थिक दोहन होता रहा है उसे राजी-खुशी बढ़ावा देकर या बर्दाश्त करते रहकर भारत कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। विदेशी मालके बहिष्कारका ठीक-ठीक मतलब है विदेशी कपड़ेका बहिष्कार। विदेशी कपड़ा ही हमारे आर्थिक दोहनकी सबसे बड़ी मद है और हमने इसकी अनुमति दे रखी है। इस मदमें हम हर साल साठ करोड़ रुपया विदेशोंको दे देते हैं। अगर भारत इसे बन्द करनेकी कोशिशमें कामयाब हो गया तो अकेले इसी एक कामसे उसे स्वराज्य मिल सकता है।

विदेशी वस्त्र-उत्पादकोंके लोभको सन्तुष्ट करनेके ही लिए भारतको गुलाम बनाया गया। जब ईस्ट इंडिया कम्पनी यहाँ आई, उस समय हम अपनी जरूरतका सारा कपड़ा स्वदेशमें ही तैयार कर लेते थे और इसके सिवाय निर्यातके लिए भी काफी कपड़ा तैयार करते थे। कम्पनीके आनेके बाद यहाँ जो तरीके अपनाये गये, उनका वर्णन करनेकी यहाँ जरूरत नहीं, लेकिन उनका नतीजा यह अवश्य हुआ कि आज भारत कपड़ेकी अपनी जरूरत पूरी करनेके लिए हर तरहसे विदेशोंका आश्रित हो गया है।

लेकिन हमें किसीपर निर्भर नहीं रहना चाहिए। अगर हम सब लोग काममें जुट जायें तो अपना सारा कपड़ा तैयार करनेकी क्षमता हमारे देशमें है। सौभाग्यसे भारतमें अब भी इतने बुनकर हैं कि वे इस क्षेत्रमें उत्पादनके बाद जो कमी रह जाती है उसकी पूर्ति कर सकते हैं। हमारी जरूरतका सारा कपड़ा अभी तो देशकी कपड़ा-मिलें बनाती नहीं हैं और तुरन्त बना भी नहीं सकतीं। पाठकोंको शायद यह पता नहीं होगा कि आज भी हमारी मिलोंकी बनिस्बत हमारे बुनकर ही ज्यादा कपड़ा

बुनते हैं। ये मिलें पाँच करोड़ गज महीन सूत विदेशोंसे मँगाकर बुनती हैं, जब कि इतने समयमें वे मोटा देशी सूत चालीस करोड़ गज बुन सकती हैं। विदेशी कपड़के सफल बहिष्कारके लिए हमें अपने यहाँ सूतका उत्पादन बढ़ाना चाहिए। यह केवल हाथ-कताईके द्वारा ही हो सकता है।

इस तरहके बहिष्कारके लिए जरूरी है कि हमारे व्यापारीगण आयात बिलकुल बन्द कर दें और उनके पास जितना विदेशी कपड़ा है उसे घाटा खाकर भी यथा-सम्भव विदेशी ग्राहकोंके हाथ, जल्दीसे-जल्दी बेच दें। वे रुईका सट्टा बन्द कर दें और सारी रुई देशमें उपयोगके लिए यहीं रहने दें। उन्हें विदेशी रुईकी खरीददारी भी बन्द कर देनी चाहिए।

मिल मालिकोंको अपनी मिलें मुनाफेके लिए नहीं, राष्ट्रका न्यासी बनकर देशके हितके लिए चलानी चाहिए; और महीन सूतकी कताई बन्द करके सिर्फ घरेलू बाजारके लिए कपड़ा बुनना चाहिए।

गृहस्थोंको भी फैशन-सम्बन्धी अपने विचारोंमें परिवर्तन करना और कमसे-कम कुछ समयके लिए तो महीन कपड़ोंका इस्तेमाल छोड़ ही देना चाहिए, क्योंकि ऐसे कपड़े हमेशा तन ढकनेको ही नहीं पहने जाते। हर गृहस्थको साफ और सफेद खद्दरमें कलात्मकता और सुन्दरता देखनेकी आदत डालनी चाहिए और उसके मुलायम खुरदरेपनकी सराहना करना सीखना चाहिए। जिस प्रकार कंजूस अपने धनका उपयोग बचा-बचाकर करता है, उसी प्रकार गृहस्थको अपने कपड़ोंका इस्तेमाल करना सीखना होगा।

पोशाकके बारेमें गृहस्थकी रुचिमें परिवर्तन हो जानेके बाद भी किसी-न-किसीको बुनकरोंके लिए सूत कातना ही होगा। अगर हर आदमी अपनी फुरसतके समय स्वान्तः सुखाय या पैसोंकी खातिर कताई करे तो यह बात बन सकती है।

हम आध्यात्मिक युद्धमें लगे हैं। जिस जमानेमें हम रह रहे हैं वह कोई साधा-रण जमाना नहीं है। असाधारण समयमें साधारण काम हमेशा बन्द कर दिये जाते हैं। और अगर हम एक सालके अन्दर स्वराज्य पा ही लेना चाहते हैं तो हमें दूसरे सब काम छोड़कर एक इसी उद्देश्यपर अपनी सारी ताकत और सारा ध्यान लगाना होगा। इसलिए मैं सारे हिन्दुस्तानके तमाम विद्यार्थियोंसे कहना चाहता हूँ कि वे एक सालके लिए अपनी सामान्य पढ़ाई-लिखाई बन्द कर दें और अपना सारा समय चरखे-पर सूत कातनेमें लगायें। उनके द्वारा मातृभूमिकी यही सबसे बड़ी सेवा होगी, यही स्वराज्य हासिल करनेमें उनका सबसे बड़ा और स्वाभाविक योगदान होगा। पिछले महायुद्धमें हमारे शासकोंने हर कारखानेको गोले-गोली ढालनेका कारखाना बनानेकी कोशिश की थी। हमारे इस धर्मयुद्धमें, मेरा सुझाव है कि हर राष्ट्रीय स्कूल और कालेजको राष्ट्रके लिए सूतकी गुंडियाँ बनानेवाले कारखानेमें बदल लिया जाये। इस कामसे विद्यार्थियोंको नुकसान कुछ भी नहीं होगा; उलटे इस लोक और परलोक दोनोंमें सुख मिलेगा। भारतमें कपड़ेका अकाल है। इस कमीको दूर करनेमें मदद देना निश्चय ही बड़े पुण्यका काम है। अगर विदेशी सूतका इस्तेमाल पाप है तो उसका इस्तेमाल

बन्द कर देनेसे जो जरूरत पैदा होती है उसे पूरा करनेके लिए स्वदेशी सूतका उत्पादन अवश्य ही पुण्य है।

इसपर यह सवाल पूछा जा सकता है कि अगर सूत कातना इतना जरूरी है तो हर गरीब आदमीको मजूरी देकर यह काम क्यों न कराया जाये? इसका जवाब यह है कि चरखेपर सूत कातना, बुनाई या बढ़ईगिरी वगैरहकी तरह कोई पेशा नहीं है और न कभी रहा है। अंग्रेजोंके भारतमें आनेसे पहले देशकी जो अर्थ-व्यवस्था थी उसमें सूत कातना माँ-बहनोंका फुरसतके समयका सम्मानतनीय काम समझा जाता था। आज हमारे पास जितना समय है उतने समयमें महिलाओंमें इस कलाको पुनरुज्जीवित करना मुश्किल है। लेकिन छात्रोंके लिए राष्ट्रके आह्वानका उत्तर देना अत्यन्त मामूली और सरल काम है। कोई यह न कहे कि यह काम तो पुरुषों और विद्यार्थियोंकी प्रतिष्ठाके अनुकूल नहीं है। पुराने जमानेमें यह कला केवल भारतीय महिलाओंतक इसलिए सीमित रही क्योंकि उन्हें काफी फुरसत रहा करती थी। और चूँकि यह कला लालित्यपूर्ण और संगीतमय है और इसमें किसी खास श्रमकी जरूरत नहीं होती, इस-लिए महिलाओंका इसपर एकाधिपत्य हो गया था। लेकिन संगीतकी तरह यह भी नारी और पुरुष, दोनोंके लिए समान रूपसे शोभास्पद है। हाथ-कताई नारी-सुलभ गुणोंकी रक्षा, अकालसे बचाव और कीमतें कम करनेका बीजमन्त्र है। स्वराज्यका गुर भी इसीमें निहित है। हमारे पुरखोंने विदेशी उद्योगपतियोंके शैतानी प्रभावमें आनेका जो पाप किया उसका हम जो न्यूनतम प्रायश्चित्त कर सकते हैं, वह है चरखे और हाथ-कताईको पुरुज्जीवित करना।

विद्यार्थी, हाथ-कताईको समाजमें उसकी जो इज्जतकी जगह थी, फिरसे दिला देंगे। खद्दरको फैशनेबल बनानेकी प्रक्रियाको वे तेज करेंगे, क्योंकि कोई भी सच्चे माता-पिता अपने बच्चोंके काते हुए सूतके कपड़े पहननेसे इनकार नहीं करेंगे। जब देशके विद्यार्थी इस कलाको इस ढंगसे अपनी व्यावहारिक मान्यता देने लगेंगे तब भारतके बुनकर भी उस ओर अपना ध्यान देनेको मजबूर हो जायेंगे। अगर हम पंजाबियोंको, सिपाहीके पेशेसे नहीं बल्कि दरअसल दूसरे देशोंके आजाद और बेगुनाह लोगोंकी हत्याके पेशेसे छुड़ाना चाहते हैं तो हमें उनका पुराना बुनाईका पेशा उन्हें फिरसे देना होगा। पंजाबके शान्तिप्रिय जुलाहोंकी पूरी जाति ही करीब-करीब खतम हो चली है। अब पंजाबके विद्यार्थियोंका कर्त्तव्य है कि वे पंजाबी बुनकरोंको उनके निर्दोष पेशेमें पुनः प्रतिष्ठित करें।

बादमें किसी दूसरे अंकमें मैं यह बताऊँगा कि स्कूलोंमें इस तरहका परिवर्तन करना कितना आसान है और इस रास्तेपर चलकर हम अपने स्कूलों और कालेजोंको कितना जल्दी राष्ट्रीय रूप दे सकते हैं। हर जगह विद्यार्थियोंने मुझसे यह पूछा है कि मैं राष्ट्रीय स्कूलोंमें कौनसी नई चीजें शुरू करूँगा। मैंने उनसे सब जगह यही कहा है कि कताई तो मैं जरूर ही शुरू करवाऊँगा। अब तो मैं पहलेसे भी ज्यादा साफ तौरपर यह महसूस करता हूँ कि संक्रमणके इस कालमें हमें कताई और राष्ट्रके तात्कालिक उपयोगमें आनेवाली कुछ दूसरी चीजोंपर ही विशेष रूपसे ध्यान देना

चाहिए, जिससे हमारी पिछली लापरवाहियों और त्रुटियोंकी भरपाई की जा सके। इसके जरिये विद्यार्थी भी नये पाठ्यक्रमोंके लिए ज्यादा ठीक तैयारी करने योग्य बनेंगे।

क्या मैं प्रगतिके बढ़ते चरणको पीछेकी ओर ले जाना चाहता हूँ? क्या मैं मिलोंकी जगह चरखे और करघेको देना चाहता हूँ? क्या मैं रेलगाड़ीकी जगह बैल-गाड़ीको रखना चाहता हूँ? क्या मैं मशीन-मात्रको नष्ट कर देना चाहता हूँ? कुछ पत्रकारों और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंने मुझसे ये सवाल किये हैं। मेरा जवाब है: अगर मशीनें गायब हो ही जायें तो मुझे कोई अफसोस नहीं होगा और न मैं उसे किसी तरहका दुर्भाग्य या विपत्ति समझूँगा। लेकिन मशीनोंको नष्ट करनेकी मेरी कोई योजना नहीं है। अभी तो मैं, अपनी मिलों द्वारा तैयार किये गये सूत और कपड़ेसे जिस हदतक हमारी जरूरतें पूरी नहीं होतीं उस हदतक उन्हें पूरा करना चाहता हूँ; और चाहता हूँ कि विदेशोंको भेजा जानेवाला करोड़ों रुपया बचाकर उसे देशकी झोपड़ियोंमें बाँट दिया जाये। फुरसतके समय चरखा चलानेके लिए जबतक सारा राष्ट्र तैयार नहीं हो जाता तबतक मैं यह काम नहीं कर सकता। इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए कताईको गुजर-बसरका साधन बनानेके बदले कर्त्तव्यके रूपमें लोकप्रिय बनानेके जो उपाय मैंने सुझाये हैं, उन्हें अपनाया जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९–१–१९२१

१२२. अस्पृश्यताका पाप

यह ध्यान देने योग्य बात है कि विषय-समितिने[1] अस्पृश्यताके पापसे सम्बद्ध धाराको बिना किसी विरोधके स्वीकार कर लिया। यह भी सन्तोषकी बात है कि इस राष्ट्रीय सभाने वह प्रस्ताव पास कर दिया, जिसमें कहा गया था कि स्वराज्य-प्राप्तिके लिए हिन्दुत्वपर लगे हुए इस कलंकको मिटाना आवश्यक है। शैतान तो सिर्फ शैतानीमें सहयोग देनेवाले तत्त्वोंकी सहायतासे ही सफल होता है। हमें वशमें करनेके लिए वह हमेशा हमारे स्वभावकी कमजोरियोंका लाभ उठाता है। ठीक उसी तरह सरकार भी हमारी कमजोरियों अथवा दुर्गुणोंके बलपर ही हमें अपने वशमें रखे हुए है। अगर हम उसकी सारी साजिशोंको असफल करना चाहते हों तो हमें अपनी कमजोरियोंको दूर करना होगा। यही कारण है कि मैंने असहयोगको शुद्धी-करणकी एक प्रक्रिया कहा है। जिस समय यह प्रक्रिया पूर्ण होगी, उसी समय अपने लिए अनुकूल वातावरणके अभावमें यह सरकार भरभराकर बैठ जायेगी — ठीक उसी तरह जिस तरह गन्दे पानीके गढ़ोंको मिट्टी भरकर सुखा देनेपर, उसके आस-पास मच्छर नहीं रह जाते।

१. नागपुरमें आयोजित ३५ वीं कांग्रेसकी विषय-समिति।

हम जो कुछ भोग रहे हैं, क्या वह हमारे अस्पृश्यताके अपराधका उचित दण्ड ही नहीं है? क्या हमने जैसा बोया था वैसा ही नहीं काटा है? क्या हमने अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ ही डायरवादी और ओ'डायरवादी व्यवहार नहीं किया है? हमने 'अछूत' लोगोंको अपने समाजसे पृथक् कर दिया और बदलेमें स्वयं हमें ब्रिटिश उपनिवेशोंने अछूतोंकी भाँति पृथक् कर दिया है। हम उन्हें सार्वजनिक कुँओंसे पानी नहीं लेने देते और खानेके लिए उनके आगे हम अपनी जूठन फेंक देते हैं। उनकी छाया-मात्रसे हम अपवित्र हो जाते हैं। दरअसल अंग्रेजोंके विरुद्ध हम जितने भी आरोप लगाते हैं उनमें से कोई भी ऐसा आरोप नहीं है जो 'अछूत' लोग हमारे विरुद्ध न लगा सकते हों।

हिन्दुत्वपर लगे इस कलंकके धब्बेको कैसे मिटाया जाये? "अपने प्रति जैसे व्यवहारकी अपेक्षा तू औरोंसे रखता है, दूसरोंके प्रति स्वयं भी वैसा ही व्यवहार कर।" अंग्रेज अधिकारियोंसे मैंने अक्सर यह कहा है कि अगर वे हिन्दुस्तानके लोगोंके सेवक और मित्र हैं तो वे अपनी झूठी उच्चताका दावा छोड़ दें, संरक्षक-प्रतिपालकवाला भाव त्याग दें, अपने प्रेमपूर्ण कार्योंसे यह दिखायें कि वे हर तरहसे हमारे मित्र हैं, और हमें ठीक उसी तरह अपना समकक्ष मानें जिस तरह वे अपने साथी अंग्रेजों-को मानते हैं। पंजाब और खिलाफतके अनुभवोंके बाद मैंने एक कदम आगे बढ़कर उनसे पश्चात्ताप और हृदय-परिवर्तन करनेके लिए कहा है। ठीक उसी तरह हम हिन्दु-ओंके लिए भी यह जरूरी है कि हम अपने कियेपर पश्चात्ताप करें; उन लोगोंके प्रति अपने व्यवहारको बदलें, जिन्हें आजतक हम एक उतनी ही शैतानियत-भरी प्रणालीके द्वारा 'दबाते' रहे हैं, भारतके प्रति ब्रिटिश शासन-प्रणालीको हम जितनी शैतानियत-भरी मानते हैं। उनके लिए कुछ घटिया किस्मके स्कूलोंकी व्यवस्था करके हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि हमने उनपर बहुत कृपा कर दी; हमें उनकी ओर हेय दृष्टिसे नहीं देखना चाहिए। हमें उनके साथ सगे-भाइयोंका-सा व्यवहार करना चाहिए; वे हमारे सगे भाई ही हैं। हमें उनको वह विरासत वापस कर देनी चाहिए, जो हमने उनसे छीन ली है। और यह काम कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे सुधारकोंको ही नहीं करना चाहिए; इस दिशामें जनसाधारणको स्वेच्छासे सजग प्रयास करना चाहिए। इस आवश्यक सुधारमें पहले ही बहुत देर हो चुकी है; हम अनन्तकालतक केवल प्रतीक्षा करते नहीं रह सकते। हमने जो एक सालकी अवधि निश्चित की है, तैयारी और तपस्याकी इस अवधिके भीतर हमें अपने लक्ष्यतक पहुँचना ही है। यह सुधार ऐसा है जो स्वराज्यके बाद नहीं, स्वराज्यसे पहले हो जाना चाहिए।

अस्पृश्यताका विधान धर्ममें नहीं है। यह तो शैतानकी एक चाल है। शैतानने हमेशा शास्त्रोंकी दुहाई दी है। लेकिन शास्त्र सत्य और विवेकसे बढ़कर नहीं हैं। वे विवेकको निर्मल बनाने और सत्यको उद्भासित करनेके लिए ही रचे गये हैं। मैं किसी निर्दोष घोड़ेको सिर्फ इसीलिए अग्निमें होमनेके लिए तैयार नहीं हूँ[1] कि वेदोंमें इस बलिदानका विधान है। मेरे लिए 'वेद' दैवी और अपौरुषेय हैं। [जैसा कि

१. गांधीजीका तात्पर्य अश्वमेध यज्ञसे है।

'बाइबिल' में कहा गया है,] 'शास्त्रके वचनोंका अक्षरार्थ सत्यका हनन करता है।' जो चीज सत्यपर प्रकाश डालती है, वह तो उनमें निहित भावना ही है। और वेदोंकी असली भावना है शुचिता, सत्य, निर्दोषिता, पवित्रता, विनयशीलता, सरलता, क्षमा, भक्तिमत्ता और वह सब-कुछ जो किसी पुरुष अथवा स्त्रीको उदार और बहादुर बनाता है। देशके इन महान् और मूक सेवकों, भंगियोंको कुत्तेसे भी हीन मानकर उनका तिरस्कार करने और उनपर थूकनेमें न तो कोई उदारता है और न बहादुरी। भगवान हमें भी शक्ति और समझ दे, जिससे देशके दलित वर्गोंको सफाईका जो काम विवश होकर करना पड़ता है, उसे हम स्वयं स्वेच्छया कर सकें। देशमें ऐसी असंख्य बुराइयाँ हैं, जिन्हें दूर करके हम उसे स्वच्छ और निर्मल बना सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९-१-१९२१

१२३. क्या ईसा मसीहने सहयोग किया था?

प्रिय श्री गांधी,

श्री लायली[1] यहाँ आये थे और उन्होंने मुझे बताया कि आप उनसे मेरा कुशल-क्षेम पूछ रहे थे। इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं, निस्सन्देह, आपकी गतिविधियोंमें गहरी दिलचस्पी लेता रहा हूँ, लेकिन मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि मैं आपके असहयोग आन्दोलनसे सहमत नहीं हूँ और न हो सकता हूँ। मैं भगवानसे प्रार्थना करता रहा हूँ कि वह आपको अपनी भूल दिखाये और आपको — और हम सबको — ऐसे कार्योंमें प्रवृत्त करे जिनसे उसका पुनीत नाम उज्ज्वल हो तथा सारे हिन्दुस्तानका भी स्थायी कल्याण हो। आपके बहुत सारे लेखों और भाषणोंसे मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि आप अपने आन्दोलनको इस आधारपर उचित ठहरानेकी कोशिश करते हैं कि लाख समझाने-बुझाने और मना करनेके बावजूद अगर हमारा कोई निकट और प्रिय सम्बन्धी गलत काम करता हुआ दिखाई दे तो हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उससे किसी तरहका सम्बन्ध न रखें, क्योंकि अगर सम्बन्ध रखते हैं तो हम भी कुकर्मोंके भागी होंगे।

लेकिन निश्चय ही, ईसाइयों और हिन्दुओंके धर्मग्रन्थोंमें एक मूलभूत सिद्धान्त ऐसा है जो इससे सर्वथा भिन्न आचरणकी ओर संकेत करता है। दोनोंमें अवतारकी बात कही गई है, और यद्यपि कुछ बातोंमें इन दोनोंमें भिन्नता है, तथापि प्रत्येककी अन्तर्भूत भावना यही है कि जब भगवानने, जो स्वयं अनन्त

१. अहमदाबाद निवासी एक ईसाई मिशनरी, जो साबरमती आश्रममें अंग्रेजी भी पढ़ाते थे।

पवित्रताका पुंज है, मानवको कुकर्म-जनित दुःखकी आगमें जलते देखा तब वह उससे दूर नहीं रहा, बल्कि अपना स्वर्गासन छोड़कर उसकी सहायता करनेके लिए तथा उसे उसके पापोंके परिणामोंसे बचानेके लिए पृथ्वीपर अवतरित हुआ। परमपुनीत, अपापजन्मा ईसाने पापियोंके साथ काम करनेसे कभी इनकार नहीं किया। उन्हें स्वयं सभी बुराइयोंसे घृणा थी और जहाँ, जिसमें — तत्कालीन बड़ेसे-बड़े आदमियोंमें भी — उन्हें ये बुयाइयाँ दिखाई दीं, उन्होंने सर्वत्र इनकी तीव्र भर्त्सना की। लेकिन दूसरी ओर वे सभी लोगोंसे — फैरिसियोंसे[1] लेकर विदेशी सरकारके लिए कर वसूल करनेवाले घृणित तहसीलदारों और कुख्यात पापियोंतक से मुक्तभावसे मिलते रहे और उनके निकट सम्पर्कमें रहकर काम करते हुए, उन्होंने अपने बुद्धिमत्तापूर्ण उपदेशों और सुन्दर दृष्टान्तों द्वारा, उन्हें बुराईसे विमुख करके अच्छाईकी ओर उन्मुख करनेका प्रयत्न किया।

इन तथ्योंपर विचार करते हुए मैं इसी परिणामपर पहुँचा हूँ कि आज सभी सच्चे देशभक्तोंका यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे इस सरकारसे, जिसे अनुचित रूपसे राक्षसी और शैतानकी सरकार कहा गया है, अपने-आपको अलग न रखें, वरन् उससे सम्पर्क बनाये रखनेके लिए जो सम्भव हो सकता है सो उपाय करें (अर्थात् नई कौंसिलोंको प्रोत्साहन प्रदान करें) और उसे इस तरह उस मार्गकी ओर प्रवृत्त करनेका प्रयत्न करें, जिसे वे अधिक उचित मानते हैं। मैं आशा करता हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि जिस तरह पिछले वर्ष आपने सत्याग्रहके सिलसिलेमें अपनी भूलें देख ली थीं, उसी तरह समय रहते आपकी आँखें खुलें और आप असहयोगसे मुँह मोड़कर सहयोगकी ओर प्रवृत्त हों।

आप मेरे इन चन्द शब्दोंका जैसा चाहें, उपयोग कर सकते हैं।

सस्नेह —

आपका,
जी० गिलिस्पी

राजकोट,
२०–११–१९२०

मैं इस पत्रको ज्योंका-त्यों छाप रहा हूँ। इसे मैं विशेष रूपसे इसलिए छाप रहा हूँ कि इससे प्रकट हो जाता है कि यद्यपि मैं वर्तमान शासन प्रणालीकी अनवरत निन्दा करता रहा हूँ, फिर भी मुझे रेवरेंड गिलिस्पी-जैसे अंग्रेजोंकी मैत्रीका सौभाग्य प्राप्त है। मैं जानता हूँ कि वे जो-कुछ कहते हैं उसमें पूरी ईमानदारीके साथ विश्वास करते हैं। वे मानते हैं कि मेरी मान्यताएँ और उद्देश्य सदाशयतापूर्ण हैं, तथापि हम दोनोंकी ईसाइयों और हिन्दुओंके धर्मग्रन्थोंकी व्याख्याएँ भी एक-दूसरेसे कोसों दूर

१. यहूदी पुरोहित जो धर्मके बाहरी दिखावेमें विश्वास करते थे।

हैं। जहाँतक हिन्दुओंके धर्मग्रन्थोंकी बात है, मैं विश्वासपूर्वक लिख सकता हूँ और मैं यह दावेके साथ कहता हूँ कि एक हिन्दूका यह कर्त्तव्य है कि वह अपने-आपको कुकर्मीसे अलग कर ले, अर्थात् वह उसके कुकर्ममें भाग न ले और न उसे समर्थन ही दे। प्रह्लादने अपने पिताके कुकर्मोंसे अपने-आपको विलग कर लिया। देवी सीताने रावणकी सेवाएँ अस्वीकार कर दीं। भरतने अपनी माता कैकेयीके कुकृत्योंकी भर्त्सना की और उसने दुष्टतापूर्वक उनके लिए जो सिंहासन प्राप्त किया था, उसपर बैठनेसे इनकार कर दिया। 'बाइबिल' के सम्बन्धमें मैं विश्वासपूर्वक कुछ नहीं कह सकता। लेकिन उसे जिस रूपमें मैंने समझा है, उससे तो हिन्दू धर्मग्रन्थोंके मेरे अध्ययनसे निकाले गये निष्कर्षोंकी स्पष्टतः पुष्टि ही होती है। ईसा, भटियारों और पापियोंसे न तो उनके आश्रित और न उनके संरक्षक बनकर ही मिले-जुले। वे तो उनकी सेवा करने तथा उनके जीवनको सत्य और शुचितामें प्रवृत्त करनेके उद्देश्यसे ही उनमें मिले-जुले। लेकिन जहाँके लोगोंने उनकी बात नहीं सुनी, वहाँ वे दुबारा नहीं फटके। मैं शर्मनाक और बुरा जीवन बितानेवाले अपने पुत्रको भी किसी प्रकारका सहारा न देना अपना फर्ज समझता हूँ। प्रबुद्ध असहयोग व्यथित प्रेम भावनाकी अभिव्यक्ति है। मेरे इन सम्मानित पत्र-लेखकने बुराईसे अलग रहना और सेवार्थ बुरे लोगोंके बीच रहना — इन दोनों बातोंको एक ही मान लिया है। क्या ईसा सूदखोरोंसे उपहार स्वीकार करते, उनसे अपने मित्रोंके लिए छात्रवृत्तियाँ लेते और उन्हें उनके जघन्य व्यापारमें लगानेके लिए अनुदान देते? पाखंडियों, फैरिसियों और 'सदूसियों' की[1] क्या उन्होंने केवल मौखिक भर्त्सना ही की? क्या उन्होंने सचमुच लोगोंको उनसे सावधान रहने और बचनेकी सलाह नहीं दी है? लेकिन श्री गिलिस्पीका खयाल है कि मैंने सरकारको शैतान कहकर उसके प्रति अन्याय किया है। हमारे दृष्टिकोण भिन्न होनेका कारण सम्भवतः यही है। जो सरकार फरेब, खूँरेजी और मनमानी क्रूरताका व्यवहार करनेकी अपराधी है, जो सरकार अभीतक अपने कियेपर पश्चात्ताप करनेको तैयार नहीं है, जो उल्टे अपने अपराधको ढँकनेके लिए झूठका सहारा लेती है, उस सरकारको अगर मैं शैतानकी सरकार न कहूँ तो मेरे खयालसे यह सत्यसे पलायन होगा। मैं सचमुच यह मानता हूँ कि जिस सरकारने अपने अधीनस्थ लोगोंके लिए ऐसा कुछ नहीं किया जिसके लिए वे उसके आभारी होते, उस सरकारके आडम्बरोंकी सही शब्दोंमें भर्त्सना करके मैं मित्रका ही धर्म निभा रहा हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १९–१–१९२१

१. यहूदियोंका एक वर्ग जो भूत-प्रेत और अन्य परम्परागत मान्यताओंका निषेध करता था।

१२४. पत्र : सी० एफ० एण्ड्रूजको

रेलगाड़ीमें
१९ जनवरी, [१९२१][1]

परमप्रिय चार्ली,

मैंने अभी-अभी तुम्हारा बड़े दिनके अवसरपर लिखा पत्र और वह पत्र भी पढ़ा जो तुमने लालचन्दके[2] सम्बन्धमें लिखा है। मैं तुमसे सहमत हूँ कि लालचन्द अभी बहुत अनुभवहीन है और उसे मोम्बासा नहीं भेजा जाना चाहिए। वे उसे ६०० रुपये देना ठीक नहीं मानेंगे। मैंने अभीतक पूर्वी आफ्रिकाका खरीता नहीं पढ़ा है, लेकिन जिस लेखके बारेमें तुमने कहा था, वह पढ़ लिया है। लालचन्दकी शैली मुझे बिलकुल पसन्द नहीं है। अगर मैंने यह लेख पहले देखा होता तो इसे प्रकाशित ही नहीं होने देता।

आशा है, तुम स्वस्थ-सानन्द होगे।

पियर्सनके[3] पत्रको मैं एक बहुत मूल्यवान उपहार मानता हूँ। बड़ोदादाने मुझे एक और पत्र भेजा है। वे बड़े नेक आदमी हैं। उनके आशीर्वादोंका मेरे लिए बड़ा महत्व है।

मैं इसी २१ को बम्बईसे कलकत्तेके लिए प्रस्थान कर रहा हूँ।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९५७) की फोटो-नकलसे।

१. २९ जनवरी, १९२१ को लालचन्दके नाम लिखे पत्रके पहले अनुच्छेदसे प्रकट होता है कि यह पत्र १९२१ में लिखा गया था।

२. ये **यंग इंडिया**के सम्पादकीय विभागमें काम करते थे।

३. विलियम विन्स्टेनली पियर्सन; मिशनरी; भारतीयोंके एक सक्रिय समर्थक; कुछ समयतक शान्तिनिकेतनमें अध्यापन कार्य किया; १९१४ में नेटालके चीनी संस्थानोंके भारतीय मजदूरोंकी दशाका अध्ययन किया।

१२५. भाषण: राष्ट्रीयशाला, नडियादके विद्यार्थियोंके समक्ष[1]

१९ जनवरी, १९२१

आज तुम्हारा, मेरा और जो अपने आपको भारतीय कहते हैं उन सबका एक ही धर्म यह है कि हमें एक वर्षके भीतर जो स्वराज्य प्राप्त करना है उसके लिए हम अवश्य ही उचित साधनोंको अपनाएँ और आवश्यक बलिदान करें। मेरी इच्छा है कि आप 'स्वराज्य' एक राजनीतिक विषय न समझ बैठें। "स्वराज्य क्या है" यह बात प्रत्येक विद्यार्थीको समझ लेनी चाहिए तथा उसे अपना स्वधर्म मानना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थीमें स्वधर्मकी रक्षा करनेकी शक्ति होनी चाहिए। उसमें इतनी शक्ति होनी चाहिए कि कोई मारकर अथवा डरा-धमकाकर उससे कोई काम न करवा सके। जो उसे असत्य जान पड़े उसे वह असत्य कहे, जो सत्य जान पड़े उसे सत्य कहे। इतनी हिम्मत प्रत्येक विद्यार्थीमें होनी चाहिए। माँ-बापको चाहिए कि वे बालकोंको सच-झूठकी पहचान करना सिखाएँ। स्वराज्यका अर्थ यही है। स्वराज्यका अर्थ है जो कुछ हमारे मनमें हो उसे बोलने और करनेका तथा जिसे हम पापरूप मानें उसे न करनेका अधिकार।

जबतक हम किसी भी तरहकी स्वतन्त्रताका उपभोग नहीं कर पाते, जबतक हमारी खाने-पीनेकी वस्तुओं और हमारे विचारोंतक पर दूसरोंका अंकुश है तबतक हम स्वराज्य-भोगी कैसे हो सकते हैं? हम कपड़ेके बारेमें पराधीन हैं। इसी कारण हम अन्नके लिए भी दूसरोंपर निर्भर हो गये हैं। भाई अमृतलाल ठक्कर उड़ीसामें काम करने गये थे; वे वहाँसे अभी-अभी आये हैं। गुजरातने वहाँके अकाल-संकटका निवारण करनेमें कुछ हिस्सा लिया है; इसीलिए मैं यहाँ इस बातका जिक्र कर रहा हूँ। इस अकालका कारण अतिवृष्टि हो चाहे अनावृष्टि; लेकिन उड़ीसाके लोगोंके पास रुपया नहीं है। वे इस कारण अनाज नहीं खरीद सकते। उनके पास कोई काम-धन्धा न होना ही उनकी कंगालीका कारण है। इसीसे मैं कहता हूँ कि अगर हम बच्चोंसे भी स्वदेश-सेवा करवाना चाहते हैं तो जिस तरह हमें उन्हें ईश्वरका नाम लेना और लिखना-पढ़ना सिखाना चाहिए उसी तरह हमें उन्हें हाथ-पैरोंसे काम लेनेकी भी शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें तभी हार्दिक, मानसिक और शारीरिक तीनों तरहकी शिक्षा मिलेगी। आज हस्तकलाके रूपमें चरखा ही सबसे बड़ी शिक्षा है। इससे हम स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। इससे हम देशमें साठ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष बचा सकेंगे।

मेरी इच्छा है कि आप लोग यह समझने लगें कि जिस तरह सत्यादि व्रतोंका पालन करना धर्म है उसी तरह हिन्दुस्तानके लिए चार-पाँच घंटे चरखा चलाना भी धर्म है। मैं चाहता हूँ कि हरेक विद्यार्थी एक वर्षतक छः घंटे नित्य चरखा चलाये।

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

मैं भगवानसे यह प्रार्थना करता हूँ कि वह इस कार्यको हमारे लिए सहल और हलका बनाये, क्योंकि इसीसे हम धार्मिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-१-१९२१

१२६. भाषण : अध्यापकोंकी सभा, नडियादमें[१]

१९ जनवरी, १९२१

अभीतक हम सरकारसे डरते थे; हमें हमेशा यह लगता था कि अगर सरकारकी मदद मिलनी बन्द हो जायेगी तो हमारा काम कैसे चलेगा? इसलिए हमें डर-डरकर चलना पड़ता था। इसी भयके कारण हम खुलकर बात भी नहीं कर सकते थे। आज हम देखते हैं कि हम सरकारकी मददके बिना काम चला सकते हैं और सरकार हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। हम झूठसे छुटकारा पा गये। अब हम जो बात महसूस करते हैं, कह सकते हैं। हमें सरकारसे कह देना चाहिए कि स्कूल हमारे हैं। तब वह हमें किस तरह प्रभावित करेगी? क्या वह सबको दण्ड दे सकती है अथवा कैद कर सकती है? लेकिन यह तो पहला परिणाम है, इसका सुपरिणाम देखना तो अभी बाकी है। उस सुपरिणामको प्राप्त करनेके लिए शिक्षकोंकी मददकी जरूरत है। आप स्वराज्यकी लड़ाईमें अपना हिस्सा देने और त्याग करनेके लिए तैयार हो जायें। जब स्वराज्य मिलेगा तब आपकी पेन्शन भी चालू हो जायेगी। हम अपने अधिकारोंके लिए लड़ते हैं, यह बात हम सब लोग ज्ञानपूर्वक और साहसपूर्वक मानें और उसपर आचरण करें, इसीमें इस लड़ाईका रहस्य छिपा है। मैं चाहता हूँ कि आप सब लोग स्वराज्यके शिक्षक बनें और नगरपालिकाओंकी सहायता करें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-१-१९२१

१. महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत। नडियादमें नगरपालिकाने निश्चय किया था कि वह सरकारसे कोई अनुदान नहीं लेगी। अब नगरपालिका और स्कूलोंके अध्यापकोंके सामने प्रश्न था कि उन्हें इन स्कूलोंमें बने रहना चाहिए या नहीं और अपना पेन्शनका अधिकार छोड़ना चाहिए या नहीं।

१२७. भाषण : व्यापारियोंकी सभा, नडियादमें[1]

१९ जनवरी, १९२१

नडियादने अभीतक बहुत-कुछ करके दिखाया है। वह इसी तरह आगे भी करे और बढ़े, यही मेरी कामना है। यदि व्यापारी तैयार हो जाएँ तो वकीलोंकी भी कोई जरूरत न पड़े। हम व्यापारियोंके बलपर ही पंजाब और खिलाफतके सम्बन्धमें न्याय प्राप्त कर सकते हैं। यदि सात करोड़ मुसलमानों और तेईस करोड़ हिन्दुओंमें स्वदेशीकी भावना जाग्रत हो जाये तो हम आज ही स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। इस दिशामें हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य है कपड़ा तैयार करना। यदि हममें कपड़ा तैयार करनेकी शक्ति आ जायेगी तो सब वस्तुओंको तैयार करनेकी शक्ति हममें स्वयमेव आ जायेगी। इस शक्तिको खोनेमें हिन्दू व्यापारी और मुसलमान व्यापारी दोनों ही का दोष है। उनका लोभ नहीं छूटता। अगर वे अपने लोभको त्याग दें तो आप आज ही स्वराज्य और न्याय प्राप्त कर सकते हैं। आप जितना भी विदेशी कपड़ा हो उसको फेंक दें अथवा जला दें तो भी मुझे कलक नहीं होगी। आप चाहे तो इसे विदेशोंमें ले जाकर बेच दें लेकिन अपने देशमें न बेचें; और स्वदेशी कपड़ा तैयार करने लगें। नडियाद कपड़ेके लिए अहमदाबादपर निर्भर करता है, यह बात मुझे विचित्र जान पड़ती है। इसे भी स्वदेशी कहना मुश्किल है। जबतक छोटे-बड़े सभी सूत नहीं कातते तबतक स्वराज्य दूरकी मंजिल है। यदि हम सब चरखा चलायें तो सूत हमें मुफ्त मिलने लगे। तब जिस तरह हर कोई अपने लिए गेहूँको पिसवा सकता है उसी तरह सूतको भी बुनवा सकेगा। इस तरह मिलके कपड़ेकी कमी पूरी हो जायेगी। यदि आप विदेशी माल लेना और बेचना बन्द कर दें तो आप स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि आप रुपया दे सकते हैं। स्वराज्यके लिए अपना रुपया देकर आप साबित कर सकते हैं कि आप किसी घटिया धातुके बने हुए नहीं हैं, खरे सोनेके बने हुए हैं। आपका रुपया बादमें आपको ही वापस मिल जायेगा। इसका उपयोग आपके शहरके लिए ही किया जायेगा। इससे आपको आठ आने अथवा बारह आने [सैकड़ेका] ब्याज नहीं मिल सकता; लेकिन शिक्षा मिलेगी, स्वतन्त्रता मिलेगी। इससे आप अपना कपड़ा स्वयं तैयार करने लगेंगे। मैं आपसे आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि आप इन दोनों कामोंको करके नडियादकी प्रतिष्ठा बढ़ाएँ। नडियादकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर आप समस्त गुजरात और हिन्दुस्तानकी प्रतिष्ठा बढ़ायेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३–१–१९२१

१. महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत ।

१२८. भाषण : वडतालकी सार्वजनिक सभामें

वडताल[1]
१९ जनवरी, १९२१

भाइयो और बहनो,

मुझे आप सब भाई-बहन इस बातके लिए क्षमा करेंगे कि मैं अशक्त होनेके कारण खड़े होकर भाषण नहीं दे सकूँगा। सच तो यह है कि जिस तरह मैं शरीरसे अशक्त हो गया हूँ उसी तरह मेरी आवाज भी अब पहले-जैसी नहीं है। फिर भी मैं ज्यादासे-ज्यादा लोगोंतक अपनी आवाज़ पहुँचानेकी कोशिश करूँगा। इसके लिए आप सब लोगोंको शान्त रहना होगा; क्योंकि शान्ति बनी रही तो मुझे जो-कुछ कहना है वह काफी भाई-बहनोंके पल्ले पड़ सकेगा।

इस पवित्र स्थानपर आकर मुझे खुशी हो रही है। १९१५ से मेरी यह अभिलाषा रही है कि मैं इस पवित्र धामकी यात्रा करूँ। आज इस सौभाग्यका अवसर प्राप्त होनेके लिए मैं ईश्वरको धन्यवाद देता हूँ। इसके लिए मैं आप लोगोंका भी आभारी हूँ।

इस सभामें इतने साधुओंकी उपस्थिति एक बड़ी खुशीकी बात है। क्योंकि मेरा सन्देश सामान्य स्त्री-पुरुषोंके लिए ही नहीं, सबके लिए है — साधुओंके लिए खास तौरसे है। जब साधु-वर्ग यह समझेगा कि असहकार क्या है, हिन्दुस्तानकी जनता किसलिए असहकार कर रही है तब वे भी असहकारके मन्त्रका जाप किये बिना न रहेंगे क्योंकि तब वे यह समझ जायेंगे कि [असहकारके बिना] साधुताको भी कायम नहीं रखा जा सकता। असहकार हमारे धर्ममें कोई नवीन तत्त्व नहीं है। अनेक परेशानियोंमें पड़कर हम इसे भूल गये हैं अथवा कहिये, हमने उसके लक्षणोंको भुला दिया है। इसीसे इसपर अमल करनेमें हम कुछ ढील कर जाते हैं, शंकाएँ उठाते हैं और परिणाम होता है स्वराज्यकी स्थापनामें देरी। लेकिन असहकार कोई नया तत्त्व नहीं है, यह मैं जानता हूँ, और इसीलिए मैं कहता हूँ कि यदि जनता इसमें उत्साहके साथ भाग ले तो हम एक वर्षमें ही स्वराज्यकी स्थापना कर डालें। यह बात मैं चार महीनेसे बराबर कहता आ रहा हूँ; और फिर भी कहता जा रहा हूँ, इसका कारण जनतामें मेरी अटूट श्रद्धाका होना है।

कुछ भाई, जिन्हें सिर्फ राजनीतिमें ही दिलचस्पी है, शंका उठाते हैं, और कहते हैं कि यह प्रवृत्ति राजनीतिक नहीं है; कौन जाने यह कैसी होगी; अथवा कहते हैं, यह धार्मिक है। मैं कबूल करता हूँ कि यह धार्मिक है, इसमें शंकाकी तनिक भी गुंजाइश नहीं है। इसे मैंने आप लोगोंसे छिपाया भी नहीं है। जबतक साधु धर्मके

१. गुजरातके खेड़ा जिलेका गाँव। स्वामिनारायण सम्प्रदायका तीर्थस्थान।

सिद्धान्तोंको नहीं समझते और राजनीतिक प्रश्नोंको सुलझानेमें उनका उपयोग नहीं करते तबतक मुश्किलें पैदा होती रहेंगी। जबतक साधु इसमें अपना पूरा योगदान नहीं देते तबतक उनमें भी पूर्ण साधुता नहीं आ सकती।

सरकारके अत्याचारमें हाथ न बँटाना, उसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे सहायता न देना असहकार है। सब छात्रोंका कहना है कि राक्षसी प्रवृत्तिसे अलग रहो। जबतक राक्षसी प्रवृत्तिका प्रचलन हो तबतक यदि हम उस प्रवृत्तिवालोंकी मदद लेते हैं अथवा उन्हें मदद देते हैं तो हम उनके पापके भागीदार बनते हैं। तुलसीदासने कहा है कि असन्तोंका संग करना पाप है। 'गीता' में भी कहा गया है कि अगर हम राक्षसी प्रवृत्तिको स्वीकार करते हैं तो हम राक्षस बन जाते हैं।

[यहाँ वर्षा होने लगी और श्रोताओंमें थोड़ी हलचल होने लगी]

इतनी-सी बरसातसे अगर आप लोग भागेंगे तो असहकार क्या है उसके मर्मको कैसे समझ सकेंगे।

इतने थोड़े समयमें हमें एक पदार्थ-पाठ मिला है। उससे हम समझ सकते हैं कि हमें स्वराज मिलनेमें ढील क्यों हो रही है। इस संसारमें कलियुग बिन मौसमकी बरसातके समान है। जिस तरह बिन मौसमकी बरसातसे सुख नहीं मिलता उसी तरह कलियुगमें सुख सहज नहीं मिल सकता; और यदि हम ईश-भजन करना चाहते हों, सतयुगकी तरह रहना चाहते हों तो हमें कलियुगका भय छोड़ना चाहिए।

अभी हमने बिन मौसमकी बरसातकी वजहसे कितना समय नष्ट किया। यहाँ कितने सारे लोग लाठियाँ, छतरियाँ और धारिये[1] लिये बैठे हैं, उन्होंने गड़बड़ी मचा दी, छतरियाँ तन गई और बहनें बेकार ही बिना किसी बातके लड़ पड़ीं। इससे यह प्रकट होता है कि अभी हम स्वराज्यके योग्य नहीं हुए हैं। स्वराज्यमें निर्भयताके गुणकी सबसे पहले आवश्यकता है। कष्टसे — दुःखसे डरकर जो धर्मपर आचरण करना छोड़ देता है वह स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकता। कायरको सुख नहीं मिल सकता। एक चोर अथवा लुटेरा उसे डरा-धमकाकर उससे कुछ भी करा ले सकता है; इसलिए कायर व्यक्ति धर्मका पालन नहीं कर पाता।

सभामें प्रत्येक स्त्री-पुरुषका धर्म शान्ति बनाये रखना है। उसका धर्म है कि अगर कोई क्रोधमें पागल हो जाये और आक्रमण कर बैठे तो हम उसे सहन करें, उसपर बदलेमें आक्रमण न करें, गाली-गलौज न करें, शोर न मचायें। जो व्यक्ति बाहर हो उसे अन्दर आनेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह एकचित्त होकर [भाषण] सुने, उसपर विचार करे, उचित लगे तो उसपर आचरण करे और शेषका त्याग कर दे। हम अभी इतने व्यावहारिक धर्मका पालन करनेके योग्य नहीं हैं। बारिशकी दो-चार बूँदोंमें यदि हम शान्ति न रखें तो इतने धारियों और लाठियोंके बीच कोई व्यक्ति पागल बनकर उपद्रव मचाये तब तो हम भाग ही निकलेंगे। ऐसेमें हम स्त्रियोंकी लाज और अपने आत्मसम्मानकी रक्षा नहीं कर सकते। हमें अपने व्यक्तित्वपर विश्वास होना चाहिए। यहाँ कोई छड़ी और हँसिया लेकर मारने नहीं आया; लेकिन जैसे अनेक संकट

१. लम्बे बेंटका हँसिया जो गुजरातमें एक हथियारकी तरह धारण किया जाता है।

आते हैं वैसे ही कोई दीवाना मार भी बैठे तो समझदारीसे काम लेकर शान्त रहना धर्म है। क्षत्रियका धर्म कोई गाली दे, लकड़ी मारे, हँसिया मारे तो उसके प्रत्युत्तरमें वार करना नहीं है; उसे सहन कर लेना है। क्षत्रियका धर्म भागनेका नहीं है, उसका धर्म मारना भी नहीं है, मरना और मरकर जीनेका है। मैं पूरे विश्वासके साथ कहता हूँ कि कोई भी व्यक्ति हिंसा करके दूसरेकी रक्षा नहीं करता, सच तो यह है कि हत्यारा मरनेकी तैयारी करता है और मरनेकी पूरी हिम्मत न होनेके कारण दूसरेको मार कर मरता है। वह जिस हदतक तलवारका प्रयोग करता है उस हदतक वह क्षत्रिय नहीं है।

क्षत्रिय विश्वास करे तो मरण तो उसके माथेका मुकुट है। मरनेका भय कैसा? जहाँ मरनेकी सबसे अधिक सम्भावना हो वहाँ जाकर खड़े होनेवाला ही सच्चा बहादुर है। जो मार सकता है उसे कोई बहादुर नही कहता। एक कुम्हार जो गधीको मारता रहता है उसे हम क्षत्रिय नहीं कहते और जो क्षत्रिय व्यक्तियोंकी हत्या करता है यदि उसे हम कुम्हार कहें तो यह एक सही विशेषण प्रदान करना कहलायेगा। जो पुरुष अपनी स्त्रीको मारता है उसे हम बहादुर नहीं कहते बल्कि नामर्द कहकर यथार्थ विशेषणसे विभूषित करते हैं। हममें जबतक क्षत्रियके गुण नहीं आते तबतक स्वराज्य मिलना मुश्किल है। क्षत्रियका गुण धीरज है। बारह वर्षके प्रह्लादमें, सुधन्वामें, सीतामें यह गुण विद्यमान था। रावणने सीताको लालच दिये, भय दिखाये लेकिन सीताजी टससे-मस न हुई। इसीसे आज हम उन्हें शुद्ध क्षत्रियाणी — देवी — माता मानते हैं, जबतक स्त्रियोंमें सीताके गुण नहीं आ जाते तबतक वे असहकार करने और स्वराज्य प्राप्त करनेके योग्य नहीं हैं। सीताजीने रावणके मिष्टान्नोंका त्याग किया, ये व्यंजन कोई कड़वे न थे, लेकिन अपात्रके द्वारा दिये गये थे इसलिए सीताजीने उन्हें फेंक दिया। रावणने जो आभूषण भेजे, सुन्दरतामें वे अभूतपूर्व थे, उनके हीरे-मोतियोंकी चमक आजके हीरे-मोतियोंसे कहीं अधिक होगी, लेकिन चूँकि वे अपात्रकी मार्फत आये थे इसलिए सीताजीने उनका त्याग किया। तभी वे अपने सतीत्वकी रक्षा कर सकीं।

हिन्दुस्तानको भी असहकारके लक्षण जान लेनेकी जरूरत है। यदि हम अपने वीर्यकी, अपने धर्मकी, और गाय तथा अपने अस्तित्वकी रक्षा करना चाहते हों तो असहकार जरूरी है।

सरकारने हमारे आत्मसम्मानकी चोरी की है। पैसेकी चोरी तो वह करती ही थी; लेकिन जबतक वह हमारे धनको ही लूटती रही तबतक मैंने उसे बरदाश्त कर लिया। मैंने इसके साथ वैसा व्यवहार किया जैसा मैं अपने आश्रममें करता हूँ। आश्रममें मैं किसी चोरको दण्ड नहीं देता। उसी तरह मैं सरकारको भी सहन करता रहा। लेकिन जब सरकारने हमारे आत्मसम्मानपर हाथ डाला तब मुझे चेत हुआ कि यह तो रावणका अवतार है, इसका संहार करना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं रामचन्द्रका अवतार हूँ। रामचन्द्रको हम ईश्वर मानते हैं। मैं ईश्वर नहीं हूँ, आप भी नहीं हैं; लेकिन हम सब रामचन्द्रके वारिस हैं। उनके जैसी तपश्चर्या करना और उनके जैसे दुःखोंको सहना हमारा कर्त्तव्य है। उन्होंने जैसे रावणसे असहकार किया वैसे

हमें भी करना है। हम राम नहीं हैं इसलिए हम [रावणरूपी सरकारके] शरीरकी हत्या करके कुछ प्राप्त नहीं कर सकते। हम तो मानते हैं कि अपनी दुष्ट वासनाओं-के कारण यह सरकार नित नया शरीर धारण किया करेगी। फिर भी हमें वाल्मीकि और तुलसीदासजीके आदेशोंका पालन करते हुए उसके संग का त्याग करना चाहिए; और इस प्रकार दुष्टताका नाश करना चाहिए।

'जेन्द-अवेस्ता', 'कुरान', 'बाइबिल', स्वामीनारायण[1] आदिने यही सिखाया है कि दुष्ट का संग नहीं करना चाहिए, उसे मदद न तो देनी चाहिए और न उससे लेनी चाहिए। सरकारने इसलामपर हाथ डाला है। मुसलमानोंके साथ विश्वासघात करके अपने रावणत्वका परिचय दिया है। आज इस्लाम है तो कल हिन्दू-धर्म। हिन्दू-धर्मपर तो वह बहुत पहले ही झपट्टा मार चुकी है; लेकिन अज्ञानवश हमने अपनी सभ्यताका त्याग करके उसका बहुत ज्यादा विरोध नहीं किया। हिन्दुओंने अपने धर्मका त्याग न किया होता तो गायोंकी खुले-आम हत्या करनेवालोंको हम कैसे सलाम बजा पाते? यह कोई एक व्यक्तिका सवाल नहीं है। एक व्यक्ति गो-हत्या करे तो उसे सहन कर लेना एक अलहदा बात है। लेकिन जो हमारे सरदार बनकर, सरकार बन कर, अन्नदाता होकर गो-हत्या करे उसके प्रति हम कैसे वफादार हो सकते हैं।

आप पूछेंगे कि क्या मुझे इस बातका पता सिर्फ सालभर पहले ही चला? नहीं; लेकिन उस समय मैं भ्रममें पड़ा हुआ था; मेरी धारणा थी कि मैं सरकारको सुधार लूँगा। मैं मरकर भी इसे प्रभावित करूँगा, मैं ऐसा मानता था। लेकिन इस्लामके साथ जान-बूझकर किये गये विश्वासघातसे मेरा यह विश्वास चला गया। मैं चेत गया और मैंने समझ लिया कि "हे जीव! तू अगर भारतीय है तो चेत और इसकी संगति छोड़कर भाग, नहीं तो तू हिन्दू-धर्मसे हाथ धो बैठेगा।" तबसे मैं हिन्दुओंके बीच जाकर उन्हें धर्मके रक्षणार्थ असहकार सिखा रहा हूँ। यदि आप हिन्दु-धर्मका पालन करना चाहते हों तो इस पवित्र धाममें मैं आपसे कहता हूँ कि आपका पहला और अन्तिम पाठ असहकार है।

लेकिन आप कहेंगे कि तब मैं मुसलमानोंके साथ मित्रता करनेकी बातें कैसे कर रहा हूँ? वे भी तो गायोंको मारते हैं। मैं कहूँगा कि वे वह कत्ल धर्मके नामपर करते हैं। मैं उन्हें समझा सकूँगा कि अगर कोई सनातनी — कट्टर हिन्दू आपका साथ देता है तो वह इस विश्वासके साथ देता है कि यदि वह आपके धर्मकी रक्षा करते हुए अपने प्राणोंको उत्सर्ग कर देगा तो भगवान मुसलमानोंको गायकी रक्षा करनेकी प्रेरणा देगा। मैं उनके साथ सहयोग के लिए यह शर्त पेश नहीं करता; लेकिन भगवान उन्हें ऐसा करनेकी प्रेरणा देगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

यह बात मैं हमेशा नहीं कहता कि मैं कोई शर्त नहीं लगाता। लेकिन साधुओं और मन्दिरोंके सामने मुझे यह कहना ही चाहिए। अगर मैं न कहूँ तो मुझे दोष लगेगा।

आप अंग्रेज अथवा मुसलमानकी हत्या करके गायकी सेवा नहीं कर सकते बल्कि अपनी ही प्यारी जान देकर उसे बचा पायेंगे। गायको बचानेमें अगर हमने अपना सर

१. स्वामी सहजानन्द (१७८१–१८३०); स्वामीनारायण-सम्प्रदायके प्रवर्तक।

दे दिया तो यमराज आपको बिना कुछ पूछे अपने सिंहासनपर बिठायेगा। लेकिन उसे बचानेमें यदि आप दूसरोंके प्राण लेंगे तो वह जरूर जवाब तलब करेगा; क्योंकि आप भी आदमी हैं और जिनके प्राण आप लेंगे वे भी आदमी हैं। मैं ईश्वर नहीं हूँ कि गाय बचानेके लिए दूसरोंका खून करनेका मुझे अधिकार हो। लेकिन हिन्दू धर्मने मेरा यह कर्त्तव्य अवश्य निश्चित कर दिया है कि गायके लिए मैं अपने प्राण दे दूँ। कितने हिन्दुओंने ऐसा किया है? कितने हिन्दुओंने बिना शर्त मुसलमानोंके लिए अपने जीवनको उत्सर्ग कर दिया है। वणिक्‌वृत्तिसे गायकी रक्षा नहीं हो सकती। हिन्दुत्वकी गौरवपूर्ण परम्परा अपने प्राणोंकी परवाह न करनेके लिए कहती है। जब मुसलमानोंको विश्वास हो जायेगा कि हिन्दू उनके लिए जानकी बाजी लगा रहे हैं तब वे गायकी हत्या करना बन्द कर देंगे। अली भाइयोंने गो-मांस लेना बन्द कर दिया है। इनकी रसोईमें उसे ले जाना तक मना हो गया है क्योंकि अली भाई पड़ौसीके प्रति अपने धर्मको जानते हैं और उसका पालन करते हैं। 'कुरान' में यह नहीं कहा गया है कि मुसलमानोंको गो-मांस खाना ही चाहिए। उसमें सिर्फ गो-मांसपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है। इसलिए वे लोग पड़ौसीके प्रति अपने कर्त्तव्यको पहचानकर गो-हत्या छोड़ देंगे। इसी श्रद्धासे मैं मुसलमानोंका संग कर रहा हूँ और प्रत्येक हिन्दू साधुसे कहता हूँ कि आप खिलाफतके लिए अपने सर्वस्वकी आहुति देंगे तो कहा जायेगा कि आपने हिन्दू-धर्मकी बड़ी रक्षा की है। अभी प्रत्येक हिन्दूका धर्म इस्लामको जोखिमसे बचाना है। और यदि ऐसा हुआ तो खुदा ही उन्हें हिन्दुओंको अपना मित्र समझनेकी प्रेरणा देगा और हिन्दू भी उन्हें अपना मित्र मानेंगे। अभीतक तो मुसलमानोंने यही माना कि हिन्दुओंको सताया जाये, और हिन्दुओंने सोचा कि गायको बचानेमें मुसलमानोंकी हत्या की जाये। इस तरह परस्पर द्वेषपूर्ण वातावरणके बीच तटस्थ अंग्रेज लोग गायोंको मारते रहे और उनको दोनोंकी सद्भावना मिलती रही। इस तरह हमने बड़ा पाप किया है।

इस सरकारने इस्लामके साथ दगा किया और पंजाबकी नाक काट डाली। पंजाब तो हमारा मुकुट है; यह वह देश है जहाँ हमारे ऋषि-मुनियोंने वास किया। इस देशके लोगोंको चाबुक लगाये गये, पेटके बल चलाया गया, यहाँकी औरतोंके बुरके उठाये गये, साधुओंके कपड़ोंपर चूना पोता गया और एक हजार व्यक्तियोंपर पीछेसे गोली चलाई गई; इतनेपर भी यह सरकार अब ऐसा कहती है कि यह सब भूल जाओ। हजार व्यक्ति मारे गये इसका मुझे इतना गम नहीं है; लेकिन सरकारने यह जो बात कही कि इस सबमें हिन्दुस्तानका ही दोष था, उससे मेरे हृदयको गहरा आघात पहुँचा है। स्वयं दोषी होकर उसने हिन्दुस्तानको ही दोषी बताया है। उसने स्वयं कुछ नहीं किया। उसने कहा जनरल डायर एक छोटीसी भूलमें पड़ गये। पश्चात्ताप करने अथवा क्षमा माँगनेकी वृत्ति तो उसे छूतक नहीं गई है। जबतक पंजाबको न्याय नहीं मिल जाता तबतक हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सबका यह धर्म है कि वे असहकार करें। यह वस्तु मुसलमानोंके धर्ममें भी है। असहयोगके लिए उन्होंने 'तर्के मवालात' शब्दका प्रयोग किया है।

यह असहकार अहिंसापूर्ण है। इसमें लाठियाँ और धारियोंका प्रयोग नहीं किया जाता। इसमें सिर लिया नहीं, दिया जाता है। अंग्रेजोंके प्रति तथा परस्पर अहिंसाका पालन करना आपका धर्म है।

आप धाराला नहीं हैं, ठाकरड़ा[1] — नहीं, ठाकोर हैं। आप ठाकोर बनना चाहते हैं तो टुच्ची-टुच्ची चोरियाँ आप नहीं कर सकते। पाटीदार[2] भी अपनेको क्षत्रिय कहते हैं लेकिन वे क्षत्रिय नहीं हैं क्योंकि वे चोरीमें हिस्सा बटाते हैं, चोरीका माल लेते हैं। वे क्षत्रियत्व भूल गये हैं। लेकिन आप तो क्षत्रिय-जैसे ही दीख पड़ते हैं, शस्त्र रखकर क्षत्रियत्वका प्रदर्शन करते हैं। मैं आपसे कहता हूँ कि आप जनताको दुःख पहुँचानेके लिए क्षत्रिय नहीं हैं, उसकी रक्षा करनेके लिए क्षत्रिय हैं। दारू पीना, लोगोंको दुःख देना, स्त्रियोंपर कुदृष्टि रखना, किसीको लूटना, यह तो आपका धर्म नहीं है। आप ऐसा करेंगे तो लम्पट कहलायेंगे। लम्पटको क्षत्रिय नहीं कहा जा सकता। मैं धाराला-को अपना भाई समझकर उनसे मिलने आया हूँ। मैं आपसे कहता हूँ कि कोई पाटी-दार लम्पट हो जाये तो आप उसे त्याग दें। मैं आप लोगोंका ही हूँ; पाटीदारोंका भी हूँ। इन्हें क्षत्रिय जानकर मैं इनके साथ रहनेके लिए आया था। किन्तु जब मैंने सुना कि ये पाटीदार लूटका माल रखते हैं तब मुझे शंका हुई कि कहीं ये वीर होनेके बजाय कायर तो नहीं हैं? यदि आप पाटीदारोंके साथ सहयोग करते हुए स्वराज्यमें हिस्सा लेना चाहते हों तो आप इन सब कामोंको मनसे निकाल दीजिये।

धाराले ठाकोर तभी बनेंगे जब वे देशकी रक्षा करेंगे और सच्चा साधु वही है जो निर्भय होकर इनमें घूमे-फिरे, जो इनके साथ रहते हुए भी कमल-पत्रकी तरह निर्लेप रहे, इन्हें सदुपदेश दे। मैं साधु होनेका दावा नहीं करता लेकिन गृहस्थ होते हुए भी कहता हूँ कि यदि मैं इस कार्यमें व्यस्त न हो जाता तो मैं भीलों और अन्य जंगली जातियोंमें जाकर रहता। उन्हें शुद्ध, दयावान, बहादुर, सदाचारी, सत्यभाषी बननेका उपदेश देता और उनसे जनताकी रक्षा करवाता।

यहाँ अनेक साधु रहते हैं, उनसे मैं प्रार्थना करता हूँ कि जब इतना कहर बरपा हो तब जैसे मैं विद्यार्थियोंको स्वयंसेवक बननेके लिए कहता हूँ उसी तरह आप भी अपने अधिकारोंका उपयोग करते हुए देशके इस कार्यमें जुट जायें। लुच्चों, चोरों और लम्पटोंके दोषोंका हरण करना आपका धर्म है। जबतक आप ऐसा नहीं करते तबतक आपको साधु कहलानेका अधिकार नहीं है। यदि आप स्वराज्य चाहते हों, अर्थात् राम-राज्य, सत्ययुग चाहते हों, यदि आप भरतखण्डको धर्म-भूमि — देवभूमि — बनाना चाहते हों तो पड़ौसीपर अत्याचार होता हुआ देखकर उसकी रक्षा करना आपका धर्म है। आपके पास यम-नियमके दिव्य अस्त्र हैं। आप यत्किंचित् तपश्चर्या द्वारा बड़ी आसानीसे इन अस्त्रोंको सच्चा सिद्ध कर सकते हैं।

हमने प्रतिज्ञा की है कि हम सरकारसे न्याय नहीं माँगेंगे। अगर रावण मुझे आकर मार जाये तो रावणसे न्याय माँगने मैं कैसे जा सकता हूँ? मुझे तो हिम्मत

१. गुजरातकी एक पिछड़ी हुई जाति।

२. काश्तकार।

बाँधकर सन्नद्ध हो जाना चाहिए। हिम्मत मुझे कहाँसे मिल सकती है? मुझे दयाका अभ्यास करना चाहिए। ज्ञानकी उपलब्धि करनी चाहिए। यह सब बातें लोग आप ही से सीख सकते हैं। शुद्ध धर्मवान व्यक्तिको हिन्दू, मुसलमान, काबुली सभी पहचान लेंगे और उसे आदर देंगे। आप धारालोंको सिखायें कि उनका काम लूटपाट करना नहीं है।

धारालोंसे मेरा यह कहना है कि आप लोगोंको तंग न करें; पाटीदारोंसे मेरा कहना है कि आप [चोरी-चपाटीको] उत्तेजन न दें। और यदि आप ब्राह्मण धर्मका पालन न कर सकें तो लाठियोंसे लड़कर उठाईगिरोंको मार भगायें।

यदि धाराले और पाटीदार दोनों अपने धर्मको भूल जायें तो मैं साधुओंसे कहूँगा कि आप उनकी रक्षा करें, उन्हें सुधारें, उनके मन निर्मल बनायें, जब आप ऐसा काम करेंगे तभी धर्मकी पुनः स्थापना होगी, तभी हम हिन्दुस्तानको कर्मभूमि कहेंगे।

मैं तो चला जाऊँगा लेकिन आपको यह कार्य हाथमें ले लेना है। मैं तो कहूँगा कि आज ही दो-चार साधुओं, दो-चार पाटीदारों, दो-चार धारालोंकी एक समिति नियुक्त करके उनसे यह काम शुरू करवाइए। आप यह सब करनेकी प्रतिज्ञा लें। यह काम किया गया तो स्वराज्य एक वर्षके भीतर मिलकर रहेगा। ईश्वर आपको प्रेम, साहस, दया और सत्यका यज्ञ करनेकी शक्ति दे, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७–१–१९२१

१२९. भाषण: साधुओंकी सभा, वड़तालमें[1]

१९ जनवरी १९२१

मुझे सदा साधुओंसे मिलनेकी इच्छा रहती है। जब मैं कुम्भ मेलेमें हरिद्वार गया तब मैंने वहाँ किसी ऐसे साधुकी तलाश करनेका प्रयत्न किया जिससे मिलकर मन प्रफुल्लित हो उठे। मैं साधुओंके एक-एक अखाड़ेमें गया। जितने भी प्रसिद्ध साधु थे मैं उन सभीसे मिला। लेकिन मुझे कहना चाहिए कि मुझे निराशा ही हाथ लगी। मेरा विश्वास है कि साधु हिन्दुस्तानके भूषण हैं और उन्हींसे हिन्दुस्तानका अस्तित्व रहेगा; लेकिन आज मुझे इन साधुओंमें बहुत कम साधुताके दर्शन होते हैं। मैंने, अपने हरद्वार वासकी अन्तिम पूरी रात यही विचार करनेमें लगाई कि हिन्दुस्तानके साधु सच्चे अर्थोंमें साधु बनें इसके लिए मैं क्या कर सकता हूँ? अन्तमें मैंने बड़ा कठिन व्रत लिया। मैंने क्या व्रत लिया सो यहाँ नहीं कहूँगा। लेकिन वह व्रत कठिन है, ऐसा बहुतसे लोग मानते हैं। ईश्वरकी कृपासे मैं इस व्रतको अभीतक निभा सका हूँ।

मुझे अनेक मित्रोंने सुझाव दिया है कि मुझे सन्यासी हो जाना चाहिए; लेकिन मैं सन्यासी नहीं हुआ। उस दिन भी अन्तरात्माने यह बात स्वीकार नहीं की थी और

१. कि० घ० मशरूवालाके यात्रा विवरणसे उद्धृत।

आज भी नहीं। इसका कारण मुझे सांसारिक भोग भोगने हैं, यह तो आप कदापि न समझें। मैं इनका त्याग करनेका प्रयत्न तो यथाशक्ति करता ही रहता हूँ; लेकिन मैंने अपने इसी प्रयत्नमें देखा है कि मैं भगवा पहननेके योग्य नहीं हूँ। मैं मन, वचन और कर्मसे सत्य, अहिंसा अथवा ब्रह्मचर्यका पालन करता हूँ, ऐसा मैं नहीं कह सकता। मेरे मनमें चाहे-अनचाहे राग-द्वेष आते हैं और वासनाएँ उठती हैं — इन सबको मैं विचारपूर्वक रोकनेका प्रयत्न करता हूँ और इससे उनका स्थूलरूप दब जाता है। यदि मैं सम्पूर्ण रूपसे उनपर निग्रह कर सकूँ तो मैं आज ही समस्त विभूतियोंका स्वामी हो जाऊँ; मेरे नम्र होते हुए भी जगत मेरे चरणोंमें लोट जाये; कोई मेरी हँसी उड़ाने अथवा मेरा तिरस्कार करनेकी इच्छातक न करे।

लेकिन मैं आपसे आपका वेष उतरवानेके लिए नहीं आया हूँ। स्वामीनारायण सम्प्रदायमें मुझे जिस सरलताका अनुभव हुआ है, जिस प्रेमसे आपने मुझे यहाँ बुलाया है, उसके बदलेमें, मेरे मनमें जो भाव हैं अगर मैं उन्हें आपके सम्मुख व्यक्त न करूँ तो कहा जायेगा कि मैं अपने कर्त्तव्यसे च्युत हो गया। इसलिए मैं तो आपसे यही कहता हूँ कि आपने जो यह साधुओंका बाना पहन रखा है उसे आप साधुताके उचित गुणोंसे शोभित करें और इससे यशस्वी बनकर अपने सम्प्रदायको यशस्वी बनायें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३–१–१९२१

१३०. चरखेका धर्म

कांग्रेसने असहयोगके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव[1] पास किया है उसके विविध अंगोंका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ। ये सब अंग महत्वपूर्ण हैं; लेकिन उनमें से एक अंग ऐसा है, जिसपर अगर जनता अमल करे तो मेरी दृढ़ मान्यता है कि उसी क्षण स्वराज्य प्राप्त हो जायेगा। यह अंग है चरखेका धर्म।

स्थान-स्थानपर मुझसे यह पूछा जाता है कि क्या स्वराज्य मिलनेपर अनाज और कपड़ेके दाम घट जायेंगे? यह सवाल उचित है। हमें स्वराज्य मिले अथवा कोई अन्य वस्तु मिले; लेकिन अगर हम कपड़ेके लिए विदेशोंपर निर्भर रहेंगे तो कपड़े अथवा अनाजके दाम नहीं घटेंगे। इसलिए नहीं घटेंगे कि जबतक हम कपड़ेके मूल्यके रूपमें प्रतिवर्ष अपना साठ करोड़ रुपया हिन्दुस्तानसे बाहर भेजते रहेंगे तबतक हमारी भुखमरी दूर नहीं होगी और तबतक करोड़ों लोग कम अथवा अधिक प्रमाणमें उद्योगके बिना रहेंगे और उन्हें पर्याप्त अन्न अथवा वस्त्र नहीं मिलेंगे।

इसलिए हमारे सम्मुख अपनी जरूरतका कपड़ा तैयार करनेका प्रश्न खड़ा हुआ है। यदि हम अपनी जरूरत-भर कपड़ा तैयार कर लें तो हमारा साठ करोड़ रुपया बचने लगे। इतना ही नहीं, वह साराका-सारा गरीबोंके घर जाये। यह काम सिर्फ चरखेकी प्रवृत्ति बढ़ानेसे ही हो सकता है। हिन्दुस्तानमें पाँच करोड़ रतल सूत बाहर

१. देखिए परिशिष्ट १।

से आता है। यह सूत अस्सी और इससे अधिक नम्बरका होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर यही सूत मोटा हो तो चालीस करोड़ रत्तल हो जाये। जबतक इतना सूत हम नहीं कातते तबतक हमें हिन्दुस्तानको स्वतन्त्र करवानेकी बात भूल जानी चाहिए। इतना सूत किस तरह तैयार किया जाये?

हमारे कारखाने इतना सूत तैयार कर सकें यह सम्भव नहीं है। केवल चरखे-से ही यह काम हो सकता है। और सूतके उत्पादनको बढ़ानेका आसानसे-आसान रास्ता यही है कि हमारे स्कूलोंके विद्यार्थी इस कामको करने लग जायें। इन्हीं कारणोंको ध्यानमें रखते हुए विद्यापीठकी[1] नियामक सभाने यह सुझाव दिया है कि विद्यापीठसे सम्बन्धित शालाओंमें चरखा दाखिल किया जाये और सूत कतवाया जाये। यह बात मैं हमेशा मानता और कहता आया हूँ कि हमारे शिक्षणमें हमेशा ही यह त्रुटि रही है। मुझे उम्मीद है कि हमारे सब शिक्षक और विद्यार्थी इस सुझावका स्वागत करेंगे। हम इस सुझावके सम्बन्धमें अधिक विचार बादमें करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-१-१९२१

१३१. भाषण : विद्यार्थियोंकी सभामें[2]

२० जनवरी, १९२१

श्री गांधीने हिन्दीमें बोलते हुए कहा कि अगर आप स्वराज्य चाहते हैं तो आपको अपने कालेजों और स्कूलोंका परित्याग करना होगा। विद्यार्थियोंके रूपमें आपका क्या फर्ज है और आपको देशके लिए क्या करना है? कांग्रेसने आपको एक निश्चित नेतृत्व दिया है और क्या व्यावहारिक कदम उठाना है वह भी सुझा दिया है। उसने अहिंसामय असहयोगका रास्ता बताया है। आपका कर्त्तव्य है कि सरकारी अनुदानसे या सरकारी देखरेखमें चलनेवाले सभी स्कूल और कालेज छोड़ दें, और अपनी मातृ-भूमिके लिए रचनात्मक काम करें। कालेजोंका परित्याग करके आप सरकारकी नैतिक प्रतिष्ठाकी नींव हिला देंगे और अगर आप इसमें सफल हो गये तो भारतीयोंको स्वराज्य भी प्राप्त हो जायेगा। अपने उस लक्ष्यको, जिसके लिए आप सबको बलिदान करना होगा, प्राप्त करनेका एकमात्र रास्ता यही है। अगर आप एक-दो वर्षके लिए किसी शिक्षण-संस्थामें न जा पायें तो भी आप कुछ खोयेंगे नहीं। उद्देश्य प्राप्तिके लिए जिन चीजोंकी जरूरत है, वे हैं साहस और बलिदान। साहस और बलिदानका पाठ घरमें भी सीखा जा सकता है और स्कूलोंमें भी।

अपना लक्ष्य प्राप्त करनेके लिए आपसे जिन बातोंकी अपेक्षा की जाती है उनमें दो सबसे महत्वपूर्ण हैं। एक तो यह कि आप अपने देशका आर्थिक उत्थान करें।

१. गुजरात विद्यापीठ।

२. यह सभा स्वराज्य-सभा और नेशनल यूनियनके संयुक्त तत्त्वावधानमें बम्बईमें हुई थी; अध्यक्षता गांधीजीने की थी।

अपने देशको विदेशोंकी आर्थिक दासतासे मुक्त करनेके लिए आप लोगोंमें से हरएकको कताई और बुनाईकी कला सीखनी चाहिए। इससे विदेशी कपड़ेका आयात रुक जायेगा और यह देशकी महान सेवा होगी। दूसरी बात जो मैं जोर देकर आपसे कहना चाहता हूँ वह यह है कि आप सबकी एक सामान्य भाषा होनी चाहिए; सभी भारतीयोंकी एक सामान्य भाषा होनी चाहिए ताकि वे भारतके जिस हिस्सेमें भी जायें, वहाँके लोगोंसे बातचीत कर सकें। श्री गांधीने सुझाव दिया कि इसके लिए आपको हिन्दी अथवा उर्दूको अपनाना चाहिए। उन्होंने श्रोताओंसे कहा कि आप देशके गाँव-गाँवमें हाथ-करघेसे बुनाई करनेका प्रचार करें, जिससे आप अपने देशको आर्थिक दृष्टिसे अन्य राष्ट्रोंके बीच एक ऊँचा स्थान दिला सकें।

कलकत्तेके विद्यार्थियों द्वारा कालेज छोड़नेकी बातका जिक्र करते हुए श्री गांधीने उनके इस कदमकी बड़ी प्रशंसा की और बम्बईके विद्यार्थियोंसे इस प्रेरणाप्रद दृष्टान्तका अनुकरण करनेका अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि मैं कलकत्ता जा रहा हूँ[1] और बंगालके विद्यार्थियोंके लिए आपकी ओरसे यह सन्देश ले जाना चाहता हूँ कि आप अपने बंगाली भाइयोंके साथ हैं। क्या आप मुझे ऐसा सन्देश देनेके लिए तैयार हैं? क्या आप मातृभूमिके लिए यह बलिदान करनेको तैयार हैं? मैं बम्बई छोड़नेसे पहले आज ही आपका उत्तर चाहता हूँ। अन्तमें उन्होंने भगवानसे प्रार्थना की कि वह विद्यार्थियोंको स्कूल और कालेज छोड़नेकी सद्बुद्धि दे।

[अँग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २२-१-१९२१

१३२. सन्देश : शराबबन्दीपर[2]

[जनवरी २३, १९२१]

मुझे यह सुनकर खुशी होती है कि शराबबन्दी आन्दोलन प्रगति कर रहा है। लोग अगर इस व्यसनको छोड़ दें तो इससे हमारे असहयोग आन्दोलनमें शुचिता आयेगी और इससे स्वराज-प्राप्तिमें सहायता मिलेगी। सरकार द्वारा शराबकी दूकानोंकी नीलामीकी सूचना जल्दी ही जारी की जायेगी। किसीको नीलामीमें शामिल नहीं होना चाहिए और न लाइसेंस ही लेना चाहिए। अगर कोई लाइसेंस ले ही ले तो किसी भी व्यक्तिको शराब खरीदनेके लिए उसकी दुकानपर नहीं जाना चाहिए। इस तरह यह बुरा व्यसन हर जगहसे खत्म हो जायेगा।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२१, पृष्ठ १२५

१. गांधीजी २३ जनवरीको, कलकत्ता पहुँचे थे और ४ फरवरीतक वहाँ रहे थे।
२. यह २३-१-१९२१ के **सन्देश**में प्रकाशित हुआ था।

१३३. लूट और चोरी

जोटाणासे[1] कुछ भाइयों और बहनोंने वहाँ होनेवाली लूटपाटसे जो त्रास फैला हुआ है उसके विषयमें बताया। मैंने सुना है, वैसी ही स्थिति खेड़ाके कुछ गाँवोंमें भी है। मैं वड़तालमें भी इसी कारणसे गया था। वहाँ धाराला ठाकोर लोगोंसे मैंने मुलाकात की और यह सब-कुछ सुननेके बाद मुझे लगा कि यह सवाल महत्वपूर्ण है। यह कोई नया प्रश्न नहीं है। ऐसी लूटपाट हमेशासे थोड़ी-बहुत चलती आई है। यह भी रोगादि जैसा उपद्रव है। किसी-किसी समय यह अधिक फूट निकलता है और कभी-कभी इसकी गति मन्द पड़ जाती है। आजतक जनताने यही माना है कि इस तरहकी लूटपाटको रोकना सरकारका ही काम है। इसमें सन्देह नहीं कि जनताकी रक्षा करना सरकारका कर्त्तव्य होता है। लेकिन जिस राष्ट्रकी जनता इस सम्बन्धमें सिर्फ सरकारपर ही निर्भर करती है वह स्वतन्त्र नहीं हो सकती। अगर इस असहयोग आन्दोलनके समय जनता सरकारी संरक्षणकी बात सोचेगी तो यह आत्मघात करनेके समान माना जायेगा।

सरकारी पक्षकी ओरसे तो हमेशा यही कहा जाता रहा है कि जनता अपनी रक्षा करनेको तैयार नहीं है, उसमें बाहरी हमलेसे अपना बचाव करनेकी हिम्मत नहीं है। थोड़ासा विचार करनेपर ही मालूम होगा कि इस बातमें कोई तथ्य नहीं है। जब यह सरकार नहीं थी तब भी हिन्दुस्तानमें अपने अस्तित्वको बनाये रखनेकी ताकत थी। यदि हिन्दुस्तानके लोगोंमें अपनी रक्षा करनेकी शक्ति न होती तो वे कबके नष्ट हो गये होते। हकीकत तो यह है कि हिन्दुस्तानके लोग चाहे कितने ही पतित क्यों न हों लेकिन वे आजतक अपनी सभ्यता और अपने अस्तित्वको बनाये रख सके हैं, जब कि रोम, मिस्र, यूनान और ईरान आदि साम्राज्य नष्ट हो गये हैं। प्राचीन मिस्र और अर्वाचीन मिस्र एक नहीं है। किन्तु प्राचीन भारत अधिकांशतया वैसा ही था जैसा आजका भारत है। तिसपर भी दलीलकी खातिर मान लें कि जिस समय अंग्रेजी-राज्यकी स्थापना हुई उस समय भारत अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ था, तो भी आज तो वह इसकी अपेक्षा और भी ज्यादा असमर्थ है। और इसका मुख्य कारण सरकार ही है। सरकारने अपने प्रथम कर्त्तव्यका ही पालन नहीं किया। उसका कर्त्तव्य था कि वह हमें धीरे-धीरे आत्मनिर्भर बनाती उसके बदले आजकी हमारी स्थिति ऐसी जान पड़ती है कि हम बाहरी और भीतरी, दोनों तरहके ऐसे उपद्रवोंका मुकाबिला करनेमें असमर्थ हैं।

मैंने ऊपर लिखा है कि हम असमर्थ हैं। वास्तवमें हमें ऐसी प्रतीति होती है। यों तो सरकारने जानबूझकर हमें असमर्थ बनाये रखने और हमारी असमर्थताको बढ़ानेकी कोशिश की है। तथापि हम अपनी रक्षा करनेमें बिलकुल ही असमर्थ नहीं

१. गुजरातमें अहमदाबादके समीप एक गाँव।

हो गये हैं। बाहरी उपद्रवोंसे अपनी रक्षा करनेके विषयमें मैं यहाँ विचार नहीं करूँगा, उसके सम्बन्धमें मैं पहले थोड़ा-बहुत लिख चुका हूँ। प्रसंग आनेपर उसके सम्बन्धमें और भी लिखूँगा। आज तो हम इन उपद्रवोंपर ही विचार करें जिनके बारेमें मैं ऊपर कह गया हूँ।

रोगका निदान करनेपर ही उसका उपचार हाथ आता है। पहले इन उपद्रवों के कारणोंकी खोज करें। जोटाणामें मकरानी और बलूची[1] लोग उपद्रव करते हैं और खेड़ामें धाराला। यह बताया गया कि जोटाणामें मकरानी और बलूची लोगोंके दिलोंसे सरकारका भय जाता रहा है और वे अब यह मानकर कि उन्हें कोई दण्ड देने-वाला नहीं है, लूटपाटका धन्धा करते हैं। धारालोंके लूट करनेका कारण यह है कि पाटीदार खुद पैसे कमानेकी खातिर धारालोंको उकसाकर उनसे लूट-पाट करवाते हैं और कोई-कोई एक-दूसरेसे दुश्मनी निकालनेके लिए भी धारालोंकी बुरी प्रवृत्तियोंका उपयोग करते हैं।

इसका सरल और सीधा उपाय तो यह है कि हम मकरानी, बलूची और धारालोंको अपना भाई समझ उनसे अच्छे लोग बननेका अनुरोध करें। वे अगर भूखके कारण लूटपाट करते हों तो उनकी भूख दूर करें, उन्हें शिक्षा दें और उनकी अच्छी भावनाओंको जाग्रत करें। अगर हम स्वराज्यका उपभोग कर रहे होते तो क्या करते? हमारा स्वराज्य व्यवस्थित होता तो हम उन्हें सुधारनेका अवश्य प्रयत्न करते।

सुधारका यह काम साधुओंका है। पहले भी साधु ही ऐसे लोगोंको बोध देते थे। स्वामीनारायणने स्वयं सामान्य वर्णोंपर अच्छा असर डालकर उनकी बुरी आदतों-को छुड़वाया था। सब सम्प्रदायोंके साधुओं-फकीरोंका धर्म है कि वे निर्भय होकर इन कौमोंके बीच जायें और अपनी जान जोखिममें डालकर भी इन लोगोंको उनके अनुचित धन्धोंसे विरत करनेका प्रयत्न करें। यदि साधु अपने इस आवश्यक कार्यको हाथमें लें तो थोड़े ही अर्सेमें वे धाराला, मकरानी और बलूची कौमोंपर असर डाल सकेंगे।

पाटीदारोंपर जो आरोप लगाया गया है अगर वह सही है तो उन्हें आपसी द्वेषभावको छोड़ना चाहिए और उसी तरह चोरीका माल खरीदकर पैसा कमानेकी आदतको पाप मानना चाहिए। पाटीदार बहादुर और ज्ञानी कौम कही जाती है। खेड़ाके संघर्षके[2] समय उन्होंने सारे हिन्दुस्तानको अपने शौर्य, चातुरी, एकता और समझदारी आदि गुणोंका परिचय दिया था। इस कौमको आपसमें द्वेष रखने और अनुचित साधनोंसे कमाई करनेकी आदत कतई शोभा नहीं देती।

धारालोंमें कितने ही ज्ञानी और विवेकी नेता हैं, उन्हें धारालोंकी स्थिति सुधा-रनेका निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए।

उपर्युक्त सब प्रयत्न एक दूसरेके पूरक हैं। लेकिन अगर हम एक बार ठीक तौरसे समझ लें कि ये सब प्रयत्न निष्फल होंगे तो फिर मैं आप सबसे अवश्य ही कहूँगा कि हमें इन चोर-डाकुओंका मुकाबिला करनेके लिए शक्ति जुटानी चाहिए।

१. फारसमें मकरानसे और बलूचिस्तानसे भारत आनेवाली जातियोंके वशंज।

२. १९१८ की गर्मियोंमें; देखिए खण्ड १४।

यह शक्ति हथियारोंका परित्याग करनेपर भी जुटाई जा सकती है। यदि प्रत्येक गाँवमें थोड़ेसे पुरुष अपने प्राणोंको संकटमें डालनेकी शक्ति पैदा कर लें तो उन्हें रक्षक बनकर गाँवकी चौकसी करनी चाहिए। जब किसी भी गाँवको लूटनेके लिए चोर आदि आयें तब सब लोग जागृत रहें, डरें नहीं और लड़नेके लिए तैयार हो जायें। लुटेरे इसे देखकर अवश्य भाग जायेंगे। मैंने सुना है कि लुटेरोंके पास बन्दूकें आदि होती हैं। हों; बहादुर व्यक्ति बन्दूकवालेके साथ भी लड़ सकता है। मैंने बन्दूक धारियोंको भी मात कर देनेवाले अनेक लोगोंके बारेमें सुना है। यह कोई असम्भव बात नहीं है। बन्दूक चला सकनेवाला व्यक्ति एक तो हमेशा हथियार अपने साथ नहीं रखता, दूसरे कभी सशस्त्र व्यक्तिसे भी मुठभेड़ हो सकती है। तब वह पीछे न हटकर जूझता है। शौर्यका माप हमेशा मरनेकी शक्तिमें निहित है। अतएव शरीरसे दुर्बल व्यक्तिमें भी शौर्य हो सकता है। अपनी जान बचाने जितना शौर्य तो सबमें होना चाहिए और कमसे-कम इतनी शिक्षा सबको ले लेनी चाहिए। यह शिक्षा तलवार चलानेसे नहीं आती, अपितु मनको सुदृढ़ बनानेसे आती है, मौतका भय त्याग देनेसे आती है। लाठी आदि का प्रयोग इस शक्तिको प्राप्त करनेमें सहायक अवश्य होता है। फिर जिनकी अहिंसा-धर्मपर श्रद्धा नहीं बैठी है, जो मरनेके जौहरको नहीं पहचानते और जो मारकर भी अपना बचाव करनेको उत्सुक हैं उन्हें निःसन्देह तलवार आदि चलानेकी तालीम लेकर आत्मरक्षा करनेका बल प्राप्त कर लेना चाहिए।

दुःखकी बात तो यह है कि हमने यह मान लिया है कि हम अपना अथवा पड़ौसीका बचाव करनेमें असमर्थ हैं। शारीरिक रूपसे स्वस्थ होनेके बावजूद हमने चुपचाप पड़े रहकर एक ही चोरको सब-कुछ ले जाने दिया है। हमने पड़ौसी-धर्म पहचाना ही नहीं है फिर पाला तो कैसे होगा? ऐसी स्थितिमें से हमें तुरन्त निकल जाना चाहिए। हरेक गाँवमें सबसे बहादुर व्यक्तियोंको स्वयंसेवक बनकर लोकरक्षा करनेका उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए। चोर आदि जब यह समझ लेंगे कि जनता अपनी रक्षा करनेमें समर्थ है तब वे चोरी करते हुए डरेंगे। उत्तम तरीका तो वही है जो मैं पहले कह गया हूँ। हमें चोरोंको भी ईमानदार बनाना चाहिए। सबसे खराब रास्ता है चोरोंको दण्ड देनेका। चोरोंसे डरकर छिप जाना बचावका रास्ता नहीं है, यह तो साफ कायरता है। आजकी स्थितिका सामना करनेके लिए हमें सभी व्यावहारिक उपायोंको अपनाना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३–१–१९२१

१३४. सरकारकी[1] स्मृतिमें

सरकारको अपनी महत्ताके भानसे क्या? अंग्रेजी सरकार समाप्त हो जाये चाहे सुधरे, भारतीय सरकार तो अमर रहेगी। पटवर्धन भी सरकार थे, क्योंकि वे एक सेवक थे। पटवर्धनने किसी दिन मान और महत्ताकी आकांक्षा की हो ऐसा मैंने कभी नहीं देखा। मित्रकी कीमत उसकी मृत्युके बाद होती है। पटवर्धन अमर हैं; क्योंकि हम सब उनके गुणोंको ग्रहण करके एकसे अनेक पटवर्धन बननेके लिए कर्त्तव्यबद्ध हैं। जब वे जीवित थे, पटवर्धन एक थे, मरकर वे हमें अपने जैसा बननेके लिए कह गये हैं।

मोहनदास

[गुजरातीसे]

नवपुडो, पहला वर्ष, पौष सुदी १४, सम्वत् १९७७ [२३ जनवरी, १९२१]

१३५. भाषण : कलकत्तामें[2]

२३ जनवरी, १९२१

अध्यक्ष महोदय और मित्रो,

बंगालके विद्यार्थियोंने देशकी पुकारका जो शानदार उत्तर दिया है, उसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ। मैं जानता था कि बंगालके विद्यार्थी मेरे मित्र श्री चित्तरंजन दास-के नेतृत्वकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं श्री दासको यह नेतृत्व प्रदान करनेके लिए, और आप लोगोंको उस नेतृत्वका अनुसरण करनेके लिए बधाई देता हूँ। लेकिन इस तथ्यको जितनी अच्छी तरह मैं जानता हूँ उतनी ही अच्छी तरह आप लोग भी जानते हैं कि अभी तो उनका और आपका काम शुरू ही हुआ है। हम अभी प्रसवकी एक प्रक्रियामें से गुजर रहे हैं और इसलिए स्वभावतः हमें वे सारी कठिनाइयाँ, वे समस्त पीड़ाएँ सहनी पड़ रही हैं जो प्रसवके समय सहनी पड़ती हैं। आप लोगोंने कालेज खाली कर दिये हैं — लेकिन श्री दासके लिए और भारतके लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि आपने जिन कालेजों और स्कूलोंको छोड़ दिया है उनमें फिर किसी भी हालतमें वापस न जायें; और श्री दासके लिए यह जरूरी है

१. यादवड़कर पटवर्धनका प्यारका नाम।

२. यह सभा श्री चित्तरंजन दासकी अध्यक्षतामें मिर्जापुर पार्कमें हुई थी। २ फरवरी, १९२१ के **यंग इंडियामें** इसे "विद्यार्थियोंकी बृहत् सभा" कहा गया है, लेकिन २५-१-१९२१ की **अमृत बाजार पत्रिका** और २४-१-१९२१ के **हिन्दूमें** इसे सार्वजनिक सभा कहा गया है; इसमें मुख्यतः विद्यार्थी ही शामिल थे।

कि वे आपके लिए ऐसा कार्य खोज निकालें, जिसे आप परीक्षाकी इस अवधिमें, आत्मशुद्धिके इस कालमें करें।

अब श्री दास और आप लोगोंके लिए यह जरूरी हो गया है कि आप सब मिल-बैठकर ऐसे उपाय सोच निकालें, जिससे आप उस कामको पूरा कर सकें जिसे आपने शुरू किया है। जो भी हो, आप विद्यार्थियोंने सरकारी स्कूलों और सरकारी अनुदानसे चलनेवाले स्कूलोंको छोड़कर अपना एक कर्त्तव्य पूरा कर लिया है। लेकिन इस कामको स्थायी बनानेके लिए, उसे जारी रखनेके लिए और इसलिए कि आपकी सेवाओंका उपयोग स्वराज्य प्राप्तिके हेतु किया जा सके, उपाय और साधनोंको खोज निकालना आवश्यक है। और मैं आपको बता नहीं सकता कि मुझे कितना दुःख होता है जब मैं देखता हूँ कि एक ओर छात्र-जगत्ने इतनी उदारताके साथ राष्ट्रकी पुकारका उत्तर दिया है और दूसरी ओर बंगालकी महान् शिक्षण-संस्थाओंके प्राध्यापक, शिक्षा-शास्त्री और न्यासी, उन्हें जो नेतृत्व देना चाहिए, नहीं दे रहे हैं।[1] लेकिन कोई यह न समझे कि इस तथ्यकी ओर उनका और आपका ध्यान आकर्षित करके मैं उनपर अथवा उनके देशप्रेमपर कोई आक्षेप कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ और मुझे पूरा विश्वास है कि वे सचमुच मानते हैं कि आपने ऐसा करके भूल की है। मैं जानता हूँ कि वे मानते हैं कि श्री दासने आपको यह सलाह देकर भूल की है कि आप अपनी अन्तरात्माकी आड़ लेनेकी कोशिश न करें बल्कि राष्ट्रके आह्वानका उत्तर दें। उनका खयाल है कि मैंने देशके सम्मुख असहयोग आन्दोलनका रास्ता प्रस्तुत करके एक गम्भीर भूल की है और वे सच्चे दिलसे मानते हैं कि मेरा विद्यार्थियोंको सरकारी शिक्षण संस्थाओंका बहिष्कार करनेकी सलाह देना तो और भी बड़ी भूल है।

लेकिन मुझे जिन अनुभवोंसे गुजरना पड़ा है, मैंने जो-कुछ सुना और पढ़ा है, अपने गुरुजनों और नेताओंके प्रति मेरे मनमें जो श्रद्धाभाव[2] है, उस सबके बावजूद मैं आपके सामने स्वीकार करूँगा कि मैंने देशको जो कदम उठानेकी सलाह दी है, उसके सही होनेके बारेमें मेरा विश्वास पहलेसे भी ज्यादा दृढ़ हो गया है। मुझे इस बातका पहलेसे ज्यादा यकीन हो गया है कि अगर हम अपनी पसन्दके स्वराज्यकी स्थापना करना चाहते हैं, अगर हम भारतकी खोई हुई प्रतिष्ठाको पुनः प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, अगर हम इस्लामकी डगमगाती प्रतिष्ठाको फिरसे दृढ़ आधारपर स्थापित करना चाहते हैं, तो हमारे लिए इस सरकारको यह बता देना अत्यन्त आवश्यक है कि उसे हमारी ओरसे किसी तरहकी मदद नही मिलेगी, और न ही हम ऐसी सरकारसे कोई सहायता लेंगे जिसने अपने-आपको हमारे विश्वासके अयोग्य सिद्ध कर दिया है। मैं जानता हूँ कि आपमें से जो लोग शंकाशील हैं वे मुझसे अथवा अपने-आपसे कहेंगे कि हमने ऐसे मंचोंसे अनेक बार इस तरहकी बातें सुनी हैं। यह सच है; आपने अवश्य सुनी होंगी। लेकिन मैक्समुलर हमें बता गये हैं — जो वास्तवमें

१. **अमृतबाजार पत्रिकामें** यह वाक्य इस प्रकार समाप्त होता है, "उस सीमातक कार्य करनेके लिए आगे नहीं आए है जितना कि उन्हें आना चाहिए था"।

२. **अमृतबाजार पत्रिकामें** यह वाक्य इस प्रकार है: "जो श्रद्धाभाव रखनेका मैं दावा करता हूँ।"

संस्कृतकी एक कहावतका भावानुवाद ही है कि — सत्यको तबतक बार-बार दोहराना पड़ता है, जबतक लोग उसे ग्रहण नहीं कर लेते, और मेरा इरादा भी यही है कि जबतक हमारे देशभाई, हमारे नेता[1] इस सत्यको ग्रहण नहीं कर लेते, देशकी इस पुकारका उचित उत्तर नहीं देते तबतक मैं इसे उनके सामने बार-बार दोहराता जाऊँगा। मैं यहाँ वही बात दोहरानेके लिए आया हूँ जो मैं कई मंचोंसे पहले कह चुका हूँ — अर्थात् यही कि भारत अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा, अपनी खोई हुई स्वाधीनता तबतक प्राप्त नहीं कर सकता जबतक वह असहयोगके आह्वानके प्रति पूरा उत्साह नहीं दिखाता। हम भारतीय प्रकृतिसे ही कुछ ऐसे हैं कि इस बड़ी सरकारसे किसी और तरीकेसे लड़ ही नहीं सकते।

असहयोग प्रत्येक भारतीयके खूनमें समाया हुआ है, और अगर आप यह जानना चाहते हैं कि लाखों-करोड़ों आम लोगोंने असहयोगके आह्वानपर, जितना उत्साह उन्होंने किसी भी आह्वानके प्रति नहीं दिखाया, उतना उत्साह क्यों दिखाया तो मैं कहूँगा कि इसका कारण यह नहीं है कि मैंने इस आह्वानको स्वर दिया हैं। असहयोगकी भावना उनकी अन्तःप्रकृतिमें जन्म लेती है, उनकी अन्तःप्रकृतिमें पोषित होती है। असहयोग प्रत्येक धर्मका अंग है। यह हिन्दुत्वका अंग है। यह इस्लामका अंग है; और यही कारण है कि यद्यपि आज हम गिरी हुई अवस्थामें हैं और अपने-आपको असहाय महसूस कर रहे हैं फिर भी असहयोगने हमें अपनी दीर्घ निद्रासे जगा दिया है। असहयोगने हमें विश्वास दिया है, साहस दिया है, आशा दी है, बल दिया है।

हमारे शिक्षित नेताओंने अबतक असहयोगके आह्वानके प्रति उत्साह नहीं दिखाया है तो मैं पूरी विनम्रताके साथ कहना चाहूँगा कि वे आस्थाहीन हैं, शंकालु हैं और उनमें धर्मका वह तेज नहीं है जो जनता और सर्व साधारणमें है। वे आधुनिक सभ्यतामें, या जिसे हम "पाश्चात्य सभ्यता" कहते हैं, पूरी तरहसे डूबे हुए हैं। मैंने "पाश्चात्य सभ्यता" शब्दोंका प्रयोग किया है। लेकिन मैं चाहता हूँ कि आज आप और मैं, हम दोनों ही इन दोनोंका भेद स्पष्ट जान लें। मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं पश्चिमसे घृणा करनेवाला आदमी नहीं हूँ। पाश्चात्य साहित्यसे मैंने बहुत-सी चीजें सीखी हैं, जिसके लिए मैं पश्चिमका आभारी हूँ। लेकिन मैं आपके सामने स्वीकार करता हूँ कि आधुनिक सभ्यताका आभारी मैं इस बातके लिए हूँ कि उसने मुझे सिखाया है कि अगर मैं चाहता हूँ कि भारत अपने गौरवके उच्चतम शिखरपर आसीन हो तो मुझे अपने देशभाइयोंसे साफ कह देना चाहिए कि आधुनिक सभ्यताके वर्षोंके अनुभवसे मैं एक ही पाठ सीख पाया हूँ और वह यह कि हमें हर हालतमें इससे दूर ही रहना चाहिए। आधुनिक सभ्यता क्या है? वह जड़की आराधना है, हमारे भीतर जो पशु है उसकी पूजा है — यह विशुद्ध भौतिकवाद है और अगर आधुनिक सभ्यता हर कदमपर भौतिकतावादी सभ्यताकी विजयकी बात न सोचे तो जैसे उसका कोई मतलब ही न रह जाये!

१. **अमृतबाजार पत्रिका**में "बुजुर्ग" शब्द है।

अगर मैं अपने देशको न जानता होता, अगर मैं जनसाधारणके मानसको न समझता होता तो जैसे, मेरे विचारमें, भारतका शिक्षितवर्ग दिग्भ्रमित हो गया है वैसे ही मैं भी दिग्भ्रमित हो जाता, मैं भी भूल कर बैठता। आप सब जानते हैं कि मैं बीस वर्ष आधुनिकताके कोलाहलके बीच रहा हूँ — मैं एक ऐसे देशमें रहा हूँ, जिसने हर ऐसी चीजकी नकल की है जो आधुनिक है। मैं एक ऐसे देशमें रहा हूँ, जो नये जीवनसे स्पन्दित हो रहा है। दक्षिण आफ्रिकामें इस दुनियाके कुछ बहादुरसे-बहादुर व्यक्ति रहते हैं और वहाँ मैंने आधुनिक सभ्यताको उसके सर्वोत्तम रूपमें देखा है और मैं यहाँ आपको, बंगालके नवयुवकों और अपने शिक्षित नेताओंको यह बता देना चाहता हूँ कि आधुनिक सभ्यताके इस सर्वोत्तम रूपका भी मुझे जो अनुभव हुआ है उसी अनुभवके आधारपर सन् १९०८ में मैं स्पष्ट रूपसे इसी निष्कर्षपर पहुँचा कि "भगवान भारतको इस आधुनिक अभिशापसे बचाये।" यह एक सबक है जो मैंने दक्षिण आफ्रिकामें सीखा है। उसपर मैं १९०८से ही चलता आ रहा हूँ। पांच वर्ष पहले भारत आनेके बादसे मैंने लगातार लोगोंको धीरे-धीरे लेकिन दृढ़ताके साथ वही सबक समझाता आ रहा हूँ। प्राचीन सभ्यतामें मेरी जो आस्था थी — हमारी सादगी-में मेरी जो श्रद्धा थी, प्रत्येक भारतीयकी धर्मनिष्ठतामें — चाहे वह भारतीय हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई हो या पारसी अथवा यहूदी — उसकी सहज धर्मनिष्ठतामें मेरा जो विश्वास था, उसीने उपहास, शंका और विरोधके अन्धकारपूर्ण दिनोंमें मुझे दृढ़ बनाये रखा है।

मैं जानता हूँ कि आज भी मुझे और आप लोगोंको बहुत जबरदस्त विरोधका सामना करना पड़ रहा है। अभी तो हमने यह संघर्ष आरम्भ ही किया है और यह सच है कि आप कलकत्ताके लोगोंने पिछले वर्ष सितम्बर माहमें[1] जो जबरदस्त संघर्ष छेड़ा है, यदि हम उसे जीतना चाहते हैं तो हमें उसी विश्वासके साथ उसे जारी रखना होगा जिस विश्वासके साथ हमने उसे आरम्भ किया है। मुझे आप लोगोंके सामने — आप जो आधुनिक परम्पराओंके बीच पले हुए प्रतीत होते हैं, आप आधुनिक लेखकोंकी रचनाओंके ज्ञानसे ओत-प्रोत जान पड़नेवाले लोगोंके सामने एक बार फिर इस बातको दोहरानेमें कोई संकोच नहीं हो रहा है कि यह एक धार्मिक लड़ाई है। मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं है कि यह आन्दोलन राजनीतिक दृष्टिकोणमें क्रान्ति लानेका, अपनी राजनीतिमें आध्यात्मिकताका समावेश करनेका एक प्रयत्न है। हम अपनी राजनीतिमें आध्यात्मिकताका जितना अधिक समावेश करेंगे, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, हम अपने लक्ष्यके उतने ही निकट पहुँचेंगे। चूँकि मैं मानता हूँ कि भारतका जन-मानस आज इसके लिए तैयार है, चूँकि मेरा विश्वास है कि भारतका जन-मानस ब्रिटिश शासनके वर्तमान स्वरूपसे तंग आ गया है, इसलिए मैंने यह कहनेकी हिम्मत की है कि स्वराज्य बहुत आसानीसे एक वर्षके भीतर प्राप्त किया जा सकता है।

इस वर्षके चार महीने बीत चुके हैं। आजकी रात बंगालके नवयुवकोंसे बातें करते हुए मेरे विश्वासकी ज्योति जितनी प्रखर हो उठी है उतनी प्रखर इससे पहले

१. जब कलकत्तामें कांग्रेसके विशेष अधिवेशनमें असहयोगके सम्बन्धमें प्रस्ताव पास किया गया।

कभी नहीं हुई। आपने मुझमें पहलेकी अपेक्षा बहुत अधिक आशा भर दी है; बहुत अधिक साहस और बलका संचार किया है। अगर ईश्वरने मुझे तथा शौकत अली और मुहम्मद अलीको जीवित रखा तो हम इसी वर्ष स्वराज्यका झंडा फहरायेंगे। लेकिन अगर ईश्वरकी यही इच्छा हुई कि इस वर्षके शेष आठ महीने समाप्त होनेसे पहले ही मेरी भस्म गंगामें प्रवाहित हो जाये तो उस हालतमें भी मैं इस विश्वासके साथ ही मरूँगा कि आप इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करके रहेंगे।

यह बात उतनी कठिन नहीं है, जितनी कठिन आप समझ रहे होंगे। कठिनाई है केवल हमारे विश्वासकी। कठिनाई इस बातमें निहित है कि हम कौंसिल भवनमें बैठकर स्वराज्यका पाठ पढ़ना चाहते हैं। कठिनाई हमारी इस धारणामें निहित है कि हम सोलह वर्षके प्रशिक्षण-कालसे गुजरे बिना स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सकते; और अगर हम इन सब बातोंमें विश्वास करते हैं तो मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि हमें स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए अभी सौ साल चाहिए। लेकिन चूँकि मुझे यकीन है कि हमें इन चीजोंकी नहीं, बल्कि विश्वास, साहस और बलकी आवश्यकता है और चूँकि मैं मानता हूँ कि जनतामें आज ये सब गुण मौजूद हैं, इसलिए मुझे विश्वास है कि स्वराज्य इसी वर्ष प्राप्त किया जा सकता है।

कांग्रेसकी अपीलका क्या मतलब है? उस अपीलका मतलब यह है कि आपके और मेरे सामने, समस्त शिक्षित भारतीयों और व्यापारी समुदायके सामने — करोड़ों कारीगरों और खेतीहरोंके इस देशमें हम जो इन वर्गोंके मुट्ठी-भर लोग हैं उनके सामने — एक कसौटी रखी गई है। विश्वास कीजिए कि कांग्रेस आपकी सहायतासे, और अगर आवश्यकता पड़ी तो आपकी सहायताके बिना भी, इस उद्धत सरकारसे भारतको विलग कर लेगी और स्वतन्त्रताका झंडा फहराकर रहेगी। सारा भारत आजके शिक्षित भारतमें ही संकेन्द्रित नहीं है। अगर भारतका समस्त शिक्षित समुदाय बराबर शंकालु ही बना रहे, उसमें आशा, विश्वास, साहस और बल न हो तो भी भारत अपनी आशाको सजीव रख सकता है। मैं इसी विश्वासपर टिका हुआ हूँ। लेकिन मुझे यकीन है कि अगर छात्र-जगत और बंगालके विद्यार्थी अपने व्रतके[1] प्रति सच्चे रहते हैं तो बंगाल और भारतके प्राध्यापक, न्यासी और शिक्षा-शास्त्री राष्ट्रके आह्वानके उत्तरमें आन्दोलनमें शामिल होंगे और उनके असन्तोषका शिशिर आशाके बसन्तमें परिणत हो जायेगा।

मैं आप बंगालके नवयुवकोंसे अनुरोध करता हूँ कि आपने जो निश्चय किया है, कुछ भी क्यों न हो जाये, उसपर दृढ़ रहें। मैं जानता हूँ कि श्री दास अपने वचनपर अटल रहेंगे। एक प्रख्यात बंगालीने[2] उन्हें १०,००० रुपये तो तत्काल देनेका वचन दिया है और वे १०,००० वार्षिक चन्देके रूपमें आगे भी देंगे। उन्हें मारवाड़ी लोगोंने — कलकत्ताके मारवाड़ी अधिवासियोंने भी कुछ वचन दिये हैं। जहाँ-

१. **अमृतबाजार पत्रिकामें** यह वाक्य इस प्रकार है "...अपने विश्वास, अपने व्रतके प्रति...।"

२. गोपालचन्द्र सिंह जिन्होंने पहले भी राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजोंकी स्थापनाके लिए एक लाख रुपये दिये थे।

तक पैसेका सवाल है, उन्हें ऐसे और भी वचन दिये जानेकी सम्भावना है, लेकिन पैसेकी दिक्कत तो कोई दिक्कत नहीं है। उन्हें कालेजकी स्थापनाके लिए उपयुक्त स्थानकी खोज करनी है। उन्हें अच्छे प्राध्यापकोंकी तलाश करनी है। मैं आप असहयोग करनेवाले विद्यार्थियोंसे अनुरोध करूँगा कि आप कालेजोंके पुराने मानदण्डको अपने सामने रखकर न चलें — वैसे ही जैसे हमारे सपनोंका यह स्वराज्य, जो चीज हमें आज प्राप्त है, उसकी तुच्छ नकल नहीं होगा। तो आप कृपया इस बातका ध्यान रखें कि राष्ट्रीय कालेजके रूपमें आपको जो चीज मिलेगी वह आजके कालेजोंकी तुच्छ नकल नहीं होगी। आप ईंट और गारेकी तरफ ध्यान नहीं देंगे। आप प्रेरणाके लिए बेंचों और कुर्सियोंकी ओर नहीं, बल्कि चरित्रकी ओर ध्यान देंगे; आप प्रेरणा पानेके लिए अपने प्राध्यापकों और अपने अध्यापकोंके सच्चे चरित्रकी ओर देखेंगे। आप आवश्यक प्रेरणा और स्फूर्तिके लिए अपने दृढ़ संकल्पपर निर्भर करेंगे और मैं आपको वचन देता हूँ कि तब आप निराश नहीं होंगे। लेकिन अगर आप यह समझते हों कि श्री दास आपके कालेजके लिए शानदार इमारतकी व्यवस्था करेंगे, अगर आप यह मानते हैं कि वे आपको आज जो आराम और सहूलियत प्राप्त है वह सारा आराम और सहूलियत देंगे तो आपको निःसन्देह निराशा ही मिलेगी।

मैं आजकी शाम, आपको एक नया सन्देश, एक बेहतर सन्देश देने आया हूँ। अगर आप इस वर्षके बारह महीनोंके भीतर स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए कृत-संकल्प हैं, अगर आप एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्त करनेमें योग देनेके लिए कटिबद्ध हैं, तो मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि मैं आपको जो सलाह देनेवाला हूँ उसे स्वीकार करके आप उन लोगोंके मार्गको प्रशस्त करें, सुगम बनायें, जिन्होंने स्वराज्य-प्राप्तिके लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया है। अगर आप समझते हैं कि आपने जिन स्कूलों और कालेजोंको छोड़ दिया है ठीक उन्हीं कालेजोंके ढंगपर अपने नये स्कूलों और कालेजोंका संचालन करके स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है तो यह आपकी भारी भूल है। दुनियाके किसी भी देशने कठिनाइयाँ और कष्ट झेले बिना, बलिदान किये बिना स्वाधीनता प्राप्त नहीं की है — नया जन्म नहीं पाया है। और बलिदान क्या है? अपनी युवावस्थामें मैंने बलिदानका असली अर्थ यह समझा कि वह हमें पवित्र बनाता है, पावन बनाता है। असहयोग शुद्धीकरणकी एक प्रक्रिया है और अगर उस शुद्धीकरणके लिए हमें सामान्य जीवन-क्रममें व्यतिक्रम लाना जरूरी हो तो वैसा करना ही होगा। अगर मैं बंगालको तनिक भी समझता हूँ तो मैं जानता हूँ कि आप पीछे नहीं हटेंगे और असहयोग आन्दोलनमें शामिल होंगे।

हमारी शिक्षा दो बातोंमें बहुत ज्यादा दोषपूर्ण रही है। जिन लोगोंने हमारी शिक्षा-संहिताकी रचना की, उन्होंने हमारे शारीरिक और आत्मिक प्रशिक्षणकी उपेक्षा कर दी। आप असहयोग करने मात्रसे आत्मिक शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं, क्योंकि असहयोगका मतलब इतना ही है, न अधिक न कम, कि यह सरकार जो बुरे काम कर रही है आप उनमें भाग लेनेसे इनकार कर रहे हैं। और अगर हम विवेकपूर्वक, सोच-समझकर बुराईसे अलग होते हैं तो इसका मतलब है, हम ईश्वरकी ओर उन्मुख

होकर चल रहे हैं। यही आत्मिक शिक्षाका आरम्भ है, यही उसका समापन। लेकिन यह देखते हुए कि हमारी शारीरिक शिक्षाकी उपेक्षा की गई है और यह देखते हुए कि भारत गुलाम इसलिए हो गया कि वह चरखेको भूल गया और उसने मामूलीसे तात्कालिक लाभके लिए अपने-आपको बेच दिया तो मुझे आप बंगालके नौजवानोंसे चरखा अपनानेकी बात कहनेमें कोई संकोच नहीं हो रहा है। अतः आपसे मेरा अनुरोध है कि आप चरखा चलानेकी शिक्षा प्राप्त करना और आपसे जितना बन सके उतना सूत तैयार करना ही परीक्षाके इस वर्षमें अपना मुख्य उद्देश्य और मुख्य प्रशिक्षण समझें। आप अपनी सामान्य शिक्षा स्वराज्यकी स्थापनाके बाद ही शुरू करें; बंगालका प्रत्येक नवयुवक और युवती अपना सारा समय और शक्ति कताईमें लगाना अपना पुनीत कर्त्तव्य माने। मैंने आपका ध्यान, गत महायुद्ध हमारे सामने जो उदाहरण पेश करता है, उसकी ओर आकृष्ट किया है।

आपमें से जिन लोगोंको इस बातकी जरा भी जानकारी होगी कि युद्धके[१] समय इंग्लैंडमें क्या हो रहा था, उन्हें स्मरण होगा कि उस समय हर लड़के और लड़कीने अपनी शिक्षा — सामान्य शिक्षा — स्थगित कर दी थी, और उन्हें ऐसे राष्ट्रीय कार्यों-पर लगाया गया था जो युद्धके लिए आवश्यक थे। उन्हें दर्जीगिरी, बिल्ले बनाने आदिके मामूली काम दिये गये थे और यहाँ भी यह किया गया था। मुझे ऐसे अनेक घरोंकी याद है, जहाँ छोटे-छोटे बच्चोंको भी कामपर लगाया गया था। जब मैंने खेड़ाके नवयुवकोंसे माता-पिताके मना करनेपर भी युद्ध-क्षेत्रमें जानेके लिए कहा था उस समय सरकारने मेरे इस कामके साथ सहानुभूति व्यक्त की थी, उसकी ओर बहुत ध्यान दिया था और उसे पसन्द किया था।[२] लेकिन समय बदल गया है, और अब इस बातके लिए मेरी भर्त्सना की जा रही है कि मैंने उन नौजवानों और युवतियोंको जिनमें सोचने-समझनेकी क्षमता है, जिनकी अन्तरात्मा जागरूक है, अपने माता-पिताके आदेशकी भी अवहेलना करके अपनी अन्तरात्माके आदेशपर चलनेकी सलाह देनेका साहस दिखाया है। मैं बंगालके युवकों और युवतियोंसे कहता हूँ कि अगर आपकी आवाज, आपकी अन्तरात्माकी आवाज आपसे यह कहती है कि परीक्षाके इस वर्षके दौरान आपको अपनी पूरी ताकत और ध्यान स्वराज्य प्राप्त करनेमें लगाना चाहिए तो आपको मेरी इस बातका यकीन हो जायेगा कि जबतक देशका हर मर्द, हर औरत और हर बच्चा सूत नहीं कातने लगेगा तबतक विदेशी कपड़े अथवा विदेशी वस्तुओंका पूर्ण बहिष्कार असम्भव है। पैंतीस वर्षके लम्बे अर्सेमें कांग्रेस मंचसे बातोंका सूत तो बहुत काता गया है। आइए, अब हम सच्चा सूत कातें, जिसकी भारतको जरूरत है। मैं आपको बता दूँ कि अगर आप भूखोंको भोजन देना चाहते हैं, नंगोंको वस्त्र पह-नाना चाहते हैं तो इस मुश्किलसे छुटकारा पानेका कोई रास्ता नहीं है — सिवाय इसके कि भारतके सब लोग चरखेको अपना लें। इसलिए मैं बंगालके नौजवानोंसे

१. प्रथम विश्व-युद्ध १९१४-१८।

२. यह बात जून १९१८ की है जब गांधीजीने प्रथम विश्व-युद्धमें ब्रिटिश सरकारकी सहायता करनेके लिए खेड़ामें रंगरूटोंका भरती-अभियान चलाया था।

कहता हूँ कि मैं आपको जो सुअवसर प्रदान कर रहा हूँ उसे हाथसे जाने न दें। अगर हम विदेशी वस्त्रोंका पूरा बहिष्कार सम्भव बना दें तो हम कॉमन्स सभामें लंकाशायरके पचपन प्रतिनिधियोंको निष्क्रिय बना देंगे और आज महत्वाकांक्षी जापान जो भारतकी ओर लोलुप दृष्टिसे देख रहा है, उसकी गतिविधियोंपर भी रोक लगा देंगे। जैसा कि कांग्रेसने बताया है, जबतक भारत अन्न और वस्त्रकी दृष्टिसे आत्मनिर्भर नहीं हो जाता तबतक आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं की जा सकती। हम और सब वस्तुओंके बिना निर्वाह कर सकते हैं, लेकिन अन्न और वस्त्रके बिना नहीं कर सकते। भारत जैसा १,९०० मील लम्बा और १,५०० मील चौड़ा विशाल देश सम्भवतया प्राचीन साधनों-को अपनाये बिना आत्मनिर्भर नहीं हो सकता। ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासनकालमें बंगालने और सारे भारतने जो-कुछ किया, अगर आप उसके लिए प्रायश्चित्त करना चाहते हों तो भी आपके पास इसके अलावा और कोई उपचार नहीं है, उस प्राय-श्चित्तका इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं कि आप उन श्रेष्ठ कला-कौशलोंका पुन-रुद्धार करें और भारतके लिए पर्याप्त सूतका उत्पादन करें, ताकि कपड़ों और वस्त्रोंके मूल्य गिर जायें और भारतको अपनी खास जरूरतें पूरी करनेके लिए विदेशियोंपर निर्भर न करना पड़े।

तो, बंगालके नौजवानो, अगर आप एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्तिके लिए उद्यम करना चाहते हैं, तो आप उस व्यक्तिकी सलाह मानिए जिसने अनेक प्रयोग किये हैं, जिसके सम्मुख यह सिद्धान्त १९०८ में ही स्पष्ट हो गया था[1], और जो अभीतक इससे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुआ है। भारतकी आर्थिक समस्याका मैंने जितना ज्यादा अध्ययन किया, भारतके मिल-मालिकोंकी जितनी ज्यादा बातें सुनी, उनसे मेरा यह विश्वास उतना ही ज्यादा पक्का होता गया कि जबतक हम भारतके घर-घरमें चरखेका चलन शुरू नहीं करवा देते तबतक उसे आर्थिक मुक्ति और स्वतन्त्रता मिलना असम्भव है। आप चाहे किसी भी मिल-मालिकके पास चले जायें, वह आपको यही बतायेगा कि जहाँतक कपड़ेकी आवश्यकताकी पूर्तिका सवाल है, भारत अगर सिर्फ अपनी मिलोंके सहारे आत्म-निर्भर बनना चाहता है तो इस स्थितिको प्राप्त करनेमें उसे पचास वर्ष और लगेंगे। इस सम्बन्धमें आपको पूरी जानकारी दे देनेके खयालसे मैं इतना और कहना चाहूँगा कि आज भी सैकड़ों-हजारों बुनकर बुनाईका काम कर रहे हैं। वे घरेलू सूतसे कपड़ा बुन सकते हैं, लेकिन उन्हें विदेशी सूतपर निर्भर करना पड़ता है, क्योंकि देशी मिलें उनकी सूतकी माँग पूरी नही कर सकतीं। अत: कालेज छोड़ देनेवाले बंगालके नौजवान मित्रोंसे मेरा अनुरोध है कि आप उम्मीद और हिम्मतके साथ आगे बढ़ें और कमसे-कम स्वराज्य-प्राप्ति होनेतक के लिए इस उपेक्षित हस्त-कलाको अपना लें। इस लक्ष्यको प्राप्त कर लेनेके बाद ही आप और किसी बातके सम्बन्धमें सोचें।

मैंने एक और बात सुझाई है। मैंने और आपने, बल्कि हम सभीने उस सच्ची शिक्षाकी उपेक्षा कर दी है जो हमें राष्ट्रीय स्कूलोंमें प्राप्त हो सकती थी। बंगा-

१. दक्षिण आफ्रिकामें।

लके नवयुवकोंके लिए, गुजरातके नवयुवकोंके लिए, दक्षिण भारतके नवयुवकोंके लिए मध्यप्रान्त और संयुक्तप्रान्त तथा भारतके उस विशाल भूखण्डमें जाना — जहाँ सिर्फ हिन्दुस्तानी ही बोली जाती है — आज असम्भव-सा है, और इसीलिए मैं आपसे अनुरोध करता हू कि अवकाशके समय कताईके बाद आप जितना समय बचा सकें उस समय में हिन्दुस्तानी भी सीखें। अगर आप लगनसे उसे सीखें तो आप दो महीनेमें कताई और हिन्दुस्तानी, दोनोंको साध लेंगे। मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि कोई भी कुशाग्र बुद्धि और सुशील नौजवान, कोई भी देशभक्त और परिश्रमी युवक ये दोनों चीजें दो महीनेमें ही सीख ले सकता है। उसके बाद आप बेहिचक अपने गाँवोंमें जा सकते हैं, मद्रासके अलावा भारतके किसी भी भागमें जा सकते हैं और जन-साधारणसे अपनी बात कह सकते हैं। एक क्षणके लिए भी यह न सोचें कि आप अंग्रेजीको जन-साधारणके बीच अभिव्यक्तिका सामान्य माध्यम बना सकेंगे। बाईस करोड़ भारतीय हिन्दुस्तानी जानते हैं — उन्हें और कोई भाषा नहीं आती। अगर आप बाईस करोड़ भारतीयोंके दिलोंमें पैठ जाना चाहते हैं तो आपके लिए हिन्दुस्तानी ही एकमात्र भाषा है। अगर आप इस वर्ष, नौ महीनेके इस अर्सेमें सिर्फ ये दो काम ही करें तो यकीन मानिए कि ये काम पूरा करनेतक आपमें एक ऐसा साहस और बल आ जायेगा जो आज आपके पास नहीं है। मैं ऐसे हजारों विद्यार्थियोंको जानता हूँ, जिनसे अगर यह कहा जाता है कि आपको सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती तो उनकी आँखोंके आगे अँधेरा छा जाता है। अगर आप इस बातके लिए तुले हुए हैं कि या तो इस सरकारको खतम कर देंगे या फिर इसको सही रास्तेपर लायेंगे तो आप सरकारी नौकरियोंकी कामना किस तरह कर सकते हैं? अगर आप सरकारका सहारा नहीं चाहते तो आपका अंग्रेजीका ज्ञान किस कामका है? मैं अंग्रेजी भाषाके साहित्यिक मूल्यको कम नहीं आँकना चाहता। मैं अंग्रेजी पुस्तकोंमें जो विशाल भण्डार छिपा पड़ा है, उसके महत्वको कम नहीं आँकना चाहता। मैं आपसे यह भी नहीं कहना चाहता कि हमने अंग्रेजी भाषाके महत्वको बहुत बढ़ाकर आँका है, लेकिन मैं आपसे यह अवश्य कहूँगा कि स्वराज्यकी अर्थव्यवस्थामें अंग्रेजीके लिए बहुत कम गुंजाइश है।

स्वराज्य प्राप्तिके लिए आपको अपने अंग्रेजी शब्दोंके ज्ञानमें वृद्धि करनेकी जरूरत नहीं है, और इसलिए मैंने गुजरातके युवकोंको सुझाव दिया है कि वे इन नौ अथवा बारह महीनोंके लिए अंग्रेजी साहित्यके अध्ययनको स्थगित कर दें तथा अपने समय और अवकाशको चरखा चलाने और हिन्दुस्तानी सीखनेमें लगायें, और उसके बाद अपने-आपको भारतकी खिदमतमें हाजिर कर दें तथा जिस राष्ट्रीय सेवाका संगठन किया जाये, उसमें शामिल हो जायें। जबतक भारतमें फैले हुए साढ़े सात लाख गाँवोंके लिए हम कार्यकर्त्ताओंकी एक सेना तैयार नहीं कर लेते तबतक कांग्रेसने हमें जो महान् संविधान दिया है, उसे हम चरितार्थ नहीं कर सकते। अगर हम भारतके हर गाँवमें एक प्रतिद्वंद्वी संस्थाकी स्थापना करना चाहते हैं, अगर हम चाहते हैं कि भारतके हर गाँवमें कांग्रेसका एक प्रतिनिधि हो तो जबतक भारतके नौजवान अपनी मातृभूमिकी पुकारको नहीं सुनते तबतक हम ऐसा नहीं कर सकते। यह आपका सौभाग्य है कि

आज आपको यह सब करनेका अवसर प्राप्त हुआ है। आज बंगालके और अन्य हिस्सोंके नौजवानोंका आह्वान किया गया है। मुझे आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि भारतके सभी नौजवान लड़के और लड़कियाँ इस पवित्र आह्वानका अनुकूल उत्तर देनेके लिए आगे आयेंगे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस सालकी समाप्तिसे पूर्व ही वह अवसर आ जायेगा जब आपको जिस दिन आपने ये दोनों काम शुरू किये उस दिन-के लिए पछताना नहीं पड़ेगा। इस अध्यायके अन्तमें आप देखेंगे कि आज रात मैं आपसे जो-कुछ कह रहा हूँ वह सब सच निकला; आपने भारतके सम्मानकी रक्षा कर ली है, इस्लामकी प्रतिष्ठा बचा ली है, सारे राष्ट्रका सम्मान कायम रखा है और स्वराज्य प्राप्त कर लिया है। भगवान बंगालके युवकों और युवतियोंको आवश्यक साहस, आवश्यक आशा और आवश्यक विश्वास दे ताकि आप आत्मशुद्धि और बलिदानके इस पुनीत परीक्षा-कालमें कसौटीपर खरे उतरें। भगवानसे मेरी कामना है कि वह आपकी सहायता करे।[१]

इस भाषणके बाद जब गांधीजीसे चिकित्सा-शास्त्रके विद्यार्थियोंसे विशेष रूपसे कुछ कहनेके लिए कहा गया तो उन्होंने आगे कहा:

एक और चीज है, जिसकी मैंने जान-बूझकर चर्चा नहीं की। वह चीज मेरे मनमें तो थी, लेकिन चूँकि मैंने कताई और हिन्दुस्तानी सीखनेकी आवश्यकता तथा कालेजकी पढ़ाई छोड़ देनेके बाद आपको क्या करना चाहिए — इन सब बातोंमें आपका बहुत ज्यादा समय ले लिया था, इसलिए मैंने जान-बूझकर चिकित्सा-शास्त्रके विद्यार्थियोंकी कठिनाईका जिक्र नहीं किया। यदि वे अपनी विलक्षण बुद्धि और कल्पना-शक्तिसे काम लें तो, मैंने विद्यार्थी समुदायसे आम तौर पर जो-कुछ कहा है, उससे वे आसानीसे समझ जायेंगे कि जो बातें आर्ट्स कालेजों और अन्य कालेजोंके विद्यार्थियोंपर लागू होती हैं, वे बातें चिकित्सा-शास्त्रके विद्यार्थियोंपर भी लागू होती हैं, बल्कि उनपर शायद ज्यादा ही लागू होती हैं। वे भारतके बहते घावोंको भरना चाहते हैं, वे रोग-ग्रस्त भारतको उसके रोगोंसे मुक्ति दिलाना चाहते हैं; और मेरी समझमें तो पंजाबको जो घाव लगा है वही भारतके शरीरपर लगा सबसे बड़ा घाव है। वह आज जिस असहायावस्थामें पड़ा हुआ है, परतन्त्रता और दासतामें जकड़ा हुआ है, वही उसका सबसे बड़ा रोग है। इसलिए अगर चिकित्सा-शास्त्रके विद्यार्थी अपने भावी धन्धेके प्रति ईमानदार हैं तो वे बेहिचक इस आह्वानका अनुकूल उत्तर देंगे। वे नंगोंके लिए कपड़े जुटाने और भारतको उसके अपमान, अवमानना और असहायावस्थासे मुक्त करानेके मानवीयतापूर्ण कार्यका भार अपने कंधोंपर उठा लेनेमें तनिक भी आगापीछा नहीं करेंगे। उनके लिए इससे कोई अच्छा काम हो ही नहीं सकता। किसी भी भारतीयके लिए — चाहे वह कितना भी कुलीन और प्रतिष्ठित हो, चाहे वह कितना भी विद्वान्, शक्तिशाली और वैभव-सम्पन्न हो — स्वराज्य प्राप्तिसे बढ़कर, भारत आज वर्षोंसे जिस भयंकर रोगसे पीड़ित है उससे उसे मुक्ति दिलानेसे बढ़कर कोई

१. **यंग इंडिया**में प्रकाशित रिपोर्ट यहीं समाप्त हो जाती है। आगेका अंश **अमृतबाजार पत्रिका**से लिया गया है।

और काम हो ही नहीं सकता। अतः मैं चिकित्सा-शास्त्रके सभी विद्यार्थियोंसे, कालेजोंमें पढ़नेवाले अन्य सारे विद्यार्थियोंसे तथा सोलह सालसे अधिक उम्रके सभी स्कूली विद्यार्थियोंसे भी कहता हूँ कि वे बिना किसी हिचकिचाहटके तत्काल ही अपने-अपने स्कूलों और कालेजोंको छोड़ दें और इस तरह, उनपर जो सर्वोपरि कर्त्तव्य आ पड़ा है, उसे पूरा करें। लेकिन मेरी सलाह मानने-न-माननेकी आपको छूट तो है ही। आपको नये कालेज, नये स्कूल और नये मेडिकल-कालेज, या आप जो भी चाहें, स्थापित करनेकी भी छूट रहेगी। लेकिन अगर आप मेरी सलाह मानेंगे तो आप समझ जायेंगे कि जबतक आप अपना सारा समय स्वराज्य-प्राप्तिमें नहीं लगाते और इस कामको हर तरहसे आसान बनानेका प्रयत्न नहीं करते तबतक यह नहीं माना जायेगा कि आपने सच्चे और बहादुर लोगोंकी तरह अपना काम पूरा किया है।

अगर मैं मेडिकल कालेजों अथवा किसी अन्य संस्थासे सम्बन्धित किसी बातकी चर्चा न कर पाया होऊँ और आप अगर मेरे मुँहसे उसका समाधान चाहते हों तो मैं ऐसे प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए तैयार हूँ, लेकिन मैं आपसे कहूँगा कि सवालोंके जवाब देते-देते, भाषण देते-देते, लोगोंसे आरजू-मिन्नत करते-करते मैं ऊब गया हूँ। मैं तो इन सबकी बनिस्वत यही ज्यादा पसन्द करूँगा कि मैं मूक हो जाऊँ और आपको आपकी समझ, आपकी अन्तरात्माके भरोसे छोड़ दूँ। आज ही मैं एक पत्रलेखकको उत्तर दे रहा था, जिसने 'नवजीवन' को लिखा था कि "अगर आप कहते हैं, अगर आप समझते हैं कि अन्तरात्मा सर्वोपरि है तो फिर आप हमसे बहस करनेमें इतना सारा समय क्यों नष्ट करते हैं? आप हमें अपनी समझके भरोसे ही क्यों नहीं छोड़ देते?" एक तरहसे उसकी यह फटकार सही थी। लेकिन मेरे दिलमें जो आग जल रही है, उसे मैं अच्छी तरहसे जानता हूँ। इस आगकी गर्मी अगर मैं आपतक ठीक तरहसे नही पहुँचा सका तो यह न आपके साथ ईमानदारी होगी और न स्वयं मेरे अपने साथ। इसलिए मेरे अन्तरमें आशा और साहसका जो दीप जल रहा है, उसका प्रकाश आपको देनेके लिए मैं भारतके एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरेतक घूम रहा हूँ। विश्वास कीजिए, अगर मुझे अकेले ही छोड़ दिया जाये तो आप मुझे अपनी शक्ति-भर सूत कातने और दत्तचित्त होकर हिन्दुस्तानीकी पुस्तकोंको पढ़ते हुए ही पायेंगे। मैं जानता हूँ कि मैं हिन्दुस्तानी बोल लेता हूँ लेकिन मैं अपनी सीमाओंसे भी अवगत हूँ और मैं जानता हूँ कि इन सीमाओंके कारण मुझे कितनी कठिनाईका सामना करना पड़ रहा है। मुझे हिन्दुस्तानीके साहित्यकी उतनी अच्छी जानकारी नहीं है जितनी अंग्रेजी साहित्यकी है।

इसलिए मेरे नौजवान दोस्तो, मैं आपसे कहूँगा कि आप अपना सारा सन्देह, सारा भय और सारी शंका बंगालकी खाड़ीमें विसर्जित कर दें और एक नई आशा, नई उमंगके साथ उठ खड़े हों — ऐसी आशाके साथ जिसका फल मिले बिना नहीं रहेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २–२–१९२१

अमृतबाजार पत्रिका, २५–१–१९२१

१३६. भाषण : महिलाओंकी सभा, कलकत्तामें[1]

२५ जनवरी, १९२१

श्री गांधीने अपने भाषणके दौरान सबसे पहले ब्रिटिश सरकारकी रावण-राज्यसे तुलना की, जिसमें दुष्ट सुखी और सज्जन दुखी रहते थे। उन्होंने आगे कहा कि वर्तमान सरकारने पापका राज्य कायम कर रखा है। जिस तरह रामका जन्म रावणके पाप-राज्यका अन्त करनेके लिए हुआ था, वर्तमान असहयोग आन्दोलनसे भी उसी उद्देश्यकी पूर्ति हो सकती है। महात्माजीने भारतकी माताओं और बेटियोंको सलाह दी कि उन्हें अपने पुत्रों और भाइयोंको सरकारी स्कूलों और कालेजोंसे हटा लेना चाहिए, क्योंकि वहाँ शिक्षाका अर्थ मानसिक गुलामीके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

समाजके सभी वर्गोंमें व्याप्त विलासिताकी चर्चा करते हुए श्री गांधीने उसे त्याग देनेका अनुरोध किया। उन्होंने कहा कि आपने जो कपड़े पहन रखे हैं वे पवित्र नहीं हैं। अपने-अपने देवी-देवताओंकी पूजा करनेके लिए तो आप पवित्र वस्त्र ही पहनते हैं। उसी तरह आज जब कि आप देशके हितके लिए एक पवित्र लड़ाईमें जुटे हुए हैं, आपको पवित्र वस्त्र, यानी हाथसे कते और बुने कपड़े ही पहनने चाहिए।

श्री गांधीने आगे कहा कि हर घरमें एक चरखा होना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि दो-तीन महीनेके भीतर बंगालके घर-घरमें चरखा होगा। उन्होंने श्रोताओंको अपनी बात समझानेके लिए विद्यासागरके[2] परिवारका उदाहरण दिया, जिसके सभी सदस्य सूत कातते थे।

इसके बाद श्री गांधीने अपनी चादर फैला दी और महिलाओंसे कहा कि मैं चाहता हूँ, आपको जो चीज सबसे प्यारी हो, वही आप भेंट करें। उन्होंने कहा, मुझे पैसा नहीं चाहिए, मुझे तो आपके त्यागकी जरूरत है। इसपर पूरी सभामें कानाफूसी होने लगी, जिसपर श्री गांधीने कहा कि मुझे आपकी ऐसी कोई भी चीज नहीं चाहिए जिसे देनेमें आपको बहुत सोच-विचार करना पड़े। बल्कि आप जो-कुछ भी दें, वह अपनी खुशीसे दें। इसपर सब ओरसे उपहारोंकी वर्षा-सी होने लगी, जिससे श्री गांधीकी चादर भर गई।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २८-१-१९२१

१. यह सभा चित्तरंजन दासके निवास-स्थानपर हुई थी; इसकी अध्यक्षता गांधीजीने की थी।

२. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०-१९०१); बंगालके सुप्रसिद्ध विद्वान् और समाज-सुधारक।

१३७. टिप्पणियाँ

शिक्षा या आबकारी

पंजाबमें प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी श्री दौलतराम गुप्तके जिन ज्ञानवर्धक लेखोंको[1] हमने समय-समय पर छापा है, उनमें उन्होंने तथ्यों और आँकड़ोंकी मददसे यह दिखाया है कि जबसे वह सूबा अंग्रेजोंके आधिपत्यमें आया, तबसे वहाँकी शिक्षा कितनी पिछड़ गई है। इसमें तो कोई शक नहीं कि वहाँके ब्रिटिश गवर्नरों और अंग्रेज हाकिमोंकी लोगोंको सभ्य बनानेकी कोशिश शिक्षण संस्थाओंके लिए नुकसानदेह ही हुई है। वहाँके स्कूल शिक्षक और विद्यार्थी सभीको अंग्रेज प्रशासकके हाथों घोर हानि भुगतनी पड़ी है।

लेकिन अगर पंजाबमें शिक्षाकी प्रगति वहाँके हाकिमोंके लिए जहरके घूंट-जैसी थी तो शराबकी तिजारतमें होनेवाली वृद्धि शहद-जैसी मीठी थी। वहाँके नौजवान हाकिमों-के आगे दो लक्ष्य निर्धारित कर दिये गये थे: शिक्षाका गला घोंटो और आबकारीकी आमदनीको बढ़ाओ। पंजाबकी १९१९–२० की आबकारी रिपोर्टको देखनेसे पता चलता है कि वहाँकी आबकारीकी आमदनीमें कितनी बेहिसाब बढ़ती हुई। उस साल २५ लाख रुपयेकी बढ़ोतरी हुई और इससे कुल आमदनी १ करोड़ ३० लाख हो गई। सरकारकी इस आबकारी-नीतिके नतीजे जनताके लिए कई तरहसे घातक सिद्ध हुए हैं। आगेके अंकोंमें हमारा विचार इस नीतिका भंडाफोड़ करने और साथ ही सरकारी आँकड़ोंके आधारपर यह दिखानेका भी है कि सरकारकी आबकारी नीति किस तरह बाकायदा शराबखोरीको बढ़ावा देती है। हमारे पाठक यह जानकर भौंचक्के रह जायेंगे कि कुछ प्रान्तोंमें शिक्षा-प्रसारकी सुविधाओंके मुकाबले शराब पीनेकी ज्यादा सुविधाएँ दी गई हैं।

धार्मिक निष्पक्षता

सरकारकी कपोल-कल्पित धार्मिक तटस्थताके बारेमें श्री फॉयके वक्तव्यका[2] अपने कुछ नाराजी-भरे पत्रमें जवाब देते हुए श्री सीतारामने उनकी बात माननेसे इनकार किया है। वे कहते हैं:

सरकारसे अच्छी खासी मदद लेनेवाली शिक्षण संस्थाएँ लाजिमी तौरपर 'बाइ-बिल' पढ़ाती हैं। हिन्दू, मुसलमान और पारसियों द्वारा दिये जानेवाले करोंमें से काफी पैसेका लाभ देश-भरमें फैली ईसाई संस्थाएँ उठाती हैं।

यह, और ऐसे ही दूसरे बहुत-से उदाहरण देकर बताया जा सकता है कि विभिन्न धर्मोंके प्रति अपने व्यवहारमें भारतकी सरकार निश्चय ही सन्देहसे परे नहीं है।

१. दौलतराम गुप्त द्वारा लिखे ये लेख **यंग इंडिया**के ८ दिसम्बर, १९२० से २६ जनवरी, १९२१ तकके अंकोंमें छपे थे।

२. श्री फॉयके पत्रपर गांधीजीकी टिप्पणीके लिए देखिए "टिप्पणियाँ", १२–१–१९२१।

अपने पत्र-लेखकोंसे

श्री सीतारामके पत्रके बारेमें लिखते हुए मैं अपने अन्य पत्र-लेखकोंसे भी दो शब्द कहना चाहता हूँ। इन पत्र-लेखकोंमें दो तरहके लोग शामिल हैं — एक तो वे जो मुझे एक पत्रकारके नाते पत्र लिखते हैं और दूसरे वे जो मुझसे सलाह लेनेके लिए पत्र लिखते हैं। पत्र-व्यवहार इतना अधिक बढ़ गया है कि उसे निपटाना मेरे अकेलेके बूते-के बाहर है। यह सही है कि इस काममें और भी कई लोग मेरी मदद करते हैं, लेकिन हम सब मिलकर इतने सारे पत्रोंको निपटा नहीं पाते। इसलिए अगर पत्र-लेखकोंको जवाब न मिले तो वे यह न समझें कि जवाब देनेका मेरा मन्शा नहीं है; वे यही समझें कि हरएकको अलग-अलग जवाब देना मेरे बसका नहीं है। लेकिन साथ ही प्रत्येक पत्रकी पहुँच देनेकी हर चन्द कोशिश की जा रही है। कहनेकी जरूरत नहीं कि हरएक पत्र-लेखकके लिए व्यक्तिगत रूपसे ध्यान देना मेरे लिए गैरमुमकिन ही है। साथ ही मैं यह भी बता देना चाहूँगा कि मुश्किलसे पढ़ी जा सकनेवाली घसीट-लिपिमें लिखे लम्बे खर्रोंके मुकाबले मुद्देकी बात कहनेवाले, संक्षिप्त और साफ अक्षरोंमें लिखे पत्रोंपर जल्दी ध्यान दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६–१–१९२१

१३८. हिन्द स्वराज्य[1]

यह बेशक मेरे लिए सौभाग्यकी बात है कि मेरी इस छोटी-सी किताबकी ओर बहुत अधिक लोगोंका ध्यान गया है। मूल किताब गुजरातीमें है। इसकी जिन्दगीमें बहुत-से उतार-चढ़ाव आये हैं। सबसे पहले यह दक्षिण आफ्रिकाके 'इंडियन ओपिनियन' अखबारमें छपी थी। १९०८ में[2] जब मैं लन्दनसे दक्षिण आफ्रिका लौट रहा था, उस समय समुद्रीयात्राके दौरान भारतीय आतंकवादी विचारधारा और उससे मिलती-जुलती विचारधारा रखनेवाले दक्षिण आफ्रिकाके लोगोंके जवाबमें मैंने इसे लिखा था। लन्दनमें मुझे हर जाने-पहचाने भारतीय आतंकवादीके सम्पर्कमें आनेका मौका मिला था। उनकी बहादुरीने मुझे प्रभावित किया, लेकिन मैंने उनके जोशको गुमराह पाया। मैंने महसूस किया कि भारतकी मुसीबतोंका इलाज हिंसा नहीं है; और भारतीय सभ्यताको आत्म-रक्षाके लिए दूसरी तरहके और ज्यादा ऊँचे किस्मके हथियारकी जरूरत है। दक्षिण आफ्रिकाका सत्याग्रह उस समय महज दो सालका एक नन्हा बच्चा ही था। लेकिन फिर भी वह इतना विकसित हो चुका था कि मैं उसके बारेमें काफी आत्म-विश्वास के साथ लिख सकता था। उसकी इतनी सराहना की गई कि बादमें उसे पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित किया गया। भारतमें भी लोगोंका ध्यान उसकी ओर गया। बम्बई

१. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६–६९।

२. १९०९ में।

सरकारने उसपर पाबन्दी लगा दी।[1] इसके जवाबमें मैंने उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। मैंने सोचा कि इस पुस्तकके विषयकी जानकारी अपने अंग्रेज मित्रोंको कराना मेरा कर्तव्य है। मेरी रायमें यह एक ऐसी पुस्तक है जिसे बच्चेके हाथमें भी दिया जा सकता है। यह नफरतके बदले प्यारका पाठ सिखाती है। यह हिंसापर आत्मबलिदान-को तरजीह देती है। यह पशुबलपर आत्म-बलसे विजय पानेका रास्ता दिखाती है। इसके कई संस्करण हुए हैं और जो पढ़ सकते हैं उन सभीको मैं इसे पढ़नेकी सलाह देता हूँ। मैंने सिवाय एक शब्दके इसमें से कुछ भी कम नहीं किया है और वह शब्द भी एक महिला मित्रके लिहाजके कारण काटा गया है। भारतीय संस्करणकी भूमिकामें मैंने इस रद्दोबदलका कारण बता दिया है।

यह पुस्तिका "आधुनिक सभ्यता" की कड़ी भर्त्सना करती है। यह १९०८ में लिखी गई थी। आज मेरी आस्था और मेरा विश्वास पहलेसे गहरा ही हुआ है। मैं महसूस करता हूँ कि अगर भारत आधुनिक सभ्यताका परित्याग कर दे तो वह सुखी ही होगा।

लेकिन साथ ही मैं पाठकोंको सावधान भी करना चाहूँगा कि कहीं वे यह न सोचने लगें कि इस पुस्तिकामें वर्णित स्वराज्यकी स्थापना करना ही आज मेरा ध्येय है। मैं जानता हूँ कि अभी भारत उसके लिए तैयार नहीं हुआ है। इसे अविनय समझा जा सकता है, लेकिन मेरा ऐसा ही विश्वास है। इसमें जिस स्वशासनकी बात कही गई है, व्यक्तिगत रूपसे तो मैं उसीके लिए काम कर रहा हूँ। परन्तु आज मैं जो संघबद्ध कार्य कर रहा हूँ वह भारतीय जनताकी आकांक्षाओंके अनुरूप संसदीय ढंगका स्वराज्य प्राप्त करनेकी दृष्टिसे कर रहा हूँ। मैं रेलों और अस्पतालोंको खतम करनेका प्रयत्न नहीं कर रहा हूँ; वैसे यदि ये कुदरती तौरपर नष्ट हो जायें तो मैं उसका स्वागत ही करूँगा। न तो रेलें और न अस्पताल ही ऊँची और पवित्र सभ्यता-की कसौटी हैं। ज्यादासे-ज्यादा हम उन्हें एक जरूरी बुराई ही मान सकते हैं। किसी राष्ट्रके नैतिक मानको तो वे एक इंच भी नहीं बढ़ाते। न मेरा मकसद अदालतोंको स्थायी रूपसे खत्म कर देना ही है; हालाँकि मैं मानता हूँ कि यह एक ऐसी बात है, सभीको जिसके खत्म हो जानेकी कामना करनी चाहिए।" सारी मशीनों और मिलोंको खत्म करनेकी कोशिश तो मैं और भी कम कर रहा हूँ। इसके लिए, लोग आज जितने तैयार हैं, उससे कहीं ऊँचे दर्जेकी सादगी और त्यागकी जरूरत है।

इस समय तो कार्यक्रमका केवल अहिंसावाला अंश ही पूराका-पूरा कार्यान्वित किया जा रहा है। लेकिन मुझे दुःखके साथ यह कहना पड़ता है कि पुस्तककी भावनाके अनुसार तो उसका भी पालन नहीं हो रहा है। अगर होता तो सिर्फ एक ही दिनमें भारतमें स्वराज्य कायम हो जाता। भारत यदि प्रेमके सिद्धान्तको सक्रिय रूपसे अपना ले और राजनीतिमें उसपर अमल करे तो स्वराज्य उसे ईश्वरके आशी-र्वादके रूपमें सहज ही प्राप्त हो जायेगा। लेकिन मुझे बहुत दुःखके साथ स्वीकार करना पड़ता है कि अभी वह शुभ घड़ी बहुत दूर है।

१. मार्च १९१० में।

मैं ये बातें इसलिए कह रहा हूँ कि वर्तमान आन्दोलनको बदनाम करनेके लिए इस पुस्तिकामें से इधर काफी उद्धरण दिये जा रहे हैं।[1] मैंने ऐसे भी लेख देखे हैं जिनमें यह कहा गया है कि मैं कोई गहरी चाल चल रहा हूँ, भारतपर अपनी सनक व खामखयालियाँ थोपनेके लिए मौजूदा अशान्तिका लाभ उठा रहा हूँ और भारतको नुकसान पहुँचाकर धार्मिक प्रयोग और परीक्षण कर रहा हूँ। इस सबके जवाबमें मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि सत्याग्रह एक बहुत ही ठोस और खरी वस्तु है। उसमें छिपाने और गुप्त-जैसा कुछ भी नहीं होता। जीवनके जिस पूरे सिद्धान्तका 'हिन्द स्वराज्य' में वर्णन किया गया है, उसके एक अंशपर आज केवल आचरण किया जा रहा है। अगर समूचेपर आचरण किया जाये तो उससे भी कोई खतरा नहीं है। ऐसी सूरतमें मेरे लेखोंसे ऐसे अंश उद्धृत करके, जिनका देशके मौजूदा मसलेसे कोई भी ताल्लुक नहीं, लोगोंको डराना उचित नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-१-१९२१

१३९. पत्र : लेवेटसको

१४८, रसा रोड
[कलकत्ता]
२६ जनवरी, १९२१

प्रिय श्री लेवेटस,

आपने सरकारकी विनिमय नीतिपर कांग्रेसके प्रस्तावकी[2] व्याख्याके बारेमें जिज्ञासा की है; मेरे विचारसे इसकी आड़ लेकर किसीको अपने उत्तरदायित्वसे बचनेका अधिकार नहीं है। हाँ, इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रस्तावमें व्यापारियों आदिसे कहा गया है कि अगर वे अपने ठेके वगैरह विनिमयकी वर्त्तमान दरपर पूरा करनेसे इनकार कर देंगे तो प्रस्तावकी प्रस्तावनामें बताये गये कारणोंके आधारपर वह उचित ही होगा। लेकिन जो लोग बिलोंकी मीयाद पूरी हो जानेपर पैसे नहीं चुका पाये हों, वे इस प्रस्तावकी बिनापर सामान्य ढंगसे ऐसे बिलोंके पैसे चुकानेसे इनकार नहीं कर सकते। आप कहते हैं, यह प्रस्ताव असहयोगकी नीतिके पीछे जो नैतिक सिद्धान्त है, उसके खिलाफ है। लेकिन मैं आपको बता चुका हूँ कि अगर प्रस्तावनामें कही गई बातें सही हैं तो मेरे विचारसे इस मामलेमें कहीं भी नैतिकताका त्याग नहीं किया गया है। आप देखेंगे कि कांग्रेसने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको इस प्रस्तावपर अमल करानेके लिए एक समिति नियुक्त करनेका आदेश दिया है। मेरी सलाह है कि आप पूरा मामला तैयार करके समितिके सामने पेश कर दीजिए। मैं मानता हूँ कि अगर

१. उदाहरणार्थ लॉर्ड रोनाल्डशेका लेख; देखिए "टिप्पणियाँ", ८-१२-१९२०।

२. यह प्रस्ताव १९२० की नागपुर कांग्रेसमें पास किया गया था।

प्रस्तावनामें सचमुच खामियाँ दिखा दी गईं या अगर इस प्रस्तावको अन्य किसी प्रकारसे नैतिक रूपसे दोषपूर्ण सिद्ध कर दिया गया तो समिति उन दलीलोंके अनुसार उचित कार्रवाई अवश्य करेगी।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७४४२) की फोटो नकलसे।

१४०. भाषण : कलकत्तामें व्यापारियोंकी सभामें

२६ जनवरी, १९२१

भाइयो,

आप सब जानते हैं कि मैं कुर्सीपर बैठकर बोलता हूँ। मुझे इसमें शर्म महसूस होती है। मैं कुर्सीपर बैठना तो बिलकुल नहीं चाहता; लेकिन मजबूरी है। मुझे तो नौ महीनेमें स्वराज्य लेना है इसलिए मैं यह सब[1] नहीं चाहता। लोग मेरा सड़कोंपर गुजरना मुश्किल कर देते हैं।[2] मैं जानता हूँ कि लोग मुझे बहुत अधिक प्यार करते हैं; लेकिन बने तो मैं उन्हें [ऐसे प्रदर्शनसे] रोकना चाहता हूँ। इस सभा-भवनके बाहर जो अपार भीड़ है, उसके कारण कोई कामकाज करना सम्भव नहीं लगता। मेरा आधा घंटा बरबाद हो गया। अच्छा इन्तजाम नहीं किया गया, यही इसका कारण है। ऐसा नहीं होना चाहिए। जब मालूम है कि बहुत लोग आयेंगे तो उनके लिए भी इन्तजाम किया ही जाना था। कामका नुकसान नहीं होना चाहिए; रास्ते बन्द नहीं होने चाहिए और ट्रामें आदि नहीं रुकनी चाहिए। इस तरह लोगोंका समय बरबाद नहीं होना चाहिए। एक हजार आदमी सभा-भवनमें हैं और एक हजार बाहर। लोगोंके दो हजार घंटे आज बरबाद हो गये। मैं चाहता हूँ कि हिन्दी और उर्दूके अखबार भी [इस बातको] छापें कि पैर छूना बुरा है। मेरी प्रार्थना है कि वे मेरे पैर न छुएँ। मुझे शोरगुलसे भी बड़ी परेशानी होती है। मेरी तबीयत अच्छी नहीं है। मुझसे "वन्देमातरम्", "महात्मा गांधीकी जय" के नारे सहन नहीं होते। यदि इन नारोंसे हमारा सच्चा भाव प्रकट नहीं होता है तो ये बेकार हैं। मेरे कहनेका मतलब यह है कि लोग जो-कुछ कहते हैं उसे कार्यरूपमें परिणत नहीं करते। मैं भी अपना बनिया-धर्म छोड़कर क्षत्रिय बन गया हूँ। यदि मैं क्षत्रिय न बना होता तो अपनी भावना रो-रोकर प्रकट करता। आप लोग मेरे पैर छुयें, निश्चय ही मुझे इस बातकी लालसा नहीं है। जब मेरी ऐसी इच्छा होगी तब मैं साफ-साफ कह दूँगा और यह तभी हो सकता है जब मेरा उद्देश्य पूरा हो जाये। आज तो मुझे अपनी प्रतिष्ठापर आँच आती दिखाई देती है— फिर भी ९ महीनोंमें स्वराज्य प्राप्त करना है। आप

१. शायद गांधीजीका अभिप्राय जयके नारों और भीड़के अननुशासित प्रेम-प्रदर्शनसे है।

२. जिस भवनमें यह सभा हो रही थी उसके सामने इतनी भीड़ थी कि वहाँ पहुँचनेपर गांधीजी करीब पौन घंटेके बाद पीछेके दरवाजेसे भीतर लाये जा सके।

सब लोग एक हो जायें और मुझे इसमें सहायता पहुँचायें। "वन्देमातरम्", "हिन्दू-मुस्लिम जिन्दाबाद", 'अल्लाहो-अकबर" आदि नारोंकी जरूरत नहीं है। मैं जो-कुछ करना चाहता हूँ वह मैं जरूर ही करके छोड़ूँगा। मैं स्वराज्य अवश्य लूँगा। यदि इस देशके ३० करोड़ लोग कहें कि वे मेरे साथ नहीं हैं तो भी मैं अपना काम करूँगा और स्वराज्य लूँगा लेकिन मैं शोरगुल पसन्द नहीं करता। इन नारों और शोरगुलके सामने मैं मेमनेकी तरह कमजोर पड़ जाता हूँ। पैर पड़ना भी अच्छी बात नहीं है। सबसे हाथ जोड़कर नमस्कार कीजिये। कोई भी व्यक्ति, विशेषतः इस कलियुगमें, पैर छूनेके योग्य नहीं है। अब समय बदल गया है। यदि आप ३० करोड़ लोगोंका काम पूरा करना चाहते हैं तो धन देकर मदद कीजिये। प्रयत्न करके रुपया इकट्ठा करिये, मुझे दीजिये और उसका मुझसे हिसाब माँगिये। किसीको खजांची बना लीजिये। यदि आपको लगे कि आप स्वराज्य नहीं ले सकते तो रुपये देकर मेरी मदद कीजिये।

यदि आप रुपयेसे भी मदद नहीं करते तो स्वराज्य लेना असम्भव न हो पर मुश्किल जरूर होगा। यदि भारतके छात्र मेरी मदद नहीं करते तो उससे कोई हानि नहीं। यदि वकील मदद नहीं देते तो भी कोई बात नहीं। यदि धनी लोग रुपयेसे सहायता नहीं करते तो उससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता। स्वराज्य लेना मजदूरों और किसानों-पर निर्भर है। जन्मसे तो मेरा भी वही धन्धा है जो आपका है। मैं खुद व्यापारी ही था। मैं वकील था और उससे रुपया कमाता था। मैं छात्र भी हूँ और मेरा खयाल है मैं एक अच्छा छात्र हूँ। यदि आपमें शक्ति हो, बल हो, यदि आप भारतपर अपना शासन चाहते हों तो बलिदान कीजिये। अपना, अपने बच्चोंका और अपने माता-पिताका बलिदान कीजिए। जीवनमें जो-कुछ हो उस सबका बलिदान कीजिए। स्वराज्य किसानोंपर निर्भर करता है। यदि वे मदद न करें तो स्वराज्य नहीं मिल सकता। यदि वे सरकारको सहयोग दें तो आप सब लोगोंका मिला-जुला सहयोग भी स्वराज्य लेनेमें सहायक नहीं होगा। यदि २५ करोड़ लोग अपने कर्त्तव्य पालनसे विमुख रहें तो स्वराज्य नहीं मिल सकता। अब मैं अपने मारवाड़ी भाइयोंसे कुछ कहना चाहता हूँ। अध्यक्षने अभी कहा है कि आजकी सभामें धनाढ्य लोग नहीं आये। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ। लेकिन उनके न आनेका कारण है। वे इस सरकारकी छायामें पले-बढ़े हैं और उन्होंने अपनी विशाल सम्पत्ति उसीके संरक्षणमें इकट्ठी की है। उन्होंने अपना धन उसके सहयोगसे कमाया है, इसलिए वे उससे डरते हैं। अंग्रेज भारतीयोंके सह-योगसे रुपया कमाते हैं, हमारे मारवाड़ी भाई अभीतक इस सत्यको नहीं समझ पाये हैं। मैं आपसे यह नहीं कहता कि आप अपना व्यापार छोड़ दें; लेकिन मैं आपसे यह जरूर कहता हूँ कि आप ईमानदारीसे व्यापार करें और झूठका सहारा न लें। आप कह सकते हैं कि यदि हम झूठका सहारा नहीं लेंगे तो फकीर हो जायेंगे। मेरा खयाल है कि आपका फकीर हो जाना ज्यादा अच्छा है। उस हालतमें मैं आपसे कोई रुपया नहीं लेना चाहूँगा। आप विदेशी मालका व्यापार न छोड़ें; किन्तु आपको विदेशी कपड़ेका व्यापार अवश्य छोड़ देना चाहिए। ईश्वरसे डरनेवाला ईश्वर ही का काम करेगा। ईश्वरने आपको धन दिया है। इस धनसे आप अपने शरीरको सजाते

हैं। आप इस धनकी बदौलत मलमलकी पगड़ी पहनते हैं। मेरी प्रार्थना है कि आप भय त्याग दें, खद्दरकी पगड़ी पहनें और मिलोंके साथ एजेंसियोंकी हदतक भी सम्बन्ध न रखें। मैंने अपने लड़केसे यह व्यापार छोड़कर खद्दरका व्यापार करनेको कहा, क्योंकि वह स्वदेशीका व्यापार नहीं है। उसने जवाब दिया: "पिताजी, खद्दरका व्यापार तो चलता ही नहीं। ज्यादातर खादी दूकानमें पड़ी रह जाती है।" खद्दर, गाढ़ा, खादी कुछ भी कहिए, जैसी सुन्दर चीज दूसरी नहीं मिल सकती। मेरे सभी भाई और बहन उसे इस्तेमाल करते हैं और मजदूर, जो मेरे भाई हैं, उसे तैयार करते हैं। मिल-मालिक जो शोषण कर रहे हैं वह बहुत अनुचित है। जब रुईका दाम ९ रुपये है तब सूतका दाम ३४ रुपये क्यों हो? मैं जानता हूँ खादीके व्यापारमें मुनाफा बहुत कम होता है। इसका कारण यह है कि मिल-मालिक सूतका दाम बढ़ा देते हैं। हमारे चमार और मेहतर भाइयोंके पास कपड़ा नहीं है; हमें उन्हें कपड़ा देना है। कोई वैष्णव ऐसा भी कह सकता है कि हमारी थालियोंकी झूठन और मैले-कुचैले फटे-पुराने कपड़े उनके लिए काफी होंगे। लेकिन मेरे लिए तो वे प्रातःस्मरणीय हैं और मैं उन्हें अपनी बराबरीका तो मानता ही हूँ। यदि आप मिलका कपड़ा छोड़कर खद्दर पहनने लगें तो उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जायेगी।

यदि आप जनकपुरी, उड़ीसा जायें तो आप देखेंगे कि वहाँ गरीब लोगोंकी हालत बहुत ही दयनीय है। उन्हें खानेके लिए सत्तू मिल जाता है, घी कभी उन्हें मयस्सर नहीं होता। आप तो तीसरे दर्जेमें नहीं चलते; लेकिन मैं तीसरे दर्जेमें ही चलता था। तीसरे दर्जेके मुसाफिरखानोंमें मैं देखता कि लोग अपनी किसी थैलीमें से मुट्ठीभर सत्तू निकालते, उसमें थोड़ा नमक और थोड़ी लालमिर्च डालते और तब उसे पानीमें घोलकर खा जाते। यही उनका भोजन होता था। मैं तो क्षत्रिय हो गया हूँ; इसलिए मेरी आँखोंमें आँसूकी बूँद भी नहीं आती थी। अन्नपूर्णा माँके इस देशमें घी नहीं मिलता। चम्पारनमें लोग भूखों मर रहे हैं। इन सब बातोंके निवारणका एक ही उपाय है और वह है चरखा चलाना। यदि सब स्त्रियाँ और लड़कियाँ चरखा चलाने लगें, तो वे सूत कातकर अपना गुजारा कर सकेंगी और खद्दरकी कीमतपर भी इसका असर पड़ेगा। स्वराज्य मिल गया तो हम मलमल भी बना सकेंगे। मैं स्वयं एक अच्छा कारीगर हूँ और मलमल तैयार कर सकता हूँ; लेकिन मैं कहता हूँ कि आपको तो ७ से २० नम्बरतक का ही सूत कातना है। उससे साड़ियाँ और बुर्के आदि बन सकेंगे। आपकी पगड़ियाँ बनानेमें ८० नम्बरका सूत लगता है। यह विलायती होता है और उसे काममें लाना धर्म-विरुद्ध है। मारवाड़ियोंने अपना धर्म छोड़ रखा है। आप विदेशी चीजोंका व्यापार छोड़ दें; अभी सभी चीजोंका नहीं, केवल विलायती कपड़ेका छोड़ दें। आप अपने घरमें विलायती कपड़ा न रखें और अपनी माताओं और पत्नियोंसे कह दें कि वे उसे उतार फेंकें और फिर न पहनें। इससे आपकी कोई हानि नहीं होगी। आप यह सारा कपड़ा दक्षिण आफ्रिका भेजकर बिकवा दें। वहाँ कताईकी मशीनें न होनेसे इसकी माँग है। भारत सती स्त्रियोंके सतपर टिका हुआ है। मुसलमान स्त्रियाँ चरखेपर बहुत सूत कातती हैं।

यदि आप गायोंकी रक्षा करना चाहते हैं तो आप खिलाफतकी रक्षा कीजिए। कई लखपति सज्जन गो-वध बन्द करनेकी बात कहते हैं, लेकिन अंग्रेजोंको सहयोग देते हैं। अत्याचारी अंग्रेज गायोंका खून पीते हैं। अंग्रेजी मालकी एजेंसियाँ लेना धर्मके विपरीत है। मुसलमानोंके विरुद्ध यह कहा जाता है कि वे गो-वध करते हैं। लेकिन मैं कहता हूँ कि बाँदरामें[1] ५ वर्षके अन्दर जितनी गायें काटी जाती हैं, उतनी ७ करोड़ मुसलमान २५ सालमें भी नहीं मार सकते। मैं चम्पारनके बारेमें फिरसे आपको कुछ मोटी-मोटी बातें बताता हूँ। मैंने गोवधके बारेमें एक मारवाड़ीसे बात की तो वह रो पड़ा। मैं नहीं रोया। मैंने उसका ध्यान बैलगाड़ीमें जोते हुए एक बैल की हालत की ओर खींचा। आप गायोंकी पूजा करते हैं; लेकिन बैलोंको मारते हैं, क्या यह ठीक है? गोशालाओंकी हालत देखिए। गायें दूध देती हैं; भैंसें भी दूध देती हैं। वे इतनी अधिक दुही जाती हैं कि उनके थनोंसे खून झरने लगता है और उसे हम पीते हैं। यदि आप सचमुच गायोंकी रक्षा करना चाहते हैं तब आप खिलाफतके मामलेमें मुसलमानोंकी मदद कीजिए। मुसलमान कृतघ्न नहीं हैं, लेकिन आप उनसे यह न कहिये कि पहले आप गायोंकी रक्षा करिये तब हम खिलाफतके मामलेमें आपकी मदद कर सकेंगे। यह अनुचित है। इसमें सौदेकी कोई बात नहीं है। आप अपने भाइयोंके लिए अपनी जान दे दें, सर्वस्व लुटा दें और अपनी धार्मिकतापर कायम रहें। हिन्दू होनेके नाते आप कायर न बनें; बल्कि साहसी बनें।

यदि आपके भण्डारमें कपड़ेके थान पड़े हों तो आप उन्हें बेच डालें या जला दें और यह वचन दें कि आप फिर कभी वैसे कपड़ेका न व्यापार करेंगे और न खुद पहनेंगे। आप जुलाहोंको भी समझायें कि उन्हें विलायती सूत काममें नहीं लाना चाहिए। उनके पास जो माल जमा हो, उन्हें कहिए कि वे उसे बेचनेके बाद २० नम्बर-से ज्यादाका सूत काममें न लायें और खुद भी मोटे सूतके बने कपड़े पहनें। मैं तीन बातें चाहता हूँ। पहली बात यह है: "मेरी रक्षा कीजिए।" आप गांधीको तंग न करें, उसे तकलीफ न दें और "गांधीजीकी जय" न चिल्लायें, उसे 'हराम' समझें। दूसरी बात यह है: "रुपयेकी जरूरत है। आप जितना दे सकें उतना दें और इस दिशामें जो-कुछ कर सकते हैं करें।" आज गल्ला और तिलहनके व्यापारियोंने मुझे १०,००० रुपये दिये हैं और यह वचन दिया है कि वे चन्दा करके और भी रुपया देंगे। मैं यह चाहता हूँ कि आप जो-कुछ भी दें वह नम्रतापूर्वक और उदारताके साथ दें। मैं जैसे ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ, वैसे आपसे भी प्रार्थना करता हूँ। आप अपने भीतर धर्मकी भावना जागृत करें और देशभक्तिके भाव उत्पन्न करें। तीसरी बात यह है: 'आप शुद्धता अपनायें, देशभक्त बनें और स्वराज्य तथा खिलाफतके निमित्त काम करें।' खिलाफत कामधेनु है। आप अपने घरोंमें शुद्ध स्वदेशी चीजोंका व्यवहार करें। स्वदेशी ही आपका हित करनेमें समर्थ है। हमारा ६० करोड़ रुपया देशके बाहर चला जाता है। आप इसको देशमें रखिए; ९ महीनोंमें आपको स्वराज्य मिल जायेगा। भाइयो, आपने मेरा भाषण इतने प्रेम और इतने ध्यानसे सुना है। मैं इससे बहुत प्रसन्न हुआ

१. बम्बईका एक उपनगर जहाँ एक बहुत बड़ा कसाईघर है।

हूँ। लेकिन मैं यह नहीं चाहता कि आप मुझे आँख मूँदकर और पागल बनकर प्रेम करें। मैं चाहता हूँ कि आप ज्ञानपूर्वक भारतसे प्रेम करें। जब आपका प्रेम मेरे लिए इस तरहका होगा, तभी मैं भारतको स्वतन्त्र करा सकूँगा। मैं आपसे फिर प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरी बातको ध्यानमें रखें और ईश्वरसे प्रार्थना करें कि वह आपको और मुझे स्वराज्य लेनेकी शक्ति दे एवं आप लोगोंको सुखी बनाये।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३०–१–१९२१

हिन्दू, १–२–१९२१

१४१. असहयोग अर्थात् आत्मशुद्धि

कांग्रेसके प्रस्तावनें[1] असहयोगको आत्मशुद्धिका साधन और यज्ञ माना गया है। यदि असहयोगका यह अर्थ न हो तो असहयोग पाप ही माना जायेगा। पुण्य और पाप-के बीच मेल नहीं होता, अंधेरे और उजालेका मेल नहीं होता। इसी तरह लोकहित विरोधी सरकारसे भी जनताका मेल नहीं हो सकता। हम असहयोगसे यह सिद्ध करते हैं कि अत्यन्त धूर्ततापूर्ण राजनीति भी, अगर जनता उसे सहन न करे और उसमें अपना योग न दे, तो टिक नहीं सकती।

हम विदेशी कपड़ेके लालचमें पड़ जाते हैं, इसीलिए हिन्दुस्तानमें उसकी खपत हो पाती है; हमें खिताबोंका लोभ है, इसीलिए सरकार हमें घूसकी तरह खिताब देकर अधिकार जमाती है; हम उसकी सनदोंके मोहमें पड़ते हैं इसीलिए सरकार हमारी शिक्षा-पर कब्जा करके हमें बताती है कि हममें स्वतन्त्र रूपसे शिक्षाकी व्यवस्थातक करनेकी शक्ति नहीं है। हम अत्याचारी अमलदारोंके हुक्मके तावेदार रहते हैं इसीलिए पंजाबमें अब भी वैसे ही अमलदारोंकी सत्ता चल रही है; हम शराब पीते हैं इसीलिए सरकार शराबसे करोड़ों रुपया कमा सकती है; हम लड़ते हैं, इसीलिए सरकारकी अदालतें चलती हैं। मतलब यह है कि सरकारके पापोंमें हमारा योग कोई कम नहीं है। जिस दिन लोकमत शुद्ध हो जायेगा और जनता पापसे मुक्त होनेका निश्चय कर लेगी उसी दिन सरकारके सिरसे ताज उतर जायेगा। इस ताजको तो हम ही टिकाये हुए हैं। एक लाख अंग्रेज अपने बलसे ही तीस करोड़ लोगोंपर राज्य नहीं करते। हम अनेक लाख भारतीय जाने-अनजाने इन एक लाख अंग्रेजोंकी पूरी-पूरी मदद कर रहे हैं और अन्य करोड़ों लोग इस स्थितिको सहन कर रहे हैं। सरकारका अर्थ है, जो राज्यतन्त्र चला रहे हैं और जो उसको चलानेमें उनकी मदद कर रहे हैं, वे लोग। हम लोग जब यह मदद बन्द कर देंगे तब इस सरकारका पतातक नहीं चलेगा।

१. असहयोगपर, देखिए परिशिष्ट १।

सरकारको हम पापी मानते हैं, राक्षसी मानते हैं। यदि हम पापमुक्त हो जायें तो सरकार ऐसे ही गिर पड़ेगी जैसे सूखे पत्ते झड़ जाते हैं; नहीं तो फिर वह पश्चात्ताप करके पुण्यवान बनेगी।

तब हम किन पापोंसे सरकारको टिका रहे हैं? यह हम देख ही चुके हैं कि वे पाप हैं — स्कूल, अदालतें, खिताब और धारासभायें। सचमुच देखा जाये तो ये वस्तुएँ स्वतः पाप नहीं हैं, ये तो पापकी निशानियाँ हैं। सरकार पुण्यवान हो तो हम उसके हाथों पढ़ें, न्याय प्राप्त करें और सम्मान लें। यदि हम आज उन्हें छोड़ते हैं तो हमें अपनी पापी आदतोंको भी छोड़ना ही पड़ता है।

इसलिए मुख्य बात तो यह है कि हम अपनी पापी आदतोंको छोड़ें। जनता शराब पिये, जुआ खेले, चोरी करे, व्यभिचार करे और द्वेष करे तो असहयोग नहीं चल सकता, क्योंकि इन आदतोंका लाभ उठाकर ही सरकार राज्य चलाती है।

शराबकी आदत बड़ी भयंकर आदत है। यदि हम इस आदतको छोड़ दें तो करोड़ों रुपया लोगोंके घरोंमें रहे और अनेक अत्याचार मिट जायें। मेरी मान्यता है कि अंग्रेजोंकी राजनीतिमें जो निर्दयताका तत्त्व है, यदि वे शराब न पीते होते तो वह तत्त्व कदापि न होता। जिसे शराबकी लत नहीं है, वह मनुष्य कभी पूरी तरहसे होश-हवाश नहीं खो सकता। शराब चाहे कितनी ही कम क्यों न पी जाये, उसका थोड़ा-बहुत नशा चढ़े बिना कदापि नहीं रह सकता। और इससे बुद्धिपर कुछ-न-कुछ पर्दा अवश्य पड़ता है तथा मनुष्यकी अन्तरात्माकी आवाज मन्द अवश्य पड़ जाती है। इसलिए हममें से जो लोग त्यागकी शिक्षा देने सामने आ रहे हैं उन्हें जनताकी शराबकी लत छुड़ानी चाहिए। शराब पीनेवाले लोगोंके लिए प्रस्ताव निरर्थक है क्योंकि वे तो सार्वजनिक जीवनमें कोई भाग लेते ही नहीं। फिर भी उनपर ध्यान देनेकी आवश्यकता तो अवश्य है। चायकी आदत छुड़वानेके लिए भी अनेक स्थानोंपर बहुत प्रयत्न किये गये हैं। यह आन्दोलन, जिस हदतक जोर-जबर्दस्ती नहीं होगी, उसी हदतक सफल हो सकता है। हम मारपीट करके लोगोंसे शराब नहीं छुड़वाना चाहते; बल्कि शर्मिंदा करके और समझा-बुझाकर हमें उनसे शराब छुड़वानेका प्रयत्न करना चाहिए। हममें से कुछ लोगोंको चाहिए कि वे अपने-अपने शहरोंमें शराबके दुकानदारोंके पास जाएँ और उन्हें समझाएँ एवं उनसे दूसरे धन्धे करनेकी प्रार्थना करें। उन्हें शराब पीनेवाले लोगोंकी जात-बिरादरीकी मार्फत भी प्रयत्न करना चाहिए। यह काम वैसे कठिन है; लेकिन लोकमतके आगे कुछ भी कठिन नहीं होता। जब लोकमत शराबको सहन करना बन्द कर देगा, शराब उसी घड़ी बन्द हो जायेगी। अभी तो हमें अपने पड़ौसीकी चिन्ता ही नहीं है। एक राष्ट्र बननेका अर्थ है तीस करोड़ लोगोंका एक परिवार बनना। अगर एक भारतीय भी भूखों मरता है तो हम सब भूखे मरते हैं, ऐसा मानना और उसके अनुरूप आचरण करना ही एक राष्ट्रीयता है। इसका सबसे अच्छा रास्ता यही है कि हरेक मनुष्य अपने पास-पड़ौसकी देखभाल करे अर्थात् वह आसपासके लोगोंकी सेवा आरम्भ करे। यदि हम इस पद्धतिसे काम करें तो हम शराबकी दूकानोंको बहुत ही कम समयमें बन्द करा सकते हैं।

मारा हिन्दुस्तान शराब कब छोड़ेगा, यह विचार पाठकोंको नहीं करना है। यदि वे अपने-अपने गाँवोंको ही संभाल लेंगे तो इसका अर्थ यह होगा कि उन्होंने अपना कर्त्तव्य भली-भाँति निभाया है। जो बात शराबपर लागू है वही तम्बाकूपर भी लागू होती है। हम तम्बाकूको बहुत बुरा नहीं मानते, क्योंकि इसका दुष्परिणाम प्रत्यक्ष नहीं होता। इसका नशा अफीमके जैसा ही है। यह कष्टोंको भुलाता है; लेकिन इसकी आदत पड़ जानेसे पैसेकी वही बर्बादी होती है; इसलिए भी इसे हमें समाप्त ही करना चाहिए। यदि तम्बाकूकी आदत स्वराज्य मिलनेतक भी छुड़वाई जा सके तो उससे बहुत धन बच सकता है और उसका उपयोग अन्यत्र किया जा सकता है।

व्यभिचारके बारेमें तो मैं क्या कहूँ। शराब, बीड़ी आदिको मैं व्यभिचारके मुकाबलेमें पाप ही नहीं समझता। शराब पीनेवाला तो स्वयं ही बिगड़ता है; व्यभिचारी अपने साथ अनेक लोगोंको समेट ले जाता है। व्यभिचारमें से कितने पाखण्ड, कितने झूठ, झगड़े और रोग उपजते हैं, इसके आँकड़े कौन रख सकता है? पर-स्त्री पर कुदृष्टि करने-जैसे पाप कम ही होंगे। तथापि यह पाप कोई कम व्यापक नहीं है। उससे बचने और बचानेका उपाय भी सहज नहीं है। इस पापसे जनताको मुक्त करनेका सर्वत्र लागू होनेवाला उपाय अभी मुझे तो मिल नहीं सका है। वेश्याओंको कौन समझाये? वेश्यागामीसे कौन विनती करे? उसके लिए किन संस्थाओंकी स्थापना की जाये? मैं तो इसी श्रद्धाके आधारपर चुप बैठा हुआ हूँ कि जो लोग राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग ले रहे हैं कमसे-कम वे तो दृढ़तापूर्वक इस पापसे मुक्त हो जायेंगे और जैसे-जैसे जागृति आती जायेगी वैसे-वैसे अन्य लोग भी व्यभिचारसे मुक्त होते जायेंगे। इस व्यभिचारसे प्रजा क्षीण हो गई है, रंक हो गई है और उसमें कायरता आ गई है। पश्चिमके लोगोंमें भी व्यभिचार-दोष कम नहीं है, फिर भी वे कायर क्यों नहीं हैं, यह प्रश्न उठेगा। मैंने अनेक बार बताया है कि मारनेकी शक्तिमें कोई पौरुष नहीं है। पश्चिमके लोगोंने मारनेकी शक्तिकी जो शिक्षा प्राप्त की है, उसके पीछे उनका शराबका व्यसन और व्यभिचार ही हैं, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है। इसके और भी अनेक कारण हैं; लेकिन यह कारण सबसे मुख्य है। पश्चिमके लोगोंको मर्द कहना अतिशयोक्ति है।

हाँ, यह बात अवश्य सच है कि उनको हमारी अपेक्षा मरनेका भय कम है; लेकिन यह बात तो हमारी लुटेरी कौमोंमें भी है। जिस हदतक हम अपनी लुटेरी कौमोंको बहादुर मानते हैं, उस हदतक भले ही हम पश्चिमके लोगोंको बहादुर मानें। पश्चिमका मुकाबला करनेकी बात ही विषयान्तर समझी जानी चाहिए। पश्चिमका अनुकरण करके हिन्दुस्तान धर्म-राज्यकी स्थापना नहीं कर सकता, यह बात सबको समझ लेनी चाहिए। पश्चिमके लिए संयमकी आवश्यकता 'नीति' है। पूर्वमें संयम ध्येय रूप है। सत्य बोलना लाभप्रद है, इसलिए सत्य बोलना चाहिए यह धर्म आदेश नहीं है; सत्य ही साक्षात् ईश्वर है यह सभी धर्म मानते हैं। नमाज पढ़नेमें कसरत हो जाती है, लेकिन कोई भी मुसलमान कसरतके खयालसे नमाज नहीं पढ़ता; बल्कि उसे धर्म मानकर ही पढ़ता है। इसलिए यदि हम हिन्दुस्तानको असहयोगके

द्वारा मुक्त करना चाहते हैं तो हमें आत्मशुद्धिका महत्व समझना होगा, पश्चिमके अनुकरणका मोह छोड़ना पड़ेगा। पश्चिमकी पद्धतिको त्याग कर ही हम स्वराज्य प्राप्त करेंगे। मैं पश्चिमकी पद्धतिसे स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव मानता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-१-१९२१

१४२. टिप्पणियाँ

ऋषियोंके वंशज[1]

इस लेखको मैं बिना सोचे-समझे ही प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। दो दिनके अनुभवके आधारपर यह लिखा गया है। इसमें क्षणिक आवेशका होना सम्भव है। लेकिन लेखकने चरखेको जो पदवी प्रदान की है वह उचित है, मैं स्वयं तो ऐसा मानता हूँ; इसलिए इस लेखको प्रकाशित करते हुए मैं इसमें कही गई बातोंकी जिम्मेदारी अपने सिरपर ले लेता हूँ। आश्रमके वर्णनमें जिस अतिशयोक्तिसे काम लिया गया है वह आश्रमवासियोंके सामने आदर्शके रूपमें रहे, इस विचारसे मैं उसे भी प्रकाशित कर रहा हूँ। इस आदर्शके अनुरूप आचरण न होनेपर यह लेख हमें शरमिन्दा करेगा। 'तपोवन' नामका सुझाव एक मित्रने दिया था। इस नामको मैं आज भी अनुपयुक्त मानता हूँ। आश्रममें यदि सत्यका आग्रह बना रहे तो मुझे सन्तोष होगा और इससे देशको भी अवश्य सन्तोष होगा, ऐसी मेरी अविचल श्रद्धा है। फलतः यह आश्रम एक ही नामको ग्रहण कर सकता है और वह है सत्याग्रह आश्रम।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-१-१९२१

१४३. भाषण: कलकत्तामें तिलक राष्ट्रीय विद्यालयके उद्घाटनपर

२७ जनवरी, १९२१

इसके बाद श्री गांधीने सभामें भाषण देते हुए आरम्भमें विद्यालयकी सफलताके लिए कामना की। बादमें उन्होंने पंजाबमें और खिलाफतके सम्बन्धमें किये गये अन्यायोंकी चर्चाकी और तदनन्तर चरखेकी अमोघतापर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला और कहा कि विद्यालयके अधिकारियोंको ध्यान रखना चाहिए कि वहाँ सूत कातनेपर विशेष जोर दिया जाये ताकि लड़के इस कलामें कुशल हो सकें। उन्होंने कहा कि हिन्दू

१. यह टिप्पणी उपर्युक्त शीर्षकसे किसी व्यक्ति द्वारा, जिसने अपनेको ऋषियोंकी इन सन्तानोंका बन्धु कहा है, लिखे लेखके साथ छपी थी। उक्त व्यक्ति एक दिन आश्रममें ठहरा था और उससे प्रभावित होकर उसने इसे तपोवनकी संज्ञा देते हुए यह प्रशंसापूर्ण लेख लिखा था।

और मुसलमान लड़कोंको देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियाँ सिखाई जायें। छात्रोंको सम्बोधित करते हुए वे बोले: आप लोग मेरी सलाह मानिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप मेरी सलाह मानेंगे तो भारतको स्वराज्य शीघ्र ही मिल जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २८-१-१९२१

१४४. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

कलकत्ता
२९ जनवरी, [१९२१][1]

प्रिय चार्ली,

तुमने मेरे नाम प्रेमपत्रोंकी भरमार कर दी। मैंने जवाब देनेमें लापरवाही की, लेकिन तुम्हारा खयाल मुझे सदा बना रहता है। मैं तुम्हारे लिए सदा प्रार्थना करता रहता हूँ। तुम्हें बीमार[2] तो हरगिज नहीं पड़ना चाहिए। चाहता हूँ कि तुम स्वस्थ होकर काममें जुट जाओ। बिस्तरमें पड़े-पड़े ही तुमने कितना सारा काम कर डाला है।[3] मैं अधिकाधिक अनुभव कर रहा हूँ कि प्रार्थना कर्म है और मौन सर्वोत्तम भाषण तथा सर्वोत्तम तर्क। अस्पृश्योंके सम्बन्धमें तुम्हारी चिन्ताके बारेमें मैं यही कह सकता हूँ।

मैं इस सारी समस्यापर एक भारतीय और एक हिन्दूकी दृष्टिसे विचार करता हूँ, तुम एक अंग्रेज और ईसाईकी तरह सोचते हो। तुम्हारी दृष्टि इस सम्बन्धमें तटस्थ प्रेक्षककी है, जब कि मैं इससे स्वयं प्रभावित और पीड़ित हूँ। तुम धीरज रख सकते हो परन्तु मैं नहीं। तुम एक तटस्थ सुधारकके रूपमें अधीर भी हो सकते हो किन्तु मुझे एक पापीके रूपमें, यदि मैं उस पापसे मुक्त होना चाहूँ तो धैर्य ही रखना चाहिए। जलियाँवाला बागमें अंग्रेजोंने जो पाप कर्म किया मैं उसकी मनमानी चर्चा कर सकता हूँ; लेकिन एक हिन्दूके रूपमें हिन्दुओंके उस पापकी उसी तरह चर्चा नहीं कर सकता जो उन्होंने अस्पृश्योंके प्रति किया है। मुझे हिन्दू डायरों [अत्याचारियों] से निबटना है। मुझे कार्यक्षेत्रमें उतरना ही चाहिए और मैंने सदा ऐसा ही किया है। जब तुम्हारी भावना प्रबल रूप धारण कर लेती है तो उस समय तुम केवल काम करते हो; बातें नहीं। तुम चूँकि गुजराती नहीं जानते इसलिए तुम्हें यह नहीं मालूम कि गुज-

१. इस पत्रमें दी गई बातोंसे पता चलता है कि यह १९२१ में लिखा गया था और उस वर्ष २९ जनवरीको गांधीजी कलकत्तामें थे।

२. जनवरी १९२१ में एन्ड्रयूजको सख्त इन्फ्लूएंजा हुआ था।

३. फीजीसे जो प्रवासी आये थे और जिन्हें कलकत्ताकी गोदियोंके पास रुक जाना पड़ा था उनसे मिलनेके बाद एन्ड्रयूजने बिस्तरमें पड़े-पड़े ३५ पत्र, तार और लेख एक दिनमें बोलकर लिखवा दिये थे।

रातमें इस प्रश्नको लेकर कैसा बवंडर उठ खड़ा हुआ है। क्या तुमको मालूम है कि मैंने जानबूझकर एक ढेढ़की लड़की गोद ले ली है। इसके सिवा एक ढेड परिवार भी आश्रममें बसा लिया गया है। तुम्हारा ऐसा सोचना कि मैं एक क्षणके लिए भी इस प्रश्नकी अपेक्षा किसी दूसरे प्रश्नको अधिक महत्व दे सकता हूँ, मेरे साथ अन्याय करना है; लेकिन मुझे इस सम्बन्धमें अंग्रेजीमें भाषण देने या लेख लिखनेकी जरूरत नहीं है। मेरी सभाओंमें अधिकांश लोग ऐसे होते हैं जो 'अन्त्यजों'के विरोधी नहीं हैं। मुझे कांग्रेसमें इस सम्बन्धमें प्रस्ताव पास करवानेमें भी कोई कठिनाई नहीं हुई थी।[1]

इसके अलावा मैं जिन बातोंको नहीं जानता उनके बारेमें कुछ नहीं कह सकता। मैं बंगालके नामशूद्रोंके[2] बारेमें केवल मोटी-मोटी बातें ही जानता हूँ। कदाचित् यह प्रश्न अस्पृश्यताका नहीं है बल्कि जमींदार और उसके आसामीके सम्बन्धोंका है। मैंने तो अस्पृश्यताके पापको ही हाथमें लिया है। मैं हिन्दू पावित्र्यवादपर आक्रमण कर रहा हूँ। चूँकि हिन्दुओंका यह खयाल है कि मानव-जातिके एक वर्गको छूना इसलिए पाप है कि वह किसी विशेष वातावरणमें पैदा हुआ है, इसलिए मैं एक हिन्दू होनेके नाते यह सिद्ध करनेमें लगा हूँ कि यह पाप नहीं है और इन लोगोंको छूनेको पाप समझना ही पाप है। यह प्रश्न भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके प्रश्नसे भी महत्वपूर्ण है; लेकिन यदि मुझे स्वतन्त्रता जल्दी मिल जाये तो मैं इस समस्यासे ज्यादा अच्छी तरह निबट सकता हूँ। अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्त होनेसे पहले भारतका अंग्रेजोंके आधिपत्यसे मुक्त हो जाना असम्भव नहीं है। अंग्रेजोंके आधिपत्यसे मुक्त होना स्वराज्यका एक आवश्यक अंग है और जबतक यह आधिपत्य हट नहीं जाता तबतक हमारी प्रगति सभी मामलोंमें रुकी रहेगी। क्या तुम जानते हो कि इस समय गुजरातमें जो लोग मेरा विरोध कर रहे हैं वे वस्तुतः सरकारका समर्थन कर रहे हैं और सरकार मेरे विरुद्ध उनका उपयोग कर रही है?

रातको २ बजे मेरे मनमें तुम्हारा और इस प्रश्नका विचार उठ आया और फिर मैं सो नहीं सका। मैं ४ बजे तुमको पत्र लिखने बैठ गया। मैं इस प्रश्नके सम्बन्धमें जो-कुछ कहना चाहता हूँ वह सब स्पष्ट नहीं कर पाया हूँ। मगर इसमें मेरे लिए क्षमा-याचना करनेकी कोई बात नहीं है। इस प्रश्नकी जितनी साफ तसवीर मेरे दिलमें है उसका उतना साफ चित्रण मैं नहीं कर पाया हूँ। छात्रोंके सम्बन्धमें तुमने जो-कुछ लिखा है सो ठीक है। तुम एक अंग्रेजकी तरह सोच रहे हो। मैं तुमसे यह भी नहीं छुपाना चाहता कि इस प्रश्नको लेकर 'गुजराती' मेरी स्थिति यह कहकर कमजोर करनेका प्रयत्न कर रहा है कि इस मामलेमें मुझपर तुम्हारा प्रभाव पड़ा है। उसके कहनेका आशय यह है कि मैं एक हिन्दूके रूपमें नहीं, बल्कि एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें बोल रहा हूँ जो तुम्हारी ईसाइयतके प्रभावमें आकर बिगड़ चुका है। मैं जानता हूँ कि यह एक बिलकुल बेतुकी बात है। दक्षिण आफ्रिकामें मैंने यह काम तुम्हारा नाम

१. नागपुरके कांग्रेस अधिवेशनमें दिसम्बर १९२० में हिन्दू समाजसे अस्पृश्यता निवारणके सम्बन्धमें एक प्रस्ताव पास किया गया था।

२. बंगालका एक दलितवर्ग।

सुननेसे भी पहले आरम्भ किया था और मुझे दक्षिण आफ़्रिकामें अन्य ईसाई मतावलम्बियोंके प्रभावमें आनेसे पहले अस्पृश्यताके पापका भान हो चुका था। इस सत्यकी प्रतीति मुझे जब मैं बच्चा ही था तभी हो गई थी। मेरी माँ जब हम [दोनों] भाइयोंको किसी ढेढ़के छू जानेपर नहानेको कहा करती थी, तब मैं उसके इस आदेशपर हँसा करता था। १८९७में एक बार डर्बनमें, मैं अपनी पत्नीको इस बातपर घरसे अलग कर देने तकके लिए तैयार हो गया था कि वह वहाँ लारेंस नामके व्यक्तिसे, जिसके बारेमें वह जानती थी कि वह ढेढ़ है और जिसे मैंने अपने साथ रहनेके लिए बुला लिया था, बराबरीका बर्ताव नहीं करना चाहती थी। अस्पृश्योंकी सेवा करनेकी मुझे धुन रही है क्योंकि मुझे ऐसा लगा है कि यदि सचमुच अस्पृश्यता हिन्दूधर्मका अंग हो तो मैं हिन्दूधर्ममें बना नहीं रह सकता।

मैं यह सब कहकर भी तुमको सब-कुछ नहीं बता पाया हूँ। अस्पृश्योंके सम्बन्धमें मेरी भावना जितनी उत्कट है, कालीघाटकी[1] स्थितिके सम्बन्धमें भी उतनी ही है। मैं जब-जब कलकत्ता जाता हूँ तब-तब मुझे बकरोंके काटे जानेका खयाल हो आता है और मैं बेचैन हो उठता हूँ। मैंने इसी कारण हरिलालसे[2] कहा था कि वह कलकत्तेमें न बसे। ढेढ अपना दुःख बता सकता है। वह दर्खास्त दे सकता है। वह हिन्दुओंके विरुद्ध विद्रोह भी कर सकता है लेकिन बेचारे मूक बकरे क्या करें? जब कभी मुझे इस बातका खयाल आता है, मैं वेदनासे विकल हो उठता हूँ; लेकिन मैं इसके सम्बन्धमें बोलता या लिखता नहीं हूँ। किन्तु फिर भी इन प्राणियोंकी सेवाके लिए अपने-आपको योग्य बना रहा हूँ जो मेरे जैसे ही जीवधारी हैं और मेरे धर्मके नामपर काटे जाते हैं। सम्भव है मैं इस कार्यको इस जीवनमें पूरा न कर सकूँ। मैं इसे पूरा करनेके लिए फिर जन्म लूँगा या कोई दूसरा व्यक्ति, जिसने मेरी जैसी ही वेदनाका अनुभव किया हो, इसे पूरा करेगा। मुख्य बात यह है कि हिन्दुओंकी सेवाका तरीका आधुनिक तरीकोंसे अलग है। वह तरीका तपस्याका है। तुम्हारा ध्यान 'आधुनिक शब्द'के प्रयोगकी तरफ जायेगा, क्योंकि मेरा खयाल है कि ईसाइयोंका तरीका हिन्दुओंके तरीकोंसे जुदा नहीं है। मुझे अब भी ऐसा नहीं लगता कि जो बातें इस समय मेरे दिमागमें चक्कर काट रही है मैं वे सब इस पत्रमें लिख पाया हूँ। लेकिन मेरी समझमें तुमको स्थिति समझानेके लायक मैं काफी-कुछ लिख चुका हूँ। केवल इतना और कहना चाहता हूँ कि तुम इस अधूरे-से पत्रको अगर क्षमा-याचनाके रूपमें स्वीकार नहीं करोगे तो कमसे-कम शिकायतके रूपमें भी नहीं मानोगे।

तुमने सर विलियम विन्सेंटको[3] जो उत्तर लिखा है वह समुचित है।

मैं जानता हूँ कि यदि डाक्टर चिमनदास जाना चाहें तो तुम उन्हें चले जानेकी अनुमति अवश्य दे दोगे। आवश्यकता इस बातकी है कि शान्तिनिकेतन कर्त्तव्य-

१. कलकत्तामें काली मन्दिरका स्थान।

२. गांधी।

३. वाइसरायकी कार्यकारिणी कौंसिलके सदस्य, १९१७; भारतीय परिषद्के सदस्य, १९२३-३१।

दृष्टिसे आगे बढ़कर असहयोगका समर्थन करे। मुझे ऐसा लगता है कि गुरुदेवको[1] इस सत्यकी पूर्णता और आवश्यकताका अहसास नहीं हुआ है।

मैं यहाँसे दिल्लीके लिए सम्भवतः इसी चौथी तारीखको रवाना हो जाऊँगा और ९को बनारस पहुँचूँगा। मैं कॉरबेटके[2] लिए एक निजी चिट्ठी भी भेज रहा हूँ।

प्रगाढ़ स्नेह सहित,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९५८) की फोटो-नकलसे।

१४५. पत्र : लालचन्दको

२९ जनवरी, १९२१

प्रिय लालचन्द,

मैंने पूर्वी आफ्रिकाका पत्र पढ़ा है। मुझे लगता है कि तुम सम्पादकके रूपमें चमक नहीं सकते। हाँ, यह हो सकता है कि जहाँ किसी तरहका प्रकाश न हो वहाँ चमक सको। किन्तु तुम तो न्यूनतम स्तरतक भी नहीं पहुँचे। न तुम्हारी कोई अपनी शैली है और न बारीकीसे कुछ जानते हो।[3] इसलिए पूर्वी आफ्रिकाके हमारे देशभाइयोंको जिस नेतृत्वकी आवश्यकता है वह तुम नहीं दे सकते। किन्तु तुम्हारा पथप्रदर्शन मेरे द्वारा नहीं, बल्कि तुम्हारे अन्तःकरणकी आवाज द्वारा होना चाहिए।

अस्तु, मैं सम्पादकका भार किसी अन्यको देनेके बारेमें गम्भीरतासे सोच रहा हूँ। मैं तुम्हें सम्पादकके रूपमें नहीं बल्कि प्रबन्धकके रूपमें उपयुक्त समझता हूँ। मुझे बराबर डर बना रहता है। मैं नहीं जानता कि तुमने जाति-पाँतिके सम्बन्धमें क्या लिखा है। जोजेफने मुझे डरा दिया है। तुम्हें ऐसे नाजुक विषयपर बिलकुल नहीं लिखना चाहिए था। तुम्हें चाहिए था कि मेरा इन्तजार करते। तुम जानते हो कि मुझे इस प्रश्नपर अपने विचार प्रकट करनेकी कोई जल्दी नहीं है; यद्यपि इसमें इस बातका खतरा है कि मुझे गलत समझ लिया जाये, पर इस कार्यके लिए मुझे फुरसत चाहिए।

नागपुर कांग्रेसमें दिये गये [अपने] भाषणकी रिपोर्ट मैंने देखी है। इसमें बहुत स्पष्ट गलतियाँ हैं। अपनी कमजोर अंग्रेजीके कारण तुम लेखोंमें समुचित सुधार करनेमें भी असमर्थ हो। यदि तुम मेरे भाषणोंको पुनः प्रकाशित करो तो उन्हें ठीकसे

१. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

२. जी० एल० कॉरबेट, सन् १९२० में दक्षिण आफ्रिकी संघ-सरकार द्वारा नियुक्त एशियाई जाँच आयोगके सदस्य।

३. देखिए "पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको", १९-१-१९२१।

सुधारा जाना चाहिए। इसलिए मैं ऐसा व्यक्ति चाहता हूँ जो तुमसे अधिक गहरा और बहुश्रुत हो ताकि मैं 'यंग इंडिया'के बारेमें निश्चिन्त हो जाऊँ। इसलिए तुम्हें किसी भी समय कुर्सी खाली करनेके लिए तैयार रहना चाहिये। यदि तुम प्रबन्धकके रूपमें रहोगे तो मैं तुम्हें रख लूँगा। किन्तु ऐसा करनेपर मैं आशा करूँगा कि तुम उस कार्यमें निमग्न हो जाओगे और उसे यथासम्भव पूर्ण रूपसे संगठित करोगे।

मैं चाहूँगा कि तुम इस पत्रको गलत न समझो और विश्वास करो कि यह कदम इस कामके लिए सर्वोत्तम है। 'यंग इंडिया'का सम्पादकीय स्तर आज जैसा है उसे उससे ऊपर उठना चाहिए और इसके लिए अधिक सुयोग्य सहायककी आवश्यकता है।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य : नारायण देसाई

१४६. पत्र : बर्माके एक मित्रको[1]

२९ जनवरी, १९२१

प्रिय मित्र,

मैं जानता हूँ कि मुझे आपसे बहुत-बहुत क्षमा-याचना करनी है, क्योंकि मैंने आपके बहुतसे पत्रोंका स्वयं उत्तर नहीं दिया। लेकिन आप मेरी कठिनाई तो जानते हैं। मैं महादेव देसाई या दूसरे देसाई, जो कृपापूर्वक मेरी सहायता करते रहे हैं, के जरिये उत्तर तो भेजता ही रहा हूँ।

अब शायद आप उन कठिनाइयोंके बारेमें मेरा कुछ लिखना आवश्यक नहीं मानेंगे जिनका उल्लेख आपने अपने पिछले पत्रोंमें किया था। यदि आपके मनमें अब भी कुछ शंकाएँ हों तो मैं वचन देता हूँ कि श्री जिन्नाको स्वराज्य सभाके[2] बारेमें मैंने जो व्यवस्था दी है उसके बिलकुल सही होनेके बारेमें मैं आपको पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट कर दूँगा। मैंने उनके पत्रका जो उत्तर[3] दिया था, क्या आपने उसे देखा है?

क्या आप यह भी जानते हैं कि सभी आयुक्तोंने[4] कमसे-कम अपना दायित्व तो पूरा किया ही है, क्योंकि श्री जयकरने भी अपनी वकालत स्थगित कर दी है।

१. नाम ज्ञात नहीं हुआ।

२. होमरूल लीग।

३. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ३९४-९७।

४. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसकी पंजाब उप-समिति द्वारा पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें रिपोर्ट देनेके लिए नियुक्त जाँच समितिके सदस्य; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १२८-३२२।

अब वहाँकी शिक्षाके सवालको लें। यहाँ अब चारों ओर ऐसी जागृति फैल गई है कि आपने जो नाम दिये हैं उनमें से किसीको भेज सकना सम्भव नहीं है। बर्मी जनताको मेरी सलाह है कि वह प्राचीन प्रणालीको नयी भावनासे अपनाये। उसे इस समय पश्चिमी शिक्षाके बारेमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि वहाँ हाथ-कताईकी कोई परम्परा रही हो तो उसे पुनरुज्जीवित किया जाये, या आप किसी बर्मी उद्योगकी खोज करें जो कृषिका पूरक हो और पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करनेतक उस विलुप्त उद्योगको पुनः प्रतिष्ठित करें। विद्यार्थी यह जान लें कि स्वराज्य शिक्षा प्राप्त करनेसे नहीं मिलता बल्कि वह अपने जीवनमें उन गुणोंको प्रदर्शित करनेसे मिलता है जो स्वराज्यके लिए आवश्यक हैं। वे गुण हैं — निष्कपटता, सच्चाई, साहस, एकता, भ्रातृत्व तथा आत्मत्याग। यदि उनमें ये गुण हैं तो वे गाँवोंमें जाकर वहाँ इन्हें फैलायें। वे गाँववालोंको सिखायें कि अंग्रेज यहाँ बर्मी लोगोंकी भलाईके लिए नहीं, बल्कि अपना भौतिक स्वार्थ साधनेके लिए आये हैं। इसलिए विदेशी गुलामीसे मुक्त हो जानेतक वे अपनी साहित्यिक तालीमको स्थगित कर दें। यदि मैं वहाँ आया तो मैं उनसे ये ही बातें कहूँगा कि उन्हें अंग्रेजी भाषाके आकर्षणसे अपनेको मुक्त कर देना चाहिए। यह आज निश्चित रूपमें राष्ट्रीय विकासमें रोड़े अटकाती है।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य: नारायण देसाई

१४७. भाषण: कलकत्तामें स्नातकोत्तर छात्रों और कानूनके विद्यार्थियोंकी सभामें

२९ जनवरी, १९२१

इस सभामें मेरे इतने विलम्बसे आनेका एकमात्र कारण रुपयों और जेवरोंका यह ढेर है जो मुझे आपकी मारवाड़ी बहनोंने आपके लिए दिया है। मुझे अभी-अभी उनके सामने बोलनेका सुअवसर मिला था। मुझे उनसे प्रसन्नता भी हुई। उन्होंने — जिन्हें संस्कृति-विहीन मारवाड़ी महिलाएँ कहा जाता है — मेरे भाषणके उत्तरमें बहुत शानदार काम कर दिखाया है। मेरा खयाल है कि यह राशि, नकद रुपये और जेवर मिलाकर, १० हजारसे कम नहीं है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि आज ही तीसरे पहर हमें अपनी बहनोंसे और भी रुपया मिलनेकी आशा है। इसलिए मैं मौके-बेमौके यह कहता रहता हूँ कि मुझे एक वर्षके भीतर स्वराज्य मिलनेकी आशा है। क्या आपको मेरी इस बातपर आश्चर्य होता है? यदि धन, जन और अन्य सभी प्रकारकी जो मदद हमें मिल रही है वैसी ही मिलती रहे तो जिनके मनमें इस विषयमें जरा भी विश्वास नहीं है, वे भी मेरी ही तरह सोचने लगेंगे। मैं आप

समस्त स्नातकोत्तर वर्गोंके छात्रोंसे, जो यहाँ अपने नेताओंके भाषण सुननेके लिए आये हुए हैं, निवेदन करता हूँ कि आप कांग्रेसके प्रस्तावपर[1], बल्कि उससे भी बढ़कर अपनी अन्तरात्माकी आवाज़पर अमल करें। यदि आपको पूरी तरह यह विश्वास हो गया है कि आप अपने आत्मसम्मानकी थोड़ी बहुत रक्षा करते हुए भी इस सरकारके शासनमें नहीं रह सकते, यदि आपको यह यकीन हो गया है कि इस सरकारने आपकी कुछ पुनीततम भावनाओंको पैरोंके नीचे रौंदा है, उसने हमारे कुछ अमूल्य और प्रिय अधिकारोंकी उपेक्षा की है तो आप भी कांग्रेसकी तरह इसी नतीजेपर पहुँचेंगे कि इस सरकारसे सरोकार रखना अपराध और पाप है। यदि आप इस विचारका समर्थन करते हैं तो फिर आज जो सरकार हमें प्राप्त है उसके प्रभावमें संचालित या स्वयं उसीके द्वारा दी जानेवाली शिक्षा स्वीकार करना असम्भव है। ड्यूक ऑफ कनॉट कल कलकत्ता आये थे और आपने देखा कि उनके आगमनपर कलकत्ताके महान नागरिकोंने क्या किया। उन्होंने पूरी-पूरी हड़ताल रखी। क्या आपका खयाल है कि मेरे जैसे आदमीके लिए, जिसने बराबर करीब ३० सालतक इस सरकारको स्वेच्छासे बिलकुल हार्दिक सहयोग दिया है, यह कोई खुशीकी बात है कि मैं उनके आगमनपर किये गये पूर्ण बहिष्कारमें हृदयसे और पूरी तरह साथ रहूँ? मैंने यह खुशीसे नहीं किया। किन्तु फिर भी मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि मैं स्वागतसे केवल अलग ही नहीं रहूँ बल्कि इस विचारका प्रचार भी करूँ कि आज सम्राट्के किसी प्रतिनिधिका स्वागत करना भूल है, अपराध है और हमारे आत्मसम्मानके विरुद्ध है। अभीतक मेरी राय यही बनी हुई है। ड्यूक ऑफ कनॉट आपके और मेरे आँसू पोंछने नहीं आये, इस्लामका और भारतके ७ करोड़ मुसलमानोंका जो अपमान किया गया है उसका निराकरण करनेके लिए नहीं आये, वे पंजाबके घावोंको अच्छा करनेके लिए नहीं आये, बल्कि वे उस सत्ताको अपना समर्थन देनेके लिए आये हैं जिसने अपनी शक्तिका इतना भयंकर दुरुपयोग किया। वे एक ऐसी संस्थाकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए आये हैं जिसे हम मूलतः भ्रष्ट मानते हैं। इसी कारण उनके आगमनका बहिष्कार करना तथा उस सरकारके प्रभावके अन्तर्गत कोई भी शिक्षा न लेना हमारा कर्त्तव्य हो गया है। और इसलिए मैं कलकत्तेके स्नातकोत्तर श्रेणीके आप छात्रोंसे यह कहता हूँ कि इससे तो यह ज्यादा अच्छा होगा कि आप अपनी पढ़ाई स्थगित कर दें, अपने करोड़ों देशवासियोंके दुःख-सुखमें साथ हो जायें और एक सालके भीतर स्वराज्य प्राप्त करें। यदि आप यह अनुभव करते हों कि आप इस सरकारकी अधीनतामें स्नातकोत्तर अध्ययन जारी रख कर इस महान देशमें स्वराज्यकी स्थापना करनेकी गति थोड़ी भी बढ़ा सकते हैं तो मुझे आपसे कुछ नहीं कहना है। लेकिन यदि मेरी तरह आपको भी यह विश्वास हो गया हो कि इस सरकारके संरक्षणमें अध्ययन जारी रखनेसे उद्देश्यकी ओर हमारी प्रगतिमें बाधा ही आ सकती है तो आप अपनी यह पढ़ाई बन्द कर देनेमें एक क्षणका भी विचार न करें।

१. असहयोगके सम्बन्धमें उक्त प्रस्ताव दिसम्बर १९२० में नागपुरके कांग्रेस अधिवेशनमें पास किया गया था।

मैं चाहता हूँ कि आप इस प्रश्नपर साहसपूर्वक और उचित रूपसे विचार करें। आपको स्कूलों और कॉलेजोंको छोड़नेके लिए इसलिए नहीं कहा गया है कि यह शिक्षा-प्रणाली खराब है, वह खराब तो है ही — तथापि यह इसलिए कहा जा रहा है कि ये संस्थाएँ उस सरकारकी अधीनतामें चल रही हैं जिन्हें मैं और आप यदि सुधार नहीं सकते तो नष्ट कर देना चाहते हैं। यदि आप इस प्रश्नपर इस दृष्टिसे सोचें तो फिर आप अपने भविष्यके बारेमें आगे कोई प्रश्न करेंगे ही नहीं। आप ज्यों ही स्वराज्यकी खातिर इन संस्थाओंको छोड़ेंगे त्यों ही आपका भविष्य सुरक्षित और सुनिश्चित हो जायेगा। आपका भविष्य इन संस्थाओंपर नहीं, बल्कि स्वयं अपने आप-पर निर्भर है। कांग्रेसके प्रस्तावमें आपको और मुझे यही पाठ पढ़ाया गया है। कांग्रेस पिछले ३५ वर्षोंमें अपने सब प्रस्तावोंमें सरकार ही से आवेदन-निवेदन करती रही है। किन्तु उसने अब अपना रास्ता बदल दिया है। कांग्रेसने अब राष्ट्रसे आत्म-निरीक्षण करनेके लिए कहा है। उसने हमें अपना ही निरीक्षण करनेको कहा है। अब उसने प्रस्तावमें सरकारसे नहीं, बल्कि राष्ट्रसे अपनी बात कही है। उसकी प्रार्थना आपसे है, कलकत्तेके छात्रोंसे है, और अपनी युवावस्थाको पार कर चुकनेवाले मुझ-जैसे बूढ़े आदमीसे है। कांग्रेसने अपने प्रस्तावोंमें और अपनी प्रार्थनामें अपना निवेदन भारतके असंस्कृत लोगोंसे, भारतके खेतोंमें रहनेवाले लोगोंसे, कारीगरोंसे और उन लोगोंसे किया है जिन्हें हम भारतका निरक्षर जनसाधारण कहते हैं। आज दोपहरको आपके सामने जो प्रश्न उपस्थित है वह यह है: आप, स्नातकोत्तर वर्गोंके छात्र, क्या करेंगे? इस महान राष्ट्रीय उथल-पुथलमें आपका योगदान क्या होगा? आप केवल खड़े-खड़े देखेंगे ही या कुछ काम भी करेंगे? क्या आप इस घमासान लड़ाईमें कूदेंगे और विजयी होकर यश प्राप्त करेंगे? मुझे आशा है कि आप तत्काल सही और पक्का निर्णय लेंगे और फिर मैं आशा करता हूँ कि एक बार फैसला कर लेनेपर आप पीछे नहीं हटेंगे। इस सभाभवनमें[1] इकट्ठा छात्रोंसे मैं कहता हूँ: आप अपनी पुस्तकोंको जला दीजिए। इस समय पढ़ने-लिखनेसे कुछ वास्ता न रखिए; बल्कि मैं कहता हूँ, आप स्वराज्यके सेवक बनिये, उसकी खातिर लकड़ियाँ काटिए और पानी खींचिए। मैं आपमें से प्रत्येक छात्रसे चरखा चलानेको कहता हूँ। आप देखेंगे कि चरखा आपको जो सन्देश देगा वह सच्चा सन्देश होगा।

चरखेका सन्देश यह है: जो कोई मेरा आश्रय लेगा, मुझे चलायेगा वह स्वराज्यको नजदीक लायेगा। चरखेका सन्देश यह है कि भारतका प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चा एक साल या ८ महीने मुझे चलाये; मैं उसे बदलेमें स्वराज्य भेंट करूँगा। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप चरखेके इस सन्देशको ग्रहण करें। उसे खरीदनेमें ७ या ८ रुपयेसे ज्यादा नहीं लगते। मुझे उस दिन श्री दासने कहा था कि चरखेके बारेमें एक बंगला गीत है और जिसमें कुछ इस तरहकी बात कही गई है: चरखा आपको सब-कुछ देता है; वह आपकी कामधेनु है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि चरखा

१. स्टार थियेटर।

चलानेवाले लोगोंसे यदि आप पूछें तो वे आपसे यही कहेंगे, "हाँ, चरखा हमारे लिए कामधेनु ही है।"

आज दोपहरको जो स्त्रियाँ मेरे पास आई थीं उन्होंने मुझसे एक सन्देश माँगा। जब मैं आप लोगोंके लिए घूम-घूमकर उनसे चन्दा माँग रहा था तब उन्होंने मुझसे एक सन्देश माँगा और मैंने उन्हें निःसंकोच होकर यह सन्देश दिया: "चरखा चलाइये। आत्मशुद्धि कीजिए और देशके लिए आत्म-त्याग कीजिए।" आप लोगोंके लिए भी मेरा यही विनम्र सन्देश है। आप इन गुलामोंसे भरी संस्थाओंमें से बाहर निकलें, आत्मशुद्धि करें और चरखा चलाएँ। यदि आप ऐसा करेंगे तो मैं आपको वचन देता हूँ कि आपको एक वर्षके अन्दर ही स्वराज्य मिल जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३०–१–१९२१

१४८. सन्देश: पंजाब छात्र-सभाके अध्यक्षको[1]

३० जनवरी, १९२१

कृपया पंजाबके छात्रोंको बतायें कि हमें उनके द्वारा तत्काल विद्यालय छोड़[2] देनेकी देशकी अपीलपर उत्साहके साथ एकमत होकर अमल किया जानेका विश्वास है। अपमानित पंजाब तथा प्रताड़ित इस्लामके सम्मान तथा गौरवके अनुकूल केवल यही प्रतिक्रिया हो सकती है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, १–२–१९२१

१४९. कुछ प्रश्न

अनेक पत्रलेखकोंको अपने पत्रोंके साथ पूरा न्याय न हो सकनेके कारण निराशा होती होगी। 'नवजीवन'के पाठक जानते हैं कि 'नवजीवन'में प्रकाशित सामग्री काफी सोच-विचार कर ही छापी जाती है। इसलिए जब 'नवजीवन' में जगह बचती है, हम तभी प्राप्त-पत्रोंका उपयोग कर पाते हैं। अक्तूबर महीनेमें लिखे दो पत्र मेरे पास पड़े हैं। इसके बाद अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं और कदाचित् इन पत्रोंके लेखकोंको उनमें अपने प्रश्नोंके उत्तर मिल गये होंगे तथापि उनके प्रश्नोंको

१. गांधीजी, चित्तरंजन दास तथा मौलाना मुहम्मद अलीने गुजराँवालाकी पंजाब छात्र-सभाके अध्यक्ष डा० सैफुद्दीन किचलूको यह सन्देश भेजा था। उक्त सभाने ३० जनवरी, १९२१ को असहयोग आन्दोलनपर पास किये गये कांग्रेसके प्रस्तावका स्वागत करते हुए एक प्रस्ताव पास किया था।

२. सरकारी तथा सरकारसे सहायता प्राप्त करनेवाली शैक्षणिक संस्थाओंको।

मैंने निरर्थक नहीं समझा है यह बात सिद्ध करनेके लिए मैं यहाँ उनके प्रश्नोंका उत्तर देनेका प्रयत्न करता हूँ।

प्रयोगमें सरल, किन्तु प्रभावमें प्रचंड

एक भाई सूरतसे लिखते हैं:

स० : आपका कहना है कि अगर आपको और अली भाइयोंको गिरफ्तार किया गया अथवा दण्ड दिया गया तो लोगोंको शान्त रहना चाहिए। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो असहकारको धक्का पहुँचेगा। यह बात मेरी समझमें नहीं आती। आपके एकमात्र सहयोगी नेहरू[1] ही हैं। सोचिए, अगर उन्हें भी कोई पकड़ ले तो फिर आपके कामको कौन अपने माथे लेगा?

मेरी सलाह उचित ही है। असहकारकी चाबी शान्ति है। यदि शान्ति भंग हो तो असहकारका बल भी टूट जाये क्योंकि शान्तिभंग करनेके अन्तर्गत सरकार लोगोंपर जुल्म ढायेगी और जुल्मसे घबराकर लोग दब जायेंगे। असहकार आतंकके बीच सबका त्याग करनेकी तालीम है। हम अभी भयभीत हैं। हम भयरहित हो जायें तो कोई जुल्म नहीं कर सकेगा। असहकारमें अकेले नेहरूजी मेरे साथ हैं, अब ऐसा कहना उचित नहीं होगा। और वैसे सच पूछा जाये तो विजय तभी मिल सकती है जब सभी असहयोगी नेताओंकी गिरफ्तारीके बाद भी असहयोग जारी रहे। असहकार-में जनताको अपनी शक्तिका प्रयोग करनेकी शिक्षा मिलती है और जब वह अपने बल-पर टिकनेकी शक्ति पा जाती है तभी वह स्वराज्य अर्थात् प्रजासत्तात्मक राज्यका उपभोग कर पाती है। हमें सरकारको न तो मदद देनी चाहिए और न उससे मदद लेनी ही चाहिए। यह कोई ऐसी बड़ी बात नहीं है जिसके लिए नेताओंकी आवश्य-कता पड़े। असहयोग रामबाण होनेपर भी ऐसा अस्त्र है जिसे एक बच्चा भी चला सकता है। प्रयोगमें हल्का और परिणाममें प्रचंड, ऐसा है यह हथियार।

आज एक कदम ही काफी

स० : कल्पना कीजिए कि स्वराज्य मिल गया, तो आप बादमें फिर खिलाफतके प्रश्नका निपटारा किस तरह करना चाहेंगे; क्या यूरोपीयोंसे युद्ध करेंगे? हम तो निःशस्त्र हैं।

यदि खिलाफतके प्रश्नका सन्तोषजनक हल निकले बिना हमें स्वराज्य मिल जाता है तो हम इंग्लैंडसे बिलकुल अलग हो जायेंगे। आज सरकार खिलाफतको दबा रही है सो केवल हमारी ही मददसे और हमें दबानेकी खातिर। जब उसका हिन्दु-स्तानपर अधिकार खतम हो जायेगा तब उसे मेसोपोटामिया अथवा इस्तम्बूलकी आवश्यकता भी नहीं रह जायेगी। पर आवश्यकता रहे अथवा न रहे, यदि तब हमने अपने सिपाहियोंको बाहरके देशोंसे वापस बुला लिया तो सरकार मेसोपोटामियामें

१. पंडित मोतीलाल नेहरू जिन्होंने वकालतके अपने शाही धन्धेको छोड़ दिया था और असहयोग आन्दोलनके एक प्रमुख नेता बन गये थे।

रह ही नहीं सकेगी। हमें लड़ाई करनेकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी। हमें यूरोप और एशियामें से अपने व्यक्तियोंको खींच लेने भरकी जरूरत है। लेकिन मान लीजिए हम लड़ना चाहें तो स्वतन्त्र भारतको लड़नेका अधिकार तो रहेगा ही।

बाह्य एकताकी माँग न करो, सत्कार्य करते जाओ

स० : आपने एक वर्षके भीतर स्वराज्य दिलानेका वचन दिया है। एकता हो तो वह अवश्य ही एक महीनेमें मिल जायेगा, लेकिन जब बड़े-बड़े नेता — जैसे कि शास्त्रीजी[1], बनर्जी[2], मालवीयजी आदि इसके विरुद्ध हैं तब विजय प्राप्त करना दुष्कर है। और फिर आप भी उन्हें अपनी ओर लानेका कोई प्रयत्न नहीं करते।

आइये, हम पूर्ण एकताके तात्पर्यको समझ लें। एकताका अर्थ परस्पर एकमत होना नहीं है। व्यक्ति-व्यक्तिके भी जुदा-जुदा मत हो सकते हैं किन्तु इसके बावजूद एकता हो सकती है। मालवीयजी और मुझमें काफी मतभेद है तथापि हम दोनोंके बीच सामंजस्य और हार्दिक एकता भी बहुत है। उन्हें और अन्य लोगोंको एकमत करनेके मेरे प्रयत्न जारी ही हैं। यह असहयोगियोंके कृत्योंसे ही हो सकता है। जहाँ दलील काम नहीं दे सकती वहाँ सत्कार्यसे काम बन जाता है। एक वर्षमें स्वराज्य प्राप्त करनेके मेरे वचनके साथ एक शर्त यह जुड़ी हुई है कि यदि असहकारी अपने कर्त्तव्यका पालन करेंगे तो हमें स्वराज्य एक वर्षके भीतर अवश्य ही मिल जायेगा। कांग्रेसमें शामिल हुए बीस हजार व्यक्तियोंने और उसी तरह जुदा-जुदा शहरोंमें मिलनेवाले हजारों स्त्री-पुरुषोंने जो मत प्रकट किये हैं यदि वे उनके अनुसार चलेंगे तो निर्धारित समयमें स्वराज्य मिलकर रहेगा। यह माननेका मेरे पास कोई कारण नहीं है कि वे ऐसा नहीं करेंगे।

क्या मैं तानाशाह हूँ?

स० : आप कहते हैं कि आप तानाशाह (डिक्टेटर) नहीं हैं। क्या आपने किसी अन्य नेताकी छोटीसे-छोटी बात भी मानी है? विषय समितिके[3] सामने भी आप चट्टानकी तरह अविचलित रहे हैं। जब एक ओर आप हमें अन्तःकरणकी आवाजपर चलनेके लिए कहते हैं तो दूसरी ओर जनतासे अपने मतका समर्थन करवानेके लिए इतनी उठा-पटक क्यों कर रहे हैं?

मैं अवश्य यही मानता हूँ कि मैं तानाशाह नहीं हूँ; इतना ही नहीं, मुझमें तानाशाहीका लेश भी नहीं है; क्योंकि मेरा धर्म ही सेवा-धर्म है। मैंने तो बहुत नेताओंका कहना माना है और मानता आया हूँ। कलकत्तामें और नागपुरमें हुई विषय-समितिकी बैठकोंमें मैं अनेक बातोंपर सहमत हो गया था लेकिन इतना अवश्य है कि जहाँ अन्तःकरणकी पुकारकी बात आती है वहाँ मैं आग्रही बन जाता

१. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री।

२. सुरेन्द्रनाथ बनर्जी।

३. सितम्बरमें कलकत्तामें हुए विशेष अधिवेशनके अवसरपर और दिसम्बर १९२० में नागपुरमें हुए वार्षिक अधिवेशनके अवसरपर।

हूँ। तब मुझे कोई हिला नहीं सकता। इसीसे मुझपर तानाशाह होनेका आरोप लगाया गया है और इसे मैं सहन कर रहा हूँ। स्वयं आत्माकी आवाजको ही माननेकी बात कहते हुए, तर्कके द्वारा दूसरोंको अपनेसे सहमत करानेका अधिकार सबको होता है। हमारी आत्माको सोनेकी आदत पड़ गई है। उसे समय-समयपर जागृत करना पड़ता है; इसीका नाम पुरुषार्थ है। एक दूसरेकी जंजीरोंको तोड़नेमें सहायता करना ही सेवा है।

जिसे जनताका समर्थन, उसे कांग्रेसका समर्थन

स० : आपने कांग्रेसका अधिवेशन होनेसे पहले कहा कि 'मुझे कांग्रेसकी कोई दरकार नहीं', तो फिर आप "कांग्रेस मैन" होनेका दावा किसलिए करते हैं?

कांग्रेसकी मुझे कोई दरकार नहीं, ऐसा धृष्ट वाक्य मैंने कभी अपने मुँहसे नहीं निकाला। उसी तरह मैंने 'कांग्रेस मैन' होने का दावा भी नहीं किया। कांग्रेस एक महान् संस्था है। उसका मैं पुजारी हूँ। बचपनसे ही मैंने उसे आदरकी दृष्टिसे देखा है, इसी कारण मैंने हर बार उसमें हाजिरी देनेका प्रयत्न किया है। लेकिन कांग्रेसके प्रस्तावको मैं वेदवाक्य नहीं मानता। जहाँ उसके प्रस्ताव मेरे निजी धर्मके विरुद्ध जान पड़े हैं वहाँ उनका विरोध करनेकी छूट मैंने हमेशा ली है और वह छूट सबको होनी चाहिए, ऐसा मैंने माना है। यह सब करनेके बावजूद कोई भी व्यक्ति कांग्रेसका भक्त हो सकता है।

नवीन राज्यतन्त्रको मैं नहीं, जनता चलायेगी

स० : कांग्रेसने यदि इस प्रस्तावको[1] पास न किया होता तो क्या आपके आन्दोलनको एक प्रतिशत भी सफलता मिल सकती थी? पिछली बीस शताब्दियोंमें असहयोगसे बड़ी अधिक विचारणीय कोई चीज हमारे सामने नहीं आई। जब हमें अमृत-समान 'मॉन्टेग्यु-चेम्सफोर्ड सुधार' मिले हैं तो फिर क्या एक तानाशाहकी तरह सारे हिन्दुस्तानको उलटे मार्गपर ले जाना उचित है? मालवीयजी-जैसे लोगोंका कहना है कि गांधीजीकी तो अक्ल गुम हो गई है और वे हिन्दुस्तानको गलत रास्तेपर ले जा रहे हैं।

इस सवालमें मुझे बहुत गलतफहमी दिखाई देती है। कांग्रेस जनमतको व्यक्त करनेवाला मुख-यन्त्र है। जब जनता किसी अमुक वस्तुको स्वीकार कर लेती है तब वह अच्छी हो या खराब लेकिन कांग्रेस उसे स्वीकार कर लेती है। अब अगर सुधारक ऐसे कुछ नवीन सुधारोंको दाखिल करना चाहें जो लोगोंको प्रिय न लगें और फिर वह उन्हें कांग्रेससे पास न करवा सकें तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं। कांग्रेसका प्रस्ताव पास होनेसे पहले ही असहयोग आन्दोलन जोरोंपर था और इसी कारण कांग्रेसने उसका स्वागत किया था। मेरे तो ऐसे अनेक विचार हैं जिन्हें मैं कांग्रेससे पास नहीं करवा सकता क्योंकि मैं जनतासे अबतक उनका मूल्यांकन

१. असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव।

नहीं करवा पाया हूँ। मेरी मान्यता है कि पुरुषके विधुर होनेपर उसे पुनर्विवाह नहीं करना चाहिए। मेरी मान्यता है कि हमें केवल निरामिष भोजन ही करना चाहिए। मेरी धारणा है कि चेचकके टीके लगवाना दोषपूर्ण है। मैं मानता हूँ कि हमारे शौचादिकी पद्धतिमें कुछ बातोंसे रोग उत्पन्न होते हैं। लेकिन इन सब बातोंके सम्बन्धमें मैं अभीतक जनमतको प्रशिक्षित नहीं कर पाया हूँ, फलतः कांग्रेसमें भी इस आशयके प्रस्ताव पास नहीं करवा सकता। तथापि अवसर आने पर अपने उन विचारों-को जनताके सम्मुख पेश करनेमें मैं नहीं हिचकिचाता। 'मॉन्टेग्यु सुधार' अमृत-समान हैं, ऐसा अगर हिन्दने माना होता तो मेरी तानाशाही मेरी जेबमें ही रह जाती। जनताकी मनपसन्द चीजको मैंने व्यावहारिक रूप प्रदान किया है इसीसे जनताने मेरे सन्देशको हर्ष सहित स्वीकार किया है, ऐसी मेरी मान्यता है। मैं जनताको गलत राहपर नहीं लिये जा रहा हूँ बल्कि जनता जिस राहपर चल रही है अगर वह गलत हो तो मैं भ्रमवश उसी राह चल पड़ा हूँ। अगर बात ऐसी हो तो मानना चाहिए कि मुझमें कार्यदक्षताकी कमी है। किन्तु मैं मानता हूँ कि जनता सीधी राह ही चल रही है और बहुत अच्छी रफ्तारसे आगे बढ़ी है। मालवीयजी यह कतई नहीं मानते कि मैं जनताको गलत राह ले जा रहा हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे बीच थोड़ा मतभेद है लेकिन वे असहयोगके पुजारी हैं और मानते हैं कि जनता इस दिशामें आगे बढ़ रही है।

नवीन राज्यतंत्रको मैं नहीं, जनता चलायेगी

जैसा कि लोकमान्य तिलक कहा करते थे, अगर आप स्वराज्य प्राप्तिके बाद हिमालयकी तलहटीमें जा बसेंगे तो फिर नवीन राज्यतन्त्रका क्या होगा? उसे कौन चलायेगा? सगे भाइयोंमें नहीं बनती फिर करोड़ोंका तो पूछना ही क्या?

यह प्रश्न भी दोषमय है। लोकमान्यने मेरे हिमालय जानेके विषयमें कभी कुछ कहा ही नहीं। स्वराज्य मिलनेपर मैंने हिमालय चले जानेका निश्चय नहीं किया है; फिर भी यह बात निश्चित है कि नवीन राज्यतंत्रको चलानेवाला भी मैं नहीं हूँ, उसको तो जनता चलायेगी। जबतक जनतामें इतना आत्मविश्वास नहीं आ जाता तबतक स्वराज्य मिलनेसे भी क्या लाभ?

राजनीति और धर्म

श्री एन० बी० शर्माके कथनानुसार क्या आप राजनीतिमें धर्मका सम्मिश्रण नहीं करे दे रहे हैं? राजनीति क्या महात्माओंका क्षेत्र हो सकती है? चूंकि आपने आफ्रिका और खेड़ामें थोड़ेसे लोगोंको कुछ अधिकार दिला दिये तो क्या करोड़ोंके लिए भी आप ऐसा ही कर सकेंगे?

इसमें सन्देह नहीं कि मैं राजनीतिक विषयोंमें धर्मका सम्मिश्रण करता हूँ। मेरी विनम्र राय यह है कि संसारकी एक भी क्रिया धर्मविहीन नहीं होनी चाहिए। सवाल है कि महात्माके लिए कौनसा क्षेत्र नहीं हो सकता। यदि वह सब तरहके दुःखोंमें भाग नहीं लेता तो फिर वह किस बातका महात्मा है? मैं लोगोंके सारे दुःखोंमें

हाथ नहीं बँटा पाता इसलिए मैं 'महात्मा' होनेका दावा ही नहीं करता। लेकिन हम सब महात्मा बननेका प्रयत्न करें इसमें अविवेक नहीं है। अपनी राजनीतिमें हमने धर्मके तत्त्वका समावेश नहीं किया इसीसे तो स्वराज्य मिलनेमें इतना समय लग रहा है। विधान ऐसा है कि जो बात एक व्यक्तिपर लागू होती है वही सबपर भी लागू होती है। जिस तरीकेसे खेड़ामें लड़ा जा सकता है उसी तरीकेसे भारतवर्षमें भी लड़ा जा सकता है और जीत भी हासिल की जा सकती है।

अहमदाबादमें आपने कहा था कि यदि एक व्यक्ति भी सम्पूर्ण असहकार करे तो उसका असर हो और स्वराज्य मिले। क्या यह ठीक है?

मेरा दृढ़ विश्वास है कि सचमुच सम्पूर्णताको प्राप्त एक असहयोगी भी यथेष्ट है। लेकिन मैं मानता हूँ कि मेरे-जैसे प्रयत्न करनेवालेका प्रभाव भी बहुत हो सकता है। जगतके प्रत्येक सुधारका बीज किसी एक ही व्यक्तिका बोया हुआ होता है।

अपने कालसे पूर्व कोई नहीं जनमता

लोकमान्य तिलकके समान ही क्या आप भी समयसे पहले पैदा नहीं हुए हैं?

कोई अपने समयसे पहले न तो आता है और न जाता है। परन्तु ऐसा एहसास संसारके सभी सुधारकोंके बारेमें हुआ करता है। एक पद्धतिके अनुसार चलते आ रहे हम लोगोंको जब कोई दूसरी पद्धतिके बारेमें बताया जाता है तब पहले-पहल तो आघात ही पहुँचता है।

मुसलमानोंको मैंने नहीं जगाया है

मुसलमानोंको खिलाफतके सम्बन्धमें कुछ भी महसूस नहीं होता। आपने ही उन्हें कोंच-कोंच कर जगाया है। क्या मुसलमान विधान परिषदोंके उम्मीदवारके रूपमें खड़े नहीं हुए? क्या श्री शफी वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषद्में नहीं हैं? क्या धनवान और पढ़े-लिखे मुसलमान आपके आन्दोलनमें भाग लेते हैं?

मैंने मुसलमानोंको जगाया है, ऐसा दावा मैं कदापि नहीं कर सकता। उनको जगानेवाले तो अलीभाई हैं। मैंने तो अपना धर्म जानकर उन्हें अपनी सहायता दी है। पढ़े-लिखे मुसलमान अच्छे-बुरेकी बुद्धि खो बैठे हैं, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। यह तो इस जमानेकी तासीर है। आम मुसलमान अली भाइयोंके साथ ही हैं। श्री शफी आदि जैसे मुसलमान और हिन्दू मूर्च्छितावस्थामें न हों तो आज जो हमें इतनी देर हो रही है वह कभी न होती।

अच्छे कार्यमें कभी असफलता नहीं मिलती

क्या आपका आन्दोलन अव्यावहारिक अथवा अशक्य नहीं है? आपने मद्रासमें कहा था कि यदि जनताकी ओरसे सन्तोषजनक जवाब न मिला तो आन्दोलन निष्फल भी हो सकता है। तो फिर जिन्होंने आपका समर्थन किया है उनका क्या

होगा? सारे हिन्दुस्तानका इससे कितना बड़ा नुकसान होगा? सत्याग्रहकी भाँति इसे भी बीचमें छोड़कर आप अपने वचनके अनुसार हिमालय-वास क्यों नहीं करते?

आन्दोलन अव्यावहारिक नहीं है यह बात दिन-प्रति-दिन सिद्ध होती जाती है। सीधी राह पहले-पहल कदाचित् अगम्य जान पड़े, फिर भी वह अव्यावहारिक तो नहीं ही होती। संसारमें सत्य-जैसी दूसरी कोई व्यावहारिक चीज नहीं है। [दो बिन्दुओंके बीच] सरल रेखासे छोटी दूसरी कोई रेखा आजतक संसारमें कोई भी नहीं खींच पाया है। मद्रासके मेरे सम्पूर्ण भाषणको पढ़ना चाहिए। मेरे कहे हुए वाक्यका अर्थ सिर्फ इतना ही निकलता है कि सन्तोषजनक प्रतिक्रिया न होनेपर जनताको आन्दोलनके निष्फल होनेका आभास मिलेगा; लेकिन अच्छे कार्योंमें असफलता नामकी कोई चीज होती ही नहीं। कार्यके अनुरूप फल अवश्य मिलता है। लेकिन सम्भव है कि किसी एक व्यक्तिके द्वारा किये गये कार्यका फल जनताको दिखाई न दे। जिसे जनता भी देख सके ऐसे फलके लिए बहुत-से व्यक्तियोंको आगे आकर वह कार्य करना चाहिए। यों जो कर्म करता है उसे तो फलकी पूर्ण उपलब्धि हुई ही समझिए। जिन्होंने पढ़ना छोड़ दिया है, वकालत छोड़ दी है उन्हें उसका पुण्य-फल मिल चुका है। आन्दोलनका चाहे जो परिणाम निकले, उससे इन्हें क्या कोई नुकसान हो सकता है? अलबत्ता अगर अपने उक्त धन्धे छोड़नेका उन्हें पश्चात्ताप हो तो यह सचमुच दुःखकी बात होगी। इसीसे मेरा हमेशा यही कहना रहा है कि त्याग वैराग्यके बिना नहीं टिक सकता। जो लोग इस सरकारसे बिलकुल ऊब नहीं गये हैं उन्हें मैंने असहयोग करनेकी सलाह दी ही नहीं है। यह आन्दोलन पवित्र है क्योंकि इसे एक अकेला व्यक्ति भी कर सकता है। पुण्यकर्म करते समय न तो रुकनेकी जरूरत है और न ही साथी ढूँढ़नेकी; पापकर्म करते समय हजार ज्योतिषियोंसे पूछा जाना चाहिए और हजार साथियोंकी तलाश करनी चाहिए और समय तथा साथीके मिलनेपर भी [पापकर्म करते हुए] हिचकना चाहिए। असहयोगसे जैसे एक व्यक्तिको कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा, वैसे ही हिन्दुस्तानके बारेमें भी समझना चाहिए। सत्याग्रहको मैंने बीचमें नहीं छोड़ा। उसने एक अन्य रूप ग्रहण कर लिया। सत्याग्रहके कानूनके सविनय अवज्ञाके रूपको, लोग ग्रहण नहीं कर सके इसीसे सत्याग्रह अपने उस रूपमें बन्द हो गया।[1] सत्याग्रहके परिणाम-स्वरूप हिन्दुस्तानको जबर्दस्त उपलब्धि हुई है, ऐसा मैं मानता हूँ। मेरा दृढ़ विश्वास है कि कानूनकी सविनय अवज्ञाको रोककर मैंने सत्याग्रहके सम्बन्धमें अपने ज्ञानको सिद्ध किया है; मैंने सत्याग्रहके नायकके रूपमें अपनी योग्यता ही दिखाई है। मेरे सविनय अवज्ञाके आन्दोलनको रोकनेके कारण ही, सर माइकेल ओ'डायर द्वारा पंजाबकी प्रतिष्ठा-को धूलमें मिलानेके निश्चयके बावजूद पंजाबकी प्रतिष्ठा बढ़ी है। यही बात मेरे हिमा-लय जानेके बारेमें भी चरितार्थ होती है। मेरी दृढ़ मान्यता है कि पश्चिमका पशुबल हिन्दुस्तानको नहीं रुचेगा — नहीं फलेगा। तथापि कल्पना करें कि हिन्दुस्तानने उसे स्वीकार कर लिया तो फिर मैं हिन्दुस्तानमें रहना निरर्थक मानूंगा और उस समय

१. १९१९ में; देखिए खण्ड १५ ।

हिमालयमें एकान्तवास मुझे स्वर्गिक आनन्द देगा। पशुबलका प्रयोग करनेवाले हिन्दुस्तान-को मेरी सेवाएँ बेकार जान पड़ेंगी। और मैं उस समय देशका आशीर्वाद लेकर हिमालयकी ओर चल पड़ूँगा।

[क्या] आदर्श राज्य काल्पनिक नहीं है?

आपने 'नवजीवन' में लिखा है कि सच्चा ब्रह्मचारी केवल कल्पनामें ही होता है। उसी तरह आदर्श राज्य भी क्या केवल कल्पनामें ही नहीं है? क्या ऐसा राज्य पहले कभी था? क्या भविष्यमें होगा?

आदर्शपर पूरी तरहसे अमल हो जाये तो वह आदर्श ही न रहे। तथापि हमें कोई-न-कोई आदर्श सामने रखकर ही चलना चाहिए नहीं तो हम धोखा खा जायेंगे। आदर्श सरल रेखा और आदर्श समकोण तो कल्पनाकी ही वस्तु हैं। फिर भी सरल रेखा और समकोणके उस आदर्शको सामने रखे बिना कोई शिल्पी कोई भी इमारत खड़ी नहीं कर सकता। यही बात आदर्श स्वराज्यपर भी लागू होती है — आदर्श साधनों-को ध्यानमें रखते हुए और उनपर अमल करते हुए हम जल्दीसे-जल्दी जैसा चाहिए वैसा स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।

सूरत निवासी भाईकी प्रश्नावली यहाँ पूरी हो गई। उन्होंने अपना पत्र मधुर प्रस्तावनासे शुरू किया है। प्रश्नोंमें कहीं-कहीं कड़ी भाषा दिखाई देगी लेकिन प्रश्न विनम्रतापूर्वक पूछे गये हैं, ऐसी मेरी मान्यता है। प्रश्नकर्त्ताने अपना नाम-पता भी दिया है। उनके अन्तिम वाक्योंमें से तीन वाक्य उद्धृत करता हूँ:

> **जैसे पिता पुत्रके अपराधको क्षमा कर देता है, ठीक वही बात आप मेरे विषयमें भी समझ लीजियेगा। जैसे स्कूलमें अध्यापक कहते हैं कि अगर कोई प्रश्न समझमें न आये तो उसे बार-बार पूछ लेना चाहिए, उसी तरह फिलहाल में आपसे ऐसे प्रश्न पूछता रहूँगा। यदि ये पत्र दोषपूर्ण अथवा अपमानजनक लगें तो इन्हें तुरन्त फाड़ फेंकें।**

विद्यार्थियोंका व्यवहार

दूसरा पत्र अहमदाबादके एक प्रसिद्ध लेखकका है। उन्होंने यह पत्र 'स्वदेशी' उपनाम से लिखा है। उसमें पाँच प्रश्न हैं। एकमें विद्यार्थियोंको दी गई मेरी सलाहपर विवेचन किया गया है। इस प्रश्नपर इतना अधिक विचार-मन्थन किया जा चुका है कि अब इसमें से कुछ विशेष हासिल होनेवाला नहीं है, इसलिए उसे छोड़े देता हूँ। इस सम्बन्धमें मैं इतना ही कहूँगा कि मैंने विद्यार्थियोंको जो सलाह दी है उससे वे उद्धत और स्वच्छन्द नहीं हुए हैं। वे पिंजरेमें बन्द थे; पिंजरेसे निकला हुआ पंछी कुछ अति करता ही है। अतः इस सम्बन्धमें कटाक्ष नहीं किया जाना चाहिए। स्कूलों-कालेजोंसे बाहर निकले हुए विद्यार्थी-समुदायको जितना मैं समझता हूँ उतना कदाचित् ही कोई और उसे समझता होगा। उन्होंने विनयका छोर नहीं छोड़ा है। वे अपनी आत्मासे, जनसमाजसे और अपने गुरुजनोंसे जूझ रहे हैं और तरुण वयके युवकोंसे जितनी

आशा की जा सकती है उतनी वे फलीभूत कर रहे हैं। असहयोगमें अविनय हो ही नहीं सकती। यह भाई लिखते हैं कि मनुष्य अपनी प्रकृतिके अनुकूल आचरण करता है, सो बात सच है लेकिन मनुष्यके दो स्वभाव होते हैं। एक 'अहरमन' दूसरा 'अहुरमज्द'। एक 'आसुरी' और दूसरा मानवी ; एक सत्यशील, दूसरा असत्यशील। सत्यपर ही जोर दिया जाय, 'अहुरमज्द' पर दृष्टि रखी जाय, भले ही जो कलतक पशु था लेकिन आज यदि वह मनुष्य हो गया है, तो वह मनुष्य ही है; यदि हम निरन्तर यह ध्यानमें रखें तो इससे मनुष्यताको किसी प्रकारकी हानि नहीं होती, मेरा यह निजी अनुभव है।

दूसरा प्रश्न, मैंने गैर सरकारी स्कूलोंके अध्यापकोंसे सम्बन्ध तोड़नेकी जो सलाह दी है, उससे सम्बन्धित है, सो ऐसी सलाह मैंने किसीको दी ही नहीं।

अविवेकी असहयोगी

किसी तथाकथित असहयोगीने विधान परिषद्के उम्मीदवारको 'गधोंका सरदार' कहा है — तीसरे प्रश्नमें इस बातको लेकर चर्चाकी गई है। मुझे लिखते हुए दुःख होता है कि हमारे बीच ऐसे अविवेकी विशेषणोंका प्रयोग करनेवाले असहयोगी भी हैं। लेकिन यह तो हमारी एक बहुत लम्बे अर्सेसे चली आ रही विरासत है इसलिए बहुत प्रयत्नोंसे ही यह आदत जा पायेगी। मैं जानता हूँ कि अनेक असहयोगी अपनी भाषा और अपने विचारोंको संयमित करनेमें सफल हो रहे हैं। पत्र लेखक यह मानता है कि लोगोंको ऐसा बोलनेकी जो आदत पड़ गई है, बहुत सम्भव है कि उसका सामना करनेका मेरा प्रयत्न निष्फल हो जाये। लेकिन मेरा तीस वर्षका अनुभव इसके विपरीत है।

मैंने खिलाफतमें साथ क्यों दिया है?

चौथा प्रश्न महत्त्वपूर्ण है । उक्त सज्जन लिखते हैं:

आप खिलाफतकी इतनी अधिक चिन्ता क्यों करते हैं, यह बात मेरी समझमें नहीं आती। हम तो ऐसा मानते हैं कि खिलाफत सिर्फ 'पोलिटिकल वेपन' (राजनीतिक हथियार) है। इतिहासपर नजर डालनेसे यही लगता है कि चाहे जितना त्याग करनेके बावजूद हिन्दू-मुसलमान एक नहीं हो सकते। अगर सम्भव हो और उसे बनाये रखा जा सके तो हिन्दू-मुस्लिम एकता स्पृहणीय है। लेकिन स्वार्थके आधारपर खड़ी की गई एकता स्थायी नहीं रह सकती, मेरे-जैसे अनेक लोगोंका यही मत है। इसलिए आप खिलाफतके बारेमें इतनी अधिक चिन्ता क्यों करते हैं, अगर एक लेख द्वारा यह बात स्पष्ट कर सकें तो हम-जैसे लोग आपके आभारी होंगे।

मैंने बातचीतमें और लेखोंमें इस प्रश्नकी चर्चा की है, लेकिन ऐसा मानकर कि वह प्रश्न इतना महत्वपूर्ण है कि उसकी जितनी चर्चा की जाये, कम है, मैं एक बार फिर यहाँ इसकी चर्चा करता हूँ। खिलाफतके प्रश्नको मैं सर्वोपरि स्थान देता हूँ। असहयोगका शस्त्र भी, उसे हम जिस रूपमें जानते हैं, खिलाफतके प्रश्नपर विचार करते-करते हाथ लगा है। एक कट्टर हिन्दू होनेके नाते मुझे इसकी बहुत चिन्ता होती है। यदि सात करोड़ मुसलमानोंसे मैं अपने धर्मको सुरक्षित रखना चाहता हूँ तो मुझे उनके

धर्मको बचानेके लिए भी मरनेके लिए तैयार रहना चाहिए। यही बात सब हिन्दुओं-के लिए भी सही है। जबतक हिन्दू-मुसलमान एक नहीं होते तबतक स्वराज्य एक अर्थ-विहीन आदर्श है और गो-रक्षा तबतक असम्भव है। स्वार्थ सध जानेपर मुसलमान दगा देंगे, मैं ऐसा नहीं मानता। जो धर्मको मानते हैं, वे दगा नहीं देते। हिन्दुओंने कोई बड़ा त्याग किया और वह फलीभूत नहीं हुआ, ऐसा एक भी ऐतिहासिक दृष्टान्त मेरी नजरोंसे नहीं गुजरा है। आजतक जो हुआ वह तो बनियेका सौदा था। किन्तु हमारे वर्तमान व्यवहारमें सौदेकी गुंजाइश नहीं है। हिन्दू अपना धर्म समझकर मुसल-मानोंकी मदद करें और फलकी आशा ईश्वरसे रखें, मुसलमानोंसे कुछ भी न चाहें। मैं गोरक्षाकी बात अली भाइयोंसे कदाचित् ही करता हूँ। मौलाना अब्दुल बारी साहबके साथ हुए संवादको मैं प्रकाशित कर ही चुका हूँ।[1] तथापि वे जानते हैं कि मैंने इस बातको छिपाया नहीं है कि मैं मुसलमानोंके लिए मरकर उनके हृदयको द्रवित करनेकी उम्मीद रखता हूँ। मेरी दृढ़ मान्यता है कि ईश्वर अच्छे कामका फल अवश्य देता है। मुझे तो ईश्वरसे ही याचना करनी है। मुसलमान भाइयोंके हाथमें तो मैं बिना मूल्य बिक गया हूँ और प्रत्येक हिन्दूको ऐसा ही करनेके लिए कह रहा हूँ। इसमें दाँवपेच नहीं है; यह तो खुली बात है। यदि मुसलमान भाइयोंका मामला कमजोर होता तो मैं उनके लिए मरनेको कतई तैयार न होता। उनके मामलेको बिलकुल सच जानते हुए भी मैं सन्देह अथवा भयवश उससे अलग रहूँ तो मैं अपने हिन्दुत्वको लजाता हूँ, मेरा पड़ौसी-धर्म लुप्त हो जाता है।

मैं जानता हूँ कि खिलाफत राजनीतिक हथियार नहीं है। खिलाफतका पक्ष लेना सभी मुसलमानोंका धर्म है; हिन्दू इसे धर्म न मानें यह दूसरी बात है। गो-रक्षा-को कोई भी मुसलमान धर्म नहीं समझता। लेकिन सब मुसलमान जानते हैं कि हिन्दुओं-के लिए वह धर्म ही है। अली भाइयोंकी धर्मपरायणताके सम्बन्धमें मेरे हृदयमें बहुत आदरभाव है। केवल राजनीतिक लाभकी उपलब्धिके लिए वे फकीरीको अख्तियार नहीं करेंगे। खिलाफतको बचानेका प्रयत्न करनेमें इस्लामकी सत्तामें भी अवश्य वृद्धि होगी। इस बातपर प्रसन्न होनेमें कोई गुनाह नहीं है। मुसलमानोंको निःसन्देह इसपर खुशी होगी और यदि हम ऐसा मानें कि हिन्दू-धर्मकी जागृतिसे इतर धर्मावलम्बियोंको प्रसन्न होना चाहिए तो इस्लामकी उन्नतिसे हम हिन्दुओंको भी प्रसन्न होना चाहिए।

गुरु नानक और कबीरने हिन्दू-मुसलमानोंको एक करनेका प्रयत्न किया था। उस इतिहासकी यहाँ पुनरावृत्तिकी बात कोई नहीं करेगा, ऐसी मुझे उम्मीद है; क्योंकि आजका प्रयत्न धार्मिक एकताका नहीं बल्कि धर्मकी भिन्नता होते हुए भी हृदयकी एकताका है। गुरु नानक आदिका प्रयत्न धर्मोंमें एकता प्रदर्शित करते हुए दोनोंको एक बनानेका था। आजका प्रश्न तितिक्षाका है। कोशिश यह है कि सनातनी हिन्दू अपने धर्मके प्रति सजग रहते हुए कट्टर मुसलमानका आदर करें, उसकी सच्चे हृदयसे उन्नति चाहें। यह प्रयत्न होनेको नया है, लेकिन हिन्दू-धर्मके मूलमें निहित भावना यही है।

१. संवादके विवरणके लिए देखिए खण्ड १६, पृष्ठ ९५-९६।

इस प्रयत्नके बाद भी समझ लीजिए कि मुसलमान भाई दगा देते हैं। एक बात तो यह है कि दोनोंका स्वार्थ हमेशाके लिए एकता बनाये रखनेमें ही निहित होगा। लेकिन अगर हम यह मानें कि खिलाफत रूपी विशेष अर्थके सध जानेके बाद मुसलमान हिन्दुओंका विरोध करनेके लिए जुट जायेंगे और इस भयसे हम आज यदि तटस्थ रहें तो उससे हम ब्रिटिश राज्यकी गुलामी करते रहनेके सिवा और क्या साध सकेंगे? मान लीजिए, आजके प्रयत्नोंसे खिलाफतकी रक्षा हो गई है, स्वराज्य मिला और बादमें मुसलमानोंने विश्वासघात किया; तो इससे भी क्या होता है? बाईस करोड़ हिन्दुओंको क्या मुसलमान पराजित कर सकेंगे? उनका आत्मबल, उनकी तपश्चर्या, उनका आजका किया यज्ञ क्या उनकी कोई मदद नहीं करेगा? लेकिन अगर मुसलमान बाहरसे अन्य लोगोंको लाकर हमसे लड़ें तो? ऐसा भी हो तो क्या इससे सच्चा मर्द डर सकता है? आजका प्रयत्न देशको स्वावलम्बी — स्वतन्त्र बनानेका है। एक ही व्यक्ति हो तो भी छाती तानकर अनेकोंके सामने खड़ा रहे और जहाँ कदम रखा हो वहाँसे डग-भर भी पीछे न हटे। पशु भी समय आनेपर ऐसा करते हैं। अरबके बच्चे ऐसा करते हैं, डच बालकोंको भी ऐसा करते हुए मैंने जाना है। यह कोई दैवी शक्ति नहीं है, यह तो सामान्य मनुष्यको भी प्राप्त होती है। जबतक बहुत सारे भारतीय इस शक्तिको प्रकट नहीं करते तबतक हिन्दुस्तान स्वतन्त्र नहीं हो सकता। राणा प्रतापके समयके क्षत्रियोंमें ऐसा धैर्य था। क्षत्रिय अर्थात् हनन करनेवाला नहीं; क्षत्रिय अर्थात् मरना जाननेवाला। 'गीता' की व्याख्याके अनुसार क्षत्रिय वह है जो भागता नहीं है, पीठ नहीं दिखाता। हिन्दू-मुसलमानोंकी आजकी एकतामें सौदेकी बात ही नहीं है। हमने जो समझौता किया है वह सौदेबाजीपर नहीं बल्कि परस्पर दोनोंकी उदारतापर आधारित है। यह लेन-देनकी दोस्ती नहीं है, यह तो दोनोंके लिए एक पक्षीय अनुबन्ध है; ऐसा ही अनुबन्ध स्वेच्छासे किया गया अनुबन्ध कहला सकता है। वह किसी एक पक्षके तोड़नेसे नहीं टूटता; और टूट भी जाता है। तोड़नेवाला कानूनसे बँधा हुआ नहीं है लेकिन प्रेम तो उसे अपनेसे बांधे हुए ही है।

> कच्चे धागेसे मुझे हरिजीने बाँध लिया है
> वे जिधर खींचते हैं, मैं उधर ही मुड़ जाती हूँ
> मुझे तो प्रेमकी कटारी लग गई है।[1]

मीराने जो कहा सो करके दिखा दिया। प्रेमका यही धागा प्रत्येक मुसलमानको बाँधने और गायकी रक्षाके लिए काफी है। लेकिन भोजा भगतने[2] हमें प्रेमकी शर्तें भी गिनाई हैं:

> भक्तिकी राहमें शीशका सौदा करना पड़ता है;
> बहुत जटिल है उसकी राह।

१. 'काचे रे तांतणे मने हरिजीए बाँधी
जेम ताणे तेम तेमनी रे !
मने लागी कटारी-प्रेमनी।'

२. मध्य-युगके गुजराती कवि।

प्रेमकी परीक्षा असिधारपर चलनेमें है। हिन्दू यदि अपने धर्मकी रक्षा करना चाहते हैं तो उन्हें असिधारपर चलना होगा।

मालवीयजी और शास्त्रीजी

उपर्युक्त भाईने पाँचवें प्रश्नको इस तरह उठाया है:

> **पंजाब और खिलाफतके सम्बन्धमें मालवीयजी और शास्त्रीजी उतनी ही तीव्रतासे नहीं सोचते जितनी तीव्रतासे आप सोचते हैं — आप अगर ऐसा मानते हैं तो आप भयंकर भूल करते हैं।**

इतना कहनेके बाद इन्होंने कुछ दलीलें पेश की है जिनमें उन्होंने यह मान लिया है कि मैंने इन दोनों प्रौढ़ नेताओंपर आक्षेप किया है। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि ऐसी कोई बात नहीं है। दोनोंके प्रति मेरे मनमें जो आदर-भाव था वह यथावत् है और उनके प्रति मेरा प्रेम भी उसी तरह कायम है। मैंने तो मात्र वस्तुस्थितिका वर्णन करते हुए दो ऐसे मित्रोंका, जिनके साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है, उदाहरण दिया है। खिलाफत और पंजाबके विषयमें मैं अधीर होकर अपना सर्वस्व होमनेके लिए कटिबद्ध हो गया हूँ और ये दोनों नेता इन दोनों अपमानोंको पी जानेके लिए तैयार हैं। इसे अगर कोई व्यवहार-कुशलता कहकर अच्छा माने तो मुझे कुछ नहीं कहना है। मेरे तई तो आचार ही मनुष्यकी भावनाओंका माप-दण्ड है। मुझे इस बारेमें अधिक महसूस होता है, यह कहकर मैं ज्यादा प्रतिष्ठा नहीं कमाना चाहता और मालवीयजी अथवा शास्त्रीजीको इस सम्बन्धमें कम महसूस होता है यह कहकर मैं लेशमात्र भी उनकी अवमानना नहीं करना चाहता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३०-१-१९२१

१५०. भाषण: बेलूर मठमें[1]

३० जनवरी, १९२१

लोगोंने श्री गांधीसे भाषण देनेकी प्रार्थना की। उन्होंने इसे स्वीकार किया और जानना चाहा कि वे उनका भाषण अंग्रेजीमें सुनना चाहते हैं या हिन्दीमें। इसके लिए उन्होंने लोगोंसे हाथ उठानेको कहा। बहुतसे लोगोंने हाथ खड़े किये कि वे अंग्रेजीमें बोलें। इसपर श्री गांधीने कहा कि आप लोग हिन्दी नहीं जानते इसका मुझे बहुत दुःख होता है। यह भाषा तो आपके अपने देशकी है। तब उन्होंने पूछा कि कितने लोग उनका भाषण हिन्दीमें सुनना चाहते हैं। काफी संख्यामें लोगोंने हिन्दीके पक्षमें भी हाथ खड़े किये। तब उन्होंने हिन्दीमें भाषण दिया और उनसे कहा कि सभी लोग

१. यह भाषण कलकत्तेके पास रामकृष्ण मिशनके प्रधान कार्यालय, बेलूरमठमें स्वामी विवेकानन्दके जन्मदिवसपर दिया गया था।

हिन्दी सीखें। उन्होंने यह कहते हुए भाषण प्रारम्भ किया कि मैं स्वर्गीय स्वामी विवेकानन्दका[1] बड़ा आदर करता हूँ। और उनकी बहुत-सी पुस्तकें मैंने पढ़ी हैं। साथ ही यह भी बताया कि मेरे आदर्श भी कई बातोंमें उस महापुरुषके आदर्शोंके समान ही हैं। यदि आज विवेकानन्द जीवित होते तो हमारी राष्ट्रीय जागृतिमें बहुत सहायता देते। फिर भी उनकी आत्मा आपके बीच मौजूद है, इसलिए आप लोग स्वराज्यकी स्थापनाके लिए अधिकसे-अधिक कार्य करें। आप लोग सबसे पहले अपने देशको प्यार करें। और एक हृदय बनें। श्री गांधीने सबको स्वदेशी पहनने, चरखा कातने और शराबकी आदत छोड़नेकी सलाह दी। उन्होंने बताया कि मुझे पुलिसके अत्याचारोंकी खबरें मिली हैं। उन्होंने पुलिससे कहा कि वह जनतापर जुल्म न करे क्योंकि लोग उनके देशभाई ही तो हैं। उन्होंने पुलिसको सलाह दी कि वह अपना कार्य करे, किन्तु जो लोग देशके लिए काम कर रहे हैं उसमें रुकावट न डाले। पुलिस सरकारकी नौकर नहीं बल्कि अपने देशभाइयोंकी नौकर है। उन्होंने कहा, मैं यह नहीं चाहता कि पुलिसके लोग अपनी नौकरी छोड़ दें। किन्तु मेरा कहना है कि समय आनेपर जब उन्हें उनका कर्त्तव्य बताया जाये तब वे उसका पालन करनेके लिए तैयार रहें। उन्होंने श्रोताओंसे कहा कि वे सरकारी नौकरीके पीछे न फिरें बल्कि स्वतन्त्र जीवन बितानेकी कोशिश करें। उन्होंने सदा इस विचारको अपनी दृष्टिके सामने रखनेकी सलाह दी। उन्होंने कलकत्ताके राष्ट्रीय विद्यालयकी भी चर्चा की और बताया कि अन्य विद्यालय खोलनेके लिए भी धन मौजूद है।

[अंग्रेजीसे]

रेकर्ड्स ऑफ इन्टैलिजेन्स ब्रांच, आई० जी० पी०; पश्चिमी बंगाल

१५१. भाषण : कलकत्ताके मिर्जापुर चौकमें[2]

१ फरवरी, १९२१

श्री गांधीने प्रारम्भमें ही यह जानना चाहा कि क्या श्रोताओंमें अधिक संख्या छात्रोंकी है। जब उन्हें सूचित किया गया कि वहाँ छात्र बड़ी संख्यामें उपस्थित हैं और कुछके माता-पिता तथा अभिभावक भी उपस्थित हैं तब उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होंने भाषण देते हुए बताया कि यदि लोग निरन्तर दृढ़ताके साथ अहिंसाका पालन करते रहें तो स्वराज्य आठ मास या एक वर्षके अन्दर मिल सकता है। यदि

१. १८६३–१९०२; रामकृष्ण मिशनके संस्थापक।

२. यह सभा ड्यूक ऑफ कनॉट द्वारा पुनर्गठित बंगाल विधान परिषद्के उद्घाटनके दिन मॉन्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधारोंके प्रति लोगोंकी निराशा व्यक्त करनेके लिए की गई थी। इसकी अध्यक्षता विपिनचन्द्र पालने की थी। इसी प्रकारकी सभाएँ विलिंग्डन स्क्वेयर और छः अन्य स्थानोंमें भी की गई थीं। गांधीजी, मुहम्मद अली तथा पं० मोतीलाल नेहरू इन सभाओंमें उपस्थित रहे।

लोगोंने अहिंसाको छोड़ दिया तो आन्दोलनका सफल होना सन्देहास्पद हो जायेगा। किन्तु मुझे लोगोंपर पूरा विश्वास है। मैं स्वराज्यको जीतनेके लिए पशु-बल नहीं बल्कि आत्मबल प्राप्त करना चाहता हूँ। प्रसंगवश उन्होंने यह भी कहा कि चलती हुई मोटरगाड़ीके सामने लेट जाना भी हिंसाका कार्य होगा। यदि आप वास्तविक जनतन्त्र चाहते हैं तो आपको इस प्रकारकी हिंसाका उपयोग नहीं करना चाहिए। यदि कौंसिलोंके सदस्य त्यागपत्र नहीं देते और वकील अपनी वकालत नहीं छोड़ते तो कोई हानि नहीं, किन्तु यदि आप लोग अहिंसाका अनुसरण नहीं करते तो यह स्वराज्य प्राप्तिके ध्येयके लिए घातक होगा।

चरखेके प्रश्नको उठाते हुए उन्होंने कहा कि यदि आप सचमुच उस ६० करोड़ रुपयेको जो प्रतिवर्ष हमारे देशसे बाहर चला जाता है, बचाना चाहते हैं तो मुझे आशा है कि हर घर चरखा अपनायेगा। इसके बाद श्री गांधीने सहायताकी अपील की और बताया कि आज उन्हें चन्देमें काफी रकम प्राप्त हुई है। उन्होंने कहा इस सभाका मुख्य उद्देश्य चन्दा एकत्र करना था, और यह आशा व्यक्त की कि आज दोपहरको होनेवाली हर सभामें लोग खुशीके साथ धन देंगे।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २–२–१९२१

१५२. भाषण: कलकत्ताके विलिंग्डन स्क्वेयरमें[1]

१ फरवरी, १९२१

श्री गांधीने हिन्दीमें[2] भाषण देते हुए कहा कि कलकत्तेमें आज सुबह जो कुछ हुआ उसके बारेमें आप सुन ही चुके हैं। आप यह भी सुन चुके हैं कि इस परिस्थितिमें आपका कर्त्तव्य क्या होना चाहिए। कहा जाता है कि परिषद् आपकी अपनी है और उसके सदस्य आपके अपने प्रतिनिधि हैं। मैं कहना चाहता हूँ कि न तो परिषद् आपकी है और न उसके सदस्य ही आपके प्रतिनिधि हैं। इसलिए आपको चाहिए कि आप इन सदस्योंसे कोई राजनीतिक सहायता न लें। यदि आपका विश्वास है कि परिषद्में प्रातिनिधिकताका गुण नहीं है और यदि आप स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, तो आपको बहुत कुछ करना होगा। आपके सामने अत्यन्त कठिन कार्य आ पड़ा है। यदि आप ऐसा सोचते हों कि सभाओंमें प्रस्ताव पास करके आपने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया है तो यह गलत है; इसका कोई असर नहीं पड़ेगा। तो फिर आपको क्या करना चाहिए? इस प्रश्नका उत्तर कई बार दिया जा चुका है। आप सबको अहिंसा

१. यह भाषण मौलाना अबुल कलाम आजादकी अध्यक्षतामें हुई सभामें दिया गया था।

२. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

और असहयोगको अपनाना चाहिए। यदि आप अहिंसा और असहयोगकी भावनाको देशभरमें नहीं फैला सकते तो आपके लिए स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव होगा। आप स्कूल-कालेजों तथा अदालतोंको छोड़ दें। जिन लोगोंने अपनी पदवियाँ त्याग दी हैं और स्कूल-कालेजों तथा अदालतोंको छोड़ दिया है वे फिर वहाँ न जायें। उन्हें दूसरोंसे भी ऐसा ही करनेके लिए कहना चाहिए। इसके बाद श्री गांधीने असहयोग आन्दोलनमें अहिंसाके महत्वको विस्तारसे बताया। उन्होंने कहा यदि आपने कोई हिंसापूर्ण कार्य न किये तो सरकारको आपपर अपनी ताकत आजमानेका अवसर ही नहीं मिलेगा और सरकारके पास बहुत बड़ी शक्तिके होते हुए भी जीत आपकी ही होगी। जब लोग अहिंसाके महत्वसे पूरी तरह प्रभावित हो जायेंगे केवल तभी में जनतासे कर देना बन्द करने तथा सैनिकोंसे अपने शस्त्र त्याग देनेके लिए कहूँगा। उन्होंने आगे कहा, मुझे खेद है कि शुक्रवारकी हड़तालके[1] दिन कुछ छात्रोंने आम सड़कोंपर खड़े होकर लोगोंके कार्योंमें बाधा डाली। मुझे इस बातका भी दुःख है कि कुछ छात्र कलकत्ता विश्वविद्यालयके सामने लेट गये और उन्होंने दूसरे छात्रोंको परीक्षा देनेके लिए नहीं जाने दिया। ऐसा नहीं करना चाहिए था। उन्हें अपने विरुद्ध किसीको कुछ कहनेका अवसर नहीं देना चाहिए। इसके बाद श्री गांधीने स्वराज्यकी लड़ाईमें चरखेके महत्वपर प्रकाश डाला, और सबसे कहा कि वे चरखेको अपनायें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २-२-१९२१

१५३. पत्र : ड्यूक ऑफ कनॉटको[2]

[२ फरवरी, १९२१ के पूर्व]

महोदय,

श्रीमान्ने असहयोग, असहयोगियों और उनके तरीकोंके सम्बन्धमें एवं संयोगवश असहयोगके एक विनीत प्रणेताके रूपमें मेरे बारेमें बहुत-कुछ सुना होगा। मेरा खयाल है कि श्रीमान्को जो जानकारी दी गई है वह अवश्य ही एकपक्षीय रही होगी। आपके प्रति, अपने मित्रोंके प्रति और स्वयं अपने प्रति यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं आपके समक्ष उस असहयोगकी अपनी कल्पना प्रस्तुत करूँ जिसका अनुगमन केवल मैं ही नहीं, मेरे निकटतम साथी — जैसे श्री शौकत अली और मुहम्मद अली भी कर रहे हैं।

श्रीमान्के आगमनके अवसरपर श्रीमान्के स्वागतके बहिष्कार आन्दोलनमें मैं सक्रिय भाग ले रहा हूँ किन्तु वह मेरे लिए किसी हर्ष अथवा सुखका विषय नहीं है। मैंने

१. २८ जनवरी, १९२१ को ड्यूक ऑफ कनॉट कलकत्ता पहुँचे थे। उसी समय यह हड़ताल हुई थी। ड्यूकके आगमनका सम्पूर्ण बहिष्कार करनेके उद्देश्यसे नागरिकोंने उक्त हड़ताल की थी।

२. यह **यंग इंडिया** और दूसरे पत्रोंमें प्रकाशित हुआ था। सबसे पहले इसका प्रकाशन २ फरवरी, १९२१ को **अमृतबाजार पत्रिका**में हुआ था।

सरकारको लगभग ३० वर्षतक निरन्तर निष्ठापूर्वक स्वयंस्फूर्त सहयोग दिया है, क्योंकि मेरा पक्का विश्वास था कि मेरे देशको इसी मार्गपर चलनेसे स्वतन्त्रता मिलेगी। इसलिए मैंने अपने देशवासियोंको श्रीमान्‌के स्वागतमें कोई भाग न लेनेकी जो सलाह दी है वह मेरे लिए कोई छोटी बात नहीं है। हममें से किसीको भी एक अंग्रेज सज्जनके रूपमें आपके विरुद्ध कोई भी शिकायत नहीं है। हमें जैसी अपने किसी प्रियसे प्रिय मित्रकी सुरक्षाकी चिन्ता हो सकती है वैसी ही आपके शरीरकी भी है। अगर आपके जीवनपर कोई खतरा हो और मेरे किसी भी मित्रको उसका पता चल जाये तो मैं जानता हूँ कि वह अपने प्राण देकर भी आपकी रक्षा करेगा।

हमारी लड़ाई अंग्रेजोंसे व्यक्तिशः नहीं है। हम अंग्रेजोंको मारना नहीं चाहते। हाँ, हम उस प्रणालीको अवश्य नष्ट करना चाहते हैं जिसने हमारे देशवासियोंके शरीर, मन और आत्माको दुर्बल बना दिया है। हमने अंग्रेजोंके स्वभावमें निहित उस तत्त्वके विरुद्ध लड़ना तय किया है जिससे पंजाबमें ओ'डायरशाही और डायरशाही सम्भव हुई हैं और जिसके कारण इस्लामका मनमाना अपमान किया गया है — उस इस्लामका जो मेरे ७ करोड़ देशवासियोंका धर्म है। अंग्रेज अपने आपको उत्कृष्ट और प्रभुताशाली समझते हैं। इसीलिए अनेक महत्वपूर्ण मामलोंमें भारतके ३० करोड़ निरपराध लोगोंकी भावनाओंकी संयोजित रूपसे उपेक्षा की गई है। अब हम इस भावनाको सहन करनेकी बातको अपने आत्मसम्मानके विरुद्ध समझते हैं। यह हमारे लिए बहुत अपमानजनक है। आपको भी इस बातपर कोई गर्व नहीं हो सकता कि भारतके ३० करोड़ लोग चौबीसों घंटे एक लाख अंग्रेजोंसे प्राण-भय मानते हुए उनकी गुलामी करते रहें।

श्रीमान् उस प्रणालीको जिसका उल्लेख मैंने किया है, समाप्त करनेके लिए नहीं आए हैं, बल्कि उसकी प्रतिष्ठाको बल देकर उसे कायम रखनेके लिए पधारे हैं। आपकी पहली ही घोषणा लॉर्ड विलिंग्डनकी प्रशंसासे भरी पड़ी है। मुझे उन्हें जाननेका सौभाग्य प्राप्त है। मैं उन्हें एक ईमानदार, मृदुल स्वभावका सज्जन मानता हूँ। वे अपनी इच्छासे छोटेसे-छोटे प्राणीको भी चोट नहीं पहुँचाना चाहते; किन्तु एक शासकके रूपमें वे निश्चय ही असफल हुए हैं। वे उन लोगोंके इशारेपर चले हैं, जिनका हित अपनी सत्ताको मजबूत करनेमें है। द्रविड़ लोग क्या चाहते हैं सो वे समझ नहीं पा रहे हैं; और यहाँ बंगालमें आप एक ऐसे गवर्नरको[1] योग्यताका प्रमाण-पत्र दे रहे हैं जो एक आदरणीय सज्जन तो सुने जाते हैं, लेकिन जो बंगालके लोगोंके हृदय तथा उनकी आकांक्षाओंको बिलकुल नहीं जानते। बंगाल, कलकत्ता नहीं है; कलकत्तेका फोर्ट विलियम तथा उसके अन्य विशाल भवन, उस सुन्दर प्रान्तके सीधे-सादे और अत्यन्त संस्कृत किसानोंके हृदयहीन शोषणके द्योतक हैं।

असहयोगियोंने यही निष्कर्ष निकाला है कि वे ऐसे सुधारोंके धोखेमें नहीं आ सकते जिनमें भारतके संकट और अपमानके प्रश्नोंपर गहराईसे विचार नहीं किया गया हो। वे इस नतीजेपर भी पहुँचे हैं कि अधीर और रुष्ट होना भी ठीक नहीं

१. लॉर्ड रोनाल्डशे।

है। और न हमें अधीरता और रोषके वशीभूत होकर मूर्खतापूर्ण हिंसाका आश्रय लेना है। हम पूरी तरह स्वीकार करते हैं कि वर्तमान स्थितिके लिए हम भी एक हदतक दोषी हैं। हमारी गुलामीमें अंग्रेजोंकी तोपोंका उतना हाथ नहीं है जितना हमारा अपनी इच्छासे दिये हुए सहयोगका है।

इस प्रकार आपके हार्दिक स्वागतमें हम जो हिस्सा नहीं ले रहे हैं वह किसी भी अर्थमें आपके महान व्यक्तित्वके विरुद्ध प्रदर्शन नहीं है; बल्कि वह तो उस प्रणालीके विरुद्ध किया गया प्रदर्शन है जिसको बल देनेके लिए आप आये हुए हैं। मैं जानता हूँ कि इक्के-दुक्के अंग्रेज यदि चाहें भी तो अंग्रेजोंके स्वभावको एकाएक नहीं बदल सकते। यदि हम अंग्रेजोंकी बराबरीका दर्जा हासिल करना चाहते हैं तो हमें अपने दिलोंसे डर निकाल देना होगा। हमें उस सरकारके संरक्षणमें चलनेवाली शालाओं और अदालतोंसे अलग रह कर अपना काम चलानेकी सूरत निकाल लेनी चाहिए जिसे, यदि वह सुधरती नहीं है तो, हम नष्ट कर देनेपर तुले हुए हैं।

यह अहिंसात्मक असहयोग इसी कारण आरम्भ किया गया है। मैं जानता हूँ कि अभी हममें से सभी वाणी और कर्ममें अहिंसक नहीं बने हैं, लेकिन अभीतक जो-कुछ किया जा चुका है वह आश्चर्यजनक है, इसका विश्वास मैं श्रीमान्‌को दिलाता हूँ। लोग अहिंसाके रहस्य तथा मूल्यको खूब समझ गये हैं जैसा कि पहले कभी नहीं हुआ था। जो भी चाहे यह देख सकता है कि यह आन्दोलन एक धार्मिक और शुद्धिका आन्दोलन है। हम मद्यपान छोड़ रहे हैं। हम भारतको अस्पृश्यताके अभिशापसे मुक्त करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। हम विदेशोंसे आई भड़कीली चमक-दमकको छोड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं और एक बार फिरसे चरखेका आश्रय लेकर भारतकी प्राचीन और सरस जीवन पद्धतिको पुनरुज्जीवित कर रहे हैं। हमें आशा है कि हम इस प्रकार वर्तमान हानिकर संस्थाओंको नष्ट कर सकेंगे।

मेरा सादर निवेदन है कि श्रीमान् एक अंग्रेजकी हैसियतसे इस आन्दोलनका अध्ययन करें और यह देखें कि इसमें साम्राज्य और संसारकी कितनी भलाईकी सम्भावनाएँ निहित हैं। संसारमें जो भी अच्छी बातें हैं उनमें से किसीसे भी हमारा विरोध नहीं है। हम जिस ढंगसे इस्लामकी रक्षा कर रहे हैं उससे सब धर्मोंकी रक्षा होती है। हम भारतके सम्मानकी रक्षा करके मानव-जातिके सम्मानकी रक्षा कर रहे हैं,क्योंकि हमारे साधन किसीके लिए भी हानिकर नहीं है। हम अंग्रेजोंसे मित्रता रखना चाहते हैं; किन्तु वह मित्रता सिद्धान्त और व्यवहार दोनोंमें ऐसी होनी चाहिए जैसी दो बराबरके पक्षोंमें होती है और जबतक यह उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता तबतक हमें असहयोग अर्थात् आत्मशुद्धिकी क्रिया जारी रखनी चाहिए। मैं श्रीमान्‌से और उनकी मारफत हर अंग्रेजसे प्रार्थना करता हूँ कि वे असहयोगके दृष्टिकोणको समझें।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-२-१९२१

१५४. टिप्पणियाँ

स्वराज्य सभा

पुनर्गठनके प्रसंगमें यह सवाल किया गया है कि स्वराज्य सभाओं और होमरूल लीगों वगैरहका क्या होगा। मेरी रायमें इन सभाओंकी कार्रवाइयोंका उद्देश्य फिलहाल तो स्वराज्य ही होना चाहिए।

धीरजकी जरूरत

जिस ढंगके संगठनकी रूपरेखा मैंने तैयार की है उसके लिए काफी धैर्यकी जरूरत है। मुझे मालूम हुआ है कि बिहारके कुछ कार्यकर्त्ताओंने जोशमें आकर कीमतें घटानेके लिए वहाँके दुकानदारोंको धमकाना शुरू कर दिया है और यह भी पता चला है कि इसके लिए मेरे नामका इस्तेमाल किया गया है। ऐसी जोर-जबरदस्ती तो, जिस उद्देश्यके लिए हम काम कर रहे हैं, उसीको नुकसान पहुँचानेवाली होगी। अगर दुकानदार बेईमानी कर रहे हैं तो हमें उन्हें समझाना चाहिए; इसपर भी अगर वे न मानें तो सस्ता अनाज देनेके लिए हमें राष्ट्रीय दुकानें खोलनी चाहिए। असलियत तो यह है कि गल्लेके व्यापारियोंकी तादाद इतनी ज्यादा है कि वे आसानीसे ऊँची कीमतें नहीं ले सकते। जो भी हो, गल्ला-व्यापारियोंको सुधारना भी जरूरी है। अपने धन्धेमें ईमानदारी बरतने और देशका खयाल रखनेके लिए उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिए।

बिहारमें जागृति

लेकिन जब बड़े पैमानेपर जागृति होती है तो कभी-कभी ऐसी ज्यादतियाँ भी हो ही जाती हैं। यह खुशीकी बात है कि वहाँके नेताओंने तुरन्त स्थितिको सँभाल लिया और जिन लोगोंका इस घटनासे सीधा सम्बन्ध था उन्हें छोड़कर दूसरोंको इसके बारेमें शायद कोई पता ही नहीं चला। बिहारमें खामोशीके साथ, लेकिन अच्छी तरहसे संगठनका काम हो रहा है। बाबू राजेन्द्रप्रसाद वहाँ एक राष्ट्रीय कालेजके[1] प्रधानाचार्य बन गये हैं। उस कालेजमें कुछ बहुत काबिल प्राध्यापक भी हैं। उनकी यह संस्था अच्छी तरक्की कर रही है। जो प्राध्यापक वहाँ हैं, वे राजी-खुशीसे आये हैं और सिर्फ गुजर-बसर-भरकी तनख्वाह लेते हैं।

धरना देना

कलकत्ताके कुछ विद्यार्थियोंने धरना देनेका पुराना जंगली तरीका अख्तियार किया है। खुशीकी बात है कि यह तरीका शुरू होते ही बन्द कर दिया गया। उन्होंने अपने साथियोंका, जो विश्वविद्यालयमें फीस जमा करनेके लिए या शिक्षा विभागके किसी

१. यह कालेज पटनामें खुला था।

अधिकारीसे मिलनेके लिए जाना चाहते थे, रास्ता रोक दिया था। मैं इसे "जंगली तरीका" इसलिए कहता हूँ कि यह दबाव डालनेका बड़ा ही भद्दा तरीका है। मैं इसे कायरतापूर्ण भी कहता हूँ क्योंकि धरना देकर बैठनेवाला इस बातको अच्छी तरह जानता है कि कोई भी उसे कुचलकर आगे नहीं जायेगा। इस तरीकेको हिंसात्मक कहना तो जरा मुश्किल है, लेकिन यह है उससे भी बुरा। अगर हम अपने विरोधीसे लड़ते और हाथापाई करते हैं तो कमसे-कम उसे हाथ चलानेका मौका तो देते हैं। लेकिन यह जानते हुए भी कि वह हमारे ऊपर पैर रखकर आगे नहीं जायेगा, हम उसे वैसा करनेकी चुनौती देते हैं तो वह उसको नीचा दिखानेवाली बड़ी ही मुश्किल हालतमें पड़ जाता है। मैं ऐसा मानता हूँ कि जिन विद्यार्थियोंने बहुत जोशमें आकर धरना दिया उन्होंने कभी यह सोचा भी नहीं होगा कि उनका यह काम बर्बरतापूर्ण है। लेकिन जिस व्यक्तिसे आत्माकी आवाजपर चलने और मुसीबतोंसे अकेले भी जूझनेकी उम्मीद की जाती है वह बिना विचारे कुछ कर ही कैसे सकता है। असहयोग अगर नाकामयाब रहा तो वह असहयोग करनेवालोंकी कमजोरीकी ही वजहसे नाकामयाब होगा, वर्ना असहयोगमें हार नामकी कोई चीज है ही नहीं। वह कभी नाकामयाब नहीं होता। नामधारी असहयोगी असहयोगके पक्षको इतनी बुरी तरह पेश कर सकते हैं कि देखनेवालोंको यही लगे कि असहयोग नाकामयाब हो गया। इसलिए असहयोगियोंको, वे जो-कुछ भी करें, उसके बारेमें सतर्क और सावधान रहना चाहिए। जरा भी जल्दबाजी, बर्बरता और जंगलीपन, गुस्ताखी और बेजा दबाव, और जोर-जुल्म नहीं होना चाहिए। अगर हमें सच्चा जनवाद कायम करना है, तो हम असहिष्णु हो ही कैसे सकते हैं? असहिष्णुता तो अपने उद्देश्यमें आस्थाकी कमीको ही दरसाती है।

हिन्दुस्तानी सीखनेकी जरूरत

मैंने हरएक विद्यार्थीको यह सलाह दी है कि वह हमारी परीक्षाके इस एक सालमें सूत काते और हिन्दुस्तानी सीखे। मैं कलकत्ताके विद्यार्थियोंका आभारी हूँ कि मेरे सुझावके प्रति उन्होंने बड़ी अनुकूल प्रतिक्रिया दिखाई। बंगाल और मद्रास, ये दो ऐसे प्रान्त हैं जो बाकी सारे देशसे इसलिए कटसे गये हैं कि वहाँवाले हिन्दुस्तानी नहीं जानते। बंगाल तो इसलिए नहीं जानता कि वहाँवाले हिन्दुस्तानकी कोई भी दूसरी भाषा सीखनेके सख्त खिलाफ हैं; और मद्रास इसलिए कि मद्रासियोंको हिन्दुस्तानी मुश्किल पड़ती है। औसत बंगाली अगर रोज तीन घंटे लगाये तो बड़े मजेसे दो महीनेमें हिन्दुस्तानी सीख सकता है और मद्रासी इसी गतिसे छः महीनेमें, जब कि इतने ही समयमें औसत बंगाली या औसत मद्रासी इतनी अंग्रेजी नहीं सीख सकता। अंग्रेजीके जरिये हम देशके सिर्फ मुट्ठी-भर अंग्रेजी जाननेवाले भारतीयोंसे मिल-जुल सकते हैं, जबकि हिन्दुस्तानीका काम-चलाऊ ज्ञान प्राप्त करके अधिकांश लोगोंसे मिल-जुल सकते हैं। मैं उम्मीद करता हूँ कि कांग्रेसके अगले अधिवेशनमें[1] बंगाली और मद्रासी भाई हिन्दीका कामचलाऊ ज्ञान हासिल करके आयेंगे। जिस भाषाको देशके

१. यह अधिवेशन दिसम्बर १९२१ में अहमदाबादमें होनेवाला था।

ज्यादासे-ज्यादा लोग समझते हैं, उस भाषामें बोले बिना हमारी सबसे बड़ी मजलिस आमजनताके सामने कोई जीती-जागती मिसाल पेश नहीं कर सकती। मद्रासियोंकी मुश्किल मुझे खूब अच्छी तरह मालूम है, पर मैं यह भी जानता हूँ कि मातृभूमिके प्रति उनके प्रेमपूर्ण अध्यवसायके आगे कोई बाधा, कोई मुश्किल टिक नहीं सकती।

अंग्रेजीका स्थान

हिन्दुस्तानी सीखनेके साथ-साथ मैंने विद्यार्थियोंको यह सलाह भी दी है कि नीची स्थितिसे बराबरीका दर्जा हासिल करने, विदेशी हुकूमतसे निकलकर स्वराज्य प्राप्त करने, असहायताकी स्थितिसे उभरकर आत्मनिर्भर बननेके इस संक्रातिकालमें वे अंग्रेजी पढ़ना बन्द कर दें। अगर हम कांग्रेसके अगले अधिवेशनसे पहले स्वराज्य पा लेना चाहते हैं तो हमें इस बातके मुमकिन होनेका भरोसा करना ही चाहिए और इस लक्ष्यतक पहुँचनेकी जितनी कोशिश कर सकते हैं, करनी चाहिए; और ऐसा तो कुछ भी नहीं करना चाहिए जो हमें इस लक्ष्यकी ओर न ले जाये और उल्टे मार्गमें रोड़े अटकाये। इस समय अंग्रेजी सीखनेसे हम अपने लक्ष्यके करीब नहीं पहुँच सकते, उलटे उससे दूर ही हटेंगे और दूर हटनेका खतरा ही अधिक है, क्योंकि इस बातपर विश्वास करनेवाले बहुतसे लोग हैं कि अंग्रेजी शब्दोंकी मधुर झंकार कानमें गूंजे बिना और उसकी मीठी लय ओठोंसे निकले बिना हममें स्वराज्यकी भावना आ ही नहीं सकती। यह मूढ़ता है। अगर इसे सच मान लिया जाये तब तो स्वराज्य हमारे लिए आसमानका तारा ही रहेगा। अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारकी भाषा है, वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंकी, कूटनीतिकी भाषा है, उसके साहित्यका भण्डार बड़ा ही सम्पन्न है, उसके द्वारा हमें पश्चिमी विचारों और सभ्यताकी जानकारी प्राप्त होती है। इसलिए हममें से थोड़े-से लोगोंके लिए अंग्रेजीका ज्ञान जरूरी है। ये लोग राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंको चला सकते हैं और देशको पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और साहित्य एवं विचारोंकी श्रेष्ठतम उपलब्धियोंका ज्ञान करा सकते हैं। यही अंग्रेजीका उचित उपयोग होगा। मगर आज तो उसने हमारे मन-मन्दिरमें सबसे ऊँचा स्थान बना रखा है, और मातृभाषाओंको उनके उचित स्थानसे च्युत कर दिया है। अंग्रेजोंके साथ हमारा बराबरीका रिश्ता न होनेकी वजहसे अंग्रेजीको दी गई यह इज्जत बनावटी है। अंग्रेजीकी जानकारीके बिना भी भारतवासीकी बुद्धिका ऊँचेसे-ऊँचा विकास सम्भव होना चाहिए। अपने लड़के-लड़कियोंको यह सोचनेके लिए बढ़ावा देना कि अंग्रेजीके ज्ञानके बिना समाजके सबसे ऊँचे तबकेमें उनकी पहुँच हो ही नहीं सकती, देशके पुरुषत्व और खास तौरपर नारीत्वके साथ हिंसाका व्यवहार करना है। यह विचार घोर लज्जाजनक और बर्दाश्तके बाहर है। अंग्रेजीके व्यामोहसे छुटकारा पाना स्वराज्यकी एक जरूरी शर्त है।

मेरे 'पक्के साथी'

कमाण्डर वैजवुडने 'नेशन' में जो लेख लिखा है, उसमें उन्होंने स्वयं अपने प्रति न्याय नहीं किया है। मेरा खयाल है कि उन्होंने तथ्यों और व्यक्तियोंकी सही जानकारी

हासिल किये बिना ही वह लेख लिखा है। मेरे बारेमें उन्होंने जो गलत और अयथार्थ बातें लिखी हैं, उनके सम्बन्धमें मुझे कुछ नहीं कहना है; परन्तु मौलाना शौकत अलीके बारेमें वैजवुड साहबका अज्ञान सचमुच विस्मयकारी है। वे मौलाना शौकत अलीकी आत्मशक्तिके गुरको बिलकुल ही नहीं समझते। मुझे जिन ईमानदारसे-ईमानदार लोगोंसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त है, उनमें एक मौलाना साहब भी हैं। मैं मान ही नहीं सकता कि वे अंग्रेजों या किसीसे भी नफरत करते हैं। यह तो जरूर है कि वे अपने मजहबको अपनी जिन्दगीसे भी ज्यादा चाहते हैं। अहिंसामें वे विश्वास करते हैं, हालाँकि हिंसापर भी उनका उतना ही विश्वास है। खिलाफतके मामलेमें अगर वे अहिंसाके जरिये सम्मानपूर्ण समझौता न करा सके, और अगर उन्हें ऐसा लगा कि हिंसाके रास्तेपर चलकर वे अपने लोगोंका ज्यादा अच्छा और उपयोगी नेतृत्व कर सकते हैं, तो उन्हें वैसा करनेमें कोई हिचकिचाहट न होगी। और उनकी रायमें कभी हिंसाका सहारा लेना जरूरी हो ही गया तो वह भी इस तरह लिया जायेगा कि उसपर दुनियावाले किसी तरह उँगली नहीं उठा सकेंगे। अहिंसामें उनका विश्वास बिलकुल सतही ढंगका नहीं है; इतना ही नहीं, उन्होंने इसकी प्रेरणा पैगम्बर साहबकी जिन्दगीसे ग्रहण की है। जबतक अपना उद्देश्य अहिंसात्मक उपायोंसे हासिल होता दिखाई देगा वे हिंसाका सहारा न लेनेके धार्मिक आदेशसे बँधे हुए हैं। लेकिन वैजवुड साहबके लेखको पढ़नेसे यही मालूम पड़ता है कि मौलाना शौकत अली मानो खूनके प्यासे ही हों। कर्नल वैजवुड इतना तो जरूर ही जानते होंगे कि हिंसामें विश्वास करते हुए भी एक सैनिक दया, करुणा और उदारता आदि मानवीय गुणोंसे शून्य नहीं होता। मैं उन्हें यकीन दिलाता हूँ कि मौलाना साहब उतने ही अच्छे और दिलेर सैनिक हैं जितने कि खुद कर्नल साहब। मैंने यह जवाब देना इसलिए जरूरी समझा कि अंग्रेज लोग कहीं अली-बन्धुओं और भारतीय मुसलमानोंके दृष्टिकोणको गलत न समझ बैठें। अली-बन्धुओंने अपने-आपको, अपने मजहबवालोंको एक ऐसे समयमें, जब उनके जोशमें बहक जानेकी हर सम्भावना थी, संयमित रखकर मानवताकी बड़ी भारी सेवा की है। उनके इस अद्‌भुत आत्मसंयमसे इस बातका बहुत अच्छी तरह पता चल जाता है कि धर्ममें उनका विश्वास कितना गहरा और पक्का है। मुझे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि कर्नल वैजवुड-जैसे अंग्रेज भी बगैर सोचे-समझे ऐसी धारणा बना लिया करते हैं — ऐसी राय जाहिर कर बैठते हैं। अंग्रेज लोगोंका घटनाओं और तथ्योंको उनके असली रूपमें देखने-समझनेसे इस तरह इनकार करना शान्तिपूर्ण समझौतेकी राहमें सबसे बड़ी बाधा पहुँचाता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-२-१९२१

१५५. कताई, एक कर्त्तव्य

"स्वराज्यका गुर" शीर्षक लेखमें[1] मैंने यह बतानेकी कोशिश की है कि घर-घर कताई करनेका हमारे देशके लिए कितना महत्व है। भविष्यमें विद्यार्थियोंके लिए जो भी पाठ्यक्रम बने उसमें कताई एक अनिवार्य विषय रहना ही चाहिए। जिस प्रकार हम साँस लिये और खाना खाये बिना जिन्दा नहीं रह सकते, उसी प्रकार हर घरमें कताईको पुनरुज्जीवित किये बिना हम न तो स्वराज्य हासिल कर सकते हैं और न इस पुरातन देशसे गरीबीको ही मिटा सकते हैं। मैं तो हर घरके लिए चरखेको उतना ही जरूरी समझता हूँ जितना कि चूल्हेको। दूसरी कोई भी योजना लोगोंकी दिनों-दिन बढ़ती हुई गरीबीको मिटा नहीं सकती।

अब सवाल यह है कि घर-घरमें कताई किस तरह शुरू करवाई जाय? मैं बता ही चुका हूँ कि हर राष्ट्रीय स्कूलमें कताई और बाजाब्ता सूतका उत्पादन जारी कर देना चाहिए। एक बार हमारे लड़के-लड़कियाँ इस कलाको सीख-भर जायें फिर तो बड़ी आसानीसे वे इसे अपने घरोंमें भी चालू करवा सकेंगे।

लेकिन इसके लिए संगठनकी जरूरत है। हर दिन बारह घंटे चरखा चलाया जाना चाहिए। होशियार कातनेवाला घण्टे-भरमें ढाई तोला सूत कात सकता है। आज-कल चालीस तोला या एक पौंड सूतकी औसत कीमत चार आने है, यानी कि फी घंटा एक पैसा हुआ। इसलिए एक चरखेसे रोजाना तीन आनेका सूत तो निकलना ही चाहिए। अच्छे मजबूत चरखेकी कीमत सात रुपये है। अगर रोज बारह घंटे उसपर काम किया जाये तो उसकी पूरी कीमत ३८ दिनसे कममें ही निकल सकती है। हिसाब लगानेके लिए मैंने काफी आँकड़े दे दिये हैं। इन आँकड़ोंके आधारपर कोई भी हिसाब लगाकर देख सकता है। उसके नतीजे उसे चमत्कारिक ही लगेंगे।

अगर हर स्कूल अपने यहाँ चरखा लागू कर दे तो उससे शिक्षाके खर्चके बारेमें हमारे विचारोंमें क्रांतिकारी तबदीलियाँ हो जायेंगी। हम हर दिन छः घंटे स्कूल लगाकर विद्यार्थियोंको मुफ्त शिक्षा दे सकते हैं। मान लीजिए एक लड़का रोज चार घंटे चरखा चलाता है तो वह प्रति-दिन दस तोला सूत तैयार करेगा और इस तरह अपने स्कूलके लिए रोजाना एक आना कमा लेगा। यह भी मान लिया जाये कि पहले महीने उसका उत्पादन बहुत कम होगा और पूरे महीनेमें सिर्फ छब्बीस दिन ही स्कूल लगेगा, तो भी पहले महीनेके बादसे वह एक रुपया दस आने तो कमा ही सकता है। इस हिसाबसे तीस लड़कोंवाली कक्षासे पहले महीनेके बाद ४८ रुपए, १२ आने माहवार-की आमदनी होने लगेगी।

किताबी पढ़ाईके बारेमें मैंने कुछ नहीं कहा है। छः घंटोंमें से दो घंटे इसके लिए दिये जा सकते हैं। इस तरह हर स्कूलको आसानीसे आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है और राष्ट्र अपने स्कूलोंके लिए अनुभवी शिक्षकोंको नियुक्त कर सकता है।

१. देखिए "स्वराज्यका गुर", १९-१-१९२१।

इस योजनाको लागू करनेमें मुश्किल चरखोंकी है। यदि यह कला लोकप्रिय हो जाती है तो हमें हजारों चरखोंकी जरूरत होगी। सौभाग्यसे गाँवका हर बढ़ई इस यन्त्रको आसानीसे बना सकता है। आश्रमसे[1] या किसी भी दूसरी जगहसे चरखे मँगाना बड़ी भारी भूल है। कताईकी खूबी यह है कि वह जरा भी मुश्किल नहीं है, इसे आसानीसे सीखा जा सकता है और बहुत सस्तेमें इसे गाँव-गाँव सिखाया जा सकता है।

यह पाठ्यक्रम सिर्फ इस शुद्धीकरण और तैयारीके एक सालके ही लिए है। जब हम साधारण हालतमें पहुँच जायेंगे और स्वराज्य कायम हो जायेगा तो कताईके लिए सिर्फ एक घण्टा, और बाकी समय किताबी पढ़ाईके लिए रखा जा सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २–२–१९२१

१५६. प्रान्तोंका पुनर्गठन : कांग्रेसका नया संविधान

आशा है कि नये संविधानके[2] अनुसार विभिन्न प्रान्तोंने अपनेको पुनर्गठित करनेका काम शुरू कर दिया है। अगर हम एक सालके अन्दर स्वराज्य हासिल करना चाहते हैं तो हमें एक मिनटका समय भी नहीं खोना चाहिए। नीचे वे नियम[3] दिये जा रहे हैं जिनके अनुसार गुजरात प्रान्त नये आधारपर अपना पुनर्गठन कर रहा है। उनको सबके मार्ग-दर्शनके लिए छापा जा रहा है। इन नियमोंसे पता चलता है कि प्रतिनिधि भेजने और प्रान्तीय कांग्रेस समितियोंके सदस्योंका चुनाव करनेके लिए ताल्लुकोंको मानना ज्यादा सुविधाजनक है। प्रान्तीय समितिकी सदस्य-संख्या सौ रखी गई है, जिनमें से ९० तो सीधे चुने जायेंगे और फिर ये चुने हुए सदस्य दस या कुछ ज्यादा सदस्योंका चुनाव करेंगे, जो अल्पसंख्यकों और अन्य हितोंका प्रतिनिधित्व करेंगे। उद्देश्य यह है कि यदि साधारण सभाके निर्वाचक किसी कारणसे अल्पसंख्यकों और दूसरे हितोंके प्रतिनिधित्वका खयाल चूक गये हों तो भी इस तरह प्रान्तीय सभामें उनका प्रतिनिधित्व निश्चित हो जाता है। कोई गांव ऐसा नहीं रहना चाहिए जहाँ कांग्रेसका संगठन न हो; और गाँवके हर बालिग मर्द या औरतका नाम वहाँके सदस्यता-रजिस्टरमें दर्ज होना ही चाहिए।[4] इसके लिए ईमानदार और मेहनती कार्यकर्त्ता चाहिए। जब लाखों-करोड़ों लोग स्वेच्छासे कांग्रेसमें शरीक हो जायेंगे तो सरकारका जबरदस्ती लादा गया संगठन भी बिखर जायेगा। मैं सरकारी संगठनको इसलिए जबरदस्ती लादा हुआ मानता हूँ कि उसका आधार प्रेम और आशा नहीं, भय है। गाँवका पटेल या मुखिया गाँववालोंकी

१. साबरमती आश्रम।

२. देखिए "नागपुर अधिवेशनमें पास किया गया कांग्रेसका संविधान", दिसम्बर १९२०।

३. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

४. यहाँ मूल अंग्रेजी वाक्यमें तीन ऐसे शब्द आये हैं जिनकी जरूरत नहीं है और जिनसे अर्थ-विपर्यय भी हो जाता है।

इच्छाके अनुसार काम नहीं करता, वह एक ऐसी सरकारकी मर्जी उनपर लादता है, जिसका जनताकी भावनाओं और आकांक्षाओंसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २-२-१९२१

१५७. पत्र: एक मित्रको[1]

१४८, रसा रोड, कलकत्ता
२ फरवरी, १९२१

प्रिय मित्र,

मैंने सुना है कि आपके पड़ोसियोंने असहयोग आन्दोलनमें पर्याप्त रूपसे अपना योग नहीं दिया और इस कारण आपने भूख हड़ताल कर दी है। यद्यपि आपके कार्यसे आपके हृदयकी शुद्धता और त्यागकी भावना प्रकट होती है, फिर भी मेरी रायमें आपका यह कार्य जल्दबाजीसे भरा हुआ और कदाचित् अविचारपूर्ण भी है। अपनी नाराजगी या निराशा व्यक्त करनेके लिए उपवासको उचित नहीं ठहराया जा सकता। इसका आधार प्रायश्चित्त अथवा शुद्धीकरण होना चाहिए। इसलिए मैं आपसे उपवास बन्द कर देनेका आग्रह करता हूँ। देशके जिन भागोंमें लोग आपको जानते हैं आप वहाँ उनका संगठन करनेमें लग जायें। आपके उपवासके पीछे लोगोंको अपने विचारके अनुकूल बनानेके उद्देश्यसे दबाव डालनेका जो भाव छिपा हुआ है वह उचित नहीं है। हमें हरएक व्यक्तिको कार्यकी और भाषणकी वैसी स्वतन्त्रता देनी चाहिए जैसी हम अपने लिए चाहते हैं।

आपका विश्वस्त,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. उक्त मित्रका नाम ज्ञात नहीं हो सका।

१५८. भाषण : कलकत्तामें राष्ट्रीय महाविद्यालयके उद्घाटनपर[1]

४ फरवरी, १९२१

मित्रो,

आपने अभी यहाँ छात्रों द्वारा गाई हुई सुन्दर प्रार्थना[2] सुनी। मुझे आशा है कि आप सब इस प्रार्थनाकी भव्य भाषापर मनन करेंगे।[3] यदि इस संस्थामें हमारे सब कार्य प्रार्थनापर आधारित रहें तो हम सब निःसन्देह सफल होंगे और हम तथा हमारा देश अधिकाधिक यशका भागी होगा। पिछले कुछ महीनोंमें मुझे भारतके कई भागोंमें कई संस्थाओंका उद्घाटन करनेका शुभ अवसर मिला है। लेकिन मैं आपके सम्मुख यह बात स्वीकार करना चाहता हूँ कि किसी भी संस्थाका उद्घाटन करते हुए मैंने मनपर चिन्ता और आशंकाके ऐसे बोझका अनुभव नहीं किया जैसा इस समय कर रहा हूँ। मैंने एक जगह कहा था कि सभी लोगोंकी तथा छात्रजगत्की दृष्टि कलकत्तापर लगी हुई है। आपने अखबारोंमें छपे तमाम तार देखे हैं, और मैंने भी ऐसे अनेक तार देखे हैं जो अखबारोंमें नहीं छपे हैं। इन सभी तारोंमें देशके आह्वानका ऐसा शानदार उत्तर देनेपर छात्रोंको बधाई दी गई है। आपने यह भी देखा होगा कि आपके इस उत्तरके परिणामस्वरूप समस्त भारतके छात्र सरकारी संस्थाओंको छोड़ रहे हैं। इसलिए आपकी इस संस्थाके उपाध्यायों और अध्यापकोंकी, श्री दासकी और मेरी जिम्मेदारी भी बहुत बढ़ी है। अपने सम्बन्धमें मैं आपको यह विश्वास दिला सकता हूँ कि आप इस संस्थाको सफल बनानेके लिए जो कुछ करेंगे उसमें मेरी शुभ कामना आपके साथ होगी। लेकिन मैं जानता हूँ कि जबतक छात्र अपना कार्य नम्रतापूर्वक, मनमें ईश्वरका भय रखकर, धैर्यके साथ पूरे मनसे और देशके प्रति — जिसके नामपर तथा जिसके निमित्त उन्होंने सरकारी संस्थाएँ त्याग दी हैं — प्रेम और श्रद्धा रखते हुए नहीं करेंगे तबतक मेरी कोई भी शुभ कामना या शुद्ध हृदयोंसे निकल सकनेवाली कोई भी प्रार्थना कदापि उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती। जो छात्र ऊँची डिग्री या अपनी कल्पनाके अनुसार कोई

१. यह कालेज विलिंग्डन स्क्वेयरके एक विशाल भवनमें चित्तरंजन दास, जितेन्द्रलाल बनर्जी तथा अन्य व्यक्तियोंसे बने हुए शिक्षा-मण्डल द्वारा स्थापित किया गया था ।

२. **गीता**का एक श्लोक जो उद्घाटन समारोहके आरम्भमें गाया गया था ।

३. ५-२-१९२१ की **अमृतबाजार पत्रिका**में इस खबरके आरम्भमें ये शब्द और दिये गये थे: "श्री गांधीने कालेजका उद्घाटन करते हुए कहा, मुझे अपने मित्र और भाई चित्तरंजनदासके उपस्थित न होनेका बहुत दुःख है । उनकी तबीयत इतनी खराब है कि वे सभामें नहीं आ सकते, यद्यपि वे उद्घाटनके अवसरपर आना चाहते थे । श्री जितेन्द्रलाल बनर्जीने आपको बताया है कि वे इस संस्थासे क्या अपेक्षा रखते हैं । छात्रोंने जो सुन्दर प्रार्थना अभी गाई है वह आपने सुनी और मैं आशा करता हूँ कि आप सभी उस प्रार्थनाके सुन्दर स्वरूपपर विचार करेंगे ।"

बड़ा धन्धा अपनानेकी आकाँक्षा रखता है, यह [सरकारी संस्थाको छोड़ देना] उसके लिए कोई छोटा-मोटा काम नहीं है। ऐसी आकाँक्षा रखनेवाले छात्रके लिए यह सोचकर कि वह देशकी सेवा कर रहा है और इसलिए अपनी ही सेवा कर रहा है, उस आशा या आकांक्षा का त्याग करना आसान काम नहीं है। तथापि मुझे तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि आपको इन सरकारी संस्थाओंके छोड़नेपर कभी पछताना पड़ेगा। लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि यदि आप अपने समयका अच्छा उपयोग नहीं करेंगे, यदि आपने क्षणिक आवेशमें आकर इन संस्थाओंको छोड़ा है — हमारे देशका हित चाहनेवाले कई नेताओंने यह आशंका प्रकट की है — तो आजका दिन आपके लिए अवश्य ही पश्चात्तापका कारण सिद्ध होगा। मुझे आशा करनी चाहिए कि आप उक्त आशंकाको झूठा सिद्ध कर देंगे।

आप अपने कर्त्तव्यका पालन इस तरह करेंगे कि जिन लोगोंके मनमें आज आशंका है वे सालके अन्ततक अपने सन्देहोंको निराधार घोषित कर देंगे। मैं कलकत्ताके आप सभी छात्रोंसे, यह बात छिपाना नहीं चाहता कि भारतके दूसरे भागोंके भारतीयोंने आपके विषयमें क्या-कुछ कहा है। बहुतसे छात्रोंने, और अनेक प्रौढ़ लोगोंने भी, जिन्होंने मुझसे आपके आन्दोलनके सम्बन्धमें बातचीत की है, एक प्रकारकी घबराहट और भयका भाव प्रकट किया है। आपके बारेमें यह कहा जाता है कि आप लोग बहुत अधिक भावुक हैं, आपमें मानसिक आवेश भी बहुत है, और उद्योग और अध्यवसायके लिए आपकी ख्याति इतनी नहीं है।

आप एक नया मोड़ ग्रहण कर रहे हैं। आप अपने जीवनमें एक नये अध्यायका श्रीगणेश कर रहे हैं। आप अपने कंधेपर एक भारी जिम्मेदारी उठा रहे हैं। आप अपनी गणना भारतके भावी राष्ट्रनिर्माताओंमें कर रहे हैं। और यदि आप इस जिम्मेदारीको अनुभव करें तो मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भारतके दूसरे भागोंमें आपके बारेमें जो कुछ कहा जा रहा है, आप उस सबको निर्मूल सिद्ध कर देंगे। जो लोग बंगालको अच्छी तरह जानते हैं वे यह भी प्रमाणित कर सकते हैं कि बंगालियोंने अनेक अवसरोंपर अपने कर्त्तव्यका पालन करके दिखाया है; और कमसे-कम मैं तो इसे बिलकुल नहीं मानता कि जिन छात्रोंने सरकारी संस्थाएँ छोड़ी हैं और जो इस संस्थामें प्रविष्ट होंगे वे अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें कच्चे उतरेंगे। मैं यह भी आशा करूँगा कि उपाध्यायों और अध्यापकोंपर जो विश्वास किया गया है वे उसे सत्य सिद्ध करेंगे। मैं अत्यन्त विनम्रतापूर्वक उपाध्यायों और अध्यापकोंके सम्मुख वही बात कहना चाहता हूँ जो मैंने गुजरात राष्ट्रीय महाविद्यालयके[1] उद्घाटनकी रस्म पूरी करते हुए कही थी। बात यह है कि किसी भी संस्थाकी सफलता और असफलता बहुत कुछ उपाध्यायों और अध्यापकोंके सच्चे हृदयसे किये गये प्रयत्नोंपर निर्भर है। हमारे देशके इतिहासमें यह अवसर बहुत ही संकटका अवसर है और इस अवसरपर जो व्यक्ति देशमें नवयुवकोंके मानसका निर्माण करना चाहते हैं उनपर एक गम्भीर उत्तरदायित्व आ पड़ा है। यदि उपाध्याय

१. १५ नवम्बर, १९२० को अहमदाबादमें; देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ४८४-८९।

और अध्यापक असावधान पाये जाते हैं, यदि उनके मनमें सन्देह घर किये हुए है, यदि उनके मनमें भविष्यके सम्बन्धमें भयका भाव समाया हुआ है तो उनकी देख-रेखमें पढ़नेवाले छात्रका ईश्वर ही मालिक है। सर्वशक्तिमान प्रभुसे मेरी प्रार्थना है कि वह हमारे उपाध्यायों और अध्यापकोंको बुद्धिमत्ता, साहस, निष्ठा और आशा प्रदान करे।

मैंने अपने किसी एक भाषणमें छात्रोंसे कहा है कि उन्हें अपने मनके पाठ्यक्रमको हाथमें लेनेका अधिकार अवश्य है किन्तु उनका दूसरे छात्रोंके मार्गमें बाधा डालना उचित नहीं है। कदाचित् आपने आजके अखबारमें बारीसालके सम्बन्धमें प्रकाशित विवरण पढ़ा होगा। वहाँ जो-कुछ हुआ है उसका यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण है या नहीं सो मैं नहीं जानता। उस घटनाकी बात चाहे बढ़ाकर कही गई हो चाहे घटा कर, मैं इसकी परवाह नहीं करता; फिर भी इससे आपको और मुझे एक शिक्षा यह मिलती है कि हिंसाका आश्रय किसी भी अवस्थामें नहीं लिया जाना चाहिए, हमें किसी भी कारण किसीपर बेजा दबाव नहीं डालना चाहिए और जैसा कि मैंने पिछली एक सभामें कहा था, मुझे आशा है कि छात्रगण धरना नहीं देंगे। वे स्कूल और कालेज न छोड़नेवाले छात्रोंपर जरा भी दबाव नहीं डालेंगे। इतना काफी है कि जो इन संस्थाओंमें रहना पाप समझते हैं वे इनसे निकल जायें। यदि हमें अपने ऊपर पर्याप्त विश्वास है तो चाहे एक भी छात्र इस आह्वानका उत्तर न दे, हम फिर भी दृढ़ बने रहेंगे। आपके अधीर हो जानेसे यह प्रकट होता है कि अपने पुनीत कार्यपर आपको विश्वास नहीं है। हम अधीर होकर, हमने जो कुछ किया है, दूसरोंको भी वैसा ही करनेके लिए बाध्य करने लगते हैं। मैं समझता हूँ कि इस संस्थाके किसी भी छात्रको अपने कार्यके सही होनेके बारेमें कोई सन्देह नहीं है।

मैं जब एक महीनेके बाद आपसे फिर मिलूँगा, मुझे उम्मीद है कि मैं जरूर यहाँ आऊँगा, तब मैं आपसे यह आशा रखता हूँ कि आप मुझे अंग्रेजीमें भाषण देनेके लिए नहीं कहेंगे; बल्कि तबतक आप मेरा भाषण समझने लायक हिन्दुस्तानी सीख लेंगे। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जब आप हिन्दुस्तानी पढ़ना आरम्भ करेंगे तब आपमें से कुछको वह बहुत सरल और सुगम मालूम होगी। आपमें से कुछको उसके शब्द बिलकुल स्वाभाविक लगेंगे, क्योंकि बँगला, हिन्दी और भारतकी अधिकांश भाषाओंकी शब्दावली एक है। केवल द्रविड़ देशकी भाषाएँ अपवाद हैं। आप यह भी देखेंगे कि इससे आपको मानसिक खूराक मिलेगी और इससे पढ़े-लिखे बंगालियोंकी बौद्धिक आवश्यकताएँ पूरी होंगी। यदि आप साहित्य पढ़ना चाहेंगे तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हिन्दी और उर्दू दोनोंमें से जिस लिपिको आप सीखेंगे और पहले-पहल जिन किताबोंको आप पढ़ेंगे उन्हींमें आपको ज्ञानका छुपा हुआ भंडार मिलेगा। आप हिन्दी भाषाकी साहित्यिक दरिद्रताकी बात कहते हैं — आप वर्तमान हिन्दीकी गरीबीकी बात कहते हैं; किन्तु यदि आप तुलसीदासकी 'रामायण' को गहराईसे पढ़ें तो शायद आप मेरी इस रायसे सहमत होंगे कि संसारकी आधुनिक भाषाओंके साहित्यमें उसके मुकाबिलेमें कोई दूसरी किताब नहीं ठहरती। उस एक ही ग्रन्थने मुझे जितनी श्रद्धा और आशा दी है उतनी किसी

दूसरी किताबसे मुझे नहीं मिली। मेरा खयाल है वह हर तरहकी आलोचना और छानबीनके बाद साहित्यिक सौन्दर्य, अलंकार और धार्मिक प्रेरणा — सभी दृष्टियोंसे खरी उतरेगी।

मुझे यह भी आशा है कि जब मैं वापस आऊँगा तबतक आप सूत कातनेमें पर्याप्त उन्नति कर चुकेंगे और उस सूतको अपने उपयोगके लिए गाँवके किसी जुलाहेसे बुनवाने भी लगेंगे। सूत कातनेमें तो आश्चर्यजनक उन्नतिका आप पर्याप्त प्रमाण दे ही सकेंगे और मैं आशा करता हूँ कि यदि आप श्रद्धापूर्वक और भारतके भविष्यको ध्यानमें रखकर सूत कातेंगे तो आपको सूत कातनेमें वही रस और वैसा ही मानसिक सुख मिलेगा जैसा मुझे मिलता है। मैं यह भी आशा करता हूँ कि आपके उपाध्याय और अध्यापक बंगलामें भाषण देंगे और आपने सरकारी संस्थाओंमें जो ज्ञान प्राप्त किया है उस सबको आप अपने लिए बंगलामें अनुवादित कर लेंगे और आपने अंग्रेजीके कवियों और अंग्रेजीके साहित्यसे जो उच्च विचार प्राप्त किये हैं उन्हें व्यक्त करनेके लिए आप अपनी मातृभाषापर योग्य अधिकार प्राप्त कर सकेंगे।

मैं यह भी आशा करता हूँ कि आप अपना कार्य अत्यन्त निष्ठापूर्वक करेंगे। यदि हम अपने आन्दोलनको एक धार्मिक आन्दोलन नहीं मानते तो मैं आपके सम्मुख स्पष्ट रूपसे स्वीकार करता हूँ कि यह आन्दोलन सफल नहीं होगा; यही नहीं, बल्कि इससे हमारी और आपकी अपकीर्ति भी होगी। यह अपने आपको काममें लगानेका एक नया तरीका है और यदि हम यह सोचते हैं कि हम अपने पुराने तरीकोंमें कोई छोटे-मोटे परिवर्तन करके भारतकी समस्याओंको हल कर सकते हैं तो हमारे हाथ निराशा ही लगेगी। यदि आप इस कार्यको उसी धार्मिक उत्साहसे करेंगे जिसके लिए बंगाल प्रख्यात है तो मैं मानता हूँ कि स्वराज्य बहुत निकट आ जायेगा। ईश्वर आपकी सहायता करे, ईश्वर उपाध्यायोंकी सहायता करे और आपको वह बल दे जिसकी हमारे मित्र श्री चित्तरंजन दासको जरूरत है। मुझे इस संस्थाका उद्घाटन करते हुए बहुत प्रसन्नता हो रही है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९–२–१९२१

१५९. तार : जयरामदास दौलतरामको

झरिया
५ फरवरी, १९२१

दो महीनेतक सिन्ध आना असम्भव दीखता है।[1] कालेज जबतक राष्ट्रीय रहे हमें हस्तक्षेप करनेकी जरूरत नहीं। गिरधारीको[2] काम पसन्द हो तो वहाँ ठहर सकता है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्टैक्ट्स, १९२१, पृष्ठ १७६

१६०. पत्र : देवदास गांधीको

शनिवार [५ फरवरी, १९२१][3]

चि० देवदास,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे सोनेतक को समय मिलता नहीं, फिर तुम्हें पत्र कैसे लिख पाता?

मुझे लगता है कि फिलहाल तुम्हारा वहीं रहना ठीक होगा। बाको भी अच्छा लगेगा। तुम आश्रमकी कुछ समस्याएँ तो हल कर ही सकोगे। मैं यह भी चाहता हूँ कि तुम वहाँ कुछ अनुभव प्राप्त करो और धुनाई और कताईमें कुशल हो जाओ। मेरे पास इन दिनों जमनादास, डाक्टर और प्रभुदास हैं। सुरेन्द्र आज आ जायेगा। उसका रंगूनसे चला आना मेरी समझमें नहीं आया। प्रभुदासकी उससे कल पटनामें मुलाकात हुई थी। अभी दो व्यक्ति और आनेवाले हैं; परसराम और एक बंगाली सज्जन। इन्हें प्रोफेसर[4] मेरे हवाले करना चाहते हैं। उनकी समझमें वह व्यक्ति 'यंग इंडिया' के कामके लायक है। इतने सारे लोगोंमें तुम्हारा पता भी नहीं चलेगा और मैं परेशानीमें पड़ जाऊँगा। मैं इस संख्यामें कुछ कमी करनेकी बात सोच रहा हूँ। मेरा खयाल है, तुम वहाँ अनायास ही पहुँच गये हो और इसमें भलाई ही है। तुम्हारी जगहको

१. गांधीजी १९२१ में अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें सिन्ध गये थे।

२. आचार्य जे० बी० कृपलानीका भतीजा।

३. अन्तिम अनुच्छेदमें कहा गया है कि गांधीजीने यह पत्र बिहार जाते समय रेलमें लिखा था। १९२१ में बंगालका दौरा समाप्त कर चुकनेपर गांधीजी ५ फरवरीको धनबाद, बिहार पहुँचे थे। उस दिन शनिवार था। बिहार राष्ट्रीय विश्वविद्यालयके उद्घाटनके लिए वे ६ फरवरीको पटना पहुँचे थे।

४. आचार्य जीवतराम बी० कृपलानी (१८८६-   ); शिक्षाविद्, राजनीतिज्ञ; १९४६ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके अध्यक्ष।

या तो तुम ही भर सकते हो या फिर किसी भी व्यक्तिसे काम चल जायेगा। कोई किसीकी जगह नहीं भर सकता और अनिवार्य भी कोई नहीं है। मैंने तो यही तरीका अपनाया है। तटस्थताका अभ्यास करते रहना चाहिए।

मिसेज जोजेफ[1] फिलहाल तो प्रयागजी ही जायेंगी। और यह ठीक भी है। लगता है जोजेफ फिलहाल तो गिरफ्तार नहीं होता। मिसेज जोजेफकी वापसीमें क्या तुम्हें उनके साथ रहना पड़ेगा?

मैं चाहता हूँ कि तुम आश्रमके सारे काम सीख-समझ लो। मैं तुम्हें आज एक तार भी करूँगा। मैं यह पत्र बिहार जाते हुए रेलमें लिख रहा हूँ। डाक्टर और प्रभुदासको गयामें छोड़ आया हूँ। वहाँसे ये लोग पटना जायेंगे। हम लोग कल सवेरे फिर मिल जायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (एस० एन० ७६०५) से।

१६१. चरखेका आन्दोलन

चरखेका आन्दोलन ठीक चल रहा जान पड़ता है। देखता हूँ चरखेकी माँग अनेक जगहोंसे आ रही है। लेकिन यदि सभी लोग किसी एक ही स्थानके बने हुए चरखे माँगेंगे तो हमारी प्रगतिमें रुकावट आ जायेगी।

इस कामका फल जितना अच्छा है यह उतना ही आसान भी है। इसकी सफलता उसके आसान होनेमें ही निहित है। चरखा एक ऐसी सामान्य वस्तु है कि वह प्रत्येक गाँवमें बन सकता है। उसका हरेक हिस्सा, जिस गाँवमें लुहार अथवा बढ़ई है, उसमें बन सकता है। हिन्दुस्तानमें तीस करोड़की आबादी है, इसलिए यदि हम एक घरमें दस लोग गिनें तो तीन करोड़ घर हुए। जब हिन्दुस्तानमें तीन करोड़ चरखे चलने लगेंगे स्वराज्यवादियोंको तभी शान्ति मिलेगी। किन्तु यदि इतने चरखे एक ही स्थान-पर तैयार करने पड़ें तो काम रुक जायेगा।

हिन्दुस्तानमें ७,५०,००० गाँव हैं। इसलिए इस प्रवृत्तिमें इतने गाँवोंको हिस्सेदार बनाना चाहिए। ये गाँव २५० जिलोंमें बँटे हुए हैं। इसलिए यदि प्रत्येक जिलेमें एक व्यक्ति इस कार्यको करनेके लिए निकल पड़े तो यह प्रवृत्ति व्यापक रूप ग्रहण कर सकती है; और प्रत्येक जिलेकी चरखे सम्बन्धी आवश्यकता उक्त जिलेका कार्यकर्ता पूरी करे अथवा उसके सम्बन्धमें मार्गदर्शन करे; काम तभी आगे बढ़ सकता है।

चरखेसे सम्बन्धित जितनी भी माँगें की जाती हैं वे सिर्फ आश्रमसे ही की जाती हैं। इससे पता चलता है कि हम अभी अपने कारीगरोंतक नहीं पहुँचे हैं। हमें प्रत्येक गाँवकी अठारहों जातियोंमें से प्रत्येककी रुचि स्वराज्यके काममें पैदा करनी है।

१. मदुराके बैरिस्टर श्री जॉर्ज जोजेफकी धर्मपत्नी।

अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग ही स्वराज्य-आन्दोलनको चला सकते हैं, हम जैसे अपने इस सनक-भरे विचारसे मुक्ति पाते जा रहे हैं वैसे ही हमें इस बातको भी भूल जाना होगा कि यह आन्दोलन सिर्फ राजनीतिज्ञ ही उचित रूपसे चला सकते हैं।

स्वराज्यकी शिक्षा, हमारी प्राथमिक शिक्षा है। यह शिक्षा बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, सब वर्णोंके और सब धर्मोंके लोगोंको दी जानी है। उसके लिए अक्षर-ज्ञानकी जरूरत नहीं है। हमें इस राक्षसी राज्यका नाश करना है। इस राज्यसे हमारा कल्याण नहीं होगा। इसका नाश करनेका साधन अहिंसात्मक असहयोग है। असहयोगका अर्थ है हम सबमें सहयोग। हममें सहयोगका मतलब हुआ, हममें स्वतन्त्र होनेकी इच्छा और शक्ति। इस इच्छाको सफल बनानेकी शक्तिको प्राप्त करनेका सबसे बड़ा साधन चरखा है। इतना ज्ञान सब लोगोंको थोड़से समयमें ही दिया जा सकता है।

अतएव हमें अपने बढ़ई, लुहार, मोची और किसान आदि वर्गोको इस कार्यमें लगाना चाहिए। स्वामीनारायण मन्दिरका[1] निर्माण कारीगरोंने मजदूरी लिए बिना ही किया है। धनवानोंने उसके लिए धन दिया है। फिर स्वराज्यके भक्त स्वराज्यके मन्दिर-का निर्माण पारिश्रमिक लिये बिना क्यों न करें? मजदूर अपनी मजदूरी दें और धनी अपना धन। ऐसी भावना उत्पन्न करनेके लिए थोड़से ही लोगोंकी जरूरत है; लेकिन ये लोग होने चाहिए सच्चे सेवक।

फिलहाल तो चरखेकी सारी प्रवृत्ति अपंगवर्गमें ही चल रही है। मुझे तो ऐसा लगता है कि हम शिक्षित वर्गके लोग सच्चा स्वराज्य प्राप्त करनेमें अपंग हो गये हैं। हमें पता चल गया है कि स्वराज्य बातोंसे, भाषणोंसे, आवेदनोंसे और विलायत जानेवाले शिष्टमण्डलोंसे नहीं मिलेगा। स्वराज्य तो स्वधर्म है; और अब हम ऐसा मानने लगे हैं कि स्वराज्य वीरता और यज्ञसे ही मिलेगा। हमें इस मान्यताको व्यापक बनाना है और यह जिस दिन व्यापक हो जायेगी उसी दिन स्वराज्य मिल जायेगा। अगर हम इस कामको करें तो यह एक वर्षमें हो सकता है। इसीसे मैं बार-बार कहता हूँ कि एक वर्षमें स्वराज्य मिलना सम्भव है।

लेकिन इस लेखका विषय तो चरखा है। स्वराज्य प्राप्त करनेका अर्थ है प्रत्येक घरमें चरखा दाखिल करना और सूत कतवाना।

मुझसे चरखे मँगवानेके बजाय सब लोगोंको चरखे अपने-अपने गाँवोंमें ही बनवा लेने चाहिए।

हम डरते हैं, हम अनभिज्ञ हैं, इसीसे चरखेकी तलाश करनेमें इतना समय चला जाता है। हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें, सब प्रान्तोंमें कहीं-न-कहीं चरखा मिलेगा। हरएक मनुष्यको अपने गाँवोंमें और मुहल्लेमें उसकी तलाश कर लेनी चाहिए। चरखा मिल जाये तो बढ़ई खोज लेना चाहिए। कदाचित् उसे इस सम्बन्धमें ज्ञान होगा। यदि चरखा न मिले तो कहीं और से एक नमूना मँगवाकर वैसे ही अन्य चरखे बनवा लेने चाहिए।

१. वडतालमें।

लेकिन चरखेका अर्थ सिर्फ सूत कातना ही नहीं है। वह तो इस दिशामें पहला कदम है। रुईकी पूनियोंकी आवश्यकता पड़ेगी, इसके लिए रुई पींजनेवालेको ढूँढ़ना पड़ेगा, उससे विनती करनी पड़ेगी। उसे भी स्वराज्यका पाठ पढ़ाना पड़ेगा।

उपर्युक्त विचारोंको मैंने समय-समयपर व्यक्त किया है। फिर भी भिन्न शब्दोंमें या उन्हीं शब्दोंमें उन्हें बार-बार कहते रहना — दुहराना पड़ता है, क्योंकि अभी हममें कार्यशक्ति और कार्यकुशलता नहीं आई है।

जितनी चरखेकी माँग होती है उतनी ही खादीकी भी होती है। यदि अच्छा सूत मिल जाये तो सारे हिन्दुस्तानको ढाँकने योग्य खादी तैयार हो सकेगी।

सूत असली होना चाहिए। रुईमें से चाहे जैसे निकाले गये तारको सूत नहीं कहा जा सकता। सूत वह है जो बुना जा सके। उसे बटदार और एक-सा होना चाहिए और उसमें रुईकी गाँठें या किरी नहीं होनी चाहिए।

गुजरातमें इस हदतक चरखेका प्रसार हो गया है कि यदि उसके प्रति लोगोंके हृदयोंमें ननिक और श्रद्धा भाव आ जाये तो गुजरातमें ही एक वर्षमें करोड़ रुपयेकी खादी बुनी जा सकती है। इसका अर्थ यह है कि गुजरातके गरीब घरोंमें एक करोड़ रुपया आ जायेगा और फिर भी उससे पाखंड नहीं बढ़ेगा; क्योंकि जब गरीबोंको पेटमें अन्न डालनेके लिए पैसा दिया जाता है तब उसका फल शुभ ही होता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६–२–१९२१

१६२. सनातनी हिन्दू कौन है?

मुझसे पूछा गया है कि मैं अपने आपको कट्टर सनातनी हिन्दू क्यों कहता हूँ, अपने-आपको वैष्णव कैसे मानता हूँ। मुझे इन प्रश्नोंका उत्तर देना आवश्यक लगता है।

इसका उत्तर देनेसे सनातनी हिन्दूकी व्याख्या और वैष्णवकी पहचान स्पष्ट हो जायेगी।

मेरी मान्यता है कि जो व्यक्ति हिन्दुस्तानमें, हिन्दू-कुलमें जन्म लेकर वेद, उपनिषद्, पुराण आदि ग्रन्थोंको धर्म-रूप मानता है, जो व्यक्ति, सत्य-अहिंसा आदि पाँच यमोंमें श्रद्धा रखता है और यथाशक्ति उनका पालन करता है; जो व्यक्ति यह मानता है कि आत्मा है, परमात्मा है, आत्मा अजर और अमर होनेपर भी देह-क्रमसे संसारमें अनेक योनियोंमें आवागमन किया करता है, वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है और मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है तथा जो वर्णाश्रम और गोरक्षाको धर्म मानता है वह हिन्दू है। जो व्यक्ति यह सब माननेके अलावा वैष्णव सम्प्रदायको माननेवाले परिवारमें जन्मा हो और जिसने उसका त्याग न किया हो, जिस व्यक्तिमें नरसिंह मेहताने अपने 'वैष्णव जन' नामक भजनमें जिन गुणोंका वर्णन किया है उनका थोड़ा बहुत अंश भी हो और जो उन गुणोंको पूरी तरह पानेका प्रयत्न कर रहा हो वह वैष्णव है। मेरी दृढ़ मान्यता है कि उपर्युक्त गुण मुझमें बहुत अधिक अंशमें विद्यमान हैं और मैं उन्हें

और भी दृढ़ बनानेकी दिशामें प्रयत्न किया करता हूँ। इससे मैं अपने आपको विनम्र भावसे लेकिन दृढ़तापूर्वक एक कट्टर सनातनी हिन्दू और वैष्णवके रूपमें पहचाने जानेमें कोई संकोच नहीं करता। मेरी धारणा है कि हिन्दू-धर्मका सबसे महत्वपूर्ण बाहरी स्वरूप गोरक्षा है। इस गोरक्षामें आज हिन्दू-मात्र असमर्थ हो गया है। इसीसे हिन्दू समाजको मैं आज नपुंसक मानता हूँ और उसमें अपनेको सबसे कम। जो तपश्चर्या मैंने गोरक्षाके लिए की है और कर रहा हूँ, मुझे गाय तथा गो-वंशसे जो सहानुभूति है मैं नहीं समझता उससे अधिक किसी औरको होती होगी। मैं किसी ऐसे व्यक्तिको नहीं जानता जिसने गोरक्षाकी खातिर सोच-समझकर मेरे जितनी तपश्चर्या की हो। पशुओंको स्वयं हिन्दू ही अनेक प्रकारके दुःख देते हैं। जबतक हिन्दुस्तानमें हिन्दू गायके ऊपर दया-भाव नहीं रखते, मुसलमानोंकी प्रीति सम्पादन करके प्रेमकी खातिर उनसे गोवध बन्द करवा लेनेमें समर्थ नहीं होते, अंग्रेज हिन्दुस्तानमें जो गोवध कर रहे हैं उसको सहन करते हुए ब्रिटिश-साम्राज्यको सलामी देते हैं तबतक मैं समझता हूँ कि हिन्दू-धर्ममें ब्राह्मण और क्षत्रिय धर्मका लोप हो गया है। इसी कारण मैं वैश्य परिवारमें जन्म लेनेके बावजूद इन दोनों धर्मोका पालन करनेका सतत प्रयत्न कर रहा हूँ।

मेरे मतानुसार हिन्दू-धर्मका आन्तरिक स्वरूप सत्य और अहिंसा है। मैं बचपनसे ही सत्यका जिस सूक्ष्मताके साथ सेवन कर रहा हूँ उतना मैंने अपनी जान-पहचानके किसी व्यक्तिको करते हुए नहीं देखा। अहिंसाका जाग्रत लक्षण प्रेम — वैरका न होना है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि मैं प्रेमसे पूर्णतः आप्लावित हूँ। मुझे स्वप्नमें भी किसीके प्रति द्वेष-भाव उत्पन्न नहीं हुआ है। डायरके दुष्कृत्योंके बावजूद उसके प्रति मेरे मनमें वैर-भाव नहीं है। जहाँ-जहाँ मुझे दुःख दिखाई दिया, अन्याय नजर आया वहाँ-वहाँ मेरी आत्मा कराह उठी है।

हिन्दू-धर्मका तत्त्व मोक्ष है। मोक्षके लिए मैं निरन्तर प्रयास कर रहा हूँ। मेरी सारी प्रवृत्तियाँ मोक्षकी खातिर हैं। अपने देहके अस्तित्व और उसके क्षणभंगुर होनेके सम्बन्धमें मुझे जितना विश्वास है उतना ही आत्माके अस्तित्व तथा उसके अमरत्वके सम्बन्धमें है।

इन्हीं कारणोंसे मैं अपने-आपको कट्टर सनातनी हिन्दू मानकर सुखका अनुभव करता हूँ।

शास्त्रोंका मैंने गहरा अध्ययन किया है या नहीं, अगर कोई यह प्रश्न मुझसे पूछे तो मैं उससे कहूँगा, किया है और नहीं भी किया है; एक विद्वानके रूपमें मैंने उनका अध्ययन नहीं किया। मेरा संस्कृत-सम्बन्धी ज्ञान नहींके बराबर है। भाषामें मिलनेवाले अनुवादोंको भी मैंने बहुत कम पढ़ा है। एक भी 'वेद' मैंने पूरी तरहसे पढ़ा है, ऐसा दावा मैं नहीं कर सकता। तथापि धर्मकी दृष्टिसे मैंने शास्त्रोंको अवश्य जाना है। उनमें निहित रहस्यको मैं जान गया हूँ। 'वेद' पढ़े बिना भी मनुष्य मोक्षकी प्राप्ति कर सकता है, इस बातसे मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ।

शास्त्र पढ़नेकी, समझनेकी कुंजी मेरे हाथ लग गई है। जो शास्त्र-वचन सत्य अहिंसा और ब्रह्मचर्यका विरोधी हो वह चाहे कहींसे भी क्यों न मिला हो, अप्रामाणिक

है। शास्त्र बुद्धिसे परे नहीं है; जो शास्त्र बुद्धिगम्य न हों उन्हें हम ताकपर रख सकते हैं। मैं सारे उपनिषदोंको पढ़ गया हूँ। मैंने ऐसे उपनिषद् भी पढ़े हैं जिनके कुछ अंश मुझे बुद्धिगम्य नहीं जान पड़े हैं। इस कारण मैंने उन्हें आधारभूत ग्रन्थ नहीं माना है। शास्त्रोंका अक्षरशः पालन करनेवाला व्यक्ति कोरा पण्डित है ऐसा अनेक कवियोंने कहा है। शंकराचार्य आदिने एक-एक वाक्यमें शास्त्रोंका दोहन किया है और उन सबका तात्पर्य यह है कि हम ईश्वर-भक्तिके द्वारा ज्ञान प्राप्त करें और उससे मोक्षकी प्राप्ति करें। अखा भगतने कहा है कि :

जैसा भावे वैसे रहो
जैसे-तैसे हरिको लहो।[1]

जो शास्त्र मदिरापान, मांसभक्षण और पाखण्ड इत्यादि सिखाता है, उसे मैं शास्त्र नहीं कह सकता।

स्मृतियोंके नामपर घोर अधर्म हो रहा है। स्मृति आदि ग्रन्थोंका अक्षरशः पालन करनेके प्रयत्नमें हम अपने आपको नरकके काबिल बनाते हैं। स्मृतिसे भ्रममें पड़कर अपनेको हिन्दू कहनेवाला व्यक्ति व्यभिचार करता है और छोटी-छोटी लड़कियोंपर बलात्कार करने और करवानेके लिए तैयार रहता है।

आज हमारे सामने यह विकट प्रश्न है कि इन सब शास्त्रोंमें से हम किसे क्षेपक मानें; किसे ग्राह्य और किसे त्याज्य समझें। जितना कुछ मैंने ऊपर बताया है अगर आज उस प्रमाणमें ब्राह्मण धर्मका लोप न हुआ होता तब तो हम किसी ऐसे ब्राह्मण-से पूछ कर जो यम-नियम आदिके पालनसे शुद्ध हो गया हो और जिसने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, इसे जान लेते। ज्ञानके अभावमें भक्ति प्रधान हो जाती है। पाखण्ड, दम्भ, मद और माया आदि पाप जो वर्तमान सरकारमें अनेक रूपसे प्रकट हो रहे हैं उसके साथ असहयोग करके हम जब आत्मशुद्धि प्राप्त करेंगे तब कदाचित् हमें शास्त्रोंका सार देनेवाला कोई ज्ञानी पुरुष मिल जायेगा। तबतक हम प्राकृत लोग सरल भावसे मूल तत्त्वोंका पालन करते हुए और हरिभक्ति करते हुए इस संसारमें विचरण करें। इसके अलावा मुझे कोई और मार्ग नहीं सूझ पड़ता।

'गुरु बिन ज्ञान न होय' यह स्वर्ण वाक्य है। लेकिन गुरु मिलना ही कठिन है और सद्गुरुके अभावमें किसीको भी गुरु मान बैठनेका मतलब होगा संसार-सागरमें डूब जाना। गुरु वह है जो पार लगाये। जो स्वयं तैरना नहीं जानता वह औरोंको क्या पार लगायेगा? सच्चे गुरु आजकल हों भी तो एकाएक देखनेमें नहीं आते।

आइये, अब हम वर्णाश्रमपर विचार करें। मैंने तो हमेशासे यही माना है कि चार वर्णोंके बाद फिर कोई वर्ण नहीं है। मेरी मान्यता है कि वर्ण जन्मजात ही होता है। ब्राह्मण कुलमें जन्म लेनेवाला ब्राह्मण रहकर ही मरता है, कर्मसे भले ही वह अब्राह्मण हो लेकिन ब्राह्मण देह नहीं मिटता। ब्राह्मण धर्मका पालन करनेवाला ब्राह्मण अपने कर्मानुसार क्षुद्रयोनि और पशुयोनिमें जन्म लेता है। मेरे जैसा ब्राह्मण और

१. जुतर आवे तेम तुं रहे;
जेम तेम करीने हरिने लहे।

क्षत्रियधर्मका पालन करनेवाला वैश्य अगर जन्म-चक्रमें पड़े तो वह दूसरे जन्ममें भले ही ब्राह्मण अथवा क्षत्रियके घरमें जन्म ले, इस जन्ममें तो उसे वैश्य ही रहना होगा; और यही सच भी है। हिन्दू-धर्ममें समय-समयपर अन्य धर्म आकर मिलते रहते हैं लेकिन वे उसी कालमें हिन्दू-धर्मके रूपमें स्वीकार्य नहीं हुए। हिन्दू-समाज एक दरिया है, उसके गर्भमें समाकर सब कचरा साफ हो जाता है, शान्त हो जाता है। ऐसा होता ही रहा है। इटली, ग्रीस आदि देशोंके लोग आकर हिन्दू-धर्ममें समा गये हैं; लेकिन उन्हें किसीने हिन्दू बनाया नहीं था, कालान्तरमें अपने-आप ऐसी कमोबेशी होती रही। भगिनी निवेदिता[1]-जैसे लोगोंके हिन्दूधर्म स्वीकार कर लेनेपर भी हम उन्हें हिन्दूके रूपमें नहीं पहचानते और उनका बहिष्कार अथवा तिरस्कार भी नहीं करते। हिन्दू 'धर्म'में आनेकी किसीको कोई आवश्यकता महसूस नहीं होती, हिन्दू धर्मका 'पालन' सब कोई कर सकते हैं।

वर्णाश्रम एक कानून है, उसका व्यावहारिक रूप जाति है। जातियोंमें कमती-बढ़ती होती रहती है, उनकी उत्पत्ति और उनका लय होता ही रहता है। व्यक्ति स्वयं हिन्दू-धर्मका परित्याग कर सकता है लेकिन व्यक्तिका बहिष्कार जाति ही करती है। जाति-बहिष्कार एक प्रकारका दण्ड है और यह सब जातियोंके लिए सुलभ होना ही चाहिए।

यह निःसन्देह जरूरी है कि बहुत सारी जातियाँ मिलकर एक हो जायें और इस प्रकार जातियोंकी संख्या कम हो जाये ? जाति परिषदें हिन्दू-धर्मको आघात पहुँ-चाये बिना भी यह काम कर सकती हैं। अनेक वणिक जातियाँ एक हो जायें, उनमें परस्पर शादी-ब्याह होने लगें तो इससे धर्मको कोई नुकसान नहीं पहुँचता।

पानी, अन्न और शादी-ब्याहके सम्बन्धमें हिन्दू जिन नियमोंका पालन करते हैं सो कोई हिन्दू-धर्मके आवश्यक चिह्न समझकर नहीं। हिन्दू-धर्ममें संयमको प्रधानपद दिये जानेके कारण पानी, भोजन और विवाह आदि सूक्ष्म प्रतिबन्धोंका पालन किया जाता है। इसे मैं निन्द्य नहीं मानता तथापि जो इसका पालन नहीं करते उन्हें मैं धर्म-भ्रष्ट हुआ भी नहीं समझता। प्रत्येक स्थानपर पानी, भोजन, विवाह आदिका व्यवहार न रखनेकी बातको मैं शिष्टाचार मानता हूँ, उसमें आरोग्य और पवित्रताकी रक्षा निहित है; लेकिन तिरस्कारके रूपमें किसीके घरके भोजन अथवा पानीका त्याग करना हिन्दू-धर्मके विरुद्ध है, ऐसी मेरी मान्यता है। अनुभवपर आधारित मेरी यह दृढ़ मान्यता है कि परवर्ण अथवा परधर्मके व्यक्तिके साथ शादी-विवाह अथवा खाने-पीनेपर जो प्रतिबन्ध है वह हिन्दू-धर्मकी संस्कृतिके [पौधेके] लिए बाड़ है।

पूछा जा सकता है, ऐसा माननेपर भी मैं मुसलमानोंके यहाँ भोजन क्यों कर लेता हूँ ? इसलिए कि मैं उनके यहाँ भोजन करते हुए भी संयम-धर्मका पूरा पालन कर सकता हूँ। पकी हुई चीजमें डबलरोटी ही लेता हूँ क्योंकि डबलरोटी पकानेकी क्रिया बिलकुल शुद्ध है और जिस तरह खीलको किसी भी जगह पकाकर खाया जा सकता है उसी प्रकार रोटी (चपाती नहीं) चाहे जिस स्थानसे ली जा सकती है।

१. मार्ग्रेट इ० नोबल, (१८६७–१९११); विवेकानन्दकी एक अमेरिकी शिष्या।

तथापि मेरे साथी उतने संयमका पालन नहीं करते और मुसलमान तथा अपनेसे इतर वर्णोंके लोगोंके यहाँ शुद्ध रीतिसे पका हुआ खाद्य पदार्थ भी ले लेते हैं। ऐसा करनेमें वे जाति बहिष्कारकी जोखिमको अपने सिरपर लेते हैं, लेकिन इससे कोई उनके हिन्दू होनेके अधिकारको नही छीन सकता। मेरे आश्रमके लोग संन्यासियोंपर लागू होनेवाले कुछ नियमोंका पालन करते हैं। वहाँ हिन्दू-धर्मका अनुकरण करनेवाली नवीन जाति अथवा नवीन व्यवहारका — जो इस युगधर्मके अनुकूल हो — निर्माण हो रहा है। इस कार्यको मैं एक प्रयोग मानता हूँ जो फलीभूत होनेपर अनुकरणीय होगा और निष्फल होनेपर इससे किसीको कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा, क्योंकि प्रयोगका मूल आधार संयम है। उद्देश्य यह है कि सेवाधर्मका आसानीसे पालन किया जा सके और आज जब कि धर्म सिर्फ खाने-पीनेकी बातों तक ही सीमित रह गया है उस रिवाजको उसका उचित और गौण स्थान दिया जा सके।

अब रही अस्पृश्यता। अस्पृश्यताके विचारकी उत्पत्ति कब हुई, इसके बारेमें निश्चित रूपसे कुछ नहीं कहा जा सकता; मैं भी सिर्फ अनुमान ही लगा सकता हूँ। और वह सच भी हो सकता है या झूठ भी; लेकिन अस्पृश्यता अधर्म है — यह तो एक अन्धा भी देख सकता है। जिस तरह रूढ़ दुर्बुद्धि हमें अपनी आत्माको नहीं पहचानने देती, उसी तरह हम उसके कारण अस्पृश्यतामें निहित अधर्मको भी नहीं देख पाते। किसीको भी पेटके बल चलाना, गाँवसे बाहर अलग रखना, वह मरता है या जीता इसकी परवाह न करना, उसे जूठा भोजन देना धर्म कदापि नहीं हो सकता। पंजाबके जिस अन्यायके विरुद्ध हम आवाज उठा रहे हैं उससे कहीं अधिक अन्याय हम अन्त्यजोंपर करते हैं। अन्त्यज पड़ौसमें रह नहीं सकते, अन्त्यज अपनी जमीन नहीं रख सकते, अन्त्यजोंको देखते ही हम 'अलग रहो, छूना नहीं' चिल्ला उठते हैं, अन्त्यजको अपनी गाड़ीमें बैठनकी हम अनुमति नहीं देते — यह सब हिन्दू-धर्म नहीं, यह तो डायरशाही है। अस्पृश्यतामें संयम नहीं है; माँ मैला उठानेके बाद स्नान किये बिना किसीको नहीं छूती, यह उदाहरण अस्पृश्यताका समर्थन करनेके लिए दिया गया है। लेकिन वहाँ तो माँ स्वयं किसीसे छू जाना नहीं चाहती। अगर भंगीके सम्बन्धमें भी हम इसी नियमका पालन करें तो किसीको कोई एतराज न हो। भंगी आदिको अस्पृश्य मानकर हम गन्दगीको सहन करते हैं और रोगोंको उत्पन्न करते हैं। यदि हम अस्पृश्यको स्पृश्य मानें तो हम अपने समाजके उस अंगको साफ रखना सीख जायेंगे।

भंगियोंके घरोंको तो मैंने अनेक वैष्णवोंके घरोंसे साफ पाया है। उनमें से कुछेक लोगोंकी सत्यवादिता, सरलता और दया आदिको देखकर मैं चकित रह गया हूँ। मेरी मान्यता है कि हिन्दू-धर्ममें अस्पृश्यता रूपी कलिने प्रवेश किया इसीसे हम पतित हो गये और उसके परिणामस्वरूप गोमाताकी रक्षा करनेमें भी समर्थ नहीं बचे। जब-तक हम इस डायरशाहीसे मुक्त नहीं होते तबतक अंग्रेजी डायरशाहीसे मुक्त होनेका हमें कोई अधिकार नहीं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ६–२–१९२१

१६३. भाषण: पटनामें[1]

६ फरवरी, १९२१

महात्मा गांधीने बैठे-बैठे भाषण शुरू करते हुए कहा: मुझे इस बातकी बड़ी लज्जा है कि मैं और मौलाना मजहरुल हक इंग्लैंडमें साथ-साथ रहे और भारत लौटते हुए भी हम एक ही जहाजमें[2] थे; फिर भी मैं इसे भूल गया। जब मुझे इस बातकी याद दिलाई गई तब मुझे स्मरण आया। लेकिन मुझे प्रसन्नता है कि दक्षिण आफ्रिकासे भारत वापस आ जानेके समयसे लेकर मौलाना मजहरुल हकके साथ मेरी मित्रता लगातार बढ़ती रही और दरअसल मैं पटनामें उनके घरको अपना ही घर मानता हूँ। उन्होंने आपको बताया है कि खिलाफतके मामलेमें सबसे पहले मैंने आवाज उठाई थी। यदि यह बात सच है तो इस तरह मैंने केवल अपना कर्त्तव्य ही निभाया है। चूँकि मैं एक पक्का हिन्दू हूँ और अपने धर्मके अनुसार जीवन बिताना चाहता हूँ, इसलिए मैंने यह अनुभव किया कि मुझे मुसलमानोंके प्रति मैत्रीभाव रखना ही चाहिए। मुझे उनके धर्मका साथ देना चाहिए और अपने धर्मकी तरह ही उनके धर्मकी रक्षा करनी चाहिए। मैं आपको फिर विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि जबतक खिलाफतके अन्यायका सन्तोषजनक रूपसे निराकरण नहीं हो जाता तबतक मुझे सन्तोष नहीं होगा, भले ही इस प्रयत्नमें मुझे अपने प्राण ही क्यों न देने पड़ें। मौलाना मजहरुल हकने आपको यह बताया है कि इस राष्ट्रीय महाविद्यालयका उद्घाटन करके हम स्वराज्यकी नींव डाल रहे हैं। मेरे मित्र श्री हकने इस महाविद्यालयकी स्थापना कर दी है। मैं तो सिर्फ औपचारिक रस्म पूरी कर रहा हूँ। मैंने आज प्रातः जब छात्रोंको श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करते हुए देखा तो मेरे मनमें यह प्रश्न उठा कि क्या हमारे किसी सरकारी कालेजमें इस तरहकी प्रार्थना की जाती है। मुझे खयाल आया कि अब हमारे भीतर एक उचित भाव पैदा हो रहा है। मुझे राष्ट्रीय महाविद्यालय और राष्ट्रीय विश्वविद्यालय दोनोंका उद्घाटन करना है। विद्यापीठ हमारे राष्ट्रीय विश्वविद्यालयका काम देगी। यह प्रान्तकी राष्ट्रीय संस्थाओंमें शिक्षणको नियन्त्रित करेगी, पाठ्यक्रम निर्धारित करेगी और सामान्यतः राष्ट्रीय शिक्षाका संचालन करनेका साधन होगी। हमने मौलाना हकको कुलपति, बाबू ब्रजकिशोर प्रसादको उपकुलपति और बाबू राजेन्द्र प्रसादको प्रधानाचार्य एवं कुल-सचिव (रजिस्ट्रार) चुना है। प्रान्तीय महाविद्यालय शिक्षा-समितिके[3] सदस्य इसकी सीनेटके सदस्य होंगे और अभिषद् (सिंडीकेट) उन्हींमें से

१. यह भाषण बिहार राष्ट्रीय विश्वविद्यालय और राष्ट्रीय महाविद्यालय, पटनाके उद्घाटन समारोहके अवसरपर दिया गया था।

२. सन् १८९१ में।

३. बिहारमें कांग्रेस द्वारा नियुक्त समिति।

बनाई जायेगी। मैं चाहता हूँ कि आप जिस उद्देश्यके लिए काम कर रहे हैं उसकी महानताका अनुभव करें। मुझे यह जानकर प्रसन्नता होती है कि सब उपाध्याय और इन संस्थाओंसे सम्बन्धित अन्य लोग बिहारके खरे और उत्साही कार्यकर्ता हैं। बाबू ब्रजकिशोर और बाबू राजेन्द्रप्रसाद मेरे लिए भाईके समान हैं और मेरा उनका साथ चम्पारनमें उस समय[1] बहुत दिनोंतक रहा और हमने साथ-साथ मिलकर काम किया, जब वहाँ हमारे साथ आने और काम करनेके लिए बहुत कम लोग तैयार होते थे। मुझे विश्वास है कि उनके नेतृत्वमें हमारी संस्थाका काम बड़े जोशके साथ आगे बढ़ेगा, क्योंकि मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वे ऐसे आदमी हैं जो इस कामके लिए प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राण भी दे देंगे। मैं आप उपाध्यायोंसे यह कहना चाहता हूँ कि आप अपनी प्राचीन महान संस्कृतिके अनुरूप और अपने पुराने ऋषियोंके आदर्शके अनुसार जीवन बितायें; यदि आपने ऐसा किया तो विश्वास रखें कि इस संस्थाकी बुनियाद डालना सचमुच स्वराज्यकी बुनियाद डालना ही है। छात्रोंको सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा; कालिदासने एक जगह कहा है, "नवदीक्षित शिष्य जितना ज्ञान ग्रहण कर सकता है, गुरु उसको उतना ही दे सकता है।" हमारे भीतर जितनी प्रतिभा होगी शिक्षाके द्वारा उसीका रूप व्यक्त किया जा सकेगा। गुरुका काम है कि वह छात्रकी उसके अन्दर विद्यमान प्रतिभाको विकसित करे और उसे प्रकाशमें लाये। आशा है कि इस महाविद्यालयके छात्र अपने गुरुजनोंसे इस तरह ज्ञान प्राप्त करेंगे और अपना जीवन इस तरह बितायेंगे कि यह संस्था देशके लिए आदर्श बन जाये।

पाण्डे जगन्नाथ प्रसादजीने हमारे सामने जो प्रार्थना पढ़कर सुनाई है उसमें मुझे हमारे कामकी कुंजी दिखाई पड़ी है — हम सत्यको प्राप्त करें, अन्धकारसे प्रकाशमें प्रवेश करें और मृत्यु-जैसी अवस्थासे जीवनमें प्रवेश करें। यह असहयोग है और हमारे द्वारा स्वराज्यकी प्राप्ति प्रकाशमें प्रवेशका लक्षण है। हम अपनी वर्तमान ढोंगी सरकारसे सहयोग करके उसके सम्पर्क-दोषसे स्वयं दूषित हो गए हैं और उसके अपराधमें साझेदार भी बन गये हैं। हमने अबतक इसलिए ऐसा किया है क्योंकि हम भी वैसे ही पापी हैं। किन्तु फिर भी हम ईश्वरमें विश्वास रखते हैं और उससे डरते हैं। अन्ततोगत्वा हमें यह प्रतीति हो गई कि यह सरकार गलत रास्तेपर है और इसकी शासन-प्रणाली दूषित है; इसलिए हम इस निर्णयपर पहुँचे हैं कि जबतक इसकी कायापलट नहीं हो जाती तबतक हम इससे सहयोग नहीं कर सकते। मैं न तो साम्राज्यसे और न उसके संचालकोंसे घृणा करता हूँ। मैं तो उसकी प्रणालीको नष्ट करनेपर तुला हुआ हूँ। मेरे मनमें किसीके लिए भी घृणा नहीं है और इन लोगोंके लिए भी प्रेम-भावके सिवा मेरे मनमें कोई दूसरा भाव है ही नहीं। किन्तु यदि मेरे पिता या भाई भी ऐसा ही आचरण करते, जैसा सरकारने किया है, तो भी मैं यही अनुभव करता कि उनसे सम्बन्ध तोड़ देना मेरा कर्त्तव्य है। यदि कोई पुत्र अपने पापी पिताके साथ रहता है

१. १९१७ में।

तो वह उस कारण अपने पिताके अपराधमें भागीदार बन जाता है और कोई भी धर्म ऐसी साझेदारीकी, चाहे वह पिता और उसके पुत्रके बीच ही क्यों नहो, अनुमति नहीं देता। ईश्वरका यह स्पष्ट और अनिवार्य आदेश है कि यदि किसीके निकटतम और प्रियजन पापरत हों तो वह उनसे सहयोग करना बन्द कर दे।

इसलिए विश्वविद्यालयका पहला कार्य असहयोगके आदर्शकी शिक्षा देना और उसके मूलभूत सिद्धान्त, पूर्ण अहिंसा, पर जोर देना होगा। इसके बाद गांधीजीने कलकत्तामें छात्रों द्वारा दिये गये धरनेका और अपने उन मित्रोंपर जो उनके साथ सम्मिलित नहीं होना चाहते थे, डाले गये अन्य दबावोंका उल्लेख किया। उन्होंने कहा : मुझे श्री शास्त्री[1] और परांजपेके[2] साथ बम्बईमें किये गये व्यवहारकी बात सुन कर बहुत दुःख हुआ है। मैं आपसे कहना चाहताहूँ कि ये लोग सचमुच ही सच्चे देशभक्त हैं। यदि ये व्यक्ति भारतके शत्रु हैं तो मैं उसका मित्र कैसे हुआ? उन लोगोंका आन्तरिक विश्वास है कि सरकारसे सहयोग करके देशका हित सधेगा और गांधी देशको गलत रास्तेपर ले जा रहा है। ऐसे मतभेद तो अवश्य ही होते रहेंगे; लेकिन उनका आशय यह कभी नहीं हो सकता कि ये लोग देशभक्त नहीं — देशके शत्रु हैं। उनके प्रति शर्म-शर्मके नारे लगाना और उनकी आदरपूर्वक बात न सुनना छात्रोंका कर्त्तव्य नहीं है। यदि छात्र उनकी सलाहको सम्मानपूर्वक और ध्यानसे सुनते तो ऐसा करना भारतकी प्राचीन संस्कृतिके अनुरूप होता। सभाओंमें विघ्न उपस्थित करना, शोर मचाकर वक्ताओंको बैठा देना, उनपर पत्थर तक फेंकना अंग्रेज लोगोंका रिवाज है। श्री लॉयर्ड जॉर्ज और श्री चर्चिलको[3] शोर मचाकर और पत्थर फेंककर बैठा दिया गया था। लेकिन यह स्वभाव भारतकी संस्कृति और सभ्यताके विपरीत है और यदि आप असहयोगको वस्तुतः सच्चे हृदयसे चलाना और सफल बनाना चाहते हैं तो आपको यह छोड़ना पड़ेगा। "शर्म-शर्म"के नारोंसे लोग कभी मित्र नहीं बन सकते और न हमारे विरोधी हमारे समर्थक हो सकते हैं। यदि हम उनसे प्रेम करें और आदरपूर्वक बरतें तो हम कभी-न-कभी उनको मित्र बना सकते हैं।

मुझे आशा है कि विश्वविद्यालय अपनी शक्तिका उपयोग केवल हमारे साहित्यिक ज्ञानकी वृद्धिमें ही नहीं करेगा; उसका मुख्य कर्त्तव्य तो युवकोंके मस्तिष्कोंमें हमारी सभ्यताके सिद्धान्तोंको बद्धमूल करना और उनमें स्वतन्त्रताकी सच्ची और उत्कट आकांक्षा

१. श्रीनिवास शास्त्री।

२. रैंगलर रघुनाथ पुरुषोत्तम परांजपे (१८७६-१९६६); शिक्षा-शास्त्री; उदारदलीय राजनीतिज्ञ; पूनाके फर्ग्युसन कालेजके प्रिंसिपल; बम्बई सरकारमें शिक्षा-मन्त्री (१९२१-२३), इंडिया कौंसिलके सदस्य; १९४४ में आस्ट्रेलियामें भारतके हाई कमिश्नर।

३. सर विन्स्टन लियोनार्ड स्पेंसर चर्चिल (१८७४–१९६५); अंग्रेज राजनीतिज्ञ और ग्रन्थकार, उपनिवेश उपमन्त्री, १९०५-८; युद्ध सामग्री-मन्त्री, १९१७; युद्ध-मन्त्री, १९१८-२१; प्रधान-मन्त्री, १९४०-४५, ५१-५५; १९५३ में साहित्यपर नोबेल पुरस्कार दिया गया।

पैदा करना होगा। हमें पहला काम यह करना होगा कि हमने अबतक जो-कुछ सीखा है उसमें से बहुत-कुछको हम भुला दें और अपनी महान प्राचीन संस्कृतिके अनुसार जीवन व्यतीत करनेका प्रयत्न करें। यदि मेरा कोई वकील मित्र वकालत छोड़नेसे इनकार करता है तो हमारा यह कर्त्तव्य नहीं है कि हम उससे यह जवाब-तलब करें कि उसने श्री हकका अनुकरण क्यों नहीं किया। झरियामें एक वकील हैं। मैंने उनसे सहज भावसे वकालत छोड़नेके लिए कहा, श्री मुहम्मद अलीने भी उनसे यही प्रार्थना की; और परिणामस्वरूप कदाचित् अबतक वे अपनी वकालत छोड़ चुके हैं। लेकिन यदि उन्होंने अपनी वकालत न भी छोड़ी हो तो भी वे देशके शत्रु कदापि नहीं हैं। वे हृदयसे ऐसे ही सच्चे हैं जैसे हम। यदि सच्चा मतभेद होनेसे या पर्याप्त साहस न होनेसे हमारे मित्र आज हमारा साथ नहीं दे पाते हैं तो वे हमारी घृणाके पात्र नहीं समझे जा सकते।

चरखेके सम्बन्धमें उन्होंने कहा: हमें चरखेका महत्व कम नहीं आँकना चाहिए। चरखा चलाना पंजाब और खिलाफतके अन्यायोंका निराकरण करना है। ये दोनों बातें एक-दूसरेसे बंधी हुई हैं। सच्चे हृदयसे चरखा चलानेपर ही हम देशके सच्चे सिपाही बन सकेंगे। चरखा तो अशिक्षित लोग भी चला सकते हैं। लेकिन मैं चाहता हूँ कि हम लोगोंमें जो पढ़े-लिखे हैं वे चरखा चलायें और यह अनुभव करें कि वे जितना ज्यादा सूत कातेंगे, देश उतना ही आगे बढ़ेगा। अभीतक तो हम सब जबानसे ही काम लेते रहे हैं; मैं चाहता हूँ कि अब हम अपने हाथोंसे भी काम लें, किन्तु तलवार उठानेके लिए नहीं बल्कि चरखा चलानेके लिए। यदि आप इतना कर सकें कि एक भी भारतीय विदेशोंमें बने हुए कपड़े और विदेशी सूतसे तैयार किये हुए कपड़े न पहने तो आप धीरे-धीरे अपने भीतरकी शक्तिको महसूस कर सकते हैं और यह समझने लग सकते हैं कि हमें अब स्वराज्य मिलनेवाला है। आगे चलकर उन्होंने कहा: मुझे छोटी-छोटी लड़कियोंने कुछ जेवर दिये हैं। बंगालमें बहुत-सी महिलाओंने यह वचन दिया है कि वे सूत कातेंगी। न्यायमूर्ति श्री पी० आर० दासकी[1] लड़कियोंने चरखा चलाना और खद्दर पहनना आरम्भ कर दिया है। बंगालमें मेरे पास लड़कियाँ और विवाहित युवतियाँ आई थीं। उन्होंने मुझसे कहा कि चूँकि स्वराज्यके बिना उनकी स्थिति विधवाओं-जैसी है इसलिए वे जेवर नहीं पहनेंगी। मैं चाहता हूँ कि इस समयकी स्थितिको सभी इन लड़कियों और युवतियोंकी तरह मानें। गांधीजीने इसके बाद घोषणा की कि वे हालमें जब झरिया गये थे तो वहाँ उनको राष्ट्रीय विश्वविद्यालयके लिए ६०,००० रुपये मिले थे। रकमका अधिकांश गुजरातियों, बंगालियों और मारवाड़ियोंने दिया। इसी निमित्त दो हजारकी रकम कटरसके एक बंगाली जमींदारने दी। प्रायः ये सभी दानी सज्जन बिहारके बाहरके हैं और फिर भी उन्होंने इतनी बड़ी-बड़ी रकमें इसलिए दी हैं क्योंकि वे यह अनुभव करने लगे हैं कि राष्ट्रीय विश्वविद्यालय यद्यपि

१. चित्तरंजन दासके भाई; पटना उच्च न्यायालयके न्यायाधीश।

बिहारमें स्थापित किया गया है फिर भी वह राष्ट्रके लिए कार्य करेगा। जब छोटी-छोटी लड़कियोंने मेरे पास आकर मुझे अपने जेवर दिये तब मुझे तो रोना ही आ गया — यद्यपि मैंने अपने आँसू पी लिये, क्योंकि हमें इस समय किसी प्रकारकी भी कमजोरी नहीं दिखानी है। मैं आशा करता हूँ कि आप भी अपना हृदय ऐसा ही पवित्र बनायेंगे जैसा कि इन लड़कियोंका है। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि हमारा यह राष्ट्रीय विश्वविद्यालय उन्नति करे और जिन लोगोंने इसके लिए प्रयत्न किया है वह उन लोगोंके उत्साहपूर्ण परिश्रमके स्थायी स्मारकके रूपमें कायम रहे। उन्होंने धनकी अपील करनेके बाद अपना भाषण समाप्त किया।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ९-२-१९२१

१६४. भाषण : पटनामें अहिंसापर[1]

६ फरवरी, १९२१

इसके बाद कानोंको बहरा करनेवाली तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच महात्मा गांधी बोलनेके लिए उठे। उन्होंने कहा कि मैं आपका बहुत समय लेना नहीं चाहता। मौलाना मुहम्मद अलीके भाषणके बाद मेरे लिए कहने योग्य कुछ नहीं बचा है। उन्होंने जो-कुछ कहा है वह ठीक है और अच्छा है। मेरा मार्ग अहिंसाका मार्ग है। मैं उस व्यक्तिको भी मारना नहीं चाहता जो मुझे अपना शत्रु मानता है। मेरे भाई मौलाना मुहम्मद अली इससे विरुद्ध सिद्धान्तोंमें विश्वास रखते हैं। लेकिन इस मतभेदके बावजूद हम दोनों सगे भाइयोंकी तरह रह रहे हैं। हम तीनों (मौलाना शौकत अली सहित) जहाँ भी जाते हैं, जिस ओर भी मुड़ते हैं, अहिंसाका ही प्रचार करते हैं। यदि हम अहिंसाका पालन न करेंगे तो हम निश्चय ही असफल होंगे। हममें तलवारसे लड़नेकी शक्ति नहीं रही है। मुझे विश्वास है कि हम केवल अहिंसासे ही स्वराज्य, अर्थात् रामराज्य या धर्मराज्य, प्राप्त कर सकेंगे। गांधीजीने गाली-गलौज करने, डराने-धमकाने और हाट लूटने-जैसी हरकतोंकी तीव्र निन्दा की और कहा : यदि हमें स्वराज्य मिलनेमें देर हो रही है तो इसका कारण यही है कि हमने अहिंसाका पाठ भली-भाँति नहीं सीखा।

श्री मुहम्मद अलीने श्री हसन इमाम और अपने एक पुराने यूरोपीय प्राध्यापकसे जो अनुरोध किया है वह उचित है। वे उन्हें समझा-बुझाकर और प्रेमसे अपने पक्षमें सम्मिलित करना चाहते हैं और उनका विश्वास है कि वे जल्दी ही उनके साथ हो जायेंगे। उन्होंने गाँवोंमें उत्पन्न जागृतिकी चर्चा करते हुए कहा कि गाँवोंके लोगोंमें जो

१. मदरसा-मसजिदके मैदानमें दोपहरको हुई सार्वजनिक सभामें।

चेतना पैदा हो गई है, उनमें जो शक्ति आ गई है उसे कायम रखा जाना चाहिए। मद्यपानकी उनकी कुटेव छुड़वानेके लिए किसी तरहकी हिंसाका प्रयोग नहीं करना चाहिए। हम उनसे इन बुराइयोंको केवल उनके साथ असहयोग करके, अर्थात् उनसे कोई सहायता न ले कर या उन्हें कोई सहायता न देकर छुड़वा सकते हैं। यदि मुसलमान किसीको जबर्दस्ती मुसलमान बनाते हैं तो मैं उनसे भी ऐसे ही लड़ूँगा जैसे सरकारसे लड़ता हूँ। यदि मेरा पुत्र शराब पीने लगे तो मैं उसे मारने-पीटनेके बजाय अपने घरसे निकल जानेके लिए कहूँगा और फिर उसे किसी भी प्रकारकी सहायता नहीं दूँगा और इस प्रकार उससे शराब पीनेकी लत छुड़वाऊँगा। मुझे उसके विरुद्ध हिंसाका आश्रय लेनेका वस्तुतः कोई अधिकार नहीं है। इसलिए यदि आप सब इस बातको भली-भाँति समझ लें और उसपर आचरण करें तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमें अगले सितम्बरतक स्वराज्य मिल जायेगा। मैंने सदा ही बिहारकी भूमिको पवित्र माना है। मैं चम्पारनमें बहुत दिनोंतक किसानोंके बीच रहा हूँ।[1] यदि वहाँ किसी भी जगह कोई हिंसा हो तो उससे मुझे बहुत दुःख होगा।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, ९–२–१९२१

१६५. टिप्पणियाँ

खद्दरका दुरुपयोग

एक मित्र इस तथ्यकी ओर ध्यान खींचते हैं कि खादी पहननेवाले बहुत-से लोग खद्दरको मगरूरी, बदतमीजी — और सबसे बुरी बात तो यह है कि धोखेबाजीका परवाना समझते हैं। इन मित्रका कहना है कि ऐसे लोग असहयोग और सत्यकी भावनासे कोसों दूर हैं। उनका खद्दर पहनना महज एक ढोंग है — अपनी धोखाधड़ीपर पर्दा डाले रहनेकी सिर्फ एक चाल! यह सब हो सकता है, खास तौरपर इस संक्रमण कालमें, जब कि खद्दर पहनना फैशन बनता जा रहा हो। इन पत्र लिखनेवाले भाईसे मुझे सिर्फ इतना ही कहना है कि खद्दरके ऐसे दुरुपयोगको भूलसे भी खद्दरके इस्तेमालके विरोधका कारण नहीं बनाया जाना चाहिए। आजकी हालतमें जो ऐसा मानते हैं कि हिन्दुस्तानी मिलें देशकी जरूरतके लायक कपड़ा नहीं बनाती और इसलिए घरोंपर कपड़ा बुनकर इस जरूरतको जल्दीसे-जल्दी पूरा करना चाहिए तथा घरमें कताईको सर्वप्रिय बनाकर ही यह किया जा सकता है, उन सबके लिए खद्दर पहनना लाजिमी है। देशकी सबसे बड़ी आर्थिक जरूरतको व्यवहारमें मंजूरी देनेसे अधिक खद्दरके इस्तेमालका और कोई मतलब नहीं है। एक बुरा आदमी भी इस जरूरतको मान सकता है और उस हालतमें वह भी खद्दर पहननेका पूरा-पूरा हकदार है। और अगर कोई सरकारी जासूस लोगोंको धोखा देनेके लिए खद्दर पहनता है तो मैं उसका भी स्वागत करूँगा, क्योंकि उससे देशको कुछ-न-कुछ आर्थिक लाभ तो होता ही है।

१. सन् १९१७ में चम्पारन-सत्याग्रहके समय।

हाँ, यह जरूर है कि मैं खद्दर पहननेवालेको अनुचित श्रेय नहीं दूँगा। और इसलिए मैं यह माननेको कभी तैयार नहीं होऊँगा कि खाली खद्दर पहन लेनेसे ही वह नेक-चलन या अच्छे गुणोंवाला हो गया है। इसका यह मतलब हुआ कि सरकारसे सहयोग करनेवाले और सरकारी नौकर भी असहयोगी समझे जानेका खतरा उठाये बिना खद्दर पहन सकते हैं। भोले लोगोंको ठगनेके लिए कई धूर्त मन्दिरमें जाते हैं, पर सच्चे भक्त फिर भी मन्दिर जाना नहीं छोड़ते। ठीक इसी तरह हमें भी खद्दरसे मुँह नहीं मोड़ना चाहिए। मैं एक ऐसे संसद सदस्यको जानता हूँ जो मद्य-निषेधके बहुत कट्टर समर्थक बनते थे, और इसकी ओटमें उन्होंने अपने बहुत-से ऐबोंको छिपा रखा था। कुछ ही दिन हुए एक बहुत ही धृष्ट और मक्कार सटोरिया मद्य-निषेधका समर्थक बनकर भले आदमियोंकी सोहबतमें प्रवेश पा गया था। किसी कविने ठीक ही कहा है: "पाखण्ड व्याजान्तरसे सदाचारकी प्रशस्ति ही है।"

क्षमा-याचना

श्री अडवानीके नामसे छपे पूर्व आफ्रिकाके खरीतेसे[1] सम्बन्धित लेखके लिए मैं पाठकोंसे माफी माँगता हूँ। उस लेखमें जो दृष्टिकोण जाहिर किया गया है, वह उसमें दिये गये तथ्योंसे मेल नहीं खाता। भाषा भी गैरजरूरी तौरपर तीखी हो गई है। मैं मौजूदा शासन-प्रणालीकी तीव्र भर्त्सना करता हूँ, मगर जान-बूझकर गैरवाजिब निन्दाका गुनाह कभी नहीं करूँगा। यह खरीता पूर्व आफ्रिकाके भारतीय प्रवासियोंके साथ न्याय करनेकी एक सच्ची कोशिश है। यह सच है कि यह खरीता भारतमें हुई जागृतिके ही कारण भेजा गया है। लेकिन तब भी इसका श्रेय तो सरकारको देना ही होगा कि यदि उसके अस्तित्वपर कोई खतरा न हो तो वह लोकमतका खयाल करती है। यह भी सच है कि अभीतक उसका रवैया सरपरस्तीका ही है। लेकिन जबतक अंग्रेज अपने आपको हमारे बराबरीके साझीदार समझनेके बदले अपनेको हमारा ट्रस्टी मानते रहेंगे, तबतक उनसे दूसरी उम्मीद भी क्या की जा सकती है; लेकिन सरकार और पाठकोंसे माफी माँगते समय मुझे अपने सहकारीके साथ भी न्याय करना ही होगा। श्री अडवानी ईमानदार और निष्ठावान सहकारी हैं। वे स्थिर मन और ठंडे दिलसे लिखनेकी कोशिश करते हैं। मगर साथ ही वे नौजवान, महत्वाकांक्षी और नातजुर्बेकार हैं। हम सब लोगोंकी तरह ही अपने खयालोंको विदेशी जबानमें लिखनेकी दिक्कत उनके आगे भी है। ऐसी सूरतमें, जैसी गलतियाँ उनसे हुई उनसे बचना मुश्किल ही है। फिर भी मैं इसलिए माफी माँग रहा हूँ कि कहीं पाठक यह न समझ बैठें कि मेरे सहकारी या दूसरे लेखक जो-कुछ भी लिखते हैं, उस सबमें मेरी रजा-मन्दी है। 'यंग इंडिया' निष्पक्ष और न्याय-पक्षपर रहे, यही मैं चाहता हूँ और हर-दम मेरी यही कोशिश रहती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९–२–१९२१

१. यह खरीता भारत सरकारने साम्राज्य सरकारको भेजा था, जिसमें पूर्व आफ्रिकाकी जातीय निर्योग्यता तथा जाति-पृथक्करणकी नीतिका कड़ा विरोध किया गया था।

१६६. सबसे बड़ी बात

आशा करनी चाहिए कि असहयोग आन्दोलनकारी इस बातको स्पष्ट समझ लेंगे कि राष्ट्रकी प्रगतिमें हिंसा जितनी बाधक है उतनी अन्य कोई चीज नहीं। आयरलैंडका हिंसा द्वारा स्वाधीनता प्राप्त कर सकना सम्भव हो सकता है। टर्कीके लिए हिंसाके द्वारा एक खास समयमें अपने खोये हुए प्रदेश वापिस ले सकना मुमकिन हो सकता है। किन्तु भारत सौ सालतक इस उपायसे स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि यहाँके लोगोंकी रचना ही अन्य राष्ट्रोंके लोगोंसे भिन्न तरीकेपर हुई है। उनका लालन-पालन कष्टसहनकी परम्पराओंके बीच हुआ है। सही हुआ हो या गलत, अच्छा हुआ हो या बुरा, लेकिन सचाई यही है कि भारतमें इस्लामका विकास भी शान्तिपूर्ण ढंगसे हुआ है। मैं कहूँगा कि अगर इस्लामके अनुयायी भारतमें इसके सम्मानकी रक्षा करना चाहते हैं तो शान्त और सौम्य ढंगसे, जागरूकता और साहसके साथ चुपचाप कष्ट-सहन करके ही वे वैसा कर सकते हैं। मैं इस विलक्षण धर्मका जितना अधिक अध्ययन करता हूँ, मेरा यह विश्वास उतना ही अधिक पुष्ट होता जाता है कि इस्लामके ऐश्वर्यका आधार तलवार नहीं, बल्कि इसके प्रारम्भिक खलीफाओंकी कष्ट-सहनकी प्रवृत्ति और उदारता है। इस्लामका पतन तब हुआ जब उसके अनुयायी भ्रम-वश बुरेको अच्छा मानकर मनुष्य-जातिके सम्मुख तलवार खींचकर खड़े हो गये और इस्लाम-धर्मके संस्थापक तथा उनके शिष्योंकी कठोर साधना, नम्रता और धार्मिकताके आठ गुणोंको भूल गये। लेकिन मैं इस समय यह सिद्ध नहीं करना चाहता कि सब धर्मोंके समान इस्लामका आधार भी हिंसा नहीं, कष्टसहन है, जीवन लेना नहीं, बल्कि जीवन देना है।

मैं अभी तो यह बताना चाहता हूँ कि अगर असहयोग आन्दोलनकारियोंको एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्त करना है तो उन्हें अपनी प्रतिज्ञाकी भावना और शब्दोंके प्रति सच्चा रहना चाहिए। भले ही वे असहयोगको भूल जायें, लेकिन उन्हें अहिंसाको नहीं भूलना है। असलमें तो असहयोग अहिंसा है। जब हम किसी हिंसक सरकारसे सहयोग करते हैं, तब हम भी हिंसक हो जाते हैं। ऐसी सरकारका अन्तिम आधार न्याय और औचित्य नहीं, पशु-बल है। वह अन्ततः जिस चीजका आग्रह रखकर चलती है वह चीज तर्क-बुद्धि और हृदयकी आवाज नहीं, बल्कि तलवारका जोर है। हम हिंसात्मक शक्तिकी इस प्रणालीसे ऊब गये हैं और इसके विरुद्ध उठ खड़े हुए हैं। अब हम ऐसा न करें कि हिंसक बनकर, अपनी आस्था और मान्यताको आप ही झुठला दें। अंग्रेज संख्यामें कम हैं, लेकिन वे हिंसाके लिए संगठित हैं। हम संख्यामें अधिक होते हुए भी सुदीर्घ कालतक हिंसाके लिए संगठित नहीं हो सकते। हिंसा हमारे लिए निराशाका धर्म है।

किसी धर्म-भीरु अंग्रेज महिलाने एक करुणाजनक पत्र लिखा है। उसमें वह डायर-शाहीका बचाव करते हुए कहती है कि जनरल डायरने जलियाँवालामें जो-कुछ किया

वह न किया होता तो हमारे हाथों न जाने कितने स्त्री-बच्चे मार दिये गये होते। अगर हम इतने क्रूर हैं कि निर्दोष स्त्रियों और बच्चोंका खून बहाना चाहते हैं तो हम इसी लायक हैं कि इस दुनियासे हमारी हस्ती मिटा दी जाये। किन्तु बातका दूसरा पक्ष भी है। इस भली महिलाको ऐसा लगा ही नहीं कि हम दानवोंके हाथोंसे त्राण पानेके लिए अंग्रेजोंको जलियाँवालामें जो मूल्य देना पड़ा वह बहुत भारी था। उन्होंने मानवता खोकर अपनी सुरक्षा प्राप्त की। सरकारने जनरल डायरपर बेमनसे दोषारोपण किया और सर माइकेल ओ'डायरने भी उनकी दुष्प्रवृत्तियोंको सर्वथा क्षमा कर दिया, क्योंकि दानवोंके इस देशको अंग्रेज छोड़ना नहीं चाहते — भले ही उन्हें हममें से एक-एकको मौतके घाट उतार देना पड़े। यह अच्छी तरहसे समझ लिया जाना चाहिए कि अगर हम अमृतसरकी भाँति फिर उन्मत्त हो गये तो जलियाँवालासे भी अधिक भयंकर काण्ड होगा।

क्या हम डायरशाही अथवा ओ'डायरशाहीका अनुकरण करेंगे, जब कि हम इसकी निन्दा कर रहे हैं? हमें अपनी आधार-शिलाके लिए हिंसा और दानवताको नहीं, अहिंसा और धार्मिकताको अपनाना है। हम कार्यकर्ताओंको अपने कर्त्तव्यका स्पष्ट बोध होना चाहिए। 'स्वराज्य अपनी ओरकी समस्त हिंसक प्रवृत्तियोंको नियन्त्रित करनेकी हमारी योग्यतापर निर्भर करता है।' इसलिए अगर लोगोंमें हिंसक प्रवृत्ति मौजूद है तो एक वर्षके भीतर स्वराज्य नहीं मिल सकता।

अतः हमें धरना नहीं देना चाहिए, हमें किसी व्यक्तिके खिलाफ "शर्म, शर्म" के नारे नहीं लगाने चाहिए; हमें अपने देशवासियोंको अपने मार्गपर लानेके लिए बल-प्रयोग नहीं करना चाहिए। हमें उन्हें वही स्वतन्त्रता देनी चाहिए जो हम अपने लिए माँगते हैं। हमें जनताको बहकाना नहीं चाहिए। फैक्टरी-मजदूरों तथा किसानोंका राजनीतिक उपयोग करना खतरनाक है — इसलिए नहीं कि हम इसके हकदार नहीं, वरन् इसलिए कि हम इसके लिए तैयार नहीं है। हम एक दीर्घ कालसे उनके (किताबी शिक्षणसे भिन्न) राजनीतिक शिक्षणको उपेक्षा करते आये हैं। हमारे पास इतने ईमानदार, समझदार, विश्वसनीय और साहसी कार्यकर्ता नहीं हैं कि हम अपने इन देशभाइयोंको प्रभावित कर सकें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९–२–१९२१

१६७. एक नगरपालिकाका साहसपूर्ण कार्य

पाठक अन्यत्र नडियादकी नगरपालिका और बम्बई सरकारके यानी बम्बई सरकारके प्रतिनिधिरूप खेड़ा-जिलाधीशके बीचका पत्रव्यवहार[1] देखेंगे। नडियाद, खेड़ा जिलेमें ही है। वह गुजरातका एक महत्वपूर्ण शहर है। उसकी जन-संख्या ३५,००० है। उसकी नगरपालिकाका अध्यक्ष निर्वाचित है, और उसमें निर्वाचित सदस्योंका ही बहुमत भी है। नडियाद अपने शिक्षाकार्यके लिए प्रसिद्ध है और उसे गुजरातके कतिपय सर्वोत्तम शिक्षित सपूतोंको उत्पन्न करनेका गौरव प्राप्त है। शहरमें दो हाईस्कूल हैं। उसके द्वारा संचालित अनुदान प्राप्त हाईस्कूलको राष्ट्रीय [हाईस्कूलका] रूप दे दिया गया है। नगरपालिका अनेक प्राथमिक शालाएँ चलाती है; उनमें पाँच हजारसे अधिक बच्चोंको शिक्षा दी जाती है।

नागरिकोंके समक्ष सभी प्राथमिक शालाओंको राष्ट्रीय रूप देनेका प्रश्न था। करदाताओंने अपने बच्चोंको इन शालाओंसे निकाल लेनेके बजाय एक प्रस्ताव पास किया, जिसके द्वारा उन्होंने नगरपालिकासे प्राथमिक शालाओंको राष्ट्रीय रूप देनेकी माँग की। वे [सरकारसे] २१,००० रुपये वार्षिक अनुदान प्राप्त करती थीं, और इसलिए, जैसा कि स्वाभाविक है, शिक्षा विभागके नियंत्रण और निरीक्षणमें थीं। अतः नगरपालिकाने अपने निर्वाचकोंके आदेशके अनुसार शालाओंको राष्ट्रीय रूप देनेका प्रस्ताव पास किया, और तदनुसार सरकारको सूचना दी। पाठक देखेंगे कि नगरपालिकाने अपनी कार्यवाहीमें कांग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावका सीधा उल्लेख किया है, और स्वराज्य प्राप्तिके ध्येयके हितमें साहसी नीतिको अपनाया है।

शालाओंको सरकारके प्रत्यक्ष निरीक्षणमें चलानेकी नगरपालिकाकी कानूनी बाध्यताका प्राविधिक प्रश्न भी था। इस सम्बन्धमें नगरपालिकाका रुख इस प्रकार व्यक्त किया गया है:

> **[नगरपालिकाको] असहयोग आन्दोलनसे पूर्ण सहानुभूति है, जिसका उद्देश्य, और बातोंके साथ, पूर्ण स्वराज्यकी प्राप्ति है, और जबतक इस नगरपालिकाका अस्तित्व रहेगा, उसका आवश्यक कर्त्तव्य होगा कि वह राष्ट्रीय लक्ष्य प्राप्त करनेमें नडियादकी जनताकी सहायता करे . . .। जहाँतक कानूनी कठिनाईका प्रश्न है, सादर निवेदन है कि यदि धारा ५८ नडियाद-निवासियोंकी व्यक्त अभिलाषाके विरुद्ध पड़ती है, तो उसे अपने-आप स्थगित हो जाना चाहिए, क्योंकि यदि यह निकाय नडियादकी जनताकी मनोदशाको ठीक समझ रहा है तो वह बच्चोंकी शिक्षापर शासनके नियन्त्रणसे कोई वास्ता न रखनेका स्पष्ट निश्चय कर चुका है; और यह तो कहना भी अनावश्यक है कि समितिकी जनताके निश्चयसे पूर्ण सहानुभूति है।**

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

जनताकी प्रशंसनीय भावना या नगरपालिकाके रुखके औचित्यके विषयमें किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। यह ठीक है कि सरकार चाहे और उसमें हिम्मत हो, तो वह नगरपालिकाको भंग कर सकती है। किन्तु यदि करदाता अपने बच्चोंकी शिक्षापर सरकारका नियंत्रण न रहने देनेका दृढ़ निश्चय कर चुके हैं तो उसे इस प्रकार भंग करना भी व्यर्थ होगा। यह छोटे पैमानेपर एक शान्तिपूर्ण क्रान्ति है। आन्दोलनकी सफलताका कारण है जनताकी एकता तथा अपने बच्चोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करने और उसके लिए पैसा जुटानेकी उसकी योग्यता। हिंसाका परित्याग करके नड़ियादके निवासी अपने बच्चोंको स्वराज्यकी शिक्षा देनेमें समर्थ हो रहे हैं। बच्चोंकी शिक्षाके सम्बन्धमें जो बात इस नगरपालिकाके लिए सच है समस्त भारतवर्षके लिए वही सब विषयोंमें सच है।

जब जनताका मन एक हो, जब उसमें प्रबन्ध करनेकी योग्यता हो और उसे अहिंसाकी आवश्यकताकी प्रतीति हो जाये — ऐसा चाहे व्यावहारिकताके नाते ही क्यों न हो — तब समझना चाहिए कि स्वराज्य मिल गया। पैसेके प्रबन्धका प्रश्न कोई बड़ा प्रश्न नहीं है। क्योंकि सरकार भी पैसा आसमानसे नहीं लाती। गुजरातीकी एक व्यंजनापूर्ण कहावतको दूसरे शब्दोंमें कहें, तो वह निहाईके वजनकी धातु लेकर सुईके वजनकी धातु देती है। और इसमें दुःख और लज्जाकी बात तो यह है कि यह कृपण दान देकर भी वह राष्ट्रके सुकुमार मनपर बन्धन डाल कर उसे तेजोहीन बनाती रहती है। यदि हम आत्मप्रवंचनाके शिकार न होते, तो हम कमसे-कम अपने बच्चोंके नाशमें सहायक बननेसे तो अवश्य इनकार करते। नडियादकी नगरपालिकाने दिखा दिया है कि शिक्षाको राष्ट्रीय रूप देनेकी समूची प्रक्रिया कितनी सरल है। लाला दौलतरामके लेखोंने दिखा दिया है कि अर्थका प्रश्न कितना सरल है, और यह भी कि साधारण फीस ही हमारी सब शैक्षणिक संस्थाओंको चलानेके लिए लगभग काफी है। मैं आशा करता हूँ कि नडियादकी नगरपालिका द्वारा प्रस्तुत इस वस्तु-पाठसे ऐसी ही स्थितिकी अन्य नगरपालिकाएँ लाभ उठायेंगी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ९-२-१९२१

१६८. तार: शौकत अलीको

९ फरवरी, १९२१

कृपया बम्बईके छात्रों द्वारा शास्त्री कानजीके[1] प्रति किये गये व्यवहारका विवरण तार द्वारा बनारस[2] भेजें। हमें इस प्रकारके काण्डोंको रोकना चाहिए और उनसे अपनेको अलग रखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२१, पृष्ठ १५७।

१. कानजी द्वारकादास, बम्बईके एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता।
२. गांधीजी ९ और १० फरवरीको बनारसमें थे।

१६९. भाषण : बनारसमें[1]

९ फरवरी, १९२१

भाइयो,

हम दोनों भाई, मुहम्मद अली और मैं आज आपके पास आये हैं। आप लोग यहाँ विद्यापीठकी स्थापना करेंगे। हम लोग उसीमें शरीक होने आये हैं। हमारे भाई अबुल कलाम आजाद भी इसीलिए यहाँ पहुँचे हैं। मैं आपका यह समय दूसरे काममें नहीं लगाऊँगा। मैं आप लोगोंसे केवल इतना ही कह देना चाहता हूँ कि हम लोगोंकी शक्ति दिनपर-दिन बढ़ती जा रही है। इसके साथ-साथ हम लोगोंकी जिम्मेदारी भी बढ़ती जा रही है और साथ ही साथ भय भी बढ़ता जा रहा है। हम लोगोंको यह स्थिर करना है कि किस तरह काम करना चाहिए। यदि हमारी शक्ति जानकर हम आगे बढ़ना चाहते हैं तो हमें समझ लेना चाहिए कि यह शक्ति बढ़ी कैसे। इसका एकमात्र कारण यही है कि हम लोग शान्तिसे काम करते हैं। भाई शौकत अली कहा करते हैं कि हम लोगोंकी ताकतकी वृद्धिका कारण ठंडी हिम्मत है। यदि हम लोग क्रोध या आवेशमें आकर तलवार उठा लें तो उससे अपना गला काटेंगे या अंग्रेज-का? इससे हमारी ही ताकत कम होगी। यह ठंडी हिम्मत और अमनकी लड़ाई है। इसके लिए सब तैयार हो जायें। यदि इसमें हमने तलवार उठाकर अंग्रेजका या अपने भाईका गला काटा तो हमारा पतन हो जायेगा। फैजाबादके किसानोंने क्या किया? मदोन्मत्त होकर उन्होंने दुकानें लूटीं, अपने भाइयोंका माल लूटा।[2] वहाँ हमारी शक्तिका पतन हो गया। सल्तनत देख रही है कि हम लोगोंने इतना भारी आन्दोलन आरम्भ कर दिया है। इस शासनको मिटा देने या दुरुस्त कर देनेका संकल्प लिया है। पर फिर भी इतनी शक्तिशाली सरकार कुछ भी नहीं बोल रही है। क्यों? सरकार देख रही है कि हम लोग शान्तिसे काम कर रहे हैं। यही हमारा धर्म हो गया है। इस दशामें सरकार हमारा कुछ नहीं कर सकती। यदि आज हम शस्त्र उठा लें तो उसकी ताकतकी वृद्धि होने लगेगी। यदि आप पंजाबके अत्याचारोंका निवारण, खिलाफतके मामले-में न्याय और स्वराज्यकी प्राप्ति चाहते हैं तो ठंडी हिम्मतसे काम लीजिए। इसी ढंगसे अगर काम होगा तो ठीक होगा। चाहे वकील वकालत न छोड़ें, विद्यार्थी विद्यालयोंका बहिष्कार न करें, लोग कौंसिलमें जायें, सरकारी नौकरी और खिताबोंका त्याग न हो, इन सबसे मुझे जरा भी रंज नहीं होता; किन्तु यदि एक भी खून हो जाये, लकड़ी चल जाये या कोई किसीको गाली दे दे तो मुझे बड़ा ही रंज होता है, क्योंकि वहाँ

१. गांधीजीने यह भाषण बनारसके टाउन हॉलके मैदानमें आयोजित सभामें दिया था। सभामें लगभग एक लाख लोग उपस्थित थे और अध्यक्षता बाबू भगवानदास कर रहे थे, पंडित जवाहरलाल नेहरू भी उपस्थित थे।

२. जनवरी १९२१ में फैजाबाद और उत्तर प्रदेशके कुछ अन्य स्थानोंमें किसानोंने दंगा-फसाद किया था।

हमारी ताकतका पतन होता है। फैजाबादके किसानोंका पागलपन और बम्बईके विद्यार्थियोंकी करनीसे मैं निहायत असन्तुष्ट हूँ। विद्यार्थियोंने श्री शास्त्री और परांजपेका अपमान करके बड़ी भूल की। दोनों बड़े ही योग्य व्यक्ति और मेरे समान देश-सेवक हैं। हम लोगोंमें मतभेद है, पर देश-सेवाका उन्हें भी उतना ही अभिमान है जितना हमें है। यदि आज आप लोग यहाँ एकत्रित न हुए होते तो मुझे दुःख न होता। पर यहाँ आकर गोलमाल करें, शोरगुल मचाकर बाधा डालें तो यह कितने दुःखकी बात होगी ? मेरी समझमें नहीं आता कि यह कैसे होता है। सभामें आनेके बाद विघ्न नहीं डालना चाहिए। जो विघ्न डालता है वह सज्जन नहीं है। मुझे बाध्य होकर कहना पड़ता है कि बम्बईके छात्रोंने अपने खानदानकी मर्यादा त्याग दी, कांग्रेस और खिलाफतके हुक्मकी अवज्ञा की। यदि आप हमारी बातको मानना चाहते हैं तो आपको यही सबक सीखना चाहिए। यदि आप किसी दूसरेसे अपना काम कराना चाहते हैं और वह आपके मनके माफिक करनेपर राजी नहीं होता तो आप जबरदस्ती न करें; मेरी इस शर्तको याद रखिए। मैं एक वर्षमें अर्थात् सितम्बरतक पूर्ण स्वराज्य चाहता हूँ। वह स्वराज्य केवल शान्ति रखनेसे मिल सकता है। विना इस ताकतके स्वराज्य मिलना असम्भव है। लोग कहते हैं कि मैं शान्ति भंग नहीं करना चाहता पर सरकार और खुफियावाले हम लोगोंको इसके लिए बाध्य करते हैं। मैं कहता हूँ यह पागलपनकी बात है। मैं आप लोगोंसे कहूँ कि अपना दीन छोड़ दीजिए तो क्या आप इसके लिए तैयार हैं ? कभी नहीं। इसी तरह जब हम किसी बातको करनेके लिए तैयार नहीं हैं, तो सरकार हमसे वैसा कुछ नहीं करा सकती। गुस्सेमें तो कुछ भी नहीं करना चाहिए। क्रोध किया तो स्वराज्य नामुमकिन है। मैं सब बातें छोड़ देनेके लिए तैयार हूँ — वकीलोंका प्रश्न न उठाऊँ, छात्रोंको न छेड़ूँ, पर मैं शान्ति कभी नहीं छोड़ सकता। जब हम परदेशी राज्य नहीं चाहते तो हमें परदेशी लिबास भी छोड़ देना चाहिए। साथ ही हमें विदेशी वस्त्र भी त्याग देने चाहिए। यदि हम लोग यह नहीं कर सकते तो एक क्या, दस बरसोंमें भी स्वराज्य नहीं मिल सकता। हमें अधिक संख्याकी आवश्यकता नहीं है। जो थोड़े लोग त्याग कर रहे हैं उतने ही काफी हैं। पं० मोतीलाल नेहरू, श्री दास तथा लाला लाजपतरायने वकालत छोड़ दी। अब और क्या चाहिए ? दूसरे भी धीरे-धीरे छोड़ेंगे। किसीके साथ किसी तरहकी जबरदस्ती न की जाये। जिनकी आत्मा गवाही दे, वे ही छोड़ें। संस्कृतके विद्यार्थी हमसे पूछते हैं कि उनका क्या कर्त्तव्य है। अब कर्त्तव्यका प्रश्न नहीं रहा। सरकारी विद्यालयोंका त्याग ही एक-मात्र कर्त्तव्य है। जबतक हमारे दुःखोंका प्रतिकार न किया जाये तबतक सरकारी विद्यालय हराम हैं। स्वदेशी वस्त्रका प्रचार भी अत्यावश्यक है। इसके लिए चरखोंका प्रचार करना चाहिए। यदि विद्यार्थी विद्यालयोंका बहिष्कार करके देशकी सेवामें जुटना चाहते हैं तो चरखेके प्रचारसे बढ़कर कोई दूसरा काम हो ही नहीं सकता। उन्हें फौरन चरखा ग्रहण करना चाहिए। यदि ५० लाख विद्यार्थी ४ घंटा यही काम करें तो कितना काम हो सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी इतना सूत कात सकता है कि चार दिनमें एक धोती तैयार हो सकती है; अर्थात् सारे विद्यार्थी मिलकर एक दिनमें साढ़े बारह लाख धोतियाँ

तैयार कर सकते हैं। यदि हमें सब सामान मिल जाये तो कितनी भारी सेवा हो सकती है। उस समय आप जलसा करना भूल जायेंगे। मैं जलसोंसे थक गया हूँ। इन जलसोंमें शरीक होनेसे हमें एक अनुभव हुआ है कि हम लोग अपने बलका उपयोग अपना गला घोंटनेके लिए करते हैं। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरेके स्थानको ग्रहण करना चाहता है, वहाँ क्या होगा? सितम्बर माससे मैं यह अनुभव कर रहा हूँ, मैं घबरा उठा हूँ। हम इतने [छोटे] जलसोंमें भी शान्ति नहीं रख सकते। गोरखपुरमें प्रायः डेढ़ लाख जन उपस्थित थे और बड़ी शान्तिसे काम हुआ। पर हमारा काम केवल इससे नहीं चल सकता। यदि काम चलाना है तो चरखा ले लो। जिस दिन सब लोग इस बातको समझ लेंगे उस दिन ऐसे जलसोंकी आवश्यकता नहीं रह जायेगी और न उसके लिए किसीको फुरसत ही रह जायेगी। जितना समय जलसोंमें नष्ट किया जाता है यदि उतने ही समयमें हम सूत कातें तो कितने नंगोंको ढाँक सकते हैं? यदि एक वर्षमें स्वराज्य प्राप्त करना है तो दो बातें आवश्यक हैं — एक तो शान्तिका ध्यान बनाये रखना और दूसरे विदेशी वस्त्रका त्याग करना और उसको सफल बनानके लिए चरखा ग्रहण करना। जिस दिन आप लोग इन बातोंको समझ जायेंगे, उस दिन ऐसे जलसोंकी आवश्यकता न रह जायेगी। यदि आपने चरखेके मंत्रको समझ लिया है तो स्वराज्य निकट है। यदि आपने समझ लिया है कि तर्क-मवालात शान्तिसे चलाना है और यदि आपने समझकर इसमें हाथ डाला है तो शान्तिसे रहिये। इसमें हम सरकारको मजबूर कर सकते हैं। काम करने चलिए। जेलसे मत घबराइए। जो जेल जानेवालोंको छुड़ानेका प्रयत्न करते हैं वे अपनी बुजदिली दिखाते हैं। वे स्वयं तो जाना ही नहीं चाहते। जेलमें हमें प्रसन्न-चित्त जाना चाहिए। उसे महल समझ लेना चाहिए। हमारा काम जेलमें जाना और दूसरोंको भेजना है। यदि हम लोग यह नहीं करते तो संसार यही कहेगा कि भारतके लोग कहना जानते हैं और करना कुछ भी नहीं जानते। पर इन सब प्रवृत्तियोंको चलानेके लिए रुपयेकी आवश्यकता है। चरखा चलानेके लिए, विद्यापीठ स्थापित करनेके लिए, राष्ट्रीय कामके लिए, जो लोग वकालत छोड़ देंगे उनके लिए, पैसा चाहिए। इतनी बड़ी सभामें से मैं खाली हाथ नहीं जा सकता। मैं भीख माँगता हूँ। जो आप लोगोंको देना हो दें। स्मरण रखिए, यदि आपने चरखेको अपनाया और अपने हाथोंसे ही बने कपड़े पहननेका संकल्प किया तो स्वराज्य सितम्बरमें मिल जायेगा।

आज, १०–२–१९२१

१७०. टिप्पणियाँ

धोलेमें कालेका मेल

एक मित्र लिखते हैं:[१]

यह टीका अक्षरशः सही है। प्रत्येक सुधारके समय उसके दुरुपयोगका भय रहता ही है। यही बात खादीके सम्बन्धमें भी लागू होती है। खादीके उपयोगके बिना पूरी देशभक्ति नहीं हो सकती, ऐसा मैं कहता तो हूँ; लेकिन खादी पहननेवाला मनुष्य तो खुफिया पुलिसका सिपाही भी हो सकता है और खादी न पहननेवाला मनुष्य गरीब होनेके कारण अथवा खादीपर विश्वास न होनेके कारण खादी न पहननेपर भी स्वदेश-प्रेमी हो सकता है; इस बातसे भी कोई इनकार नहीं कर सकता। इसलिए खादी पहननेवाला निस्सन्देह देशभक्त ही है, हमें यह मान लेनेकी कोई जरूरत नहीं है। हम निस्सन्देह यह मान सकते हैं कि खादी पहननेवाले मनुष्यका स्वदेशीका पालन करनेवाला होनेकी सम्भावना है। अगर खादीके प्रति लोगोंकी अरुचि निकल जाये और उन्हें खादीमें ही सुन्दरता दिखाई देने लगे तो हमारे लिए इतना ही बहुत है। जिस तरह खादीमें हमें समस्त गुणोंका आरोप नहीं करना चाहिए, उसी तरह यदि खादी पहननेवाला मनुष्य अपने दुराचरणसे खादीको लजाता है तो उससे हमें धक्का भी नहीं लगना चाहिए। आडम्बरमात्र त्याज्य है; लेकिन बाहरी पहनावा ऐसा होना चाहिए जो आन्तरिक भावोंके अनुरूप हो, अर्थात् जिसका अन्तःकरण निर्मल है उसका पहरावा भी सादा होगा, जिसके अन्तःकरणमें देश-प्रेम है उसका पहनावा भी खादीका होगा। जबतक जगतमें मूर्ख अथवा अज्ञानी लोग हैं तबतक धूर्तोंका धन्धा चलता ही रहेगा। इससे हमें धोखा खानेकी अथवा डरनेकी जरूरत नहीं है।

हम देखते हैं कि जिस तरह खादीका दुरुपयोग किया जाता है उसी तरह असहयोगका भी दुरुपयोग किया जाता है। कुछ लोग ऐसा आचरण कर रहे हैं मानो असहयोगके प्रस्तावपर हाथ ऊँचा करनेसे उन्हें सरकारके साथ सहयोग करनेवालोंको गाली देनेका परवाना मिल गया है। वस्तुतः देखा जाये तो खादीका और असहयोगका दुरुपयोग इस शुद्ध आन्दोलनको दूषित करता है और स्वराज्य प्राप्तिके समयको दूर ले जाता है। इस मलिनताके कालमें हम जब एक स्थानसे मैल छुड़ाते हैं तो वह दूसरे स्थानपर जमता दिखाई देता है। ऐसी मुश्किलोंके बावजूद जिन्होंने सत्यके दर्शन किये हैं उनके लिए एकमात्र रास्ता यही है।

१. पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया गया है। उसमें खादीको बहुत अधिक महत्त्व दिये जानेके विरुद्ध यह चेतावनी दी गई थी कि कहीं ऐसा न हो कि पाखंडी लोग खादी पहनकर खादी न पहननेवाले ईमानदार लोगोंको ठगने लगें।

अन्त्यजोंके सम्बन्धमें

इस विषयमें मुझे अनेक पत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें मुझे सलाह दी गई है। ये सब प्रकाशित नहीं किये जा सकते। इनमें दलीलकी अपेक्षा डाँट-डपट कहीं अधिक है। कुछ पत्रोंमें मेरे विचारोंसे मिलते-जुलते विचार दिये गये हैं। उनमें प्रकाशित करने लायक कुछ है ही नहीं। जो लोग मेरे विचारोंसे विरुद्ध तर्क देते हैं उन्हींको समझाना रह जाता है। एक युवकने लिखा है कि अन्त्यजोंके प्रश्नको उठाकर मैंने असहयोग-जैसे रामबाण अस्त्रको निस्तेज कर दिया है। इस भाईका कहना है कि अन्त्यज स्पृश्य हों तो भी इस विषयपर विचार करना समयोचित नहीं है। उसका एक परिणाम तो यह हुआ है कि एक स्कूल वापस सरकारको मिल गया। वह कहता है कि अन्तमें सब 'सनातनी' सरकारका पक्ष लेकर मुझसे अथवा असहयोगके प्रति अपना वैर निकालेंगे। मुझे ऐसा भय नहीं है। मुँहसे वैर निकालनेके लिए अपनी नाक काट डालनेवाले लोग कहीं भी बहुत नहीं होते। हिन्दुस्तानमें ऐसे लोग बहुत ज्यादा नहीं हैं; ऐसा मैं मानता हूँ। जो इस समय इस आन्दोलनका विरोध कर रहे हैं उनमें कुछ लोग तो सचमुच ही मानते हैं कि यदि हम अन्त्यजोंका स्पर्श करेंगे तो हिन्दू-धर्मका लोप हो जायेगा। [लेकिन] ये लोग धीरे-धीरे समझ जायेंगे कि अस्पृश्यताको सम्मान देनेके कारण ही हिन्दू-धर्मकी अधोगति हुई है। तथापि हम कल्पना करें कि अस्पृश्यता सम्बन्धी आन्दोलनसे असहयोग-को धक्का पहुँचता है। इसका अर्थ यह हुआ कि असहयोग ही असहयोगके मार्गमें विघ्न बनकर आता है। अनेक लोग कहते थे कि कार्यक्रमके वकीलों और स्कूलोंसे सम्बन्धित भागके कारण असहयोग आन्दोलन समाप्त हो जायेगा। हकीकत यह है अस्पृश्यतासे चिपके रहनेसे असहयोग आन्दोलन कभी पूरा नहीं हो सकता। और फिर यदि सनातनी हिन्दू अस्पृश्यताको बनाये रखनेके लिए सरकारसे सहयोग करेंगे तो भी असहयोगी उनसे न डरें। सनातनी भी सरकारको त्याज्य मानते हैं और उसकी निन्दा करते हैं। इस समय तो सरकार स्वयं अस्पृश्य है। यह सम्भव नहीं है कि उसका स्पर्श करते हुए 'सनातनी' अस्पृश्यताको बनाये रख सकें। असहयोग यदि आत्मशुद्धि है तो हमें परिणामका विचार किये बिना असहयोगका विकास करना है। फिर यदि एक भी असहयोगी रह जायेगा तो उसकी मार्फत हमें विजय प्राप्त होगी। इसके अलावा विचारने योग्य बात तो यह है कि यदि हम अस्पृश्योंको भूल जायें तो यह पाप हमें पीड़ा देगा, इतना ही नहीं, बल्कि सरकार उसका दुरुपयोग भी करेगी।

पारसियोंकी मदद

डाभोलसे भाई सेठनाने एक लम्बा पत्र लिखा है और कहा है: पारसियोंपर यह आरोप लगाया जाता है कि वे असहयोग आन्दोलनमें शामिल नहीं हैं; यह सच नहीं है। उनका कहना है कि पारसियोंको जैसे-जैसे हिन्दुओं और मुसलमानोंकी दृढ़ताका विश्वास होता जायेगा वैसे-वैसे वे असहयोगमें शामिल होते जायेंगे। मेरी भी ऐसी ही मान्यता है। सब पारसी असहयोगसे अलग रहते हैं यह बात तो कोई नहीं कह सकता। लेकिन हाँ, उनकी संख्या बहुत कम होनेकी वजहसे वे प्रकाशमें नहीं आते। यह सच है कि कौमके रूपमें पारसियोंने इस आन्दोलनमें भाग लिया — ऐसा नहीं

कहा जा सकता। यदि असहयोगी शान्ति, विनय और सत्यका पालन करते हुए स्वार्थ त्याग करते रहेंगे तो पारसी और अन्य लोग जो इस आन्दोलनसे बाहर हैं, इसमें सम्मिलत हुए विना नहीं रहेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०–२–१९२१

१७१. भाषण : काशी विद्यापीठके शिलान्यासके अवसरपर[1]

१० फरवरी, १९२१

बाबू भगवानदास, बहनो और भाइयो,

मेरे मनमें इस समय एक बातका दुःख है। उसे मैं किसी तरह आप लोगोंसे छिपा नहीं सकता। यहाँ आनेके पहले मैं अपने भाई साहब पं० मदनमोहन मालवीयके पास गया और उनसे पूछा कि आप विद्यापीठके आरम्भोत्सवमें आ रहे हैं या नहीं। उन्होंने कहा, नहीं; मेरा वहाँ न जाना ही अच्छा होगा। वे हमारे कितने घनिष्ठ हैं मैं बतला नहीं सकता। आज वे हमारे साथ नहीं हैं। उनको आज यहाँ न देखना हमारे लिए कितने दुःखकी बात है, यह मैं कह नहीं सकता। पर हमारी लड़ाई ऐसी है कि हमें ये सब दुःख बरदाश्त करने होंगे। पिताको पुत्रके, पतिको पत्नीके, पत्नीको पतिके वियोगका दुःख सहना पड़ेगा। बाबू भगवानदासने सुमधुर शब्दोंमें बतलाया है कि यह लड़ाई धर्म-युद्ध है। मुझे इस बातमें जरा भी संशय नहीं रह गया है, नहीं तो मैं उस संस्थाको कभी न छूता जिसके प्राण मालवीयजी हैं। मेरी आत्मा यही कहती है कि या तो वह संस्था मेरी हो जाये या नष्ट हो जाये। यदि मैं ऐसा नहीं करूँ तो यह पाप होगा। कल मेरे पास कानपुरके कई विद्यार्थी आये। वे वहाँसे पढ़ाई छोड़-छाड़कर आये हैं। मैंने उनसे पूछा, आप लोग पढ़ना छोड़कर क्यों आये। उन्होंने उत्तर दिया, हम लोग चाहते हैं कि इससे बढ़कर कोई अच्छा राष्ट्रीय काम करें। मैंने उनसे कहा, यह सबब अच्छा नहीं। यदि आप इस खयालसे पढ़ाई छोड़कर आये होते कि आप सरकारी सहायतासे चलनेवाले विद्यालयोंमें पढ़ना पाप समझते हैं तो अधिक लाभ होता। मेरी बातको वे कुछ समझ गये पर उनकी मुखाकृतिसे स्पष्ट झलकता था कि उनके हृदयमें अभी कुछ संशय रह गया है, क्योंकि उन्होंने प्रश्न किया कि परीक्षाके केवल दो ही मास रह गये हैं अतः यदि हम लोग उपाधि लेकर असहयोग करें तो अच्छा है। मैंने कहा कि यह ठीक नहीं; जब हमें निश्चय हो गया कि इन विद्यालयोंमें शिक्षा लेना पाप है तो इसे त्यागना ही उचित होगा। यही तर्क-सवालात है। हमारे बिस्तरेके नीचे पचासों वर्षसे साँप छिपा है। हमें उसका पता नहीं। आज हमें एकाएक इसका पता लगता है। हम उस बिस्तरेपर अब नहीं रह सकते। चाहे हमारे पिता उसको छोड़नेके लिए

1. इस राष्ट्रीय विश्वविद्यालयकी स्थापना बनारसमें बाबू भगवानदास तथा बाबू शिवप्रसाद गुप्तने की थी।

हमें मना करें, चाहे नाराज हों, हम उस बिस्तरेपर रह नहीं सकते। मैं पिताकी वह आज्ञा नहीं मान सकता, क्योंकि पिताको तथ्य मालूम नहीं है। उस बिस्तरेपर मैं शान्त नहीं रह सकता। यही ख्याल करके विद्यालयोंको छोड़िए; यह समय परीक्षाका प्रश्न उठानेका नहीं है।

यही बात हमें यहाँके विद्यार्थियोंसे भी कहनी है। कल मुझे अपने भाई एन्ड्रयूजका पत्र मिला। उन्होंने लिखा है कि जिस तरह यह काम चल रहा है उस तरहसे तो सफलताकी आशा उन्हें गुजरातमें भी नहीं है, जो मेरा घर है। पर दो स्थानोंके लिए वे निश्चिन्त हैं — पटना और काशी। पटनामें इसका भार बाबू राजेन्द्र प्रसादपर और काशीका भार बाबू भगवानदासपर है। सबको पूरा एतबार है कि ये काम बिगाड़ेंगे नहीं। बाबू भगवानदासने शिक्षाके लिए बहुत काम किया है। अन्य प्रान्तोंके काम करनेवालोंमें राजनैतिक प्रवृत्ति अधिक है, इसीलिए वे शिक्षामें भी भाग ले रहे हैं। काशी और पटनाके लिए मैं भी निश्चिन्त हूँ। पर श्री एन्ड्रयूजके उत्तरमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि और स्थानोंमें भी यह काम राजनीतिकी दृष्टिसे नहीं किया जा रहा है; धार्मिक दृष्टिसे किया जा रहा है। हम लोगोंको असहयोगको सफल करनेमें अपना चित्त रखना चाहिए। हम लोग विद्या भी ऐसी ही चाहते हैं कि एक वर्षमें स्वराज्य प्राप्त हो सके। यह भी विचार करनेकी बात है कि स्वराज्य कैसे मिल सकता है। सरकारी सहायतासे चलनेवाले विद्यालयोंका त्याग सम्भव है। लोग कहते हैं कि सरकारकी कृपासे मिलनेवाले अनाजका त्याग हम क्यों नहीं कर देते। मैं इससे सहमत हूँ। पर यह सहज नहीं है। विद्या तो अन्य स्थानोंमें भी मिल सकती है। बाबू भगवानदासने अभी सीता-हरणकी कहानी सुनाई। भूमिका स्वामित्व हमारे हाथमें नहीं है। वह अपरिहार्य है। अपरिहार्यका परिहार्य न करना क्षम्य है। पर शिक्षा अपरिहार्य नहीं। यदि उसको छोड़ देनेपर बदलेमें कुछ भी न मिले तो भी हमें सरकारी विद्यालय छोड़ देना चाहिए। आज हमको रावण राज्यके नेता क्या सुनाते हैं। वे कहते हैं, हम आपको साथ रखकर चलना चाहते हैं। बर्मासि क्रेडॉक साहब कहते हैं कि हम शस्त्र नहीं चलाते। हमको उन्हें कह देना चाहिए कि हम आपके साथ नहीं रहना चाहते; मजबूरीसे आपका साथ दे रहे हैं। अली भाइयोंका कहना है कि यदि हमें यहाँ 'कुरान' पढ़नेके लिए भी हृदयकी शुद्धता नहीं मिल सकती तो हमें हिजरत करना चाहिए, अर्थात् उन्होंने राज्यका त्याग करनेके लिए कहा है। तुलसीदासने भी मलिन राज्यका त्याग करनेके लिए कहा है। पर हम अभी उसका सर्वथा त्याग नहीं कर रहे हैं, सत्ताको भी अभी मौका देंगे। हम अपने चित्तको समझायेंगे कि क्या इस राज्यको मिटाने या दुरुस्त करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। यदि है तो ३० करोड़ लोगोंके हिजरत करनेकी क्या आवश्यकता है। थोड़ा यज्ञ ही काफी है। इसीलिए इस विद्यापीठकी स्थापना हो रही है। हमें विद्या-जैसे पुण्यदानको मलिन हाथोंसे नहीं लेना चाहिए। जितने विद्यालय सरकारके असरमें हैं, उनसे हमें विद्या नहीं लेनी चाहिए। जिस विद्यालयपर उसकी ध्वजा फहराती है, वहाँ विद्यादान लेना पापकर्म है। आप सबको निमन्त्रण है कि यदि आप उसे पाप समझते हैं तो यहाँ चले आइए। केवल इस खयालसे न आइए

कि वहाँ शिक्षा बुरी है और यहाँ अच्छी मिलेगी। इससे आपको पश्चात्ताप होगा। वहाँकी शिक्षाकी बुराई हम भी मानते हैं। एक तो वहाँ अंग्रेजीमें शिक्षा दी जाती है। अंग्रेजी हमारी मातृभाषा नहीं है। हमारी राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी है, जिसे २१ करोड़ आदमी बोलते हैं। अंग्रेजीको हम मातृभाषाका स्थान नहीं देना चाहते, पर उसे त्यागना भी नहीं चाहते। वह बड़ी ओजस्वी भाषा है। उसका व्यवहार बहुत बढ़ा-चढ़ा है। उसे सीखिए। हमारी मातृभाषा स्थानच्युत हो गई है और उसका स्थान दूसरी भाषाने ग्रहण कर लिया है; और अब हमें उसे पुनः अपने स्थानपर प्रतिष्ठित करना है।

ऐसी ही और बहुत-सी त्रुटियाँ हैं, पर उन्हें दूर करने और नई कार्यप्रणाली स्थिर करनेके लिए हम ठहर नहीं सकते। हम उस झंडेके नीचे नहीं रह सकते, जिसको सलाम करनेके लिए हमारे लड़के मजबूर किये गये थे।[1] विद्यार्थियो, आप अपना विचार स्थिर कर लें। यदि वह त्याज्य है तो वहाँ की 'गीता', 'कुरान' सब छोड़िए। यहाँ आपको वे विशाल भवन नहीं मिलेंगे; यहाँ न मकान है, न बड़ा मैदान। झोपड़ीमें रहकर काम करना अच्छा है। महलमें झंडेकी सलामी बुरी है। जो विद्यार्थी आगे आना चाहते हैं, उन्हें स्पष्ट कहना चाहिए। विद्यालयोंकी दुरुस्ती करना मेरा काम नहीं है, उसके लिए मुझे वक्त नहीं। यदि हमारे विद्यालय खुलेंगे तो विद्या अपने-आप पवित्र हो जायेगी। मैं यहाँ आ गया हूँ, इसका कारण यह है कि बाबू भगवानदास और बाबू शिवप्रसादके दिलोंमें असहयोगकी प्रतिष्ठा हो गई है। असहयोगको बढ़ानेके लिए ही इस विद्यापीठकी स्थापना की गई है। असहयोग ही हमारे लिए एकमात्र शास्त्र है। तत्वज्ञान, मजहबी ज्ञान आदि शास्त्र नहीं हैं। यहाँ वणिक् बुद्धिका काम नहीं है। उसे हम हटाना चाहते हैं, उच्च करना चाहते हैं। अगर हम आज सेवा करते हैं तो स्वार्थसे, अपने स्त्री और बच्चोंको सुख पहुँचानेकी लालसासे करते हैं। हमको राष्ट्रकी सेवा करनी चाहिए। राष्ट्रके लिए हम सब काम करेंगे। हमें व्यापारको जुआ नहीं बनाना है। हम हिन्दुस्तानको पुण्यभूमि बनायेंगे, यहाँसे हर साल ६० करोड़ रुपये कपड़ोंके लिए विदेश चले जाते हैं। इसके रोकनेका यहाँ तरीका बताया जायेगा। सीता [भूमि] की स्थापना तो लंकासे लाकर करनी है, पर यदि वस्त्र-हरणको नहीं रोक सकते तो हमने क्या किया? भूमिको अपना करना नामुमकिन है, पर वस्त्र नहीं छिनने देना चाहिए। हम सबको प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि विदेशी वस्त्र धारण करना महापाप है। हिन्दुओं और मुसलमानोंको यह बात सुनानेमें बड़ा सुभीता है क्योंकि संयम और त्याग दोनोंका धर्म है। विदेशी कपड़ा पहनना पाप है। पहला धर्म चरखा चलाना है। विद्यालयको चलानेवाले इसे याद रखेंगे। हम लोग विद्यार्थियोंके जरिये ६० करोड़ रुपया बचा सकते हैं। इसको बचाइए। विद्यार्थी यही करें। इसीसे हमारी आर्थिक शुद्धि होगी।

दूसरा कर्त्तव्य अपनी मातृभाषाको विकसित करना है। इसे न लिख-पढ़ सकना शर्मकी बात है। जो-कुछ अंग्रेजीमें तालीम मिली है, उसे मातृभाषामें हजम कीजिए। हिन्दुओं और मुसलमानोंको, सेवा कैसे हो सकती है, सो सीखना है। हमें उर्दू और देवनागरी दोनों लिपियाँ सीखनी चाहिए। हमें ऐसी हिन्दी चलाना है, जिसमें संस्कृत और उर्दू मिली

१. सन् १९१९ में मार्शल लॉ के दौरान, पंजाबमें।

हो, जिससे हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेके हृदयमें प्रवेश कर सकें। अंग्रेज कहते हैं कि यह मेल दिखावा-मात्र है। हिन्दुओं और मुसलमानोंका मेल कभी नहीं हो सकता। यह केवल अपने-अपने मतलबके लिए है। जहाँ मतलब सिद्ध हुआ कि फिर वही हालत हो जायेगी। पर यह व्यर्थ है। यदि हिन्दू और मुसलमान परस्पर रक्षाके लिए कटिबद्ध हैं, तो यह नहीं हो सकता। गुरु विद्यार्थीको खींच सकता है। बाबू भगवानदास ऐसे गुरु हैं। सारा भारत आपकी विद्वत्ताको जानता है। जिस समय गुजरातमें राष्ट्रीय विद्यालय खुल रहा था उस समय मैंने आपसे प्रार्थना भी की थी कि आप काशी छोड़कर थोड़े दिनके लिए गुजरात आ जायें। वे आपके आचार्य हैं। मैं उनसे दीनतापूर्वक प्रार्थना ही कर सकता हूँ। कृपलानी[1] तो हमारे छोटे भाई हैं। उनको तो मैं हुक्म देनेका भी अधिकार रखता हूँ। अन्य महाशयको, जिनका नाम बाबू भगवानदासने लिया है, मैं स्वयं नहीं जानता। इस कारण यहाँ मैं प्रार्थना करता हूँ कि काशी अब ऐसी होनी चाहिए कि सारे भारतकी इसपर दृष्टि हो। हमें मालवीयजीका मन जीतना चाहिए। मालवीयजीने मुझसे कहा है कि अगर उनके चित्तमें विश्वास हो जाये कि ऐसा करना ठीक है तो वे हिन्दू विश्वविद्यालय छोड़ देंगे। उनका कहना है कि उसे छोड़नेसे हिन्दुस्तानकी हानि है। इस विद्यालयको आप लोग सुशोभित कीजिए। इससे यह यज्ञ कार्य जल्दी ही यशस्वी होकर चलने लगेगा। हमारे माननीय भाई मालवीयजी भी तब हमारी बात समझ जायेंगे। अगर यहाँ हिन्दू-मुसलमान मिलकर काम करेंगे तो आपकी मार्फत हमें स्वराज्य मिल जायगा। इसी अभिलाषासे मैंने शिवप्रसाद और जवाहरलालसे कहा था कि इस कार्यका आरम्भ मेरे हाथसे कराइए। मेरी क्या अपेक्षा है, मैंने आपको बता दी। प्रभुसे मेरी प्रार्थना है कि दिन-प्रतिदिन इस विद्यापीठकी वृद्धि हो और यह विद्यालय इस राक्षसी सल्तनतको मिटाने या इसे दुरुस्त करनेमें हिस्सा ले।

आज, ११–२–१९२१

१७२. भाषण : फैजाबादमें

१० फरवरी, १९२१

गांधीजीने सभामें एक ऊँचे मंचपर रखी हुई कुर्सीपर बैठकर भाषण दिया। उन्होंने बैठे-बैठे भाषण देनेके लिए क्षमा-याचना की। उन्होंने श्री केदारनाथकी, जो गिरफ्तार कर लिये गये थे[2], प्रशंसा की और कहा कि सरकारने उनको गिरफ्तार करके उनकी तथा लोगोंकी परीक्षा लेनी चाही है। सरकार लोगोंको डराना चाहती है। यदि श्री केदारनाथ आन्दोलनसे अलहदा होनेके लिए तैयार हो जायेंगे तो वह उन्हें छोड़ देगी।

१. आचार्य जे० बी० कृपलानी।

२. जनवरी १९२१ में उत्तरप्रदेशके कुछ भागोंमें हुए किसानोंके उपद्रवोंके कारण।

उसके बाद उन्होंने किसानोंके उपद्रवोंकी चर्चा की और किसानों द्वारा किये गये हिंसात्मक कार्यपर खेद प्रकट किया . . .। गांधीजीने हिंसाकी अत्यन्त तीव्र और स्पष्ट शब्दोंमें निन्दा की और कहा कि उनके खयालसे ऐसा करना ईश्वर और मानवके प्रति पाप है। उन्होंने जमींदारों और किसानोंमें झगड़ा करवानेके समस्त प्रयत्नोंकी भर्त्सना की और किसानोंको सलाह दी कि वे ऐसे लड़नेके बजाय स्वयं कष्ट सहें; क्योंकि हमें तो अपनी समस्त शक्ति सर्वाधिक शक्तिशाली जमींदार अर्थात् अंग्रेज सर-कारसे लड़नेके लिए संचित कर रखनी है। उन्होंने लोगोंसे अनुरोध किया कि वे अपने हृदयोंको शुद्ध करें, मनोंसे भय निकाल दें और मजबूत बनकर निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ें।

उन्होंने अपने दक्षिण आफ्रिकामें किये गये सत्याग्रह और उसकी सफलताका स्मरण कराया और [अपने स्वागतके समय] स्टेशनपर तलवारें लेकर निकाले गये जुलूसकी[1] निन्दा की। उन्होंने कहा कि हिंसा तो कायरताका लक्षण है। तीस करोड़ लोग स्वयं एक शक्ति हैं और हिंसा किये बिना असहयोगके द्वारा स्वराज्य ले सकते हैं। तलवार तो कमजोरका हथियार है। उन्होंने लोगोंसे संगठित होने, चरखा चलाने और धन-संग्रह करनेकी अपील की। उन्होंने छात्रों द्वारा स्कूल और कालेज छोड़नेका उल्लेख करते हुए कहा कि सोलह सालसे अधिक आयुके लड़के अपने माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध भी इन संस्थाओंका त्याग कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि स्वराज्य शान्ति रखकर, चरखा चलाकर, असहयोग करके और धन संग्रह करके सात महीनेमें लिया जा सकता है। उन्होंने अन्तमें लोगोंसे धन देनेकी अपील की।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, १३–२–१९२१

१७३. पत्र : मणिबेन पटेलको

दिल्ली
१२ फरवरी, १९२१

चि० मणि,[2]

तुम्हारा पत्र मुझे मिला। बहुत प्रसन्नता हुई। तुम भाई[3]-बहन आध घंटा रोज कातो तो इससे स्वराज्य नहीं मिलेगा। उत्साह हो तो जरूर चार घंटे कातो। अभ्याससे अच्छा कातना आ जायेगा।

१. मुसल्मान स्वयंसेवकोंने स्टेशनके दरवाजेपर नंगी तलवारें लिए हुए पंक्तिबद्ध होकर गांधीजीका स्वागत किया था। यहाँ उसी घटनाका उल्लेख किया गया है।

२. सरदार वल्लभभाई पटेलकी पुत्री।

३. डाह्याभाई पटेल।

अभी श्री दास[1] वहाँ नहीं आ सकते। मुझे पत्र लिखा करो। आजकल क्या पढ़ती हो, लिखना।

बापूके आशीर्वाद

पुनश्च :

अभी तो मुझे बहुत घूमना पड़ता है। आज दिल्लीमें हूँ। अभी पंजाब जाना है, बादमें लखनऊ, वहाँसे बेजवाड़ा। इसलिए पता नहीं अहमदाबाद कब आना होगा। बापूसे कहना कि कांग्रेसकी तैयारी करें।[2]

चि० मणिबेन
द्वारा, वल्लभभाई पटेल, बार एट लॉ
भद्र, अहमदाबाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो : मणिबहेन पटेलने

१७४. स्वराज्य देरसे मिलेगा

मुझे ऐसा शीर्षक देते हुए भी शरम आती है। लेकिन बम्बई और पूनामें जो घटनाएँ हुई हैं और अपनी यात्राके दौरान जो थोड़ा बहुत मेरे देखनेमें आया है उन सबके आधारपर मुझे यह कहना पड़ा है। जिन लोगोंने बिहारमें हाटें लूटीं, और जिन्होंने शास्त्री[3] और परांजपेको[4] बोलने नहीं दिया उन्होंने स्वराज्यकी घड़ी की सुई धीमी कर दी है; उन्होंने सत्यके नामपर असत्यका आचरण किया है; उन्होंने शान्तिकी शपथ लेकरके अशांति फैलाई है; उन्होंने उसीको पुष्ट किया है जो शास्त्री कहते थे। यदि शास्त्री और उन-जैसे दूसरे लोगोंको यह विश्वास हो जाये कि हिन्दुस्तान सचमुच अहिंसात्मक युद्ध लड़ सकता है तो वे आज ही असहयोगी बन जायें और यदि सारा हिन्दुस्तान आज ही असहयोग आन्दोलनमें शामिल हो जाये तो आज ही स्वराज्य मिल जाये।

यदि वकील वकालत न छोड़ें, विद्यार्थी सरकारी स्कूलोंका परित्याग न करें और जिन्हें खिताब मिले हैं वे अपने खिताबोंको न छोड़ें तो भी जल्दी ही स्वराज्य मिल सकेगा, ऐसा मुझे लगता है। लेकिन यदि अशान्ति फैले तो स्वराज्य नहीं मिल सकता; एक वर्षमें तो कदापि नहीं मिल सकता।

१. चित्तरंजन दास।
२. अहमदाबादमें होनेवाले कांग्रेसके ३६ वें अधिवेशनकी।
३. वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री।
४. रैंगलर रघुनाथ पुरुषोत्तम परांजपे।

श्री शास्त्रियर और उन-जैसे अन्य लोग शुद्ध भावसे मानते हैं कि असहयोगकी प्रवृत्तिसे देशका नुकसान ही होगा। इसमें उनका क्या दोष है? उनके भ्रमको हम बलात् अथवा अविनयपूर्वक दूर नहीं कर सकते।

जो लोग शांति-भंग करते हैं वे देशके शत्रु हैं, क्योंकि वे सरकारसे सबसे ज्यादा सहयोग करते हैं। अशान्तिको मिटानेका उपचार सरकार जानती है। यदि हम उसकी अपेक्षा अधिक शस्त्रबलका परिचय दें तो वह अवश्य हार जायेगी। लेकिन जो बल उसके पास ही नहीं है यदि हम उस बलसे उसे हरायें तो हमें अपना साध्य प्राप्त करनेमें कमसे-कम समय लगेगा और उससे कुछ भी सीखना न पड़े। इतनी बात तो एक बालककी समझमें भी आ सकती है।

असहयोगकी विजय तभी हो सकती है जब हम बहुत ज्यादा लोगोंको असहयोगका चमत्कार बता सकें। और वह चमत्कार शान्तिसे ही बताया जा सकता है। जैसे अन्धकार उजालेसे ही दूर किया जा सकता है वैसे ही सरकारके शस्त्रबलको हम शान्तिमय असहयोगसे ही दबा सकेंगे।

मैंने अभीतक तो सिद्धान्तके बारेमें ही लिखा है। अब ऐसे समय असहयोगियोंको क्या करना चाहिए? यदि हम किसी सभामें अशिष्टताको नहीं रोक सकते तो हमें ऐसी सभामें जाना ही नहीं चाहिए। शास्त्रियरकी सभामें जब 'शेम' की आवाज लगाई गई तभी जिन्हें यह अशिष्टता पसन्द नहीं आई थी यदि वे लोग सभासे उठकर चले गये होते तो अच्छा होता; शास्त्रियरकी सभामें ऐसी आवाज लगानेवाले पाँच-सात लोग रह जाते तो रह जाते; लेकिन असहयोगी तो इस दोषसे बच जाते। हम किसीकी सभामें जानेके लिए बाध्य नहीं हैं; लेकिन अगर हम उसमें जाते हैं तो हम वहाँ स्वयं शिष्टताका पालन करने और दूसरोंसे करवानेके लिए अवश्य बाध्य हैं।

पूछा जा सकता है, अगर सरकारके जासूस अशिष्टता करें तो इसमें हमारा क्या दोष? हमारा दोष यह है कि हम उस अशिष्टताको नहीं दबा सकते। सिपाही अपने सामने खाइयों और चट्टानोंको देखकर स्तब्ध नहीं रह जायेगा, बल्कि खाइयोंको भरकर और चट्टानोंको काटकर आगे बढ़ेगा। सरकार हमपर शासन करती है, क्योंकि वह हमारी सब युक्तियोंको नष्ट करनेकी शक्ति रखती है। जब हम उसकी सारी चालोंको काट देंगे तभी हम सरकारपर शासन कर सकेंगे। यदि सरकारके जासूस सभाओंको भंग करने आते हों तो हमें उनके लिए मैदान खुला छोड़ देना चाहिए। हमें उस सभासे शान्तिपूर्वक उठ जाना चाहिए। शान्तिमय असहयोगका शस्त्र इतना शुद्ध है कि उसमें यदि तनिक भी मलिनता आती है तो वह दिख जाती है। उसकी धार इतनी तीक्ष्ण है कि वह कठिनसे-कठिन वस्तुको काट सकती है। इसलिए उसके समान तुरन्त प्रभाव दिखानेवाला कोई दूसरा शस्त्र नहीं है। फिर भी उसका उपयोग करना इतना आसान है कि एक बच्चेको भी समझाया जा सकता है। जहाँ कुछ 'करना' हो वहाँ अनुभव और प्रशिक्षणकी जरूरत होती है। असहयोगका अर्थ है 'न करना'। बालकसे अक्षर लिखानेमें वर्षों लग जाते हैं। लेकिन यदि उससे यह कहें कि तू अक्षर न लिख तो यह उसके लिए बिलकुल आसान है। सच्चा और आज्ञाकारी बालक तो न करनेकी बातको अपने-

आप समझ सकता है। उसी तरह सच्चा और श्रद्धालु असहयोगी भी निश्चित कार्योंको न करनेकी बात बिना किसी प्रशिक्षणके समझ सकता है। इसी तरह सोच-समझकर किये गये त्यागमें से ही ज्ञान और बल उत्पन्न होता है। हिन्दुस्तानको शस्त्र संचालन सीखना हो तो भी शान्ति और असहयोगकी शिक्षा लेनी होगी।

अतएव इस लेखको पढ़नेवाले साथियोंको निम्नलिखित नियमोंपर ध्यान देना होगा :

यदि सहकारियोंकी सभामें शिष्टताभंग होनेकी तनिक भी शंका हो तो वे उसमें न जायें और अन्य असहयोगियोंको न जाने दें। उन्हें लोगोंको इस तरहका शिक्षण देनेकी पूरी कोशिश करनी होगी।

अब वकीलोंको अथवा बालकोंको कुछ समझाना बाकी नहीं रह गया है; मतलब यह है कि जो लोग अदालतों और स्कूलोंसे निकल आये हैं उनको प्रशिक्षित करनेसे, उनके चरित्रसे और उनकी निर्भयतासे दूसरे लोग अपने-आप निकल आयेंगे।

असहयोगियोंको अब कारीगरोंके वर्गमें प्रवेश करना है। इस तरह हम प्रत्येक वर्गकी सेवा करके आगे बढ़ सकेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३–२–१९२१

१७५. भाषण : दिल्लीमें तिब्बिया कालेजके उद्घाटनपर[1]

१३ फरवरी, १९२१

हकीमजी और मित्रो,

इस उत्सवमें आनेमें मुझे बड़ा संकोच हुआ, क्योंकि मुझे मालूम है कि यदि इस समय सरकार और हमारे बीचमें ऐसा दुःखदायी विरोध न खड़ा हो गया होता तो इस महान् विद्यालय[2] और चिकित्सालयको खोलनेके लिए श्रीमान् वाइसराय साहब[3] निमंत्रित किये गये होते, विशेषकर जब उसकी नींव उनके पूर्ववर्ती वाइसराय लॉर्ड हार्डिंगने[4] डाली थी। यदि वाइसराय-जैसे महापुरुषके स्थानमें मैं नियुक्त किया गया हूँ तो मेरा संकोच करना उचित ही है। एक और भी कारण है और वह उससे भी अधिक व्यक्तिगत है। औषधि और अस्पतालके सम्बन्धमें मेरे विचित्र विचार हैं और ऐसी जगहोंके सम्पर्कसे मैं बहुत दूर रहता हूँ। तथापि अपने योग्य हकीमजीके लिए मेरे मनमें इतना आदर है कि मैंने अपना संकोच दूर कर दिया। मैं स्पष्ट कहना चाहता

१. यह भाषण अंग्रेजीमें १५–२–१९२१ के **बॉम्बे क्रॉनिकल**में भी छपा था। इसे उससे मिला लिया गया है। यहाँ प्रचलित हिज्जों और अभिव्यक्तिकी स्पष्टताकी दृष्टिसे यत्र-तत्र कुछ शाब्दिक परिवर्तन भी किये गये हैं।

२. तिब्बिया कालेज; इस राष्ट्रीय संस्थाकी स्थापना हकीम अजमल खांने की थी।

३. लॉर्ड चैम्सफोर्ड।

४. १८५८–१९४४; भारतके वाइसराय, १९१०-१६।

हूँ कि मैं इस उत्सवमें राजनीतिक कारणोंसे सम्मिलित हो रहा हूँ। मैं हकीमजीको हिन्दू-मुसलमानोंकी एकताकी प्रतिमा समझता हूँ। इस एकताके बिना हम कोई उन्नति नहीं कर सकते। मैं इस विद्यालयको उस एकताकी मूर्ति समझता हूँ और नहीं इस कारण मुझे इस उत्सवमें सम्मिलित होनेमें बड़ा हर्ष हो रहा है।

जो विवरण मन्त्रीने अभी सुनाया है उसको आपने सुना है, और उससे आप लोगोंको मालूम हो गया होगा कि इसके लिए कितना परिश्रम किया गया है और इसमें कितनी उन्नति हुई है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यदि एक आदमी तत्परतासे अपनी शक्ति किसी काममें लगाये तो क्या नहीं कर सकता। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि हकीमजीको दीर्घायु प्राप्त हो जिससे कि वे इस कामको पूरा कर सकें। मुझे आशा है कि देशके धनी लोग बिना माँगे ही इसमें धनकी सहायता देंगे जिससे कि उनका भार कम हो। आपको मालूम है कि इस विद्यालयके खोलनेके अतिरिक्त मुझे लॉर्ड और लेडी हार्डिंगके चित्रोंका भी अनावरण करना है। इस कामको करनेमें मुझे विशेष प्रसन्नता होती है, क्योंकि यह दिखलानेका मुझे अवसर मिला है कि असहयोगकी लड़ाईमें हम अंग्रेज जातिसे कोई द्वेषका भाव नहीं रखते और हमारा राष्ट्रीय आदर्श यही है कि चाहे अंग्रेज हो, चाहे हिन्दुस्तानी, जिस किसीने हमारे साथ भलाई की हो उसको हम स्मरण रखें।

औषधिके सम्बन्धमें जो मेरी राय है उसको स्पष्ट करनेके लिए आपको कुछ देरके लिए कष्ट दूँगा, जिससे कि इस विषयमें किसीको कोई भ्रम न हो। मैंने एक पुस्तकमें[1], जिसपर कि हालमें बहुत टीका-टिप्पणी की गई है, लिखा था कि मैं औषधिकी प्रचलित प्रणालीको पैशाचिक युक्ति समझता हूँ। मैं अस्पतालोंकी बढ़तीमें सभ्यताकी उन्नति नहीं देखता। इसको मैं अवनतिका स्वरूप ही समझता हूँ, जैसे कि पिंजरापोलोंकी संख्या बढ़नेसे यही मालूम पड़ता है कि लोगोंमें मवेशीकी भलाईकी ओरसे उदासीनता ही है। इस कारण मुझे आशा है कि यह विद्यालय लोगोंको रोगोंसे बचानेका विशेष प्रयत्न करेगा और रोगीको नीरोग करनेकी कम फिकर करेगा। स्वास्थ्य रक्षाकी कला नीरोग करनेकी कलासे अधिक गौरवपूर्ण है, यद्यपि इसकी साधना अधिक कठिन भी है। चिकित्साकी प्रचलित प्रणालीको मैं पैशाचिक इस कारण समझता हूँ कि इससे प्रेरित होकर लोग शरीरका महत्व जरूरतसे ज्यादा मानने लगते हैं और अन्तःस्थित आत्माकी अवहेलना करते हैं। इस विद्यालयके विद्यार्थियों और अध्यापकोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे आत्माके स्वास्थ्यके नियमोंका अनुसन्धान करें जिससे कि उन्हें मालूम हो जायेगा कि शरीरकी चिकित्साके सम्बन्धमें भी उससे बहुत चमत्कारी परिणाम हासिल होंगे। इस समयकी चिकित्सामें धर्मका भाव बहुत कम होता है। जो आदमी अपनी नमाज और गायत्री रोज ठीक भावसे पढ़ता है उसको तो बीमार पड़ना ही नहीं चाहिए। यदि आत्मा शुद्ध रहेगी तो शरीर भी शुद्ध रहेगा। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि धार्मिक आचरणसे आत्मा और शरीर दोनों शुद्ध रह

१. अनुमानतः गांधीजीका तात्पर्य अपनी आरोग्य-विषयक लेखमाला (देखिए खण्ड ११ और १२) या हिन्द स्वराज्यसे है।

सकते हैं। मेरी आशा और प्रार्थना है कि इस विद्यालयके द्वारा हकीम लोग आत्मा और शरीरका फिर मेल करेंगे।

आधुनिक चिकित्सा-शास्त्रने शरीरके स्थायी अंश, अर्थात् आत्माकी अवहेलना कर बीमारियोंका अनुसंधान किया है, जिसका यह नतीजा हुआ कि उसने यह नहीं पहचाना कि इस सम्बन्धमें हम लोग कहाँतक काम कर सकते हैं और कहाँसे आगे नहीं बढ़ सकते। शरीरको स्वस्थ करनेकी चेष्टामें उसने मानवेतर जीवोंकी अवहेलना की है। मनुष्य यदि सब जीवोंका स्वामी है तो वह उनका रक्षक भी है। जन्तुओंकी रक्षा करनेके बदले वह उनका घातक हो गया है और चिकित्सा-शास्त्रने विशेषकर यह घात किया है। मेरी रायमें जीवित पशुओंका अंग-भंग करना सब पापोंमें महापाप है। यह ईश्वर और उसकी सुन्दर सृष्टिके प्रति पाप करनेके समान है। अगर जीवोंकी हिंसा और उत्पीड़नसे ही हम जीवित रह सकते हैं तो हमारा जीना हराम है। हमें ईश्वरको दयालु कहकर उसके आशीर्वादके लिए प्रार्थना करना शोभा नहीं देता, जब हम अन्य जीवोंके साथ साधारण दया भी नहीं दिखाते। मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि भारतके श्रेष्ठतम हकीम द्वारा स्थापित यह विद्यालय सदा स्मरण रखेगा कि हम लोगोंके कार्य-क्षेत्रकी ईश्वरने एक सीमा निर्धारित कर दी है।

इतना कहकर मैं आधुनिक यूरोपीय वैज्ञानिकोंमें जो अनुसंधानका भाव है उसकी प्रशंसा करना चाहता हूँ। मेरा झगड़ा उस भावसे नहीं है पर उस मार्गसे है जिसका कि उन्होंने अवलम्बन किया है। उन लोगोंने सिर्फ इस बातका खयाल किया है कि किन-किन तरीकोंसे हम मनुष्यके शरीरको सुख पहुँचा सकते हैं। पर जिस तत्परता, परिश्रम और आत्मत्यागके साथ सत्यके अनुसंधानमें इन वैज्ञानिकोंने सब-कुछ किया है उसका मैं हृदयसे आदर करता हूँ। और गहरे अनुभवके बाद मुझे बड़े खेदसे यह कहना पड़ता है कि हमारे वैद्यों और हकीमोंमें ऐसा भाव नहीं रहा है। वे लकीर-के फकीर बने रहे हैं और हमारी पुरानी औषधियोंकी हालत इस समय बड़ी शोचनीय हो गई है। आधुनिक अनुसंधानके परिणामोंको न जानकर उन्होंने अपना पेशा ही खराब कर डाला है। मैं आशा करता हूँ कि यह विद्यालय इस महादोषको दूर करेगा और आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्साशास्त्रको फिरसे अपने पुरातन गौरवपर प्रतिष्ठित करेगा। मुझे हर्ष है कि विद्यालयका एक पाश्चात्य चिकित्सा-विभाग भी है। मुझे आशा है कि तीनों चिकित्सा प्रणालियोंके सम्मिलनसे एक ऐसी प्रणाली निकलेगी जिसमें कि तीनोंके दोष न रहें। मुझे यह भी आशा है कि यह विद्यालय प्राच्य और पाश्चात्य, दोनों प्रकारकी नीमहकीमीसे दूर रहेगा और केवल वास्तविक गुणोंको ही मान्यता देगा और अपने विद्यार्थियोंमें यह भावना भरेगा कि यह धन्धा धन कमानेके लिए नहीं है, पर दुःख-दर्द निवारण करनेके लिए है। ईश्वरसे यह प्रार्थना करते हुए कि इसके जन्मदाता और व्यवस्थापकोंके परिश्रमके लिए वह उन्हें आशीर्वाद दे, मैं यह घोषणा करता हूँ: यह तिब्बी विद्यालय खुल गया।

आज, १५-२-१९२१

१७६. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

दिल्ली

सोमवार [१४ फरवरी, १९२१][१]

प्रिय चार्ली,

आज मेरा मौनवार है। स्वाभाविक रूपसे मनमें उन लोगोंका खयाल आ रहा है जो मेरे निकट सबसे प्रिय और घनिष्ठ हैं। शास्त्री और परांजपेके सम्बन्धमें आपका पत्र मुझे अच्छा लगा। वह शर्मनाक घटना थी। फिर भी हमें अपना काम तो चालू ही रखना चाहिए और साथ ही हर तरहसे हुल्लड़बाजीको रोकनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए। जितना अधिक सोचता हूँ उतना ही अधिक स्पष्ट रूपसे मुझे इस आन्दोलनके पीछे ईश्वरका हाथ नजर आता है। उत्तेजनात्मक परिस्थितियोंके रहते हुए भी लोगोंने जो आत्मसंयम दिखाया वह आश्चर्यजनक है। इस आत्मसंयमके पीछे संगीनोंका भय भी है, ऐसा मैं मानता हूँ।

मैं न तो विज्ञानकी उपेक्षा करना चाहता हूँ और न सामान्य शिक्षाकी। किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि इस परीक्षा-कालमें अन्य सभी गतिविधियाँ बन्द कर देनी चाहिए। यह अवधि जनताके लिए ही रखी गई है। जनता एक अवधि निश्चित करके ही काम करना पसन्द करती है। मैं जानता हूँ कि यदि इस अवधिमें भारतमें अहिंसाकी प्रतिष्ठापना की जा सकी तो तुम देखोगे कि हमें सितम्बरसे[२] पहले ही स्वराज्य मिल जायेगा। तुमको याद होगा कि गिरमिट-प्रथाको समाप्त करनेके लिए भी एक अवधि निर्धारित की गई थी। इसमें ऐसी कोई कोशिश नहीं है कि शिक्षाको हटाकर उसके स्थानपर असहयोगको ही रख दिया जाये।

जितनी देर तिब्बिया कालेजमें रहे अच्छा लगता रहा। मैं चाहता हूँ कि उद्घाटनके अवसरपर दिया गया मेरा भाषण तुम पढ़ो और उसके बारेमें अपनी राय मुझे लिखो। ड्यूकको लिखे गये अपने पत्रकी[३] भी मैं तुमसे समीक्षा चाहता हूँ।

मुझे ३६, मुजंगरोड, लाहौरके पतेपर पत्र लिखना। मैं करीब एक पखवारे तक पंजाबमें रहूँगा।[४]

सस्नेह,

तुम्हारा,

मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९५४) की फोटो-नकलसे।

१. पत्रमें उल्लिखित विभिन्न घटनाओंसे पता चलता है कि पत्र इसी तारीखको लिखा गया था।

२. सितम्बर १९२० में कलकत्तामें हुए कांग्रेसके विशेष अधिवेशनके एक वर्ष बाद।

३. देखिए "पत्र: ड्यूक ऑफ कनॉटको", २ फरवरी, १९२१ के पूर्व।

४. गांधीजीने १४ फरवरी, १९२१ को दिल्लीसे प्रस्थान किया और १५ फरवरीसे ८ मार्च, १९२१ तक पंजाबमें रहे।

१७७. भाषण: भिवानीके[1] हरियाना ग्रामीण सम्मेलनमें

१५ फरवरी, १९२१

इसके बाद महात्मा गांधीने भाषण देते हुए कहा कि आपने असहयोग और मादक पदार्थोंके बारेमें जो प्रस्ताव पास किये हैं उनका आपको पूरा-पूरा पालन करना है। उन्होंने कहा, "मैंने देखा है कि लोग सिर्फ प्रस्ताव पास करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं और अपनी प्रतिज्ञाके पालनकी चिन्ता नहीं करते, यह एक बड़े दुर्भाग्यकी बात है। जो लोग प्रस्ताव पास करते हैं उनसे उसके पालनकी भी आशा की जाती है। पिछले सितम्बर मैंने घोषणा की थी कि आजसे एक वर्षके अन्दर ही स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। पर इस घोषणाके साथ कुछ दूसरी शर्तें भी थीं। पहली अनिवार्य शर्त तो यह है कि उकसाये जानेपर भी लोग हिंसासे दूर रहें, उकसानेकी कोशिश चाहे सरकार करे, चाहे उनके अपने ही लोग। मेरा तो अहिंसा धर्म है; लेकिन यह बात सभीकी समझमें आ गई है कि हिंसाके रास्तेसे आगे-पीछे कभी स्वराज्य प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

दूसरी शर्त है परस्पर सहयोग। इसलिए अपने ही भाइयोंके साथ अछूतोंका-सा व्यवहार करना बेजा है। मैं अपने-आपको कट्टर हिन्दू मानता हूँ। हिन्दू धर्मसे मैंने तो यही सीखा है कि सभी मनुष्य मेरे भाई हैं और उन्हें भी मेरे समान आगे बढ़नेके अवसर और सुविधाएँ प्राप्त रहनी चाहिए। जबतक हम अपने लाखों देशवासियोंको अछूत मानते हैं तबतक हमें भी [ब्रिटिश] साम्राज्यमें अछूत बनकर दिन काटने पड़ेंगे। असहयोग शुद्धिका आन्दोलन है; इसलिए हमें भी अपनी सभी बुरी आदतें छोड़ देनी चाहिए। तीसरी शर्त है हर हालतमें विदेशी वस्त्रका पूर्ण बहिष्कार। इसका केवल एक ही तरीका है; वह यह कि हर घरके लोग कताईको कर्त्तव्य मानें और बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष, सभी स्वेच्छया कमसे-कम एक सालतक अपने खाली समयमें कताई करें।

चौथी शर्त है, आर्थिक सहायता। हरएक जितना हो सके उतना धन दे। बिना धनके स्वदेशी प्रचार नहीं हो सकता और न राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजोंको चलाया जा सकता है।[2]

मैंने इन कुछेक शर्तोंका उल्लेख किया है क्योंकि ये सबपर समान रूपसे लागू होती हैं। कुछ शर्तें विशेष वर्गोंके लोगोंसे सम्बन्धित हैं। कांग्रेसने सिपाहियों या पुलिसके अधिकारियोंसे अपनी नौकरी छोड़नेके लिए तो नहीं कहा है; पर उसने यह आशा

१. पंजाबके हरियाना प्रदेशका एक कस्बा; सम्मेलनकी अध्यक्षता लाला लाजपतरायने की थी।

२. सम्मेलनमें गांधीजीको १८,००० रुपये तथा महिलाओंसे अनेक आभूषण प्राप्त हुए। इसके अतिरिक्त लोगोंने कोई ४२,००० रुपये देनेका वादा किया।

अवश्य की है कि वे जनताके प्रति वफादार बने रहेंगे। कांग्रेसको यह भी आशा है कि सैनिक जातियोंसे नये लोग पुलिस या सेनामें भरती नहीं होंगे और दूसरे लोग भी अब भरती नहीं होंगे।

जिन शर्तोंका मैंने उल्लेख किया है यदि कुछ सन्तोषजनक ढंगसे इनका पालन हो सके तो निश्चय ही सितम्बरसे पूर्व स्वराज्य मिल सकता है। यह तो कोई भी नहीं कह सकता कि मैंने जो शर्तें बताई हैं उनका पालन कोई कठिन चीज है।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, १९-२-१९२१

१७८. टिप्पणियाँ

कौनसी वस्तु असहयोग आन्दोलनको नष्ट कर देगी?

निश्चय ही असहयोगियों द्वारा की गई हिंसा। किन्तु यह वह बात नहीं है जिसका मैं उत्तर देना चाहता था। मुझसे वास्तवमें प्रश्न यह पूछा गया है कि 'असहयोगको नष्ट करनेके लिए सरकार क्या कर सकती है?' और [मेरा उत्तर है]: मुसलमानोंकी माँगके अनुसार खिलाफतके प्रश्नका समाधान, भारतवासियोंकी माँगके अनुसार पंजाबके सवालका निपटारा तथा राष्ट्रके अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधियों द्वारा बनाई जानेवाली योजनाके अनुसार स्वराज्यका दिया जाना।

स्वराज्य क्या है?

यह दूसरा प्रश्न है। इसका उत्तर ऊपरके अनुच्छेदमें अंशतः दिया जा चुका है। कोई भी एक आदमी स्वराज्यकी योजना नहीं बना सकता, क्योंकि जिस स्वराज्यकी माँग की जा रही है वह एक आदमीका नहीं होगा; न ही कोई पेशगी योजना बनाई जा सकती है। जो चीज आज राष्ट्रको सन्तोष देती है, सम्भव है वह कल सन्तोष न भी दे। हमारा विकास एक जीवन्त विकास है; उसे वैसा होना भी चाहिए। इसलिए राष्ट्रकी इच्छा तो दिन-दिन बदलती रह सकती है। तथापि स्वराज्यकी योजनाकी एक मोटी रूपरेखा तो निश्चय ही पहलेसे निर्धारित की जा सकती है। शिक्षा, विधि, पुलिस तथा सेनापर राष्ट्रके प्रतिनिधियोंका पूरा नियन्त्रण होना चाहिए। इसी तरह वित्तीय व्यवस्थापर भी हमारा पूरा नियंत्रण होना चाहिए; और यदि हमें स्वशासित रहना है, तो एक भी सैनिक हमारी अनुमतिके बिना देशके बाहर नहीं जा सकेगा।

यूरोपीयोंके हितोंका क्या होगा?

स्वशासित भारतमें वे उतने ही सुरक्षित होंगे जितने आज हैं। किन्तु उन्हें श्रेष्ठतर जातिके कोई विशेषाधिकार नहीं होंगे, उनके लिए कोई रियायत नहीं होगी, उन्हें किसी प्रकारका शोषण नहीं करने दिया जायेगा। अंग्रेज सभी अर्थोंमें हमारे मित्रोंके समान रहेंगे, शासकोंके समान नहीं।

ब्रिटेनके साथ हमारे सम्बन्धका क्या होगा?

जहाँतक मुझे मालूम है, कोई भी इस सम्बन्धको अकारण समाप्त नहीं कर देना चाहता। यदि इंग्लैंडकी नीति खिलाफतके प्रश्नपर मुसलमानोंकी भावनाके विरुद्ध पड़ती है, अथवा पंजाबके बारेमें भारतीय भावनाके विरुद्ध पड़ती है, तो फिर पूर्ण स्वतन्त्रता होनी ही चाहिए। जो भी हो, यह सम्बन्ध साझेदारीका होना चाहिए — रजामन्दीसे मर्यादित और पारस्परिक स्नेह तथा सम्मानपर आधारित।

क्या भारत इसके लिए तैयार है?

सो तो समय दिखलायेगा। यों मुझे विश्वास है कि वह तैयार है। कांग्रेस जिस स्वराज्यकी माँग कर रही है, वह इंग्लैंड द्वारा दिया जानेवाला स्वराज्य नहीं है। स्वराज्य तो वह है जो राष्ट्र माँगता है और बलात् ले सकता है; स्वराज्य उसी अर्थमें चाहिए जिसमें दक्षिण आफ्रिकाने उसे प्राप्त किया।

धोती और चादर

समयके चिह्न अचूक हैं। कहा जाता है कि [सुधारोंके अनुसार] पुनर्गठित परिषद्में एक सदस्य धोती और चादर धारण किये उपस्थित हुए, और उन्होंने बंगला भाषामें शपथ-ग्रहण करनेका आग्रह किया। सदस्य महाशय अपने साहसके लिए बधाईके पात्र हैं। हमारे लिए सभी अवसरोंपर अपनी राष्ट्रीय पोशाकमें उपस्थित होना बिलकुल स्वाभाविक बात है। और यह आशा की जा सकती है कि सदस्यगण यथासम्भव राष्ट्रके साथ सहयोग करेंगे, यद्यपि परिषदोंमें जानेका आग्रह करके उन्होंने राष्ट्रकी इच्छाकी अवहेलना की है। यदि वे परिषदकी बैठकोंमें खद्दरकी पोशाकमें उपस्थित होनेका तथा अपनी प्रान्तीय भाषामें बोलनेका साहस करेंगे तो निश्चय ही वे राष्ट्रकी सेवा करेंगे। राष्ट्रके अनेक लोगोंका अंग्रेजी बोलना थोड़ेसे अंग्रेजोंका हमारी प्रान्तीय भाषाएँ बोलनेकी अपेक्षा अधिक कठिन काम है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-२-१९२१

१७९. मेरा उत्तरदायित्व

'सर्वेन्ट आफ इंडिया' ने यह दिखानेके लिए कि सभी असहयोगी प्रेमसे नहीं, वरन् द्वेषसे प्रेरित हैं, मेरा ध्यान पूनाके एक असहयोगीके वक्तव्यकी ओर आकर्षित किया है। मैंने इसमें कभी सन्देह नहीं किया है। उलटे, मैंने स्वीकार किया है कि अनेक असहयोगी द्वेषसे, अधिकांश न्यायकी भावनासे और कुछ थोड़से ही केवल प्रेमकी भावनासे प्रेरित हैं। पूनाकी वस्तुस्थितिके उल्लेखके बाद एक फटकार भी सुनाई गई है। लेखकने अपनी बात इस प्रकार समाप्त की है:

> **प्रेम और शान्तिके झण्डेके नीचे द्वेष और हिंसाकी शक्तियोंको भरती करना, यह विश्वास करना कि एक सीधा-सा सिद्धान्त प्रत्येक हृदयको खरे सोनेमें बदल सकता है, फूसके ढेरपर बैठकर शान्तिकी चिलम फूँकते जाना और प्रकट भोलेपनके साथ परिणामोंके सारे उत्तरदायित्वसे इनकार करना — ऐसा व्यवहार, चाहे वह किसी नबीका ही क्यों न हो, आश्चर्यजनक है।**

मुझे कहते हुए खेद होता है कि यह फटकार तीन निराधार मान्यताओंपर आधारित है। मैंने प्रेम और शान्तिके झण्डेके नीचे द्वेष और हिंसाकी शक्तियोंको भरती नहीं किया है, वरन् मैंने न्यायके झण्डेके नीचे उन सबको भरती किया है जो न्याय पाना चाहते हैं, और ऐसा करनेमें — एक व्यावहारिक सुधारककी नाई — उन्हें भी भरती करनेमें संकोच नहीं किया है, जिनके विषयमें मैं जानता हूँ कि वे द्वेषसे प्रेरित हैं। पर वे भी न्याय पानेके अधिकारी हैं। हाँ, मुझे देखना चाहिए कि वे अपनी हिंसाको कहीं व्यवहारमें न उतारने लगें। मैं दावा करता हूँ कि द्वेषियोंकी एक बहुत ही बड़ी संख्या अपनी ओरसे असहयोगकी शर्तोंका ईमानदारीसे निर्वाह कर रही है, क्योंकि वे समझते हैं कि यदि उन्हें न्याय प्राप्त करना है — केवल क्रोध ही व्यक्त नहीं करना है — तो देशके लिए अहिंसा ही एकमात्र और सर्वोत्तम नीति है। अतः मेरे लिए यह विश्वास करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि "एक सीधा-सा सिद्धान्त प्रत्येक हृदयको खरे सोनेमें बदल सकता है।" हाँ, यह विश्वास मैं अवश्य करता हूँ कि सम्भव है व्यावहारिक अनुभव नीतिको विश्वासमें बदल दे। कारण, मैं विश्वास करता हूँ कि लोग स्वभावसे ही स्नेही और शान्तिप्रिय हैं। जब वे द्वेष और हत्या करते हैं, तब वे अपने उच्चतर स्वभावके विरुद्ध ही ऐसा करते हैं। मैं 'फूसके ढेरपर बैठकर शान्तिकी चिलम नहीं फूँक रहा हूँ', न 'प्रकट भोलेपनके साथ परिणामोंके लिए सारे उत्तरदायित्वसे इनकार' कर रहा हूँ। इसके विपरीत, खदानोंके कुशल विशेषज्ञकी नाई, मैं विस्फोटक गैसोंसे भरी एक कोयलेकी खदानमें विस्फोटके विरुद्ध सुरक्षित रहते हुए, सुरक्षा-दीप (सेफ्टीलैम्प) लिए उत्तरदायित्वकी समुचित भावनाके साथ घूम रहा हूँ — पूरी तरह यह जानते हुए कि सुरक्षा-दीपकी ऊपरी सुरक्षाके बावजूद विस्फोटक गैस किसी अज्ञात प्रक्रियाके द्वारा किसी क्षण भी विस्फोट कर सकती है। यदि उन्होंने विस्फोट

किया तो मैं उत्तरदायित्वसे मुँह नहीं मोड़ूँगा। मैं क्षमा मागूँगा, अपने प्रतिशोधी और क्रुद्ध देशवासियोंसे नहीं, वरन् भगवानसे — जो मेरा उद्देश्य जानता है, और जो यह भी जानता है कि उसने मुझे एक ऐसे कमजोर आदमीके रूपमें पैदा किया है जो गलती कर सकता है, और फिर भी जिसने मुझे निर्णय करने और कार्य करनेकी शक्ति दी है। मैं दावा करता हूँ कि मैं सिपाही हूँ, और जो बड़ीसे-बड़ी जोखिमें नहीं ले सकता, वह सिपाही ही क्या? 'दि सर्वेंट आफ इंडिया' द्वारा मेरे लिए प्रयुक्त "नबी" शब्द मुझपर किया गया एक निर्दय आघात है। उस पत्रके लेखकको जानना चाहिए कि मैं 'नबी' होनेका दावा नहीं करता। हाँ, यह दावा मैं अवश्य करता हूँ कि मैं देशका एक ऐसा निष्ठावान सेवक हूँ, जिसके हृदयकी यह प्रबल इच्छा है कि अपने देशकी उस असह्य बोझसे मुक्त होनेमें सहायता करे, जिसने उसे बुरी तरह झुका दिया है, और जिसे यह देश कभी-कभी अनुभव भी नहीं कर पाता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–२–१९२१

१८०. हाथ कताईपर कुछ और विचार

'सर्वेंट ऑफ इंडिया' ने कताईकी जो हँसी उड़ाई है, उसका कारण तथ्योंका अज्ञान ही है, मैं यह बात आगे स्पष्ट करने जा रहा हूँ। निःसन्देह कताईसे स्त्रियोंके सतीत्वकी रक्षा होती है। जिन स्त्रियोंको खुले-आम सड़कोंपर काम करना पड़ता है और जिनके शील-भंगका हर समय खतरा बना रहता है वे स्त्रियाँ कताईको अपनाकर अपनी रक्षा कर सकती हैं। मुझे अन्य किसी ऐसे धन्धेकी जानकारी नहीं है जिसे लाखों स्त्रियाँ अपना सकती हों। मैं मजाक उड़ानेवाले इस लेखकको यह भी बता दूँ कि अनेक स्त्रियाँ कताईको अपनाकर अपने घरोंकी सुरक्षित और पवित्र सीमाओंमें ही जीविका कमानेमें समर्थ हो सकी हैं। उनका कहना है कि कताई-जैसी बरकत किसी और धन्धेमें नहीं है। मैं तो यह भी मानता हूँ कि चरखेमें संगीत वाद्योंके-से गुण हैं। अन्न और वस्त्रके अभावसे दुःखी किसी स्त्रीको साजपर नाचने-गानेका उत्साह नहीं हो सकता। किन्तु मैंने देखा है कि चरखेको चलते देखकर स्त्रियोंके चेहरोंपर मुस्कान थिरकने लगती है। वे जानती हैं कि इस अपरिष्कृत यन्त्रके सहारे वे अपने पहनने-खानेका प्रबन्ध कर सकती हैं।

जी हाँ; इससे भारतकी घोर कंगालीकी समस्या सुलझ सकती है और यह अकालसे भी हमारी रक्षा कर सकता है। मजाक उड़ानेवाला लेखक सिंचाई और लोक सहायता सम्बन्धी कार्योंकी उन पोलोंसे अनभिज्ञ है जिन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ। ये काम निरी धोखा-धड़ी हैं। यदि मुझे सलाह देनेवाले ये महानुभाव घर-घरमें चरखेका प्रचार कर सकें तो मैं विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि केवल चरखा ही अकालसे पूरा-पूरा संरक्षण प्रदान कर देगा। आस्ट्रियाका उदाहरण देना बेकार है। मैं अपने

देशवासियोंकी गरीबी और लाचारीको जानता हूँ; और इसलिए मैं तो सिर्फ उसी उपायकी बात सोच सकता हूँ जो भारतके लिए कामधेनु हो। चरखा भारतके लिए कामधेनु ही है। ईस्ट इंडिया कम्पनीके आनेसे पहले भारतके हर घरमें चरखा चलता था। भारतमें रुईकी खेती होती है इसलिए इस देशमें बाहरसे गज-भर भी सूत लाना अपराध है। लेखक द्वारा दिये गये आँकड़े भी अप्रासंगिक हैं।

सच तो यह है कि १९१७–१८ में भारतमें ६२.७ करोड़ पौंड सूतके उत्पादनके बावजूद विदेशोंसे कई करोड़ गज सूतका आयात हुआ। मिलों तथा जुलाहोंने इसका उपयोग किया। ऐसा लगता है कि लेखकको शायद यह भी नहीं मालूम कि जुलाहे मिलोंसे ज्यादा सूत बुनते हैं। और चूंकि अधिकांश सूत विदेशी है इसलिए हमारे जुलाहे विदेशी कतवैयोंका पोषण कर रहे हैं। अगर हम किसी दूसरे कार्यमें भी अपने समयका सदुपयोग कर रहे होते तो मैं इस बातको बुरा न मानता। किन्तु कताईका काम प्रायः जबरदस्ती ही बन्द कर दिया गया है और उसका स्थान दासता और बेकारीने ले लिया है। आजकल हमारी मिलें हमारी जरूरतका कपड़ा भी तैयार नहीं कर पातीं। यदि कर भी पायें तो जबतक उन्हें विवश न किया जाये वे दामोंमें कमी नहीं करेंगी। मिलवाले तो बिना झिझके धन कमानेपर तुले हुए हैं। वे राष्ट्रकी जरूरतोंको देखकर दाम तय नहीं करेंगे। हाथ कताईका उद्देश्य ही यह है कि इससे गरीब ग्रामवासियोंको मजदूरीके रूपमें लाखों रुपये पहुँच सकें। हर कृषि-प्रधान देशमें एक अनुपूरक धन्धेकी आवश्यकता होती है जिससे किसान अपने खाली समयका सदुपयोग कर सके। भारतके लिए हमेशासे कताई अनुपूरक धन्धा रहा है। भारतके अद्भुत वस्त्रोंमें जो अद्वितीय कलात्मकता भरपूर झलकती थी और जिससे संसार भरके लोगोंको ईर्ष्या होती थी, इस प्राचीन धन्धेके नष्ट होनेसे लुप्त हो गई है और उसकी जगह आई है केवल दासता। क्या इस धन्धेके पुनरुद्धारका यह प्रयत्न कोरी कल्पना ही है?

और अब थोड़ा हिसाब-किताब भी देखिए। यदि एक लड़का प्रतिदिन चार घण्टे काम करे तो ¼ पौंड सूत कात सकता है। इस तरह ६४,००० विद्यार्थी प्रतिदिन १६,००० पौंड सूत कात लेंगे। और यदि एक जुलाहा दो पौंड हाथकते सूतको बुने तो इस सूतसे ८,००० जुलाहोंको जीविका मिल सकती है। पर शुद्धिके इस वर्षमें विद्यार्थियों और दूसरे लोगोंको कताईको लोकप्रिय बनानेके लिए प्रायश्चित्त-स्वरूप कताई करनी है। इससे हाथ-कते सूतका उत्पादन चालू वर्षके लिए निश्चित उत्पादनसे भी बढ़ जायेगा। राष्ट्र यदि अत्यधिक आलसी हो गया है तो बात अलग है; नहीं तो यदि सभी इस काममें योग दें तो यह हदसे ज्यादा आसान है। इतना-सा मामूली त्याग करके और कुछ नहीं तो साठ करोड़ रुपयेकी वार्षिक बचत होगी। मैंने कई मिल मालिकों, अर्थ-शास्त्रियों, व्यापारियों-से इस विषयमें बात की है और उनमें से कोई भी उपर्युक्त स्थितिको गलत साबित नहीं कर सका। मुझे लगता है कि 'सर्वेंट् ऑफ इंडिया' को एक गम्भीर विषयपर उचित गम्भीरता और तथ्योंकी ठीक-ठीक जानकारी होनेपर ही विचार करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–२–१९२१

१८१. हड़तालें

हड़तालें करना आजकल एक आम चीज हो गई है।[१] ये हड़तालें वर्तमान असन्तोषकी निशानी हैं। तरह-तरहके अस्पष्ट विचार हवामें फैल रहे हैं। सबके दिलोंमें एक अस्पष्ट-सी आशा बँधी हुई है और यदि वह आशा कोई ठोस रूप धारण नहीं कर पाई तो लोगोंको बड़ी निराशा होगी। अन्य देशोंकी तरह भारतमें भी मजदूर-जगत् उन लोगोंकी दयापर निर्भर है, जो उनके सलाहकार और पथ-प्रदर्शक बन जाते हैं। ये लोग सदा सिद्धान्तका ही अनुसरण नहीं करते और करते भी हैं तो सदा बुद्धिमानीसे नहीं करते। मजदूरोंको अपनी हालतपर असन्तोष है। उनका असन्तोष मानना भी हर तरह बजा है। उन्हें सिखाया जा रहा है, और ठीक ही सिखाया जा रहा है, कि वे अपनेको मालिकोंके धनवान बननेका मुख्य साधन समझें। इसलिए उन्हें अपना काम छोड़ देनेको प्रेरित करनेमें ज्यादा कोशिश करनेकी जरूरत नहीं होती। राजनीतिक स्थितिका भी भारतके मजदूरोंपर असर पड़ने लगा है। और ऐसे मजदूर-नेताओंका अभाव नहीं है, जो समझते हैं कि राजनीतिक हेतुओंके लिए हड़तालें कराई जा सकती हैं।

मेरी रायमें राजनीतिक हेतुसे मजदूरों की हड़तालोंका उपयोग करना अत्यन्त गम्भीर भूल होगी। मैं इससे इनकार नहीं करता कि इस प्रकारकी हड़तालोंसे राजनीतिक उद्देश्य पूरे किये जा सकते हैं। परन्तु यह अहिंसक असहयोगकी योजना-में नहीं आता। यह समझनेके लिए दिमागपर बहुत जोर डालनेकी जरूरत नहीं है कि जबतक मजदूर देशकी राजनीतिक स्थितिको समझने न लगें और सबकी भलाईके लिए काम करनेको तैयार न हों, तबतक मजदूरोंका राजनीतिक उपयोग करना बहुत ही खतरनाक बात होगी। अभी इसकी उनसे अपेक्षा नहीं की जाती। और उस वक्ततक नहीं की जा सकती, जबतक वे अपनी खुदकी हालत अच्छे ढंगसे जीवन-यापन करने योग्य न बना लें। इसलिए सबसे बड़ी जो राजनीतिक सहायता मजदूर कर सकते हैं वह यही है कि वे अपनी स्थिति सुधार लें, अधिक जानकार हो जायें, अपने अधिकारोंका आग्रह रखें और जिस मालके तैयार करनेमें उनका महत्वपूर्ण हाथ होता है उसके उचित उपयोगकी भी मालिकोंसे माँग करें। इसलिए मजदूरोंका ठीक विकास अपना दर्जा बढ़ाकर आंशिक मालिकीका दर्जा प्राप्त करनेमें है। अतः अभी तो हड़तालें मजदूरोंकी हालतके सीधे सुधारके लिए ही होनी चाहिए और जब उनमें देशभक्तिकी वृत्ति पैदा हो जाये, तब अपने तैयार किये हुए मालकी कीमतोंके नियन्त्रणके लिए भी हड़ताल हो सकती है।

सफल हड़तालकी शर्तें सीधी-सादी हैं और वे जब पूरी हो जाती हैं तो हड़ताल कभी असफल नहीं होती :

१. सन् १९२० में भारत-भरमें २०० हड़तालें हुई थीं, और १९२१ में कमसे-कम ४०० हड़तालें हुईं।

१. हड़तालका कारण न्यायपूर्ण होना चाहिए।

२. हड़तालियोंको प्रायः एकमत होना चाहिए।

३. हड़ताल न करनेवालोंके विरुद्ध हिंसासे काम नहीं लेना चाहिए।

४. हड़तालियोंमें यह शक्ति होनी चाहिए कि संघोंके कोषका आश्रय लिये बिना वे हड़तालके दिनोंमें अपना पालन-पोषण कर सकें। इसके लिए उन्हें किसी उपयोगी और उत्पादक अस्थायी धन्धेमें लग जाना चाहिए।

५. जब हड़तालियोंकी जगह लेनेके लिए दूसरे मजदूर काफी हों, तब हड़ताल बेकार ठहरती है। उस सूरतमें यदि अन्यायपूर्ण व्यवहार हो, अपर्याप्त मजदूरी दी जाये या ऐसा ही और कोई कारण हो तो त्यागपत्र ही उपाय है।

६. उपर्युक्त सारी शर्तें पूरी न होनेपर भी सफल हड़तालें हुई हैं, परन्तु इससे तो इतना ही सिद्ध होता है कि मालिक कमजोर थे और उनका अन्तःकरण अपराधी था। हम अक्सर बुरे उदाहरणोंका अनुकरण करके भयंकर भूलें करते हैं। सबसे सुरक्षित बात यह है कि हम ऐसे उदाहरणोंकी नकल न करें जिनके बारेमें हम पूरी तरह कुछ नहीं जानते और उस अनुशासनका पालन करें जिसे हम सफलताके लिए अत्यावश्यक जानते और मानते हैं।

यदि हमें एक वर्षमें स्वराज्य प्राप्त करना है तो देशके प्रत्येक शुभ-चिन्तकका यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसी कोई स्थिति न उत्पन्न करे जिससे हमारे महान राष्ट्रीय लक्ष्यकी प्राप्तिमें एक दिनका भी विलम्ब हो सकता हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–२–१९२१

१८२. सामाजिक बहिष्कार

असहयोग, आत्मशुद्धिका आन्दोलन है और इस कारण वह हमारी सब कमजोरियोंको सतहपर ला रहा है, यहाँतक कि हमारे सद्गुणोंके अतिरेकको भी। सामाजिक बहिष्कारकी प्रथा युगों पुरानी है। इसकी उत्पत्ति जाति प्रथाके साथ हुई थी। इस भयंकर दण्डका प्रयोग बड़े कारगर ढंगसे किया जाता था। यह इस विचारपर आधारित है कि समाज बहिष्कृत व्यक्तिको कोई भी आतिथ्य या सेवाएँ प्रदान करनेके लिए बाध्य नहीं है। प्रत्येक गाँव जब अपने-आपमें एक आत्मनिर्भर ईकाई था, और अवज्ञाकी घटनाएँ कम ही होती थीं तब इससे काम चल जाता था। किन्तु जब असहयोगके औचित्यके विषयमें मतभेद हो, जैसा कि आज है, जब कि उसके नये प्रयोगकी परीक्षा हो रही है, तब अल्पमतको बहुमतकी इच्छाके सामने झुकानेके लिए सामाजिक बहिष्कारका फौरी प्रयोग अक्षम्य हिंसाका ही एक प्रकार हो जाता है। यदि बहिष्कारपर आग्रह किया गया तो वह हमारे आन्दोलनको अवश्य ही नष्ट कर देगा। सामाजिक बहिष्कारका प्रयोग तभी होना चाहिए, और वह कारगर भी तभी होता है, जब बहिष्कृत व्यक्तिको वह बहिष्कार दण्ड न लगे, बल्कि वह उसे अनुशासनिक कार्रवाईके रूपमें ले।

इसके अतिरिक्त, किसी भी अहिंसक अभियानमें सामाजिक बहिष्कारको शामिल किये जा सकनेकी शर्त यह है कि उसमें अमानुषिकताकी गन्ध भी न आये। बहिष्कारमें सौजन्य और सभ्यता होनी चाहिए। यदि उससे बहिष्कृत व्यक्तिको असुविधा होती है, तो बहिष्कर्त्ताको भी कष्ट होना चाहिए। इस प्रकार किसी मनुष्यको चिकित्सककी सहायतासे वंचित करना — जैसा कि कहा जाता है, झाँसीमें किया गया — अमानुषिकताका एक ऐसा कृत्य है, जो नैतिक विधानके अनुसार हत्याका प्रयत्न करनेके बराबर है। मैं किसी मनुष्यकी हत्या करनेमें और मरणासन्न व्यक्तिको चिकित्सासे वंचित कर देनेमें कोई अन्तर नहीं देखता। मैं समझता हूँ, युद्धके नियमोंमें भी अपेक्षा की जाती है कि यदि शत्रु-पक्षके भी किसी व्यक्तिको डाक्टरी सहायताकी जरूरत हो तो उसे सहायता दी जानी चाहिए। किसी मनुष्यको गाँवके एकमात्र कुएँके उपयोगसे वंचित करना उसे इस बातकी सूचना देना है कि वह गाँव छोड़ दे। निश्चय ही, असहयोगियोंको अपनेसे भिन्न मत रखनेवालोंके विरुद्ध ऐसा हद दर्जेका दबाव डालनेका कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। अधैर्य और असहिष्णुता अवश्य ही इस महान् धार्मिक आन्दोलनको नष्ट कर देगी। हम जबर्दस्ती लोगोंको शुद्ध नहीं बना सकते; और हिंसाके बलपर हम उनसे अपना मत स्वीकार करा सकें यह तो और भी असम्भव है। यह लोकतंत्रकी उस भावनाके बिलकुल खिलाफ है, जिसको हम अपनेमें विकसित करना चाहते हैं।

यह ठीक है कि हमारे मार्गमें भारी कठिनाइयाँ हैं। यदि कोई प्रतिवादी पंच-अदालतके सामने अपना मामला तो रखे, लेकिन उसके निर्णयको माननेसे इनकार कर दे, तो उस समय सामाजिक बहिष्कारका प्रयोग करनेका प्रलोभन अदम्य हो जाता है। फिर भी यह आसानीसे समझा जा सकता है कि सामाजिक बहिष्कारके प्रयोग द्वारा पंच-निर्णयसे झगड़ोंके निपटारेके उस शानदार आन्दोलनका ही रुक जाना लगभग निश्चित है, जो असहयोगका एक बहुत उपयोगी अस्त्र होनेके साथ ही एक ऐसा आन्दोलन भी है, जिसमें देशका बहुत बड़ा हित निहित है। पंच-निर्णयका तरीका स्वीकार करनेमें लोगोंको समय लगेगा। उसका सादगीपूर्ण और कम खर्चीला रूप ही कई लोगोंको उसकी ओरसे विरक्त कर देगा; उसी प्रकार, जैसे चटपटे मसालेदार भोजनकी अभ्यस्त रसनाको सादे भोजनसे अरुचि होती है। सभी निर्णय सर्वदा निष्पक्ष और सन्देहसे परे भी नहीं होंगे। हमें ऐसा विश्वास करना चाहिए कि इस आन्दोलनकी अपनी खूबियाँ और पंच-अदालतोंके सही निर्णय इसके महत्वको सिद्ध करेंगे।

लोगों द्वारा कानूनी अदालतोंका पूरा ऐच्छिक बहिष्कार करा सकना अत्यन्त वांछनीय है। यह एक ही बात स्वराज्य ला सकती है। किन्तु हम यह अपेक्षा करके नहीं चले हैं कि हम असहयोगके किसी एक ही क्षेत्रमें पूर्णता प्राप्त करेंगे। जनमत इतना तो विकसित हो ही चुका है कि वह अदालतोंको हमारी स्वतन्त्रताके चिह्न नहीं, वरन् दासताके चिह्न मानने लगा है। उसने यह बात लगभग असम्भव कर दी है कि वकील-बैरिस्टर अपना धन्धा भी करें, और जनताके नेता भी कहलायें।

असहयोगने अदालतोंकी प्रतिष्ठाको बड़ी हदतक ध्वस्त कर दिया है और उसी हदतक सरकारकी प्रतिष्ठाको भी। विघटनकी प्रक्रिया धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूपसे

जारी है। यदि विघटनका काम जल्दी पूरा करनेके लिए हिंसक तरीके अपनाये गये तो इस प्रक्रियाकी गतिमें बाधा पड़ेगी। हमारी यह सरकार हिंसाकी शक्तियोंको रोकनेके लिए पूरी तरह सज्जित है। इसके विपरीत, अहिंसाकी बलवती-शक्तियोंको रोकनेके लिए उसके पास कुछ नहीं है। भला मुट्ठीभर अंग्रेज स्वेच्छिक आत्म-त्यागके लिए तत्पर तीस करोड़ मनुष्योंकी स्वेच्छाप्रेरित मताभिव्यक्तिका कैसे सामना कर सकते हैं?

अतः मैं आशा करता हूँ कि असहयोगी कार्यकर्त्ता सामाजिक बहिष्कारके फंदोंसे सावधान रहेंगे। किन्तु निश्चय ही सामाजिक बहिष्कार न करनेका मतलब सामाजिक मेल-जोल रखना नहीं है। जो मनुष्य महत्वपूर्ण मामलोंमें शक्तिशाली और सुस्पष्ट जनमतकी उपेक्षा करता है, वह सामाजिक सुविधाओं तथा अधिकारोंका पात्र नहीं है। हमें उसके शादी-विवाह, भोज आदि जैसे सामाजिक उत्सवोंमें भाग नहीं लेना चाहिए और न उससे उपहार लेना चाहिए। हाँ, सामाजिक सेवासे उसे वंचित नहीं करना चाहिए। सामाजिक सेवा एक कर्त्तव्य है। भोजमें शामिल होना तथा ऐसी अन्य बातें विशेष अधिकारकी बातें हैं, जिनका लाभ देना या न देना हमारी इच्छापर निर्भर है। मैंने बहिष्कारकी जो मर्यादा बाँधी है उस रूपमें भी इसका प्रयोग विरल और सुनिश्चित अवसरोंपर ही करनेमें बुद्धिमानी है; भले ही इसमें मेल-जोल रखनेकी गलतीकी गुंजाइश हो। प्रत्येक मामलेमें बहिष्कारके अस्त्रका उपयोग करनेवाला व्यक्ति उसका उपयोग अपनी जोखिमपर ही करेगा। अभीतक तो उसका उपयोग किसी भी रूपमें कर्त्तव्य नहीं है और यदि उससे आन्दोलनको आघात पहुँचनेका खतरा हो, तो उसके उपयोगका किसीको भी अधिकार नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–२–१९२१

१८३. भाषण : रोहतकके ग्रामीण सम्मेलनमें[१]

१६ फरवरी, १९२१

हमारा उद्देश्य स्वराज्य और खिलाफतके प्रश्नपर राहत प्राप्त करना है। यदि सरकार फिर मार्शल लॉ जारी कर दे तो अब लोग पेटके बल रेंगना स्वीकार नहीं करेंगे। अब हममें इतनी शक्ति आ गई है कि हम पेटके बल रेंगने तथा यूनियन जैकके सामने झुकनेसे इनकार कर देंगे। अपनी इच्छासे ३५ वर्षतक मैंने सरकारका शासन स्वीकार किया है पर अब बल-प्रयोग करके भी मुझसे ऐसा नहीं कराया जा सकता। हमें सत्कार्य करके ईश्वरके सिपाही बनना है। हम इस सरकारको सुधार डालना चाहते हैं और यदि यह नहीं होता तो उसे हम खत्म कर देंगे। मेरा आपसे यही अनुरोध है कि किसी औरकी सेवा करनेके बदले आप ईश्वरके सेवक बनें। मेरी सलाह

१. पंजाबके हरियाना प्रदेशमें; गांधीजीने वैश्य हाई स्कूलकी नींव रखी और जाट स्कूल देखने गये। इस स्कूलको उन्हीं दिनों राष्ट्रीय ढंगसे चलाया जाने लगा था।

है, जबतक आप लोग सरकारी नौकरी कर रहे हैं तबतक ईमानदारीसे अपना काम करें। सम्भवतया यहाँ एक थाना भी होगा और इस समय यहाँ कुछ पुलिसके कर्मचारी भी उपस्थित होंगे। मेरा उनसे भी यही अनुरोध है कि लोगोंसे, जो उनके अपने ही भाई-बन्धु हैं, विनम्रता और स्नेहका व्यवहार करें और उन्हें किसी प्रकार सतायें नहीं। हमारे पास इतना धन नहीं है कि हम लोगोंसे अपनी-अपनी नौकरी छोड़नेके लिए कहें और फिर उन्हें भोजन दे सकें। पर मैं उनसे अपने कामपर बने रहकर भी ईश्वर-के सेवक बननेके लिए कहूँगा। अपने इस दुहरे उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हमने असहयोग शुरू किया है। आपको शान्तिपूर्वक उसे अपनाना चाहिए। इस सरकारका शासन पैशाचिक हो गया है। पर खुदाने भी शैतानको मौतके घाट नहीं उतारा था और हमें भी शैतानको मौतके घाट नहीं उतारना है। यदि [सरकारी] कर्मचारियोंके पास अपनी गुजर-बसर करनेके लिए पर्याप्त धन है तो उन्हें एकदम नौकरी छोड़ देनी चाहिए; अन्यथा नहीं। यदि कोई [सरकारी] कर्मचारी नौकरी छोड़ देना चाहता है तो वह फौरन छोड़ दे। क्योंकि स्वतन्त्र हुए बिना हम ईश्वरकी अर्चना आदि भी नहीं कर सकते। जो नौकरी कर ही रहे हैं वे चाहे तो बने रहें पर भविष्यमें और लोग भरती न हों। आप मद्यपान, सिगरेट या चोरी आदि सब छोड़ दें और पर-स्त्रीकी भी इच्छा न रखें। जो इन दुर्व्यसनोंसे ग्रस्त हैं उन्हें कभी धर्मात्मा नहीं माना जा सकता। असहयोगमें भयको कोई स्थान नहीं है। देशमें बनी हुई चीजों और चरखे-को काममें लायें। हिन्दू-मुस्लिम एक हों। आप अपने झगड़ोंका निर्णय पंचायतोंसे करायें। यदि आप मेरी सलाह मानेंगे तो हमें सितम्बरतक स्वराज्य मिल सकता है। इसके लिए आप धन भी दें क्योंकि हमें उसकी आवश्यकता है।

[अंग्रेजीसे]

पुलिस एब्स्ट्रैक्ट ऑफ इन्टैलिजेंस, पंजाब, सं० १

१८४. भाषण : गुजराँवालामें[1]

१९ फरवरी, १९२१

भाषण देनेसे पूर्व महात्मा गांधीने उपस्थित जनसमूहसे अनुरोध किया कि आप लोग कृपया शान्त रहें ताकि मेरी आवाज सब तक पहुँच सके, आप लोग बातें न करें, न ही सिगरेट आदि पीयें। महात्माजीने कहा, 'जब मैं भिवानी और रोहतकमें था तब मद्यपान, धूम्रपान और अन्य मादक पदार्थोंके उपयोगके विरुद्ध प्रस्ताव पास किये गये थे। आप लोगोंको भी ऐसा ही व्रत लेना चाहिए और जितेन्द्रिय बनना चाहिए। सभी स्त्रियोंका माँ या बहनके समान आदर करना चाहिए और मन, वचन और

१. लाहौरमें राजद्रोह सभा-विधेयक लागू कर दिये जानेके कारण गांधीजी भाषण नहीं दे पाये थे। इसलिए गुजराँवालामें उनका भाषण सुननेके लिए हजारों व्यक्ति लाहौर आदि स्थानोंसे आये थे।

कर्मसे शुद्ध रहना चाहिये। आप सभी स्वराज्य प्राप्त करना और खिलाफतके प्रश्नको सुलझाना चाहते हैं तथा पंजाबके अन्यायका प्रतिकार भी चाहते हैं। असहयोग इन सबके लिए रामबाण है। स्वराज्य प्राप्तिके दो साधन हैं — तलवारका बल या शान्तिपूर्ण ढंग। कांग्रेस, मुस्लिम लीग और सिख लीगने अहिंसात्मक असहयोगसे स्वराज्य प्राप्त करनेका निश्चय किया है। यदि आप एक वर्षमें स्वराज्य चाहते हैं तो आपको कालीकटके श्री याकूब हसनका[1] अनुसरण करना चाहिए। श्री याकूब हसनने लोगोंको हिंसाके लिए उत्तेजित करनेके बजाय स्वेच्छासे जेल जाना स्वीकार किया। सरकारने उनसे जमानत माँगी पर उन्होंने जमानत देनेसे इनकार कर दिया और छः महीनोंके लिए जेल[2] चले गये। आप सबको जेल जानेके लिए तैयार रहना चाहिए। मैं किसी अपराधके दण्डस्वरूप न तो स्वयं जेल जानेको तैयार हूँ और न किसी औरको ऐसा करनेके लिए कहूँगा। पर स्वराज्यकी खातिर मैं जेल जानेके लिए भी तैयार हूँ, और चाहता हूँ कि आप लोग भी ऐसा ही करें।

स्वराज्य प्राप्तिकी एक और शर्त है जिसका सम्बन्ध विद्यार्थियोंसे है। यदि विद्यार्थी स्वराज्य चाहते हैं तो उन्हें स्कूल और कालेज छोड़ने ही पड़ेंगे, किन्तु ये असहयोगी विद्यार्थी उन दूसरे विद्यार्थियोंको तंग न करें जो अपनी पढ़ाई छोड़ना नहीं चाहते। पर पढ़ाई न छोड़नेवाले विद्यार्थियोंको भी असहयोगी विद्यार्थियोंकी हँसी नहीं उड़ानी चाहिए। जो व्यक्ति क्रुद्ध हो जाता है या कठोर भाषाका प्रयोग करता है वह अपनी ही शक्तिको क्षीण करता है। जो पढ़ाई जारी रखना चाहते हैं उन्हें तंग न किया जाये। असहयोगी दूसरोंके समक्ष मात्र अपना प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करें। मैं आशा करता हूँ कि अगर मार्शल लॉ फिरसे लागू कर दिया गया तो आप पेटके बल रेंगना स्वीकार नहीं करेंगे। आप सब लोगोंने यूनियन जैक, जो बहुतसे निर्दोष देशभाइयोंको जेल तथा अण्डमान भेजनेवाली सरकारका प्रतीक है, के समक्ष झुककर अपने आपको अपमानित होने दिया है। यह भारतके लिए सदैव लज्जाका प्रसंग रहेगा। मैं आशा करता हूँ, अगर फिर कोई डायर उठ खड़ा हुआ तो लोग उसकी गोलियोंकी बौछारसे डर कर भागेंगे नहीं। वह गोलियोंसे पीठ नहीं, छाती बिंधवानेका साहस दिखायेंगे। आप सब सिपाही बनना चाहते हैं; सिपाही रणक्षेत्रसे भागते नहीं हैं, अपने कर्त्तव्यका पालन करते हुए मृत्युका आलिंगन करते हैं। यदि फिरसे जलियाँवाला बाग-जैसा कोई काण्ड हो जाये तो आप गोलियोंकी बौछारके सामने मृत्युतक सीना ताने खड़े रहेंगे।

पहली शर्त तो यह है कि आपको शान्तिपूर्ण ढंगसे काम करना है। लेकिन इसके साथ ही आप निर्भय रहें। मुझे कई पत्र मिले हैं जिनमें अरब युवकोंके साहसका वर्णन है। सरकारने लालच देनेवाले कई सुझाव अरबोंके सामने रखे। उन्होंने रेतके

१. जिन्होंने २० मई, १९२० को मद्रास विधान सभाकी सदस्यतासे त्यागपत्र दिया था।

२. याकूब हसन और उनके तीन साथियोंको १७ फरवरी, १९२१ को सजा दी गई थी।

कारण अरबकी गर्म आबोहवाको ठण्डा करने और वहाँ रेलें आदि बनानेके वादे किये, बशर्ते कि अरब लोग उन्हें अपने देशमें शासन करने दें। पर अरबोंने विदेशी राज्यके बजाय अपनी तपती हुई रेतको ही ज्यादा पसन्द किया।

महात्माजीने कहा कि ड्यूक[1] यहाँ आये पर उन्होंने हमारे लिए क्या किया? उन्होंने न तो अपराधी अफसरोंको ही सजा दी और न डायरकी पेंशन ही बन्द की है। मैं नहीं चाहता कि डायरपर मुकदमा चलाया जाये। पर मैं यह तो अवश्य ही चाहता हूँ कि भारतीय राजकोषमें से उसे एक पाई भी न दी जाये। डायर-जैसे आदमियोंको हमारे कोषमें से पेन्शन दी जा रही है। विद्यार्थियोंको चाहिए कि वे ऐसी सरकार द्वारा चलाये जा रहे स्कूलों और कालेजोंको छोड़ दें। अदालतोंका भी बहिष्कार करना चाहिए। विद्यार्थियोंके साथ-साथ वकीलोंको भी अपने कर्त्तव्यका भान होना चाहिए। यदि पंजाबी स्वतन्त्र होना चाहते हैं तो उन्हें सुखोंका त्याग करना सीखना होगा। यदि आप ऐसा करनेके लिए तैयार नहीं हैं तो स्वतन्त्रता प्राप्त करना असम्भव है।

स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए दूसरी शर्त है, विदेशी वस्तुओंका उपयोग न करना। विशेषतया विदेशी वस्त्रका। यदि आप स्वराज्यके लिए मरनेको तैयार हैं तो क्या आप विदेशी वस्त्रके बिना काम नहीं चला सकते? कुछ लोगोंने मुझे बताया है कि यदि पंजाबी विद्यार्थियोंसे चरखा अपनानेको कहा जायेगा तो वे भाग खड़े होंगे। मैं आपको यही बताना चाहता हूँ कि यदि आप देशकी आर्थिक स्थिति सुधारना चाहते हैं और प्रति वर्ष साठ करोड़ रुपयेकी बचत करना चाहते हैं तो आपको फौरन विदेशी वस्त्रोंका उपयोग बन्द करके चरखेको अपनाना चाहिए। मुझे बम्बईसे एक पत्र मिला, जिसमें लिखा है कि बम्बईके असहयोगी विद्यार्थियों द्वारा चरखा अपनाये जानेके परिणाम-स्वरूप उनके परिवारोंके सदस्य भी उनका अनुसरण कर रहे हैं। कुछ लोग हैं जो कताईको स्त्रियोंका काम मानते हैं। मेरी रायमें ऐसे विचारकी अभिव्यक्ति ही कायरताकी द्योतक है। यदि पंजाबके विद्यार्थी अर्थशास्त्रका सच्चा ज्ञान चाहते हैं तो उन्हें चरखेको अपनाना चाहिए क्योंकि उसीसे हमारा आर्थिक उद्धार हो सकता है।

महात्मा गांधीने आगे कहा कि पंजाबी युवक अपने माता-पिताको अंग्रेजीमें पत्र लिखते हैं, यह देखकर मुझे अत्यधिक क्लेश होता है। किसी विदेशी भाषाको अपनाकर हम कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकते। मुझे यह भी बताया गया है कि पंजाबी युवक फिजूल खर्च होते जा रहे हैं। दादाभाई नौरोजीका अनुमान है कि हमारी वार्षिक आय प्रति व्यक्ति सिर्फ २६ रुपये है। ऐसी स्थितिमें हम किस प्रकार विलासमय जीवन व्यतित कर सकते हैं? भारतमें लगभग तीन करोड़ व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें रोज एक बार भी भरपेट खाना नसीब नहीं होता। तब आप ऐशोआरामकी जिन्दगी बसर करनेकी बात भी कैसे सोच सकते हैं? आपको सादगीका जीवन व्यतीत करना चाहिए और अपने भाइयोंकी सहायता करनी चाहिए। यदि एक लाख रुपये देकर

१. ड्यूक ऑफ कनॉट।

आप स्वराज्य चाहते हों तो वह नहीं हो सकता। स्वराज्य कोई साधारण सौदा नहीं है। स्वराज्यके अमूल्य रत्नकी प्राप्तिके लिए हमें जबर्दस्त बलिदान करना पड़ेगा। आजतक मैंने जब कभी अपील की है महिलाओंने खुले दिलसे दान दिया है। मुझे खेद है कि गुजराँवालाकी महिलाओंने कंजूसी दिखाई है। आपने तो लाला लाजपत-रायको 'शेरे पंजाब' माना है; कोई भी शेर घास-पातके तिनकोंसे सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

आप सबको भाई-भाईकी तरह स्नेहपूर्वक रहना है। गौओं, गुरुद्वारों, मन्दिरों, मस्जिदोंकी रक्षाके लिए हिंसाका सहारा नहीं लेना। यदि आप इनकी रक्षा करना चाहते हैं तो अपने प्राण त्याग कर ऐसा करें। यदि आप स्वराज्य चाहते हैं तो आपके सामने सीधा रास्ता है। हमें न तो किसीसे छल-कपट करना है और न ही किसीसे धोखा खाना है।

अन्तमें गांधीजीने कहा: मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको बल दे और निर्भय बनाये। आप स्वयं मरनेको तैयार रहेंगे पर दूसरोंको मारेंगे नहीं। आप सरकारसे कुछ सरोकार नहीं रखेंगे। श्री शास्त्री और बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी-जैसे आदरणीय नेताओंके भाषणके दौरान कभी 'शर्म शर्म' न कहेंगे और न शोरगुल करेंगे। ये सब हमारे पूज्य हैं। उनके विरुद्ध कुछ कहना या शोरगुल करना हिंसा करना है। हमें पश्चिमी सभ्यताके रास्ते न जाकर अपनी प्राचीन परम्पराका ही अनु-सरण करना है और उसके पुरातन गौरवको बनाये रखना है।

[अंग्रेजीसे]
ट्रिब्यून, २२-२-१९२१

१८५. राष्ट्रीय तिलक स्मारक स्वराज्य कोष

लोकमान्य तिलक महाराजकी स्मृति बनाये रखना जनताका कर्त्तव्य है। इस स्मृतिको स्वराज्यकी प्रवृत्तिके साथ जोड़नेका विचार पुण्य विचार है। उनकी स्मृति-रक्षाके लिए प्राप्त चन्देका उपयोग स्वराज्य हासिल करनेमें हो, यह उचित ही है। इस तरह पैसा देनेमें लोगोंके दो स्वार्थ हैं। लोकमान्यकी स्मृतिको बनाये रखनेमें हमारा स्वार्थ है और स्वराज्य प्राप्त करनेमें तो हमारा स्वार्थ स्पष्ट ही है।

कांग्रेसकी कार्यकारी समितिने निश्चय किया है कि प्रत्येक प्रान्तकी समितिको यह चन्दा इकट्ठा करना होगा। उसका तीन-चौथाई भाग उसी प्रान्तकी असहयोगकी प्रवृत्तिमें खर्च होगा और एक-चौथाई कांग्रेसकी अखिल भारतीय समितिको जायेगा।

यह चन्दा कोई वर्षोंतक चलनेवाला नहीं है। मास-दो-मासमें पूरा हो जाना चाहिए।

उसमें बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सबको यथाशक्ति दान देना चाहिए। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, यहूदी, जो-जो लोग अपने आपको हिन्दुस्तानी समझते हैं उन्हें इसमें पूरा-पूरा योग देना चाहिए।

पैसा एक तो कांग्रेसकी अखिल भारतीय समितिके कोषाध्यक्षको, दूसरे, कांग्रेसके कोषाध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाजको अथवा मियाँ छोटानीको[1] भेजा जा सकता है। जो इनमें से किसीके पास भी नहीं भेजना चाहते और सिर्फ 'नवजीवन' के कार्यालय-में ही भेजना चाहते हैं, वे 'नवजीवन'के कार्यालयको भेजें। उनके धनकी प्राप्तिकी सूचना 'नवजीवन' में दी जायेगी और वह पैसा गुजरात प्रान्तीय कांग्रेसके कोषा-ध्यक्षके पास भेज दिया जायेगा।

मुझे उम्मीद है कि प्रत्येक गाँव तुरन्त ही इस कार्यको हाथमें ले लेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-२-१९२१

१८६. क्रोध आनेपर क्या करना चाहिए?

मेरे अनुभवोंके भण्डारमें दिनोंदिन वृद्धि होती जाती है। नित्य नये अनुभव। गोरखपुरकी यात्रा पूरी करनेके बाद हमें काशी जाना था। यात्रा ज्यादातर रातको होती है। हर महीने लगभग पन्द्रह रातें ट्रेनमें बीतती हैं, ऐसा कहनेमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। उस रातको[2] तो हद ही हो गई। गाड़ी हरेक स्टेशनपर काफी देरतक रुकती थी और हर स्टेशनपर एकत्र लोगोंकी भीड़का शोर-गुल होता था। मेरे साथी लोगोंसे विनती करते और उस परिस्थितिमें जितना सम्भव था उतनी शान्ति रखनेका प्रयत्न करते थे। मैं बहुत थका हुआ और श्रान्त महसूस कर रहा था। मेरी पत्नी और भाई महादेवने[3] एक स्टेशनपर लोगोंको शान्त रखनेका भारी प्रयत्न किया। लेकिन वे कहाँ माननेवाले थे। उन्हें तो मेरे 'दर्शन' अवश्य चाहिए थे। वे खिड़कीसे झाँकते थे, अनेक तरहकी बातें कहते थे और ताने भी मारते थे। आखिर, मेरा धीरज छूट गया। मुझे लगा कि मुझे अपनी पत्नी और महादेवकी कुछ रक्षा करनी ही चाहिए। मैं उठा और मैंने खिड़कीसे अपना सिर बाहर निकाला। मैं क्रोधसे जल रहा था और इसी कारण मैंने कुछ ओढ़ा भी नहीं था। सर्दी काफी थी लेकिन क्रोधमें मुझे वह कैसे महसूस होती? मैंने ऊँची आवाजमें लोगोंसे प्रार्थना की। उनकी 'जय' की आवाज और भी जोर पकड़ने लगी। मुझे बहुत खीझ आई। मैंने कहा, "आपको एक स्त्री और एक युवकपर तरस खाना चाहिए? आप इस तरह क्यों परेशान करते हैं? रातमें दर्शन कैसे?" लेकिन लोग तो यह सब सुनना ही नहीं चाहते थे।

मैं क्या करूँ? खिड़कीसे कूद जाऊँ? लोगोंको मारूँ? स्टेशनपर ही रह जाऊँ? कूद कैसे सकता था? रोनेसे क्या लाभ? लोगोंको मारना तो हो ही नहीं सकता? स्टेशन-

१. मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानी; बम्बईके एक राष्ट्रवादी नेता।

२. ८ फरवरी, १९२१ की रात।

३. महादेव हरिभाई देसाई (१८९२-१९४३); गांधीजीके निजी सचिव; सन् १९१७ में गांधीजीके साथ हुए। अपने जीवन-कालमें गांधीजीके विचारोंके प्रमुख भाष्यकार; वर्षोंतक गांधीजीके साप्ताहिकोंका सम्पादन किया। वे गांधीजीके अत्यन्त निकटवर्ती अनुयायियोंमें से थे।

पर रह जाऊँ तो काशी नहीं पहुँच सकता। लेकिन मेरा क्रोध किसी तरह कम नहीं होता था। लोग भी शान्त नहीं हो रहे थे। 'जय' की पुकारें बढ़ने लगीं। मैंने देखा कि प्रेम और घृणा दोनों ही में व्यक्ति अपने विवेकको खो बैठता है। मैंने अपना सिर पीट लिया लेकिन उसका कुछ असर न हुआ। मैंने एक बार फिर वैसा ही किया; इसपर एक व्यक्ति बोल उठा, "आप क्रोध करेंगे तो हमारी क्या गति होगी?" मुझे शर्म तो आई लेकिन मेरा क्रोध शान्त न हुआ। लोग शान्त होते तभी क्रोध उतरता। तीसरी बार फिर मैंने अपने सिरको पीटा। लोग घबराये। उन्होंने माफी माँगी, चुप हो गये और मुझे सो जानेके लिए कहा। एक सज्जनने[1] यह सब देखा, वे मेरे दुःखका अन्दाज लगा सके। इस तरह मुझे शान्ति मिली। बादके स्टेशनोंपर इन्हीं सज्जनने हमारी रक्षा की। जब-जब स्टेशन आता, तब वे लोगोंको समझाते, उनके 'दर्शन' करनेकी लालसाको दबाते और शान्ति स्थापित करते।

इस तरह अपना ही सिर पीट लेनेका अपने जीवनमें यह चौथा उदाहरण मुझे याद आता है। हर बारमें अपना सिर पीटकर ही शान्त हो सका हूँ। प्रेमसे भी व्यक्ति खीजने लगता है, इसका अनुभव तो मुझे अभी ही होने लगा है।

मेरे यह सब लिखनेका क्या कारण है, उसपर तो मैं अब आता हूँ। मनुष्यके सामने क्रोधित होनेके कारण उपस्थित होते ही रहते हैं। प्रत्येक अवसरपर क्रोधको रोकना उसका धर्म है और जैसे-जैसे वह अपने क्रोधको रोकता है वैसे-वैसे वह बहादुर बनता जाता है, उसका धीरज बढ़ता है, उसकी हिम्मत और आत्म-विश्वास बढ़ता है, उसकी बुद्धि निर्मल होती है। लेकिन जब वह क्रोधको न रोक सके तब वह अपने ऊपर ही प्रहार करे—यह क्रोधके निवारण करनेका सर्वोत्तम उपाय है। मैंने जिन चार प्रसंगोंका जिक्र किया है उनमें से तीन प्रसंगोंपर मुझे अपने स्नेही जनोंके उलटे कार्योंका दुःख था, और मैं उस दुःखको पी नहीं सका। शेष एक प्रसंग तो मेरे अपने ही एक अकार्यपर पश्चात्तापका था। मुझसे ऐसा पापाचरण बन पड़ा था कि मैं एकाएक तिलमिला उठा और अपने प्रति क्रोधसे जल उठा। उठकर मैंने अपने ऊपर सख्त प्रहार किया और उसके बाद ही मैं शान्त हो सका। चारों प्रसंगोंका असर मुझपर और मेरे आसपासके वातावरणपर अच्छा ही हुआ, ऐसा मैंने महसूस किया। क्रोधावेशमें जब मनुष्य दूसरे मनुष्यपर प्रहार करता है तब वह गिरता है और दूसरे मनुष्यके प्रति अपराधी ठहरता है। क्रोधसे पीड़ित होकर जब वह स्वयं दुःख सहन करता है तब वह पवित्र बनता है और दूसरोंपर भी उसका प्रभाव पवित्र ही पड़ता है।

हिन्दुस्तान इस समय इस राज्यके अत्याचारोंसे बहुत क्रुद्ध है। यदि हिन्दुस्तान स्वयं अपनेपर प्रहार करेगा, स्वयं दुःख सहन करेगा, तो वह जीतेगा और सितम्बर माससे पहले स्वराज्य प्राप्त करेगा। किसीको यह उलटा तर्क प्रस्तुत नहीं करना चाहिए कि "मैंने जो उदाहरण दिये हैं उनमें तो सब मेरे प्रेमीजन थे, इसीसे वे उस आत्मप्रहारके मर्मको समझ सके; यहाँ तो अंग्रेज हैं, उनपर हमारे आत्मप्रहारका क्या असर होगा?"

१. रामगोपाल, मऊकी खिलाफत समितिके सेक्रेटरी। महादेव देसाईने गांधीजीकी यात्राके अपने विवरणमें इनका उल्लेख किया है।

ऐसे प्रश्नसे नास्तिकता प्रकट होती है। आत्मप्रहार भी एक तरहकी तपश्चर्या है। उसका फल शुभ ही होना है। दुश्मनपर उसका असर हुए बिना नहीं रहता। लेकिन हमारा उद्देश्य अंग्रेजोंपर प्रभाव डालनेका नहीं है; हमारा आशय तो स्वयं अपनेको पवित्र, दृढ़, साहसी और निर्भय बनानेका है। हम निर्भय बनेंगे तब हमपर कौन शासन करेगा? निर्भय जंगली जातियोंपर भी कोई शासन नहीं कर सकता तो फिर निर्भय हो जानेपर सभ्य हिन्दुस्तानपर कौन शासन कर सकेगा?

आत्मप्रहार करनेके सबल कारण होने चाहिए। क्रोधका कारण शुद्ध होना चाहिए। वैसा न हो तो उस स्थितिमें किया हुआ आत्मप्रहार आत्म-हत्या है और इसलिए निन्द्य है। वह सत्याग्रह नहीं हो सकता; वह तो दुराग्रह ही होगा।

ऐसे दुराग्रहके उदाहरण भी मेरे पास आते रहते हैं। किसीके घर बैठकर पैसेके लिए लंघन करनेवाला व्यक्ति तपस्या नही करता; वह तो बस भूखों ही मरता है। यदि उसकी भूखसे उसपर झूठा तरस खाकर अन्य व्यक्ति पैसा भी दे दे तो वह कोई धर्म-कार्य नहीं होगा। आत्मप्रहारके उदाहरणका अनुकरण अगर विवेकपूर्वक न किया जाये तो जो दुःख सहन किया है उसके व्यर्थ हो जानेका भय है;

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-२-१९२१

१८७. पत्र: जी० एल० कॉर्बेटको

रावलपिंडी
२० फरवरी, १९२१

प्रिय श्री कॉर्बेट,

आपका पत्र मुझे लाहौरमें बृहस्पतिवारको[1] मिला। इसके लिए धन्यवाद। यद्यपि लगता है कि हम दूर होते जा रहे हैं, फिर भी मुझे विश्वास है कि यह हमारे पास आनेकी ही प्रक्रिया है। हमें वास्तवमें आजका झूठा और अस्वाभाविक सम्बन्ध ही एक दूसरेसे दूर रखे हुए है।

मैं स्वतन्त्र और स्वेच्छिक प्रवासके[2] विरुद्ध नहीं हूँ; किन्तु इस बारेमें मैं उदासीन हूँ; यहाँतक कि इसको बढ़ावा देनेके भी विरुद्ध हूँ। मेरा फीजीके अधिकारियोंपर[3] बिलकुल ही विश्वास नहीं है। इस बारेमें मैं इतना काफी सुन चुका हूँ कि भारतीय प्रवासियोंके कथनकी सचाईपर मुझे पूरा विश्वास हो गया है। ऐसी परिस्थितियोंमें एक भी प्रवासीका फीजी जाना मैं खेदजनक समझूँगा। भारतीयोंका प्रवास तभी उचित कार्य माना जा सकेगा जब भारत पूरी तौरपर खुदमुख्तियार बन जाये और उपनि-

१. १७ फरवरी।
२. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ६-८।
३. जिन्होंने भारतीय प्रवासियोंको वहाँ भेजनेका प्रस्ताव किया था।

देशोंके साथ समानताके आधारपर व्यवहार करने लगे। किन्तु फिर भी आज जब कि भारतमें विक्षोभ व्याप्त है और साम्राज्यमें उसका दर्जा अनिर्धारित ही है, आप जाँच-पड़तालके लिए फीजी जाते हैं तो आप जान-बूझकर भारतके साथ कोई अन्याय नहीं करेंगे, यह मैं जानता हूँ।

अछूतोंके प्रति हिन्दुओंके व्यवहारके प्रश्नपर मैं आपसे पूर्णतः एकमत हूँ। इस बुराईका कोई भी औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। मैं आशा करता हूँ कि साम्राज्यमें भारतके साथ अछूतों-जैसा जो व्यवहार किया जाता है उसके मिटनेके साथ ही, हिन्दू धर्म द्वारा बरती जानेवाली अस्पृश्यता भी मिट जायेगी। मैं समझता हूँ कि हमने तथाकथित अछूतोंके साथ जो व्यवहार किया है, उसीका उचित दण्ड हमें मिला है कि साम्राज्यमें हमारी स्थिति अछूतों-जैसी है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७४६५) की फोटो नकलसे।

१८८. पत्र : गंगाराम शर्माको

लाहौर
२१ फरवरी, [१९२१][1]

प्रिय गंगारामजी,

आपके खिलाफ निम्नलिखित आरोप लगाये जाते हैं:

१. आपने और श्री गौरीशंकरने गबन किया है।
२. आपके ज्यादातर स्कूल फर्जी हैं।
३. आपने एक फर्जी समिति बना रखी है।
४. आपने रुपये-पैसेका कोई लेखा-जोखा प्रकाशित नहीं किया है।
५. कहा जाता है कि जिन्हें आपके स्कूलोंसे लाभ पहुँचता है, आप उन लोगोंसे चन्दा वसूल नहीं करते।
६. आपपर गबनका आरोप लगाया गया था, और आप बरी हो गये थे। लोगोंका विश्वास है कि आरोप सर्वथा निराधार नहीं था।
७. आप एक औरत रखे हुए हैं, और उससे आपके बच्चे भी हैं।

उक्त आरोपोंपर विश्वास करनेका पर्याप्त कारण मालूम पड़ता है। यदि आप जाँच करवाना चाहते हों तो जिन कुछ मित्रोंके नाम आपने सुझाये हैं उन्हें मैं जाँच करनेके लिए कह दूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७४४१) की फोटो-नकलसे।

१. इस वर्ष २१ फरवरीको गांधीजी लाहौरमें थे।

१८९. तार: मियाँ छोटानीको

२२ फरवरी, १९२१

यदि कमसे कम माँगोंपर दृढ़ रहें और हकीमजीके अधिकृत सचिव, सलाहकार तथा दुभाषियेके रूपमें अन्सारी आपके साथ जायें तो आप जा सकते हैं। डा० अन्सारी बृहस्पतिवारको वहाँ पहुँच रहे हैं। मेरे लिए पंजाब छोड़ना असम्भव[1] है। पूर्ण विचार-विमर्शके लिए आगामी शनिवारतक प्रस्थान स्थगित रखें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२१, पृष्ठ २०८।

१९०. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको

लाहौर

२२ फरवरी, [१९२१][2]

प्रिय चार्ली,

तुम्हारे दो पत्र मिले। तुम्हें स्वस्थ हो जाना चाहिए।

सिखोंसे सम्बन्धित दुःखद घटनापर[3] ही मेरा सारा ध्यान लग रहा है। कृपया मुझे बताओ कि गुरुदेवकी घोषणाके बारेमें जो अंश 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हुआ है, क्या वह सही है।

मैं अन्य सभी गतिविधियोंको स्थगित कर देना चाहता हूँ — कहनेका अर्थ यह है कि जबतक जनता अपनी शक्तिको नहीं पहचानती, कोई और कदम उठाना निष्फल ही होगा। यह ठीक उसी तरह है जैसा कि 'बाइबिल'में कहा गया है कि 'पहले तू अपने अन्दर ईश्वरके साम्राज्यका अनुभव कर'। अर्थात् इसके बिना कुछ नहीं होगा। यह तो मैं भी चाहूँगा कि हमारे युवक हिन्दुस्तानी सीखनेकी अपेक्षा देहातोंमें जायें। पर तुम्हें नहीं मालूम कि [ऐसा करनेमें] वे कितने असहाय हैं। उनमें से बहुत कम देहाती जीवन बिता सकते हैं। और इसीलिए मैं कहता हूँ कि १० मासके संक्रमण-कालमें उन्हें चरखा कातने दो, उन्हें अपनी मातृभाषाके माध्यमसे अपने ज्ञानको आत्म-

१. गांधीजी १५ फरवरी से ८ मार्च तक पंजाबमें रहे और १० मार्चको बम्बई पहुँचे।

२. इस वर्ष २२ फरवरीको गांधीजी लाहौरमें थे।

३. यह दुःखद घटना २० फरवरी, १९२१ को लाहौरके पास ननकाना साहबके गुरुद्वारेमें घटी थी; देखिए "भाषण: ननकाना साहबमें", ३-३-१९२१ तथा "सिख जागृति", १३-३-१९२१।

सात् करने और हिन्दुस्तानी सीखने दो। जो युवक यह वायदा नहीं करते कि यदि वे दस महीनोंतक ऐसा नहीं कर पायेंगे या नहीं करेंगे तो सालके अन्तमें अपना सामान्य अध्ययन चालू कर देंगे, उनके लिए यही अच्छा रहेगा कि वे कालेज न छोड़ें। वे तभी सरकारी कालेजको छोड़े, जब वे समझें कि उन कालेजोंमें पढ़ना पाप है; अन्यथा न छोड़ें।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९५९) की फोटो-नकलसे।

१९१. पत्र : ए० एफ० फ़्रीमैंटलको[1]

[२३ फरवरी, १९२१ के पूर्व]

प्रिय महोदय,

आपका १२ तारीखका पत्र अभी-अभी मिला है। उत्तर तफसीलसे नहीं दे पा रहा हूँ, इसके लिए कृपया क्षमा करेंगे।

जो पत्र[2] आपने कभी देखा नहीं, तथा जिसका अनुवाद भी आपने अंशतः ही पढ़ा है, उसकी आलोचना करके आपने अपने प्रति भी न्याय नहीं किया। यदि पत्र पढ़ा होता, तो आपने देखा होता कि अपनी सेवाओंका उल्लेख, मैंने जो कष्ट सहे उनका प्रदर्शन करनेके लिए नहीं किया, यह दिखानेके लिए तो और भी नहीं कि वे निःस्वार्थ थीं। मैंने उनका उल्लेख मात्र यह दिखानेके लिए किया था कि प्रतिकूल परिस्थितियोंके बीच भी ब्रिटेन और भारतके सम्बन्धोंमें मेरी कैसी एकाग्र निष्ठा रही। मेरी सेवाएँ निःस्वार्थ नहीं थीं; क्योंकि मेरा विश्वास था कि मैं उन सेवाओंके द्वारा अपने देशको स्वतन्त्रताकी ओर ले जानेमें सहायक बनूँगा। अंग्रेजोंके शौर्य तथा आत्मत्यागका उल्लेख निरर्थक है। अंग्रेजोंके शौर्य तथा आत्मत्यागमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। किन्तु क्षमा करें, अंग्रेजोंकी राष्ट्रीय निःस्वार्थताका दावा में पूर्णतः अस्वीकार करता हूँ। मैं उस समय भी ऐसा नहीं मानता था, और आज संसार भी ऐसा नहीं मानता कि पिछला युद्ध न्यायके लिए हुआ था, या कि वह निःस्वार्थ था। आप लोग जर्मनोंको कुचल देना चाहते थे, और फिलहाल आप कामयाब हो गये हैं। मैं नहीं समझता कि जर्मन लोग उतने बड़े शैतान हैं, जितना कि उन्हें इंग्लैंडके अखबारोंने चित्रित किया है; न मैं यही समझता हूँ कि यदि वे जीत जाते तो दुनियाका खात्मा हो गया होता।

१. इनके पत्रकी महत्त्वपूर्ण बातें उत्तरसे लक्षित हो जाती हैं। पूरे पत्रके लिए देखिए **यंग इंडिया,** २३-२-१९२१।

२. देखिए खण्ड १८, पृष्ठ ३९७-४००।

आपका खयाल है कि मैं औरोंकी अपेक्षा एक उच्चतर स्थितिमें हूँ। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे इसका कोई भान नहीं है। हाँ, मैं एक ज्वालामुखीकी चोटीपर अवश्य हूँ, जिसे मैं अदहनशील दृढ़ चट्टानमें बदलनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। यह भी हो सकता है कि मेरे कामयाब होनेसे पहले ही वह किसी क्षण फूट पड़े। लेकिन ऐसी सम्भावनाएँ, दुर्भाग्यवश, सुधारकोंके भाग्यमें रहती ही हैं।

मेरे आदर्शवादसे आप चिन्तित हैं। यदि आपने मेरे लेखोंको पढ़नेका कष्ट किया होता, तो आपको मालूम होता कि वह अत्यन्त व्यावहारिक है।

आपने यह अनुमान सही लगाया है कि मूलतः मैं सहयोगी हूँ। जब लगभग तीस वर्षोंसे मैं यही रहा हूँ तब और कुछ मैं हो भी कैसे सकता था? मैं निश्चय ही इस प्रतीक्षामें हूँ कि अवसर मिले और मैं सहयोग करूँ, किन्तु विश्वास कीजिए, वह सहयोग तबतक नहीं दिया जायेगा, जबतक अंग्रेज लोग मुसलमानोंकी भावनाके अनुसार खिलाफतकी शर्तोंको तय करनेकी आवश्यकता अनुभव नहीं करते, जबतक वे पंजाबको सोच-समझकर पहुँचाई गई यातनाके लिए पश्चात्ताप नहीं करते, और जबतक वे अपने-आपको हमारे संरक्षक और शासक समझना नहीं छोड़ते। भारतीय अंग्रेजोंको अपने मित्र, साथी, कार्यकर्त्ता तथा बराबरीके साझेदारोंकी नाईं खुशी-खुशी भारतमें रखेंगे; किन्तु यदि वे अपने निजी लाभके लिए हमारे देशका शोषण करना चाहते हैं, तो फिर यदि उनसे बने, वे ऐसा करें; किन्तु ऐसा उन्हें हमारे सहयोगके बिना ही करना होगा।

मुझपर सत्यसे विचलित होनेका अपराध लगाना आपने उचित समझा है। यहाँ भी दोष आपके विस्मयजनक अज्ञानका है। आपको यह सूचना ठीक मिली कि मैंने कच्चागढ़ीकी घटनासे सम्बन्धित वक्तव्यपर विश्वास किया था। यह ऐसे व्यक्तियोंने शपथपूर्वक दिया था जिनपर अविश्वास करनेका मेरे पास कोई कारण नहीं था। किन्तु ज्यों ही मुझे उसका प्रतिवाद प्राप्त हुआ, मैंने उसे अपने हस्ताक्षर सहित प्रकाशित किया था। मैं आपका ध्यान 'यंग इंडिया' के अंकोंकी ओर आकर्षित करता हूँ। अन्तमें, मेरा अनुरोध है कि आप असहयोग आन्दोलनका अध्ययन करने तथा उसे समझनेका प्रयत्न करें। आप देखेंगे कि उसकी भावना अंग्रेज विरोधी नहीं है। वह एक धार्मिक आन्दोलन है और आत्मशुद्धिका आन्दोलन है। वह एक ऐसा आन्दोलन है, जिसका उद्देश्य है अन्याय, असत्य, आतंकवादका विरोध करना, तथा भारतवर्षमें स्वराज्यकी स्थापना करना। आप मानेंगे कि पारस्परिक अविश्वास तथा भयके स्थानपर विश्वास तथा निर्भयताकी स्थापना करना ज्यादा अच्छी बात है।

यह आन्दोलन उस दुःखद स्थितिको समाप्त करनेका प्रयास है। मैं इस प्रयत्नमें आपका सहयोग चाहता हूँ।

आपका विश्वस्त,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-२-१९२१

१९२. टिप्पणियाँ

वकील और विद्यार्थी किस प्रकार सहायता करें?

जहाँ कहीं भी मैं गया हूँ मुझसे यह पूछा गया है कि जो विद्यार्थी और वकील कांग्रेसके उनसे सम्बन्धित प्रस्तावका पालन नहीं कर सकते वे इस आन्दोलनमें किसी दूसरी प्रकारकी सहायता कर सकते हैं या नहीं। यह एक विचित्र-सा सवाल है। क्योंकि इसमें यह ग्रहीत है कि जो विद्यार्थी या वकील असहयोग नहीं कर सकते वे [कदाचित्] और कोई मदद नहीं कर सकते। निःसन्देह ऐसे सैकड़ों विद्यार्थी और बीसियों ऐसे वकील होंगे जो केवल दुर्बलतावश ही अपनी पढ़ाई या वकालत नहीं छोड़ सकते। पर यदि कोई वकील वकालत नहीं छोड़ सकता तो भी वह आर्थिक सहायता तो कर ही सकता है। वह अपना खाली समय सार्वजनिक सेवाकार्यमें लगा सकता है। वह अपने धन्धेमें ईमानदारी और खरे व्यवहारका प्रचलन कर सकता है। अर्थात् वह अपने मुवक्किलोंको सिर्फ रुपया ऐंठनेका साधन न माने और न वह दलालोंके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध रखे। मुकदमोंका फैसला पंचोंसे करानेमें भी वह सहायता दे सकता है। और कुछ नहीं तो वह स्वयं प्रतिदिन एकाध घण्टा कताई करके अपने पारिवारिक जीवनमें सादगी लानेका प्रयत्न कर सकता है। वह अपने परिवारके सदस्योंको नियमपूर्वक प्रतिदिन कुछ समय कताई करनेके लिए भी प्रोत्साहित कर सकता है। वह चाहे तो अपने और अपने परिवारके लिए खादीका उपयोग कर सकता है। ये कुछ ऐसी बातें हैं जिनका पालन कोई भी वकील कर सकता है। अगर कोई व्यक्ति असहयोग कार्यक्रमके किसी विशेष भागका पालन नहीं कर सकता या नहीं करना चाहता तो उसे दूसरी बातोंका पालन करनेसे कतराना नहीं चाहिए। वकालत करनेवाले वकीलको सिर्फ यह एक बात नहीं करनी चाहिए — आगे बढ़कर जनताका नेतृत्व। उसे चुपचाप काम करके ही सन्तोष करना है। वकालत करनेवाले इन वकीलोंके लिए जो कुछ मैंने कहा है वही बात उन विद्यार्थियोंपर भी लागू है जो पढ़ाई नहीं छोड़ सकते या छोड़ना नहीं चाहते। हमारे अधिकांश स्वयं-सेवक विद्यार्थी हैं। स्वयंसेवकके रूपमें कार्य करना एक विशिष्ट अधिकार है। जो विद्यार्थी सरकारी स्कूल नहीं छोड़ पाया उसे राष्ट्र यह अधिकार नहीं दे सकता और उसे भी राष्ट्रके आकांक्षाहीन सेवक बने रहनेमें सन्तोष करना होगा। यद्यपि हम स्कूलों और कालेजोंका पूर्ण बहिष्कार नहीं कर सकते तो भी हमें उनकी प्रतिष्ठाको तो कम करना ही है। उनकी अब पहलेकी तरह प्रतिष्ठा नहीं रही है और रही-सही प्रतिष्ठा भी दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। जबतक इन संस्थाओंका राष्ट्रीयकरण नहीं हो जाता और वे राष्ट्रकी आवश्यकतानुसार अपनेको ढाल नहीं पातीं तबतक उनकी प्रतिष्ठाकी पुनःस्थापनाके लिए हम कुछ नहीं करेंगे।

हुल्लड़बाजी

निःसन्देह श्री [वी० एस० श्रीनिवास] शास्त्री और श्री [आर० पी०] परांजपेके लिए आयोजित बम्बई और पूनाकी सभाओंमें जनताने जो लज्जाजनक व्यवहार किया उससे असहयोग [आन्दोलन] की बहुत बड़ी हानि हुई है। इस घटनाका मैंने यह स्पष्टी-करण भी सुना है कि यह गुण्डागिरी असहयोगी विद्यार्थियोंने नहीं, उन लोगोंने की जो आन्दोलनको बदनाम करना चाहते हैं और जो असहयोगी विद्यार्थियोंके प्रति लोगोंके मनमें पूर्वग्रह पैदा करना चाहते हैं। यह स्पष्टीकरण कुछ हदतक सही भी हो सकता है, क्योंकि निःसन्देह ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं जो इस आन्दोलनका गला घोंटनके लिए हिंसापर उतर सकते हैं। लेकिन असहयोगकी यथाशीघ्र सफलताके लिए हमें ऐसी सम्भावनाओंका सामना करनेके लिए भी तैयार रहना है। पराजित सिपाही अपनी सफाईमें कठिनाइयोंका बयान करके नहीं छूट सकता। जब जनरल बुलर[1] लेडी स्मिथका घेरा तोड़नेमें असमर्थ रहे तो उन्हें अधिकारच्युत[2] कर दिया गया। जब लार्ड रॉबर्ट्स[3] दक्षिण आफ्रिकी युद्धका कुछ निर्णय नहीं करा पाये तो कमान लार्ड किचनरको सौंप दी गई। यह सरकार तभीतक चल सकती है जबतक वह असहयोगकी पकड़में नहीं आती। यदि असहयोगी विद्यार्थी अपयश नहीं कमाना चाहते थे तो उन्होंने बम्बई या पूनाकी सभाओंमें भाग क्यों लिया? सभाकी सूचनाओंमें यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि वही व्यक्ति सभामें भाग लें जो दूसरे पक्षकी बात सुननेके लिए भी इच्छुक हों। इस प्रकार बम्बई या पूनामें हुई घटनाओंकी कोई सफाई नहीं दी जा सकती। इसके अलावा यह बात भी अकसर भुला दी जाती है कि श्री शास्त्री और परांजपेकी गिनती देशके योग्यतम नेताओं और अनन्य देशभक्तोंमें की जा सकती है। उन्हें भी देशसे उतना ही प्रेम है जितना असहयोगियोंको। वे हमारे बारेमें सोचते हैं कि हम गलतीपर हैं। हम भी उनके बारेमें यही सोच सकते हैं। किन्तु यदि हम अपने विरो-धियोंकी बात सुननेसे इनकार करें तो यह हमारी भारी भूल होगी।

इसके साथ हमारा अंग्रेजोंके पूर्वोदाहरण देकर हुल्लड़बाजीका औचित्य सिद्ध करना भी आवश्यक नहीं है। पहले हम इसे धार्मिक आन्दोलन मानना बन्द करें और तब अंग्रेजी सभाओंके शोरगुल और अक्खड़बाजीकी नकल करें। हमारा बल इसीमें है कि हम बिना सोचे-विचारे विदेशी या किसी अन्य दृष्टान्तका अनुकरण न करें। सफल होनेके लिए यह आवश्यक है कि यह आन्दोलन तत्त्वतः अहिंसात्मक हो और हर कदम-पर, हर समय अपनी विशिष्टता बनाये रखे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३–२–१९२१

१. सर रेडवर्ज हेनरी बुलर (१८३९–१९०८); बोअर युद्धके समय ब्रिटिश सेनापति।

२. बुलरके स्थानपर रॉबर्ट्स सेनापति नियुक्त हुए।

३. फ्रेडरिक स्ले रॉबर्ट्स; भारतमें ब्रिटिश सेनाध्यक्ष (१८८५-९३); १८९९–१९०० तक दक्षिण आफ्रिकामें।

१९३. स्वराज्यकी शर्तें

यदि कुछ सरल-सी शर्तें पूरी की जा सकें तो स्वराज्य आगामी अक्तूबरसे पहले सरलतासे प्राप्त किया जा सकता है। पिछले सितम्बर माहमें मैंने एक सालमें स्वराज्य प्राप्त होनेकी बात कहनेकी हिम्मत की थी, क्योंकि मैं जानता था कि शर्तें बहुत ही सरल हैं। मुझे यह भी लगा था कि देशका वातावरण अनुकूल है। पिछले पाँच महीनोंके अनुभवने मेरे इस मतको पुष्ट किया है। मुझे विश्वास हो गया है कि देश स्वराज्यकी स्थापनाके लिए इतना तैयार कभी नहीं रहा, जितना आज है।

लेकिन शर्तोंको यथासम्भव सही-सही जानना हमारे लिए आवश्यक है। एक सबसे बड़ी और अपरिहार्य शर्त है अहिंसाको बरकरार रखना। अभी हालमें हमने जो उपद्रव, हुल्लड़बाजी, लूटपाट वगैरह देखे, वे विचलित करनेवाली चीजें हैं। ये खतरेके सूचक हैं। हमें उनकी बढ़तीको रोक सकना चाहिए। आतंकवादके रहते हुए एक सालके अन्दर लोकतन्त्रकी भावना नहीं लाई जा सकती — चाहे वह आतंकवाद सरकारका हो, या जनताका। कुछ दृष्टियोंसे जनताका आतंकवाद लोकतन्त्रात्मक भावनाके विकासमें सरकारके आतंकवादकी अपेक्षा अधिक बाधक होता है। कारण, सरकारका आतंकवाद लोकतन्त्रकी भावनाको मजबूत बनाता है, जब कि जनताका आतंकवाद उसे नष्ट कर देता है। डायरवादने स्वातन्त्र्यकी उत्कंठाको जैसा जगाया है वैसा अन्य किसी चीजने नहीं। किन्तु आन्तरिक डायरवाद चूँकि बहुमतका आतंकवाद होगा, इसलिए वह ऐसे अल्पतन्त्रकी स्थापना करेगा जो स्वतन्त्र विचार-विमर्श तथा स्वतन्त्र आचरणकी भावनाका गला ही घोंट देगा। अतः द्रुत सफलताके लिए सरकारके प्रति भी और पारस्परिक व्यवहारमें भी, अहिंसा नितान्त आवश्यक है। हमें कोई कितना भी छेड़े, हमारा आचरण अहिंसापूर्ण ही हो, हमें ऐसा उपाय करना चाहिए।

दूसरी शर्त है, नये संविधानके[1] अनुसार कांग्रेसका संगठन करनेकी हमारी योग्यता। इस संविधानका उद्देश्य प्रत्येक गाँवमें उचित निर्वाचक-मण्डलकी सहायताके साथ कांग्रेसकी इकाइयाँ स्थापित करना है। इसके लिए पैसा और कांग्रेसकी विभिन्न नीतियोंको कार्यान्वित करनेकी योग्यता, दोनों चाहिए। सचमुच आवश्यकता कोई बड़े त्यागकी नहीं, वरन् संगठन करने तथा मिलजुल कर साधारण काम करनेकी योग्यताकी है। अभी तो हम अपने देशके साढे सात लाख गाँवोंके प्रत्येक घरमें कांग्रेसका सन्देश पहुँचानेमें भी सफल नहीं हुए हैं। यह काम करनेके लिए हमें २५० जिलोंके लिए इतने ही ईमानदार कार्यकर्ता चाहिए, जिनका अपने-अपने जिलेमें प्रभाव हो और जो कांग्रेसके कार्यक्रममें विश्वास रखते हों। किसी भी गाँव, अथवा मण्डलका अपने संगठनकी स्थापना करनेके लिए, मुख्यालयसे आदेश प्राप्त करनेके लिए ठहरना आवश्यक नहीं है।

१. देखिए पृष्ठ १९४-२०२।

कुछ बातें हैं जो सभीपर लागू होती हैं। सबसे अधिक समर्थ वस्तु है स्वदेशी। हर घरमें चरखा अवश्य होना चाहिए, और हर गाँवको एक महीनेसे कम समयमें अपने आपको संगठित कर लेना चाहिए तथा कपड़ेके मामलेमें आत्मनिर्भर हो जाना चाहिए। जरा सोचिए कि इस मौन क्रान्तिका क्या अर्थ है, और तब आपको मेरी तरह यह विश्वास करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी कि स्वदेशी ही स्वराज्य है, स्वधर्म है।

प्रत्येक पुरुष और स्त्री तिलक स्वराज्य कोषमें कुछ धन दे सकता है — चाहे एक पैसा ही क्यों न दे। और हमें आन्दोलनके लिए धनकी व्यवस्थाकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। सभी स्त्री-पुरुष एक वर्षके लिए सभी विलासकी वस्तुओं, शरीर-सज्जाके अलंकारों और सभी मादक-द्रव्योंका परित्याग कर सकते हैं। तब हमारे पास पैसा तो होगा ही; इसका यह मतलब भी होगा कि हम इसके साथ ही अनेक विदेशी वस्तुओंका बहिष्कार भी कर रहे हैं। हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा स्वराज्य इस बातपर निर्भर नहीं कि हम अपनी आवश्यकताएँ कितनी बढ़ाते हैं — सुख-भोगके प्रति कितने आसक्त होते हैं; वे तो इस बातपर निर्भर हैं कि हम अपनी आवश्यकताएँ कितनी कम करते हैं, हममें कितना आत्म-वर्जन है।

हिन्दू-मुस्लिम एकताके बिना, तथा अस्पृश्यताके सर्पको मारे बिना हम कुछ नहीं कर सकते। अस्पृश्यता वह विष है, जो हिन्दू समाजके मर्मको खोखला कर रहा है। वर्णाश्रम ऊँच-नीचका धर्म नहीं है। भगवान्का कोई भी भक्त किसी दूसरे आदमीको अपनेसे नीचा नहीं समझ सकता। उसे तो प्रत्येक मनुष्यको अपना सगा भाई मानना चाहिए। यही प्रत्येक धर्मका आधारभूत सिद्धान्त है।

यदि यह धार्मिक युद्ध है तो पाठकोंको यह विश्वास दिलानेके लिए तर्क देनेकी आवश्यकता नहीं है कि आत्म-वर्जन उसकी सर्वोच्च कसौटी होनी चाहिए। धार्मिकताके बिना खिलाफतको बचाया नहीं जा सकता, और न पंजाबके लोगोंके प्रति हुए अन्याय-का निराकरण ही हो सकता है। धार्मिकताका अर्थ है हृदय-परिवर्तन — राजनीतिकी भाषामें कहें तो दृष्टिकोणका बदलना। और ऐसा परिवर्तन एक क्षणमें आ सकता है। मेरा विश्वास है कि भारत उस परिवर्तनके लिए तैयार है।

तो हम इन बातोंपर अपना ध्यान केन्द्रित करें:

(१) अहिंसाकी भावना विकसित करना।

(२) प्रत्येक गाँवमें कांग्रेस संगठनकी स्थापना करना।

(३) प्रत्येक घरमें चरखेका प्रवेश कराना, और अपनी आवश्यकताका सारा कपड़ा गाँवके बुनकरोंसे तैयार करवाना।

(४) जितना पैसा सम्भव हो, इकट्ठा करना।

(५) हिन्दू-मुस्लिम एकताको बढ़ाना; और

(६) हिन्दू-धर्मको अस्पृश्यताके शापसे मुक्त कराना तथा मादक द्रव्योंका त्याग करके अपनेको अन्य प्रकारसे शुद्ध बनाना।

क्या हमारे पास इस बहुत ही साधारण कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए ईमानदार, लगनशील, उद्योगी और देशभक्त कार्यकर्त्ता हैं? यदि हैं, तो आगामी अक्तूबरसे पहले ही भारतमें स्वराज्य स्थापित हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३–२–१९२१

१९४. क्या ईसाने असहयोग किया था?[1]

पाठक शायद मेरी इस बातसे सहमत होंगे कि रेवरेंड गिलिस्पीने[2] अपने कमजोर पक्षको और भी कमजोरकर लिया है। मुझे विश्वास है कि असहयोगी भी केवल उन्हीं शर्तोंपर सहयोग करनेको तैयार होगा जिनकी चर्चा वे "बाइबिल"की कहानीवाले "पथभ्रष्ट पुत्र"के सम्बन्धमें करते हैं। अगर 'बाइबिल'की कहानीके उस लड़केके समान सरकार भी ठीक रास्तेपर वापस लौट आये तो सभी असहयोगी बहुत हर्ष मनायेंगे। यदि मनोनीत नये वाइसरायका[3] इरादा सचमुच नेक होगा तो असहयोगियोंसे वे जितनी भी सहायताकी आशा रखते होंगे, उन्हें मिलेगी। अस्पृश्यताके सम्बन्धमें रेवरेंड गिलिस्पीकी बात काफी हदतक ठीक है। अस्पृश्यतासे चिपका रहनेवाला कोई भी व्यक्ति इस सरकारकी निन्दा करनेका कोई हक नहीं रखता। न्यायपूर्ण समताके व्यवहारकी माँग करनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको स्वयं सर्वथा निर्दोष होना चाहिए, यह सिद्धान्त सर्वत्र लागू होता है। रेवरेंड गिलिस्पी देखें कि अस्पृश्यताको बनाये रखनेके हामी भारतीय निश्चय ही सरकारसे सहयोग करनेवाले लोगोंकी पंक्तिमें ही हैं। असहयोगका तो मतलब ही मनुष्यमें आन्तरिक सुधार करना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३–२–१९२१

१. इस लेखमें गांधीजीने रेवरेंड गिलिस्पीके उस पत्रकी टीका की है जो उन्होंने २२ जनवरी, १९२१ को राजकोटसे भेजा था। उक्त पत्र यहाँ उद्धृत नहीं किया जा रहा है।

२. रेवरेंड गिलिस्पीने अपने पत्रमें कहा था: "यद्यपि हमें ऐसे पुत्रपर, जो पाप और निर्लज्जताके जीवनसे अपनेको अपमानित करता है, अनुग्रह नहीं करना चाहिए तथापि स्नेहपूर्ण करुणा तथा प्रार्थनापूर्ण आत्मिक शक्तिके साथ प्रतीक्षा करते हुए उस दुष्कर्मी पुत्रके साथ सहयोग करना चाहिए — और इसे ही सच्चा सहयोग कहते हैं — और जब वह लौटे तब खुले दिलसे उसका स्वागत करना चाहिए।"

३. लॉर्ड रीडिंग, जिन्होंने अप्रैल १९२१ में शासन-भार सँभाला था।

१९५. भाषण : श्रीकी सिख परिषद्में[1]

२५ फरवरी, १९२१

मैं स्वीकार करता हूँ कि अपने पवित्र स्थलोंका कब्जा हमारे हाथमें होना चाहिए। यह कब्जा हम अपने हाथमें एक ही दिनमें ले सकते हैं। लेकिन कैसे? यदि एक भी व्यक्ति गुरुद्वारेमें न जाये और अपवित्र महन्तोंके अपवित्र हाथोंमें एक भी पैसा न दिया जाये तो आप आज ही उनसे अपनी मनचाही बात मनवा सकते हैं। अभी अगर आप यह मानते हैं कि ननकाना साहबका कब्जा आपके हाथमें है तो आप भूल करते हैं। वह कब्जा तो आपको सरकारी फौजने दिया है। मैं आपके पास जैसा कब्जा देखना चाहता हूँ वह यह नहीं है। मेरे कहनेका अभिप्राय यह नहीं है कि आप मिले हुए कब्जेको छोड़ दें। लेकिन जिस तरह यह कब्जा आपको मिला है उससे थोड़ी नामोशीकी बात तो जरूर है।

मुझे शहीदोंके[2] लिए बहुत दुःख होता है। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह रोनेका समय नहीं बल्कि मरनेका समय है। इस समय तो छातीपर चोट खाकर हम सब मर सकें यही मेरी इच्छा है। ननकाना साहबके शहीदोंने ऐसी ही बहादुरी दिखाई जान पड़ती है। लेकिन मैं अपना दोष भी देखे बिना नहीं रह सकता। हमें धमकी देकर गुरुद्वारेपर कब्जा लेनेका अधिकार नहीं है। यदि महन्तने लायलपुरमें आकर लछमन-सिंहकी हत्या की होती तो वैसा करनेके बाद वह घड़ीभरके लिए भी अपना कब्जा न रख सकता। लेकिन ननकाना साहबमें तो हमने उसे अवसर दिया। गुरुद्वारेका कब्जा हम खामोशीसे ही ले सकते हैं। इतने वर्षोंतक हम चुप रहे। क्या एक वर्ष और चुप रहनेमें दोष है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७–४–१९२१

१. महादेव देसाईके यात्रा-विवरणसे उद्धृत।

२. ननकाना साहबमें हुई दुर्घटनाके समय, जो २० फरवरीको हुई थी। देखिए "सिख जागृति", १३–३–१९२१।

१९६. भाषण : लखनऊकी खिलाफत सभामें

२६ फरवरी, १९२१

कल खिलाफत सभामें गांधीजीने उर्दूमें बोलते हुए कहा कि अक्तूबरतक, शेष ७ महीनोंमें वे खिलाफत प्रश्नका निबटारा कर लेंगे तथा स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। वे तलवार तो नहीं खींच सकते, किन्तु स्वराज्य प्राप्त कर लेनेपर तलवार खींचनेकी शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं। पहले वाइसराय उनपर हँसा करते थे, किन्तु अब वे उनके साथ सहयोग करना चाहते हैं।[1] गांधीजीने लोगोंको ब्रिटिश मालका बहिष्कार करने तथा विदेशी कपड़ेको त्यागनेकी सलाह दी और बताया कि इसके जरिये वे दूसरे ही दिन स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं।[2]

[भाषण जारी रखते हुए उन्होंने कहा :] वकीलों और विद्यार्थियोंके सम्बन्धमें हमें जो-कुछ करना जरूरी था उतना हम कर चुके। उस दिशामें अब कोई विशेष प्रयत्न करनेकी जरूरत नहीं रही। हम अपनी आवाज जहाँतक पहुँचा सके हैं, उससे मैं सन्तुष्ट हूँ। जिन्हें हम अपनी बात माननेके लिए राजी नहीं कर सके हैं, वे अपनी इच्छासे सहयोग करना चाहें तो करें। वकालत करनेवाले वकीलों और सरकारी विद्यालयोंमें जानेवाले विद्यार्थियोंकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रही। उनमें से अधिकांश स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे गलत काम कर रहे हैं। हमारे लिए यही काफी है। वकीलों तथा सरकारी स्कूलोंमें पढ़ाई जारी रखनेवाले छात्रोंने जिस हदतक अपनी प्रतिष्ठा खो दी है, उसी हदतक सरकारकी प्रतिष्ठा भी कम हो गयी है।[3]

[अंग्रेजी और गुजरातीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २–३–१९२१

नवजीवन, १७–४–१९२१

१. यह उल्लेख अनुमानतः वाइसरायके उस भाषणका है जो उन्होंने खिलाफतके प्रश्नपर दिया था, देखिए परिशिष्ट २।

२. यह अनुच्छेद **अमृतबाजार पत्रिकासे** लिया गया है।

३. यह अनुच्छेद **नवजीवनकी** गुजराती रिपोर्टसे लिया गया है।

१९७. उलटा तर्क

मेरे पास गुमनाम पत्र आते ही रहते हैं। सभीमें अभीतक अपना नाम प्रगट करके लिखनेकी हिम्मत नहीं आई है। अखबारमें अपने नामको जाहिर न करना एक बात है। लेकिन सम्पादकको भी अपना नाम न भेजना और पत्र प्रकाशित करवा लेनेकी उम्मीद करना दूसरी बात है। मेरे पास अभी ऐसे दो लेख पड़े हैं। एक लेखमें गुजरात कालेजके एक विद्यार्थीने असहयोगियोंपर कुछ आक्षेप किये हैं। उसे तो मैं नहीं छापता। दूसरा लेख किसी बहनका है; उसमें भी आक्षेप लगाये गये हैं। लेकिन लेख स्त्रीका है, इसलिए और आक्षेप जानने योग्य होनेके कारण मैं उसे यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ।

यह गुमनाम बहन लिखती हैं :

> अंग्रेजी शासनके जुल्मी अधिकारियोंके पंजाबपर ढाए गये जुल्मोंसे मेरे हृदयको ठेस पहुँची है और मैं चार महीनोंसे नौकरी छोड़नेका विचार करती हूँ। लेकिन समय ज्यों-ज्यों बीत रहा है मैं देख रही हूँ कि नौकरी छोड़नेके सम्बन्धमें मेरी आतुरता दिन-प्रतिदिन मन्द पड़ती जा रही है। उसका कारण यह है कि जुल्मी अधिकारियोंके कृत्योंसे दिलको जितनी ठेस पहुँची है, उतनी ही आपके नामसे काम-काज करनेवाले अप्रामाणिक नेताओंके कृत्योंसे भी पहुँची है। . . .कुछ ऐसा उपाय किया जाना चाहिए जिससे आपके नामपर ऐसे दम्भी लोग लाभ न उठा पायें और केवल सत्यकी ही विजय हो। . . .क्या यह अनुचित नहीं है कि जहाँ-जहाँ नगरपालिकाके स्कूल हों वहाँ-वहाँ राष्ट्रीय स्कूलोंकी स्थापना और बालकोंकी संख्यामें वृद्धि करनेके प्रयत्न किये जायें? नडियादके समान ही अन्य नगरपालिकाओंके स्कूलोंको भी राष्ट्रीय स्कूलोंमें परिवर्तित क्यों न किया जाये?

इस बहनने उलटे तर्कका प्रयोग किया है। यदि उन्हें सरकारी नौकरी छोड़नेकी 'लगन' लगी हुई हो तो वह असहयोगियोंकी अप्रामाणिकताको देखकर ठण्डी होनेके बजाय और भी बढ़नी चाहिए। प्रामाणिक व्यक्तिका उत्साह मन्द हो जाये और वह सरकारी नौकरीसे चिपका रहे तो इससे असहयोगीकी अप्रामाणिकता कम नहीं होगी। जो लोग सरकारी नौकरी छोड़ें अथवा दूसरी तरहसे असहयोग करें वे ऐसा असहयोगियोंपर मेहरबानीके रूपमें नहीं बल्कि असहयोगको धर्म समझकर कर्त्तव्यके ही रूपमें करें। अगर सब असहयोगी पापी हों तो भी क्या? अथवा ऐसा हो तब तो इक्के-दुक्के पुण्यवान् महा-असहयोगीको और भी प्रचंड असहयोग करना चाहिए। यदि उपर्युक्त बहनको लगी 'लगन' सच्ची है तब तो उसका परिणाम यही होना चाहिए।

सभी असहयोगी शुद्ध होते तब तो स्वराज्य कभीका मिल गया होता। बहुत समयसे हमपर जो मैल चढ़ा हुआ है, उसके एकाएक दूर होनेकी आशा रखना ही

गलत है। असहयोग करके इस मैली सरकारसे हम दूर हटें, तो उतना मैल तो कटेगा? शराब पीनेवाला, शराब न पीनेवाले व्यक्तिके दूसरे दोषोंको देखकर स्वयं शराबके व्यसनसे चिपका रहे, यह तो कोई ठीक बात नहीं है। सही तो यह है कि दूसरे चाहे जो भी करें फिर भी वह शराब छोड़कर पापमुक्त हो और दूसरोंको उनके दूसरे पापोंसे छुड़ानेका प्रयत्न करें।

इसके अलावा, इस बहनने नगरपालिकाके स्कूलोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है यदि अप्रामाणिकतासे उसका यही मतलब है तो यह उसकी नासमझी ही कही जायेगी। जहाँ नगरपालिका अपने स्कूलोंको राष्ट्रीय नहीं बनाती वहाँ, अगर सम्भव हो तो, नये स्कूलोंकी स्थापना करके, नगरपालिकाके स्कूलोंसे बच्चोंको निकालनेका प्रयत्न होना ही चाहिए। यह तो असहयोगीका स्पष्ट धर्म है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७–२–१९२१

१९८. रावलपिण्डीकी बहनें

मैं बंगालमें और दूसरी जगहोंमें स्वराज्यवादियोंके लिए बहनोंके आशीर्वाद प्राप्त कर रहा हूँ। मैंने नवयुवतियोंको अपने सारे आभूषण देते हुए देखा है। कलतक जो फूल-से वस्त्र पहनती थी उन्हें आज मैं खादीकी साड़ी पहनते हुए देख रहा हूँ। और चूँकि स्थिति आम तौरपर ऐसी हो गई है इसलिए मुझे यह सोचना पड़ रहा है कि मैं किन अनुभवोंकी चर्चा करूँ और किनको छोड़ दूँ।

रावलपिण्डी मुख्यतः सिपाहियोंका शहर माना जाता है। वहाँ धनिक लोग रहते हैं। लेकिन रावलपिण्डीमें मैंने बहनोंमें जो उत्साह देखा वह मेरे लिए कल्पनातीत था। स्त्रियोंकी सभा सबेरे ग्यारह[1] बजे थी। यह सभा खुली जगहमें एक बगीचेमें आयोजित की गई थी। उस समय उसमें पुरुषोंके आनेकी मनाही थी। बहनें एक मंचके आसपास बैठ गई थीं। मेरे साथ लालाजी[2] थे। बहनोंने अपने ही रचे हुए दो गीत गाये। गीत गानेमें बहुतेरी बहनोंने भाग लिया। एक गीत अमृतसरसे और दूसरा स्वदेशीसे सम्बन्धित था। हम चरखा चलायेंगी, हम बेकार नहीं बैठेंगी, हम चरखा चलाते हुए प्रभुका नाम लेंगी। हम महीन वस्त्र छोड़कर खादी पहनेंगी। हम बढ़ई, लुहार और मोचीको प्रोत्साहन देंगी और देशको सुखी बनायेंगी — ऐसा उस गीतका भावार्थ था। मुख्य गानेवाली बहनें बीसेक वर्षकी उम्रवाली कुछ लड़कियाँ थीं। उन्होंने श्वेत वस्त्र ही पहन रखे थे। वे धनाढ्य घरोंकी थीं, लेकिन उनके हाथोंमें अँगूठीके सिवाय मैंने और कोई आभूषण नहीं देखा। पंजाबमें कुमारी अथवा सधवा चूड़ी

१. २० फरवरी, १९२१ को।
२. लाला लाजपतराय।

अवश्य पहने, ऐसा खास रिवाज नहीं है। बहनें भेंट देनेके लिए सूत अथवा खादी भी लाई थीं।

उनके उस प्रेममय कोलाहलमें हमारे भाषण तो कम ही सुने गये, सुननेकी जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि हमारी याचना उनके हृदयमें अंकित थी। रावण-राज्यका नाश करके राम-राज्यकी स्थापना करनी है। उसको स्थापित करनेका मार्ग सीताका मार्ग है। सीताजीने रावणकी भेजी हुई मिठाइयों, आभूषणों आदिका त्याग किया था; वैसे ही हिन्दुस्तानकी पुत्रियोंको भी करना है। जबतक गरीबोंकी भूख नहीं मिटती तबतक उनका हृदय दुआ नहीं देगा। यह भूख चरखेसे ही मिट सकती है। पवित्र स्त्रियोंका आशीर्वाद ही फलीभूत होता है। इसलिए स्त्रियोंको अधिक पवित्र, सादा और अच्छा बनना होगा। ऐसी सामान्य बातें तो उनके हृदयमें अंकित हो चुकी हैं। तो फिर उन्हें और क्या सुनना था? उन्होंने तो रुपये और गहने निकालने शुरू कर दिये। उस श्वेत-वस्त्र-धारिणी बहनको अपनी अँगूठीके प्रति अरुचि उत्पन्न हुई। उसने उसे निकालनेकी कोशिश की पर वह किसी तरह निकलती ही न थी। अन्तमें अँगूठी निकालकर मेरी झोलीमें डालनेपर ही उसे शान्ति मिली। बहनें हमें घेर कर हमारे चारों ओर इकट्ठी हो गयीं। कोई अपने आँचलमें पैसे और गहनें इकट्ठे करके ले आई। कोई बहन इकट्ठे किये हुये पैसेको दूरसे ऐसी युक्तिसे फेंकती थी कि दूसरी बहन उसे अपने आँचलमें ले लेती थी। इस तरह एक घण्टेतक यह कोलाहल चलता रहा और रुपयों तथा नोटोंकी वर्षा होती रही।

ये बहनें जानती थीं कि मुझे पैसा किसलिए चाहिए? स्वराज्य क्या है, खिलाफत क्या है, पंजाबपर क्या-क्या अत्याचार हुए हैं — इन सबसे वे अच्छी तरह परिचित थीं। वे इसी कारण पैसा दे रही थीं। इसलिए मुझे यह विश्वास क्यों न हो कि स्वराज्य एक वर्षमें मिल सकता है? सच तो यह है और मैं मानता हूँ कि स्वराज्य किसी एक व्यक्तिके प्रयत्नोंसे मिलनेवाला नहीं है। यदि हिन्दुस्तानके पुण्यका उदय हो चुका होगा, वह बिलकुल पुण्यके ही रास्तेपर चल रहा होगा तो स्वराज्य मिलकर ही रहेगा। उसकी शर्तें स्पष्ट हैं, फिर भी मैंने उन्हें और भी साफ शब्दोंमें समझा दिया है। वे हैं:

(१) शान्ति, (२) स्वदेशी (चरखा और खादीका प्रचार), (३) परस्पर सहयोग, (४) आवश्यक धनका दान, और (५) देशके प्रत्येक हिस्सेमें कांग्रेसके संविधानके अनुसार कामकी व्यवस्था।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७–२–१९२१

१९९. टिप्पणियाँ

दमनका नंगा नाच

बिहारमें किये गये दमनके विषयमें मैंने अलगसे एक लेख लिखा है। उसे लिखनेके बाद मैंने अखबारोंमें बिहारके बारेमें और भी बहुत-सी खबरें देखीं। अगर बिहारमें जलियाँवाला बागकी पुनरावृत्ति नहीं हो रही है तो उसका कारण यह नहीं होगा कि अधिकारियोंने लोगोंको उत्तेजित करनेमें कुछ कसर उठा रखी है; उसका श्रेय तो दरअसल बिहारियोंके अनुकरणीय आत्मसंयमको है। कारण, अधिकारी किसी भोली, अनजान भीड़के बारेमें यह कह दें, और वैसा मानें भी कि वह अमुक आदेशको तोड़ कर ही जमा हुई है, तो उन्हें उस भीड़पर जिसे अपने ऊपर आनेवाली इस आपत्तिका गुमान ही नहीं हो सकता, गोली चलानेसे कौन रोक सकता है! [बिहारकी आज जो हालत है उसमें] ऐसी कोई भयंकर चीज बड़ी आसानीसे हो सकती है, और फिर सरकारी इतिहासकार द्वारा लिखे इतिहासमें उसका उल्लेख मात्र "एक निर्णयकी भूल" कहकर कर दिया जायेगा।

दमन संयुक्त प्रान्तमें भी जोर पकड़ता जा रहा है। सार्वजनिक वक्ताओंपर नियन्त्रण रखा जा रहा है।

कालीकटके मजिस्ट्रेटने श्री याकूब हसन और उनके साथियोंको कारावास देकर खूब नाम कमाया ही है।[1]

जो-कुछ हो रहा है, उसकी आशंका तो थी ही। स्वराज्य सस्तेमें नहीं मिल सकता है और न मिलना ही चाहिए। ऐसा क्यों न हो कि बूढ़े, जवान सभी जेल जायें? जब हम सब साथ-साथ एक-सा ही कष्ट सहेंगे तो वह कष्ट हमें एकताके एक ऐसे सूत्रमें बाँध देगा, जो कभी नहीं टूटेगा। ज्यों-ज्यों असहयोग अपना असर दिखाना शुरू करेगा, अधिकारी अपने आपेसे बाहर होते जायेंगे।

कारण, यह स्पष्ट है कि उनमें अब भी पश्चात्ताप करनेकी कोई सच्ची इच्छा उत्पन्न नहीं हुई है। ड्यूक महोदयने[2] बड़ी मीठी और रुचनेवाली बातें कही हैं, और बनाते हैं, जब वे ये सौहार्दकी बातें कह रहे थे, उस समय स्पष्ट देखा जा सकता था कि वे विह्वल हो उठे हैं। कौंसिलने भी १९१९ के मनहूस अप्रैल मासकी घटनाओंपर दुःख प्रकट करते हुए एक प्रस्ताव[3] पास किया है; लेकिन जिस समय ये छूँछी भावनाएँ व्यक्त की जा रही थीं, लगभग उसी समय, मानो हमारा मजाक उड़ानेके लिए,

१. देखिए "भाषण: गुजराँवालामें", १९-२-१९२१।

२. ड्यूक ऑफ कनॉट।

३. कौंसिल ऑफ स्टेटमें १५-२-१९२१ को यह प्रस्ताव श्री जमनादास द्वारकादासने पेश किया था। प्रस्तावक द्वारा प्रस्तावमें से अपराधी अधिकारियोंको दण्डित करनेसे सम्बन्धित धारा ३ वापस ले लिये जानेपर वह पास कर दिया गया था।

विभिन्न प्रान्तोंके मजिस्ट्रेट दमनका कुचक्र रच रहे थे। शाब्दिक पश्चात्तापके अर्थ क्या होते हैं, इसका यह एक जीता-जागता उदाहरण है।

भारतको आज उदारता और अनुग्रहकी बातोंकी भूख नहीं है, और सच पूछिए तो अनुग्रहपूर्ण कार्योंकी भी नहीं। उसे भूख है न्यायकी, और सिर्फ न्यायकी। उसे भारतीय खजानेसे सर माइकेल ओ'डायर और जनरल डायरको पेंशन देना बन्द करनेकी माँग करनेका हक है। जिन अधिकारियोंने दुर्व्यवहार किया है, वे जबतक ऊँचे-ऊँचे पदोंपर बने हुए हैं तबतक वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

लेकिन जबतक यह बुनियादी न्याय प्राप्त नहीं होता तबतक भारत अपनी असहयोगकी लड़ाई जारी रखेगा और तबतक सरकार भी अपनी दमनकी नीतिपर कायम ही रहेगी।

हम क्या करें

हमें मानना चाहिए कि दमन एक ऐसी कसौटी है, जिसपर हमारी धातु परखी जानेवाली है। अगर हम अपने मुँहसे 'उफ्' तक निकाले बिना आत्म-संयमपर दृढ़ रहकर इस कसौटीपर खरे उतरते हैं तो उससे हमारा हित होगा, हम अपने लक्ष्यके निकटतर पहुँचेंगे। अगर हममें सच्ची लगन है तो हम अपना संयम खोये बिना इस अग्नि-परीक्षासे सही-सलामत गुजर जायेंगे। आखिरकार हम भी तो सरकारके साथ सहयोग करनेसे इनकार करके उसकी धीरजकी परीक्षा ही ले रहे हैं, लेकिन इसकी आत्मरक्षाकी सहज प्रवृत्ति इसे एक सीमातक शान्त रखती है। लेकिन जब वह सीमा पार हो जाती है, तो वह अपना सन्तुलन खो बैठती है। आम तौरपर हमपर भी इसकी यही प्रतिक्रिया होती है; हम भी क्रुद्ध हो उठते हैं, और हमारी इस कमजोरीसे सरकारको बल मिलता है। अहिंसा हमें यह सिखाती है कि हम अपने ऊपर सरकारके क्रोधका कोई असर नहीं होने दें। और अगर हम इस सीखको अपने आचरणमें उतारेंगे तो सरकारको हार खानी ही होगी। जब हम दमनके प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखायेंगे तो उसकी धार कुंठित हो जायेगी — ठीक उसी प्रकार जैसे अगर कोई हवामें मुक्का मारे तो कोई अवरोध न पाकर हाथ झटका खा जाता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २–३–१९२१

२००. बिहारमें दमन

जिस प्रान्तमें असहयोगके सिलसिलेमें सबसे अधिक ठोस काम किया जा रहा है, वह है बिहार। वहाँके नेता अहिंसाकी सच्ची भावनाको समझते हैं। जिन लोगोंके सीमाका उल्लंघन करनेका — शब्दोंमें भी उसका उल्लंघन करनेका — खतरा है, उनके उत्साहपर वे अंकुश रखनेकी कोशिश कर रहे हैं और इसमें सफल भी हो रहे हैं। बिहारमें हिंसाके विस्फोटका कोई खतरा नहीं है। आत्म-शुद्धिके क्षेत्रमें इस प्रान्तने शानदार काम किया है। मद्य-निषेध आन्दोलन बहुत तेजीसे आगे बढ़ा है और आबकारीकी आयमें बहुत कमी आ जानेकी सम्भावना है। शिक्षा-सम्बन्धी आन्दोलन भी काफी प्रगति कर रहा है। बहुत-से वकीलोंने वकालत छोड़ दी है। लोग आपसी झगड़ोंका निपटारा पंच-फैसलेसे कर रहे हैं। हर दिशामें राष्ट्रीय जागृतिके लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इसपर किसी भी लोकतान्त्रिक सरकारको गर्व होता; लेकिन बिहार सरकारको नहीं हो रहा है। फिर भी बिहारसे लोगोंने बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँध रखी थीं। और बाँधते भी क्यों नहीं, जब उसके गवर्नर[1] भारतीय हैं? वे भारतके सुयोग्यतम सपूतोंमें से एक हैं, और एक समय कांग्रेसके अध्यक्ष भी रह चुके हैं। लेकिन लॉर्ड सिन्हाकी भी अपनी सीमाएँ हैं। वे एक ऐसे यन्त्रका हिस्सा बन गये हैं, जो लोगोंको कुचल रहा है, और उनकी योग्यताका उपयोग महज उस यन्त्रके संचालनके लिए ही किया जा सकता है। अगर वे इस दृष्टिसे उपयोगी साबित नहीं होते हैं तो इस तन्त्रमें उनके लिए कोई स्थान नहीं है।

बिहारमें दमन बहुत जोरपर है, क्योंकि एक भारतीय गवर्नरकी आड़ लेकर अधिकारीगण बड़े धृष्ट हो गये हैं। लॉर्ड सिन्हा इन अपराधी अधिकारियोंके लिए ढाल बन गये हैं।

अब पाठकगण निम्नलिखित तथ्योंपर गौर करें और स्वयं ही वस्तु-स्थितिके बारेमें निर्णय करें। मौलाना मजहरुल हक और बाबू राजेन्द्रप्रसाद, दोनों बिहारमें काफी जानेमाने व्यक्ति हैं। इन्हें आरा जानेसे रोक दिया गया।[2] एक मित्रने अपने पत्रमें मुझे सूचित किया है:

> **मुजफ्फरपुर, सारन और चम्पारन जिलोंमें धारा १४४ और धारा १०७ के अधीन लगातार नोटिस जारी किये जा रहे हैं। जो लोग मुचलका देनेसे इनकार करते हैं, उन्हें जेलमें डाल दिया जाता है। ऐसे तीस व्यक्ति जेल भेजे जा चुके हैं। दूसरोंके विरुद्ध कार्रवाई होनेवाली है। यह खुशीकी बात है कि इनमें से कुछ तो वृद्ध लोग हैं। लोगोंको जेल भेजनेसे स्त्रियोंमें तनिक भी घबरा-**

१. लॉर्ड सिन्हा।

२. उन्हें इस आशयका आदेश १६-२-१९२१ को दिया गया था।

हट नहीं आई है। अगर वे इससे प्रसन्न न हुई हों तो इतना अवश्य है कि इससे चिन्तित भी नहीं हुई हैं।

मौलाना शफी और बाबू रामविनोदको निम्नलिखित नोटिस मिला है :

> मुझे विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हुआ है और ऐसा विश्वास भी है कि आप हाजीपुरमें एक सार्वजनिक सभामें बोलनेवाले हैं। उस सभामें आप श्रोताओंको असहयोगके निमित्त जेलतक भोगनेके लिए प्रोत्साहित करेंगे, और असहयोगसे सम्बन्धित अन्य विषयोंपर भी बोलेंगे। आपकी इस तरह उकसानेवाली बातोंसे आपके श्रोताओंके बीच उत्तेजना फैलनेकी सम्भावना है और परिणामतः सार्वजनिक शान्ति भंग हो सकती है। अतः इन तथ्योंको ध्यानमें रखते हुए मैं दण्ड प्रक्रिया संहिताकी धारा १४४ के अधीन प्राप्त अधिकारोंकी रू से आपको आदेश देता हूँ कि आप मेरे अधिकारमें आनेवाले हलकेके भीतर असहयोगके किसी भी पहलूपर कोई भाषण न दें।

जिन सब-डिवीजनल अधिकारी महोदयके इसपर हस्ताक्षर हैं, वे ऐसा दावा करते हैं मानो उन्हें पहलेसे ही इसका पता है कि ये लोग क्या बोलेंगे। उनके विचारसे यही असहयोग है। सारे भारतमें वक्तागण लोगोंसे जेलके लिए तैयार रहनेको कहते रहे हैं। लेकिन, उससे तो कहीं सार्वजनिक शान्ति भंग नहीं हुई है। सभी लोकप्रिय संस्थाओंने असहयोगकी सीख दी है, और आज भी रोज हजारों मंचोंसे इसकी सीख दी जा रही है। इन आदेशोंमें जो बातें कही गई हैं, उनसे तो स्वदेशी, मद्य-निषेध, अस्पृश्यता और हिन्दू-मुस्लिम एकतापर भी कुछ बोलनेमें व्यवहारतः रोक लग जाती है। कारण, ये सब असहयोगके ही तो "पहलू" हैं।

दूसरा आदेश इस प्रकार है :

> चूँकि मुझे सूचित किया गया है कि बाँगरा, थाना, गोपालगंज, जिला सारनके ब्रह्मचारी रामरक्षाने कल एक सभामें भाषण दिया, जिसमें उन्होंने सरकार और अंग्रेजोंको धोखेबाज, वादा-खिलाफी करनेवाले और अत्याचारी कहकर उनकी भर्त्सना की और कहा कि ब्रिटिश सरकारकी नीति एक जातिको दूसरी जातिके खिलाफ खड़ा करके दोनोंपर शासन करनेकी है; उन्होंने कहा कि अपने जुल्मोंके कारण अवश्य ही इस सरकारका नाश होगा और अगर भारतीय लोग गांधीके कहे अनुसार चलें तो वे दस दिनके अन्दर ब्रिटिश सरकारको यहाँसे निकाल सकते हैं; और चूँकि यह भी बताया गया है कि इस भाषणसे बड़ी उत्तेजना फैली, और दुबारा ऐसा भाषण देनेसे शान्ति भंग होनेका खतरा है; और चूँकि ऐसा लगता है कि उक्त ब्रह्मचारी रामरक्षा आज फिर वैसा ही भाषण देना चाहते हैं, इसलिए मैं दण्ड प्रक्रिया संहिताकी धारा १४४ के अधीन आदेश देता हूँ कि वे आजसे एक महीने तक सीतामढ़ी सब-डिविजनके किसी भी हिस्सेके किसी भी खुले स्थानमें पाँच या पाँचसे अधिक लोगोंके मजमेमें कोई भाषण न दें।

यहाँ भी हम देखते हैं कि जिस बातके लिए ब्रह्मचारीका मुँह बन्द किया गया है, वही बात हजारों लोगोंने कही है। ब्रह्मचारीने सरकारपर जो आरोप लगाये हैं, वे आरोप उसपर कांग्रेसके विशेष प्रस्तावकी[1] प्रस्तावनामें पहले ही लगाये जा चुके हैं। मैंने स्वयं इस सरकारको "धोखेबाज, वादा-खिलाफी करनेवाली और अत्याचारी!" बताकर इसकी भर्त्सना की है। लेकिन यह खोजनेका काम शायद सीतामढ़ीके मजिस्ट्रेट के लिए छोड़ दिया गया था कि इन शब्दोंमें सरकारकी भर्त्सना करना जुर्म है।

अब सवाल यह उठता है कि इस हालतमें लॉर्ड सिन्हा इस्तीफा देनेके[2] अलावा और क्या कर सकते हैं। वे मजिस्ट्रेटोंके आदेशोंमें भी किसी तरहकी दस्तन्दाजी नहीं कर सकते। अगर करेंगे तो मजिस्ट्रेट असहयोग करने लगेंगे, काम बन्द कर देंगे, और इस तरह वे उनकी स्थिति असह्य बना देंगे, शासनका चलना मुश्किल कर देंगे। इसलिए इस आशासे कि शायद कभी न कभी किसी तरह गवर्नरके रूपमें वे देशकी सेवा कर सकेंगे, वे अपने मनको समझा लेते हैं कि किसी अंग्रेज गवर्नरके लिए इस जगहको खाली करनेसे तो इसपर बने रहना ही बेहतर है। अभी उनका शासन शुरू ही हुआ है। जनता किसी दिन देखेगी कि उनके शासन-कालमें नौकरशाहीने अपनी शक्तिकी बुनियाद इतनी मजबूत कर ली है, जितनी वह किसी अंग्रेज गवर्नरके समयमें नहीं कर सकती थी। और इसके दो कारण हैं: एक ओर तो नौकरशाही उसपर होनेवाले हर नियन्त्रणके प्रति उससे अधिक असन्तोष दिखायेगी जितना कि वह किसी अंग्रेज गवर्नरके शासनमें दिखाती, और दूसरी ओर जनता अन्यायोंको कुछ अधिक प्रसन्नतासे स्वीकार कर लेगी, क्योंकि वह स्वभावतः उनके शासनको सफल बनाना चाहेगी। और इस तरह गवर्नरके पदके लिए जिस सबसे योग्य और दृढ़ भारतीयको चुना जा सकता था, वह भी गवर्नरके रूपमें असफल सिद्ध होगा — इसलिए नहीं कि उसमें उद्यम या योग्यता की कमी है, बल्कि इसलिए कि जिस प्रणालीके अनुसार परमश्रेष्ठसे शासन चलानेकी अपेक्षा की जाती है, वह प्रणाली ही मूलतः दूषित है। इसलिए, जिस व्यक्तिके लिए मेरे मनमें इतना अधिक सम्मान है, उसके शासनकी आलोचना करते हुए मुझे कोई खुशी नहीं हो रही है। लेकिन बात यह है कि गोखले-जैसे किसी महान् पुरुषको भी यह तन्त्र इसकी मौजूदा भावनाके अनुसार चलानेको कहा जाता तो वह भी विफल हो जाता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २–३–१९२१

१. कलकत्तामें आयोजित सितम्बर १९२० की विशेष कांग्रेस द्वारा स्वीकृत असहयोगका प्रस्ताव।

२. लॉर्ड सिन्हाने २१ नवम्बर, १९२१ को इस्तीफा दे दिया।

२०१. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

लाहौर जाते हुए
२ मार्च, [१९२१][1]

मेरे प्यारे चार्ली,

मैं सोमवारको सारे दिन तुम्हारे बारेमें सोचता रहा, लेकिन पत्र न लिख सका। मैं चाहता था कि तुम्हें पत्र लिखूँ। मैं तुमको बताना चाहता था कि तिब्बिया कालेजके अपने भाषणमें मैंने एक वाक्यमें जो-कुछ कहा उसकी सचाईको मैंने कितनी गहराईसे अनुभव किया है। मैं महसूस करता हूँ कि अछूतोंके प्रति अपराध किया जा रहा है, मैं यह भी महसूस करता हूँ कि लाखों मूक प्राणियोंका शोषण हो रहा है; किन्तु निम्नतर पशु जगतके प्रति मैं अपने कर्तव्यको और भी अधिक स्पष्ट रूपसे महसूस करता हूँ। जब बुद्ध उस मेमनेको अपनी पीठपर लादकर ले गये थे और उन्होंने ब्राह्मणोंकी भर्त्सना की थी, तब उन्होंने प्रेमकी पराकाष्ठा कर दी थी। हिन्दू-धर्ममें गायकी पूजा उसी प्रेमका प्रतीक है।

और इस प्रेमकी क्या माँग है? निश्चित रूपसे वह उन पशु-चिकित्सालयोंकी माँग नहीं करता जो मनुष्यके दुर्व्यवहारके शिकार मवेशियोंके लिए बनाये गये हैं — यद्यपि हमें वे चिकित्सालय नष्ट नहीं करने हैं — बल्कि उसकी माँग तो यह है कि पशुओंके प्रति दयाका भाव बढ़ाया जाये। हमारा प्रेम इसमें है कि हम अपने साथी इन मूक प्राणियोंकी गरदनपर सवार न रहें; जो पशु जितना ही असहाय हो, उसके प्रति उतनी ही अधिक दया दिखाई जानी चाहिए।

इस प्रकार सोचनेपर, मैं चरखेमें तथा अपने इस वक्तव्यमें नया अर्थ देखता हूँ कि चरखेके विनाशके कारण भारत गुलाम बना और उसकी अवनति हुई। चरखेके बिना गरीबोंके बीच काम करनेसे न तो कोई हित सधेगा और न धर्म ही। हमें गरीबोंकी सहायता करनी चाहिए जिससे वे अपने लिए भोजन-वस्त्र जुटानेमें स्वयं समर्थ हों। जबतक हम चरखेको पुनः चालू नहीं करते, तबतक हम कभी भी सफल नहीं हो सकते। कोई भी अन्य उद्योग भारतमें विशाल पैमानेपर फैली गरीबीकी समस्या हल नहीं कर सकता।

मैंने अपने विचार तुम्हारे सामने यों ही बेतरतीब रख दिये हैं, किन्तु तुम्हें सम्भवतः उनका अर्थ समझनेमें कोई कठिनाई न होगी। तुम्हारे कुछ प्रश्नोंमें जिन कठिनाइयोंका जिक्र है उनका हल देनेकी कोशिश कर रहा हूँ। मुझे लगता है कि तुम चरखेके सन्देशको तथा असहयोगकी भावना किस प्रकार काम करती है इसे भली-भाँति नहीं समझ पाये हो। भारतीय महिलाओंने सम्भवतः सहज वृत्तिसे किसी-न-किसी प्रकार इसे समझ लिया है।

१. इस पत्रमें तिब्बिया कालेजमें दिये गये भाषण (**यंग इंडिया,** २३-२-१९२१) के उल्लेखसे लगता है कि यह इसी वर्ष लिखा गया था ।

मैं गुरुदेवकी फटकारको समझता हूँ, किन्तु मैं अपनेको अपराधी अनुभव नहीं करता। मेरा अपना तो यही खयाल है कि मैंने उस समय अपनी अल्पज्ञताके आधारपर सरकारके बारेमें कोई निश्चित राय न बनाकर ठीक ही किया था। अमृतसरकी कांग्रेस-के समयतक अपने समूचे हृदयसे आन्दोलनमें भाग लेनेपर मेरे अन्दर दृढ़ विश्वास और एक शक्ति पैदा हो गई है, जो अन्य किसी भी तरह पैदा नहीं हो सकती थी। और इसके पीछे लाभ उठानेकी कोई भावना भी नहीं थी। मैंने जो उचित समझा, उसीपर लाभ-हानिका कोई विचार किये बिना आचरण किया।

लाहौरमें शायद मुझे एक सप्ताह रहना पड़े।[1] वहाँ पहुँचनेपर इसका पता चलेगा।

महादेव साबरमतीमें है। वहाँ वह वकीलको 'यंग इंडिया' के उप-सम्पादकके काममें जमा रहे हैं। लालचन्द ने 'यंग इंडिया' छोड़ दिया है।[2] मैं कोई अधिक समर्थ व्यक्ति चाहता था। लालचन्द एक अच्छा और ईमानदार कार्यकर्त्ता है, पर वह अपनी कमियोंको नहीं समझता। उक्त कार्य करनेके बाद महादेव वापस आ जायेगा।

आशा है कि तुम्हारा स्वास्थ्य अब ज्यादा अच्छा होगा।

कृपया बड़ोदादाको मेरा प्रणाम कहना। मुझे यह सोचकर बड़ी शान्ति मिलती है कि इस संघर्षमें वे पूर्ण रूपसे मेरे साथ हैं।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९६०) की फोटो-नकलसे।

२०२. भाषण : ननकाना साहबमें[3]

३ मार्च, १९२१

मैं इस तीर्थयात्रापर आपके प्रति सहानुभूति दिखाने ही आया हूँ। मुझे घुरकाके एक सिख मित्रने तार[4] द्वारा इस दुर्घटनाका[5] समाचार दिया था। मैंने वह तार लाला लाजपतराय और दूसरे मित्रोंको दिखाया। समाचार इतना स्तम्भित कर देने-वाला था कि हमें उसकी पुष्टि करा लेना आवश्यक लगा। हम फौरन लाहौर वापस

१. गांधीजी मार्चमें लाहौर पहुँचे और मार्चमें ही वहाँसे चले गये।

२. देखिए "पत्र : लालचन्दको", २९-२-१९२१।

३. ननकाना साहबके गुरुद्वारेमें दिये गये हिन्दी भाषणका मूल पाठ उपलब्ध नहीं है। यह अनुवाद **यंग इंडिया**में प्रकाशित संक्षिप्त अंग्रेजी विवरणसे किया गया है।

४. २० फरवरीका तार जो गांधीजीको रावलपिंडीमें मिला था।

५. २० फरवरी, १९२१को कोई डेढ़ सौ अकाली सिख लाहौरसे ४० मीलकी दूरीपर स्थित ननकाना साहबके गुरुद्वारेमें प्रवेश करते ही मार डाले गये। गुरुद्वारा महंत नारणदासके कब्जेमें था जिनपर अपने अधिकारोंके दुरुपयोगका आरोप लगाया गया था।

आये और वहाँ पता चला कि वह भयंकर समाचार सच है। मैंने अपना मुलतान जानेका कार्यक्रम रद कर दिया और अधिक समाचार इकट्ठे करनेके लिए रुका रहा। दूसरे दिन मैं लायलपुरके लिए रवाना हुआ और वहाँसे श्रीमें आयोजित सिख दीवानमें[१] गया। मुझे पता चला कि दाह-संस्कार[२] उसी दिन होनेको है। जिस समय यह समाचार मिला उस वक्त वहाँ पहुँचना सम्भव नहीं था। और फिर मुझे अमृतसर और लखनऊमें बहुत जरूरी काम था। इसलिए मैं यह तीर्थयात्रा पहले नहीं कर सका। इस बीच इस बलिदानके बारेमें मैंने बहुत-कुछ सुना है।

शायद यह कहनेकी जरूरत नहीं है कि मुझे आपके ही समान दुख हुआ है। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि दूसरोंके कष्टोंसे मैं स्वयं दुखी होता हूँ। यदि मैं यह न मानता कि दुखोंका अन्त करनेके लिए आत्महत्या कोई निदान नहीं है, तो अपनी जिन्दगीका अन्त कबका कर चुका होता। इस तरह जब मैंने ननकाना साहबकी दुर्घटनाके बारेमें सुना तो मेरे मनमें घटनाग्रस्त व्यक्तियोंके पास एकदम पहुँचनेकी इच्छा हुई। अब भी जो रह गये हैं, उनके प्रति मैं सहानुभूतिका प्रदर्शन करनेके सिवा और क्या कर सकता हूँ?

पर मैं इतना बता दूं कि अभीतक मैं यह निर्णय नहीं कर पाया हूँ कि आखिरकार हुआ क्या? इस बातपर तो विश्वास ही नहीं होता कि अकाली दलके हाथों एक भी आदमी नहीं मरा। क्या यह सच है कि इन बहादुर आदमियोंने, जो कृपाणों और फरसोंसे सुसज्जित थे, आत्मरक्षाके लिए एक भी वार नहीं किया। यदि ऐसा ही हुआ हो तब तो यह ऐसी घटना है जो सारी दुनियाकी चेतनाको झझकोर सकती है।

मेरे सामने तीन सम्भावनाएँ हैं।

एक तो यह कि अकाली दल गुरुद्वारेपर कब्जा करने आया था। इसी काममें उसे अपनी जानसे हाथ धोना पड़ा। कोई भी व्यक्ति यह नहीं मानेगा कि कब्जा करनेके लिए आकर दलने कोई अपराध किया है। आप यह मानते हैं कि महन्तपर विश्वास नहीं किया जा सकता। आप लोग अपने धर्मका कट्टरतासे पालन करनेवाले हैं। इसलिए गुरुद्वारेको अपने हाथमें लेनेकी इच्छा स्वाभाविक है। लेकिन बल प्रयोगसे कब्जा करनेके प्रयत्नका समर्थन तो मैं किसी प्रकार भी नहीं कर सकता। मेरे मतानुसार किसी दुष्टके प्रति भी हिंसाका प्रयोग या प्रदर्शन वर्जित है। मैं जानता हूँ कि आपके और मेरे मतमें अन्तर है। मैं आशा करता हूँ कि यदि कोई मुझे या मेरे किसी सम्बन्धीको हानि पहुँचायेगा तो मैं उसे क्षमा कर सकूँगा। मैं ईश्वरसे सदैव यही प्रार्थना करता हूँ कि यदि कभी ऐसा अवसर आये तो वह मुझे ऐसे अपराधीको क्षमा करनेका बल दे। अगर यह प्रमाणित कर भी दिया जाये कि शहीद बल-प्रयोगसे कब्जा करने आये थे तो भी इतिहास उन्हें दोषी नहीं ठहरायेगा।

दूसरी सम्भावना यह है कि यह दल सिर्फ पूजा करनेके लिए आया और उसे अपनी रक्षाका अवसर दिये बिना मौतके घाट उतार दिया गया।

१. यह २५ फरवरी, १९२१ को हुआ था।

२. ननकाना साहबमें मारे गये व्यक्तियोंका।

तीसरी सम्भावना यह है कि महन्त उनका अन्त करनेके लिए पूर्णतया लैस है, इतना मालूम होनेपर भी यह दल पूजा करने आया और यद्यपि वह अपनी रक्षा कर सकता था फिर भी उसने अपने आपको बलि होने दिया।

कुछ भी हो यह घटना इतिहासमें सदाके लिए अंकित हो गई है।

मैं आशा करता हूँ कि आप बहादुरीका टीका सिर्फ सिखोंके माथे नहीं लगायेंगे वरन् इसे राष्ट्रकी बहादुरीका एक नमूना मानेंगे। ये शहीद सिर्फ अपने पंथकी रक्षाके लिए नहीं वरन् सभी धर्मोंको दूषित होनेसे बचानेके लिए बलि हुए हैं।

हम और आप भारतकी सन्तान हैं; हमें उसीके लिए जीना और मरना है। मैंने अपना जीवन खिलाफतके काममें समर्पित कर दिया है क्योंकि उसके माने हैं मेरे अपने पंथ और देशकी रक्षा। मैं अपने आपको सनातनी हिन्दू मानता हूँ और मैं अपने पड़ोसियोंके साथ भी शांतिपूर्वक रहना चाहता हूँ। यह काम मैं उनकी सेवा करके ही कर सकता हूँ। दूसरोंकी हत्या करके अपने देश या धर्मकी रक्षा करनेकी मुझे कोई इच्छा नहीं है। यदि ईश्वर मुझे इन दोनोंमें से किसीके लिए भी प्राण उत्सर्ग करनेके योग्य पायेगा तो मैं जानता हूँ कि वह मुझे दोषी नहीं मानेगा।

मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप ये मानें कि ये लोग भारत माताकी रक्षाके लिए शहीद हुए हैं और इस बातपर विश्वास करें कि खालसा केवल स्वतन्त्र भारतमें ही स्वतन्त्र रह सकता है। यह नहीं हो सकता कि आप भारतको गुलामीके बन्धनमें बाँधे और फिर भी अपने लिए स्वतन्त्रताकी कामना करें; यद्यपि विजयकी इस घड़ीमें इतने बड़े प्रलोभनसे अपनेको बचाना कठिन ही है। यह सरकार आपकी सहायताके बलपर भारतको गुलामीकी जंजीरोंमें बाँधनेमें सर्वथा समर्थ है। पर ऐसा कहकर वर्तमान गवर्नर या किसी अन्य अधिकारीपर मैं कोई आक्षेप नहीं कर रहा हूँ। यदि मुझे विश्वास होता कि इसमें उनका हाथ है तो मैं निःसंकोच ऐसा कह देता। पर इस समय तो मैं सिर्फ सरकारके स्वभावकी ही बात कर रहा हूँ। हमपर अपना अधिकार बनाये रखनेके लिए सरकारने हिन्दुओं और मुसलमानोंमें फूट डालनेमें तनिक संकोच नहीं किया। और वे आपके तथा बाकी देशके बीच भी फूट डालनेमें पूर्णतया समर्थ हैं। मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप यथाशक्ति इस प्रलोभनसे बचें और सारे देशके साथ मिलकर इस सरकारके पैशाचिक शासनका अन्त करें।

अभी एक मित्रने कहा है कि सिख कष्ट-सहनकी इस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं। मैं उनसे सहमत नहीं हूँ और आपको यह बता देना चाहता हूँ कि आपकी परीक्षा तो अब शुरू हुई है। इस नवोपार्जित शक्तिका आप क्या उपयोग करेंगे? इसी मित्रने मेरा ध्यान इस ओर भी आकर्षित किया है कि फरसा और कृपाण आपकी वेश-भूषाका अंग है। उन्हें वैसा ही रहने दें। हो सकता है कि कभी उनके उपयोगका अवसर आये, पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अभी वह समय नहीं आया है। सभी राष्ट्रीय संस्थाओंने वर्तमान स्थितिमें अहिंसाकी आवश्यकताको स्वीकार किया है। इस-लिए आप सावधान रहें कि आपकी कृपाणें म्यानसे बाहर न निकलें और फिर आपसमें संघर्ष न छिड़े। यदि हम इन शहीदोंके देशवासी होनेके योग्य हैं तो हम उनसे

विनम्रता और कष्ट-सहनका पाठ सीखें; और आप अपनी अद्वितीय वीरता देशकी सेवा और उसके उद्धारमें लगा दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–३–१९२१

२०३. सन्देश: ननकाना साहबकी दुःखद घटनापर सिखोंको

४ मार्च, १९२१

प्रिय मित्रो,

कल मैं ननकाना साहबकी तीर्थयात्रा करके आ गया हूँ। अब मैं अपने सिख मित्रोंसे दो शब्द कहना चाहूँगा। आप लोगोंके एक सबसे बड़े मन्दिरमें कत्लेआमके जो प्रमाण मैंने देखे तथा मुझे उसकी जो कहानियाँ सुनाई गई, उन्हें मैं कभी भूल नहीं सकता।

इस बातमें कोई सन्देह नहीं मालूम पड़ता कि उस मनहूस दिन, रविवार, २० फरवरीको अकाली दलके लगभग १५० व्यक्तियोंको छलपूर्वक कत्ल कर दिया गया, तथा उनकी लाशोंको काटकर फेंक दिया गया; और स्पष्ट ही इन मारे जानेवाले अकालियोंके हाथों हत्यारोंमें से किसीको कोई चोट नहीं पहुँची। यह असंदिग्ध है कि एक अकालीको तो मन्दिरके अहातेमें एक पेड़से बाँध कर शायद उसे जिन्दा ही जला दिया गया। इस बातमें तो और भी कम सन्देहकी गुँजाइश है कि बहुत-सी लाशोंको पैराफिनमें भिगोकर शायद इस तथ्यको छिपानेके खयालसे जला दिया गया कि सभी मरनेवाले एक ही पक्षके लोग थे। लगता है मन्दिरमें जानेवाले अकालियोंमें से एक भी उस निर्मम हत्याकाण्डकी कहानी कहनेके लिए बचकर बाहर नहीं आ सका।

मन्दिर एक किले-जैसा बना दिया गया है। गर्भगृहके चारों ओरके कमरोंकी बीचकी दीवारोंमें भी छेद बने हुए हैं, जिनसे गोलियाँ दागी या सकती हैं। कमरोंके बीचकी दीवारोंमें भी छेद हैं, जो कमरोंको एक दूसरेसे जोड़ते हैं। मुख्य द्वारके कपाटोंमें इस्पातकी भारी चादरें लगी हुई हैं जो स्पष्टतः हालमें बनी हुई हैं। 'ग्रन्थ साहब,' तकपर गोलियोंके निशान हैं। इस गर्भगृहकी दीवारों तथा स्तम्भोंका भी यही हाल है। लगता है, अकालीदलके लोगोंको छलपूर्वक अन्दर आने दिया गया, और तब फाटक बन्द कर दिये गये। वहाँ मैंने जो-कुछ देखा, जो-कुछ सुना, वह डायरवादकी ही पुनरावृत्ति था; लेकिन उसका रूप जलियाँवालाके डायरवादसे भी अधिक बर्बरतापूर्ण और पैशाचिक था, और कहीं अधिक योजनापूर्वक किया गया था। कहते हैं कि एक बार ननकानामें एक नागने निरीह और भोलेभाले श्री गुरु महाराजपर[१] छाया करनेके लिए सरल भावसे अपना फन फैला दिया था। इसी ननकानामें उस मनहूस रविवारको आदमी शैतान बन गया।

१. गुरु नानक।

भारत आज इस भयंकर काण्डपर आँसू बहा रहा है। मुझे यह देखकर लज्जा आती है कि आज भी ऐसे लोग हैं जो, भारतके बेटोंने उस पवित्र मन्दिरमें जैसा अपराध किया, वैसा अपराध कर सकते हैं। यह अभी नहीं मालूम कि अकालियोंका दल मन्दिरमें क्यों गया था, अथवा उन्होंने खूनियोंका प्रतिरोध किया या नहीं। उन सबके पास अपनी-अपनी कृपाण थी और अधिकांशके पास फरसे थे। इस हालतमें वहाँ क्या-कुछ हुआ होगा इसकी तीन सम्भावनाएँ हैं।

(१) अकालियोंका दल बलप्रयोग करके मन्दिरपर कब्जा करनेके लिए वहाँ गया लेकिन विपक्षी दलकी अधिक शक्तिसे पराभूत हुआ और बहादुरीके साथ लड़ता हुआ मारा गया।

(२) ये लोग वहाँ मात्र-पूजा करनेके लिए गये और गुरुद्वारेपर कब्जा करनेका उनका कोई इरादा नहीं था। वे अपना बचाव करनेमें असमर्थ रहे और छलपूर्वक मार दिये गये।

(३) ये लोग, जैसा कि दूसरी सम्भावनामें कहा गया है, पूजा करनेके लिए ही गये, और उनपर निर्दयतापूर्वक आक्रमण कर दिया गया; किन्तु यद्यपि वे अपना बचाव कर सकते थे, उन्होंने जवाबमें शस्त्र नहीं उठाया और स्वेच्छासे मृत्युका वरण किया, क्योंकि उन्होंने व्रत लिया था कि गुरुद्वारा आन्दोलनमें[1] वे हिंसाका प्रयोग नहीं करेंगे। जिन लोगोंने मुझे इस सम्बन्धमें जानकारी दी और जो केवल सुनी-सुनाई बात ही कह सकते हैं, उनका कहना है कि इन लोगोंने, जैसा कि तीसरी सम्भावनामें बताया गया है, उसी तरह गुरुद्वारेमें जाकर मृत्युका वरण किया। यदि बात ऐसी हो, तो इन शहीदोंने ऊँचीसे-ऊँची कोटिका साहस और आत्मत्याग दिखाया है। और इस साहस तथा आत्मत्यागपर समस्त सिख समाज, सारे भारत और सारी दुनियाको गर्व हो सकता है। यह परम सन्तोषकी बात है कि जिन सिखोंसे मैंने इन सम्भावनाओंकी चर्चा की है, वे सब इस अन्तिम सम्भावनामें ही विश्वास करते हैं।

अगर हम दूसरी सम्भावनाको मानें तब भी आत्मरक्षा करनेवालोंकी बहादुरी उतनी ही शानदार समझी जायेगी जितनी कि तीसरी सम्भावनामें अनुमानित बहादुरी।

अगर पहली सम्भावना ही सच हो तो उन्होंने बहादुरी तो बहुत दिखाई, लेकिन उनका कार्य, अर्थात् जोर-जबरदस्तीसे गुरुद्वारेपर कब्जा करनेका उनका प्रयत्न नैतिक दृष्टिसे अवश्य ही विवादका विषय है। साधारण दृष्टिकोणसे देखें तो अकाली लोग अनधिकार प्रवेश करनेकी कोशिश कर रहे थे, जिन्हें मार भगानेके लिए गुरुद्वारेपर काबिज़ लोगोंको पूरा बल प्रयोग करनेका कानूनी अधिकार था।

अकाली लोग शुद्धिवादी हैं। गुरुद्वारोंमें जो बुराइयाँ घुस गई हैं, उन्हें दूर करनेके लिए वे अधीर हो रहे हैं। उनका आग्रह है कि सब गुरुद्वारोंमें पूजाकी एक ही विधि हो। यह आन्दोलन कुछ वर्षोंसे चल रहा है। जबसे असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ है, सहयोगवादी और असहयोगवादी, दोनों प्रकारके सिख, जहाँतक गुरुद्वारा

१. यह आन्दोलन अकाली सिखोंने गुरुद्वारोंको महन्तोंके हाथोंसे लेनेके लिए शुरू किया था। इन महन्तोंको सरकारका संरक्षण प्राप्त था।

आन्दोलनका सम्बन्ध है, मिलकर काम कर रहे हैं। और अगर अन्तमें यही पाया जाये कि अकाली दल ननकाना साहबमें बलका प्रयोग करके एक ऐसे महन्तको पदच्युत करने गया था जिसने अपनी थातीका दुरुपयोग किया था, तब भी इतिहास इस बलिदान-को अत्यन्त प्रशंसनीय ढंगकी शहादत ही कहेगा। यदि हम उच्चतम मापदण्डसे तथा अहिंसात्मक असहयोगके मापदण्डसे विचार करें तो पहली सम्भावनाके सच निकलनेपर यही माना जायेगा कि कब्जा लेनेके लिए गुरुद्वारेमें प्रवेश करनेका कार्य हिंसासे दूषित था और इसलिए निन्दाके योग्य है। किन्तु सिर्फ इसी कारणसे कि अकालियोंकी कार्र-वाई दूषित थी, उनके हत्यारोंकी अमानुषिक बर्बरताको न तो उचित माना जा सकता है, और न क्षमा किया जा सकता है। कानूनी अदालतें उनके लिए खुली थीं। कोई भी आदमी, जो हिंसाका प्रयोग करता है, अदालतोंकी मदद लेनेके विरुद्ध असह-योगका तर्क पेश नहीं कर सकता।

किन्तु इस शहादतका ठीक मूल्य आँकनेका समय अभी नहीं आया है। अधिक उपयुक्त यह है कि अब तत्काल क्या करना है, इसपर विचार किया जाये। मैं इस शोकपूर्ण घटनापर भारतीय राष्ट्रीयताके दृष्टिकोणसे ही विचार कर सकता हूँ। इस शौर्यपूर्ण कृत्यका श्रेय केवल सिखोंको ही नहीं, समूचे राष्ट्रको मिलना चाहिए। अतः अपने सिख भाइयोंको मेरी यही सलाह हो सकती है कि वे अपना आचरण राष्ट्रकी आवश्यकताओंके अनुरूप बनायें। हत्यारोंके विरुद्ध न्याय माँगनेका शुद्धतम मार्ग यही है कि न्याय न माँगा जाये। हत्यारे — चाहे सिख हों, पठान हों अथवा हिन्दू हों — हमारे देशवासी हैं। उनको दण्ड देनेसे अब मृत व्यक्ति फिरसे जीवित नहीं हो सकते। जिनके हृदय इस वेदनासे दग्ध हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे हत्यारोंको क्षमा कर दें। इसलिए नहीं कि वे कमजोर हैं, कमजोर तो वे हैं ही नहीं; उनमें इन हत्यारोंको दण्डित करानेकी पूरी क्षमता है। अतः वे उन्हें क्षमा कर दें; इसलिए कि उनकी शक्ति अपरि-मित है। शक्तिवान् ही क्षमा कर सकता है। प्रतिशोध लेनेसे इनकार करके, आप अपने प्यारोंकी शहादतकी शानमें चार चाँद लगा देंगे।

इसके अतिरिक्त खूनियोंको सजा दिलानेके लिए भी असहयोगियोंको ब्रिटिश कानूनी अदालतोंका आश्रय नहीं लेना चाहिए। यदि हम एक वर्षके भीतर स्वतन्त्र होना चाहते हैं, तो हममें साहस होना चाहिए। जबतक हम अपनी इच्छाके अनुसार एक ऐसी सरकार स्थापित नहीं कर लेते जो न्याय कर सकती है तबतक हम हत्या-रोंके आचरणको भी बरदाश्त करें और उन्हें अदण्डित रहने दें।

सिख लोग सावधान हो जायें। सरकार उन्हें यह समझा कर कि वही अपराधीको दण्ड दे सकती है, उन्हें अवश्य ही अपने साथ कर लेनेका प्रयत्न करेगी। नागरिक शासनके वैध न्यायालय ऐसे जाल होते हैं जिनमें भोले-भाले लोग अनजाने ही फँस जाते हैं।

किन्तु हम जिस शासन-प्रणालीके अधीन हैं, उसकी दुष्टताको यदि हम अभी तक न पहचान पाये हों, और इसीलिए यदि इस कठिन समयमें वर्तमान न्यायालयोंसे न बचें, तो भी हमें सरकारी जाँच-समितिके साथ अपनी भी जाँच-समिति बनानेकी अनिवार्यपूर्ण गलती तो कदापि नहीं करनी चाहिए। या तो हम अपनी अपूर्णता अथवा

कमजोरीको साफ-साफ स्वीकार कर लें और न्यायालयोंका लाभ उठायें या हत्यारोंको हमारे खिलाफ खुलकर खेलनेकी छूट दे दिये जानेकी सम्भावनाका हिम्मतके साथ सामना करें। अपनी कमजोरीको छिपाना खतरनाक है, लेकिन साहसका ढोंग रचना उससे भी ज्यादा खतरनाक है।

यह सभी जानते थे कि महन्त बहुत समयसे, लगभग खुले तौरपर, भिड़न्तकी तैयारी कर रहा था। उसके पास हथियार थे। उसने गोली-बारूदका संग्रह किया था। उसने अपने आसपास गुंडे जुटा रखे थे। सरकारी अधिकारी इन तैयारियोंके बारेमें अवश्य ही जानते रहे होंगे। अतः आप सहज ही सन्देह करते हैं कि उच्च सरकारी अधिकारी इस भयंकर दुष्कृत्यकी कार्यान्वितिकी योजनाको बड़ी ही शान्ति और धीरजके साथ देखते रहे, भले ही उन्होंने इसे प्रोत्साहन न दिया हो। आप सही तथ्य खोज निकालनेको उत्सुक हैं। क्षण-भर विचार करके देखिए, फिर आप स्वयं ही स्वीकार करेंगे कि अगर यह सिद्ध भी हो जाये कि कुछ सरकारी अधिकारी इस षड्यन्त्रमें शामिल थे, तो भी यह बात आपको अथवा भारतको, आज जहाँ हम हैं, क्या वहाँसे एक डग भी आगे ले जायेगी? यह सरकार जिस प्रणालीके अन्तर्गत चलाई जा रही है और उसमें आमूल परिवर्तन नहीं किया जाता तो आप, और लगभग समस्त भारत इस पूरी सरकारको नेस्तनाबूद कर देना चाहते हैं। देशके सामने जो मुख्य प्रश्न अथवा एकमात्र प्रश्न है, उसकी ओरसे राष्ट्रके किसी भी हिस्सेका ध्यान दूसरी ओर बँटाना अनुचित होगा।

यह तो रही उस दुःखद घटनाकी बात।

सारे गुरुद्वारा-आन्दोलनमें सुधार करनेकी आवश्यकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि एक बड़े जत्थेका, गुरुद्वारेपर कब्जा करनेके खयालसे, गुरुद्वारेकी ओर जाना शक्तिका प्रदर्शन है, भले ही उसके मनमें हिंसाका कोई विचार या उद्देश्य न हो। और किसी भी सुव्यवस्थित समाजमें किसी भी व्यक्तिको यह छूट नहीं है कि वह शक्तिका प्रदर्शन करके अथवा किसी अन्य अनुचित दबावके बलपर किसी ऐसे दुष्ट व्यक्तिको भी, जिसने स्पष्टतः मन्दिरों-जैसी सामाजिक सम्पत्तिपर कब्जा कर रखा हो, बेदखल कर दे। अगर वह ऐसा कर सकता है तो सिर्फ कानूनी कार्रवाई करके ही कर सकता है। यदि इस तरहसे व्यक्तिगत तौरपर शक्तिका प्रदर्शन या अन्य अनुचित काम करनेकी छूट दे दी जाये तो समस्त सुशासनका अन्त हो जायेगा, और बेचारे अशक्त लोग सुरक्षाके अधिकारसे वंचित रह जायेंगे। अतः आप लोगोंकी ओरसे ऐसा प्रयत्न किया जाना उस खालसा धर्मके ही विपरीत होगा जिसका आधार अशक्तोंकी रक्षा करना है। अपने मन्दिरोंमें सच्चे सुधारके लिए, तथा उनमें से सारी बुराइयोंको दूर करनेके लिए मुझसे अधिक उत्सुक कोई दूसरा नहीं हो सकता। किन्तु हमें ऐसी कार्रवाइयोंमें साथ नहीं देना चाहिए, जो उनसे भी बदतर साबित हों जिन बातोंमें हम सुधार करना चाहते हैं। आप लोगोंके सामने दो ही मार्ग हैं: या तो आप सभी गुरुद्वारों, अथवा जिन मन्दिरोंके गुरुद्वारा होनेका दावा किया जाता है उन मन्दिरोंपर कब्जेके सवालके निपटारेके लिए पंच-निर्णय समितियोंकी स्थापनाकी बात

मान लें, या फिर इस प्रश्नको स्वराज्य प्राप्त हो जानतक स्थगित रखा जाये। यदि आप चाहते हैं कि ननकानाकी शहादत सफल हो, तो यह निहायत जरूरी है कि आप आदर्श आत्मसंयमसे काम लें तथा अकाली दल द्वारा गुरुद्वारोंपर कब्जा लेनेके आन्दोलनको स्थगित कर दें।

आपका विश्वस्त मित्र,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १६-३-१९२१

२०४. पत्र : वर्माको

मुलतान,
५ मार्च, [१९२१][१]

प्रिय श्री वर्मा,

आपका पत्र मेरी यात्रामें मेरे पीछे-पीछे चक्कर काटता हुआ यहाँ मिला।

युवकोंमें जो उच्छृंखलताकी प्रवृत्ति आ रही है, उसे रोकनेके लिए मैं जितना कुछ कर सकता हूँ, कर रहा हूँ। आशा है कि उनके उत्साहका यह अशोभनीय अतिरेक ठंडा पड़ जायेगा और स्थिति सामान्य तथा सही रूप धारण कर लेगी। क्या हम सभी आज संक्रमण-कालमें ही नहीं हैं? शायद हम उनके कार्योंके गुणदोषोंको समझने या उनका सही-सही मूल्यांकन करनेमें असमर्थ हैं। फिर भी काशीमें जैसे अशोभनीय दृश्य[२] देखनमें आये वैसे दृश्य फिर न उपस्थित हों, इसके लिए मैं थोड़ा-बहुत जो-कुछ कर सकता हूँ, मुझे अवश्य करना चाहिए। मैं इस मामलेमें पंडित जवाहरलाल नेहरूसे ध्यान देनेके लिए कह रहा हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० ७९७८) की फोटो-नकलसे।

१. सन् १९२१ में कई बार गांधीजीने अपने लेखों और पत्रोंमें छात्रोंके उपद्रवोंका उल्लेख किया है। वे ५ मार्च, १९२१ को मुलतानमें थे।

२. यहाँ गांधीजीने कदाचित् कुछ समय पहलेकी एक घटनाका उल्लेख किया है जिसमें बनारसमें छात्रोंने पण्डित मदनमोहन मालवीयके प्रति अशिष्ट व्यवहार किया था।

२०५. भाषण : मुलतानमें

५ मार्च, १९२१

महात्माजीने अपना भाषण शुरू करनेसे पहले इस बातके लिए खेद प्रकट किया कि दो बार मुलतान आनेका वादा करके भी वे नहीं आ सके। उन्होंने कहा, पहली बार यह सुनकर कि सरकार मुझे और मौलाना शौकत अलीको नजरबन्द करना चाहती है, हमें अहमदाबाद लौट जाना पड़ा। दूसरी बार ननकाना साहबकी आकस्मिक और दुःखद घटनाके कारण मैंने लायलपुरसे मुलतान आनेका अपना कार्यक्रम रद कर दिया। इस बार भी प्लेगके कारण मुझे यहाँ आनेके लिए बहुत मना किया गया फिर भी आप लोगोंके स्नेहवश मैं चला आया हूँ। प्लेगसे पीड़ित व्यक्तियोंकी सेवा-समितिने जो सहायता की है वह प्रशंसनीय है। फिर भी यह बीमारी इस नगरमें बहुत ज्यादा गन्दगीके कारण फैली है। इसके लिए मैं यहाँकी जनता और नगरपालिकाको बहुत हदतक उत्तरदायी मानता हूँ। शरीर, मन और आत्माको शुद्ध रखना सबसे जरूरी है। इसके बिना स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव है। इस महामारीकी चर्चाके बाद महात्मा गांधीने राष्ट्रकी पराधीनताकी महामारीकी चर्चा की।

उन्होंने कहा, मुलतानी बहुत आग्रहपूर्वक आमन्त्रित कर रहे थे। मैंने सोचा कि वह स्वराज्यकी दिशामें की गई अपनी प्रगति मुझे दिखानेको उत्सुक हैं। मुझे खेद है कि आप लोगोंने जितना कुछ किया है उसपर मैं आपको बधाई नहीं दे सकता। मुझे लग रहा था कि भाई मौलाना शौकत अली मुलतान न आकर घाटेमें रहेंगे; मुलतानियोंने राष्ट्रीय आन्दोलनके लिए जो-कुछ किया है उसे वे देख नहीं पायेंगे। पर अब मुलतान आनेके बाद मुझे इस बातका कोई अफसोस नहीं है। मैं देख रहा हूँ कि आप लोगोंने बहुत भारी सभाका आयोजन किया है। इससे भी बड़ी सभाका आयोजन किया जा सकता है। पर मुझे इस बातका दुःख है कि आपने राष्ट्रकी 'महामारी'को दूर करनेके लिए प्रायः कुछ भी नहीं किया है। किसी भी वकीलने अपनी वकालत बन्द नहीं की और न किसी स्कूलने सरकारसे अपना सम्बन्ध तोड़ा है; किसी राष्ट्रीय शालाकी स्थापना भी नहीं हुई। आप लोगोंने कोई प्रशंसनीय कार्य करके नहीं दिखाया। यह तो हमारी राष्ट्रीय दुर्बलताका सूचक है और इससे मुझे अत्यधिक दुःख हुआ है। वाइसरायका असहयोग आन्दोलनको असफल कहना कुछ हदतक सही है। हालाँकि उन्हें यह भी मालूम होना चाहिए कि हमने सफलता भी बहुत पाई है। भले ही एक भी स्कूल सरकारसे अपना सम्बन्ध न तोड़े, एक भी वकील वकालत न छोड़े और कोई भी धनी व्यक्ति किसी भी तरहका कोई त्याग न करे तो भी स्वराज्य प्राप्त करना सम्भव है।

भाई मूलचन्दजीको[1] मैं बधाई देता हूँ। फिर भी मुझे इस बातका खेद है कि उन्होंने सरकार द्वारा दिया गया पदक अभीतक लौटाया नहीं है। यदि उन्हें यह भय है कि पदक लौटा देनेपर सरकार उनके लोकोपकारी कार्यमें बाधा डालेगी और फलस्वरूप लोग मरेंगे तो हमें इसका दुःख भी नहीं मानना चाहिए। इसी प्रकार यद्यपि मैं यह नहीं मानता कि स्वराज्य प्राप्ति सिर्फ मूलचन्दके पदक लौटानेपर या किसी वकीलके वकालत छोड़नेपर निर्भर है; फिर भी यहाँ मंचपर बैठे हुए वकीलोंसे मैं यही अनुरोध करता हूँ कि वे वकालत छोड़ दें। देशके दूसरे भागोंमें कई वकीलोंने उदारतापूर्वक मेरे इस अनुरोधको मान लिया है। श्री दास, पंडित मोतीलाल और लाला लाजपतरायके श्रेष्ठ बलिदानोंको कौन नहीं जानता। देशके दूसरे भागोंमें विद्यार्थियोंने भी सरकार द्वारा सहायता प्राप्त स्कूलों और कालेजोंको छोड़ दिया है और अब सार्वजनिक कार्योंमें पदवीधारियोंको कोई पूछता ही नहीं है। लेकिन इतना ही काफी नहीं है। स्वराज्य-प्राप्तिके लिए कुछ और शर्तें भी हैं।

तब उन्होंने वे शर्तें बताईं और उनका स्पष्टीकरण भी किया। उन्होंने कहा, शर्तें हैं: सभी वर्गोंके भारतीयोंमें एकता और उनके द्वारा अहिंसाका पालन। यदि सभी अपने-अपने धर्मका सच्चा पालन करें तो उससे विभिन्न धर्मके अनुयायियोंमें प्रेम बढ़ेगा। मेरी और अली भाइयोंकी बात ले लीजिए; विभिन्न धर्मोंके अनुयायी होनेपर भी हममें परस्पर भाई-भाई-सा स्नेह है। हिन्दू शास्त्रोंकी सर्वोत्तम शिक्षा यही है कि सबपर प्रेमभाव रखें। तीसरी शर्त स्वदेशीका पालन है। चरखा ही हमारे लिए ढाल, बन्दूक और हवाई जहाज भी है। जो लोग पहले इस बातकी हँसी उड़ाते थे उन्हें उसकी सचाईका भान हो रहा है। उदाहरणके लिए उन्होंने श्री ओ'डायरका नाम लिया। जबसे चरखेका प्रयोग कम होने लगा, दूसरे राष्ट्रोंके बीच भारतकी प्रतिष्ठा कम होने लगी है। ब्रिटिश राज्यके आरम्भिक कालमें भी जबतक घरोंमें चरखा चलता था किसीको पेटके बल रेंगना नहीं पड़ा, न जमीनपर नाक रगड़नी पड़ी, न ही यूनियन जैकको सलामी देनी पड़ी। जैसे-जैसे चरखेका उपयोग कम होता गया, वैसे-वैसे लंकाशायरका महत्व बढ़ता गया और लोग गुलामीकी जंजीरोंमें जकड़ते चले गये। मैं उपस्थित जनतासे प्रार्थना करता हूँ कि आप चरखेको अपनायें और अपने-अपने घरोंमें सूत कातें तथा ऐशो-आरामकी सभी चीजोंका त्याग करें। चौथी शर्त है मन और बुद्धिको पूरी तरह शुद्ध रखना। यदि आप इस्लाम, हिन्दू धर्म तथा सिख धर्मकी रक्षा करना चाहते हैं तो आपको सत्य और धर्मका पालन करना होगा और मद्यपान, फिजूलखर्ची और झूठ आदि भ्रष्ट करनेवाली आदतोंका त्याग करना है। महात्माजीने कहा, स्वराज्य प्राप्तिकी अन्तिम शर्त है राष्ट्रीय कोषोंके लिए खुले दिलसे अर्थ-दान। मैं देख रहा हूँ कि यहाँ बहुतसे धनी लोग और सिख जमींदार उपस्थित हैं। शिकारपुरके व्यापा-

१. सेवा-समिति प्लेग कैम्पके प्रबन्धक। सभाके अन्तमें उन्होंने अपना कैसरे-हिन्द पदक लौटा देनेका वचन दिया था।

रियोंको भी मैं उनकी पगड़ीके कारण पहचान पा रहा हूँ। लाला लाजपतरायका अनुमान है कि स्वराज्यके लिए पचास हजारसे लेकर एक लाखतक चन्दा प्राप्त होगा और लाला दुनीचन्दका[1] अनुमान था कि लगभग डेढ़ लाख रुपया प्राप्त होगा। मुझे नहीं लगता कि एक सालमें दस लाख रुपये इकट्ठा करना कोई बड़ी बात है। आप लोग जितना हो सके उतना चन्दा दीजिए ताकि मैं लाला लाजपतरायको ज्यादा आशापूर्ण समाचार भेज सकूँ। आप चन्देके कार्यके लिए पूरी व्यवस्था करें और ठीक-ठीक हिसाब रखें।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, ८-३-१९२१

२०६. तार : हंसराजको[2]

७ मार्च, [१९२१][3]

मानपत्र प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करूँगा पर बड़े सबेरे, ताकि हरियाना, होशियारपुर जाकर लुधियाना वापस आनेमें बाधा न पड़े।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, ८-३-१९२१

२०७. भाषण : जालन्धरमें[4]

८ मार्च, १९२१

महात्माजीने मानपत्रका उत्तर देते हुए नगरपालिकाको धन्यवाद दिया कि उसने एक राष्ट्रीय सेवकको मानपत्र देनेका साहस दिखाया। उन्होंने मौलाना शौकत अलीकी अनुपस्थितिपर खेद प्रकट किया और जिस महिलाने मानपत्र छापनेके लिए खद्दर दिया था उसे धन्यवाद दिया। उन्होंने मानपत्र मिलनेपर प्रसन्नता प्रकट की और कहा: शान्तिपूर्ण ढंगसे स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए हमें खद्दर इस्तेमाल करना चाहिए। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं है। धनी और निर्धन सबको खद्दर इस्तेमाल करना चाहिए। आज गाँवोंमें रहनेवाले करोड़ों भारतीयोंको इतना कपड़ा नहीं मिलता कि वे अपने शरीरतक ढक सकें। आपको पगड़ियाँ और बारीक मलमलके कपड़े मिल

१. लाहौरके एक लोकप्रिय म्युनिसिपल कमिश्नर।

२. यह तार जालन्धरके सार्वजनिक कार्यकर्ता रायजादा हंसराजके तारके उत्तरमें था।

३. तारमें उल्लिखित मानपत्र जालन्धर नगरपालिका द्वारा ८ मार्च, १९२१ को दिया गया था।

४. यह भाषण स्थानीय नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें दिया गया था।

जाते हैं, इससे आपको धोखेमें नहीं रहना चाहिए। उन्होंने जालन्धरके लोगों द्वारा खद्दरकी थैलीमें ६२९ रुपये भेंट किये जाने और सरदार केसरसिंह द्वारा १०० रुपये दिये जानेपर हर्ष व्यक्त किया। महात्माजीने इस बातपर प्रसन्नता प्रकट की कि मान-पत्र उर्दूमें था। उन्होंने भारतीयों द्वारा अपने निजी जीवनमें भी अंग्रेजीका व्यवहार किये जानेपर खेद प्रकट किया और कहा कि मैं अंग्रेजीका शत्रु नहीं हूँ, फिर भी हम जबतक राष्ट्रभाषाको नहीं अपनायेंगे तबतक हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता। उन्होंने और धनकी अपील करते हुए कहा कि जो रुपया भेंट किया गया है वह पर्याप्त नहीं। इससे लाला लाजपतरायको सन्तोष नहीं होगा। उन्होंने प्रार्थना की कि अधिक रुपया भेजा जाये जिससे स्कूलों और कालेजोंका राष्ट्रीयकरण किया जा सके। उन्होंने [स्त्रियोंके] जेवर पहननेका विरोध किया और वकीलोंसे अनुरोध किया कि वे वकालत बन्द कर दें और एक वर्षतक देशकी सेवा करें। उन्होंने समस्त स्त्री-पुरुषोंसे खद्दर इस्तेमाल करनेका अनुरोध किया।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, ९-३-१९२१

२०८. भाषण: होशियारपुरमें

८ मार्च, १९२१

महात्माजीने अपने भाषणमें कहा: मुझे खेद है कि मौलाना शौकत अली, जो मेरे भाई हैं और मेरे कार्यमें भाग ले रहे हैं, नहीं आ सके। मैं पक्का सनातनी हूँ और शौकत अली पक्के मुसलमान, लेकिन फिर भी हम भाई-भाईकी तरह हैं। इससे प्रकट होता है कि हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एकता सम्भव है। होशियारपुरमें हाथसे कपड़ा बनानेके कारखाने हैं, इसके लिए मैं होशियारपुरके लोगोंको बधाई देता हूँ। लेकिन मुझे खेद है कि फिर भी लोग विदेशी कपड़े पहनते हैं। पुरुष और स्त्रियाँ अपने लिए सूत कातें और कपड़ा बुनें, इसमें कोई लज्जाकी बात नहीं। किसीको मार डालनेमें कोई बहादुरी नहीं है। ननकाना साहब काण्डमें जिनका हाथ था उनकी निन्दा की गई है, जब कि जो लोग शहीद हुए हैं, जिन्होंने सत्य और राष्ट्रकी खातिर अपने प्राण न्यौछावर करनेका साहस दिखाया है, उनके प्रति सम्मान प्रकट किया गया है। सम्मान उनके प्रति नहीं दिखाया गया है, जिन्होंने वध किया था। सब धर्मोंके लोगोंने यह तय किया है कि खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका निराकरण करवानेके लिए ८ महीनेमें स्वराज्य ले लेना चाहिए। स्वराज्य केवल अहिंसात्मक असहयोगही से लिया जा सकता है। ओ'डायर और डायरकी पेन्शनोंको बन्द करवाना हमारा कर्त्तव्य है। यह कार्य केवल स्वराज्य लेकर ही किया जा सकता है। हमें स्वराज्य

लेनेके लिए संगठित होना चाहिए और अपने धर्मका पालन करना चाहिए। हमें सरकारसे असहयोग करना चाहिए और स्वदेशी वस्तुओंको अपनाना चाहिए। वकीलोंको अपनी वकालत छोड़ देनी चाहिए और हमें स्कूलोंका राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिए। महात्माजीने लोगोंसे धन देनेका अनुरोध किया।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, १०-३-१९२१

२०९. भाषण : हरियानामें[1]

८ मार्च, १९२१

महात्माजीने इन संस्थाओंका[2] उद्घाटन करते हुए कहा : मैं इस सफलतापर हरियानाके लोगोंको बधाई देता हूँ लेकिन मेरी प्रार्थना है कि वे स्वराज्यके लिए और ज्यादा काम करें। खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंके निराकरणका केवल यही उपाय है। उन्होंने कहा : मैं अब बैरिस्टर नहीं रहा, बुनकर और किसान बन गया हूँ। सूत कातने और कपड़ा बुननेमें कोई शर्मकी बात नहीं है। उन्होंने वचन और कर्ममें अहिंसाका पालन करनेपर खास जोर दिया और वर्तमान शासन-प्रणालीकी निन्दा की। उन्होंने कहा : स्वराज्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करना प्रत्येक भारतीयका कर्त्तव्य है। यह स्वराज्य अहिंसात्मक असहयोगसे ८ महीनेमें प्राप्त किया जा सकता है। यदि हम हिंसा करेंगे तो असफल होंगे। सिख चाहते हैं कि ननकाना साहबमें जिन लोगोंने हत्याएँ की हैं, उनको फाँसी दी जाये। वे सरकारकी सहायता लेना चाहते हैं। मैं चाहता हूँ कि यदि सरकार हत्यारोंको छोड़ना चाहे तो वे सरकारको छोड़ देने दें, किन्तु उससे सहयोग न करें। पंचायतोंको मेरा सन्देश यह है कि वे उन लोगोंका सामाजिक बहिष्कार न करें जो उनसे सहमत नहीं हैं। उन्होंने धार्मिक सहिष्णुताके आधारपर हिन्दुओं और मुसलमानोंमें एकता करवानेपर जोर दिया। उन्होंने महिलाओंसे विशेष रूपसे अनुरोध किया कि वे खद्दर पहनें, सूत कातें और बुनें एवं राष्ट्रीय आन्दोलनकी सफलताके लिए प्रार्थना करें। उन्होंने उनसे कहा कि जब देशमें करोड़ों लोग नंगे और भूखे हैं, उस समय उन्हें जेवर पहननेका कोई अधिकार नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

ट्रिब्यून, १०-३-१९२१

१. सभा पं० रामभजदत्त चौधरीके बजाय, जो सरकारी प्रतिबन्धके कारण नहीं आ सके थे, सैयद हबीबकी अध्यक्षतामें हुई थी।

२. कई पंचायतों और राष्ट्रीय स्कूलोंका, जिनके उद्घाटनकी प्रार्थना गांधीजीसे की गई थी।

२१०. भाषण: अम्बालामें

८ मार्च, १९२१

श्री गांधीने अपने दौरेके अन्तिम मुकाम अम्बालामें भाषण देते हुए कहा: मैं सबसे आखिरमें अम्बाला आया हूँ। मुझे आशा है कि मैं जल्दी ही फिर लौटूंगा और दूसरे-दूसरे स्थानोंपर भी जा सकूँगा। मुझे खेद है कि दौरेके आखिरी दिनोंमें मौलाना शौकत अली मेरे साथ नहीं रह पाये। लोगोंको हमें एक साथ देखनेकी आदत हो गई है। पर जब प्रत्येक कार्यकर्ताको अपना पूरा ध्यान और समय दूसरी जगह काममें लगाना आवश्यक हो उस समय दो कार्यकर्त्ता भी, जबतक निहायत जरूरी ही नहीं हो एक साथ नहीं रह पाते। हम इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं और इसीके साथ खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका प्रतिकार भी चाहते हैं। मैं मानता हूँ कि अगर कुछ बुनियादी शर्तोंका पूरा-पूरा पालन हो सके तो यह सम्भव है। मैंने कई स्थानोंपर इसकी विस्तारसे चर्चा की है। आप जानते ही हैं कि हमारे लिए दृढ़तापूर्वक अहिंसाका पूर्ण पालन करना आवश्यक है। इसके लिए हमें अपने हाथोंपर ही नहीं जबान और दिमाग-पर भी लगाम लगानी होगी। तभी हम संकटकी घड़ीमें अपने आपको अनुशासित रख पायेंगे। यदि हम यह मानते हैं कि हमारा यह आन्दोलन धार्मिक है तो हम अपनेको शुद्ध करनेपर कर्त्तव्यबद्ध हैं। इसलिए हमें चाहिए हम शराब आदि मादक पदार्थोंका उपयोग न करें, जितेन्द्रिय बनें तथा मन, वचन और कर्मसे सत्यका पालन करके अपने हृदयोंको शुद्ध करें। यह भारतीय राष्ट्र हिन्दू, मुस्लिम, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी आदि सब जातियोंके लोगोंसे मिलकर बना है; उन सबके हृदय सच्ची एकताकी डोरसे गुम्फित होने चाहिए।

श्री गांधीने कहा, इस समय मैं स्वराज्यके लिए अनिवार्य शर्तोंकी और विस्तार-पूर्वक चर्चा नहीं करना चाहता। लेकिन अपने समस्त अनुभवोंका निचोड़ मैं आपके सामने रखना चाहूँगा। मैं अहमदाबाद जा रहा हूँ[1] और वहाँ मुझसे पंजाबके बारेमें पूछा जायेगा। यद्यपि पंजाबके लोग नियम-निष्ठ हैं तो भी असहयोगके मामलेमें पंजाब भारतके दूसरे प्रान्तोंसे पिछड़ गया है। पंजाबमें गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह जैसे सुधारक हुए हैं। पंजाब दयानन्दकी कर्मभूमि है। १९१९में पंजाबने जो कष्ट सहे हैं वह भारतके दूसरे किसी भागके लोगोंको सहन नहीं करने पड़े। पंजाबमें ही भारतको पेटके बल रेंगनेके लिए विवश किया गया। वहाँके पंजाबी वीरोंको नाकसे लकीरें खींचनी पड़ीं। पंजाबमें ही निर्दोष व्यक्तियोंको आजीवन देश निकाला दिया गया और फाँसीके तख्तेपर लटकाया गया। पंजाबमें ही स्कूलोंके बच्चोंको मीलों पैदल जाने और

१. गांधीजी ११ मार्च, १९२१ को अहमदाबाद पहुँचे।

यूनियन जैकको सलामी देनेपर विवश किया गया। यदि आतंकके ये बादल फिरसे छा गये तो मैं आशा करता हूँ कि अब एक भी पंजाबी ऐसा न होगा जो रेंगने या जमीनपर नाक रगड़नेके लिए तैयार होगा; एक भी बच्चा ऐसा न होगा जो अपनी इच्छाके विरुद्ध यूनियन जैकको सलामी देगा। मुझे आशा है कि जिन बातोंका मैंने उल्लेख किया है उनमें से एकको भी विवश होकर करनेके बजाय आप गोलीसे उड़ा दिया जाना पसन्द करेंगे।

भारत तथा इस्लामके सम्मानकी रक्षाके लिए हमने जो असहयोग आन्दोलन शुरू किया है उसके लिए पंजाबने क्या किया है? मुझे प्रश्नकर्त्ताओंको खेदके साथ यह बताना होगा कि पंजाबके वकीलोंने राष्ट्रकी पुकारपर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। सरकार द्वारा चलाये गये कालेजोंको छोड़नेवाले विद्यार्थियोंकी संख्या भी ज्यादा नहीं है, और बहुत कम लोगोंने अपनी उपाधियोंका त्याग किया है। मुझे आशा है कि जल्दी ही पंजाब इन कमियोंको दूर कर देगा। लेकिन जहाँतक आर्थिक सहायता-का सवाल है, मैं यह प्रमाणित कर सकता हूँ कि पाँच नदियोंके इस प्रदेशने स्वराज्य कोषकी व्यवस्था खासी कुशलताके साथ की है। हर स्थानपर मैंने लोगोंको तुरन्त पैसा देनेके लिए तत्पर पाया। परन्तु आर्थिक सहायता चाहे वह कम हो या ज्यादा इस आन्दोलनके साथ आपके सम्बन्धकी एक निशानी है। स्वराज्य कोषके मामलेमें पंजाब सबसे आगे है यह सोचकर आप सन्तोष कर लें या अपने काममें ढिलाई करें ऐसा मैं नहीं चाहता। आपको इसके बारेमें लाला लाजपतरायकी सारी चिंता दूर कर देनी चाहिए। स्वदेशीके मामलेमें भी पंजाब सबसे आगे बढ़ गया है। चरखा जितना पंजाबमें लोकप्रिय है उतना और कहीं नहीं। सम्पन्नसे-सम्पन्न कुलोंकी स्त्रियोंको नियम-पूर्वक प्रतिदिन चरखा कातते देखकर मेरा मन उत्साहसे भर आता है। मैं पंजाबकी स्त्रियोंको उनके परिश्रम और देशभक्तिके लिए बधाई देता हूँ। पंजाबी स्त्रियोंकी श्रद्धा, भक्ति और सादगी देखकर मेरे मनमें बहुत आशा जागती है। अपने हिस्सेका धन देनेमें भी स्त्रियाँ पुरुषोंसे पीछे नहीं हैं। लेकिन जबतक पंजाबमें अपनी जरूरत-भरका सूत और कपड़ा नहीं बनने लगता और सब पंजाबी खद्दर नहीं पहनने लगते तबतक मुझे सन्तोष नहीं होगा। इस बातमें पंजाब चाहे तो समस्त भारतका मार्गदर्शक बन सकता है।

अभी तो पंजाबके लोगोंके मनमें अपने गुरुओं और स्वामी दयानन्दकी स्मृति ताजी है। उनके मनमें श्रद्धा-भक्ति भी है। आर्य-समाजियों और सिखोंके पास बढ़िया संगठन है। और उनके पास धन-दौलत भी है। धर्मकी शुद्धताका आग्रह रखनेवाले, अनुशासनबद्ध लोगोंके ये समाज छोटे तो हैं, किन्तु हैं सुगठित। यदि वे अपने इस निष्ठापूर्ण उत्साहको देशके काममें लगा सकें तो इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करनेके इस आन्दोलनमें उनका योग कुछ कम नहीं माना जायेगा। आप आसानीसे अपनी सभी शिक्षा-संस्थाओंका राष्ट्रीयकरण कर सकते हैं। और वकील भी बिना किसी कठिनाईके

अपनी वकालत छोड़ सकते हैं। धर्मकी शुद्धताके इस आग्रहका सार-तत्त्व तो प्रगति ही है। इन संस्थाओंके बारेमें किसीको यह कहनेका मौका न दें कि इन्होंने समयकी गतिको नहीं पहचाना। आपमें लक्ष्मणसिंह[1] और दिलीपसिंहकी[2] वीरता तो होनी ही चाहिए; लेकिन इससे भी ज्यादा आवश्यकता आपको उस वीरता की है जो दिखनेमें सामान्य होते हुए भी अथक और अनवरत बलिदानकी वीरता है और जिसकी कि हम असहयोगके कार्यक्रमसे अपेक्षा करते हैं। जिस समय ये दोनों समाज आगे बढ़कर रास्ता दिखायें उस समय पंजाबकी शेष हिन्दू-मुस्लिम जनताको भी पीछे नहीं रहना है। भारतका पूर्ण उद्धार अन्ततः हिन्दुओं और मुसलमानोंके जागरण और प्रयत्नोंपर निर्भर है। अन्तमें मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। आपने अपने स्नेहसे मुझे अभिभूत कर दिया है। पर आपका जलूस निकालनेका चाव, आपकी प्रदर्शन-प्रियता और मेरे पैर छूनेकी इच्छा आदिको देखकर मुझे बहुत संकोच होता है। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप अपने महान और अद्भुत स्नेहका प्रदर्शन न करें और उसे ऐसा कार्यरूप दें जिसकी राष्ट्रको आवश्यकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–३–१९२१

२११. टिप्पणियाँ

तारपर प्रतिबन्ध

अहमदाबादमें मेरे सहायकको ड्यूकके बम्बई-आगमनके सम्बन्धमें सन्देश दिया जाना आवश्यक था। मैंने तार भेजा: "और शहरोंके समान बम्बईको भी ड्यूकका बहिष्कार करना चाहिए।" सन्देश गत १८ तारीखको भेजा गया था। मुझे लाहौरके तारघरसे गत २८ तारीखको भेजा गया यह तार मिला:

> **आनन्दानन्द, नवजीवन, अहमदाबादको १८ को भेजा गया आपका तार अहमदाबादमें रोक लिया गया है, क्योंकि वह विभागके आदेशोंके अनुसार आपत्तिजनक है। पैसा लौटानेका प्रार्थनापत्र भेजनेपर आपका पैसा वापस कर दिया जायेगा।**

मुख्य रूपसे जिस प्रणालीके हितार्थ तार व्यवस्था चलाई जा रही है, यदि उसी प्रणालीको नष्ट करनेके लिए कोई व्यक्ति तार-व्यवस्थाका उपयोग करे, तो उस तारको रोक लेनेके विरुद्ध कोई भी गम्भीर आपत्ति नहीं उठाई जा सकती। किन्तु यह प्रतिबन्ध तो उस प्रणालीको और भी बुरा सिद्ध कर देता है। यदि कोई एक व्यक्ति भी

१ और २. अकाली सिखोंके नेता जो ननकाना साहिबमें २० फरवरी १९२१ को मारे गये। देखिए "सिख जागृति", १३–३–१९२१।

इस प्रतिबन्धको बुरा समझे तो उससे किसी चिन्तकको "जनताकी स्वतन्त्रतापर निष्ठुरतापूर्ण प्रतिबन्ध" जैसे विषयपर चिन्तन करनेकी प्रेरणा मिल सकती है। लेकिन मौजूदा मामलेमें तो यह वैसा ही है, जैसे उमड़ते हुए जल-प्रवाहको एक तिनकेसे रोकनेका प्रयत्न। दोनों हालतोंमें खरे प्रचारका निषेध, चाहे वह प्रचार सरकारके दृष्टिकोणसे आपत्तिजनक ही क्यों न हो, एक वाहियात काम है। जो भी हो, प्रस्तुत प्रतिबन्ध एक ऐसी सरकारका लक्षण है, जो अपने नाशकी ओर आप ही लड़खड़ाती हुई बढ़ी चली जा रही है।

इससे शिक्षा

यद्यपि मैं इस प्रतिबन्धको स्थानीय अधिकारियोंके उत्साहातिरेकका प्रदर्शनमात्र मानता हूँ, तथापि इससे हमें एक शिक्षा मिलती है। सरकार किसी भी दिन असहयोगियोंके लिए तार, डाक, रेल तथा अखबारोंका उपयोग निषिद्ध कर सकती है। तो क्या इससे हमारी लड़ाई एक क्षणके लिए भी रुक जायेगी? मैं आशा करता हूँ कि ऐसा नहीं होगा। इस लड़ाईका आयोजन ही इस प्रकार किया गया है कि यह सरकारकी सहिष्णुतापर निर्भर न रहे। यह आन्दोलन तो अपनी सफलताके लिए अपनी सर्वव्यापकतापर निर्भर है। निस्सन्देह इक्के-दुक्के व्यक्तियों द्वारा असहयोग किया जाना भी कल्पनीय है और सम्भव है। लेकिन तब उसे कुछ भिन्न रूप लेना होगा। किन्तु जब असहयोगकी भावना समस्त भारतमें व्याप्त है, तब हमें तार, डाक, रेल अथवा अखबारोंपर निर्भर रहनेकी जरूरत नहीं। इन साधनोंकी सहायताके बिना भी हम अपना कार्य पूर्ण सफलताके साथ कर सकते हैं। हम एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तितक, और दूसरेसे तीसरेतक, और इसी तरह जन-जनतक अपने सन्देश विद्युत् गतिसे पहुँचा सकते हैं। रेलगाड़ी नेताओंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जल्दी पहुँचा देती है, किन्तु वह हजारों कुतूहलप्रिय लोगोंको भी सत्वर यहाँसे वहाँ ले जाती है, जिनका कोई उपयोगी उद्देश्य नहीं होता, उलटे वे राष्ट्रीय शक्तिका अपव्यय करते हैं। जिन लोगोंने सरकारके साथ सहयोग करना तय किया है, उनके अलावा और सभीके लिए रेलगाड़ीके उपयोगका निषेध कर दिया जा सकता है; इस सम्भावनासे मुझे कोई चिन्ता नहीं होती। इस प्रकार सरकारके साथ सहयोग करनेवालोंकी गणना आप ही आप हो जायेगी। जबतक हमारे पास कागज और कलम है, अथवा पट्टी और खड़िया ही है, तबतक हमें — यदि हमारे पास काफी स्वयंसेवक हैं तो — लिखकर अपने विचार लोगोंतक पहुँचानेकी आशा नहीं छोड़नी चाहिए। मुझसे बहुधा कहा गया है कि मुद्रग-स्वातन्त्र्यकी हमें बड़ी आवश्यकता है। मैं मानता हूँ कि मुद्रण-स्वातन्त्र्य एक बहुत बड़ी सुविधा है, किन्तु १९१९ के अप्रैल माहके सत्याग्रह सप्ताहमें मैंने सिद्ध कर दिया था कि हस्तलिखित समाचारपत्र निकालना भी सम्भव है।[1] यदि प्रतिलिपिकार स्वयंसेवक काफी संख्यामें मिल जायें, तो असंख्य प्रतियाँ निकल सकती हैं। असहयोगी

१. गांधीजी द्वारा सम्पादित हस्तलिखित साप्ताहिक **सत्याग्रही**का पहला अंक ७ अप्रैल, १९१९ को प्रकाशित हुआ था।

इस मामलेमें केवल अपनी लेखनियोंपर ही निर्भर करें, मुझे इसमें बहुत-से लाभ दिखाई देते हैं।

बिहार सरकार

पिछले सप्ताह जब मैंने बिहार सरकारके सम्बन्धमें लिखा था, तब मुझे जितनी आज जानकारी है उसकी आधी भी नहीं थी। अपनी अनवरत यात्राओंमें मुझे समाचारपत्र क्वचित् ही मिलते हैं। जब-कभी कुछ मिल भी जाते हैं तो मुझे उन्हें पढ़नेका समय नहीं मिलता। वह तो जब मैं लखनऊ पहुँचा[1] तब मैंने बिहार सरकारका वह परिपत्र देखा जिसमें अधिकारियोंको निरंकुश आचरण करनेके लिए उकसाया गया है। फिर आश्चर्य नहीं कि बिहारमें असहयोग लगभग एक संविहित अपराध हो गया है। और यदि बिहारके एक मजिस्ट्रेटने एक निरपराध संन्यासीपर, उसके प्रशंसकोंकी भीड़के बीच ही, हाथ उठानेकी निर्लज्जता की तो इसमें भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मैं नहीं समझता कि ऐसा अहिंसक वातावरण एक साल पहले सम्भव था। इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं है कि मुजफ्फरपुरके मियाँ मुहम्मद शफी-जैसे सम्माननीय नेताको उक्त संन्यासीसे मिलनेसे रोक दिया गया, और इस बातपर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि वे कांग्रेसके मन्त्री हैं। मैं आशा कर रहा हूँ कि सरकारी कर्मचारी असहयोगकी सभाओंमें सामूहिक रूपसे उपस्थित होकर सरकारके इस परिपत्रका उत्तर देंगे, और उसे चुनौती देंगे कि वह उन्हें बर्खास्त कर दे। राजकर्मचारियोंको ऐसी सभाओंमें बोलनेकी मनाही हो, यह बात तो समझमें आती है, किन्तु उन्हें असहयोग सम्बन्धी सभाओंमें शामिल होनेसे रोकना, राष्ट्रीय संस्थाओंके लिए चन्दा देनेसे रोकना, अथवा चरखा चलाना शुरू करनेसे रोकना — यह सब तो व्यक्तिगत स्वातन्त्र्यपर अक्षम्य प्रतिबन्ध लगाना है। मुझे विश्वास है कि कर्मचारीगण इस प्रतिबन्धका उल्लंघन करेंगे, और सरकारके इस कार्यमें भागीदार बननेसे इनकार कर देंगे।

सरकारी प्रचार

लॉर्ड चेम्सफोर्डने अपने भाषणमें[2] सरकारके जिस जवाबी प्रचारका उल्लेख किया था उसका नमूना बिहार सरकार पेश कर रही है। इस सरकारने सर्वथा निर्दोष, चरित्रवान असहयोगियोंका मुँह बन्द कर दिया है, तथा अपने अधिकारियों और अन्य पृष्ठ-पोषकोंको असहयोगके विरुद्ध निर्विरोध प्रचार करनेके लिए आमन्त्रित किया है। मालूम हुआ है, अत्युत्साही चौकीदार मेरे नामपर इन सभाओंकी घोषणा करते हैं; लोग जमा होते हैं, लेकिन जब वे वहाँ अपरिचित चेहरे देखते हैं तो उनमें से अधिकांश लोग चले जाते हैं। जो लोग सहयोगवादियोंकी ओजपूर्ण वक्तृता सुननेको रह जाते हैं, उनसे कहा जाता है कि यदि अदालतोंका त्याग कर दिया जायेगा और शराबकी दुकानें बन्द कर दी जायेंगी तो सरकारी आय कम हो जायेगी। इस प्रकार ये सहयोगी वक्ता शराब और मुकदमेबाजीको प्रोत्साहन देते हैं। मैंने एक

१. २६ फरवरी, १९२१ को।

२. देखिए परिशिष्ट ३।

विश्वस्त कार्यकर्ता द्वारा दिये गये एक विशद और सजीव विवरणका सार-मात्र दिया है। ऐसा हो रहा होगा, यह बात सम्भव है। जरा-सा विचार करनेसे ही समझमें आ जायेगा कि सरकारी वक्ताओंने वही सब कहा होगा जो मुझे खबर देनेवालोंने बताया है। असहयोगी वक्ता प्रायः अपनी बातका प्रारम्भ खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका वर्णन करके तथा जिस प्रणालीके अधीन हम शासित हो रहे हैं उस प्रणाली-की शैतानी प्रवृत्तिपर प्रकाश डाल करके करता है। और वह अपना भाषण समाप्त करता है लोगोंसे यह कहते हुए कि वे शान्त रहें, मादक द्रव्यों, कानूनी अदालतों, सरकारी पाठशालाओं और विदेशी वस्तुओंका त्याग कर दें, तथा चरखा चलाना शुरू करें। अगर कोई असहयोगी वक्ता नासमझ है तो वह भी सहयोगवादियोंके प्रति अपशब्द कहता है और अज्ञानवश उनके सामाजिक बहिष्कारकी सलाह देता है। सरकारी वक्ता खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंके बावजूद सरकारको प्रायः देवकल्प ही घोषित करेगा, और लोगोंसे कहेगा कि वे अदालतोंका त्याग न करें, क्योंकि वे न्याय देती हैं और शराब पीना न छोड़ें, क्योंकि गाहे-ब-गाहे पीना कोई जुर्म नहीं है, और उससे सरकारको आमदनी होती है और उसे इस योग्य बनाती है कि वह पाठशालाएँ चलाये। चरखेके बारेमें वह यही कहेगा कि यह तो बाबा आदमके जमानेकी एक सनक है, जिसे आज अपने घरोंमें फिर चालू करना असम्भव है, और विदेशी वस्तुओंके बिना तो हमारा काम तबतक चल ही नहीं सकता, जबतक कि भारत इतना शिक्षित न हो जाये और उसका इतना अधिक औद्योगीकरण न हो जाये कि वह विदेशी बाजारोंसे प्रतिद्वन्द्विता कर सके। इस प्रकार सरकारी प्रचारमें मद्यपान, मुकदमेबाजी तथा विदेशी वस्तुओंके व्यवहारको कमसे-कम अप्रत्यक्ष रूपसे तो प्रोत्साहन दिया ही जायेगा।

अगर जनताकी इच्छाओंका ध्यान रखनेवाली कोई ईमानदार सरकार होती तो वह जनतासे गठबन्धन करनेका यह स्वर्ण अवसर न चूकती। इसका लाभ उठाकर वह मद्यपानके अभिशापको दूर करती; राष्ट्रीय शिक्षाकी दिशामें होनेवाले प्रयोगोंको प्रोत्साहित करती ताकि लोग आत्मनिर्भरता सीखें, पंच-निर्णय द्वारा झगड़ोंके निपटारेकी इच्छाको बढ़ावा देती, और हाथकी कताईके पुनः प्रचलनका स्वागत करती — फिर चाहे उसका उद्देश्य इतना ही होता कि मशीनी उत्पादनके बावजूद हमारी जो आवश्यकता बाकी रह जाती है उसकी पूर्ति हो और निठल्लेपनकी जगह लोगोंको श्रम करनेकी प्रेरणा मिले। जनताके कल्याणके लिए उत्सुक सरकार इस संघर्षके आन्तरिक अर्थको पहचानती, उसके धार्मिक स्वरूपको समझती तथा चूँकि वह उसके सदुद्देश्य तथा उसकी नैतिक शक्तिसे परिचित होती इसलिए अपने प्रति उसके विरोधकी चिन्ता न करती, और जनतामें शक्ति, चारित्र्य और शुद्धताकी लालसाकी इस महान् पुनर्जागृतिका स्वागत करती। किन्तु इस सरकारके लिए तो उसका अर्थ होगा हृदय-परिवर्तन, जिसकी अभी तो आशा नहीं की जा सकती।

नागपुरकी घटना

ऐसे सहृदय-परिवर्तनकी आशा करनेका समय अभी नहीं आया है। इतना ही नहीं, नागपुरके मुकदमोंसे यह भी स्पष्ट है कि मध्यप्रान्तकी सरकारका इरादा मद्य-

निषेधमें लगे कार्यकर्त्ताओंके साथ सख्तीसे पेश आनेका है। डाक्टर चोलकर और श्री परांजपे जाने-माने कार्यकर्ता हैं। उन दोनोंपर लगभग मद्य-निषेध सम्बन्धी प्रचारके लिए ही मुकदमा चल रहा है। मजिस्ट्रेटके नोटिससे, जो मैंने अखबारोंमें पढ़ा है, साफ झलकता है कि सरकार शराबकी आमदनीमें कमी हो जानेको उदासीन भावसे नहीं देख सकती। सरकार शक्तिका प्रदर्शन करके भी शराबके लाइसेंस दुराग्रहपूर्वक बेचती रही, जब कि जनताकी भावनाको देखते हुए उसका स्पष्ट कर्त्तव्य था कि इनकी बिक्री बिलकुल न करती, बल्कि उस भावनासे लाभ उठाकर शराबका व्यापार बन्द ही कर देती।

और मद्रास?

असहयोग-विरोधी अभियानमें मद्रास भी पीछे नहीं रहा है। प्रसंगवश यहाँ यह बता दूँ कि और जगह जो थोड़ी-बहुत हुल्लड़बाजी हुई, मद्रासमें वह भी नहीं हुई। श्री याकूब हसन और उनके साथियोंने जमानत देनेसे इनकार करके तथा कारावास भोगनेका निर्णय करके बहुत बड़ी सेवा की है। एक तार अभी आया है, जो कहता है कि मलाबारके चार और नेताओंने जमानत देनेकी अपेक्षा कारावास भोगना बेहतर समझा है। स्पष्ट है कि दमनकी जो लहर देशमें दौड़ रही है, वह आकस्मिक नहीं है, वरन् इसके पीछे एक निश्चित योजना है। मेरा मन तो कुछ ऐसा ही माननेको होता है कि यह आम अफवाह सच है कि केन्द्रीय सरकारने स्थानीय सरकारोंको असहयोगको कुचल देनेके लिए चुस्तीसे कदम उठानेको कहा है।

असहयोगियोंका कर्त्तव्य

इस दमनके विरुद्ध हमारा कर्त्तव्य स्पष्ट है। हमने इस्लामके लिए, पंजाबके लिए और स्वराज्यके लिए कष्ट भोगनेका बीड़ा उठाया है। अतः हमें इन मुकदमों तथा उनके फलस्वरूप होनेवाली जेलकी सजाओंका स्वागत करना चाहिए। प्रत्येक अच्छे आन्दोलनको पाँच अवस्थाओंसे गुजरना पड़ता है — उपेक्षा, उपहास, दुर्वचन और निन्दा, दमन तथा सम्मान। उपेक्षाकी अवस्था हम कुछ महीनोंतक झेल चुके। फिर वाइसराय महोदयने आन्दोलनका उपहास भी किया। इन दिनों इस आन्दोलनको गलत रूपमें पेश करनेके साथ-साथ इसकी निन्दा और भर्त्सना करना तो रोजकी बात बन गई है। प्रान्तीय गवर्नरोंने तथा असहयोग-विरोधी समाचारपत्रोंने अपने सामर्थ्य-भर आन्दोलनकी भर्त्सना की है। अब आया है दमन, जो अभीतक बहुत-कुछ नरम रूपमें ही है। जो आन्दोलन नरम अथवा कठोर, सब प्रकारके दमनके बाद भी जीवित रहता है, उसके प्रति सदा आदर ही उत्पन्न होता है, जो सफलताका ही दूसरा नाम है। हमें इस दमनको — यदि हम सच्चे हैं तो — आनेवाली विजयका निश्चित चिह्न समझना चाहिए। यदि हम सच्चे हैं तो न तो हम दबेंगे और न क्रुद्ध होकर प्रत्याघात और हिंसाका आश्रय लेंगे। हिंसा आत्मघात है। हमें यह समझ रखना चाहिए कि शक्तिका सहज ही अन्त नहीं होता है; और सरकारके लिए यह स्वाभाविक ही है कि वह, चाहे दमनके द्वारा ही क्यों न हो, अपना अस्तित्व कायम रखनेके लिए एक

अन्तिम प्रयास करे। इस खतरेके समय पूर्ण आत्मसंयम ही जल्दी-जल्दी सफलता पानेका तरीका है; और दमनात्मक कार्रवाइयोंको विफल करनेका सबसे सरल उपाय है पदवियों, सरकारी पाठशालाओं, न्यायालयों तथा विदेशी कपड़ेका अधिक व्यापक बहिष्कार और हाथकी कताई तथा हाथकी बुनाईको पुनः उसका पुराना गौरवपूर्ण स्थान दिलानेके लिए अधिक समझदारीसे काम करना।

पत्रकारोंका अज्ञान

तीस वर्षोंके व्यस्त जीवनमें मेरा यही दुर्भाग्य रहा है कि जिन सरकारोंसे मेरा साबका पड़ा उन्होंने अक्सर मेरे बारेमें गलत बातें कहीं और मुझे गलत समझा है। और जिन लोगोंकी मैंने सेवा की, कभी-कभी उनके हाथोंमें भी मुझे यही व्यवहार मिला है। पत्रकार होनेके नाते भी तथा एक लोकसेवी व्यक्ति होनेके नाते भी, समाचारपत्रोंसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। लेकिन मुझे उनके अज्ञानका भी शिकार बनना पड़ा है। फिर भी समाचारपत्रों द्वारा प्रदर्शित अज्ञानका ऐसा अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ, जैसा इस समय हो रहा है। इंग्लैंड और अमेरिकासे मेरे मित्र समय-समयपर समाचारपत्रोंकी जो कतरनें मेरे पास भेजते रहते हैं, उनसे तो अज्ञानके साथ-साथ अविवेक भी प्रकट होता है। घोर अज्ञान और किसी चीजको लापरवाहीसे पढ़नेका जो उदाहरण सबसे हालमें मेरे सामने आया है, वह है 'लीडर'का। उसमें कताई पर एक लेख है, जिसमें उस लेखका ही गलत अर्थ लगाया है, जिसे उसने उद्धृत किया है। मेरे साथ सफर कर रहे एक युवकने मुझे वह लेख दिखाया। मुझे लेखक द्वारा प्रदर्शित अज्ञान एवं असावधानीपर बड़ा दुःख हुआ। मैंने उक्त युवकसे कहा कि यदि 'लीडर'की भ्रांतियाँ उसकी समझमें आ गई हैं तो वह स्वयं ही उनका जवाब लिखे। उसका जवाब इतना जोरदार है कि स्वयं जवाब देनेका प्रयत्न करनेके बजाय मैं वही जवाब अन्यत्र दे रहा हूँ।[१]

जनगणना करनेवाले

मुझसे पूछा गया है कि लोगोंको जनगणना करनेके सरकारके आमन्त्रणको मान्य करके सरकारके साथ सहयोग करना चाहिए अथवा नहीं। यह बात स्वयं मेरे ही मनमें स्पष्ट नहीं थी, अतः अबतक मैं कोई सार्वजनिक उत्तर देनेसे बचता रहा हूँ। मुझमें सविनय अवज्ञाकी जो भावना है, उसने मुझे एक ओर तथा वर्तमान कार्यक्रमके प्रति मेरी निष्ठाने बिलकुल दूसरी ओर खींचा है। अन्तमें मेरी निष्ठाने विजय पाई है। मुझे स्पष्ट लगता है कि जनगणनाके मामलेमें हमें सरकारके साथ अवश्य सहयोग करना चाहिए। मुझे विश्वास हो गया है कि इससे हमारे उद्देश्यको बल मिलेगा। यह हममें अनिच्छापूर्वक ही सही, किन्तु ऐसे संविहित नियमोंके पालनका अभ्यास डालेगा, जो हमारी अन्तरात्मा और प्रतिष्ठाको चोट पहुँचानेवाले नहीं हैं, और इससे हमारे संघर्षका उच्च एवं अहिंसक स्वरूप भी सामने आयेगा। हमें सविनय अवज्ञा करनेके लोभका संवरण करना चाहिए, चाहे वह लोभ इतना प्रबल ही क्यों न हो, जितना

१. नहीं दिया गया।

कि आज जनगणनाके मामलेमें है। हममें से हजारों लोगोंको आज बेजोड़ अवसर मिला है कि वर्तमान शासन-प्रणालीके प्रति अपनी अरुचि प्रदर्शित करें। किन्तु इस समय संयमका अभ्यास हमें भविष्यकी सविनय अवज्ञाके लिए तैयार करेगा। अतः हम जन-गणनाका यह कार्य पूरा करनेमें सरकारकी मदद करें — इसलिए नहीं कि हम अवज्ञाके परिणामसे डरते हैं, बल्कि इसलिए कि स्वभाव तथा प्रशिक्षण दोनोंकी दृष्टिसे हम कानूनको पालन करनेवाले हैं, और हमें अभी भी नैतिकता-निरपेक्ष नियमोंकी अवज्ञा करनेकी जरूरत नहीं। यह अवज्ञा हमें न विरोध प्रदर्शनके रूपमें करनी है, और न उस सरकारकी सत्ताको नष्ट करनेके लिए, जिसपर से हमारा विश्वास उठ गया है। अहिंसात्मक असहयोगमें उस अन्तिम उपायका सहारा लेनेकी भी हमें छूट है, किन्तु हम समझते हैं कि उसकी कार्यान्वितिके लिए अनुकूल वातावरण अभी तैयार नहीं हो पाया है। जबतक नरम उपाय हमारे सामने हैं, हमें सख्त उपायोंका सहारा नहीं लेना चाहिए। अतः मैं आशा करता हूँ कि वे सब लोग, जिन्हें मौजूदा कानूनके अनुसार जनगणनाके कार्यमें मदद करनेके लिए आमन्त्रित किया जाये, अधिकारियोंकी आवश्यक सहायता करेंगे।

मुंह बन्द करनेवाली कुछ और आज्ञाएँ

उपर्युक्त टिप्पणियाँ लिख लेनेके बाद मैंने पंडित रामभज दत्त चौधरी[1] तथा सैफुद्दीन किचलूपर तामील की गई आज्ञाओंका पाठ देखा है। ये आज्ञाएँ १९१५ के भारत रक्षा नियमोंके नियम ३ (ग) के अधीन जारी की गई हैं, और इस प्रकार हैं

> **चूंकि स्थानीय सरकारकी रायमें यह विश्वास करनेका युक्तिसंगत आधार है कि जिस व्यक्तिका नाम दिया गया है, उसने ऐसा आचरण किया है जो सार्वजनिक सुरक्षाके प्रतिकूल पड़ता है; इसलिए परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदय इस आज्ञापत्र द्वारा यह आदेश देते हैं कि उक्त व्यक्ति अगला आदेश पाने तक किसी भी सार्वजनिक सभामें शामिल न होगा और न उसमें कोई भाषण देगा।**

मैं इस आज्ञाके पानेपर दोनों व्यक्तियोंको बधाई देता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि सरकार देखेगी कि आन्दोलन फिर भी पहलेकी ही तरह मजेमें चल रहा है। मैं पंडितजी और डाक्टर साहबसे कह चुका हूँ कि अब उन्हें जो भी विचार प्रकाशित करने योग्य लगें उन सबको लिखकर अखबारों तथा उन सभाओंमें भेजें, जिनमें वे हाजिर होना चाहते हों; और उनकी वाणीपर रोक लगानेसे उन्हें अनिवार्यतः जितना अवकाश मिल गया है, उसका कुछ भाग कताईमें लगायें। अन्य वक्ताओंको भी मेरी यही सलाह है कि सरकारकी सुविधाका खयाल रखते हुए वे जितना हो सके, कम बोलें तथा अपना ध्यान चुपचाप संगठन-कार्यकी ओर लगायें। मैं जानता हूँ कि ये सब सज्जन इन मनमानी आज्ञाओंकी उपेक्षा करके हँसी-खुशी जेल जाना चाहेंगे। किन्तु ऐसा समय अभी नहीं आया है।

१. एक स्थानीय नेता और कवि, जिन्होंने अपनी पत्नी सरलादेवी चौधरानीके साथ पंजाबके सार्वजनिक मामलोंमें प्रमुख हिस्सा लिया।

किन्तु इन आज्ञाओंका दूसरा पहलू भी है। अब, जब कि हमें अदालतोंसे संरक्षण माँगनेकी कोई इच्छा नहीं है, इन आज्ञाओंकी वैधानिकतापर विचार करना व्यर्थ है। जो सरकार मनमाने ढंगसे शासन करना चाहती है, उसके लिए सब-कुछ वैध है या वह सब-कुछ वैध बना सकती है। किन्तु सहयोगवादी, तो भारतमें जो-कुछ हो रहा है, उसपर क्षण-भर विचार कर सकते हैं। कार्यकारिणी समितियोंके भारतीय सदस्य तथा उत्तरदायी मन्त्री भी इन आदेशोंके लिए उतने ही जिम्मेदार हैं, जितने कि विभिन्न प्रान्तोंके गवर्नर। मान लीजिए कि असहयोगी लोग दुष्ट हैं। तो क्या सहयोगवादी उनके विरुद्ध सत्ताके मनमाने प्रयोगसे सन्तुष्ट हैं? गोरखपुरके श्री रघुपति सहाय[1] होना चाहते तो डिप्टी कलक्टर हो सकते थे। वे एक सुसंस्कृत शिक्षाशास्त्री हैं। किन्तु उनका यह दुर्भाग्य है कि उनमें संगठनकी योग्यता है, और गोरखपुरके नागरिकोंपर उनका प्रभाव है। मुझे अभी अखबारोंसे मालूम हुआ कि उनकी भी वाणीकी स्वतन्त्रतापर रोक लगा दी गई है। देशमें कोई हिंसाका प्रचार नहीं करता — श्री रघुपति सहायसे तो ऐसी आशा ही नहीं की जा सकती। किन्तु इस "अपनी" सरकारके अधीन एक मजिस्ट्रेटको ऐसी सत्ता प्राप्त थी कि उसने उनके सार्वजनिक सभाओंमें बोलनेपर रोक लगा दी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९–३–१९२१

२१२. वाइसरायके दो भाषण

परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयने दो महत्वपूर्ण घोषणाएँ की हैं; एक खिलाफतपर[2] और दूसरी असहयोग[3] तथा उसके परिणामस्वरूप सरकारने अपनी जो नीति निर्धारित की है उसपर। खिलाफतपर परमश्रेष्ठने सरकारके मनोभावका बिलकुल सही आभास दे दिया है। वे समझते हैं कि भारतके मुसलमानोंके दावेकी सिफारिश करके उन्होंने उनके प्रति अपना उत्तरदायित्व पूरी तरह निभा दिया। इसके विपरीत, भारतीयोंका कहना है कि मुसलमानोंके लिए इतने महत्वपूर्ण मामलेमें वाइसराय महोदयको यह देखनेपर कि सम्राट्की सरकारने भारतीय दावेको नामंजूर कर दिया है, त्यागपत्र दे देना चाहिए था। राष्ट्रसंघकी समितिकी बैठकमें ब्रिटेन बेबस था, यह दलील कोई भी स्वीकार नहीं करता। लोगोंको यह भी याद होगा कि जब सेवरकी सन्धिकी शर्तें प्रकाशित[4] हुई थीं, तब वाइसराय महोदयने उसमें प्रधान मन्त्री महोदयकी भूमिकाकी बड़ी लम्बी-चौड़ी वकालत की थी। लेकिन फिर ऐसा क्यों है कि वे उसके बाद अब

१. रघुपति सहाय 'फिराक'; बादमें इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें प्राचार्य; उर्दूके कवि।

२. देखिए परिशिष्ट २।

३. देखिए परिशिष्ट ३।

४. १४ मई, १९२० को।

मुसलमानोंके दावेकी वकालत कर रहे हैं। यदि असहयोग न किया जाता, तो क्या वे ऐसा करते? और अब भी उन्हें क्या कहना है? यदि मुसलमानोंके दावेको नामंजूर कर दिया जाता है और असहयोग चालू रहता है तो उनका खयाल है कि उसके परिणामस्वरूप अराजकता फैलेगी। अतः, वे धमकी देते हैं कि व्यवस्थाको पुनः स्थापित करनेके लिए सरकार आगे आयेगी। व्यवस्था "पुनः स्थापित" करनेका क्या मतलब है, सो हम जानते हैं। वाइसराय महोदय भूल जाते हैं कि यदि भारतमें अराजकता फैली तो वह इसलिए फैलेगी कि साम्राज्य-सरकार और भारत-सरकार दोनोंने भारतकी तीस करोड़ जनताके प्रति अपने कर्त्तव्यकी घोर अवहेलना की है।

कोई वाइसराय भारतके मामलेकी सिफारिश-भर करके सन्तुष्ट रह सकता है। लेकिन क्या भारत इतनेसे सन्तुष्ट रह सकता है? जो भूखसे मर रहा हो वह क्या मात्र सहानुभूतिसे सन्तुष्ट रह सकता है, विशेषतः जब वह जानता है कि सहानुभूति देनेवाला सहानुभूतिसे कुछ अधिक भी दे सकता है? जब भारत सरकार हमसे एक अनैतिक वरिष्ठ सत्ताकी बात माननेके हमारे कर्त्तव्यकी दलील पेश करती है, तब उसे उस सत्ताके खिलाफ हमारी आलोचनाका भी भागीदार होना पड़ेगा। जो आदेश विश्वास और न्यायभावनाको तोड़कर जारी किये जायें, उनका पालन करना किसी भी सेवकका कर्त्तव्य नहीं होता। सेवरकी सन्धि गम्भीरतापूर्वक दिये गये वचनोंको तथा न्याय और ईमानदारीके सर्वसामान्य सिद्धान्तोंको भंग करती है। जो भूखे मनुष्यके साथ सच्ची सहानुभूति रखता है, उससे यही अपेक्षा की जायेगी कि वह भूखेके कष्टोंमें हिस्सा बँटाये, उससे यह आशा तो नहीं की जाती कि यदि भूखके मारे उस भूखे व्यक्तिके पागल हो जानेके लक्षण दिखाई दें, तो वह उसे गोली मार दे। अतः यदि भारतमें अराजकता फैली तो इसमें उसका उत्तरदायित्व होगा भारत सरकारपर और उन लोगोंपर जो उसके अन्यायोंके बावजूद उसके पक्षका समर्थन करते हैं। यह दायित्व उनपर नहीं होगा, जो उसके जैसे अन्याय करनेसे इनकार करते हैं, और लोगोंको इन भारी अन्यायोंको भुला देनेकी प्रेरणा देनेका असम्भव कार्य करनेसे इनकार करके, उनके क्षोभको एक उचित दिशा देनेका प्रयत्न करते हैं।

इस सरकारको शैतानकी सरकार कहा गया है, इसपर वाइसराय महोदयको आश्चर्य होता है। इस विशेषणको उन्होंने अपने लिए इस्तेमाल किया गया माना है, जो ठीक नहीं है। कारण, किसीने व्यक्तियोंपर शैतान होनेका आरोप नहीं लगाया है। वाइसराय महोदयने कहा है कि इस तरह तो उनके भारतीय सहयोगियोंको भी इस कोटिमें शामिल कर लिया गया है। यह कहकर उन्होंने अपने तईं तो बड़ी चतुराई की, किन्तु यह कुछ इतनी भोंडी किस्मकी चतुराई है कि इससे कोई भी धोखेमें नहीं आयेगा। मगर वाइसराय महोदय और उनके सहयोगी — चाहे वे भारतीय हों, चाहे अंग्रेज — जिस शासन-प्रणालीको चला रहे हैं, उसमें शैतानियतके सारे लक्षण वर्तमान हैं; वह धोखेबाजी, पाखण्ड और बेईमानीसे भरी हुई है; उसके अमलदार मौका आनेपर घोर अत्याचार करते हैं; और फिर वे एक ओर तो इन अत्याचारोंका औचित्य सिद्ध करते हैं और दूसरी ओर दबी जबानसे अपने दोष भी स्वीकार करते हैं। परमश्रेष्ठको

मैं आश्वस्त करता हूँ कि असहयोगमें किसीके प्रति पक्षपात नहीं है। असहयोगियोंके दलमें किसी अंग्रेजके लिए भी एक सम्मानपूर्ण स्थान बराबर सुरक्षित है और कोई भी भारतीय सहयोगवादी, एक बुरी सरकारके अपराधोंका साझीदार होनेके नाते जैसी आलोचनाके योग्य है, वैसी आलोचनासे बरी नहीं किया जायेगा।

परमश्रेष्ठ जब असहयोगका मुकाबला, सहयोगके प्रचारसे करनेका सिद्धान्त घोषित करते हैं, तो उनकी स्थिति सबसे अधिक सुरक्षित प्रतीत होती है। उन्हें इस बातसे जितना बने सन्तोष प्राप्त करनेका हक है कि असहयोगके आह्वानके प्रति खिताबयाफ्ता लोगों और विद्यार्थियोंमें से बहुत कमने उत्साह दिखाया और नई कौंसिलोंके सदस्य बननेके लिए काफी भारतीय मिल गये हैं। किन्तु असहयोगी यद्यपि स्वीकार करते हैं कि इस आह्वानके प्रति और अधिक लोगोंको उत्साह दिखाना चाहिए था फिर भी उन्हें इस बातका सन्तोष है कि सरकारी खिताब, सरकारी स्कूल तथा कानूनी अदालतें लोगोंकी नजरसे गिर गई हैं। ये संस्थाएँ अब वैसी ही अन्धश्रद्धाकी पात्र नहीं रहीं, जैसी कभी थीं। असहयोगियोंको सन्तोष है कि वकालत करनेवाले वकील तथा खिताब-याफ्ता लोग अब नेता नहीं हो सकते। वे जानते हैं कि जिन्होंने खिताब, वकालत अथवा सरकारी स्कूल नहीं छोड़े हैं, वे भी मनसे असहयोगी हैं तथा अपनी कमजोरी स्वीकार करते हैं।

परमश्रेष्ठके जिन सलाहकारोंने उन्हें यह विश्वास दिलाया है कि असहयोगियोंने जन साधारणकी ओर ध्यान देना अभी-अभी शुरू किया है, उन्होंने दरअसल उन्हें गुम-राह ही किया है। सच तो यह है कि वे ही हमारे एकमात्र अन्तिम आधार हैं। किन्तु हम अभी उन्हें छेड़ने नहीं जा रहे हैं। हम उन्हें धैर्यपूर्वक तबतक राजनैतिक शिक्षा देते रहेंगे जबतक वे निरापदरूपसे कार्य करनेके लायक नहीं बन जाते। हमारे लक्ष्यके विषयमें कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। जिस क्षण हमें यह विश्वास करनेका उचित कारण दिखाई देगा कि कुर्की, जब्ती आदि क्षोभ-जनक कानूनी कार्रवाइयोंके बावजूद भारतके सिपाही और किसान अहिंसापर कायम रहेंगे, उसी क्षण हम इन सिपाहियोंसे अपने हथियार छोड़ देने और किसानोंसे लगान देना बन्द कर देनेके लिए कहेंगे। हमारी कामना यही है कि उस स्थितितक पहुँचनेकी आवश्यकता न पड़े। ऐसा गम्भीर कदम न उठाना पड़े, इसके लिए हम कुछ भी उठा नहीं रखेंगे। किन्तु यदि समय आया और आवश्यकता उत्पन्न हो गई तो हम पीछे भी नहीं हटेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-३-१९२१

२१३. सन्देश : किसानोंको

[९ मार्च, १९२१][1]

यदि हम नीचे लिखे हुए नियमोंका अच्छी तरह पालन नहीं करेंगे तो हमको स्वराज्य नहीं मिल सकता, न हमारे दूसरे दुःख दूर हो सकते हैं।

१. हमें किसीको मारना नहीं चाहिए और न लकड़ी चलाना चाहिए। हमें किसीको न गाली देना चाहिए और न दूसरी किसी तरह जबरदस्ती करना चाहिए।

२. दूकानोंको नहीं लूटना चाहिए।

३. जो हमारा कहा न माने उसको मुहब्बतसे अपनाना। उसको मारपीट नहीं करना। उसका पानी, हज्जाम, धोबी भी बन्द न करना।

४. सरकारका और जमींदारोंका पोत या लगान बन्द नहीं करना।

५. जमींदार यदि कुछ दुःख दें तो संयुक्त प्रान्तीय किसान सभाके सभापति पंडित मोतीलालजी नेहरूको खबर देना, और जो-कुछ वे कहें, वैसा करना।

६. याद रखना कि जमींदारोंको भी हम मित्र बनाना चाहते हैं।

७. हम इस समय कानून-भंगकी लड़त नहीं चाहते हैं। इसलिए सब कानूनी आज्ञाओंको मानना।

८. रेलगाड़ी इत्यादिको न रोकना। न जबरदस्ती बिना टिकट उसमें बैठना।

९. यदि हमारे किसी नेताको सरकार पकड़ ले तो उन्हें न घेरना, न कुछ दंगा या तूफान करना। सरकारके किसीको पकड़नेसे हम नहीं हारेंगे। हम हारेंगे तब, जब पागल बनकर कुछ नुकसान करेंगे या मारपीट करेंगे।

१०. दारू, बीड़ी, तम्बाकू और सब दुर्व्यसनोंको छोड़ना।

११. परस्त्रीको माँ-बहन समान समझना, उसकी रक्षा करना।

१२. हिन्दू-मुसलमानके बीच प्रेम रखना।

१३. हिन्दू जातियोंमें किसीको नीच-ऊँच, अछूत — ऐसा नहीं समझना। सबमें समदृष्टि और भ्रातृभाव रखना। हम सब भारतवासी भाई-बहन हैं, ऐसा भाव रखना।

१४. जुआ नहीं खेलना।

१५. चोरी नहीं करना।

१६. झूठ हरगिज नहीं बोलना। सत्य ही हमेशा कहना और सच्चा व्यवहार करना।

१. अवधकी यात्राके दौरान गांधीजीने यह सन्देश संयुक्त प्रान्त (अब उत्तरप्रदेश) के किसानोंको दिया था। मूल हिन्दीका एक स्वतन्त्र अंग्रेजी अनुवाद ९-३-१९२१ के **यंग इंडिया**में भी छपा था। इस सन्देशके **आज**में उपलब्ध पाठको लगभग अविकल रूपमें दिया जा रहा है।

१७. हरएक घरमें चरखा दाखिल करना और दूसरे कामोंसे जितना समय बचे वह सब स्त्री-पुरुष सूत कातनेमें दें। लड़के-लड़कियोंको भी सूत कातनेमें लगाना। कमसे-कम चार घंटा रोज सूत कातनेमें दिया जाये।

१८. परदेशी कपड़का त्याग कर अपने काते हुए सूतमें से जुलाहेके मारफत कपड़े बुनवाकर पहनना।

१९. अपने झगड़ोंका फैसला अदालतोंसे नहीं करना परन्तु पंचकी मारफत तय करना।

याद रखना कि सबसे बड़ी बात यह है कि हम गुस्सेको रोकें और मारपीट न करें। कोई हमें मारे तो उस मारकी परवाह न करना।

मोहनदास करमचन्द गांधी

आज, २४–२–१९२१

२१४. पत्र : शि० गु० प्र० स० के सदस्योंको[1]

अम्बाला
९ मार्च, १९२१

खालसाजी,

आपका तार और वह प्रस्ताव भी मिला जिसमें ननकाना काण्डकी जाँच सरकार जिस तरहसे कर रही है उसकी निन्दा की गई है। उस जाँचमें अविश्वास प्रकट किया गया है, और एक गैर-सरकारी जाँच-समिति नियुक्त की गई है। प्रस्ताव मैंने पढ़ लिया है। प्रस्ताव द्वारा मुझे समितिका अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। इस प्रकार मेरा जो सम्मान किया गया है में उसकी कद्र करता हूँ, किन्तु मुझे भय है कि मैं तबतक समिति और सिख समाजकी कोई उपयोगी सेवा नहीं कर सकता जबतक समितिकी नियुक्तिका उद्देश्य सरकारी जाँचके सम्भावित दुष्प्रभावोंकी काट करना मात्र है। 'सिख लीग' और अन्य राष्ट्रीय संस्थाओंने असहयोगका जो प्रस्ताव पास किया है, उसमें वस्तुतः सरकार द्वारा की जानेवाली जाँचमें भाग लेने या सहायता देनका निषेध किया गया है। इसलिए मैं तो सोचता था कि आप असहयोगके आधारपर ही उस जाँचसे अलग रहेंगे, चाहे फिर जाँचका उद्देश्य अस्थायी या आंशिक तौरपर कुछ खास बातोंमें थोड़ी राहत देना ही क्यों न हो। आपने जाँचमें जो अविश्वास प्रकट किया है, वह मेरी दृष्टिमें उस सरकारसे सहयोग करनेकी निरर्थकताका एक और उदाहरण है जिसको, यदि वह अपने तौर-तरीके नहीं सुधारती तो हम नष्ट करनेकी फिक्रमें हैं। इसलिए मेरा आपसे अनुरोध है कि आप अपने प्रस्तावपर फिरसे विचार

१. शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति ।

करें और या तो असहयोगकी दृष्टिसे निर्णय करें अथवा आपने मेरे ऊपर जो जिम्मेदारी डाली है उससे मुझे मुक्त कर दें।

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
ट्रिब्यून, १३–३–१९२१

२१५. सिख जागृति

सिखोंमें जबरदस्त जागृति आ गई है। सिख कौम इतनी पराक्रमी है कि उसकी जागृति या तो हिन्दुस्तानको आठ महीने पूरे होनेसे पहले आजादी दिला देगी या फिर हिन्दुस्तानकी आजादीको रोक देगी। सिखोंमें मानसिक और शारीरिक दोनों तरहका बल है। वे तलवारके धनी हैं, और कहा जा सकता है कि उनका मनोबल भी कम नहीं है।

उनकी संख्या तीस लाख मानी जाती है। आजतक मैं सिख सम्प्रदायको हिन्दू-धर्मका ही एक सम्प्रदाय मानता था। लेकिन सिखोंके नेता सिख-धर्मको एक पृथक धर्म ही मानते हैं। गुरुनानक उसके जन्मदाता थे। गुरु गोविन्दसिंह उसके रक्षक थे। कुल मिलाकर सिख दस गुरु मानते हैं। गुरुनानक स्वयं तो हिन्दू ही थे लेकिन सिख नेता मानते हैं कि उन्होंने नये धर्मका प्रवर्तन किया। उनके बाहरी लक्षण पाँच 'क'में निहित हैं। वे पाँच वस्तुएँ केश, कंघी, कड़ा, कच्छ और कृपाण हैं। दाढ़ी और चोटी-को वे नहीं मुँडाते इसलिए कंघीकी जरूरत है। कलाईमें लोहेका कड़ा पहनते हैं; वह संयमकी निशानी है, कच्छकी बात आसानीसे समझमें आनेवाली है। कृपाण कटारका ही एक प्रकार है। वे उसे धर्मकी रक्षा करनेकी शक्तिकी निशानी और शत्रुको आतंकित करनेवाली वस्तु मानते हैं। कुछ वर्ष पहलेतक इनपर विशेष जोर नहीं दिया जाता था, लेकिन आजकल नौजवान सिख इन पाँचों वस्तुओंपर बहुत जोर देने लगे हैं और जो अपने आपको सिख मानते हुए भी इन पाँच चिह्नोंको नहीं रखते सुधारक उन्हें सिख मानते ही नहीं। सुधारक तो स्त्रियोंसे भी कृपाण धारण करवा रहे हैं।

मैं एक बुर्जुग सिखसे मिला तो उन्होंने मुझे बताया कि सिख वर्णाश्रम धर्मको नहीं मानते; उनमें ऊँच-नीच नहीं है, अस्पृश्यता नहीं है, वे मूर्तिपूजाको पाप मानते हैं, राम-कृष्ण आदिको मान देते हैं लेकिन हिन्दूधर्ममें उनका जो स्थान है वे उन्हें वह स्थान नहीं देते। वे गो-रक्षाको भी नहीं मानते हालाँकि गोमांस नहीं खाते। वे पुनर्जन्म और मोक्षमें विश्वास करते हैं। 'वेदों'को अथवा अन्य हिन्दू शास्त्रोंको वे विशेष मान नहीं देते। उनका धर्म-ग्रन्थ गुरुओंकी वाणी है। उससे भिन्न किसी शास्त्रको वे धर्मशास्त्रके रूपमें नहीं मानते। उनमें तम्बाकू और शराबको निषिद्ध माना गया है।

सिखोंके मन्दिरको गुरुद्वारा कहते हैं। सुधारकोंका खयाल है कि गुरुद्वारोंमें आचारका स्तर गिर गया है और उनमें रहनेवाले महन्त बहुधा दुराचारी और पाखण्डी होते हैं। कुछेक गुरुद्वारे ऐतिहासिक हैं। ऐसे सब गुरुद्वारोंपर कब्जा करना, उसके सुधारक इष्ट समझते हैं। यह आन्दोलन उनमें सुधार दाखिल करने तथा उन्हें एक समितिकी सत्ताके अधीन करनेके लिए चलाया जा रहा है। वह पिछले कुछ वर्षोंसे चल रहा है। उसमें कुछ बड़े-बड़े सिख नेता, जैसे कि सरदार सुन्दरसिंह मजीठिया, भी शामिल हैं। असहयोग आन्दोलनके बादसे यह आन्दोलन कुछ अधिक उग्र हो गया है। सिखोंके मण्डल जिन्हें अकाली जत्था या अकाली दल कहा जाता है, इन गुरुद्वारों-का कब्जा लेते जाते हैं। ऐसे दल स्थान-स्थानपर फैल गये हैं। अमृतसर उनका गढ़ है। ये अकाली सिख पूर्वोक्त पाँच वस्तुओंको धारण करते हैं, इतना ही नहीं, वे काली पगड़ी बाँधते हैं, कन्धेपर काले रंगकी पट्टी रखते हैं और एक मोटी लाठी भी रखते हैं जिसके सिरपर एक छोटा-सा परशु लगा हुआ होता है। किसी-किसी लाठीमें परशु नहीं होता। ऐसी टुकड़ियोंके पचास अथवा सौ व्यक्ति जाकर गुरुद्वारोंका कब्जा लेते हैं। उनका कहना यह है कि इन टुकड़ियोंका इरादा जबरदस्तीसे कब्जा लेनेका नहीं होता, ये लोग स्वयं मार खाते हैं परन्तु मारते नहीं। फिर भी पचास अथवा अधिक व्यक्तियोंकी टोलीका किसी स्थानपर इस रूपमें जाना एक प्रकारसे शस्त्रबल-का प्रदर्शन ही है और उससे गुरुद्वारेके रक्षकोंका डरना भी स्वाभाविक ही है।

इस कार्यमें जबरदस्तीका प्रदर्शन हो या न हो, लेकिन इससे उनके एकाधिक बड़े गुरुद्वारे अकाली जत्थेके कब्जेमें आ गये हैं और इस प्रयत्नमें उन्हें लगभग १६० व्यक्ति खोने पड़े हैं।

सबसे अधिक व्यक्तियोंकी जानें इन गुरुद्वारोंमें सर्वश्रेष्ठ गुरुद्वारेका कब्जा लेनेमें गईं। इस गुरुद्वारेका नाम ननकाना साहब है। वह लाहौरसे चालीस मील दूर है। रेलवे स्टेशनका नाम भी वही है। यह गुरुद्वारा गुरु नानककी यादमें बनवाया गया है। ननकानामें एक नहीं बल्कि पाँच गुरुद्वारे हैं। उसमें एक स्थान ऐसा है जहाँ कहा जाता है कि एक सर्पने निर्दोष भावसे गुरु नानकके सिरपर अपने फनकी छाया की थी। इस गुरुद्वारेपर महन्त नारणदासका कब्जा था। कहते हैं कि वह विषयी व्यक्ति था। उदासी होनेके बावजूद उसने एक स्त्री रख छोड़ी थी। अनुमान किया जाता है कि उसकी वार्षिक आय पाँच लाख होगी। इस गुरुद्वारेपर अकाली दलकी नजर पहलेसे ही थी। उनका विचार ३–४ मार्चको कोई कदम उठानेका था। लेकिन स्वर्गीय सरदार लछमनसिंह और स्वर्गीय सरदार दलीपसिंह प्रतीक्षा न कर सके। ये दोनों सरदार लखपति थे। इनमें से पहले सरदारने ननकाना साहब जानेका निश्चय किया। उनके साथ लगभग दो सौ व्यक्ति होंगे। सरदार दलीपसिंहने सरदार लछमन सिंहको रोका। लेकिन उन्होंने कहा कि मैं यह प्रतिज्ञा करके चला हूँ कि 'मुझे ग्रन्थ-साहबके आगे माथा टेकना है, वैसा करते हुए अगर भाग्यमें मरना लिखा होगा तो मरूँगा।' पिछली रात ही सरदार दलीपसिंह अन्य सिख भाइयोंके साथ मुझसे बातचीत कर रहे थे। मौत उनको खींचकर ननकाना साहब ले गई। भला वे अपने मित्रको

अकेले कैसे जाने देते? वे भी साथ हो लिये। २० फरवरीको, रविवारके दिन, सवेरे-सवेरे यह सिख दल आ पहुँचा।

नारणदासको गुरुद्वारेपर हमला होनेका भय तो पिछले कई दिनोंसे था ही। उसने तैयारी कर रखी थी। हथियार और गोला-बारूद आदि एकत्र कर रखा था। आसपास कोठरियाँ बना एक किले-जैसी दीवार खड़ी कर रखी थी और कोठरियोंमें बन्दूक दागनेके लिए छेद बना रखे थे। मुख्य दरवाजेपर लोहेके मोटे पतरे जड़ दिये गये थे। ऐसी व्यवस्था की गई थी कि एक बार अन्दर जानेपर कोई व्यक्ति जीवित बाहर नहीं जा सकता था और दरवाजा बन्द होनेपर बाहरसे कोई एकाएक भीतर भी नहीं आ सकता था। मन्दिर इन कोठरियोंके लगभग मध्यमें स्थित है। अन्दर संगमरमरका फर्श है।

रविवारको लछमनसिंह और उनकी टुकड़ीने गुरुद्वारेमें प्रवेश किया। कहा जाता है कि उन्होंने केवल 'दर्शन' करनेके उद्देश्यसे ही प्रवेश किया था। उनका इरादा उस दिन कब्जा लेनेका न था।

नारणदास तो भयभीत था। अपराधीका मन कायर होता ही है। वह पागल ही हो गया था। वह अकाली दलको अपना शत्रु मानता था। लछमनसिंहने ग्रन्थ-साहबके आगे जिस समय अपना सिर झुकाया उसी समय नारणदासके भाड़ेके हत्यारोंने गोली बरसाना शुरू किया। कहते हैं कि हत्यारे कोठरियोंकी छतोंपर थे। ग्रन्थसाहबपर और संगमरमरकी छत्रीके स्तम्भोंपर मैंने गोलियोंके निशान देखे हैं।

लछमनसिंह गिर पड़े। वे बुरी तरह घायल हो गये थे; शरीर लहूलुहान था पर वे थे अभी जीवित। कोई कहते हैं कि उन्हें इसी अवस्थामें घसीट कर ले जाया गया और पासके एक पेड़से बाँधकर जला दिया गया। मैंने पेड़का जला हुआ तना और रक्तकी लकीरें भी देखी हैं।

टुकड़ीके अन्य लोगोंने कोठरियोंमें शरण ली। कोई कहीं और कोई कहीं, इस तरह सब अपनी जान बचानेकी कोशिश करने लगे। लेकिन महन्त तो पागल हो गया था। और उसके पास हत्यारोंका दल था ही। उसने सबको जानसे मार डालनेका निश्चय किया। इन कोठरियोंमें ये सुधारक वीर जहाँ-जहाँ छिपे हुए थे, उन्हें वहाँ-वहाँ ढुँढ़वाकर उसने उन्हें बुरी तरह पीटा, अधमरा कर दिया और अन्तमें उनके हाथ-कान आदि काट लिये गये। क्षणभरके लिए इस पवित्र भूमिपर मनुष्य राक्षस बन गया। उसने डायरको भी मात कर दिया। इतना ही काफी नहीं था। कौन जाने अपनी निर्दयतासे लज्जित होकर अथवा इस शर्मको ढँकनेके लिए कि उसके पक्षका एक भी व्यक्ति नहीं मारा गया, इस विकराल महन्तने लाशोंको इकट्ठाकर उनपर मिट्टीका तेल छिड़ककर उन्हें भस्म कर दिया। गुरुद्वारेमें जो लोग गये थे उनमें से एक भी व्यक्ति जीवित बाहर न आ सका। अकाली दलकी ओरसे अभीतक एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला जो इसकी साक्षी दे सके। दलीपसिंह बाहर ही रह गये थे। कहा जाता है कि उन्होंने महन्तको समझाया-बुझाया। लेकिन वह क्या कोई बात सुनने-समझनेवाला था? उसने दलीपसिंहकी भी हत्या कर डाली और उन्हें बाहर ही जला डाला।

इस तरह धर्मके लिए, धर्मके नामपर डेढ़ सौसे भी अधिक सिखोंने अपने प्राण उत्सर्ग कर गुरुद्वारेपर अपना स्वामित्व सिद्ध कर दिया।

मैंने एक सरदारसे पूछा, "आप इस बलिदानकी हिन्दुस्तानके लिए क्या कीमत आँकते हैं?" उसने कहा, "इस बलिदानसे कोई अकेले सिखोंकी ही ताकत नहीं बढ़ी है, वरन् समस्त हिन्दुस्तानकी बढ़ी है। और स्वराज्य मिलनेसे पहले हमें ऐसे अनेक बलिदान देने पड़ें तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं होगी। इस बलिदानने सारी दुनियाको बता दिया है कि हिन्दुस्तानमें कैसे वीर व्यक्ति पड़े हैं।" इस सरदारकी बात सही है।

जिस दिन इन शहीदोंका अग्नि-संस्कार हुआ, उस दिन मौलाना अबुल कलाम आजाद और मैं सिखोंकी एक सभामें शामिल हुए थे।[1] वहाँ उन्होंने एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वाक्य कहा, "एक सिख गुरुद्वारेको डेढ़ सौ सिखोंने अपने रुधिरसे शुद्ध किया है। हिन्दुस्तान रूपी गुरुद्वारेको शुद्ध करनेके लिए अगर हम सबको शहीद होना पड़े तो इसमें क्या आश्चर्य है?"

आइये हम इन भाइयोंके बलिदानको जरा गहराईसे देखें। यदि उनका उद्देश्य बल-प्रदर्शनके द्वारा गुरुद्वारेपर कब्जा करनेका था तो उसमें उनका हेतु शुद्ध लेकिन साधन अशुद्ध माना जायेगा। लेकिन चूँकि वे स्वयं ही मृत्युको प्राप्त हुए इसलिए संसार हमेशा उनकी बहादुरीका बखान तो करेगा ही।

यदि वे सिर्फ 'दर्शन' करनेके इरादेसे ही गये हों लेकिन अपना बचाव करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए हों तो भी जगत् उनकी बहादुरीकी स्तुति करेगा और उनके साधनोंके बारेमें शंका नहीं करेगा। लेकिन यदि वे सिर्फ 'दर्शन' के हेतुसे ही गये हों और अपने पास हथियार होनेके बावजूद उन्होंने उनको उठाए बिना चुपचाप मृत्युका आलिंगन किया हो तो दुनियाके सामने शान्तिमय क्षात्रबलका उन्होंने एक ऐसा उदाहरण पेश किया है जिसकी आधुनिक कालमें कोई मिसाल नहीं है। अगर ऐसा ही हुआ हो तो इस युगमें यह बात सिर्फ हिन्दुस्तानमें ही हो सकती है। सन्तोषजनक बात तो यह है कि जिन-जिन सिखोंके साथ मैंने इस सम्बन्धमें बात की है उनमें लगभग बिना किसी अपवादके प्रत्येक सिखकी यही मान्यता है कि ये डेढ़ सौ बहादुर व्यक्ति 'दर्शन' करनेके लिए ही गये थे और शस्त्र उठानेकी स्थितिमें होनेके बावजूद, चूँकि वे शान्तिसे ही काम लेनेकी प्रतिज्ञा करके वहाँ गये थे, उन्होंने शस्त्र नहीं उठाये और मृत्युको प्राप्त हुए।

अगर यह बात सच है तो यह अहिंसामय असहयोगका एक परिपूर्ण उदाहरण है और मेरी दृढ़ मान्यता है कि उसका हमारे स्वराज्यके आन्दोलनपर बहुत महत्वपूर्ण असर होगा।

सरकारको लाहौरमें जब यह खबर मिली तब उसने तुरन्त ही खास ट्रेनसे सेना भेजी और महन्त तथा उसके जो साथी गुरुद्वारेमें मिले उन सबको कैद कर लिया। दूसरे अथवा तीसरे दिन गुरुद्वारेका कब्जा उसने अकाली दलकी समितिको दे दिया।

१. श्री में, २५ फरवरी, १९२१ को।

तथापि सिख भाइयोंको सरकारपर विश्वास नहीं है। वे मानते हैं कि महन्तकी तैया-रियोंसे सरकारी अधिकारी अनभिज्ञ नहीं हो सकते थे। लेकिन इस स्थानपर में सरकारके दोषपर विचार नहीं करना चाहता।

हमें सिर्फ एक ही बातपर विचार करना है कि इससे हमें क्या सीख मिलती है। हम मरकर अपनी ताकतको इतना बढ़ा सकते हैं जिसकी कोई सीमा नहीं बाँधी जा सकती। यदि सिखोंने महन्त और उसके साथियोंको मार दिया होता अथवा उन्हें घायल कर दिया होता, या दोनों पक्षोंके व्यक्ति समान संख्यामें मारे गये होते तो अकाली दलमें आज जो शक्ति आ गई है वह कभी न आती। यद्यपि मरे तो सिख हैं तथापि डर रहे हैं महन्त और अन्य लोग, जिनका गुरुद्वारोंपर कब्जा है और जो अपने स्वार्थके लिए इस कब्जेको बनाये रखना चाहते हैं। भय यह है और ऐसा अनेक समझदार सिख समझते हैं कि अपनी विजयके इस अवसरपर यदि सिख भाई आवेशमें अपना विवेक खो बैठेंगे तो वे अपनी अर्जित कमाईको खो बैठेंगे और कौम निस्तेज हो जायेगी।

इसके अतिरिक्त और भी गम्भीर प्रश्न उठते हैं, मैं अभी इस समय उनकी चर्चा नहीं करना चाहता, क्योंकि फिलहाल गुजराती पाठकोंको उसकी आवश्यकता नहीं। प्रसंग आनेपर मैं पाठकोंसे उनका जिक्र करूँगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३–३–१९२१

२१६. पत्र : जी० ए० नटेसनको[1]

बम्बई

१४ मार्च, [१९२१][2]

प्रिय श्री नटेसन,

कल आपका तार मिला। श्री गांधी महसूस करते हैं कि उन्हें आपके यहाँ ही पूरी मानसिक शान्ति मिलेगी,[3] लेकिन वे आपको किसी अटपटी स्थितिमें नहीं डालना चाहते।[4] वे आपकी स्थिति भलीभाँति समझते हैं और इसलिए उनकी इच्छा है कि इस बार वे उन्हीं लोगोंके साथ ठहरें जो फिलहाल उनके साथ हैं। उनको पूरा विश्वास

१. स्पष्ट ही पत्र गांधीजीकी ओरसे महादेवभाई देसाईने लिखा था।

२. पत्रके पाठसे जान पड़ता है कि यह १९२१ में लिखा गया था; देखिए "पत्र: जी० ए० नटेसनको", ४–४–१९२१।

३. अप्रैलके आरम्भमें अपनी प्रस्तावित मद्रास-यात्रामें।

४. श्री नटेसन असहयोगके पक्षमें नहीं थे।

है कि आप इसका बुरा नहीं मानेंगे। अब आपको उनके ठहरनेकी जगहके बारेमें बिलकुल चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है।

हृदयसे आपका,
म० ह० देसाई

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २२४३)की फोटो-नकलसे।

२१७. तार: विजयराघवाचार्यको

[१४ मार्च, १९२१ के बाद][1]

अभी पत्र मिला। ३० तारीखको मेलसे बेजवाड़ा[2] पहुँचनेकी आशा।

गांधी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० ७५०३)की फोटो-नकल से।

२१८. टिप्पणियाँ

मानवता बनाम देशभक्ति

एक भाईने मेरा ध्यान सिखोंके नाम लिखे मेरे पत्रमें[3] की गई अपील की ओर आकर्षित किया है। उनके विचारसे, उनकी मानवीय भावनाको छूनेके बजाय उनकी देशभक्तिकी भावनाको जगानेके लिए की गई यह अपील अनुचित है। जिस अंशपर उन्होंने आपत्ति की है, वह इस तरह है:

> **हत्यारोंके विरुद्ध न्याय माँगनेका शुद्धतम मार्ग यही है कि न्याय न माँगा जाये। हत्यारे — चाहे सिख हों, पठान हों अथवा हिन्दू हों — हमारे देशवासी हैं। उनको दण्ड देनेसे अब मृत व्यक्ति फिरसे जीवित नहीं हो सकते। जिनके हृदय इस वेदनासे दग्ध हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे हत्यारोंको क्षमा कर दें — इसलिए नहीं कि वे कमजोर हैं। कमजोर तो वे हैं ही नहीं, उनमें इन हत्यारोंको दण्डित करानेकी पूरी क्षमता है। अतः वे उन्हें क्षमा कर दें इसलिए कि उनकी शक्ति अपरिमित है। शक्तिवान ही क्षमा कर सकता है।**

मैंने इस अंशको बार-बार पढ़ा है। मुझे लगता है कि मैं आज भी उसका कोई शब्द नहीं बदलना चाहूँगा। उस पत्रमें मैंने सिखोंसे जो अपील की है वह उनके

१. यह तार श्री विजयराघवाचार्यके १४ मार्च, १९२१ के पत्रके उत्तरमें था।
२. यहाँ ३१ मार्च, १९२१ को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक होनेवाली थी।
३. देखिए "सन्देश: ननकाना साहबकी दुःखद घटनापर सिखोंको", ४-३-१९२१।

भारतीय होनेके नाते ही की है। और मेरे लिए यह काफी था कि मैं अपनी अपील उसी मुद्देतक सीमित रखूँ, जो सम्बन्धित जन-समुदायकी समझमें सरलतापूर्वक आ सकता है, और उनकी पहुँचके भीतर है। मुख्य तर्क तो सबके लिए सदैव एक ही रहेगा। यदि मैंने वह अपील उनकी देशभक्तिकी भावनाके बजाय उनकी व्यापकतर मानवताकी भावनासे की होती तो सिखोंको लिखे मेरे उस पत्रका जोर कुछ कम हो जाता। जो सिख किसी गैर-सिखको अपराध करनेपर दण्ड किन्तु सिखको अपराधी होनेपर क्षमा कर देना चाहेगा, उससे यही कहा जाना चाहिए कि इस घटना-जैसी घटनाओंमें उसके लिए सिख और भारतीयका अर्थ एक ही होना चाहिए। अगर किसी अंग्रेजके लिए एक भारतीयसे अपील की जाये तो वह उसकी देशभक्तिकी भावनाके प्रति नहीं बल्कि उसकी मानवीय भावनाके प्रति की जायेगी।

किन्तु मैं मान सकता हूँ कि आज लोगोंकी जैसी भावना है, उसे देखते हुए कोई अंग्रेज मेरे पत्रका मंशा गलत भी समझ सकता है। मेरे लिए तो मानवीयता और देशभक्ति एक ही चीज है। मैं देशभक्त हूँ, क्योंकि मुझमें मानवीयता है और दया है। मेरी देशभक्ति भारतके लिए ही नहीं है। मैं भारतका भला करनेके लिए इंग्लैंड अथवा जर्मनीको नुकसान नहीं पहुँचाऊँगा। मेरी जीवन-योजनामें साम्राज्य-वादके लिए कोई स्थान नहीं है। जो नियम किसी कुलपतिपर लागू होता है, वही देशभक्तपर भी लागू होता है, और यदि किसी देशभक्तमें मानवीयता कम है तो समझना चाहिए कि उसकी देशभक्तिमें भी उस हदतक कमी है। निजी और राजनैतिक विधानमें कोई विरोध नहीं है। उदाहरणके लिए, कोई असहयोगी समान परिस्थितियोंमें अपने पिता अथवा भाईके प्रति ठीक उसी प्रकारका बरताव करेगा, जैसा वह आज सरकारके प्रति कर रहा है।

जनरल डायरके बारेमें क्या कहना है?

वही मित्र पूछते हैं कि यदि मेरा यह कहना सच है तो फिर जलियाँवाला बाग और उस गलीको क्यों बार-बार याद किया जाता है, जिसमें भारतीयोंको रेंगनेके लिए मजबूर किया गया था।[1] उत्तर सीधा है। क्षमा करना भूल जाना नहीं है। यदि आप किसी शत्रुकी शत्रुताको भूलकर उसे मित्र मानकर प्यार करें तो उसमें कोई खूबी नहीं है। खूबी तो इसमें है कि आप भली-भाँति यह जानते हुए भी कि वह आपका मित्र नहीं है, उसे प्यार करें। इस्लामके वीर पुरुष हजरत अलीने अपने एक प्रतिद्वन्द्वीपर तबतक प्रतिप्रहार नहीं किया जबतक उन्हें उस प्रतिद्वन्द्वी द्वारा किये गये अपने अपमानकी स्मृति बनी रही, हालाँकि वे अपने उस प्रतिद्वंदीके मुकाबले बहुत ज्यादा बलवान और युद्ध-कुशल थे। भारत यह नहीं चाहता कि सर माइकेल ओ'डायर तथा जनरल डायर सरीखे अपराधियोंको दण्ड दिया जाये; वह चाहता है कि उन अधिकारियोंको बर्खास्त कर दिया जाये, जिन्होंने अपने-आपको अपने दायित्वके निर्वाहके अयोग्य सिद्ध कर दिया है। और जबतक वे भारतके राज-कोषसे कोई पेन्शन पाते

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ १९८–२०२।

हैं, वे पूर्णतः बर्खास्त किये गये नहीं माने जा सकते। जो पुत्र अपराध करके पश्चात्ताप न करे उस पुत्रको भोजन देनेके लिए उसका पिता बाध्य नहीं है; यही नहीं, यदि वह उसका पोषण करता जाता है तो उसके अपराधमें भी भागीदार होता है।

कांग्रेस द्वारा नियुक्त जाँच समितिके सदस्योंको[1] छूट थी कि वे चाहें तो महाभियोग लगाने और साधारण मुकदमे चलाने अथवा बर्खास्तगीतक की सलाह दे सकते हैं। उन्होंने उद्देश्य सिद्धिके खयालसे नहीं, बल्कि मानवीयताके कारण दूसरा मार्ग अपनानेकी ही सलाह दी। कदाचित् पाठक नहीं जानते कि इस उलझन-भरे मामलेपर सदस्योंने गम्भीरतापूर्वक कई घंटे विचार किया था। रिपोर्टका अन्तिम मसविदा काशीमें, गंगाके किनारे तैयार किया गया।[2] सिफारिशपर सदस्योंमें खूब गरमागरम बहस हुई; और फिर उन्होंने एकमत होकर यह निर्णय लिया कि मुकदमा न चलानेसे भारतको लाभ ही होगा। अभी हालमें पटनामें एक महत्वपूर्ण भाषण देते हुए श्री दासने समितिके सदस्योंके आपसी समझौतेका उल्लेख किया था। सदस्योंने निश्चय किया कि जब हम जो कमसे-कम माँग हो सकती है, उसीकी सिफारिश कर रहे हैं, तो हमें गम्भीरतापूर्वक यह संकल्प भी करना चाहिए कि अपनी जानकी बाजी लगा कर भी हम इस माँगको पूरा करायें। अतः उक्त समितिके सदस्य यदि आज असहयोगी हैं, तो यह तो उनका साधारण कर्त्तव्यमात्र है। किन्तु उन्होंने दण्ड देनेके अधिकारका प्रयोग न करनेका मार्ग चुना। यह सच है कि समूचे भारतवर्षने अभीतक सोच-विचारकर मानवता, अर्थात् क्षमाका सिद्धान्त स्वीकार नहीं किया है। हत्यारोंको फाँसीपर लटकाने आदिकी बातें बहुधा सुनाई देती हैं। किन्तु ब्रिटिश गवर्नरों और जनरलोंके खिलाफ कुछ करने योग्य शक्ति अभीतक भारतमें नहीं है। वह अभी उनसे डरता है। अतः, सर माइकेल ओ'डायर तथा जनरल डायरको क्षमा करनेकी बात अर्थहीन है। किन्तु भारत प्रतिदिन शक्ति-लाभ कर रहा है और क्षमा करनेके योग्य बन रहा है। जब कोई भारतीय पंजाबके अपराधियोंको दण्ड देनेकी बात करता है, तो वह पुरुषार्थहीन क्रोधके आवेशमें ही ऐसा करता है। किन्तु मेरा विश्वास है कि यदि भारत आज स्वतन्त्र होता, अर्थात् अपराधियोंको दण्ड देनेके लायक शक्तिसे सम्पन्न होता, तो वह दण्ड न देता। वह तो केवल जलियाँवाला-जैसी घटनाओंकी सम्भावनाओंसे मुक्त होना चाहता है। सम्पूर्ण असहयोग आन्दोलनकी कल्पना न्यायकी भावनासे ही की गई है, उसके पीछे प्रतिशोधकी कोई भावना नहीं रही है।

इस प्रणालीके विरुद्ध

इसके अतिरिक्त, संघर्ष व्यक्तियोंके विरुद्ध नहीं, वरन् इस प्रणालीके विरुद्ध है। निश्चय ही सभी गवर्नर बुरे नहीं हैं। हकीम अजमलखाँने, जो महान्तम भारतीयों तथा उच्चतम मुसलमानोंमें से हैं, तिब्बिया कालेजके उद्घाटनके अवसरपर लॉर्ड

१. गांधीजी, चित्तरंजन दास, अब्बास तैयबजी, मु० रा० जयकर जिनकी नियुक्ति कांग्रेसकी पंजाब उप-समितिने अप्रैल १९१९ में हुए पंजाबके उपद्रवोंकी जाँचके लिए की थी।

२. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ६१-६२।

हार्डिंग और लेडी हार्डिंगके चित्रोंका अनावरण करके यह स्पष्ट कर दिया है। असहयोगियोंने बराबर इस सम्बन्धमें अंग्रेजोंका मत माँगा है और सभी राष्ट्रोंके व्यक्तियोंको आत्मशुद्धिके इस आन्दोलनमें सम्मिलित होनेको आमन्त्रित किया है।[1] भारतका संघर्ष अंग्रेजोंकी उच्चताके थोथे दावेके खिलाफ है। इस शोषक प्रणालीका संचालन चाहे लॉर्ड चैम्सफोर्ड करें, चाहे लॉर्ड सिन्हा, भारत शोषणको बरदाश्त करनेके लिए तैयार नहीं है। असहयोगकी भाषा एकाध बार कटु भले ही हो, उसके साधनोंका कोई मुकाबला नहीं है।

पण्डित मालवीयजी

साधनोंकी बातसे मुझे बनारसमें हुई हालकी घटनाओंका स्मरण हो आता है। पण्डित मदनमोहन मालवीयके साथ जो दुर्व्यवहार किया गया, वह जनताकी मनःस्थितिको सूचित करता है। भारतमें यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जिसका कदापि अपमान नहीं किया जाना चाहिए, तो वे पण्डितजी ही हैं। पंजाबके प्रति की गई उनकी सेवाएँ आज भी हमारी स्मृतिमें ताजी हैं।[2] एकमात्र उन्हींके परिश्रमसे बनारसके महान् विश्वविद्यालयका निर्माण हुआ। वे देशभक्तिमें किसीसे कम नहीं हैं। वे आवश्यकतासे अधिक सज्जन हैं। यह भारतका दुर्भाग्य है, उनका दोष नहीं, कि वे कुछ समयके लिए अपनी प्यारी चीज छोड़नेकी जोखिम उठानेपर खुदको लाचार पाते हैं। उनका इस प्रकार अपमान किया जाना भारी दुःखकी बात है। यदि संस्कृतके विद्यार्थियों अथवा तथाकथित संन्यासियोंने विद्यार्थियोंका मार्ग रोक लिया था, तो निश्चय ही पण्डितजीको अधिकार था, बल्कि उनका कर्त्तव्य था कि वे बीचमें पड़कर सहयोगी विद्यार्थियोंको रास्ता दिलवाते। मेरे विचारसे पुलिसने सरगना लोगोंको या जिन्हें उसने अगुआ समझा, उनपर मुकदमा चलाकर बिलकुल ठीक किया। गिरफ्तार किये गये लोगोंके साथ दुर्व्यवहार किया गया होगा — यह मैं मानता हूँ। किन्तु पुलिससे सौम्य व्यवहारकी आशा हमें स्वराज्य प्राप्त करनेके बाद भी नहीं करनी चाहिए। अतः मैं उन लोगोंके प्रति जरा भी सहानुभूति नहीं दिखा सकता, जिन्होंने इतने स्पष्ट रूपसे उस उद्देश्यके नाममें बट्टा लगाया है, अज्ञानवश जिसके हामी होनेका दावा वे करते हैं।

सच्चे और झूठे

किन्तु आन्दोलनमें होनेवाली ज्यादतियोंकी आलोचना करना एक बात है, और स्वयं आन्दोलनकी ही निन्दा करना बिलकुल दूसरी बात है। सच्चे असहयोगियों और झूठे असहयोगियोंमें भेद करना जरूरी है। नासमझ विद्यार्थियों और अज्ञानी संन्यासियोंका व्यवहार निःसन्देह लज्जाजनक तथा निन्दनीय था। किन्तु जनताका विशाल समुदाय असहयोगकी सीमाओंको जानता है, और उनका अतिक्रमण नहीं करता। मैं साहसपूर्वक यह दावा करता हूँ कि भारत आज जितना शान्त है, उतना पहले कभी नहीं

१. इसके बादके अंशमें जो वाक्य आये हैं, वे मूल स्रोतमें ही कहीं-कहीं कटे-फटे हैं। उन्हें अनुमानसे पूरा करके अनुवाद किया गया है।

२. जलियाँवाला बागकी घटनाके बाद १९१९ में मालवीयजीने पंजाबका दौरा किया था।

रहा; लेकिन यह शान्ति कमजोरों और अज्ञानियोंकी जड़ता नहीं है, वरन् यह उन लोगोंकी प्रबुद्ध शान्ति है जिन्हें अपनी दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई शक्तिका भान हो रहा है। भारत उस रोगको जानता है, जिससे वह पीड़ित है, और आन्तरिक शुद्धीकरणकी प्रक्रियासे उस रोगसे मुक्त होनेकी तैयारी कर रहा है।

सदा सावधान रहिए

लेकिन साथ ही हम क्या कहते और करते हैं, इस विषयमें हमें सावधान रहना चाहिए। भारतके कुछ सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति इसीलिए अलग खड़े हैं कि उन्हें वह विश्वास नहीं है कि उत्तेजनाओंके बावजूद जनता अहिंसक बनी रहेगी। असहयोगियोंकी छोटी-से-छोटी गलती, यहाँतक कि उनका अशिष्ट व्यवहार भी, हमारे उद्देश्यकी प्राप्तिमें बाधा पहुँचाता है। हम एक ही समय एक ओर समझदार तथा संयमी और दूसरी ओर क्रुद्ध नहीं हो सकते। एक बारमें या तो हम हिंसक हो सकते हैं या अहिंसक — दोनों नहीं। हमने अपने लिए एक रास्ता चुन लिया है, और अब उसमें जो भी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ें, उन्हें सहन करना चाहिए। अहिंसापर दृढ़ रहनेका निश्चय कर लेनेके बाद, हमें हिंसाकी ओर किसी प्रकारका झुकाव नहीं दिखाना चाहिए। अतः हमें सावधान रहना है कि किसी भी रूपमें हम हिंसाका समर्थन नहीं करेंगे। यदि हम अपने आन्दोलनको अहिंसाके सुदृढ़ आधारपर स्थित नहीं करते, तो वह ताशके मकानकी तरह किसी दिन एक फूँकमें ही भरभरा पड़ेगा। हम एक ही साथ खुदा और शैतान, दोनोंकी भक्ति नहीं कर सकते।

जालन्धरका एक गश्ती पत्र

जालंधरके डिप्टी कमिश्नरने पंचायतोंके बारेमें जो निर्देश जारी किये वे देखने-में बड़े निर्दोष लगते हैं। उन्होंने जिस ढंगसे नियम निर्धारित किये हैं, उसपर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती; किन्तु फिर भी वे जिस बातपर चोट करना चाहते थे उसपर चोट नहीं कर सके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि निजी पंचायतोंके निर्णय कानूनकी दृष्टिमें बंधनकारी नहीं होते। किन्तु पंचायतोंकी शरण केवल वे लोग ही लेंगे जो स्वयं अपनी इच्छासे उनके निर्णयोंका पालन करनको तैयार हों, और इसलिए इन लोगोंको इस बातकी जरूरत ही नहीं होगी कि कोई पंचायतके आदेशोंपर अमल करवाये। निःसन्देह, जघन्य अपराधोंके मामलेमें अपराधीसे समझौता कर लेना गलत है। किन्तु जिस व्यक्तिका माल चोरी गया है उसे दुनियाकी कोई भी अदालत शिका-यत दर्ज करानेके लिए बाध्य नहीं कर सकती। एक वकीलकी हैसियतसे भी मैंने अपने मुवक्किलोंको ऐसे चोरोंपर तक मुकदमा दायर न करनेकी सलाह दी है, जिन्हें वे जानते थे। इस तरहके कुछ लोगोंको मैंने पुलिससे छुड़ाया भी है। लेकिन ऐसा करके मुवक्किलोंकी तो बात ही क्या, मैंने या पुलिसने भी ऐसे मामलोंमें अपराध करनेवालेके साथ कोई समझौता नहीं किया। फिर जो बार-बार चोरी करता है, उसे पंचायत समाज-बहिष्कृत क्यों नहीं कर सकती? अपराधियोंको दण्ड देनेके लिए न्यायालय स्थापित रहनेके बाद भी समाज अपने-आपको सामाजिक शक्तिके साधनोंसे वंचित नहीं कर

लेता। सरकार जब चोरों और अन्य अपराधियोंको दण्ड देना चाहती है, तो इसका मतलब यही है कि इन बुराइयोंको दूर करनेके लिए वह अपने ढंगसे काम ले रही है। अतः मैं जालंधरकी पंचायतोंसे आग्रहपूर्वक कहूँगा कि वे लोगोंको कम खर्चमें, जल्दीसे-जल्दी सही-सही न्याय देनेका अपना अत्यन्त उपयोगी काम इसी तरह जारी रखें। हाँ, इस बातकी सावधानी अवश्य रखनी चाहिए कि पंचायतें कहीं दण्डात्मक उपायोंका आश्रय तो नहीं ले रही हैं। हमारे हाथमें केवल एक ही दण्ड है, और वह है जनमतका बल। जो लोग स्वेच्छासे पंचायतका आश्रय लेते हैं, वे पंचायतकी आज्ञाओंका उल्लंघन करेंगे, इस बातका खतरा ज्यादा नहीं रहता। कुछ अवज्ञाका खतरा उठानेके लिए तो हमें तैयार ही रहना चाहिए। किसीको अनिवार्य रूपसे पंचायतकी शरणमें लाने, अथवा किसीसे पंचायतकी आज्ञाओंको कार्यान्वित करानेके लिए हमें उतावलीमें जोर-जबरदस्ती अथवा धमकीका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए।

उतावले गो-रक्षक

अपनी यात्राके दौरान मुझे ऐसे बहुत-से हिन्दुओंसे मिलनेका मौका मिला है, जो गो-रक्षाके लिए जल्दी मचा रहे हैं। मैं उनका ध्यान एक घरेलू कहावतकी ओर आकृष्ट करनेकी धृष्टता करूँगा — 'उतावला सो बावला।' अनेक नगरपालिकाओंमें, उदाहरणके लिए लाहौरमें, लोग बछड़ों और दुधारू गायोंकी हत्यापर रोक लगानेके लिए एक उपनियम बनानेका प्रयत्न कर रहे हैं। उद्देश्य प्रशंसनीय है, और उसके विरुद्ध कोई आपत्ति भी नहीं की जा सकती। सिर्फ बहुमतके निर्णयसे ही यह स्थिति नहीं लाई जा सकती। इसमें पहल तो पूरी तरह मुसलमानोंको ही करनी होगी। हिन्दू जोर-जबरदस्तीसे यह काम जल्दी नहीं करा सकते। और जबतक हम स्वराज्य प्राप्त नहीं कर लेते, मुसलमानोंसे कानूनी कदमकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। या तो हम असहयोगी हैं, या नहीं हैं। यदि हम असहयोगी हैं तो गायकी रक्षाके लिए भी हम सरकारकी सहायता नहीं माँग सकते। अतः मैं आशा करता हूँ कि लाहौरके तथा अन्य स्थानोंके हिन्दू असहयोगी भी गोरक्षाके लिए कानूनका संरक्षण प्राप्त करनेके हर आन्दोलनसे अपने-आपको पूर्णतया अलग रखेंगे। हमें एक तथ्यको ध्यानमें रखना चाहिए कि इस विषयमें मुसलमान सब जगह बहुत ठीक काम कर रहे हैं। वे हिन्दुओंकी भावनाओं-का सम्मान करनेका अधिकतम प्रयत्न कर रहे हैं। मियाँ छोटानी और मियाँ हाजी अहमद खत्रीने पिछली बकरीदके मौकेपर जितना किया, उससे ज्यादा कोई भी नहीं कर सकता था। उतावले हिन्दू जल्दी करके अपने ही उद्देश्यको नुकसान पहुँचायेंगे। या तो हमें मुसलमानोंके सौजन्यपर भरोसा करना है या हथियारोंकी ताकत और कानूनपर। जब हमने पहली वस्तुको चुन लिया है, तब हम दूसरी वस्तुओंका आश्रय नहीं ले सकते। हमें याद रखना चाहिए कि हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच बढ़ती हुई मित्रताको नष्ट करनेवाली शक्तियाँ अभीतक सक्रिय हैं। दुष्ट लोग उस डोरको तोड़ डालनेकी पूरी कोशिश कर रहे हैं, जिससे दोनों बंधे हुए हैं। उन्होंने लाहौरकी घटनासे फायदा उठाना शुरू भी कर दिया है। हमें 'दुश्मन' के हाथों नहीं खेल जाना चाहिए।

मॉरिशसकी डाक

मॉरिशससे श्री बुद्धन नामक एक बैरिस्टरने, जो अभी वकालत कर रहे हैं, मुझे एक तार भेजा है। वह इस प्रकार है:

> **मॉरिशसके भारतीयोंका अनुरोध है नये प्रवासी लानेके प्रयत्नमें हस्तक्षेप करें। मॉरिशसके गवर्नर सीलोन जा रहे हैं जिसके सम्बन्धमें वाइसरायके पास विरोध-पत्र भेज दिया गया है।**

मैं केवल जनताका ध्यान इस धृष्टताकी ओर आकर्षित करना चाहूँगा तथा उससे आग्रह करूँगा कि वह स्वराज्य-प्राप्तिके लिए दुगुना प्रयत्न करे। यहाँ प्रवासियोंका अर्थ केवल गिरमिटके अधीन या प्रलोभन आदि देकर ले जाये गये प्रवासियोंसे ही हो सकता है। गिरमिटिया प्रवासी ले जानेकी बात तो लगभग अवैध होगी, और मैं इस सम्भावना की कल्पना भी नहीं कर सकता कि वाइसराय फिर गिरमिटिया प्रवासी ले जानेकी बातसे सहमत होंगे। और दूसरी बातमें शरारतकी सम्भावना है, क्योंकि उसी हालतमें प्रवासियोंको स्वतन्त्रताका सब्जबाग दिखाकर ले जाया जायेगा। किन्तु मैं आशा करता हूँ कि मद्रास और संयुक्त प्रान्तके श्रमिक वर्गके बीच काम करनेवाले लोग मजदूरोंको उन प्रलोभनोंके विरुद्ध आगाह कर देंगे, जो उन्हें दिये जा सकते हैं; यानी यदि सरकार मूर्खतापूर्वक तथाकथित पुनः प्रवासके लिए फिरसे भरती शुरू करे तो वे उसके विरुद्ध उन्हें आगाह कर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–३–१९२१

२१९. पुरानी कहानी

किसी भी महान् आन्दोलनके दौरान सनसनीखेज खबरें फैलाना एक आम बात हो जाती है। कहते हैं, लाहौरमें एक अखबारी पोस्टरमें बड़े मोटे-मोटे अक्षरोंमें यह खबर छापी गई है कि मैंने 'नवजीवन' [के अमुक अंक] में कहा है कि इस वर्ष स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि इस वर्ष श्री शास्त्रियर तथा परांजपेका अपमान किया गया है। मैंने 'नवजीवन' का वह अंक देखा, और उसमें मुझे ऐसा कुछ नहीं मिला जिससे ऐसा निष्कर्ष निकाला जा सकता हो। "स्वराज्य देरसे मिलेगा"[1], इस शीर्षकके अन्तर्गत मैंने बम्बईमें श्री शास्त्रियरकी सभाओंमें श्रोताओंके आचरणकी कड़ी आलोचना की है, और कहा है कि ऐसा आचरण अवश्य ही हमारी प्रगतिके मार्गमें बाधक सिद्ध होगा। उसी लेखमें मैंने यह भी समझाया है कि यदि हुल्लड़बाजीके ऐसे प्रदर्शन न हों तो हमें स्वराज्य प्राप्त करनेमें एक वर्ष भी नहीं लगे। मेरे विश्वासके बारेमें किसीको चिन्ता नहीं होनी चाहिए। मैं चाहता हूँ कि लोग मेरे विश्वासोंके बारेमें सोचना बन्द कर दें,

१. १३–२–१९२१ का।

और स्वयं किसी बातमें विश्वास करना सीखें। यदि मैं भारतके सभी लोगोंमें वैसा ही गहरा विश्वास उत्पन्न कर सकूँ, जैसा मेरा है, तो भारत आज ही स्वराज्य प्राप्त कर सकता है। क्योंकि दुनियाकी कोई भी ताकत एक होकर काम करनेवाले तीस करोड़ लोगोंके इस राष्ट्रकी इच्छाके आड़े नहीं आ सकती।

किन्तु सर विलियम विन्सेंटने अभी उसी दिन बहुत कृपापूर्वक विधान-सभाको बताया था कि भारत स्वशासित उपनिवेशोंका दर्जा भी प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि उस स्थितिमें वह बहुत आसानीसे किसी भी आक्रमणकारी शक्तिका शिकार हो जायेगा, और यदि वैसा न भी हुआ, तो आन्तरिक झगड़ोंके कारण ही उसके टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। यदि यह सत्य है, तो भारतमें ब्रिटिश शासनके लिए यह सबसे बड़े कलंककी बात है। किन्तु मैंने इससे पहले कहा है कि हमें न तो विदेशी आक्रमणोंसे, और न आन्तरिक अराजकतासे ही डरनेकी कोई आवश्यकता है। ब्रिटिश शासनने निश्चय ही हमें पुरुषार्थहीन बना दिया है। चूँकि हमें अपने शासकोंने बिलकुल निःशस्त्र कर दिया, इसलिए हमारी लड़नेकी शक्ति कम हो गई है। "फूट डालो और राज करो" की नीति निश्चय ही कुछ समयतक हिन्दुओं और मुसलमानोंको अलग रखनेमें सफल रही। किन्तु हमारे समान दुर्भाग्यने हमें इस विपत्तिकी घड़ीमें भाई-भाई बना दिया है। यदि हम विदेशी कपड़ा पहनना छोड़ दें और विदेशोंसे सिर्फ ऐसे ही मालका व्यापार करें जिसकी हम जरूरत समझें तो हमें विदेशी आक्रमणसे डरनेकी आवश्यकता नहीं है। दक्षिण आफ्रिकाके पास बहुत मामूली स्थायी सेना है और जलसेना तो है ही नहीं। यह सच है कि वहाँका प्रत्येक बोअर मर्द लड़ाका है। किन्तु लड़ाका होनेके गुणने ही दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंको एक राष्ट्र नहीं बनाया है। एकत्वकी चेतना तथा अपने देशके लिए मर-मिटनेकी सामर्थ्यने उन्हें राष्ट्र बनाया है। एकत्वकी चेतनाके गुणकी हममें नित्य वृद्धि हो रही है; इसके साथ ही मर-मिटनेकी शक्ति भी अवश्य आयेगी। इसके लिए अंग्रेजी स्कूलों अथवा कौंसिल-भवनोंमें प्रशिक्षण प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं है। और चूँकि मुझे लगता है कि भारत अपनी एकताको अप्रत्याशित रूपसे तेजीके साथ अनुभव करता जा रहा है, इसलिए मैं विश्वास करता हूँ कि हममें एकता और शक्तिकी चेतनाका इतना विकास कर लेनेकी पूरी सम्भावना है कि हमारी तत्काल स्वराज्यकी माँगको कोई अस्वीकार न कर सके। अराजकताके हौअेसे हमें नहीं डरना चाहिए। यद्यपि बम्बईकी सड़कपर कभी-कभी कोई पठान अपने पागलपनका परिचय दे बैठता है और यद्यपि ननकाना साहबमें कोई महन्त कभी-कभी राक्षसी कृत्य भी कर बैठता है, तथापि मूलतः हम भले और सीधे-सादे तथा शान्तिप्रिय लोग हैं। और जब सिख, गुरखे, राजपूत और पठान, सभी अपने आपको एक ही राष्ट्र मानने लगेंगे तब अगर हम चाहेंगे तो हममें इतनी सामरिक शक्ति भी आ जायेगी कि लुटेरोंके बड़ेसे-बड़े दलका भी, जो हमारा कोई दोष न होनेपर भी हमें लूटना चाहेगा, हम मुकाबला कर सकेंगे। हमारे शासक तो हमें बराबर यही शिक्षा देते रहे हैं, हममें यही भावना भरते रहे हैं कि हम असहाय हैं। और इसी शिक्षाने मेरी आत्माको उस प्रणालीके विरुद्ध उठ खड़ा होनेको मजबूर कर दिया है, जिसे

वे इतने वर्षोंसे और इतनी हृदयहीनताके साथ चलाते आ रहे हैं। जो चीज हमारी प्रगतिके मार्गमें बाधक हो रही है वह हमारा यही विश्वास है कि हम असहाय हैं। यह आश्चर्यकी बात है कि हम आज भी बन्धनमें हैं। स्वाभाविक यह होगा कि हम आजसे ही अपने-आपको स्वतन्त्र अनुभव करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-३-१९२१

२२०. अखिल भारतीय तिलक स्वराज्य कोष

तिलक स्मारकका संगठन एक बड़े व्यवस्थित ढंगसे करनेकी दृष्टिसे पंजाब प्रथम स्थान पानेका अधिकारी है। नई समितियाँ अबतक सुचारुरूपसे काम करनेकी स्थितिमें हो गई होंगी और हमें समूचे देशमें कोष संग्रह करनेवाले लोग नियुक्त कर देने चाहिए। पंजाबमें कांग्रेस समितिने एक रुपयेकी रसीदें निकाली हैं, और इस तरह यह आशा की है कि जो दे सकते हैं, वे एक रुपयेसे कम नहीं देंगे। पहले एक स्मारक-सप्ताह मनानेकी घोषणा की गई, जिसे बादमें बढ़ाकर एक पखवाड़ेका आयोजन कर दिया गया, और विश्वस्त स्वयंसेवक कोष-संग्रहके लिए घूमने लगे। उन्होंने उस प्रान्तमें एक लाखसे अधिक रुपये जमा कर लिये हैं। समितिने अपने योगदानके रूपमें २५,००० रुपये अखिल भारतीय कांग्रेस समितिको भेज भी दिये हैं।

मेरी रायमें, शेष प्रान्त भी पंजाबके इस समुचित उदाहरणका अनुसरण करें तो उससे बेहतर कुछ नहीं हो सकता। जितनी रकम हमें जमा करनी है सो पहलेसे निश्चित कर लेना जरूरी है। पूरे भारतकी ओरसे एक करोड़ रुपया देना लोकमान्य जैसे महान् देशभक्तकी स्मृतिके प्रति अत्यन्त साधारण सम्मान प्रदर्शित करना है। जब हम उस उद्देश्यकी बात सोचते हैं, जिसके साथ इस हुतात्माकी स्मृति जुड़ी है तो यह रकम बहुत मामूली जान पड़ती है। स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए एक करोड़ रुपये देना बहुत नहीं है। और यहाँ इस बातकी ओर भी ध्यान दिलाया जा सकता है, कि यह पैसा विदेशोंमें अथवा अन्य प्रकारके प्रचार कार्यमें नहीं वरन् कताई, बुनाई तथा अन्य शैक्षणिक कार्योंमें खर्च किया जायेगा। यह पैसा हमारे बच्चोंके शिक्षणपर खर्च किया जायेगा। धन-संग्रहका कार्य इक्कीस प्रान्तोंमें करना है, और सारा काम आगामी ३० जूनतक समाप्त कर दिया जाना चाहिए। प्रत्येक प्रान्तसे औसतन लगभग ५ लाख रुपये जमा करनेकी आशा की जायेगी। किन्तु बम्बई, गुजरात, बंगाल, पंजाब तथा ऐसे ही अन्य प्रान्तोंसे अपेक्षाकी जा सकती है कि वे, उड़ीसा अथवा आन्ध्र-जैसे प्रान्तोंसे अधिक संग्रह करेंगे।

कार्यकारिणी समितिने यह व्यवस्था करके कि प्रत्येक प्रान्त अपनी संग्रह की हुई राशिका ७५ प्रतिशत प्रान्तीय खर्चके लिए अपने पास ही रख ले, काम और भी सरल बना दिया है। अतः ऐसी आशाकी जाती है कि इस महान् स्मारककी

व्यवस्था करनेमें एक क्षणका भी विलम्ब नहीं किया जायेगा। यह एक ऐसे व्यक्ति-की स्मृतिका समुचित और भव्य सम्मान होगा, जिसने स्वराज्य-प्राप्तिके लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया, और जिसे मृत्युके समय भी केवल स्वराज्यका ही ध्यान था। कार्यकारिणी समिति निस्सन्देह साधिकृत निर्देश जारी करेगी। किन्तु जब हमारे सामने हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य है तब हमें निर्देशोंकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। हम सरलतासे पंजाबियोंके उदाहरणका अनुकरण कर सकते हैं, और आगामी अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको दिखा सकते हैं कि अपने कर्त्तव्यका पालन करनेके लिए हमने क्या किया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–३–१९२१

२२१. अकालसे संरक्षण

जब मैंने यह लिखा था कि चरखा एक मामूली घरेलू यन्त्र होकर भी अकालके विरुद्ध बीमा ही है तब उसके समग्र प्रभावका मुझे भी पूरा अनुमान नहीं था। तर्कके सहारे जिस बातका मुझे उस समय कुछ अस्पष्ट-सा अनुमान हुआ था वह अब अनुभवकी पैनी आँखोंसे एकदम स्पष्ट दिखाई दे रही है। बीजापुर, अहमदनगर तथा गुजरातके कुछ भागोंमें अकाल सरपर खड़ा है।[1] हमें चाहिए हम ध्यानपूर्वक विचार करें कि चरखा किस प्रकार अकालसे रक्षा करनेका साधन बन सकता है।

थोड़ा हिसाब करके देखें। एक चरखेका दाम लगभग छः रुपये होगा। यदि तीन व्यक्तियोंके परिवारको हम दो चरखे दे दें और यदि सब मिलकर आठ-आठ घंटे चरखा चलायें तो वे प्रतिदिन कमसे-कम छः आने कमा सकते हैं। मेरा दावा है कि छः आने कमा लेनेपर परिवार इस संकट-कालमें भी अपना निर्वाह कर सकेगा। मुझे लगता है कि वे सब बारह-बारह घंटे चरखा चला सकते हैं, क्योंकि उन्हें अपने ही घरोंमें अपनी सुविधानुसार काम करना है। वे प्रतिदिन नौ आने कमाकर अपनी रोजाना आयमें ५० प्रतिशत वृद्धि कर सकते हैं। इस प्रकार १२,००० की लागतसे हम चार महीनेतक एक हजार परिवारों यानी तीन हजार व्यक्तियोंका भरण-पोषण कर सकते हैं। इसके बदलेमें हमें उनसे $\frac{\text{१,००० परिवार} \times \text{६ आने} \times \text{१२० दिन}}{\text{१६}} = \text{४५,००० रुपये}$ मजदूरीके रूपमें वसूल होते हैं। जरूरी बात है कि सबसे पहले तो अकाल-सहायता कार्यके लिए धुनी हुई रुई और चरखोंके अलावा हमें ४५,००० रुपयोंका भी प्रबन्ध करना होगा। अकाल पीड़ित लोगों द्वारा काते गये सारेके-सारे सूतका उपयोग राष्ट्र कर सकेगा। सीखनेवाले शुरू-शुरूमें थोड़ा नुकसान भी करेंगे। मैं थोड़ा शब्दका प्रयोग जानबूझकर कर रहा हूँ क्योंकि उस रुईका कुछ-न-कुछ उपयोग तो हो ही सकता है।

१. १९२१ के प्रारम्भमें सरकारने बीजापुर जिलेमें अकालकी घोषणा कर दी और बम्बई अहातेके पाँच जिलोंको अभावग्रस्त क्षेत्र मान लिया था।

यदि हम इन परिवारोंको यह चरखा भेंटमें दे दें तो उनके कभी भूखों मरने-की नौबत न आये और न उन्हें पूँजीकी आवश्यकता रहे। भविष्यमें इन परिवारोंका सिर्फ इस बातका ध्यान रखना होगा कि उन्हें रुई मिलती रहे और जितना भी सूत वे कातें वह तत्काल खरीद लिया जाये। यह प्रयोग कई स्थानोंपर किया जा सकता है और मेरा तो यह दावा है कि यदि हम प्रत्येक घरमें चरखेका प्रचलन कर सकें तो पूरे राष्ट्रका अकालके विरुद्ध प्रायः बीमा ही हो जाता है। मैंने यहाँ यह मान लिया है कि अभाव पैसेका है और अकाल पीड़ित लोगोंके पास यदि पैसा हो तो वे अन्न खरीद सकते हैं। तीन वर्ष पहले खेड़ामें भी यही हुआ था और पिछले वर्ष उड़ीसामें[1] भी। बीजापुर और गुजरातका भी यही हाल हुआ है। इसलिए मैं जनतासे यह प्रयोग करनेके लिए कहूँगा। दानशील व्यक्तियोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे सरकारी संगठनोंको धन देकर अपनी उदारताका अपव्यय न करें, क्योंकि ये संस्थाएँ तो जनताको उत्तरोत्तर पंगु ही बनाती चलती हैं। मैं उन्हें सलाह दूँगा कि वे स्वयं विश्वसनीय कार्यकर्त्ताओंकी समितियाँ बनायें और अपने आप यह प्रयोग करके देखें। निःसन्देह वे देखेंगे कि इसमें घाटे या असफलताकी कोई गुंजाइश नहीं है और इसमें इस बातकी पूरी-पूरी सम्भावना तो है ही कि वे परिवार आत्मनिर्भर बन सकेंगे; साथ ही उन्हें यह भी नहीं लगेगा कि वे लोगोंकी खैरातपर जी रहे हैं।

किसीको एक क्षणके लिए भी यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि चरखा चन्द दिनों-के मनबहलावके लिए खिलौना है। हजारों चरखोंका निर्माण हुआ है और वे चलाये जा रहे हैं। दरिद्रोंको प्रतिमास हजारों रुपये बाँटे जा रहे हैं। हम कुछ और समय ईमान-दारी और समझदारीसे जमकर काम करें तो चरखा अपना पक्का स्थान बना लेगा। ऐसी संस्थाओंका संगठन होनेतक मैं 'यंग इंडिया' के उन पाठकोंसे जो यह मानते हैं कि चरखा अकालसे संरक्षणका साधन है, 'यंग इंडिया' के प्रबन्धकको अपना चन्दा भेजनेका अनुरोध करता हूँ। चन्देकी रकमोंकी प्राप्ति-सूचना दी जायेगी और उस रकम-का उपयोग अकाल-ग्रस्त क्षेत्रमें सिर्फ चरखेके प्रचार और उसकी देखरेखकी उचित व्यवस्था करनेके लिए किया जायेगा। जब कोई समिति बना ली जायेगी तो यह राशि समितिको सौंप दी जायेगी। कुछ भी हो चन्देका उपयोग उसी उद्देश्यके लिए किया जायेगा जिसका मैंने उल्लेख किया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६–३–१९२१

१. देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ४३१-३२; ४३९-४०।

२२२. स्वर्गीय डा० रासबिहारी घोष[1]

पिछले सोमवारको बंगालके सुप्रसिद्ध विधिवेत्ता डा० रासबिहारी घोषका देहान्त हो गया। उनकी आयु ७६ वर्षकी थी। उनका ज्ञान अगाध था और दानवीरता भी उतनी ही श्रेष्ठ थी। उनके भीतर असाधारण देशभक्तिकी भावना थी। वे अपने अनवरत उद्यमसे युवकोंको भी मात कर देते थे। उनके अंग्रेजीके ज्ञानकी भी अत्यधिक प्रशंसा की गई है। फिर भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि वे एक बीते हुए युगके प्रतिनिधि थे। भारतके अत्यन्त जाने-माने विद्वान् विदेशी शासन और अराष्ट्रीय शिक्षण प्राप्त करनेके कारण किस प्रकार देशके लिए किसी कामके नहीं रहते, डा० रासबिहारी घोष इसका एक ज्वलन्त उदाहरण हैं। उन्होंने अपनी युवावस्था यूरोपीय लेखकोंको भी मात करनेवाली अंग्रेजी शैलीको हस्तगत करनेमें बिता दी जब कि उन्हें तन-मनसे अपनी मातृभाषा सीखनेका प्रयत्न करना था। उन्होंने अपना अगाध पाण्डित्य पश्चिमी जीवन-दर्शनपर आधारित कानूनी मुद्दों तथा पाश्चात्य विचारोंकी व्याख्या तथा विश्लेषणमें खपा दिया। कांग्रेसका सदस्य बननेके बाद उन्होंने केवल राष्ट्रीय परिषद्के उद्देश्य निश्चित किये। सूरतमें उन्होंने जो सिद्धान्त निर्धारित किया था, नागपुरकी राष्ट्रीय कांग्रेसको उसे इस वर्ष बदलना पड़ा। उन्होंने कलकत्ता विश्व-विद्यालयको दस लाख रुपये दिये; अलबत्ता इस शर्तपर कि इस रकमके ब्याजसे केवल भारतीय प्रोफेसर ही रखा जाना चाहिए। उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालयोंको भारी रकमें दान कीं। इस प्रकार उन्होंने अपनी योग्यता एक विदेशी भाषाके सम्वर्धनमें, अपनी प्रतिभा सरकारी अदालतोंकी सहायतामें और अपना धन ऐसी सरकारकी शिक्षण-पद्धतिके पोषणमें जिसमें उन्हें कतई विश्वास नहीं था तथा अपने व्यक्तित्वकी सारी शक्ति राष्ट्रीय उद्देश्यको सीमित करनेमें लगा दी। कुछ भी हो यदि ऐसा व्यक्ति स्वराज्यके युगमें जन्म लेता तो उसका जीवन स्वर्णिम बन जाता और समस्त संसार उसकी सेवाओंका मूल्यांकन कर पाता। उन्होंने विधान परिषद्में जो दो प्रस्ताव पास कराये उनसे स्पष्ट है कि भारतके लोगोंके हृदयमें अपने देशके प्रति जो असीम सम्मान और स्नेह है उसे वह अच्छी तरह समझते थे। यदि उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा प्राप्त की होती तो वे भी इसी भावना और स्नेहसे प्रेरित हो देशकी उच्चतम सेवाएँ कर पाते। जनता उनको उतना नहीं समझ पाई है जितना कि सरकार; क्योंकि पाश्चात्य संस्कृतिमें पलनेके कारण वे अपने ही लोगोंके लिए अजनबी हो गये थे। पर उनका अनथक परिश्रम आज भी प्रत्येक व्यक्तिके लिए अनुकरणीय है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १६–३–१९२१

१. डा० रास बिहारी घोष (१८४०–१९२१); अध्यक्ष, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, १९०७ व १९०८।

२२३. पत्र : मगनलाल गांधीको

वर्धा जाते समय
बुधवार [१६ मार्च, १९२१][1]

चि० मगनलाल,

एक बात तो यह कि दाभोलकरने ५०० रु० चरखे और स्वदेशी आन्दोलनके लिए और वसुमतिबेनने ५०० रुपये आश्रमके लिए दिये हैं। इन दोनों रकमोंके चेक रेवाशंकरभाईको दे दिये गये हैं।

डाक्टर मेहताने आश्रमको डेढ़ लाख रुपये दिये हैं। यह रकम दो वर्षोंमें जरूरतके मुताबिक ले लेनी है। रकम इमारत खाते दी गई है। इसमें से बीस हजार रुपये रेवाशंकर भाईसे अभी ले सकते हो। जितना इमारती काम प्रारम्भ किया जा चुका है फिलहाल उसे ही पूरा कर लेना है। शेष स्थगित रखो। सेठ रुस्तमजीसे[2] मिला हुआ रुपया तथा हमारे पास पड़ी हुई अन्य सभी रकमोंको मैं इनसे अलग ही रखना जरूरी मानता हूँ। ये डेढ़ लाख रुपये अन्तरात्मासे की गई ईश्वर प्रार्थनाके उत्तरमें प्राप्त हुए हैं, ऐसा समझना। अच्छे चरखेकी कसौटीपर खरा उतरना कोई मामूली बात नहीं है। डेढ़ रुपयेकी कीमतवाला सूरतका चरखा देख लेना, मुझे वह बहुत ही पसन्द आया। उससे सूत तो बहुत काफी मात्रामें काता जा सकता है। उसका निर्माता कोई साधु पुरुष है। यह विद्यार्थी है और असहयोगमें शामिल हो गया है। मैंने उसे तुम्हारे पास जानेको लिखा है। उसे प्रोत्साहित करना। इस नमूनेका एक चरखा मैंने साथ रख लिया है। भाई शंकरलालका यह खयाल है कि हमारे नमूनेके चरखे बनानेमें लकड़ी बहुत ज्यादा लगती है। इस व्यक्तिने विश्वास दिलाया है कि उसके चरखेमें लकड़ी कम लगेगी और वह चक्कर भी ज्यादा देगा। तुम्हारा खर्चेपर गहराईसे सोचना जरूरी है। हमें पाँच करोड़ घरोंमें चरखा प्रविष्ट कराना है। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए खूब सस्ता और मजबूत चरखा ईजाद होना जरूरी है। इस विषयमें खूब सोचो और जो-जो नमूने ईजाद होते हैं उनके गुण दोषोंका अध्ययन करो। जो काम भाई शंकरलाल कर रहे हैं उसे समझ लेना बहुत जरूरी है। डेढ़ रुपयेवाले चरखेको खूब चलाकर उसकी रिपोर्ट भी तुम्हें तैयार करनी चाहिए।

आश्रमके विद्यार्थियोंपर विशेष ध्यान देने तथा उनसे अधिक और बढ़िया किस्मका सूत कतवाना आवश्यक है। रुई धुननेकी क्रिया भी हमें अच्छी तरह सीख लेनी चाहिए। धुनना कितने समयमें सीखा जा सकता है, लिखना। हमारे बीच कताई-धुनाईके प्रत्येक अंगका विशेष ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति होने चाहिए। बाहरी प्रवृत्तियोंको अपने-आप चलने देकर भीतरकी प्रवृत्तियोंको बढ़ाना और दूसरोंके किये गये कामोंपर

१. गांधीजी बम्बईसे वर्धाके लिए इसी तारीखको रवाना हुए थे।

२. पारसी रुस्तमजी, जिन्होंने ४०,००० रुपयोंकी मदद की थी। देखिए पृष्ठ १६०, पा० टि० २।

नजर रखना जरूरी हो गया है। कताईके सम्बन्धमें लक्ष्मीदासकी शिक्षा पद्धति तथा तुम्हारी शिक्षापद्धतिमें जो अन्तर हो उसे समझकर जो पद्धति शास्त्रीय उतरे उसे अपनाया जाना चाहिए।

अपने पत्रमें आश्रमकी अन्य उल्लेखनीय बातोंके बारेमें भी लिखना।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७९१) से।
सौजन्य: राधाबेन चौधरी

२२४. भाषण: बम्बईकी सार्वजनिक सभामें

१६ मार्च, १९२१

श्री गांधी गुजरातीमें बोले। उन्होंने कहा, मैं आप लोगोंको देशकी वर्तमान स्थितिके बारेमें कुछ बताना चाहता हूँ। मैंने सारे देशका दौरा किया है और इस दौरेमें मुझे काफी अनुभव प्राप्त हुए हैं; किन्तु इतना समय नहीं है कि देशके विभिन्न भागोंमें जो-कुछ मैंने देखा या जाना है, वह सब विस्तारसे आपको बता सकूँ। मैं आपको केवल इतना ही बता सकता हूँ कि यदि आप असहयोगके प्रसारके लिए अपना कार्य उसी प्रकार शान्तिपूर्ण ढंगसे करते रहे, जिस प्रकार देशके सभी भागोंमें पिछले पाँच महीनोंसे करते रहे हैं, तो एक सालके अन्दर आपको स्वराज्य मिलना निश्चित है; और टर्कीकी अन्यायपूर्ण सन्धि भी सुधार ली जायेगी तथा पंजाबके साथ किये गये अन्यायोंका भी परिशोधन होगा।

पिछले पाँच महीनोंकी आपकी बड़ी उपलब्धि यह है कि अब रैयत समझ गई है कि सरकारके दिये खिताबोंका कोई महत्व नहीं है; नौकरशाही द्वारा दी जानेवाली शिक्षा कोई शिक्षा नहीं है और विदेशी वस्तुओंका कोई मूल्य नहीं है। रैयत यह भी समझ गई है कि नौकरशाहीकी दी हुई कानूनी अदालतोंका उसके लिए कोई व्यावहारिक उपयोग नहीं है।

आगे बोलते हुए उन्होंने कहा कि न केवल रैयतने, वरन् अन्य वर्गोंने भी इस सत्यको पहचान लिया है। जो विद्यार्थी यहाँ मौजूद हैं, वे ईमानदारीसे ऐसा नहीं कह सकते कि वे सरकारी स्कूलोंमें पढ़ना सम्मानजनक समझते हैं, और यही हाल नौकरशाहीकी अदालतोंमें वकालत करनेवाले वकीलोंका भी है। बंगाल, पंजाब तथा संयुक्त प्रान्तके अपने दौरोंमें मैं सैकड़ों वकीलों और विद्यार्थियोंसे मिला। वे लोग शर्म महसूस करते जान पड़े — निश्चय ही अपने आपपर। वे उन संस्थाओंसे अपना नाता अबतक नहीं तोड़ पाये जिन्हें वे मात्र पाखण्ड मानते हैं। मैंने यह भी देखा कि धीरे-धीरे वे (विद्यार्थी और वकील) भी वर्तमान ब्रिटिश शिक्षाप्रणाली तथा ब्रिटिश अदालतोंकी ओरसे उदासीन होते जा रहे हैं। ऐसे आशाजनक संकेत मिले हैं कि आगामी सात

महीनोंमें इन वर्गोंमें उक्त दिशामें विरक्तिकी भावना पूरी तरह दृढ़ हो जायेगी। यह एक स्वीकृत तथ्य रहा है कि भारत किसी भी अन्य वर्गके लोगोंसे वकीलोंकी अपेक्षा अधिक सेवाकी उम्मीद नहीं कर सकता। जहाँतक विद्यार्थियोंका सम्बन्ध है, उनके हृदय कोमल होते हैं और मस्तिष्क अपरिपक्व। इसीलिए वे अपने उन स्कूलों व कालेजोंको छोड़नेमें झिझक रहे हैं जिन्हें वे अन्तःकरणसे नापसन्द करते हैं। परन्तु मैं आपको बता दूँ कि यदि आप यह जानते हुए भी कि अमुक चीज बुरी है, उसे नहीं छोड़ते तो इससे स्वराज्य प्राप्तिमें बाधा पड़ेगी।

आमजनता और अन्य वर्ग, सभी समझ गये हैं कि असहयोग आत्माकी शुद्धिका भी एक उपाय है। मैंने देशके उत्तरी भागमें जो-कुछ देखा, उससे मुझे बहुत ही खुशी हुई। मैंने देखा कि अधिकतर लोगोंके शरीरपर एक भी विदेशी वस्त्र नहीं था। जो विद्यार्थी स्कूल-कालेजोंसे बाहर आ गये हैं वे अनेक प्रकारसे राष्ट्रीय कार्य कर रहे हैं; और मेरी समझमें नहीं आता कि असहयोग करनेवाले विद्यार्थी अराजकतावादी कैसे बन सकते हैं, जैसी कि कुछ हल्कोंमें चर्चा है। मेरी समझमें अराजकतावादियों-जैसे कायर मनके लोग राष्ट्रकी पुकारपर इतने साहसके साथ कभी अपने स्कूलों और कालेजोंसे असहयोग नहीं कर सकते।

आगे बोलते हुए श्री गांधीने कहा कि मुझे यह सुनकर दुःख हुआ कि श्री शास्त्री और श्री परांजपेका सार्वजनिक सभाओंमें अपमान किया गया। मेरी समझमें नहीं आता कि अपने उन देशभाइयोंका, जिनके विचार आपसे नहीं मिलते, अपमान करके आपको क्या मिल सकता है। मेरा मन बड़ा खिन्न हुआ, जब मैंने सुना कि बनारसमें उस संन्यासी, पंडित मदनमोहन मालवीयको भी अपने देशवासियोंसे उनकी देश-सेवाओंके अनुरूप व्यवहार नहीं मिला। आपको यह बात याद रखनी चाहिए कि आपको यह सब-कुछ सहना होगा; आपको किसीसे भी घृणा करनेका हक नहीं है। जिस तरह कोई व्यक्ति विचार न मिलनेपर भी अपनी पत्नी, पुत्र या बहनकी उपस्थितिको सहन करता है, उसी तरह आपको अपने देशभाइयोंके सभी दृष्टिकोणोंको सहन करना होगा। यदि आप नम्रतापूर्वक लोगोंकी विवेक-बुद्धिसे अपील करके किसीको असहयोगके रास्तेपर नहीं ला सकते तो आप बलप्रयोगसे वैसा कभी नहीं कर सकते। जबतक आप देशके सभी मतोंको सहन नहीं कर पाते तबतक आप कोई भी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करनेके योग्य नहीं हैं। आपका शस्त्र असहयोग है, जो किसीसे घृणा न करनेका उपदेश देता है। यदि मुझसे पूछा जाये तो मैं सबसे यही कहूँगा कि मैं चैम्सफोर्ड, डायर या ओ'डायरतक से घृणा नहीं करता। मैं तो केवल उनकी भयानक भूलें बता रहा हूँ।

देशके सभी भागोंमें सरकारने अपना शिकंजा और भी कस दिया है, सख्त कर दिया है। शुरूमें सरकार आपके प्रति उदासीन थी, फिर वह मजाक उड़ाने लगी और बुरा-भला कहने लगी; इसके बाद वह दमनपर उतर आई। मैं तो सिर्फ यही कह सकता हूँ कि यह सब हमारे भलेके लिए है और यदि आप (असहयोगी) उसी प्रकार

शान्तिपूर्ण ढंगसे आगे बढ़ते रहे जिस प्रकार पिछले पाँच महीनोंमें बढ़े हैं, तो आगामी सात महीनोंके अन्दर आपको स्वराज्य मिल जायेगा। जरूरत केवल इस बातकी है कि आप सुसंगठित और शान्तिपूर्ण ढंगसे बढ़ते रहें। आपको विद्यार्थियोंको बाहर निकल आनेके लिए प्रेरित करनेकी दृष्टिसे स्कूलों और कालेजोंके दरवाजोंपर नहीं जाना चाहिए; बल्कि आपको चाहिए कि सभीको असहयोगके सत्यकी प्रतीति करायें।

स्वदेशी और बहिष्कारके बारेमें मैं आपसे यह कहना चाहूँगा कि अभी आप देशसे विदेशी मालका पूर्ण बहिष्कार नहीं कर सकते। आपको उन्हीं विदेशी चीजोंका बहिष्कार करना है जो आप देशमें पैदा कर सकते हैं। उन चीजोंमें कपड़ा मुख्य है। यदि आप कपड़ा बुन सकते हैं तो आप आसानीसे विदेशी कपड़ेका बहिष्कार कर सकते हैं। इस सम्बन्धमें आपको यह बता देना भी मेरा फ़र्ज है कि फिलहाल भारतीय मिलोंका बहिष्कार करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि यदि आप ऐसा करेंगे तो देश और भी गरीब हो जायेगा। परन्तु आपको यह ध्यान जरूर रखना है कि मिलें अपना काम ठीकसे करती रहें। मिलोंको केवल "पूँजीपतियों" के लिए काम नहीं करना चाहिए, बल्कि जनताके हितके लिए भी काम करना चाहिए। आपको अब अपनी खादीका मूल्य बढ़ानेकी कोशिश करनी चाहिए। आप लंकाशायरको यह महसूस करा दें कि उसके बिना भी हमारा काम चल सकता है। परन्तु मेरे कहनेका यह तात्पर्य नहीं कि तत्काल लंकाशायरका बहिष्कार कर दिया जाये, क्योंकि मैं जानता हूँ कि ऐसा करनेसे जापानको मौका मिल जायेगा।

भाषण समाप्त करते हुए श्री गांधीने कहा, ६ अप्रैल[1] आपके लिए एक कड़ी कसौटीका, गहरे आत्म-निरीक्षणका दिन होगा। उस दिन आपकी परीक्षा होगी कि आप सच्चे दिलसे स्वराज्य चाहते हैं या नहीं। मैं उस दिन महान् महात्मा तिलककी स्मृतिमें एक करोड़ रुपये चाहता हूँ। निश्चय ही मैं यह रुपये अपने बच्चोंके लिए या लोकमान्य तिलकके बच्चोंके लिए नहीं चाहता, वरन् आपके लिए और आपके बच्चोंके लिए चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि आपमें से बहुतेरे लोग कहेंगे कि मुद्रा बाजार . . .[2] और मन्दीके कारण आपका व्यापार ठीकसे नहीं चल रहा है। मैं जानता हूँ कि कुछ अन्य लोग कहेंगे कि वे तंगदस्त हैं और उन्हें बेटियोंके विवाह करने हैं। परन्तु मैं कहूँगा कि लोग आसानीसे वह रकम तो दे ही सकते हैं जो वे धूम्रपानपर खर्च करते हैं। ढेर सारे गहने दिये बिना केवल खादी पहनाकर ही बेटियोंका विवाह सम्पन्न किया जा सकता है। भारतके स्त्री-पुरुषोंको अपने पापोंका कुछ प्रायश्चित्त तो अवश्य करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-३-१९२१

१. सत्याग्रह सप्ताहका पहला दिन।

२. यहाँ कुछ शब्द छूट गये हैं।

२२५. भाषण : बम्बईके नेशनल कालेजमें

१६ मार्च, १९२१

. . .उन्होंने कहा कि समस्त शिक्षाका सार दया है — सबके प्रति दया; मित्रोंके प्रति, शत्रुओंके प्रति, मनुष्यों और पशुओंके प्रति। शिक्षाका मुख्य उद्देश्य चरित्रका निर्माण करना है जो ब्रह्मचर्यका कठोरतासे पालन करनेसे ही हो सकता है। श्री गांधीने इसके बाद छात्रोंको बताया कि उनके लिए हिन्दी सीखना और सूत कातना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि नवयुवकोंकी शिक्षा जिस तरीकेसे राष्ट्रीय स्कूलोंमें हो रही है उस तरीकेसे देशभरमें होती तो स्वराज्य प्राप्त करनेमें कोई कठिनाई न पड़ती।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १७–३–१९२१

२२६. भेंट : 'डेली हैरॉल्डके' प्रतिनिधिसे

१६ मार्च, १९२१

[भेंटकर्ता :] आप विदेशोंमें प्रचार करनेके विरुद्ध क्यों है?

गांधीजी : हमारा आन्दोलन सफलताके लिए मुख्य रूपसे प्रचारपर नहीं, बल्कि आन्तरिक सुधार और शक्तिपर निर्भर है। पहली बात तो यह है कि भारतसे बाहर चाहे एक भी व्यक्ति यह न जाने कि हम क्या कर रहे हैं, किन्तु यदि हम वास्तवमें शक्ति अर्जित कर लें तो यह सरकार अवश्यमेव छिन्न-भिन्न हो जायेगी। दूसरी बात यह कि सरकार इतनी अच्छी तरह संगठित है कि जब उसके विरुद्ध किये जानेवाले किसी प्रचारका असर पड़ने लगता है तब वह उसे जारी नहीं रहने देती। तीसरी बात यह है कि हमारा प्रचार हमारे सीमित साधनोंपर निर्भर होगा; सरकारके पास विरोधी प्रचारके लिए असीम साधन हैं; फिर उसका प्रचार इतना सिद्धान्तहीन होता है कि उसे समयपर निरस्त करना असम्भव है। इसलिए मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि हमें अपने आन्दोलनके प्रचार-प्रसारके लिए उसकी आन्तरिक सचाईपर ही निर्भर रहना चाहिए।

आजकल भारतमें जो दमन चल रहा है उसके बारेमें आपका क्या विचार है?

दमनसे मालूम यह पड़ता है कि आन्दोलनका दबाव महसूस किया जा रहा है; इसलिए मैं इसका स्वागत करता हूँ। हम बम्बईमें रहनेवाले लोगोंकी किस्मत अच्छी है। इस प्रान्तमें दमनका स्वरूप उतना प्रचण्ड नहीं है जितना कि देशके अन्य भागोंमें। यदि जनता शान्त और अविचलित रहे तथा दमनका जवाब उसके विरुद्ध आन्दोलन करके नहीं, वरन् और अधिक त्याग और बलिदान करके दे तो दमन स्वयंमेव समाप्त हो

जायेगा। जिनकी ईमानदारी, चरित्र और प्रतिष्ठामें किसी प्रकारके सन्देहकी गुंजाइश नहीं है, अगर ऐसे लोगोंकी स्वतन्त्रतापर प्रतिबन्ध लगा देनेके बाद भी जनता नहीं दबती तो मैं नहीं समझता कि सरकार विचार और व्यवहार दोनों ही दृष्टियोंसे सर्वथा दोष-मुक्त किसी आन्दोलनको समाप्त करनेके लिए और भी अधिक प्रतिबन्ध लगानेकी मूर्खता करेगी। क्योंकि इस आन्दोलनके अहिंसात्मक स्वरूपने इस अत्यन्त अनुत्तरदायी सरकारको मात दे दी है, और परिणामस्वरूप अब वह हिंसाके बदले जन-मत और जन-चरित्रको दबाने और कुचलनेका निर्लज्ज प्रयास कर रही है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि समस्त भारतके कार्यकर्त्ता, यह समझते हुए कि देशकी शक्ति दिनोंदिन बढ़ रही है, इस दमनकी कोई परवाह नहीं करेंगे और कांग्रेस द्वारा प्रस्तुत योजनाके अनुसार राष्ट्रीय शक्तिका संगठन करते रहेंगे।

क्या आप नई विधान परिषदोंकी कार्यविधिके बारेमें ठीक जानकारीपर आधारित कोई राय दे सकते हैं?

जहाँतक मैं इन परिषदोंकी कार्यविधिको समझ सका हूँ, निराशावादियोंकी आशंकाएँ सही सिद्ध हो रही हैं। इसके कारण नौकरशाहीकी अनिष्ट करनेकी असली ताकतमें जरा भी कमी नहीं हुई है। वह ईमानदार लोगोंकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए अपनी कूटनीतिक क्षमताका अत्यन्त प्रभावकारी ढंगसे उपयोग कर रही है, और सारी ताकतोंसे निपटनेके लिए सिद्धान्तहीन व्यवहारका सहारा ले रही है। परिणाम यह है कि अब हमारे हाथोंमें पहलेकी अपेक्षा अधिक कीमती और सुन्दर दिखनेवाले खिलौने रख दिये गये हैं, ताकि हम रोएँ-चिल्लाएँ नहीं। मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि यह बात लॉर्ड सिन्हाके[1] प्रान्तकी अपेक्षा किसी अन्य प्रान्तमें अधिक सच नहीं उतरी है। बिहार एक ऐसा प्रान्त है जहाँ हिंसाका सबसे कम खतरा है, जहाँ नेताओंने आन्दोलनकी सम्पूर्ण भावनाको आत्मसात् कर लिया है, जहाँ नेताओंकी सम्पूर्ण शक्ति मद्य-निषेध, शिक्षा और उद्योग-धन्धोंपर केन्द्रित है। यदि सरकार केवल उदासीन रहती तो बिहारी पूरी तरहसे मद्य-विरोधी हो जाते और सारी दुनियाके सामने कानूनकी सहायता लिये बिना मद्य-निषेध-सम्बन्धी सुधारका एक दृष्टान्त रख देते। वे शिक्षा-आन्दोलनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन कर देते और करदाताओंका बोझ बढ़ाये बिना गरीबसे-गरीब आदमीके लिए भी शिक्षा सुलभ करा देते, तथा पुनः चरखेका प्रचलन करवाकर बिहारमें उसी तरह दूध-दहीकी नदियाँ बहा देते जैसी, मेरा विश्वास है, सचमुच एक समयमें बहती थीं। इसलिए दुनिया यह जान ले कि बिहारमें, और बिहारमें ही क्यों, समस्त भारतमें दमनका अर्थ है इन तीनों महत्वपूर्ण सुधार आन्दोलनोंका दमन। इस कसौटीपर कसनेसे नये विधान-मण्डलोंको कमसे-कम फिलहाल असफल ही घोषित करना चाहिए।

भविष्यके विषयमें आपका क्या खयाल है?

जहाँतक अनुमान लगा सकता हूँ, आन्दोलन अपने वर्तमान मार्गपर चलता रहेगा। हम दिनोंदिन हाथकी कताई और बुनाईपर ज्यादा ध्यान दे रहे हैं तथा इस तरह भारतको आर्थिक दृष्टिसे आत्मनिर्भर बना रहे हैं और शराबखोरीकी आदतको दूर

१. उस समय लॉर्ड सिन्हा बिहार और उड़ीसाके गवर्नर थे

करके भीतरी शुद्धिपर भी जोर दे रहे हैं। आलोचकगण चाहे जो कहें, लेकिन तथ्य यही है कि सरकार द्वारा चलाई जानेवाली अदालतों और शिक्षण-संस्थाओंका धीरे-धीरे परन्तु दृढ़ताके साथ बहिष्कार हो रहा है। हिन्दू-मुस्लिम एकता उत्तरोत्तर राष्ट्रीय जीवनका स्थायी अंग बनती जा रही है, और जहाँतक स्वराज्य-प्राप्तिका सम्बन्ध है, अहिंसा वह स्थिति पार कर चुकी है जब इसे मात्र एक प्रयोग या कार्यसाधक नीति समझा जाता था। अब यह तेजीसे धर्मका रूप ग्रहण करती जा रही है। मैं जन्मजात आशावादी हूँ और मेरा विश्वास है कि जिस गतिसे हम बढ़ रहे हैं, यदि उसी गतिसे बढ़ते रहे तो अक्तूबरसे पहले ही वह स्थिति आ जायेगी जब सरकार देखेगी कि उसका सर्वसम्मत जनमतके बलकी उपेक्षा करना असम्भव है और हम देखेंगे कि भारतमें स्वराज्य स्थापित हो गया है।

सेवरकी सन्धिकी[1] शर्तोंमें प्रस्तावित संशोधनके बारेमें आप क्या सोचते हैं?

मैंने तो नई शर्तोंपर केवल एक सरसरी नजर ही डाली है। जहाँतक मैं समझ सकता हूँ उनका उद्देश्य भारतीय मुसलमानोंको नहीं, बल्कि तुर्कोंको शान्त करना है। ये दोनों चीजें अलग अलग मानी जानी चाहिए। खिलाफत मूलतः एक धार्मिक आन्दोलन है; उसका सम्बन्ध मुसलमानोंकी भावनासे है और टर्कीके तुष्टीकरणसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह आन्दोलन सीधे पैगम्बरके निर्देशोंसे प्रेरणा ग्रहण करता है। इसलिए जबतक भारतीय मुसलमान सन्तुष्ट नहीं किये जाते तबतक शान्ति नहीं हो सकती और मुसलमानोंको शान्त करनेकी आवश्यक शर्त यह है कि जिन्हें अरबके द्वीप कहा जाता है उन्हें पूरी तरहसे केवल मुसलमानोंके ही नियन्त्रणमें रहना चाहिए; उसपर खलीफाकी धार्मिक प्रभुसत्ता होनी चाहिए, चाहे फिलहाल खलीफा कोई भी क्यों न हो। इस्लामकी प्रतिष्ठाका तकाजा है कि स्मर्ना और थ्रेस, टर्कीको वापस सौंप दिये जायें और मित्रराष्ट्र कुस्तुनतुनियाको खाली कर दें। परन्तु इस्लामके अस्तित्वके लिए यह जरूरी है कि ब्रिटेन और फ्रांसको दी गई अधिसत्ता बिलकुल समाप्त कर दी जाये। भारतीय मुसलमान इस्लामके पवित्र स्थलोंपर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई प्रभाव कभी सहन नहीं करेंगे। इसलिए इसका यह अर्थ हुआ कि फिलिस्तीन भी मुसलमानोंके नियन्त्रणमें होना चाहिए। जहाँतक मैं जानता हूँ, यहूदियों और ईसाइयोंको फिलस्तीन जाने और अपने धार्मिक कृत्य पूरे करनेमें कभी भी कोई बाधा नहीं पहुँचाई गई। किन्तु धर्म या युद्धका कोई भी फतवा मित्रराष्ट्रों द्वारा फिलस्तीनका यहूदियोंको सौंपा जाना उचित नहीं सिद्ध कर सकता। यह खास तौरपर भारतीय मुसलमानोंके साथ और आमतौरपर समूचे भारतके साथ विश्वासघात करना होगा; यदि युद्धके प्रारम्भमें ब्रिटेनने ऐसे किसी अधिकार-हरणकी सम्भावनाकी ओर इशारा किया होता तो एक भी भारतीय सिपाही युद्धमें न जाता। यह दिनोंदिन स्पष्ट होता जा रहा है कि यदि

१. प्रथम विश्व-युद्धके बाद हुई सन्धि; इसका मसविदा सबसे पहले मई १९२० में प्रकाशित किया गया। इसके बाद भारत सरकारने जब साम्राज्य सरकारको अपनी समस्याएँ और विचार समझाये तो उस सन्धिकी शर्तोंमें कुछ सुधार किये गये, जो टर्कीके लिए ज्यादा अनुकूल थे। सन्धिमें सुधार करनेके लिए लन्दनमें फिर सम्मेलन हुआ, जिसने अपना काम २२ फरवरी, १९२१ को शुरू किया।

भारतको साम्राज्यसे भिन्न, भावी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डलमें एक स्वतन्त्र साझेदारकी तरह रहना है तो खिलाफतकी शर्तें टर्कीके राजनीतिक नेताओंकी अपेक्षा मुसलमानोंके धार्मिक नेताओंकी सलाहसे ही तय करनी होंगी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-३-१९२१

२२७. भाषण : आर्वीमें[1]

१७ मार्च, १९२१

आपमें से अनेक लोग स्वदेशी कपड़े पहने हुए हैं, लेकिन सब लोगोंकी पगड़ीका कपड़ा तो मैं विदेशी ही देखता हूँ। आज कोई भी विदेशी कपड़ा पहनना पाप है। हमें उसका तुरन्त त्याग कर देना चाहिए और स्वदेशी कपड़ेके लिए हममें से हर व्यक्तिको सूत कातना चाहिए। सूत कातनेमें हमारे धर्म और हमारी सभ्यताकी रक्षा निहित है, अर्थकी रक्षा तो है ही। दूसरे हमें शराबका त्याग करना चाहिए। जो लोग शराब पीते हों उन्हें उसकी लत छोड़ देनेके लिए समझाया जाना चाहिए। मगर वे न समझें अथवा शराब पीना बन्द न करें तो उनपर जोर-जबरदस्ती नहीं करनी है। उन्हें प्रेमसे समझाना चाहिए; पाँव पड़कर समझाना चाहिए और न मानें तो भी, क्रोध किये बिना बार-बार समझाना चाहिए। यह काम स्त्रियाँ अच्छी तरह कर सकती हैं। हमें चोरी, व्यभिचार और झूठका परित्याग करना चाहिए तथा अन्त्यजोंके प्रति अपने व्यवहारमें सुधार करना चाहिए।

अस्पृश्यता अगर हिन्दू-धर्मका अंग है तो मैं कहूँगा कि उस हदतक उसमें शैतानियत है। लेकिन मेरी दृढ़ मान्यता है कि हिन्दू-धर्ममें ऐसी कोई बात नहीं है। अमुक जातिके व्यक्तियोंको स्पर्श न करनेमें धर्म नहीं अधर्म है। अस्पृश्यताको धर्म मानकर हमने अनेक पाप किये हैं; उनका प्रायश्चित्त तो हमें करना ही है। मैं किसीके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार करनेकी बात नहीं कहता। सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि स्पर्श करनेमें हम जो दोष मानते हैं, हमारी वह मान्यता हमारे मनसे निकल जानी चाहिए। अपने एक अंगको अस्पृश्य मानकर हमने उसे सड़ा दिया है और उसके दर्दसे हमारे सारे शरीरमें पीड़ा हो रही है। अंग्रेज आज हमें अछूत मानते हैं। उपनिवेशोंमें हमें व्यापार करनेके लिए अलग जगह दी जाती है। हमारे रहनेके मुहल्ले और मुसाफिरी करनेके लिए रेलगाड़ीके डिब्बे अलग होते हैं। हम अस्पृश्य — 'परिया' — माने जाते हैं। अन्त्यजोंके प्रति लम्बे समयसे हम जो व्यवहार करते आ रहे हैं, वह एक बड़ा अन्याय है और इस अन्यायको हमें अवश्यमेव छोड़ देना चाहिए। जब हम इस सम्बन्धमें अपने व्यवहारको बदलेंगे तब अन्त्यजोंका जीवन अधिक स्वच्छ हो जायेगा। मेरा अनुभव ऐसा है कि उच्च कौमके माने जानेवाले अनेक व्यक्तियोंकी अपेक्षा कुछेक

१. महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत। आर्वी महाराष्ट्रमें वर्धाके समीप एक कस्बा है।

अन्त्यजोंके घर अधिक साफ होते हैं। भंगीका धन्धा हलका नहीं है। समाजके जीवनके लिए वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह अपवित्र नहीं है। मैंने स्वयं दक्षिण आफ्रिकामें और यहाँ भी अनेक बार रोगियोंके पाखानोंको साफ किया है, लेकिन किसीने भी उस कामको अपवित्र अथवा हलका नहीं कहा है। उलटे, मेरे उस कार्यकी प्रशंसा की है। प्रत्येक माँ अपने बच्चेका मैला साफ करती है। उसमें सेवा है, महत्ता है। माता-को स्वप्नमें भी कौन अस्पृश्य मानेगा? अस्पृश्यताकी रूढ़िमें सुधार करनेकी बात जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यको बढ़ानेकी बात भी है। उसके लिए हिन्दूको मुसलमान अथवा मुसलमानको हिन्दू बननेकी कोई जरूरत नहीं है। दोनों अपने अपने धर्मका कट्टरतासे पालन करते हुए एक-दूसरेके धर्मका सम्मान करें और एकता बनाये रखें, इसीमें हमारी शोभा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३–४–१९२१

२२८. भाषण : नागपुरमें[1]

१८ मार्च, १९२१

मुझे दुःख है कि ऐसी विशाल सभामें मेरे भाई मौलाना शौकत अली हाजिर नहीं हैं। अबतक हम सारे हिन्दुस्तानमें साथ-साथ घूमते थे। लेकिन दिसम्बरमें कांग्रेस अधिवेशनके बाद हमने सोचा कि हिन्दू-मुसलमानोंके दिल इतने साफ हो गये हैं कि अब साथ-साथ घूमनेकी जरूरत नहीं है। यदि सात महीनेमें स्वराज्य प्राप्त करना हो, खिलाफतके सम्बन्धमें मुसलमान भाइयोंको जो दुःख हुआ है उसे दूर करना हो और पंजाबको न्याय दिलवाना हो तो अलग-अलग जगहोंमें घूमकर अपना काम निपटाना चाहिए। मुझे उम्मीद है, ऐसी माँग कोई भी व्यक्ति न करेगा कि हर जगह हम दोनों साथ-साथ जायें। हिन्दुस्तानमें साढ़े सात लाख गाँव हैं। उन सबमें तो एक-एक व्यक्ति भी कदापि नहीं पहुँच सकता।

यहाँ इतनी बड़ी सभाको देखकर मुझे खुशी हुई है। यहाँ आप लोग असहयोग आश्रम और राष्ट्रीय शाला चला रहे हैं, इसलिए मैं आपको बधाई देता हूँ। इस शहरके नेता भगवानदीनजी[2] जेल गये हैं, दूसरे नेता डा० परांजपेके नाम एक महीने तक भाषण न करनेका आदेश जारी किया गया है और तीसरे डाक्टर चोलकरपर मुकदमा चल रहा है[3] — इस सबके लिए भी मैं आपको बधाई देता हूँ। लेकिन आपने कांग्रेस और लीगके हुक्मको तोड़ा है — आपने पत्थर फेंके हैं — इसके लिए मुझे दुःख होता है। भाई अस्वातपर जो मौलाना शौकत अलीके मन्त्रीके रूपमें काम

१. महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत।

२. असहयोग आश्रमके अवैतनिक प्रिंसिपल जिन्होंने डा० चोलकरके साथ शराबकी दुकानोंपर धरना देना शुरू किया था।

३. उनके द्वारा दिये गये एक भाषणके सिलसिलेमें, देखिए "टिप्पणियाँ", ३०–३–१९२१।

करते हैं, अभी हाल हीमें एक अंग्रेज गार्डने हमला किया; उससे उन्हें चोट भी लगी। इसपर भाई अस्वातने उसे धक्का मारा। सरकारके कानूनके मुताबिक उन्हें वैसा करनेका पूरा हक था। सरकारी कानून ऐसा है कि अपनी रक्षा करनेमें पूरे बलका इस्तेमाल करना कोई अपराध नहीं है। सरकारका कानून ऐसा है, लेकिन कांग्रेस और लीगका कानून दूसरा ही है। इसलिए भाई अस्वातने पश्चात्ताप किया। स्वयं बाहर निकलकर उक्त गार्डको लोगोंके क्रोधसे बचाया। आपके हाथों नागपुरमें बहुत गलत काम हुआ है। कोई भी कारण क्यों न हो, आप लोगोंके हाथ पत्थर मारनेके लिए नहीं उठने चाहिए। कोई शराब पीनेका हठ करे तब भी जोर-जबरदस्ती करके हम उसे शराब छोड़नेके लिए बाध्य नहीं कर सकते। हमें स्वराज्य चाहिए। स्वराज्यका अर्थ है कि कोई व्यक्ति अपराध करे तो भी उसपर मनमानी जोर-जबरदस्ती नहीं की जा सकती। एक भाईके शवको दफनानेमें रुकावट डाली गई, यह भी गलत बात हुई। इससे हमारे आन्दोलनको नुकसान पहुँचा है, हमारे सम्मानको धक्का लगा है।

अगर कोई व्यक्ति शराब पीने अथवा ऐसी ही किसी दूसरी अनिष्ट हठपर अड़ा रहे तो भी उसके साथ कोई जोर-जबरदस्ती नहीं की जानी चाहिए। यदि हम ऐसा करें तो हम कांग्रेस और लीगके प्रति अपराध करते हैं। गत सितम्बरमें[1] अगर आप अपने लिए भिन्न रास्ता निश्चित करना चाहते तो कर सकते थे। लेकिन आपने तो अपना संघर्ष शान्तिसे चलानेकी प्रतिज्ञा की है। उससे अब आप पीछे नहीं हट सकते। हम शान्तिका दावा करके अशान्तिका व्यवहार नहीं कर सकते। हमारी लड़ाईकी खबरें सारी दुनियामें फैल गई हैं। हम अपनी यह लड़ाई शान्तिसे लड़ रहे हैं, इस बातकी तारीफ हो रही है। यदि हम शान्तिका नाम लेकर अशान्तिका व्यवहार करेंगे तो अपनी कमाई खो बैठेंगे। हमारे हाथों जो गलत काम हुआ है उसका हमें पश्चात्ताप करना चाहिए। सारी दुनिया देख रही है कि पिछले पचास वर्षोंमें हिन्दुस्तानके लोगोंमें जो ताकत नहीं आई, वह इन पाँच महीनोंमें आ गई है। सरकारने छोटानी[2] साहबको टर्कीके साथ बातचीत करनेके लिए मित्रराष्ट्रोंका जो सम्मेलन हो रहा है उसमें भाग लेनेके लिए बुलाया है; डा० अंसारी भी सदस्य नामजद हुए हैं। यह असहयोगकी स्पष्ट विजय है। मैं यह नहीं कहता कि हमें डरके मारे चुपचाप बैठे रहना चाहिए। डर तो एक ईश्वरके सिवा और किसीका रखनेकी कोई जरूरत नहीं। लेकिन न डरना एक वस्तु है और गुस्सा न करना दूसरी। आपसे अगर गुस्सा किये बिना नहीं रहा जा सकता हो तो चुपचाप शान्तिपूर्वक अपने घरमें बैठे रहिए; हिजरत कीजिए। हिजरत अर्थात् त्याग। यह हिन्दू-मुसलमान दोनों कर सकते हैं। लेकिन यदि आप असहयोगके बहादुर सिपाही बनना चाहते हों तो यह निश्चय कीजिए कि किसीको मारनेके लिए हाथमें पत्थर अथवा ऐसी ही कोई चीज उठाकर आप अपने हाथ अपवित्र नहीं करेंगे। खराब शब्द बोलकर जीभको अपवित्र नहीं करेंगे। हमें सात महीनेमें स्वराज्य चाहिए। उसके लिए अगर अधिक संख्यामें विद्यार्थी

१. जब कलकत्तेमें कांग्रेसका विशेष अधिवेशन हुआ था।

२. मियाँ मुहम्मद हाजी जान मुहम्मद छोटानी।

स्कूल न छोड़ें और वकील अपनी वकालत न छोड़ें तो भी कोई हर्ज नहीं। उससे स्वराज्य मिलनेमें कतई कोई रुकावट नहीं आयेगी; लेकिन अगर आप संयमको तोड़ेंगे तो अवश्य बाधा पड़ेगी। दूसरी शर्त हिन्दू-मुस्लिम एकता है।

तीसरी शर्त स्वदेशीकी है। टेनिसके बल्लेके बजाय आप चरखा चलायें। यदि विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करना है तो सबके हाथमें चरखा होना चाहिए। एक समय ऐसा था, जब ब्रिटिश कपड़ेका बहिष्कार हास्यास्पद जान पड़ता था, असम्भव जान-पड़ता था। आज वह विचार दूर हो गया है। स्वदेशी एक ऐसा व्रत है जिसका पालन सब लोग कर सकते हैं। अगर हमसे इतना भी नहीं हो सकता तो हमें स्वराज्यकी आशा छोड़ देनी चाहिए। हम लँगोटी पहनकर घूमें लेकिन विदेशी कपड़े न पहनें। नागपुरमें बुनकर बहुत हैं। उन्हें चाहिए कि वे अपवित्र विदेशी सूतको बुनना छोड़ हमारी अपनी माँ-बहनोंके हाथके कते हुए सूतको बुननेका निश्चय करें। हाथका कता हुआ सूत कच्चा नहीं है बल्कि हमारा हृदय कच्चा है। इसीसे उसे बुननेमें हम हिच-किचाते हैं।

कितने ही मित्र मुझसे पूछते हैं कि क्या फिलिस्तीन[1] भी मिलेगा? मेरा कहना है कि अगर आप फकीर बन जायें और शान्ति बनाये रखेंगे तो फिलिस्तीन भी मिलेगा। औरोंको फकीर बनानेमें अगर आप सन्तोष मानेंगे तो वह नहीं मिलेगा। चाहे किसी भी व्यक्तिको जेल भेज दिया जाये, हमें शान्ति ही रखनी चाहिए। वे जायें, आप भी जानेकी तैयारी करें; लेकिन मार-धाड़ करके नहीं, शुद्ध काम करके। फिर सर-कार जिस दिन आपको जेलमें डालेगी उसी दिन हमें विजय प्राप्त होगी। जिस दिन वह इस तरह शासन चलाना चाहेगी, उस दिन वह सूखे पत्तेके समान झड़ जायेगी। किसीके जेल जानेपर तूफान उठाना दुर्बलताकी — भयकी — निशानी है।

अब मैं आखिरी बात कहे देता हूँ। आप लोग तिलक महाराजको चाहते हैं। हर जगह उनकी 'जय' बोली जाती है। यहाँ उनकी तसवीर रखी है। उनकी आत्मा भी यहाँ मौजूद है, वह साक्षी है। 'स्वराज्य' उनका जीवनमन्त्र था। उसको प्राप्त करनेका प्रयत्न करना हमारा फर्ज है। उनके नामसे "स्वराज्य-कोष" चालू है, सो कोई उनका पुतला बनाने अथवा उनके नामसे बाग बनवानेके लिए नहीं, अपितु स्वराज्य प्राप्त करनेकी प्रवृत्तिको बढ़ावा देनेके लिए, उसका पोषण करनेके लिए है। यह सौदागरी है, हमारे ही लाभकी बात है। जून महीनेसे पहले एक करोड़ रुपया इकट्ठा हो जाना चाहिए। यह कोई बड़ी बात नहीं। मैं सुनता हूँ कि पैसा न होनेकी वजहसे चरखे नहीं चल पा रहे हैं। यह शर्मकी बात है। सब अपना-अपना हिस्सा दें तो हमें जितने पैसे चाहिए उतने पैसे मिल जायेंगे। और कुछ नहीं तो आप शराब, बीड़ी आदि व्यसनोंको छोड़ दें और उससे बचनेवाली रकमसे इस कोषको भरें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३–४–१९२१

१. प्रथम विश्व-युद्धके बाद टर्कीसे फिलिस्तीनको छीन लिया गया था और इस प्रदेशको ब्रिटिश अधिशासनमें रखा गया था।

२२९. भाषण : अमरावतीमें[1]

१९ मार्च, १९२१

भाई यादवडकरने[2] अपना सर्वस्व देशको अर्पित कर दिया था। कांग्रेस, लीग व लोक-संस्थाएँ हमसे जिन गुणोंकी अपेक्षा करती है, वे सब उनमें थे। अगर हम सभी उनके जैसे होते तो हमें स्वराज्य कभीका मिल चुका होता। एक समय वे भारतमें स्वराज्य स्थापित करनेके लिए हिंसक उपायोंकी जरूरत माननेवालोंमें से थे। लेकिन बादमें उनके विचार बदल गये थे। वे पक्के सत्याग्रही बन गये थे और कांग्रेस तथा लीगके कार्यक्रममें ही हिन्दुस्तानका भला है, ऐसा उनका दृढ़ विश्वास हो गया था।

कांग्रेसके प्रस्तावसे हम हर हालतमें शान्ति बनाये रखनेके लिए बँधे हुए हैं। शान्तिका पालन कर सकनेकी अपनी शक्तिके सम्बन्धमें हमें और अंग्रेजों — दोनोंको ही सन्देह है। हमें उन्हें यह बता देना चाहिए कि हम तलवार और बन्दूकके भयसे दबकर नहीं बल्कि धर्मवृत्तिकी प्रेरणासे शान्तिका पालन करते हैं। दादासाहब खापर्डेसे[3] मेरा पहलेसे ही मतभेद है। उनका रास्ता एक है और मेरा रास्ता दूसरा। मैं जानता हूँ कि वे जिस रास्तेपर चलना चाहते हैं उस रास्तेसे स्वराज्य नहीं मिल सकता। तथापि मैं उन्हें भला-बुरा नहीं कहता। उनके पक्षके लोगोंको कुएँसे पानी न भरने देनेमें कांग्रेसकी आज्ञाका भंग होता है। अपने विरोधीके प्रति, वह अकेला हो तो भी हमारा व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि वह हमारी ओरसे अपने आपको बिल्कुल निरापद महसूस करे। अलबत्ता हमें दादासाहब खापर्डेसे विधान परिषद् आदि में किसी तरहकी सेवाएँ नहीं लेनी चाहिए; हाँ, उनकी सेवा हम अवश्य करें। वे बीमार पड़ें तो हम उनकी सेवा करें। लॉर्ड चैम्सफोर्ड बीमार पड़ें तो उनकी भी हम सेवा करें, लेकिन उनके दिये खिताबको निस्सन्देह स्वीकार न करें।

हमारी लड़ाई तो आत्मशुद्धिकी है। आत्मशुद्धि क्या है? शराब आदिका उपयोग करनेवाले लोगोंको ये चीजें छोड़ देनी चाहिए। इनकी बिक्रीसे सरकारको सत्रह करोड़ रुपया मिलता है। जाहिर है कि अगर सरकारको अपनी यह आय बन्द होती दिखेगी तो वह हमें सुखसे नहीं बैठने देगी। शराबसे होनेवाली कमाईसे अगर हमारे बालकोंको शिक्षा मिलती हो तो वह हमें स्वीकार्य नहीं होनी चाहिए। स्वराज्यमें शराबकी कमाई तो हमारे लिए हराम होनी चाहिए। उसके बिना हम बच्चोंको शिक्षा दे सकते हैं, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। डा० चोलकर द्वारा दिया गया भाषण मैं पढ़ चुका हूँ। मजिस्ट्रेट उनके साथ न्याय करे अथवा अन्याय लेकिन इतना तो मैं स्पष्ट रूपसे कहता

१. महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत ।

२. अमरावतीके यादवडकर पटवर्धन, जिनकी मृत्यु जनवरी १९२१ में हुई थी; देखिए "स्मरणांजलि", १२–१–१९२१ ।

३. बरारके प्रसिद्ध वकील और बाल गंगाधर तिलकके प्रबल समर्थक ।

हूँ कि इस भाषणमें उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं कहा है जिसकी कांग्रेसमें खुले शब्दोंमें चर्चा न की गई हो। उन्होंने 'रिपब्लिक'—गणराज्य शब्दका प्रयोग किया है लेकिन 'रिपब्लिक' तो जन्मसिद्ध अधिकार है। भारत तो अनादि कालसे ग्राम-गणराज्यका उपभोग करता आया है। बिहारकी सरकार पंचायतोंको तोड़नेका जी-जानसे प्रयत्न कर रही है। सरकारकी अदालतोंमें ही न्याय मिलता है, ऐसा मानना भ्रमपूर्ण है। क्या हमें जनरल डायर अथवा सर माइकल ओ'डायरके विरुद्ध न्याय प्राप्त हुआ? मैं साक्षी हूँ कि इन मामलोंमें हमें न्यायके बजाय अन्याय मिला है। लेकिन आप डा० चोलकरके लिए दुःखी न हों। उन्हें बधाई दें। जिन्हें शराब पीनेकी लत पड़ी हुई है उन्हें विनयपूर्वक समझा-बुझाकर शराब छोड़नेके लिए कहें। शराब बेचनेवालोंसे शराब न बेचनेके लिए विनती करें, शराबका ठेका लेनेके लिए इच्छुक व्यक्तियोंसे ठेका न लेनेका अनुरोध करें। लेकिन कहीं भी जोर-जबरदस्ती न करें। आप सरकारके सम्बन्धमें "शैतान" शब्दका प्रयोग भी न करें। पंजाबके बारेमें भी रोष न करें। इन सब मामलोंमें उसकी टीका करनेका काम आप अकेले मुझपर छोड़ दें। आप शराब बन्द करवानेका प्रयत्न करें, लेकिन उसमें किसीकी निन्दा न करें, गाली न दें। सख्त शब्दोंका जमाना चला गया है। अब तो काम करनेका समय आया है। हम बोलें और जेल जायें, इसकी अपेक्षा तो यही अच्छा होगा कि हम काम करते हुए जेल जायें—फिर भले ही सरकार शराब छुड़वानेके प्रयत्नोंको पाप समझे—तब सरकारकी पोल एकदम खुल जायेगी और वह स्वयमेव नष्ट हो जायेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५–४–१९२१

२३०. सत्याग्रह सप्ताह

अप्रैल मास समीप आ रहा है। अप्रैलकी छठी[1] तारीखका वह प्रेरणाप्रद रविवार और तेरह[2] तारीखके रविवारको हुई घोर घटनाको क्या कोई भारतीय भूल सकता है? ऐसा कहनेमें कोई अतिशयोक्ति न होगी कि भारतका नवजीवन छठी अप्रैलसे आरम्भ हुआ। इन दोनों दिनोंको मनाना हमारा धर्म है।

छठी तारीखको भारत जागा, इस दिन उसने अपना आलस्य छोड़ा और नींदसे उठकर १३ अप्रैलकी साँझको उसने देखा कि अपनी इस नई शक्तिका दुरुपयोग करनेके फलस्वरूप उसे घोर प्रायश्चित्त करना पड़ रहा है। उसी रातको हिन्दुस्तानने अपने पतिके निस्तेज सिरको अपनी गोदमें रख विलाप करती हुई रतनदेवीको सुना।

इस सप्ताहको किस तरह मनाया जाये? सत्यका अधिक आग्रह करके, अधिक दृढ़ बनकर, अधिक नम्र तथा शुद्ध बनकर और अधिक शक्ति प्राप्त करके ही यह

१. ६ अप्रैल, १९१९ को रौलट अधिनियमके विरोधमें समस्त भारतमें हड़ताल की गई थी।

२. १३ अप्रैल, १९१९ को जलियाँवाला बागकी दुःखद घटना हुई थी।

मनाया जाना चाहिए। इस सप्ताहमें ऐसे उपायोंकी योजना करना भी हमारा विशेष कर्त्तव्य है जिससे कि १३ तारीखको जो अत्याचार हुए थे वे फिर न होने पायें।

यह सप्ताह शुद्ध तपश्चर्याका, शुद्ध भक्तिका और शुद्ध फकीरीका होना चाहिए। इस सप्ताह हमें अपनी सब भूलोंके लिए ईश्वरसे और जिनके प्रति हमने वे भूलें की हैं उनसे माफी माँगनी चाहिए। हमारा बल हमारी नम्रतामें है। हम अंग्रेजोंका अथवा अपने विरोधियोंका बुरा न चाहें, उन्हें बुरा न कहें। इन सात दिनोंमें हम यह रटें कि "हम इसी वर्ष स्वराज्य प्राप्त करेंगे, इसी वर्ष खिलाफतके प्रश्नका निपटारा करेंगे और इसी वर्ष पंजाबके बारेमें न्याय प्राप्त करेंगे।"

इन उद्देश्योंको प्राप्त करनेके साधनोंपर विचार करके हमें उनकी प्राप्तिके लिए महान् प्रयत्न करना चाहिए।

१. खिताब-प्राप्त व्यक्ति अपने खिताब छोड़ दें।

२. वकील वकालत छोड़ दें।

३. विद्यार्थी सरकारी स्कूल छोड़ दें।

४. वादी और प्रतिवादी सरकारी अदालतोंका परित्याग करें।

५. शराबी तथा और प्रकारके व्यसन करनेवाले व्यक्तियोंको शराब, व्यसन, व्यभिचार, चोरी और जुआ खेलना आदि छोड़ देना चाहिए।

६. सभी सत्यपर आचरण करनेका प्रण लें।

७. अपने-अपने घरोंमें चरखा दाखिल करके, स्त्री-पुरुष सभी अमुक समय चरखा कातनेका आग्रह रखें।

८. सब लोग विदेशी कपड़ेका त्याग करके सिर्फ हाथके कते सूतसे हाथके बुने हुए कपड़े ही पहनें।

९. हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, यहूदी — भारतमें जन्मे हुए सभी लोगोंको चाहिए कि वे परस्पर एक-दूसरेके प्रति भाई-बहनका व्यवहार करें।

१०. कोई भी हिन्दू किसीको अस्पृश्य न माने और सबके प्रति समभाव रखे।

११. तिलक-स्वराज्य-कोषमें सभी यथाशक्ति दान दें।

स्वयं उपर्युक्त कार्य करते हुए और दूसरोंसे उसे करनेका आग्रह करते समय कोई भी व्यक्ति कड़वी भाषाका प्रयोग न करे।

ऊपर जो सूची दी गई है उससे स्पष्ट है कि सबसे बड़ा काम चरखेका प्रचार करना, खादी पहनना और दान इकट्ठा करना है।

हमें छठी और सातवीं तारीखको हड़ताल करनी चाहिए। किसीपर जोर-जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। मिल-मजदूरोंको भी पहलेसे ही इन दो दिनोंके लिए छुट्टीका प्रबन्ध कर लेना चाहिए। जिन्हें छुट्टी न मिले उन्हें काम बन्द नहीं करना चाहिए।

छठी और तेरहवीं तारीखको पिछली साँझसे चौबीस घंटेका उपवास करना चाहिए।

जहाँ सरकारी प्रतिबन्ध न हो वहाँ हमें छठी और तेरहवीं तारीखको सभाएँ आयोजित करके उचित प्रस्ताव पास करने चाहिए। प्रत्येक सभामें चन्दा उगाह कर प्राप्त रकम तिलक स्वराज्य कोषमें भेज देनी चाहिए।

सातों दिन और मुख्य रूपसे उपवासके दो दिनोंमें एक निश्चित समय लोग सिर्फ शान्ति और प्रार्थनामें बिताएँ और इस तरह यह सिद्ध करें कि हमारी लड़ाई धर्मकी लड़ाई है।

हिन्दुस्तानमें एक भी गाँव ऐसा न होना चाहिए जहाँ सत्याग्रह सप्ताहका सन्देश न पहुँचा हो। १४ तारीखको हिन्दुस्तानमें प्रत्येक स्त्री-पुरुषको यह अनुभव होना ही चाहिए कि उन्होंने देशसेवामें और धर्मसेवामें ठीक-ठीक भाग लिया है और वे पहलेसे अधिक पवित्र हुए हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-३-१९२१

२३१. मेरी पंजाबकी अन्तिम यात्रा

पंजाब और गुजरात

पंजाब मेरे लिए दूसरा गुजरात बन गया है। वहाँ मुझे समय-समयपर जाते रहना पड़ता है। पंजाबमें बहुत कम जिले ऐसे रह गये हैं, जहाँ मैं न हो आया हूँ। इस लेखका नाम मैंने अन्तिम यात्रा रखा है, सो इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं वहाँ अब कभी नहीं जाऊँगा। सम्भव है थोड़े समयके लिए मुझे फिर वहाँ जाना पड़े। इस बार मैं रावलपिंडी, गुजराँवाला, मुलतान, लायलपुर, सीरी, लाहौर, अमृतसर, जालन्धर, होशियारपुर, हरियाना, खन्ना, लुधियाना, सरहिन्द, अम्बाला, रोहतक और भिवानी गया था। इसलिए मैं गुजरातको अधिक जानता हूँ कि पंजाबको, यह बताना जरा कठिन है।

पंजाबकी बहनें

मेरा विचार यात्राका विधिवत् विवरण देनेका नहीं है, अपितु कुछेक ऐसे पवित्र स्मरणोंका उल्लेख करनेकी खातिर यह लेख लिख रहा हूँ जिनसे हमें कुछ लाभ हो। पंजाबकी बहनोंने मुझे मुग्ध कर दिया है। लगभग प्रत्येक स्थानपर स्त्रियोंकी सभा होती थी; वह भी कोई पाँच-सातकी नहीं बल्कि झुण्डकी-झुण्ड स्त्रियोंकी। उनके धैर्य, सादेपन और निर्दोषताका बखान नहीं किया जा सकता। मैंने उनके प्रेमका अपूर्व अनुभव किया। प्रत्येक स्थानपर उन्होंने हृदयसे आशीर्वाद दिया है। स्वराज्यका अर्थ रामराज्य; ऐसी ही उनकी मान्यता है। उन्होंने मेरे ऊपर खादीके पवित्र गोले और हार फेंके। धन देनेमें कोई संकोच नहीं किया। लालाजीको धन दिये जानेके सम्बन्धमें जो सन्देह था उसे इन बहनोंने निर्मूल कर दिया। और वह भी कोई आगा-पीछा करते हुए नहीं; बल्कि एक दूसरेसे आगे बढ़-बढ़ कर। वे एक स्वरसे मधुर गीत गाती हैं और वे गीत भी इतिहासको लिये हुए होते हैं। हजारो पंजाबी बहनें पंजाबकी डायरशाहीकी गाथा गीतोंकी मार्फत सुनाती हैं। चरखेकी कलामें तो पंजाबकी बहनें

देशके अन्य भागोंकी बहनोंको पराजित करती ही हैं, और हमेशा करती रहेंगी, ऐसी मेरी मान्यता है। एक बैरिस्टरकी लड़कियोंने मेरे साथ चरखेकी होड़ लगाई। मेरा हाथ तो क्योंकर चले? तार तानूँ कि वह टूट जाये, और ये बालाएँ तो तार तानती ही चली जाती थीं। मैं लज्जित हो गया। हार तो मैंने शुरूमें ही मान ली थी। उनके पिताने मुझे आश्वासन दिया और कहा कि मेरा चरखा ही खराब होगा। लेकिन अपने अज्ञानकी मुझे पूरी-पूरी जानकारी थी इसलिए यह आश्वासन बेकार था। इन बालाओंके चरखेसे जो झंकार निकलती थी वह मुझे तो अच्छे वाद्ययन्त्रके संगीतसे भी मधुर लगती थी। यह चरखा-युद्ध रातके ग्यारह बजेतक चला लेकिन अगर मुझे कोई और काम न होता तो मैं अवश्य चरखेकी गतिको देखता रहता क्योंकि मेरा विश्वास दिन-प्रतिदिन दृढ़ होता जाता है कि हिन्दुस्तानका स्वराज्य चरखेमें ही समाहित है।

स्वराज्यका झंडा

एक समझदार मित्रने[1] सलाह दी है कि स्वराज्यके झंडेपर चरखका ही चित्र होना चाहिए। मुझे यह विचार बहुत ही सुन्दर लगा है। हम विचित्र झंडेका प्रयोग करते हैं। आन्ध्र प्रान्तके एक सज्जनने[2] अनेक प्रकारके झंडोंका सुझाव दिया है लेकिन मुझे तो स्वराज्यके झंडेमें चरखेके चित्र होनेके विचारके समान अन्य कोई विचार प्रिय नहीं लगता। कांग्रेसके आगामी अधिवेशनके कार्यवाहकोंको मैं यह विचार भेंट करता हूँ।[3]

व्यापक प्रवृत्ति

पंजाब एक ऐसा अंचल है जहाँका कदाचित् ही कोई घर चरखेसे विहीन हो। जालन्धर, होशियारपुर, और हरियाना तो चरखेके केन्द्र हैं। वहाँके चरखे और दूसरी देशी कारीगरी उत्तम होती है। होशियारपुरके एक सज्जनने मुझे दो चरखे दिये हैं। उन्हें जो व्यक्ति देखना चाहे वह आश्रममें आकर देख सकता है। वहाँके चरखे एक तरहकी शीशमकी लकड़ीके बने हुए होते हैं। उसमें हत्थे आदि खरादपर उतारे हुए होते हैं और उनपर कारीगरी की गई होती है। उसमें रंग भी भरे जाते हैं। कितने ही चरखोंमें तो कलाका खासा प्रदर्शन किया जाता है। मूल्यवान चरखोंपर हाथीदाँत-का काम किया हुआ होता है। कुछ चरखोंके चक्करमें शीशा भी लगा हुआ होता है। और किसी-किसीमें घूँघरु बँधे होते हैं। होशियारपुरमें मुझे बताया गया कि गत महीनोंमें चरखेका मूल्य दुगुना हो गया है। आम तौरपर अच्छे रंगीन चरखेकी कीमत पन्द्रह रुपये होती है। चरखेकी माँग इतनी बढ़ गई है कि कारीगर उसे पूरा नहीं कर सकते।

१. लाला हंसराज; जालन्धरके एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता।

२. मसुलीपट्टमके राष्ट्रीय कालेजके श्री वेंकय्या। देखिए "राष्ट्रीय झंडा", १३-४-१९२१ भी।

३. जो दिसम्बर १९२१ में अहमदाबादमें होनेवाला था।

विचित्र मानपत्र

मुझे अनेक प्रकारके मानपत्र दिये जाते हैं लेकिन जैसा मानपत्र मुझे जालन्धरमें मिला वैसा आजतक नहीं मिला। सामान्य रूपसे हमारी नगरपालिकाएँ सार्वजनिक कार्यकर्ताओंको मानपत्र नहीं देतीं। उसकी पहल बरेली[1] नगरपालिकाने, जब मैं और शौकत अली वहाँ गये थे तब की थी, फिर गोरखपुरने[2] और और अब जालन्धर[3] नगरपालिकाने। जालन्धर नगरपालिकाने औरोंकी अपेक्षा अधिक साहसपूर्ण कदम उठाया लेकिन उसका यह साहस समयानुकूल था। मानपत्र अंग्रेजीमें नहीं था, वह मधुर हिन्दुस्तानीमें और उर्दू लिपिमें प्रकाशित किया गया था। इसके अलावा वह रेशम, महीन कपड़े अथवा कागजपर न होकर, खादीपर लिखा गया था। यह खादी मक्का शरीफतक जाकर पवित्र हो आई थी। जालन्धरके एक वकील श्री नासिरुद्दीन शाहकी माताने अपने कफनके लिए अनेक वर्षोसे जो खादी सँभाल कर रखी थी, स्वयं उन्होंने उस खादीमें से यह टुकड़ा काटकर दिया और मानपत्र उसपर छापा गया। सुनते हैं आज तो मुसलमान भाई कफनके लिए जानबूझकर खादीका इस्तेमाल करते हैं।

अयोध्यामें, जहाँ रामचन्द्रजीका जन्म हुआ, कहा जाता है उसी स्थानपर छोटा-सा मन्दिर है। जब मैं अयोध्या पहुँचा तो वहाँ मुझे ले जाया गया। श्रद्धालु असहयोगियोंने मुझे सुझाव दिया कि मैं पुजारीसे विनती करूँ कि वह सीतारामकी मूर्तियोंके लिए पवित्र खादीका उपयोग करे। मैंने विनती तो की लेकिन उसपर अमल शायद ही हुआ हो। जब मैं दर्शन करने गया तब मैंने मूर्तियोंको भौंडी मलमल और जरीके वस्त्रोंमें पाया। यदि मुझमें तुलसीदासजी जितनी गाढ़ भक्तिकी सामर्थ्य होती तो मैं भी उस समय तुलसीदासजीकी तरह हठ पकड़ लेता। कृष्णमन्दिरमें तुलसीदासजीने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक धनुषबाण लेकर कृष्ण रामरूपमें प्रकट नहीं होते तबतक तुलसी-मस्तक नहीं झुकेगा। श्रद्धालु लेखकोंका कहना है कि जब गोस्वामीने ऐसी प्रतिज्ञा की तब चारों ओर उनकी आँखोंके सामने रामचन्द्रजीकी मूर्ति खड़ी हो गई और तुलसीदासजीका मस्तक सहज ही नत हो गया। अनेक बार मेरा ऐसा हठ करनेका मन हो आता है कि हमारे ठाकुरजीको जब पुजारी खादी पहनाकर स्वदेशी बनायेंगे तभी हम अपना माथा झुकायेंगे। लेकिन मुझे पहले इतना तप करना होगा, तुलसीदासजीकी अपूर्व भक्तिको प्राप्त करना होगा। इस बीच जैसे मुसलमान भाई पवित्र कार्योंके लिए खादीका उपयोग करने लगे हैं वैसे ही मैं चाहता हूँ कि हिन्दुओंके मन्दिरोंमें और अन्य पवित्र कार्योमें खादीका इस्तेमाल होने लगे। सृष्टिका नियम है कि एक महत्वपूर्ण कार्यके सुसम्पन्न होनेसे अन्य सम्बद्ध कार्य स्वयमेव सम्पन्न होते चले जाते हैं। हिन्दुस्तानमें सबसे ज्यादा आयात कपड़ेका होता है, यद्यपि एक समय ऐसी बात न थी। फलतः जब हम विदेशी कपड़ेका सर्वथा बहिष्कार कर देंगे तब हमें स्वराज्य

१. १७ अक्तूबर, १९२० ।

२. ८ फरवरी, १९२१ ।

३. ७ मार्च, १९२१ ।

मिल कर रहेगा; तब हमारी ताकत इतनी बढ़ जायेगी कि कोई हमारी स्वतन्त्रताके आड़े आ ही नहीं सकेगा।

एक नमूना

में सैकड़ों सभाओंमें जा चुका हूँ। अब कदाचित् ही कहीं सभामें कुर्सियोंका इन्तजाम होता है। लखनऊकी खिलाफत परिषद्में[1] किसीके लिए भी कुर्सी नहीं थी। मौलाना मुहम्मद अली अध्यक्ष थे। वे गद्देपर बैठे थे। दूसरे उमराव-उलेमा और शिक्षितवर्गके लोग भी जमीनपर बैठे थे। लेकिन पूर्ण स्वदेशीकी व्यवस्था तो मैंने हरियानेमें[2] ही देखी। कांग्रेसके आगामी अधिवेशनकी में जिस रूपमें कल्पना कर रहा हूँ, कौन जाने यह उसीका एक छोटा नमूना ही हो। परिषद्के मण्डपमें केवल खादीका ही उपयोग किया गया था। बीचमें एक ऊँचा मंच बना हुआ था। उसपर कितने ही सदस्य पालथी लगाकर बैठे हुए थे। पीछे की ओर सैकड़ों स्त्रियाँ थीं। दायें हाथकी ओर खादीकी प्रदर्शनी थी। उसमें सुन्दर फुलकारियाँ, हाथके सूतसे बने रुमाल और खादीके थान बिछे हुए थे। कातने और बुननेमें निष्णात व्यक्तियोंको इनाम बाँटे गये थे। महीन खादी तीन प्रकारकी थी; में उसे ले भी आया हूँ। काढ़े हुए रुमाल और फुलकारी भी लाया हूँ। इन्हें आश्रममें देखा जा सकता है। स्वयंसेवकोंने खादीके पायजामें, कुरते और टोपियाँ पहन रखी थीं। नवीन राष्ट्रीय शालाके[3] सब विद्यार्थी खादीकी पोशाक पहने थे। एक भी विदेशी वस्तु मुझे इस परिषद्में नजर नहीं आई। चारों ओर जो नारे लिखे दिखाई पड़ते थे वे भी वहाँकी मातृभाषा उर्दूमें ही थे; और प्रस्ताव भी भावी कार्यक्रमसे ही सम्बन्धित थे। बल्लियों और लकड़ियों-को किरायेपर लेनमें जो देना पड़ा, वही इस मण्डपपर आनेवाला खर्च हुआ। खादी तो सारीकी-सारी जैसीकी-तैसी रह जानेवाली थी। झंडे भी खादीके थे।

दुःखीजनोंका एक मित्र

जालन्धर, होशियारपुर, हरियाना सब साथ-साथ ही आते हैं। वे पंजाबके पूर्वमें हैं। वहाँसे अब में पाठकोंको पश्चिम मुलतानमें ले जाना चाहता हूँ। मुल्तानमें प्लेगका प्रकोप हमेशा बना रहता है। मुलतानमें प्रह्लादका जन्म हुआ माना जाता है; वहाँ प्रह्लादका मन्दिर भी है। दीवान मूलराजका[4] जन्मस्थान मुल्तान था। ऐसा माना जाता है कि हरियानामें पाण्डवोंने अज्ञातवासका समय बिताया था। मुल्तान गन्दा शहर है, वहाँ धूलका तो कोई हिसाब ही नहीं। मुल्तानकी नगरपालिका भी निकम्मी मानी जाती है। प्लेगने एक साधु-पुरुषको जन्म दिया। उनका नाम है भाई मूलचन्द। पैसे-टकेसे वे सुखी थे, आज भी थोड़े-बहुत होंगे। देखनेमें वे मैले-कुचैले जान पड़ते हैं। गुज-

१. २६ फरवरी, १९२१ को हुई।

२. १५ फरवरी, १९२१ को भिवानीमें हुआ हरियाना ग्रामीण सम्मेलन।

३. हरियाना, जिला रोहतकमें।

४. पंजाबके अन्तिम सिख शासकके मुख्यमन्त्री। इस शासकको १८४९ के द्वितीय सिख-युद्धमें अंग्रेजोंने परास्त किया था।

रातमें जैसे पुराने विचारोंके लोग बंडी पहनते हैं वैसे यह भाई खादीकी बंडी पहनते हैं। धोती खादीकी और खादीकी ही टोपी पहनते हैं। उनके प्रयत्नोंसे एक प्लेगका अस्पताल खोला गया। भाई मूलचन्द और उनके भाई, दोनोंने ही अपने आपको इसके लिए अर्पित कर दिया है। उनके साथ तीन डाक्टर हैं, जिनमें दो मुफ्त काम करते हैं। इस अस्पतालमें प्लेगके सभी रोगियोंको लिया जाता है। उनकी सार-सँभाल भाई मूलचन्द, उनके भाई और दूसरे स्वयंसेवक करते हैं। रोगियोंको, जहाँतक सम्भव हो, खुली हवामें सुलाया जाता है। नागरिकोंने मुझे बताया कि जब माताएँ प्लेगसे पीड़ित अपने बच्चोंको डरके मारे छोड़कर भाग निकलीं तब भाई मूलचन्दने ऐसे असहाय रोगियोंको अपने हाथमें लिया और उनकी सेवा-शुश्रूषा की। उनके प्रतापसे सैकड़ों बच गये हैं और सैकड़ों सुखसे मर सके हैं। उन्हींके प्रतापसे लोगोंको प्लेगका भय अब कम लगता है। मैं इस अस्पतालको देखनेके लिए गया। लगभग चालीस रोगी थे। सबसे मैं मिला। उनके सन्तोषका मैं क्या वर्णन करूँ? मैंने तो मुल्तानमें रोगियोंके दर्शन करनेपर अपनेको सौभाग्यशाली माना।

एक भंगी भाई

भाई मूलचन्दने मेरी सबसे मुलाकात करवाई। वे अपने भंगी साथीको भी नहीं भूले; और उन्होंने कहा 'इस भाईने भी हमारी कठिन समयमें बहुत मदद की है,' वह जरा दूर खड़ा हुआ था। मैं उस भाईसे मिलनेके लिए आगे बढ़ा, वह बिचारा आधा खिसक गया। मैंने उसे खिसकनेसे रोका और उसकी पीठको थपथपाया। मेरे साथ अनेक सनातनी भाई थे। मुझे ऐसी कोई बात दिखाई नहीं दी जिससे मुझे लगा हो कि उन्हें मेरा यह कार्य बुरा लगा हो; बल्कि मैं यह अवश्य देख सका कि उनमें से बहुत सारे लोग मेरे उस स्पर्श करनेपर प्रसन्न हो उठे थे। वह अन्त्यज भाई तो बहुत खुश हुआ और मुझसे कहा, 'मैंने तो कुछ भी नहीं किया'। इतना सच है कि पंजाबमें अस्पृश्यताका जोर बहुत कम है। कोई पंजाबी सनातनी भंगीके छू जानेसे अपने आपको अपवित्र माने, ऐसी कोई बात मुझे नजर नहीं आई।

प्लेगका उपचार

इस अस्पतालके व्यवस्थापकोंको मैंने बताया कि मुझे तीन बारके प्लेग प्रकोपोंका अनुभव है;[1] और एक जगह तो प्लेगको जड़मूलसे उखाड़नेमें मेरा हाथ था। अन्य दो अवसरोंपर भी यद्यपि प्लेगका बिलकुल नाश नहीं किया जा सका तथापि वह अच्छी तरहसे वशमें आ गया था। इसपर व्यवस्थापकोंने उसके उपचारके बारेमें मुझसे पूछा। हालाँकि हम सभी ये उपचार जानते हैं, फिर भी मैं यहाँ उनका उल्लेख किये देता हूँ:

१. प्लेगके रोगीको जहाँतक हो सके सबसे अलग रखा जाये; जो उसकी सेवा-शुश्रूषामें लगे हुए हों वे भी औरोंको न छुएँ।

१. राजकोटमें (१८९६), जोहानिसबर्गमें (१९०५) और अहमदाबादमें (१९१७-१८)।

२. जहाँ प्लेगके लक्षण प्रकट हो चुके हों वहाँ सफेदी आदि करवाकर कमसे-कम दस दिनतक उस घरका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

३. अगर घरमें सील हो, उजाला न हो और हवा कम आती हो तो इन तीनों खामियोंको दूर किया जाना चाहिए।

४. घरमें चूहोंके बिल हों तो बिल आदि इस तरह भर दिये जायें जिससे उनमें चूहे न रह सकें।

यदि इतनी बातें ध्यानमें रखी जायें तो निःसन्देह प्लेग नहीं फैलेगा। मैं जानता हूँ कि उपाय बताना आसान है, उनपर अमल करना मुश्किल है। इसीसे प्लेगने हिन्दुस्तानमें घर कर लिया है। गरीबीके होते हुए भी जितने उपायोंपर अमल किया जा सके, करना चाहिए। प्लेगको रोकनेके उपाय सहल हैं। और जो जो उपाय मैंने सुझाये थे उन्हें फिर दुहरानेका मन करता है:

१. हवा और रोशनीवाले घरोंमें ही रहनेकी आदत डालनी चाहिए।

२. ऐसे घर बनाये जाने चाहिए जिनमें चूहे बिल आदि न बना सकें।

३. पाखानेके लिए कोई बालटी या बरतन रखा जाना चाहिए। इस्तेमालके बाद उसपर काफी मिट्टी डाल देनी चाहिए जिससे सब मैला ढक जाये और सिर्फ धूल-ही-धूल दिखाई दे।

४. पेशाब भी किसी बर्तनमें ही किया जाना चाहिए।

५. पाखाना घरके किसी अन्य भागकी तरह ही साफ होना चाहिए।

इन नियमोंके महत्वपर लिखनेकी मुझे फुर्सत नहीं है लेकिन मेरा विशेष अभिप्राय यह है कि यद्यपि हम व्यक्तिगत रूपमें शौचके नियमोंका ठीक-ठीक पालन करते हैं तथापि शौचके सामाजिक नियमोंसे हम परिचित नहीं हैं और अगर हैं तो उनका पालन नहीं करते और परिणामस्वरूप अनेक व्याधियोंके शिकार बनते हैं।

पदकका त्याग किया

इस अस्पतालकी बात बताते समय मुझे यह बताना भी नहीं भूलना चाहिए कि भाई मूलचन्दको उनकी सेवाओंके लिए जो स्वर्ण-पदक मिला था उसे उन्होंने उसी दिन लौटानेका निश्चय किया।[१] उसी दिन दो प्रसिद्ध वकीलों — लाला केवलकृष्ण और लाला बोधराजने एक वर्षके लिए अपनी वकालत बन्द करनेके निर्णयका ऐलान भी किया। इन दोनों वकीलोंकी सार्वजनिक सेवाका मुल्तानके जन-जीवनपर अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने समझ लिया था कि वकालतका धन्धा जारी रखनेके कारण मुल्तानकी प्रगतिमें अवरोध उत्पन्न हो गया था। ऐसी कितनी जगहें हैं जहाँ आज यही बात हो रही है। जहाँ नेतागण असहयोगके स्वरूपको समझ नहीं पाये हैं या समझनेपर भी उसका पालन करनेमें असमर्थ रहे हैं वहाँ-वहाँ असहकार आन्दोलन आगे नहीं बढ़ सका है; क्योंकि 'श्रेष्ठ-जन जैसा आचरण करते हैं, इतर वर्ग भी उसीका अनुसरण करता है।'[२]

१. देखिए "भाषण: मुल्तानमें", ५-३-१९२१।

२. **भगवद्गीता,** ३-२१

सियालकोटका उदाहरण

अपनी यात्राके दौरान में जहाँ-कहीं गया हूँ मैंन यह अनुभव किया है कि यदि शुद्ध कार्य करनेवाला एक व्यक्ति भी मिल जाये तो असहयोग सुचारु ढंगसे चलने लगे। अकेले, आगा सफदरने ही सियालकोटके जन-जीवनको उन्नत बना दिया है। वे एक बहादुर और खानदानी वकील हैं। उन्होंने सितम्बरसे पहिले अर्थात् जब खिलाफतका प्रस्ताव पास हुआ तभीसे डा० किचलूके साथ वकालत छोड़ी। उनका त्याग, उनका सादापन और उनका सत्य उनके कार्यमें दिखाई पड़ता है। आगा सफदर, असहयोग आन्दोलनमें शामिल होनेसे पहले सियालकोटके जीवनमें खासा भाग लिया करते थे। इसीसे उनके नेतृत्वमें सियालकोटमें असहयोगका बहुत काम हो रहा है। एक बड़ी इस्लामी शाला राष्ट्रीय स्कूलमें परिवर्तित हो गई है। चरखेका काम जोरोंपर है। उनकी पत्नी तथा दूसरी बहनोंके शरीरपर भी मैंने सियालकोटमें खादीके कपड़े ही देखे। मुझे अनेक स्थानोंपर ऐसे अनुभव हुए हैं। पंजाबके अनुभवोंका वर्णन करते हुए सियालकोटका सुन्दर उदाहरण मुझे याद हो आया। मैंने यह भी देखा है कि जिन लोगोंने शुद्ध भावसे त्याग किया हैउ न सबकी प्रतिष्ठा बढ़ी है और उन्होंने खोया तो कुछ भी नहीं है। पैसेकी हानि हुई हो, सो भी नहीं कहा जा सकता। वे जीविका-भर कमा लेते हैं और उसके उपरान्त कुछ लेनेका अधिकार किसे रह जाता है? समाज-सेवकको तो निश्चय ही नहीं। उसके हाथ पाक-साफ होने चाहिए। उसके निजी धन्धे कम ही होने चाहिए और उसकी जरूरतें कमसे-कम होनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–३–१९२१

२३२. राष्ट्रीय तिलक स्वराज्य कोष

इस कोषके सम्बन्धमें मैं पजाबकी अपनी यात्रा विषयक टिप्पणीमें संकेत कर चुका हूँ। हमें इतना चन्दा इकट्ठा करना चाहिए जो लोकमान्यकी स्मृतिके योग्य हो। लोगोंमें उनके प्रति अनन्य भक्तिभाव है। इसका कुछ अन्दाज वे लोग ही लगा सकते हैं जो लोकमान्यके अवसानके समय वहाँ उपस्थित थे और उनकी शव-यात्रामें शामिल हुए थे। क्या वह भक्ति अभीतक कायम है? इन थोड़े महीनोंके दौरान लोगोंको इस प्रश्नका उत्तर देनेका अवसर है।

लोकमान्यके हमारे इस स्मरणका रूप कैसा होगा? उनकी कोई मूर्ति नहीं बनाई जायेगी। उस चन्देकी रकमसे स्वराज्य प्राप्त करना है, और चन्देका मुख्य उपयोग बच्चोंको शिक्षण देनेमें, चरखेकी प्रवृत्तिको चलानेमें और जनताके सेवकोंके परिपालनमें किया जायेगा। मतलब यह कि जो रकम हम देंगे उसका पूरा-पूरा

उपयोग हमारे लिए ही होगा। रकमके इससे अधिक सुन्दर उपयोगकी कमसे-कम मैं तो कल्पना नहीं कर सकता।

लोकमान्यके स्मारकके लिए भारत एक करोड़ रुपया इकट्ठा करे, यह बात किसीको बहुत ज्यादा नहीं लगेगी। स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए एक करोड़ रुपया इकट्ठा करना हमारे लिए बायें हाथका खेल होना चाहिए। हमें जितना चाहिए यदि उतना रुपया भी इस प्रवृत्तिके लिए हम इकट्ठा न कर सकें तो स्वराज्यकी माँग करने अथवा उसकी प्राप्ति करनेका हमें कोई अधिकार नहीं रह जाता। यदि जनता विदेशी कपड़ेका त्याग करनेके लिए तैयार न हो, सूत कातनेमें आनाकानी करे, धन न दे तो उसे स्वराज्यका क्या हक हो सकता है? इसलिए एक करोड़ रुपयेको तो मैं कमसे-कम रकम समझता हूँ। इतनी रकम इक्कीस प्रान्तोंमें से मिलनी चाहिए। इनमें से कितने ही प्रान्त गरीब हैं, कितने ही बहुत छोटे हैं; उनसे उनके हिस्सेके पैसे प्राप्त करनेकी आशा नहीं की जा सकती। हाँ, बम्बई, गुजरात, पंजाब आदिसे अधिक मिलनेकी आशा अवश्य की जा सकती है।

यह रकम हमें तीस जूनतक अवश्य उगाह लेनी चाहिए। बहुत ज्यादा लोगोंसे अगर हम यह रकम उगाहें तो किसीपर बोझ नहीं पड़ेगा और हम सहज ही एक करोड़ रुपया इकट्ठा कर सकेंगे। मेरी तो सलाह है कि हमें तुरन्त ही यह चन्दा उगाहना आरम्भ कर देना चाहिए और जूनके अन्ततक पूरी रकम उगाह लेनी चाहिए। मात्र निश्चयकी और खरे स्वयंसेवकोंकी जरूरत है। इस सम्बन्धमें सब प्रान्तोंको पंजाबका अनुकरण करना चाहिए।

सबको याद रखना चाहिए कि हर प्रान्तमें अलग-अलग चन्दा इकट्ठा करना है और हर प्रान्तमें जो रकम इकट्ठी की जाये उसका पच्चीस प्रतिशत कांग्रेसकी महा-समितिको दिया जाना है। कोई भी ऐसे लोगोंको चन्दा न दे जिनकी नियुक्ति स्थानीय कांग्रेस समिति द्वारा न की गई हो। इस सादे नियमका पालन करनेसे हम अनेक दुःखोंसे बच सकते हैं।

जबतक यह चन्दा जारी रहे तबतक जहाँतक बन सके किसी और चन्देकी माँग नहीं की जानी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०–३–१९२१

२३३. कांग्रेसका संविधान

कांग्रेसके संविधानका पूरा-पूरा अर्थ समझ लेना जरूरी है। उस संविधानकी[1] रचना स्वराज्य समयपर प्राप्त करनेके उद्देश्यसे की गई है। उसके अनुसार यदि हम प्रत्येक गाँवमें कांग्रेस समिति बना सकें और उसके रजिस्टरमें वहाँके २१ वर्षके प्रत्येक स्त्री पुरुषका नाम दर्ज कर सकें तो उसका अर्थ यह होगा कि सरकारकी ही भाँति प्रत्येक गाँवमें कांग्रेसकी सत्ता भी चलती है। सरकारकी सत्ताका आधार तो जोर-जबरदस्ती है। तब यदि वहाँ लोगोंकी स्वेच्छासे एक अन्य सत्ताका शासन चलना आरम्भ हो जाये तो लोक-प्रतिकूल सरकारी सत्ता एक पलके लिए भी नहीं टिक सकती। इसलिए यदि हम कांग्रेसके संविधानको पूर्णतया व्यापक कर सकें तो समझ लीजिए कि उसी दिन स्वराज्यकी स्थापना हो जायेगी। इसमें हमारी योजना-शक्तिकी परीक्षा हो जाती है। यदि हममें इतनी शक्ति भी न हो तो हमें स्वराज्य प्राप्त करनेका क्या अधिकार है?

कांग्रेसका संविधान निराशावादियोंको जवाब है। वे ऐसा मानते हैं कि हममें योजना-शक्ति नहीं है और उसे प्राप्त करनेमें हमें वर्षों लगेंगे। यह बतानेके लिए कि उनकी यह निराशा निराधार है, कांग्रेसने आशावादीके हाथमें एक शस्त्र दिया है। इस योजनाको पूरा करनेके लिए किसी त्यागकी जरूरत नहीं है, सिर्फ हममें सामान्य प्रामाणिकता और प्रयत्नकी जरूरत है। इसमें बहुत ज्यादा पैसेकी भी जरूरत नहीं और जितने पैसोंकी जरूरत है उतने तो हम [प्रति सदस्य] चार आनेके चन्देसे ही प्राप्त कर सकते हैं। जिस तरह ३० जूनतक हममें एक करोड़ रुपया इकट्ठा करनेकी शक्ति होनी चाहिए उसी तरह हममें कांग्रेसके एक करोड़ सदस्य बनानेकी शक्ति भी होनी चाहिए। एक करोड़ अर्थात् आबादीका तीसवाँ भाग। गुजरातकी आबादी अनुमानतः ९६ लाख है। अतएव हमारे रजिस्टरमें ३० जूनसे पहले-पहले कमसे-कम तीन लाख सदस्योंके नाम दर्ज हो जाने चाहिए। हमने २८ फरवरीतक २५ हजार नाम दर्ज किये थे। अपनी गतिको तेज करके ही हम सफलताकी आशा कर सकते हैं। सत्याग्रह सप्ताहमें खूब मेहनत करके सदस्योंकी संख्या और चंदेकी रकम बढ़ाकर, इतना सामान्य काम तो हमें कर ही लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-३-१९२१

१. देखिए पृष्ठ १९४-२०२ ।

२३४. भाषण : सिवनीमें[1]

२० मार्च, १९२१

भगवानदीनजी यहाँ भाषण करने आये और यहीं पकड़े गये इसीसे मेरे मनमें यहाँ रुकनेकी विशेष इच्छा हुई। निरपराध व्यक्तियोंको सरकार पकड़ती है, यह हमारी जीतकी पक्की निशानी है। इस तरहकी गिरफ्तारीको तो हमें अपना लाभ मानना चाहिए और उसमें आनन्द मनाना चाहिए।

*　　　　　*　　　　　*

शराब पीनेसे तो गन्दे नालेका पानी पीना बेहतर है। नालेके पानीके बारेमें सिर्फ इतनी ही बात है कि वह गन्दा होता है और उसे पीनेसे बीमारी होती है, लेकिन शराबसे तो आत्मा मलिन हो जाती है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५-४-१९२१

२३५. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

जबलपुर,[2]
२१ मार्च, [१९२१]

प्रिय चार्ली,

मैं आज जबलपुरमें हूँ और जल्दी ही रेलसे कलकत्ता रवाना हो जाऊँगा। वहाँसे मुझे उड़ीसा जाना है।[3] इसके साथ मेरा भारतका दौरा लगभग समाप्त हो जायेगा। सबसे गरीब प्रान्तका दौरा सबसे बादमें होगा। सरकारकी वर्तमान कार्यवाहीसे मुझे अकथनीय वेदना होती है। भारतमें शुद्धीकरणकी एक लहर चल रही है। लोग मद्यपान और अफीमके व्यापारको समाप्त कर देना चाहते हैं। सरकार उनके इस उद्देश्यको विफल करनेका भरसक प्रयत्न कर रही है। लोग सादा जीवन बिताना चाहते हैं। बड़ी चतुराईसे उन्हें इससे रोकनेका प्रयत्न किया जा रहा है। लेकिन मेरा खयाल है कि यह लहर रुक नहीं सकती। यह अवश्य जारी रहेगी। फिर भी मुझे करीब-करीब ऐसा लगता है मानो यह सारा प्रयत्न लॉर्ड रीडिंगके[4] आगमनके सिलसिलेमें उनके

१. महादेव देसाईके यात्रा विवरणसे उद्धृत ।
२. इस वर्ष २१ मार्चको गांधीजी जबलपुरमें थे ।
३. गांधीजी २४ से २९ मार्च तक उड़ीसामें थे ।
४. भारतके मनोनीत वाइसराय ।

आगमनके पहले ही इस उद्देश्यसे किया जा रहा कि उनके लिए ऐसा वातावरण बना दिया जाये कि जिसमें यदि वे मजबूत दिल और खरी न्यायपरता लेकर न आयें तो उनके लिए कोई वास्तविक सेवा करना असम्भव हो जाये।

आज मेरा पवित्र दिन[1] है और मैं तुम्हें कुछ पंक्तियाँ लिखे बिना नहीं रह सकता। मैंने किसी अखबारमें पढ़ा था कि तुम्हें फिर इन्फ्लुएंजा हो गया है। मुझे आशा है कि तुम अब कुछ अच्छे हो। मुझे कटकके पतेपर तारसे अपनी तबीयतका हाल भेजना। मैं उड़ीसामें ६ दिन रहूँगा।

मुझे तुमसे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि शायद लालचन्द[2] भरोसेका आदमी नहीं था। महादेवने मुझे बताया और मुझे उसकी जाँचकी सचाईमें जरा भी सन्देह नहीं कि लालचन्दने बहुत-सा रुपया गबन किया है। मैंने उससे सफाई माँगी है। मुझे अभी उसका कोई उत्तर नहीं मिला है। वह महादेवके साथ बड़ी बुरी तरह पेश आया। वह अफीमके सम्बन्धमें भेजा गया तुम्हारा लेख वापस नहीं देना चाहता और कहता है कि वह 'यंग इंडिया'के सम्पादकको नहीं, स्वयं उसको भेजा गया था। मैं इस पत्रके द्वारा तुम्हें सावधान करता हूँ कि उसपर विश्वास मत करना। उसे तुमसे या किसी भी अधिकृत व्यक्तिसे कोई चीज मिल जाये, तो वह उससे रुपया कमा सकता है।

ऐसी बातोंका पता चलनेपर मुझे दुःख होता है और कभी-कभी निराशा भी। यदि हमारे साधन निर्दोष न हों तो हम असहयोगके संघर्षमें अधिक प्रगति नहीं कर सकते। मैं तो समझता था कि लालचन्द बिलकुल ईमानदार और सन्देहसे परे है।

मैं ३१ को या ३० को बेजवाड़ा पहुँचूँगा और आन्ध्र प्रदेशमें ५ दिन रहूँगा।

सस्नेह,

तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० ९६१) की फोटो-नकलसे।

१. २१ मार्च, १९२१ को सोमवार होनेसे गांधीजीका मौन-वार था।

२. इनको कुछ समय पहले **यंग इंडिया**के सम्पादकीय विभागसे हटाया गया था। देखिए "पत्र : लालचन्दको", २९-१-१९२१।

२३६. तार : केन्द्रीय खिलाफत समिति, बम्बईको

२२ मार्च, १९२१

कराची तार भेज दिया। असहयोगी यदि शिक्षाका राष्ट्रीयकरण करनेकी चेष्टा करें तो रोका न जाये।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, १९२१, पृष्ठ ३५०।

२३७. टिप्पणियाँ

ईश्वरके लिए, राजाके लिए, और देशके लिए

अपनी यात्राके दौरान मुझे कुछ लड़के मिले, जिन्होंने वर्दी पहन रखी थी। मैंने उनसे पूछा कि उनकी वर्दीका क्या अर्थ है। मैंने गौरसे देखा कि उनकी वर्दी विदेशी कपड़ेकी अथवा विदेशी सूतसे बुने कपड़ेकी थी। उन्होंने कहा, यह बालचरोंकी वर्दी है। उनके उत्तरसे मेरी जिज्ञासा बढ़ी। मैं यह जाननेको उत्सुक हुआ कि बालचरोंके नाते वे क्या करते हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि वे ईश्वरके लिए, राजाके लिए, और देशके लिए जीते हैं। मैंने पूछा, "तुम्हारा राजा कौन है?" उत्तर मिला, "किंग जॉर्ज।" "जलियाँवालाके बारेमें तुम्हारी क्या राय है? मान लो १३ अप्रैल, १९१९ के दिन तुम वहाँ होते, और जनरल डायर तुम्हें अपने भयाकुल देशवासियोंपर गोली चलानेके लिए कहते, तो तुम क्या करते?"

"स्पष्ट है कि मैं उस आज्ञाका पालन नहीं करता।"

किन्तु जनरल डायर राजाकी वर्दी पहने हुए थे?

"ठीक है, किन्तु वे तो नौकरशाहीके सदस्य हैं, और मेरा उससे कोई वास्ता नहीं है।"

इसपर मैंने उनसे कहा कि तुम नौकरशाहीको राजासे अलग करके नहीं देख सकते, राजा तो एक निर्वैयक्तिक आदर्श सत्ता है। इसका यह अर्थ होता है कि ब्रिटिश साम्राज्य तथा किसी भी भारतीयके लिए यह सम्भव नहीं कि आज साम्राज्यका जो रूप हो गया है उसे देखते वह साम्राज्यका भी वफादार रहे और ईश्वरका भी। जो साम्राज्य फौजी शासनके द्वारा फैलाये गये आतंकके लिए जिम्मेदार हो, जो साम्राज्य अपनी गलतियोंके लिए पश्चात्ताप करनेको तैयार नहीं हो, जो साम्राज्य गम्भीरतापूर्वक दिये गये अपने वचनोंको भंग करके गुप्त सन्धियाँ करे, ऐसे साम्राज्यको अधर्मी — ईश्वरका कोई खयाल न रखनेवाला — साम्राज्य ही कहा जा सकता है। अतः, उसके प्रति निष्ठा रखना ईश्वरके प्रति अनिष्ठा होगी।

यह सब सुन कर लड़का उलझनमें पड़ गया।

मैंने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, मान लो हमारा देश धनसम्पन्न होनेके लिए अधर्मी हो जाये, विदेशियोंका शोषण करे, मादक द्रव्योंका धन्धा करे, अपने व्यापारका विस्तार करनेके लिए युद्ध करता फिरे, तथा अपनी शक्ति और प्रतिष्ठाको कायम रखनेके लिए छल-कपटका आश्रय ले, तो उस हालतमें हम ईश्वर और देश, दोनोंके प्रति एक साथ निष्ठावान् कैसे रह सकते हैं? क्या तब हमें ईश्वरके लिए देशको छोड़ नहीं देना चाहिए? अतः मेरा सुझाव है कि तुम्हें केवल भगवानके प्रति ही ईमानदार और निष्ठावान् होना चाहिए; उसके साथ उसी अर्थमें तुम किसी दूसरेके प्रति निष्ठा नहीं रख सकते।

उस लड़केके अनेक साथी इस बातचीतमें गहरी दिलचस्पी ले रहे थे। उनका सरदार भी वहाँ आ गया। मैंने उसे भी अपनी बात बताई और कहा कि आप जिन बड़ी उम्रके नवयुवकोंका मार्गदर्शन कर रहे हैं, थोड़ा कष्ट करके उनमें जिज्ञासाकी प्रवृत्ति जगाइए। यह रोचक विषय समाप्त ही हुआ था कि गाड़ी स्टेशनसे रवाना हो गई। मुझे उन शानदार लड़कोंके लिए बड़ा दुःख हुआ, और मुझे असहयोग आन्दोलनका गम्भीर अर्थ और अच्छी तरह समझमें आया। मनुष्यके लिए सर्वमान्य धर्म बस एक ही हो सकता है; वह है ईश्वरके प्रति निष्ठा। उसमें राजाके प्रति, देशके प्रति और मानवताके प्रति निष्ठाके लिए भी स्थान है, बशर्ते कि ये निष्ठाएँ उस परमधर्मसे असंगत न हों। किन्तु उसी प्रकार बहुधा उसमें इन निष्ठाओंके लिए स्थान नहीं भी होगा। आशा है, हमारे देशके नवयुवक और उनके शिक्षक अपने सिद्धान्त और मान्यतापर फिरसे विचार करेंगे और जहाँ उन्हें अपनी भूल दिखाई देगी वहाँ उसे सुधार लेंगे। यह बात कोई मामूली बात नहीं है कि अपरिपक्व मस्तिष्कवाले लड़कोंके सामने ऐसे सिद्धान्त रखे जाते हैं जो जाँचकी आँच नहीं सह सकते।

सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा, निष्क्रिय प्रतिरोध, असहयोग

राष्ट्रीय शुद्धीकरणके इस महान् आन्दोलनके सिलसिलेमें अकसर तरह-तरहके विषयोंपर बहुत ही पेचीदे प्रश्न उठते रहे हैं, और मुझे उनका जवाब देना पड़ा है। कालेजमें पढ़नेवाले असहयोगी विद्यार्थियोंकी एक टोलीने मुझसे इन शब्दोंकी परिभाषा करनेके लिए कहा, जिनका मैंने इस टिप्पणीके शीर्षकके लिए उपयोग किया है। और, आज जब इतना कुछ हो चुका है तब भी मुझसे बड़ी गम्भीरतापूर्वक पूछा गया कि क्या सत्याग्रहमें कभी-कभी हिंसा द्वारा प्रतिरोधकी आवश्यकता नहीं पड़ती? उदाहरणके लिए, हम उस स्थितिको ले सकते हैं जब किसी बहनकी इज्जतपर कोई दुराचारी व्यक्ति हाथ डालना चाहे। मैंने कहा कि उस स्थितिमें, उत्तेजित या क्षुब्ध हुए बिना मुसीबतमें पड़ी उस बहन और उस दुराचारीके बीच खड़े होकर मृत्युका सामना करना उसके बचावकी पूरी जिम्मेदारी निभा देना है। मैंने कहा कि बचावका यह अभिनव तरीका, बहुत सम्भव है, उस दुराचारीकी कामवासनाको समाप्त कर देगा, और वह उस निर्दोष अबलापर बलात्कार नहीं करना चाहेगा, तथा शर्मके मारे उसके पाससे भाग जाना चाहेगा। और यदि उसने ऐसा नहीं किया, तो अपने भाईके व्यक्ति-

गत शौर्यका यह कार्य इस बहनके हृदयमें भी बलका संचार करेगा और वह उसी बहादुरीसे अपना बचाव करती हुई कुछ समयके लिए पशु बन गये उस व्यक्तिकी कामवासनाका प्रतिरोध करेगी। और मैंने अपनी समझमें यह कहकर अपनी दलीलको अकाट्य बना दिया कि यदि सारे बचावके बावजूद अनहोनी बात घटित ही हो जाये और वह आततायी अपनी शारीरिक शक्तिसे उस बेचारीको विवश कर दे तो यह बात उस स्त्रीके लिए लज्जाजनक नहीं होगी, बल्कि स्वयं वह स्त्री और उसका भाई, जो उसके सतीत्वको बचानेके प्रयत्नमें मर गया, दोनोंका मुँह ईश्वरके सामने उज्ज्वल रहेगा। मैं यह दावा नहीं करता कि मेरे तर्कसे मेरे श्रोताओंको तसल्ली और इतमीनान हो गया, और न यही मानता हूँ कि पाठकोंको ही हो जायेगा। मैं जानता हूँ कि यह संसार जैसा चलता आया है, चलता रहेगा। किन्तु आत्मनिरीक्षणकी इस घड़ीमें अहिंसाके इस शक्तिशाली आन्दोलनके गूढ़ार्थोंको समझना तथा उनका अभिमूल्यन करना अच्छा होगा। सभी धर्मोंने उच्चत्तम आदर्शोंपर जोर दिया है, किन्तु सभीने मानवीय कमजोरियोंको देखते हुए उससे किंचित विचलित होनेकी न्यूनाधिक छूट दी है।

अब मैं उपर्युक्त विभिन्न शब्दोंकी मैंने जो व्याख्या प्रस्तुत की है, वह संक्षेपमें बताता हूँ। ठीक-ठीक और नपी-तुली परिभाषा देना मेरी शक्तिके बाहर है।

तो, सत्याग्रहका शब्दार्थ है सत्यका आग्रह रखना और इसलिए उसका अर्थ होगा सत्यबल। सत्य है आत्मा। अतः उसे आत्मबल कहा जाता है। वह हिंसाके प्रयोगका निषेध करता है, क्योंकि मनुष्य सम्पूर्ण सत्यको जाननेमें असमर्थ है, और इसलिए दण्ड देनेका अधिकारी नहीं है। यह शब्द दक्षिण आफ्रिकामें गढ़ा गया था।[1] उसका उद्देश्य दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके अहिंसात्मक प्रतिरोध तथा उसके समकालीन मताधिकारके लिए आन्दोलन करनेवाली स्त्रियों अथवा अन्य लोगोंके निष्क्रिय प्रतिरोधके बीच अन्तर स्पष्ट करना था। उसकी कल्पना कमजोरोंके अस्त्रके रूपमें नहीं की गई थी।

निष्क्रिय प्रतिरोध (पैसिव रेजिस्टेंस) शब्दोंका प्रयोग अंग्रेजीके परम्परागत अर्थमें होता है और उससे मताधिकार आन्दोलन तथा "नॉन-कन्फर्मिस्टों"के प्रतिरोधका बोध होता है। निष्क्रिय प्रतिरोधकी कल्पना कमजोरके अस्त्रके रूपमें की गई है और इसे उन्हींका अस्त्र माना जाता है। यद्यपि वह हिंसासे बचता है, क्योंकि अशक्तोंके लिए हिंसाका रास्ता खुला नहीं है, तथापि यदि किसी निष्क्रिय प्रतिरोधीकी रायमें किसी अवसरपर हिंसा आवश्यक हो तो वह उसके प्रयोगका निषेध नहीं करता। जो भी हो, वह सशस्त्र प्रतिरोधसे सदा भिन्न माना गया है, और उसका प्रयोग किसी समय ईसाई बलिदानियोंतक ही सीमित था।

सविनय अवज्ञा (सिविल डिसओबिडिएंस) अनैतिक वैधानिक अधिनियमोंका सविनय उल्लंघन है। यह शब्द-पद 'सिविल डिसओबिडिएंस' यानी सविनय अवज्ञा, जहाँतक मैं जानता हूँ, थोरोने दास-प्रथा-पोषक राज्यके कानूनोंका स्वयं वे जो विरोध

१. सन् १९०८ में, देखिए खण्ड ८, पृष्ठ १२६-२७।

कर रहे थे, उसीका बोध करानेके लिए गढ़ा था। वे सविनय अवज्ञापर एक श्रेष्ठ प्रबन्ध[1] भी लिख गये हैं। किन्तु थोरो कदाचित् अहिंसाके सोलहों आना समर्थक नहीं थे। साथ ही, थोरोने, शायद वैधानिक नियम-भंगको राजस्व-नियमके उल्लंघन, अर्थात्, कर-अदायगी न करनेतक ही सीमित रखा। किन्तु, १९१९ में प्रयुक्त सविनय अवज्ञामें किसी भी संविहित तथा अनैतिक नियमका उल्लंघन शामिल था। इसका मतलब था प्रतिरोधी द्वारा कानूनके बंधनोंको विनयपूर्वक, अर्थात् अहिंसक ढंगसे अस्वीकार कर देना। वह कानून-भंगके लिए विहित दण्डको आमन्त्रित करता था, और हँसी-खुशी कारावास भोगता था। वह सत्याग्रहकी एक शाखा है।

असहयोगका अर्थ मुख्यतः होता है, ऐसे राज्यको, जो असहयोगीकी दृष्टिसे भ्रष्ट हो गया है, सहयोग देनेसे हाथ खींच लेना; इसमें ऊपर वर्णित उग्र ढंगकी सविनय अवज्ञाका निषेध है। असहयोगकी प्रकृति ही ऐसी है कि इसका मार्ग समझदार बच्चोंके लिए भी खुला हुआ है और जनसाधारण मजेमें इसका आचरण कर सकता है। सविनय अवज्ञाकी पहली शर्त यह है कि सविनय अवज्ञा करनेवाले व्यक्तिको दण्डके भयके कारण नहीं, बल्कि स्वेच्छासे कानूनकी आज्ञाका पालन करनेकी आदत हो। अतः उसका व्यवहार बिलकुल अन्तिम उपायके रूपमें ही किया जा सकता है। कमसे-कम प्रारम्भमें तो उसे कुछ चुनिन्दा लोगोंतक ही सीमित रखना चाहिए। सविनय अवज्ञाके समान, असहयोग भी उस सत्याग्रहकी एक शाखा है, जिसमें सत्यकी प्रतिष्ठाके हेतु किये गये सभी प्रकारके अहिंसात्मक प्रतिरोध शामिल हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-३-१९२१

२३८. सत्याग्रह सप्ताह

अप्रैलकी ६ और १३ तारीख अब बिलकुल निकट आ पहुँची हैं। ६ अप्रैलको[2] भारतमें एकता और जागृतिके दर्शन हुए थे। १३ को वह मनहूस रविवार पड़ता था, जब एक सद्यः जागृत राष्ट्रकी आत्माको कुचल डालनेका शैतानी प्रयत्न किया गया था। भारतने गत वर्ष यथोचित रीतिसे इन दोनों दिनोंकी वार्षिकी मनाई और ६ अप्रैलसे आरम्भ होनेवाले पूरे सप्ताहका उपयोग लोगोंने इस संकल्पको दोहरानेके लिए किया कि वे राष्ट्रके लिए जो-जो बलिदान देना आवश्यक होगा, देंगे। आशा है, आगामी अप्रैल हमें महत्तर आत्म-बलिदानके लिए प्रस्तुत पायेगा। हर तरहसे उसका कारण और अवसर भी मौजूद है। पिछले साल हमने केवल निर्दोष व्यक्तियोंके रक्तपातसे पावन हुई भूमिका क्रय-मूल्य चुकानेके लिए चन्दा एकत्र करनेपर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया

१. गांधीजी द्वारा प्रस्तुत इस प्रबन्धके संक्षिप्त रूपके लिए, देखिए खण्ड ७, पृष्ठ २२०-२२ तथा २३१-३३।

२. १९१९।

था।[१] वह एक आवश्यक तथा पवित्र कृत्य था। किन्तु उसके बादसे और भी बड़ी-बड़ी बातें हुई हैं। राष्ट्रने खिलाफतके तथा पंजाबके अन्यायोंका निवारण करने और स्वराज्य स्थापित करनेका अपना निश्चय दृढ़तापूर्वक घोषित किया, तथा फिर उसे दुहराता है। इसके बाद दिसम्बर अधिवेशनमें कांग्रेसने और भी आगे बढ़कर एक सालके भीतर स्वराज्य प्राप्त करनेका अपना इरादा भी घोषित कर दिया है।

अतः अब हम इस दिशामें और अधिक राष्ट्रीय प्रयास करनेका संकल्प करें। स्कूलों और अदालतोंके सम्बन्धमें आन्दोलन जारी है। अब, इस सम्बन्धमें उन लोगोंको छोड़कर जिन्होंने शिक्षा-संस्थाओं अथवा न्यायालयोंका त्याग कर दिया है, और किसीको किसी विशेष प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं है। उन्हें आत्मनिरीक्षण करना चाहिए और यह समझनेकी कोशिश करनी चाहिए कि वे अपने समयका कैसा उपयोग कर रहे हैं। किन्तु छः ऐसी बातें हैं, जिनके सम्बन्धमें निश्चय ही हमें अत्यन्त विशिष्ट प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है।

पहली बात यह है कि हमें अपने ऊपर और अधिक नियन्त्रण प्राप्त करना चाहिए, तथा पूर्ण शान्ति और सद्भावनाका वातावरण बनाना चाहिए। हमें बिना विचारे बोले गये प्रत्येक कठोर वचनके लिए अथवा किसीके प्रति किये गये कठोर व्यवहारके लिए क्षमायाचना करनी चाहिए।

दूसरे, हमें अपने हृदयको और भी अधिक स्वच्छ करना चाहिए। हमें, हिन्दुओं और मुसलमानोंको परस्पर एक-दूसरेकी नीयतोंपर सन्देह करना बन्द कर देना चाहिए। हमें यह विश्वास होना चाहिए कि हम दोनों एक-दूसरेका बुरा कर ही नहीं सकते।

तीसरे, हम हिन्दुओंको चाहिए कि हम किसीको भी अस्वच्छ, क्षुद्र अथवा अपनेसे नीच न कहें अतः 'परिया'[२] लोगोंको अस्पृश्य समझना अवश्य बन्द कर देना चाहिए। किसी भी मनुष्यको अछूत मानना पाप समझना चाहिए।

ये तीन बातें आन्तरिक परिवर्तनकी बातें हैं, और इनके परिणाम हमारे दैनिक जीवनके व्यवहारमें देखे जायेंगे।

चौथी बात है मद्यपानका अभिशाप। यह हर्षकी बात है कि लगता है, भारतने स्वेच्छासे अपने-आप इस अभिशापसे मुक्त होनेका निश्चय कर लिया है। इस सप्ताह-में विनयपूर्वक प्रार्थना करके मद्य-विक्रेताओंको अपने-अपने लाइसेंस वापस कर देनेके लिए और इन दुकानोंके नियमित ग्राहकोंको अपनी आदत छोड़ देनेके लिए प्रेरित करनेका चरम प्रयत्न किया जाना चाहिए। प्रत्येक जातिको मालूम है कि यह दोष उसके किन सदस्योंमें है तथा उनके साथ वह दूसरोंकी अपेक्षा अधिक सफलतासे निबट सकती है। किन्तु मैंने अहमदाबादकी महिलाओंको सुझाया है कि वे मद्य-निषेध-टोलियाँ संगठित करें, और शराब बेचनेवालों और पीनेवालोंके पास जाकर उन्हें समझायें। कुछ भी हो, अपने लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए शारीरिक शक्तिका उपयोग नहीं करना चाहिए। शान्तिके साथ, संकल्पपूर्वक समझा-बुझाकर राजी करनेसे इस अभियानमें अवश्य सफलता मिलेगी।

१. स्पष्ट ही तात्पर्य जलियाँवाला बाग स्मारक कोषसे है; देखिए खण्ड १७, पृष्ठ ३३-३४; ३३५।

२. दक्षिण भारतकी एक जाति विशेष जिसे अस्पृश्य माना जाता था।

पाँचवीं बात है, प्रत्येक घरमें चरखेका प्रारम्भ, खादीका अधिक उत्पादन तथा उपयोग, और विदेशी कपड़ेका पूर्ण त्याग।

छठी बात है, तिलक स्वराज्य कोषके लिए नियमित ढंगसे बराबर चन्दा एकत्र करना। यदि इस दिशामें संगठित प्रयत्न किया जाये, तो हम सत्याग्रह सप्ताहमें एक करोड़ रुपया भी संग्रह कर ले सकते हैं। मेरी अनवरत यात्राओंने मुझे आश्वस्त कर दिया है कि देश एक करोड़से भी ज्यादा देनेके लिए तैयार है। हाँ, ईमानदार संग्रहकर्त्ता पर्याप्त संख्यामें नहीं हैं। सत्याग्रह सप्ताहमें इस कामको करनेके लिए देशके प्रत्येक जिलेको अपने आपको संगठित कर सकना चाहिए।

हड़तालें बहुत आम हो गई हैं; उनका आयोजन आसानीसे हो सकता है और इसलिए अब उनका वह महत्व नहीं रह गया है जो प्रारम्भमें था। किन्तु उन दो दिनोंकी हड़तालका अपना एक अलग महत्व है। और मैं बेशक ६ अप्रैल और १३ अप्रैल-को उपवासके साथ-साथ हड़ताल करनेकी सलाह दूँगा। कहनेकी जरूरत नहीं कि जोर-जबरदस्ती बिलकुल नहीं होनी चाहिए। कोई चाहे मिलमें काम करता हो या कहीं और, यदि उसे छुट्टी न मिले तो काम नहीं बन्द करना चाहिए, और ट्रामके प्रबन्धकों पर कोई अनुचित दबाव नहीं डाला जाना चाहिए। हमें इस बातपर विश्वास करके चलना चाहिए कि जनता उचित और आवश्यक कारणके बिना सरकारी परिवहन गाड़ियोंका उपयोग नहीं करेगी। उपवासके दिनोंका उपयोग विशेष प्रार्थनाओं तथा पूजा-के लिए किया जाना चाहिए।

मैं जनतासे अनुरोध करूँगा कि वह अपनी माँगोंके सम्बन्धमें कोई भी प्रस्ताव पास न करे। समर्पणका यह सप्ताह आत्म-निरीक्षण तथा शुद्धीकरणका सप्ताह होना चाहिए। वांछित परिणाम प्राप्त करनेके लिए हमें अपने कामपर भरोसा करना चाहिए। ज्यों ही हम अपने-आपको योग्य बना लेंगे, दुनियाकी कोई भी हस्ती हमें स्वराज्य प्राप्त करने तथा इन दो महान् अन्यायोंका निराकरण करानेसे रोक नहीं सकेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३–३–१९२१

२३९. पारसियोंसे

प्यारे दोस्तो,

मैं जानता हूँ कि आप वर्तमान असहयोग आन्दोलनको बड़ी दिलचस्पीसे देखते आ रहे हैं। आपको शायद यह भी मालूम होगा कि सभी विचारवान असहयोगी आतुरतासे इस बातकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि जिस शुद्धीकरणकी प्रक्रियासे समस्त राष्ट्र गुजर रहा है, उसमें आप क्या भूमिका निभाने जा रहे हैं। व्यक्तिशः मुझे तो हर तरहसे यह विश्वास है कि जब अन्तिम निर्णयकी घड़ी आयेगी तो आप वही करेंगे जो सही है। आज ये दो शब्द आपके नाम इसलिए लिख रहा हूँ कि मुझे लगता है, शायद अन्तिम निर्णयकी वह घड़ी आ गई है।

आप मेरे देशभाई तो हैं ही। इसके अलावा भी, मैं आपसे कई पवित्र बन्धनोंसे बँधा हुआ हूँ। दादाभाई[1] मुझे प्रेरणा देनेवाले सबसे पहले देशभक्त थे। जब मैं अन्य किसी भी नेताको नहीं जानता था, तभी वे मेरे पथ-प्रदर्शक और सहायक थे। अपनी किशोरावस्थामें ही मुझे एक परिचय-पत्रके साथ उनसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।[2] और सन् १८९६ में जिस व्यक्तिने मेरी रहनुमाई की, मुझे काम करनेका तरीका बताया, वह थे बम्बईके बेताजके बादशाह[3], जो अब नहीं रहे। जब मैं १८९२ में राजनीतिक एजेंटसे जूझनेको आमादा हो गया था[4], तब उन्होंने ही मेरी जवानीके जोशको रोका था और मुझे सार्वजनिक जीवनमें अहिंसाका प्रथम व्यावहारिक पाठ पढ़ाया था। उन्होंने मुझे सिखाया कि अगर मैं भारतकी सेवा करना चाहता हूँ तो मुझे व्यक्तिगत अन्यायोंपर नाराज नहीं होना चाहिए। जब मैं दक्षिण आफ्रिकामें था, उन दिनों भी डर्बनके एक पारसी व्यापारी, रुस्तमजी घोरखोदू, मेरे अत्यन्त सम्माननीय मुवक्किलों और मित्रोंमें से थे। सार्वजनिक कार्योंके लिए वे दिल खोलकर धन देते थे, और मेरे साथ जेल जानेवालोंमें से वे और उनका लड़का सर्वप्रथम थे। मुझपर जब वहाँ मार पड़ी थी[5] तब उन्होंने ही मुझे शरण दी थी, और अब भी वे स्वराज्य आन्दोलनमें काफी दिलचस्पी रख रहे हैं; उन्होंने अभी-अभी तदर्थ ४०,००० रुपयेका दान दिया है।[6] मेरी नम्र सम्मतिमें, भारतकी महिलाओंमें भी अग्रणी एक पारसी महिला ही हैं।[7] वे गौके समान सुशील हैं और उनके हृदयमें समस्त मानवताके लिए करुणा है। उनकी मैत्री प्राप्त करना जीवनकी अन्यतम सौभाग्यपूर्ण बातोंमें से है। वैसे तो मैं ऐसी पुनीत स्मृतियोंका वर्णन करते ही जाना चाहूँगा, लेकिन इस दृष्टिसे आपको काफी बातें बता दी हैं कि आप इस पत्रका मंशा समझ सकें और उसे हृदयंगम कर सकें।

आप लोग बहुत ही सावधानी बरत कर चलनेवाली जातिके सदस्य हैं। आपमें पूरी एकता और संगठन है, और अगर आप लोग इस बातपर आग्रह रखते हैं कि किसी आन्दोलनमें शामिल होनेसे पहले आपको उसकी स्थिरता और नैतिकताके पर्याप्त प्रमाण मिलने चाहिए तो यह ठीक ही है। लेकिन, अब आपके जरूरतसे ज्यादा सावधानी बरतनेमें खतरा है, और व्यापारके क्षेत्रमें आपकी सफलता आपके असंख्य देशभाइयोंकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओंकी ओरसे आपकी आँखें बन्द कर दे सकती हैं। महान्

१. दादाभाई नौरोजी।

२. यह बात १८८८ की है, जब गांधीजी वकालत पढ़नेके लिए इंग्लैंड गये थे।

३. सर फीरोजशाह मेहता (१८४५–१९१५); बैरिस्टरीकी परीक्षा पास करनेवाले पहले पारसी भारतीय, सन् १८६८; नये बम्बई कॉर्पोरेशनके सदस्य १८७२–१९१५; ३० सालतक बम्बई विधान-परिषदके सदस्य; १८९३ में शाही विधान-परिषदके सदस्य; कांग्रेसके जन्मसे ही उससे सम्बद्ध; १८९० और १९०८ में कांग्रेसके अध्यक्ष।

४. यह बात राजकोटकी है, जब गांधीजीने अपने भाईकी ओरसे पोलिटिकल एजेंटसे बातचीत करनेकी कोशिश की थी और उन्हें फटकार दिया गया था। इस घटनाके विस्तृत विवरणके लिए देखिए **आत्मकथा**, भाग २, अध्याय ४।

५. डर्बनमें, १३–१–१८९७ को; देखिए खण्ड २।

६. देखिए "टिप्पणियाँ", २६–१२–१९२०, पाद-टिप्पणी २।

७. तात्पर्य शायद श्रीमती जाईजी पेटिटसे है।

टाटा परिवार रॉकफेलरवाली जिस भावनासे ग्रस्त होता जान पड़ रहा है, उससे मुझे बड़ा भय लगता है। भारतके औद्योगीकरणसे देशका सचमुच कोई लाभ हो सकता है, सो कहना कठिन है। इसलिए इस उद्देश्यसे उनका गरीबोंकी सम्पत्ति हड़प करना मुझे बड़ा खतरनाक जान पड़ता है। अलबत्ता मुझे विश्वास है कि यह एक अस्थायी स्थिति है। आप लोग इतने बुद्धिमान और होशियार हैं कि ऐसे आर्थिक उद्यमोंके आत्मघाती रूपको आप किसी दिन अवश्य ही पहचान लेंगे। आपकी आशु बुद्धि आपको बतायेगी कि भारतको जिस चीजकी जरूरत है वह चन्द हाथोंमें पूँजीका सिमट जाना नहीं है बल्कि उसका ऐसा वितरण है जिसका लाभ १,९०० मील लम्बे और १,५०० मील चौड़े इस महादेशके साढ़े सात लाख गाँवोंको मिल सके। इसलिए मैं जानता हूँ कि वह दिन दूर नहीं है जब आप एक समग्र जातिके रूपमें उन सुधारकोंके कन्धेसे-कन्धा लगाकर खड़े हो जायेंगे जो भारतको उसका रक्त चूसकर बेजान बना डालनेवाले साम्राज्यवादके अभिशापसे मुक्त करानेके लिए आतुर हो रहे हैं।

लेकिन एक बात ऐसी है जिसके सम्बन्धमें अब प्रतीक्षा करते रहना अपराध है। समस्त भारतमें मद्य-त्यागकी एक लहर-सी दौड़ रही है। लोग स्वतः ही मद्य छोड़ देना चाह रहे हैं। समाजमें बड़ी तेजीसे ऐसा जनमत तैयार हो रहा है जिससे शराब पीना एक अक्षम्य अपराध माना जाने लगेगा। बहुत-से पारसी शराबकी दुकानें चलाकर अपनी जीविका कमाते हैं। अगर आप पूरे मनसे सहयोग करें तो बम्बई इन बहुत-से अभिशप्त स्थानोंसे मुक्त हो जाये। इस आन्दोलनके इस हदतक सफल होनेके आसार नजर आ रहे हैं कि हो सकता है, सरकारको आबकारीसे एक पैसा भी मिलना बन्द हो जाये; किन्तु प्रायः सारे भारतमें स्थानीय सरकारें इसे विफल करनेका निद्य प्रयास कर रही हैं। तो इस स्थितिमें आप सरकारकी मदद करेंगे या जनता की? बम्बई सरकारने अभीतक इस मामलेमें घबराहट और उतावलापन नहीं दिखाया है। लेकिन, मैं नहीं सोच सकता कि उसमें इतना साहस और बुद्धिमानी होगी कि वह आबकारी-की आयसे खुशी-खुशी हाथ धो ले। आपको निर्णय तत्काल करना है। मैं नहीं जानता, इस सम्बन्धमें आपके धर्म-ग्रंथ क्या कहते हैं। हाँ, मैं यह अनुमान अवश्य लगा सकता हूँ कि अच्छाईको बुराईसे अलग करके बुराईपर अच्छाईकी विजयका गीत गानेवाले उस नबीने क्या कहा होगा। लेकिन आपका धार्मिक विश्वास चाहे जो हो, आपको यह तय करना है कि आप पूरे मनसे मद्य-निषेधके काममें सहयोग देकर उसे आगे बढ़ायेंगे या इस घटनाक्रमको उदासीन और दार्शनिक-भावसे देखते रहेंगे। मैं आशा तो यही करूँगा कि भारतकी एक व्यवहारवादी जातिके नाते आप मद्य-निषेधके इस महान् आन्दोलनमें पूरी तरहसे सक्रिय सहयोग देंगे, क्योंकि ऐसे आसार नजर आ रहे हैं कि यह अपने ढंगके दुनियाके सभी आन्दोलनोंको मात कर देगा।

आपका विश्वस्त मित्र,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-३-१९२१

२४०. खिलाफत

सेवर्सकी सन्धिमें जिस परिवर्तनकी बात सोची जा रही है, उससे भारतीय मुसलमान सन्तुष्ट नहीं हो सकते; और इतना कहना काफी कह देना है। ब्रिटेनको सिर्फ टर्कीको ही नहीं भारतको भी सन्तुष्ट करना है। मेरी नम्र सम्मतिमें, भारतके मुसलमानोंकी माँगें स्वीकार कर ली जायें तो टर्कीकी माँगें स्वीकार की जाती हैं या नहीं, इससे ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। इसके दो कारण हैं। खिलाफत एक आदर्श है और जब कोई व्यक्ति किसी आदर्शको लेकर चलता है तो उसका रास्ता दुनियाकी कोई ताकत नहीं रोक सकेगी। मुसलमान उस आदर्शका प्रतिनिधित्व करते हैं और समस्त भारतके सर्वसाधारणका समर्थन उन्हें प्राप्त है।

यह कहना गलत है कि मुसलमान सिर्फ टर्कीके लिए लड़ रहे हैं। अगर टर्की गलत रास्तेपर जाये, मान लीजिए, वह यह बेतुकी माँग रखे कि उसे फिर वही स्थिति प्रदान की जाये जो महाप्रतापी सुलेमानके[1] शासन कालमें उसे प्राप्त थी तो भारतके मुसलमान आज ही उसका साथ छोड़ देंगे। किन्तु उसी तरह, मुसलमान महज इस कारणसे 'कुरान' के समादेशोंपर आधारित कोई माँग छोड़ नहीं दे सकते कि असहाय और कमजोर टर्कीमें उसपर डटे रहनेकी सामर्थ्य नहीं है।

टर्कीकी लौकिक सत्ताको कायम रखनेके लिए तो हर सच्चा मुसलमान प्रयत्न करेगा ही, लेकिन इसका खयाल रखना उसका कर्त्तव्य है कि "अरब द्वीप" पर, जिसमें मेसोपोटामिया, सीरिया और फिलिस्तीन भी शामिल हैं, स्पष्ट रूपसे मुसलमानोंका नियन्त्रण रहे और उनपर धार्मिक प्रभुसत्ता खलीफाकी रहे, चाहे फिलहाल खलीफा कोई भी हो। अन्य शर्तें चाहे जितनी अच्छी हों, मुसलमानोंको किसी तरह सन्तुष्ट नहीं कर सकतीं। इस्लामके पाक स्थानोंपर किसी प्रकारका गैर-मुस्लिम प्रभाव, चाहे वह प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष, उन्हें बरदाश्त नहीं होगा।

इसलिए इस प्रश्नका सबसे उलझा हुआ पहलू फिलिस्तीन है। ब्रिटेनने फिलिस्तीनको फिरसे यहूदियोंका घर बनानेका आन्दोलन करनेवाले यहूदीवादियों (जिऑनिस्टों) से वादे कर रखे हैं। स्वभावत: यहूदीवादी इस स्थानसे एक पवित्र भावनासे बंधे हुए हैं। कहते हैं, जबतक फिलिस्तीनपर यहूदियोंका प्रभुत्व नहीं हो जाता तबतक वे बेघर-बार, खानाबदोश ही बने रहेंगे। यहाँ मैं इस मान्यतामें निहित सिद्धान्तके गुण-दोषका विवेचन नहीं करना चाहता। मुझे तो कुल इतना ही कहना है कि छल-कपटसे और नैतिकताके बन्धनोंको तोड़कर फिलिस्तीन यहूदियोंके हाथोंमें नहीं दिया जा सकता। फिलिस्तीनके सवालको लेकर तो यह लड़ाई नहीं लड़ी गई थी। ब्रिटिश सरकार एक भी मुसलमान सिपाहीसे यह कहनेका साहस नहीं कर सकती थी कि वह फिलिस्तीनको अपने मुसलमान भाइयोंके नियन्त्रणसे छीनकर यहूदियोंको दे देगी। फिलिस्तीन यहूदियोंका

१. सुलेमान तृतीय, जिसकी तलवारकी धाक पूर्वमें फारससे लेकर पश्चिममें आस्ट्रियातक जमी हुई थी।

तीर्थस्थल है, इसलिए उनके लिए यह एक ऐसी भावनाकी चीज है जिसका आदर करना चाहिए, और अगर मुसलमान आदर्शवादी यहूदियोंको उतनी ही स्वतन्त्रतासे पूजन आदि नहीं करने देते जितनी स्वतन्त्रतासे स्वयं करते हैं तो यहूदियोंका शिकायत करना उचित होगा।

इसलिए नैतिकता या युद्धके किसी भी नियमके अनुसार इस युद्धके परिणामस्वरूप फिलिस्तीन यहूदियोंको नहीं सौंपा जा सकता। या तो यहूदीवादियोंको फिलिस्तीनके सम्बन्धमें अपने आदर्शमें परिवर्तन करना चाहिए, या अगर यहूदी धर्ममें युद्धसे किसी सवालका निर्णय करनेकी छूट हो तो उन्हें मुसलमानोंके विरुद्ध 'धर्मयुद्ध' छेड़ना चाहिए, जिसमें उन्हें ईसाइयोंका समर्थन प्राप्त होगा। लेकिन आशा यही करनी चाहिए कि विश्व जनमतका जो रुख है, उसके कारण 'धर्मयुद्ध' एक असम्भव बात बन जायेगी और धार्मिक सवालों तथा मतभेदोंका समाधान अधिकाधिक शान्तिपूर्ण ढंगसे तथा कठोरतम नैतिक मान्यताओंके आधारपर होने लगेगा। लेकिन वह शुभ दिन आये या न आये, यह बात दिनके प्रकाशके समान स्पष्ट है कि अगर खिलाफतके सवालका न्यायसम्मत निपटारा होना है तो जजीरत-उल-अरबको खलीफाकी धार्मिक प्रभुसत्ताके अधीन पूरी तरहसे मुसलमानोंके नियंत्रणमें ही देना होगा।[1]

[अंग्रजीसे]

यंग इंडिया, २३–३–१९२१

२४१. सच्चे और झूठे[2]

मुझे लगता है, "दुःशंकाओंके जो बादल घिरते आ रहे हैं", उन्हें तो मैं दूर नहीं कर पाऊँगा, फिर भी पत्र-लेखकने जो मुद्दे उठाये हैं, उनपर प्रकाश डालने की कोशिश करूँगा। इसमें सन्देह नहीं कि यह एक सार्वजनिक आन्दोलन है, फिर

१. इसके बाद फिलिस्तीनपर यहूदियोंके दावे सम्बन्धी पुस्तक इजराइल जैंगविल-कृत **द वाइस ऑफ जेरूसलेम**की समालोचनाका एक छोटा-सा अंश दिया गया था।

२. पूनासे किसीने गांधीजीको एक पत्र लिखा था; उसके उत्तरमें गांधीजीने यह टिप्पणी लिखी थी। पत्रमें कहा गया था कि : "कांग्रेस द्वारा पास किये गये असहयोग प्रस्तावको अब तीन महीने हो गये, लेकिन छात्र-जगत्‌ने उसके प्रति पर्याप्त उत्साह नहीं दिखाया है. . .उन्हें इस बातकी प्रतीति नहीं हो पाई है कि कालेजोंके बहिष्कारसे सरकार ठप कैसे हो जायेगी. . .वे इसे सार्वजनिक आन्दोलन मानते हैं, और उनका खयाल है कि असहयोग सफल तभी हो सकता है जब अधिकांश लोग इसे अपने आचरणमें उतारें। अभी तक पूनाके कालेजोंके सिर्फ २०० विद्यार्थी इसमें शामिल हुए हैं. . .सो भी कांग्रेसके आदेशका पालन करनेके लिए; अपनी अन्तरात्माको तुष्ट करनेके लिए नहीं. . .क्या असहयोग करनेवाले इन मुट्ठीभर लोगोंको व्यर्थ ही कष्ट उठाते रहना चाहिए और अपना भविष्य चौपट कर लेना चाहिए? यह सोच कर बहुतसे छात्र कालेजोंको वापस जा रहे हैं और इसपर कुछ अत्युत्साही लोग उन्हें "नैतिक दृष्टिसे कोढ़ी" कहकर उनकी भर्त्सना कर रहे हैं। कृपया इन सभी मुद्दोंपर प्रकाश डालें और दुःशंकाओंके जो बादल घिरते आ रहे हैं, उन्हें दूर करें।"

भी हर व्यक्तिसे अपेक्षा यही की जाती है कि वह, दूसरे क्या करते हैं, इसका कोई खयाल किये बिना इसमें हाथ बँटायेगा, क्योंकि यह सार्वजनिक आन्दोलन होनेके साथ ही शुद्धीकरणका भी आन्दोलन है। हम स्कूलों और अदालतोंका परित्याग इसलिए करते हैं कि उनको समर्थन और सहारा देना पाप है। इसके पीछे कोई ऐसा खयाल नहीं है कि व्यक्तिका यह कार्य सरकारको ठप कर देगा। लेकिन जब यह काम व्यक्तिके बजाय समुदाय करेगा तो उसका परिणाम सरकारके ठप हो जानेके रूपमें प्रकट होगा ही। जिन विद्यार्थियोंने अन्तरात्माकी आवाजपर नहीं, बल्कि आज कांग्रेसके आवाहनपर स्कूल छोड़े, उन्होंने गलती की और उन्हें अब अपने-अपने स्कूलोंमें लौट जाना चाहिए और अपने साथियोंके ताने बर्दाश्त करने चाहिए। लेकिन जिन लोगोंने अपने विश्वासके कारण स्कूल छोड़े हैं, उन्हें अडिग रहना चाहिए — भले ही वे मुट्ठीभर ही क्यों न हों। एक खरे सिक्केका मूल्य अवश्य होता है; उतना ही जितना कि उसपर अंकित है। लेकिन दस लाख खोटे सिक्के भी जड़-भार ही होते हैं; और वे सर्वथा बेकार हैं। जब थोड़े-से सच्चे असहयोगी अपनी योग्यता सिद्ध कर देंगे तो यह आन्दोलन अपने-आप सार्वजनिक आन्दोलन बन जायेगा। इसकी भावना आज भी जनसाधारणमें व्याप्त है। किसी भी दिन सार्वजनिक तौरपर कार्रवाई की जा सकती है। मेरा खयाल है कि भारत अक्तूबर तक उसके लिए तैयार हो जायेगा। जिन्हें विश्वास है, उन्हें प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि जिन विद्यार्थियोंने स्कूल-कालेज नहीं छोड़े हैं, उन्होंने कमजोरीके कारण ही ऐसा किया है। उसका कारण कुछ यह नहीं है कि वे उन स्कूलोंको त्याग देना गलत मानते हैं, जिनका संचालन एक ऐसी सरकारकी छत्रछायामें हो रहा है जिसे वे खुशी-खुशी ध्वस्त कर देना चाहेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-३-१९२१

२४२. भाषण : कटकमें

२३ मार्च, १९२१

श्री गांधीने मौलाना शौकत अलीकी अनुपस्थितिके लिए क्षमायाचना करनेके बाद, लोगोंसे हिन्दू-मुस्लिम एकताकी अपील की और कहा कि वे उसे स्वराज्यकी पहली शर्त मानते हैं। उन्होंने उड़िया-भाषी क्षेत्रोंके विभिन्न राज्योंमें बिखरे होनेका उल्लेख किया और एक पृथक् उत्कल प्रान्त बनानेकी आवश्यकतापर जोर दिया; साथ ही वहाँ बार-बार आनेवाले अकालोंकी चर्चा की। उन्होंने कहा कि जब हमें स्वराज्य मिल जायेगा तो ये समस्याएँ आसानीसे हल की जा सकेंगी। यदि हम कांग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावको कार्यान्वित करें तो ७ महीनेमें आसानीसे स्वराज्य ले सकते हैं। उन्होंने उड़ीसाके लोगोंसे अनुरोध किया कि वे अपने गाँवोंका संगठन करें, ३० जून

तक कांग्रेसके ३ लाख सदस्य बनायें, एक लाख चरखे लोगोंको दें और ३ लाख रुपये इकट्ठा करें। उड़ीसा इतना कर ले, तो भारतको स्वराज्य दिलानेमें उसका अपना हिस्सा पूरा हो जायेगा। उन्होंने श्रोताओंसे अपील की कि वे आचार, व्यवहार और स्वभावमें संयम और आत्म-अनुशासन रखें। उन्होंने कहा कि जो लोग आत्म-बलिदानके लिए तैयार हैं वे ईश्वरके सिवा किसी मनुष्यसे भय नहीं कर सकते। स्वराज्य हमारा लक्ष्य है और वह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हमें स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए राजनैतिक राक्षसका वध करना है। चूँकि हमारे पास तलवार नहीं है, और यदि होती भी तो वह हमारे लिए कामकी न होती, इसलिए असहयोगके मामलेमें हमारा मुख्य सिद्धान्त अहिंसाका होना चाहिए। उन्होंने उड़ीसाकी अवनत दशाका उल्लेख करते हुए कहा कि यद्यपि उड़ीसामें अंग्रेजी जाननेवाले लोग अपेक्षाकृत पिछड़े हुए हैं, किन्तु जनसाधारण कदापि पिछड़े हुए नहीं हैं; जनसाधारण आगे बढ़े हुए हैं। मैं उड़ीसाके अकाल-पीड़ित लोगोंसे भी, जो-कुछ पैसा-पाई मिलेगा इकट्ठा करनेका प्रयत्न करूँगा। उड़िया लोगोंको अपना समय प्रायश्चित्त करनेमें लगाना चाहिए। अन्तमें, श्री गांधीने लोकमान्य तिलक स्मारक-कोषके लिए धनकी अपील की और कहा कि उड़िया लोगोंको, जो गंजाम, कंटाई, सिंहभूम और मध्यप्रान्तके उड़ियाभाषी क्षेत्रकी माँग करते हैं, अपने प्रदेशका संगठन करके और धन इकट्ठा करके यह दिखाना होगा कि वे अन्य प्रान्तोंके साथ मिलकर उड़ीसाके लिए स्वराज्य प्राप्त करनेमें और अपने प्रान्तका शासन चलानेमें समर्थ हैं।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३१-३-१९२१

२४३. भाषण : कटकमें मारवाड़ियों और गुजरातियोंकी सभामें

२३ मार्च, १९२१

[गांधीजीने] उसी दिन शामके आठ बजे मारवाड़ियों और गुजरातियोंकी सभामें भाषण दिया और चन्देकी अपील की। उन्होंने आगे कहा, चूँकि आप लोग उड़ीसामें ही व्यापार करते हैं और उड़िया लोगोंसे काफी मुनाफा कमाते हैं इसलिए आपको चन्दा इकट्ठा करनेमें हमारी सहायता करनी चाहिए। उन्होंने प्रान्तोंके बीच पारस्परिक सहानुभूति और सद्भावनाकी आवश्यकतापर जोर दिया और श्रोताओंसे विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करने तथा अपने ग्राहकोंके जरिये चरखेको और भी लोकप्रिय बनानेका अनुरोध किया। उन्होंने कहा, मैं चाहता हूँ कि आप दूसरे शहरोंमें रहनेवाले अपने जाति भाइयोंका अनुकरण करें और उनकी तरह अपने अधिवासके प्रान्तके कोषमें खुले हाथों चन्दा दें।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३१-३-१९२१

२४४. भाषण : कटकमें मुसलमानोंकी सभामें

२४ मार्च, १९२१

महात्माजीने मुसलमानोंकी एक सभामें भाषण देते हुए खिलाफत सम्बन्धी अन्यायोंका वर्णन किया और बताया कि उनका प्रतिकार किस प्रकार हो सकता है। उन्होंने कहा, आप लोगोंको हिन्दुओंके साथ मिलजुलकर, सद्भावसे रहना चाहिए। गो-हत्याके सवालपर मैं मुसलमानोंसे सौदा नहीं करना चाहता। मैं तो चाहता हूँ कि इस्लाम, हिन्दू धर्म और भारतके सम्मानपर आँच न आने पाये। मेरा आपसे अनुरोध है कि जबतक खिलाफतका प्रश्न सन्तोषजनक रूपसे हल नहीं हो जाता, आप चैनसे न बैठें।

खिलाफत-शिष्टमण्डल और छोटानीके[1] कार्यका उल्लेख करते हुए, उन्होंने मुसलमानोंको विश्वास दिलाया कि जबतक खिलाफतका प्रश्न अन्तिम रूपसे हल नहीं हो जाता, हिन्दू लोग उनके मित्र और भाईके नाते अपना कर्त्तव्य निबाहेंगे। उन्होंने कहा : "मैं स्वयं इसके लिए जानतक देनेको तैयार हूँ।" उन्होंने लोगोंसे सभा-स्थलपर ही चन्दा देनेका अनुरोध किया।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३१–३–१९२१

२४५. भाषण : कटककी सार्वजनिक सभामें

२४ मार्च, १९२१

शामको गांधीजीने एक अन्य विशाल सार्वजनिक सभामें भाषण दिया। विद्यार्थियों और वकीलोंके बैठनेके लिए मंचकी दाहिनी ओर अलग प्रबन्ध किया गया था। पहले उन्होंने हिन्दुस्तानी और उड़िया सीखनेकी आवश्यकता समझाई। अंग्रेजी साहित्यके अध्ययनके प्रति उन्होंने लोगोंको निरुत्साहित नहीं किया। उन्होंने विद्यार्थियोंसे अपील की कि वे शिक्षाकी दूषित प्रणाली और सरकारके उस कुप्रभावसे अलग रहें जो उनका नैतिक बल तोड़नेवाला सिद्ध होता है। उन्होंने विद्यार्थियोंसे प्रतिदिन आठ घंटे चरखा चलाने और इस तरह स्वराज्य-प्राप्तिके प्रयासमें अपना योग देनेको कहा। इसके बाद उन्होंने श्रोताओंसे प्रश्न करनेको कहा।

१. मियाँ छोटानी।

प्र० — यदि असहयोग आन्दोलन असफल हो जाता है तो हमें क्या करना होगा?

उ० — यदि आप अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं तो इसके असफल होनेपर भी इतना तो माना ही जायेगा कि आपने पाप और शैतानके सम्पर्कसे दूर रहकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया।

यदि मैं अपनी पढ़ाई छोड़ दूँ तो देशी रियासतोंमें मेरे पिताकी सम्पत्ति जब्त कर ली जायेगी। तो क्या मैं उन्हें विपत्तिमें डाल दूँ और उनकी आज्ञाका पालन न करूँ?

जब रामचन्द्र १४ वर्षके लिए प्रसन्नतासे वन गये थे, तब उन्होंने अपने कर्त्तव्यका ही पालन किया था। उन्होंने दशरथकी चिन्ताओंकी परवाह नहीं की। मेरी समझमें यह बात नहीं आती कि कोई देशी राजा पुत्रके आचरणके कारण पिताकी सम्पत्तिको कैसे जब्त कर सकता है। यदि इस प्रकार सम्पति जब्त कर भी ली जाये तो लड़केको यह खतरा अपने सिर लेना ही चाहिए। देशी रियासतोंके ऐसे निरंकुशतापूर्ण नियम केवल स्वराज्य पानेपर ही खत्म होंगे।

डाक्टरी पढ़नेवालोंके लिए आप क्या कहते हैं?

हम भारतमाताके स्वास्थ्यकी औषधि तैयार कर रहे हैं। गरीबीसे पीड़ित तीस करोड़ लोगोंको इस औषधिकी जरूरत है।

अंग्रेजी शिक्षा हमारे राष्ट्रीय जीवनकी तहमें पैठ चुकी है, इससे विभिन्न समुदायोंके भारतीयोंमें एकता आई है और वह छुआछूत भी समाप्त कर सकती है। फिर भी क्या यह एक खालिस बुराई ही है? क्या तिलक, राममोहनराय, और आप अंग्रेजी शिक्षाकी ही देन नहीं हैं?[1]

बहुत-से लोग ऐसे विचार व्यक्त करते हैं। अपने देशभाइयों और अंग्रेजोंके दुराग्रह-पूर्ण अज्ञान और पूर्वग्रहपर विजय हासिल करके हमें स्वराज्यका मोर्चा जीतना होगा। यह शिक्षा-प्रणाली एक खालिस बुराई है। मैं उस प्रणालीको नष्ट करनेके लिए अपनी ताकत लगा रहा हूँ। मैं यह नहीं कहता कि हमें अभीतक इस प्रणालीसे कोई भी लाभ नहीं मिला। लेकिन हमें अबतक जो लाभ मिले हैं वे उस प्रणालीके कारण नहीं, उसके बावजूद मिले हैं। मान लीजिए कि अंग्रेज यहाँ न होते, तो उस हालतमें भी भारत संसारके अन्य भागोंके साथ-साथ आगे बढ़ता और यदि यहाँ मुगल शासन बना रहता तो भी अनेक व्यक्ति अंग्रेजी भाषा और साहित्यका अध्ययन अवश्य करते। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली एक ओर तो हमें अंग्रेजी साहित्यका विवेकसम्मत उपयोग नहीं करने देती और दूसरी ओर हमें गुलाम बनाती है। मेरे मित्रने मेरा, तिलक और राममोहन रायका उदाहरण दिया है। मेरी बात छोड़िए; मैं एक अदना-सा दयनीय आदमी हूँ।

तिलक और राममोहन रायको यदि अंग्रेजी शिक्षा की छूत न लगी होती, तो वे कहीं अधिक महान् व्यक्ति होते (तालियाँ)। मैं तालियोंसे आपकी दिखावटी सहमति नहीं चाहता, मैं आपके विवेक और तर्कका समर्थन चाहता हूँ। मैं अंग्रेजी शिक्षासे घृणा नहीं

१. इस प्रश्नका उत्तर, १३-४-१९२१ के **यंग इंडिया**से लिया गया है।

करता; मैं उसकी अन्धपूजा का विरोधी हूँ। जब मैं सरकारको नष्ट करना चाहता हूँ, तब मेरा मंशा अंग्रेजी भाषा नष्ट करनेका नहीं होता, बल्कि यह होता है कि अंग्रेजीको हम एक भारतीय राष्ट्रवादीकी तरह पढ़ें। राममोहन और तिलक (मेरी बात छोड़िए) चैतन्य, शंकर, कबीर तथा नानकके सामने कुछ भी नहीं हैं। इन सन्तोंकी तुलनामें इनका जनतापर कोई प्रभाव नहीं था। अकेले शंकरने जो कुछ कर दिखाया वह अंग्रेजी जाननेवालोंकी सारी फौज भी नहीं कर सकती। मैं ऐसे और भी बहुतसे उदाहरण दे सकता हूँ। क्या गुरु गोविन्द अंग्रेजी शिक्षाकी देन थे ? है कोई ऐसा अंग्रेजी जाननेवाला भारतीय जो गुरु नानकका मुकाबला कर सकता हो, जिन्होंने एक ऐसे सम्प्रदायका प्रवर्तन किया जिसके शौर्य और त्यागकी मिसाल नहीं मिलती? क्या राममोहन रायने दलीप सिंह-जैसा एक भी शहीद पैदा किया है? मैं तिलक और राममोहनका बड़ा सम्मान करता हूँ। मेरा विश्वास है कि यदि राममोहन और तिलक यह शिक्षा न प्राप्त करते और उन्हें स्वाभाविक प्रशिक्षण मिलता तो वे चैतन्यके समान और अधिक बड़े काम करते। यदि उन महामानवोंकी परम्पराको फिरसे जीवित करना है तो, ऐसा अंग्रेजी शिक्षासे नहीं किया जा सकता। मैं ही जानता हूँ कि हिन्दुस्तानी और संस्कृत न सीखकर मैं कितनी निधियोंसे वंचित रह गया हूँ। मेरा कहना यह है कि शिक्षाका मूल्यांकन आप उसकी सच्ची क्षमता और उसकी गरिमाके आधारपर करें। अंग्रेजी शिक्षाने हमें नपुंसक बना दिया है, हमारी प्रज्ञा कुंठित कर दी है। जिस तरह यह शिक्षा दी जाती है, उसके कारण हम कमजोर और कायर बन गये हैं। हम स्वतन्त्रताकी धूप तो सेंकना चाहते हैं परन्तु दास बनानेवाली यह पद्धति हमारे राष्ट्रको नपुंसक बनाये डाल रही है। अंग्रेजोंसे पहलेका समय गुलामीका समय नहीं था। मुगल शासनमें हमें एक तरहका स्वराज्य प्राप्त था। अकबरके समयमें प्रतापका पैदा होना सम्भव था और औरंगजेबके समयमें शिवाजी फल-फूल सकते थे। १५० वर्षोंके ब्रिटिश शासनने क्या एक भी प्रताप और शिवाजीको जन्म दिया है? कुछ सामंती देशी राजा जरूर हैं पर वे सबके-सब राजनीतिक अंग्रेज कारिन्देके सामने घुटने टेकते हैं और अपनी दासता स्वीकार करते हैं। जब मैं नवयुवकोंको देशी राजाओंके खिलाफ शिकायत करते हुए पाता हूँ तब मुझे उनसे सहानुभूति होती है। वे दुहरी परेशानी भोग रहे हैं। देशी राजाओंके अत्याचारोंके लिए मैं दोष उन्हें नहीं, बल्कि ब्रिटिश विजेताओंको देता हूँ। वे लोगोंको गुलाम बनाकर रखनेवाली प्रणालीके शिकार हैं। इसलिए मेरी आप सबसे अपील है कि इस पिशाची सरकारके पंजेसे छूटिए। यदि आपको द्वार-द्वार भीख माँगनी पड़े तो उसकी भी परवाह न कीजिए। गुलामीमें रहनेसे भीख माँगते हुए मरना बेहतर है। हमें इस योग्य होना चाहिए कि हम शासन सँभाल सकें। आज देशका शासन कौन सँभाल रहा है? अंग्रेज? नहीं। इसे वे भारतीय ही सँभाल रहे हैं, जिन्होंने गुलामी स्वीकार कर रखी है। यदि अंग्रेज इसी समय इस देशको छोड़कर चले जायें तो मैं जरा भी दुःखी नहीं होऊँगा। मैं उनसे कहता हूँ कि वे सेवकों, बराबरीके व्यक्तियों और दोस्तोंकी हैसियतसे हमारी मदद करें। मैं अपनी सहमतिसे उन्हें अपने ऊपर राज्य नहीं करने दूंगा। वे चाहें तो हवाई सेना, स्थल सेना, नौसेनाका उपयोग कर सकते हैं, किन्तु हमारी सहमतिसे

वे हमपर राज्य नहीं कर सकते। भले ही भारत डाकुओंसे आक्रान्त रहे, लेकिन आप अपनी प्रतिष्ठाको पहचानें। आप अपने कर्त्तव्यका पालन करें। भारतके स्वतन्त्र नागरिककी तरह मरनेसे बेहतर और क्या हो सकता है? यह एक शैतानी प्रणाली है। मैंने इस प्रणालीको नष्ट करनेके लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया है।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३१–३–१९२१

यंग इंडिया, १३–४–१९२१

२४६. टिप्पणियाँ

कांग्रेस-संविधान

मुझे अपनी यात्राके दौरान प्राप्त हुए अनुभवोंसे ऐसा लगता है कि यदि हम कांग्रेसके संविधानके अनुसार प्रत्येक गाँवमें कांग्रेस-समितिकी स्थापना कर सकें और कांग्रेसकी सत्ताको प्रतिष्ठापित कर सकें तो इसीसे हम लगभग स्वराज्य प्राप्त करनेकी स्थितिमें पहुँच जायें। यह काम किसीको मुश्किल नहीं लगेगा। और यदि हम इसे मुश्किल मानें तो फिर हमें इस एक वर्षमें स्वराज्य प्राप्त करनेकी इच्छा छोड़ देनी चाहिए। जहाँ-जहाँ लोगोंमें जागृति आ गई है और उनमें से कुछ ईमानदारीके साथ कामका नेतृत्व करने लग गये हैं, वहाँ यह हो भी रहा है। कहते हैं कि जबलपुरमें एक ही जिलेमें ५०,००० लोगोंने अपने नाम दर्ज करवाये हैं। वहाँ किसी-किसी गाँवमें तो लगभग ९० प्रतिशत स्त्री-पुरुषोंने कांग्रेसकी बहियोंमें अपने नाम दर्ज करवा डाले हैं। जबलपुर जिलेमें यह कार्य करनेवाले वकील नहीं हैं; दो मालदार जमींदारोंके युवा पुत्र हैं। वे अपना धन और समय, दोनों ही लोगोंको अर्पित कर रहे हैं। वकील वर्गका अधिकांश भाग तो इस प्रवृत्तिसे अलग ही रहा है। जहाँ लोग झूठी प्रतिष्ठाको अपने ध्यानमें रखकर वकील अथवा पुराने कार्यकर्त्ताओंका दामन पकड़े हुए हैं और उन्हें छोड़कर जिनमें अपने कामको आगे बढ़ानेकी हिम्मत नहीं है वहाँ कार्यकी गति अवरुद्ध हो गई है। गुजरातमें २८ फरवरीको कांग्रेसके २५,००० सदस्योंके नाम दर्ज हुए। यह संख्या कोई अधिक नहीं कही जा सकती। जैसे जूनसे पहले-पहले हमें सारे भारतवर्षसे एक करोड़ रुपया इकट्ठा करना चाहिए वैसे ही जून माससे पहले-पहले हमें कांग्रेसके एक करोड़ सदस्य भी बना लेने चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें अभी सवा करोड़ रुपया इकट्ठा करना है, और एक करोड़ सदस्योंके नाम आदि दर्ज करनेकी व्यवस्था करनी है। गुजरातकी सारी आबादी ९६ लाख है। तीस करोड़में एक करोड़के अनुपात-से हमें गुजरातमें जून माससे पहले तीन लाख सदस्य बना लेने चाहिए और प्रान्तीय समितिके तिलक-स्वराज्य कोषके अतिरिक्त तीन लाख सदस्योंसे शुल्कके रूपमें ७५ हजार रुपया भी प्राप्त कर सकना चाहिए। यदि सदस्य बनानेका यह कार्य व्यवस्थित रूपसे हो, लाभ तभी होगा। प्रत्येक सदस्यका पूरा नाम, धन्धा, ठिकाना और उम्र

हमारे पास होना चाहिए। प्रत्येक सदस्यको कांग्रेसके संविधानकी सामान्य जानकारी दी जानी चाहिए और उसे असहयोगके मुख्य सिद्धान्तोंसे परिचित कराया जाना चाहिए। इस कार्यकी देखभालके लिए एक कार्यकर्त्ताकी नियुक्ति खासतौरसे की जानी चाहिए। वह देखे कि प्रत्येक स्थानपर काम किस तरह चल रहा है। प्रत्येक जिलेकी ओरसे हर सप्ताह ब्यौरेवार और अधिकृत रिपोर्ट प्रकाशित की जानी चाहिए। ऐसे कार्योंके लिए कितने ही व्यक्तियोंको स्वराज्यके निमित्त चौबीस घंटे कार्य करना होगा। इतना ही नहीं इनके हरेक कार्यमें ज्ञान, विवेक और सचाई चाहिए। अभी मैं हर जगह द्वेष, दम्भ, मोह और अधिकार-लोभ आदिके दर्शन कर रहा हूँ। जब इसका ध्यान आता है तब मेरी श्रद्धा लड़खड़ाने लगती है; लेकिन जब समग्र जनजागृति और आत्मशुद्धिका विचार मुझे आता है तब मेरी श्रद्धा लौट आती है। तिसपर भी हमें सूक्ष्मसे-सूक्ष्म तत्वोंपर ध्यान रखना सीखना चाहिए। अंग्रेजी कहावत है कि जो पैसेका ध्यान रखता है उसे रुपये-के हिसाबकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। बूँद-बूँदसे सरोवर भरता है।

चरखा और खादी

जबलपुरमें मैंने इन तरुण जमींदारोंको उपर्युक्त काम करते हुए देखा है। उन्होंने यही नहीं, स्वदेशीके कामको भी बहुत सँभाल रखा है। वे गाँव-गाँव चरखेका प्रचार कर रहे हैं। उन्होंने रुई खरीद ली है और उसकी पूनियाँ तैयार करवा कर लोगोंमें बाँट दी हैं। जहाँ छः मास पहले एक भी चरखा नहीं चलता था वहाँ आज सैकड़ों चरखे चल रहे हैं और खादी तैयार हो रही है। इस परिवारके दोनों भाई खादी पहनते हैं और दोनों भाई अपने वस्त्रोंके लिए सूत भी स्वयं ही कातते हैं।

मद्यपान निषेध

मद्य-निषेधका काम खूब चल रहा है। किसी-किसी स्थानपर शराबका ठेका लेनेवाला ही कोई व्यक्ति नहीं मिला। यदि हम हिम्मत करके शराब बन्द कर सकें तो हिन्दुस्तानके गरीब घरोंका सत्रह करोड़ रुपया इसपर व्यर्थ न जाये। सरकारको फिलहाल जो सत्रह करोड़ रुपयेकी आय होती है, वह हमारे घरोंमें से ही जाता है।

बहनोंसे निवेदन

यदि गुजरातकी बहनें इस कार्यको अपने हाथमें ले लें तो हम जून महीनेसे पहले ही कमसे-कम गुजरातसे शराबको जड़मूलसे निकाल सकते हैं। प्रत्येक जिलेमें जहाँ-जहाँ शराबकी दुकानें हैं उन्हें वहाँ पहुँच जाना चाहिए। पहुँचनेपर पहले उनके मालिकोंसे और अगर वे न मानें तो शराब पीनेवालोंसे अनुरोध करना चाहिए। बहनें कड़े शब्दोंका व्यवहार बिलकुल न करें। "आप हमारे भाईके समान हैं और हमारे भाई शराब कदापि नहीं पी सकते, इसलिए आप भगवानके नामपर शराब पीना छोड़ दें।" मैं चाहता हूँ कि आप सिर्फ इतना ही कहें। मुझे विश्वास है कि अनेक शराब पीनेवाले तो शरमिन्दा होकर लौट जायेंगे; कदाचित् नहीं भी जायें। हो सकता है वे मर्यादा न रखें और बहनोंको गालियाँ भी दें। किन्तु फिर भी बहनोंसे मेरा निवेदन है कि वे भारतवर्षके लिए गालियाँ भी सह लें। शहरकी किसी भी

बहनने यदि पहल की तो अन्य बहनें भी इस कार्यको हाथ में ले लेंगी, ऐसी मेरी दृढ़ मान्यता है।

लेकिन शिक्षाका क्या होगा?

लेकिन कुछ लोग कहते हैं कि अगर सत्रह करोड़ रुपयेकी इस आयपर पानी फिर जाये तो हमारी शिक्षाके लिए रुपया कहाँसे आयेगा। यह सरकारका कहना है और हम भी बिना विचारे इसे मान लेते हैं। क्या शराबकी कमाईसे ही हमारी पढ़ाई होती है? यदि यह बात सच हो तो मैं यही कहूँगा कि ऐसी स्थितिमें सरकारी शिक्षाका त्याग करनेके लिए हमारे पास दो कारण हो जाते हैं। एक कारण तो सरकारकी सामान्य राक्षसी नीति और दूसरा पापकी कमाईसे मिलनेवाली शिक्षा। क्या हम अपने बच्चोंको शराब व अफीमकी आयसे पढ़ाकर पवित्र शिक्षा दे सकेंगे? हमें जैसा धन मिलेगा वैसा ही उसका फल भी होगा। शराबकी दूकानवाले हमारे बच्चोंको शिक्षा देंगे तो क्या हम किसी भी दिन उनकी दुकानोंको बन्द करवा सकेंगे?

सरकार किसलिए शराबसे होनेवाली आयको शिक्षाके खातेमें जमा करती है? जमीनके लगानको शिक्षा खातेके लिए जमा क्यों नहीं करती? शराबकी कमाईको वह सैनिक खातेमें जमा करे ताकि उसके बन्द होनेपर सैन्य शक्ति उतनी ही कम हो जाये। स्वराज्य मिलनेपर हम सेनापर करोड़ों रुपये खर्च करनेवाले नहीं हैं। इसपर होनेवाले खर्चमें से सत्रह करोड़ रुपया आसानीसे बचाया जा सकता है। इसलिये शराब और अफीमसे होनेवाली आयके खतम होनेपर हम भयभीत हो ही नहीं सकते।

शिक्षाके साधन

स्वराज्यके अन्तर्गत जो शिक्षा दी जायेगी उसका साधन न तो शराबसे होनेवाली आय होगा, न ही जमीनका लगान। उसका साधन तो सुन्दर चरखा है। यदि प्रत्येक स्कूलमें चरखों और करघोंकी स्थापना हो जाये तो शिक्षाका खर्च किसीके सिरपर न पड़े। और आज तो हम विद्यार्थियोंका सारा समय चरखेको ही देना चाहते हैं। स्वराज्य मिलनेके बाद भी विद्यार्थी इस कार्यके लिए कमसे-कम एक घंटा तो देंगे ही। जब स्वराज्यका असर प्रत्येक विभागपर होगा तभी वह सच्चा स्वराज्य कहलायेगा। आजकी शिक्षा, गुलामोंको शिक्षित करनेके लिए, नौकर बनानेके लिए दी जाती है। स्वराज्यकी शिक्षा बालकोंको आरम्भसे ही स्वावलम्बी बननेके लिए दी जानी चाहिए; फलतः उन्हें कातना और बुनना अवश्यमेव सिखाना चाहिए। इसके उपरान्त वे कोई और धन्धा सीखना चाहें तो भले ही सीखें। लेकिन कातना और बुनना अनिवार्य होना चाहिए। चरखा "दुःखियोंका विश्रामस्थान और गरीबोंकी जीवन डोर है", उसमें जो बरकत है वह अन्य किसी धन्धेमें नहीं है क्योंकि खेतीके बाद एक पूरक धन्धेके रूपमें चरखेकी ही प्रवृत्ति व्यापक हो सकती है। सब कोई बढ़ई नहीं होते, न लुहार होते हैं लेकिन सबको कातना तो अवश्य आना चाहिए और सबको राष्ट्रके लिए अथवा अपनी आजीविकामें कुछ वृद्धि करनेके लिए कातना चाहिए। सबको अन्न-वस्त्रकी जरूरत होती है इसीसे चरखा एक व्यापक प्रवृत्तिके

रूपमें चल सकता है। हमारी राष्ट्रीय शिक्षाकी आज ही से उपर्युक्त ढंगसे रचना की जानी चाहिए; नहीं तो स्वराज्य मिलनेपर हममें परस्पर सबसे पहले झगड़ा इसी बातको लेकर होगा। कुछ लोग कहेंगे कि शिक्षाके अन्तर्गत शिल्प नहीं सिखाया जाना चाहिए। इसलिए हमें आजसे ही शिल्पको शिक्षाका एक अंग बना देना चाहिए, जिससे जनमत इतना प्रशिक्षित हो जाये कि बादमें वाद-विवाद करनेकी गुंजाइश ही न रहे।

कर्मयुगका आरम्भ

वादयुग अब बीत गया है, यह बात मुझे सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। अभी हममें व्याख्यान सुननेका मोह है, बोलनेवालोंको बोलनेका मोह है तथापि लोग समझ गये हैं कि अब काम करनेकी आवश्यकता है, बोलकर स्वराज्य नहीं प्राप्त किया जा सकता। इस कर्मयुगका लाभ अगर काम करनेवाले लोग नहीं लेंगे तो प्राप्त अवसरको खो बैठेंगे। सरकारने हमारा मुँह बन्द करना शुरू कर दिया है। क्यों न हम अपना मुँह स्वयं ही बन्द कर लें? हमें बोलकर क्या करना है? सरकारकी बदगोई करनेमें रस लेनेकी अपेक्षा जो राज्यनीति पापमय हो गई है उसका नाश करनेके साधनोंको ढूंढ़ निकालनेके लिए चौबीस घंटे प्रत्यक्ष काममें जुट जायें, क्या यह बात सबसे अधिक आनन्ददायक नहीं है? सरकार कैसी है, क्या यह बात अभी सिद्ध करनी बाकी है?

अतएव मेरी प्रत्येक वक्ताको खास सलाह है कि वह बोलना बन्द करके सिर्फ कामसे ही ताल्लुक रखे और अगर उससे बोले बिना न रहा जा सके तो वह लोगोंकी मन्दगति, स्वार्थ और लोभके कारण निन्दा करे अथवा जहाँ उनमें शौर्य और स्वार्थत्याग दिखे वहाँ उसकी प्रशंसा करे तथा उन्हें और अधिक काम करनेके लिए प्रेरित करे। हम ऐसी स्थितिको लानेकी चेष्टामें हैं जब सरकार उसकी निन्दा करनेके अपराधमें हमें, सजा नहीं दे सकेगी बल्कि चरखा चलानेको अपराध मानेगी, दारू न पीनेको गुनाह मानेगी। वस्तुतः देखा जाये तो फिलहाल जिस प्रवृत्तिके लिए धरपकड़ हो रही है वह प्रवृत्ति मद्य-निषेधकी है। हम शराब न पियें और न विदेशी वस्त्र पहनें, यह बात सरकारको कदापि पुसा नहीं सकती। सरकारको हमारे बोलनेका नहीं, हमारे बोलनेका जनतापर जो असर हो रहा है, उसका भय है। चरखा चलानेके अपराधके लिए, शराब न पीनेके गुनाहमें जब हम गिरफ्तार होने लगेंगे उस दिन हमारी पूरी विजय होगी, ऐसा समझना चाहिए। सरकारको हम शराबका त्याग और चरखेको स्वीकार करनेकी बातके अलावा गिरफ्तार करनेका दूसरा कोई भी बहाना नहीं देनेवाले हैं। इस काममें हम जितनी तत्परता बरतेंगे उतनी जल्दी हमें स्वराज्य मिलेगा।

सफेद टोपीपर प्रतिबन्ध

मैंने सुना है कि किसी-किसी स्थानपर ऐसा आदेश जारी किया गया है कि सरकारी नौकर सफेद टोपी पहनकर दफ्तरोंमें न आयें। ऐसा अपराध तो मुझे बहुत अच्छा लगता है। रावण-राज्यमें अगर कोई विष्णुकी तसवीरको अपने घरमें रखता था तो वह अपराधी माना जाता था। इस आधुनिक रावण-राज्यमें सफेद टोपी

पहनने, अदालतोंमें न जाने, विदेशी कपड़ा न पहनने और चरखा चलानेकी बातको गुनाह माना जाये तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। जब हम सब इन अपराधोंको करने लगेंगे तभी स्वराज्य होगा या यह राज्य अपनी पद्धतिको बदलेगा। क्योंकि अगर हम सत्यपर दृढ़ हो जायें तो तीनमें से एक ही बात हो सकती है: (१) सरकार राज्यनीतिमें परिवर्तन कर लोकमतका अनुसरण करे (२) राज्यनीतिको न बदलकर जन-मतको अपराध मानकर असंख्य व्यक्तियोंको जेल भेजनेका व्यर्थ प्रयत्न करे अथवा (३) उससे लोकनीति सहन न हो सके और वह लोगोंका दमन भी न कर सके तो हिन्दुस्तानको छोड़ दे।

यह तीनों स्थितियाँ हमारे लिए अभीष्ट हैं। चौथी वस्तु मेरी कल्पनासे परे है। और वह यह कि मुट्ठी-भर नेताओंके पकड़े जानेपर लोग अपनी धर्मनीतिका त्यागकर जिस सरकारकी नीतिकी वे आज भर्त्सना करते हैं, उसके अधीन हो जायें। मुझे उम्मीद है कि वह समय अब लद गया है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७–३–१९२१

२४७. पत्र : सी० एफ० एन्ड्र्यूजको

पुरी
२८ मार्च, [१९२१][1]

प्रिय चार्ली,

अभी-अभी तुम्हारा पत्र मिला। आशा है अब तुम्हारी तबीयत पहलेसे अच्छी होगी। तुम्हें इतनी जल्दी-जल्दी बीमार नहीं पड़ना चाहिए। कैलेनबैक[2] मुझे बताया करते थे कि किसी जर्मन सिपाहीके पैरोंमें छाले आदि पड़ जानेको अपराध माना जाता है; तब ईश्वरके एक सिपाहीके लिए बीमार पड़ना क्या अपराध नहीं है? काश! तुम मेरी इस बातसे सहमत होते कि नियम ऐसा ही है। मुझे याद है मेरे बीमार पड़नेपर तुमने क्या कहा था। मैंने तो एकदम मान लिया था कि अवश्य ही मैंने नियमका कोई उल्लंघन किया होगा।

इससे गुरुदेवकी बात याद आई। मेरी बीमारी मेरे [रंगरूट] भरती[3] आन्दोलनकी उचित सजा थी, यह बात मैं निःसंकोच मान भी लूँ, तो भी 'ट्रिब्यून'में उद्धृत गुरुदेवके पत्र — जिसे एक मित्रने 'यंग इंडिया'में जवाब देनेके लिए मेरे पास भेजा है — से निकलनेवाली अन्य बातोंसे मैं सहमत नहीं हो सकता। मैंने उसे एक बार सरसरी तौरपर पढ़ा है, और मेरे मनमें यही विचार आया कि असहयोगके सहज सौन्दर्य और कर्त्तव्यको वे नहीं समझ पाये हैं।

१. लिफाफेपर लगी डाककी मुहरसे।
२. हरमान कैलेनबैक, जर्मन वास्तुकार। दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके सहयोगी।
३. प्रथम विश्व-युद्धमें मित्र-राष्ट्रोंकी सहायताके लिए, १९१८के शुरूमें।

फीजीके एक निवासीसे मुझे हाल ही में वहाँ गये हुए लोगोंके बारेमें पता चला। दक्षिण आफ्रिकी आयोगके सुझाव भी मैंने पढ़ लिये हैं। जबतक भारतमें आमूल सुधार नहीं होते, तबतक हम कहीं भी किसी भी अच्छे परिणामकी आशा नहीं कर सकते। सरकारी अधिकारियों द्वारा शराबबन्दीके आन्दोलनका विरोध देखकर मुझे अत्यधिक क्लेश होता है। मुझे इस सबके पीछे धोखा और छल-कपटके सिवा कुछ नजर नहीं आता।

सिखोंसे सम्बन्धित पत्र और उसपर तुम्हारी आपत्तिका मैंने जो जवाब दिया है, उसे क्या तुमने देखा है? मुझे लगता है कि उस पत्रमें कहीं कोई त्रुटि नहीं है। परन्तु तुम्हारी आगाहीके कारण मैं क्षमा करनेकी बात और भी जोर देकर कह सका।

क्या ही अच्छा होता कि तुम कल उस समय मेरे पास होते जब मैं पुरी जिलेके अकाल-पीड़ित लोगोंसे मिला था। कैसा हृदय-विदारक दृश्य था। पर मुझे इसमें सन्देह नहीं कि उनके इस महान् कष्टको सिर्फ चरखा ही दूर कर सकता है।

तुम्हारा,
मोहन

श्री सी० एफ० एन्ड्रयूज
शान्तिनिकेतन,
बोलपुर, ई० इं० रेलवे

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २६०८)की फोटो-नकलसे।

२४८. भाषण: बरहामपुरमें[1]

२९ मार्च, १९२१

गांधीजीने कहा: मैं अंग्रेजीमें लिखा मानपत्र स्वीकार करना नहीं चाहता क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और राजनयिक सम्बन्धोंका माध्यम होनेके अलावा अंग्रेजीका हमारे राष्ट्रीय जीवनमें कोई स्थान नहीं है। उन्होंने सूरत, नडियाद और अहमदाबाद-की नगरपालिकाओंको आदर्श नगरपालिकाएँ बताया और कहा कि सुसंचालित नगर-पालिकाओंको ही स्वराज्यके बीज बोने हैं, उनका पोषण करना है। सरकारी सहायता और नियन्त्रणको अस्वीकार करना ही काफी नहीं है। चरखा और हिन्दुस्तानी अपनाये बिना शिक्षाको पूरी तरह राष्ट्रीय रूप नहीं दिया जा सकता। उन्होंने कहा हमें गोख-लेकी श्रेष्ठ परम्पराओंका अनुकरण करना चाहिए। गोखलेका सर्वोत्तम कार्य यह था कि उन्होंने देशकी राजनीतिमें धार्मिकता दाखिल करनेका प्रयत्न किया। हम भी अब राष्ट्रीय जीवनके सभी पहलुओंमें उसी धार्मिक भावनाको लानेका प्रयत्न कर रहे हैं।

१. यह भाषण बरहामपुर नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिया गया था।

उन्होंने गोखलेके कठोर परिश्रमका उल्लेख करते हुए कहा : गोखले स्वभावसे मितव्ययी थे और वे राष्ट्रके हर क्षणका सदुपयोग करना चाहते थे। ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि बरहामपुर नगरपालिका प्रगति करे। मुझे आशा है कि वह राष्ट्रके उत्थानमें पूरा योग देगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १–४–१९२१

२४१. भाषण : बरहामपुरकी सार्वजनिक सभामें

२९ मार्च, १९२१

गांधीजीने इस बातपर पुनः खेद प्रकट किया कि मद्रासी लोग हिन्दुस्तानी नहीं समझ पाते, जिसका प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करना उनके विचारसे, कठिन नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा कि अब ऐसा वक्त आ गया है जब हिन्दीको सुशिक्षित वर्गों तक ही सीमित न रहकर आम लोगोंमें भी फैलना चाहिए। उन्होंने आन्ध्र और उड़िया लोगोंके बीच बरहामपुर जिलेकी समस्याका उल्लेख किया और कहा कि यह समस्या राजनयिकोंको शोभा देनेवाली उदारता और भारतीय ढंगसे हल की जानी चाहिए।[1] उन्होंने जोर देकर कहा कि इस समस्यामें आम लोगोंकी कोई दिलचस्पी नहीं है। यद्यपि मैं भाषाके आधारपर प्रान्तोंके विभाजन और उनके विकासके पक्षमें हूँ, तथापि इससे यदि राष्ट्रकी प्रगतिमें रुकावट पड़े तो निश्चित रूपसे मैं इसका विरोधी हूँ। स्वतन्त्रताका युद्ध पृथ्वीपर सबसे बलवान लोगोंके साथ कानूनी समानताका दर्जा पानेका युद्ध है। स्वराज्य प्राप्त करनेमें जो कठिनाइयाँ हैं, उन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ, परन्तु मेरा खयाल है कि हम जिस परीक्षासे गुजर रहे हैं, उसके चन्द बचे हुए महीनोंमें हममें आत्मविश्वासका अभाव दूर हो जायेगा। मुझमें भारतके लिए प्राण देनेकी सामर्थ्य होनी चाहिए, मुझे उसके अपमानका साक्षी बनकर नहीं जीना चाहिए। उन्होंने लोगोंको समझाया कि अगर हम अपने लिए नहीं, बल्कि देशके विचारसे तत्काल अपना-अपना घर-बार दुरुस्त कर लें और जिलेके बँटवारे-जैसी समस्याएँ सुलझा लें, तो मैं कहूँगा कि हम स्वराज्य तुरन्त ही प्राप्त कर लेंगे। उन्होंने खिलाफतपर आये संकटका उल्लेख किया और लोगोंको स्मरण दिलाया कि इन तमाम वर्षोंमें हिन्दू-धर्म भी संकटमें रहा है। उन्होंने इस बातपर जोर दिया कि पंजाबके साथ किये गये अन्यायोंका परिमार्जन होना चाहिए। चूँकि राष्ट्रीय जागृतिने नवीन साहसको जन्म दिया है, इसलिए यदि कहीं अब फौजी कानून फिरसे लागू किया जाये तो कोई भारतीय पेटके बल नहीं रेंगेगा। उन्होंने आग्रहके साथ कहा कि असहयोग स्वराज्य पानेका एक उपाय है। मुझे इससे कोई मतलब नहीं कि स्वराज्यकी योजना कैसी बनती है।

१. उन दिनों भाषाके आधारपर बरहामपुर जिलेके पुनर्विभाजनकी बात चल रही थी। इसी दिन दोपहरमें गांधीजी दोनों भाषा-भाषी लोगोंके शिष्टमण्डलोंसे मिले थे

मुझे उड़ीसाके अपने हालके दौरेसे मालूम हुआ कि आम जनता केवल अपने भोजनकी चिन्ता करती है, लेकिन उसे स्वराज्यके लाभोंके बारेमें भी सोचना चाहिए। यदि अंग्रेज इन्हें मुफ्त चावल दें तो ये लोग हमें कोई मान्यता ही न दें। उन्होंने वकीलोंसे स्पष्ट कहा कि जबतक सरकार प्रायश्चित्त नहीं करती और जबतक स्वराज्य नहीं मिल जाता तबतक आप लोगोंको वकालत नहीं करनी चाहिए। मेरे विचारसे जिन घटनाओंके कारण पंजाबके निर्दोष लोग अंडमान भेजे गये ...[1]

मेरे लेखे स्वराज्य एक धागेसे बँधा हुआ है — चरखेके धागेसे! उन्होंने जोर देकर कहा कि यदि हम एक सालके अन्दर ब्रिटिश मालका प्रभावकारी ढंगसे बहिष्कार नहीं कर सके तो फिर उसका अवसर निकल जायेगा। उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनीके बिछाये हुए जालका उल्लेख किया और जोरदार शब्दोंमें अपील की कि हमें अपने-आपको पवित्र बनाना है और इसलिए इस सहानुभूतिहीन शैतानी सरकारसे मुक्ति पानेके लिए हमें शैतानका रास्ता नहीं अपनाना चाहिए। मैं दावा करता हूँ कि मैं एक व्यावहारिक आदर्शवादी हूँ। मुझे खुशी है कि भारत मद्य-पानकी बुराईके विरुद्ध शक्तिशाली आन्दोलन चला रहा है और इस मामलेमें वह कांग्रेससे भी आगे बढ़ गया है। मेरा खयाल है कि आत्मशुद्धिके लिए हमें किसी विश्वविद्यालयकी शिक्षाकी जरूरत नहीं है। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकताका उल्लेख करते हुए बताया कि वह तो अब प्राप्त ही हो गई है; उन्होंने आग्रह किया कि अब दलित वर्गोंको ऊपर उठाना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि स्वराज्य पानेके लिए पैसा जरूरी है। अतः, तिलक स्वराज्य कोषको बढ़ाना चाहिए और चूँकि उससे देशको जीवन मिलता है, इसलिए उसका प्रवाह कभी रुकना नहीं चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १–४–१९२१

२५०. टिप्पणियाँ

दमन और उससे शिक्षा

नागपुरमें मुझे डाक्टर चोलकरके उस भाषणको[2] बारीकीसे देखनेका अवसर मिला जिसके आधारपर उनके विरुद्ध मुकदमा चलाया जा रहा है। खुफिया विभागके आदमीने उस भाषणकी जो रिपोर्ट दी है, यदि उसीको ले लें तो वह भी बिलकुल आपत्तिजनक नहीं है। लॉर्ड चैम्सफोर्डके शब्दोंका उपयोग करें तो वह एकदम 'अलंकार-विहीन' तर्क-प्रधान भाषण है। अलबत्ता, उसमें गणतान्त्रिक शासन-पद्धतिपर विचार अवश्य किया गया है। यदि यही उनका मुख्य अपराध है तब तो लगभग प्रत्येक

१. मूल स्पष्ट नहीं है।

२. देखिए "भाषण: नागपुरमें", १८–३–१९२१।

कांग्रेसी अपराधी है; क्योंकि यदि वह पूर्ण स्वातन्त्र्यके बिना अपना जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता, तो वह गणराज्यकी बात सोचने और उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करनेमें तनिक भी दुविधा अनुभव नहीं करेगा। सच तो यह है कि, मद्यनिषेध आन्दोलन मध्यप्रान्त तथा अन्य प्रान्तोंके लोगोंपर गहरा असर कर गया है, और सरकार यह बर्दाश्त नहीं कर सकती। भगवानदीनजी, जिन्हें स्थानीय जनता बड़े प्रेमसे महात्मा कहती है, नागपुरकी एक वर्धमान संस्था, असहयोग आश्रमके सम्माननीय अधीक्षक हैं। वे एक प्रभावशाली वक्ता और कार्यकर्ता हैं। आबकारीसे मिलनेवाले राजस्वके मामलेमें भी सरकार उनको चुप करना चाहती है। मध्यप्रान्तमें और दूसरी जगहोंपर जो मुकदमे चलाये जा रहे हैं, उनसे मैंने यही निष्कर्ष निकाला है। बेशक उन लोगोंपर हिंसाके लिए मुकदमे चलाये जाने चाहिए जो जनताको मद्य-विक्रेताओं तथा शराबकी दुकानोंपर जानेवालोंके प्रति हिंसाके लिए भड़काते हैं अथवा जो खुद वहाँ मारपीट करते हैं। किन्तु इतनी देर बाद लोगोंपर राजद्रोहकी धाराओंके अन्तर्गत मुकदमे क्यों चलाये जा रहे हैं? इसका उत्तर सीधा-सादा है। शराबके सिलसिलेमें जिम्मेदार व्यक्तियों द्वारा हिंसाका कोई प्रयोग नहीं हुआ। गैर-जिम्मेदाराना किस्मकी हिंसा एक क्षणमें रोकी जा सकती है। लेकिन सरकार यह नहीं चाहती। वह शराब और अफीमसे होनेवाली आमदनीके खतम हो जानेसे डरती है और वैध अथवा अवैध किसी भी उपायसे उसे रोकनेपर तुली हुई है।

सरकारको निरुपाय कर दो

यदि मेरा अन्दाज़ सही है, तो उपाय सरल है। हमें सरकारको मुकदमे चलानेके लिए इतना बहाना भी नहीं देना चाहिए, जिसे सरकार बढ़ा-चढ़ा कर दिखा सके। यदि वर्तमान शासन-प्रणालीके प्रति अश्रद्धा रखना राजद्रोह है, तो वह सद्गुण है, कर्त्तव्य है। किन्तु हमें उसका प्रचार करनेकी आवश्यकता नहीं। खिताबधारियोंको भी उस प्रणालीसे प्रेम नहीं है। जैसा कि उनमें से अनेकने स्वीकार किया है, वे अपने खिताब इसलिए धारण किये हुए हैं कि उनमें अपनी सम्पत्ति खोनेकी जोखिम उठानेकी हिम्मत नहीं है। मैं एकाधिक लोगोंको जानता हूँ, जिन्हें धमकी दी गई थी कि यदि वे सरकारके अनुग्रहोंका तिरस्कार करेंगे तो उनकी जागीर जब्त कर ली जायेगी। मैं ऐसे अनेक अन्य लोगोंको जानता हूँ, जो अपने खिताबोंका त्याग इसलिए नहीं करते कि उन्हें डर है कि उनके व्यापारमें उन्हें बैंकोंसे आर्थिक सहायता मिलनी बन्द हो जायेगी। इस हदतक है सरकारका डर! किन्तु ये सब लोग उस प्रणालीके नाशका स्वागत करेंगे, जिसके अधीन यदि उन्हें कुछ लाख रुपयोंका लाभ होता है, तो करोड़ों रुपये बिना समुचित लाभके ही देशसे बाहर चले जाते हैं। अतः मैं फिर कहता हूँ कि हमें असन्तोषका प्रचार करना ही नहीं है। आम जनता इस प्रणालीको जितना बुरा मानने लगी है, अब हम उसे उससे और ज्यादा बुरा रँगकर नहीं बता सकते। अब हमें केवल लोगोंको उसके नाशका उपाय बतानेकी आवश्यकता है और वह मार्ग है आत्मशुद्धिका। यदि हम सरकारको शराब न पीने तथा घरमें चरखा रखनेको अपराध माननेपर मजबूर कर दें तो हम सरकारको बड़ी ही असुविधाजनक स्थितिमें डाल देंगे। यह

प्रणाली तभीतक चल सकती है, जबतक हम उसे मुकदमा चलानेका कोई मामूली-सा बहाना भी देकर इस प्रकार उसे सम्माननीयता प्रदान करते रहें अथवा उसके प्रति अपना लगाव रखें या रखनेका दिखावा करते रहें।

अँगूठे किसने काटे थे?

यदि चरखा रखनेको सरकार अपराध मानती है, तो यह इतिहासमें कोई पहला अवसर नहीं है। ईस्ट इंडिया कम्पनीके शासनकालमें सूत कातना या वस्त्र बुनना लगभग अपराध बन गया था। इन कारीगरोंसे इतनी निर्दयतापूर्वक और इतना अधिक काम कराया जाता था कि वे [कभी कभी] कारावाससे बचनेके लिए अपने अँगूठे स्वयं काट डालते थे। कई वक्ता तथ्योंकी गड़बड़ी कर देते हैं और कहते हैं कि कम्पनीके नौकरोंने कारीगरोंके अँगूठे काटे। मेरी रायमें, यह तो उस आतंककी अपेक्षा कम निर्दयतापूर्ण होता जिससे बचनेके लिए कारीगरोंको अपने हाथों अपने अँगूठे काटने पड़े थे।

सफेद टोपी, एक अपराध

शराबसे परहेज करनेको अपराध बना देना, सफेद टोपी पहननेको अपराध बनानेसे बस एक ही कदम पीछे होगा। फिर भी मैंने जबलपुरमें सुना[1] कि वहाँ रेलवेके एक विभागके कर्मचारियोंको सफेद टोपी पहननेकी मनाही की गई थी।

क्रान्तिकारी

और क्या संयुक्त प्रान्तकी सरकारने आन्दोलनको क्रान्तिकारी नहीं कहा है?[2] अभीतक 'क्रान्ति' शब्द हिंसासे सम्बद्ध रहा है, और इसलिए प्रतिष्ठित सत्ता द्वारा निन्दित होता आया है। किन्तु असहयोग आन्दोलन — यदि उसे एक क्रान्ति माना जा सकता है, तो — सशस्त्र विद्रोह नहीं, वह विकासशील क्रान्ति है, रक्तहीन क्रान्ति! यह आन्दोलन वैचारिक क्रान्तिका आन्दोलन है। असहयोग शुद्धीकरणकी प्रक्रिया है, और इसलिए वह हमारे विचारोंमें क्रान्ति लाता है। अतः उसका दमन बलपूर्वक सहयोग प्राप्त करके ही किया जा सकेगा। आन्दोलनको भंग करनेके लिए जो आज्ञाएँ निकाली जायेंगी, वे आज्ञाएँ होंगी चरखेका प्रवर्तन रोकने अथवा उसमें बाधा पहुँचानेके लिए, मद्य-निषेधके आन्दोलनको निषिद्ध करनेके लिए और इस प्रकार लोगोंको हिंसाके लिए उकसानेके लिए; क्योंकि यह निश्चित है कि यदि अप्रत्यक्ष तरीकोंसे विदेशी कपड़ेके उपयोग अथवा शराब खरीदनेके लिए लोगोंको बाध्य करनेका कोई प्रयत्न किया गया तो अवश्य ही लोग बहुत असन्तुष्ट हो जायेंगे। किन्तु यदि हम रोषको पी जायें और

१. गांधीजी २१ मार्च १९२१ को जबलपुरमें थे और वहीं उन्होंने यह खबर सुनी थी।

२. संयुक्त प्रान्तके गवर्नर, सर हारकोर्ट बटलरने मार्च, १९२१ में एक भाषणमें कहा था कि असहयोग आन्दोलन अब एक क्रान्तिकारी आन्दोलनके रूपमें सामने आ रहा है वह "लोगोंके अज्ञानका लाभ उठा कर जनताको उकसा रहा है।"

इस उत्तेजनाको भी सहन कर जायें तो हमारी सफलता निश्चित हो जाये। हमें इनका प्रत्युत्तर नहीं देना चाहिए। हमारी निष्क्रियता सरकारके पागलपनको समाप्त कर देगी, क्योंकि हिंसा तो प्रत्युत्तरके सहारे ही पनपती है; यानी हिंसककी इच्छाको नत होकर स्वीकार कर लेनेसे या फिर प्रतिहिंसा करनेसे। प्रत्येक कार्यकर्ताको मैं आग्रह-पूर्वक यही सलाह दूँगा कि इस बुरी सरकारसे वे इस हदतक असहयोग करें कि उससे हमारा कोई वास्ता ही न रह जाये; हम उसके बारेमें बात ही न करें। एक बार बुराईको पहचान लेनेके बाद उसे सहयोग देकर उसके प्रति सम्मान भाव प्रकट करना बिलकुल बन्द कर दें।

मूल परिपत्र

भारत सरकारने अपने मूल परिपत्रमें जो स्थिति अपनाई थी, वह सुसंगत थी।[१] उसने उसमें स्वतन्त्र भाषण तथा स्वतन्त्र विचारका अधिकार स्वीकार कर लिया था। उसने प्रत्यक्ष हिंसाको ही बलपूर्वक दबानेकी धमकी दी थी। किन्तु उसके प्रकाशनके समय मैंने उसके प्रति अपना अविश्वास प्रकट किया था।[२] उसके रचयिताओंने आशा की थी कि वे उपेक्षा अथवा सहिष्णुता दिखाकर आन्दोलनको नष्ट कर देंगे। किन्तु ज्यों ही इस आन्दोलनसे सरकारी संस्थाओंकी प्रतिष्ठाको धक्का पहुँचना शुरू हुआ, विदेशी कपड़ेका वास्तविक बहिष्कार होने लगा तथा शराबकी आमदनी घटने लगी त्यों ही सरकार भयभीत हो गई, और स्वतन्त्र भाषण और प्रचारको रोकने लगी। और यह दमन तो महज अभ्यासके तौरपर है। यथार्थ दमन तो आगे किया जाना है। हमें उसके लिए तैयार हो जाना चाहिए। मौन रूपसे आत्मशुद्धिका हमारा संकल्प अटल और अविचल होना चाहिए। हमें ओ'डायरके-जैसे आतंककी अग्निमें से भी गुजर सकना चाहिए। और अपने देशके प्रति अपनी निष्ठाको सिद्ध करना चाहिए — उसी प्रकार जैसे सीताने अग्नि-परीक्षा द्वारा अपने स्वामीके प्रति अपनी निष्ठाको सिद्ध कर दिया था।

बिहार सरकार

यदि बिहार प्रान्तसे असहयोग आन्दोलनमें अन्य प्रान्तोंको पीछे छोड़ जानेकी आशा की जा रही है, तो वहाँकी सरकार भी दमनकी रीतियोंका आविष्कार करनेमें प्रथम स्थान पानेका खासा प्रयास कर रही है। अब उसने नगरपालिकाओंके सदस्यों और कर्मचारियोंपर भी प्रतिबन्ध लगा दिया है कि उन्हें असहयोग सभाओंमें भाग नहीं लेना चाहिए। मैंने परिपत्र देखा नहीं है, किन्तु मैंने सुना है कि उसका अर्थ यही है। यदि ऐसा है, तो मैं नगरपालिकाओंके सदस्यों तथा कर्मचारियोंको सलाह देता हूँ, कि वे परिपत्रकी उपेक्षा करके सरकारको चुनौती दें कि वह नगर-पालिकाओंको भंग कर दे। मतदाताओंमें यदि साहस है, तो वे बार-बार उन्हीं सदस्योंको निर्वाचित करते रहें, और सरकारको मजबूर करें कि वह या तो नगरपालिकाओंके शासनको निष्क्रिय कर दे, या फिर इस आपत्तिजनक परिपत्रको वापस ले ले।

१ और २. "अहिंसाकी एक विजय", २१-११-१९२०।

वकालत करनेवाले वकील

वकीलोंके बारेमें मैंने जो विचार प्रकट किये हैं उसकी विवेचना करते हुए 'पत्रिका'[1] ने एक अग्रलेख लिखा है, और अपनी जबर्दस्त असहमति व्यक्त की है, 'पत्रिका' का विचार है कि वकील लोग कांग्रेसके मचपर से जनताका नेतृत्व करते रह सकते हैं। मैं सविनय निवेदन करता हूँ कि असहयोगके प्रस्तावसे किसी भी प्रकार विचलित होना भारी भूल होगी। मैं जानता हूँ, 'पत्रिका' समझती है कि कांग्रेसने सभी वकीलोंको वकालत छोड़नेका आदेश नहीं दिया है। मैं इस व्याख्यासे अपनी असहमति व्यक्त करनेका साहस करता हूँ। वह प्रस्ताव सभी वकीलोंको अपनी वकालत बन्द करनेके लिए, अधिकसे-अधिक प्रयत्न करनेका आदेश देता है। और मेरी रायमें, जो वकील अभीतक वकालत नहीं छोड़ पाये, वे कांग्रेसकी किसी भी संस्थामें पदग्रहण करने, अथवा कांग्रेसके मंचपरसे जनताका नेतृत्व करनेकी आशा नहीं कर सकते। क्या अपने खिताबोंको छोड़े बिना भी खिताबधारी व्यक्ति कांग्रेसके पदाधिकारी निर्वाचित किये जा सकते हैं? यदि हम समस्याओंका साहसके साथ सामना नहीं करेंगे तो भय है कि हम आन्दोलनको दूषित कर देंगे। हमारी कथनी और करनीमें थोड़ा भी अन्तर नहीं रहना चाहिए। मेरा मत है कि किसी प्रान्तीय समितिका वकील अध्यक्ष — यदि वह अपनी वकालत बन्द नहीं करता तो — अपने प्रान्तका नेतृत्व करके उसे विजय प्राप्त नहीं करा सकता। उसका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ेगा। अपने दौरोंमें मैंने यह बात बार-बार देखी है कि जिन वकीलोंने अबतक जनताका नेतृत्व किया है, उन्होंने या तो अपनी वकालत त्याग दी है या अपना सार्वजनिक जीवन।

वकालत करनेवाले वकीलोंकी व्यापारियोंसे तुलना करनेमें 'पत्रिका' भूल करती है। अभीतक बहुत कम व्यापारियोंने जनताका नेतृत्व किया है, किन्तु जहाँ वे आगे आये हैं, उन्होंने विदेशी कपड़ेका व्यापार करना निश्चय ही छोड़ दिया है। मुझे यह कहते हुए हर्ष होता है कि जनता कथनी और करनीके अन्तरको कभी सहन नहीं करेगी। किन्तु सार्वजनिक पदके लिए प्रयत्न न करना, अथवा उसे छोड़ देना एक बात है, और एक कमजोर किन्तु विनम्र अनुयायीके समान आन्दोलनकी सहायता करना दूसरी बात। हजारों व्यक्ति कांग्रेसकी पूरी सलाह माननेमें असमर्थ हैं, और फिर भी मौन अनुयायियोंके रूपमें अभियानकी उत्साहके साथ सहायता कर रहे हैं। वकालत करनेवाले वकीलोंको यही रुख अपनाना चाहिए। यह सम्मानजनक, प्रतिष्ठास्पद और सुसंगत होगा। स्वराज्यकी दिशामें अपनी प्रगतिमें, हमारा किसी वर्ग अथवा व्यक्तिके नेतृत्वको सफलताके लिए परमावश्यक समझना जरूरी नहीं है।

जब वह वकालत छोड़नेके विकल्पके रूपमें निन्दा अथवा अपमानका प्रस्ताव करती है, तब 'पत्रिका' 'यंग इंडिया' के तत्सम्बन्धी अनुच्छेदके क्षेत्रसे आगे जाती है। यदि कोई असहयोगी किसी ऐसे वकील अथवा अन्य व्यक्तिका तिरस्कार अथवा अपमान करता है जो कांग्रेसके आह्वानको स्वीकार करनेमें या तो बिलकुल असमर्थ है अथवा

१. **अमृतबाजार पत्रिका,** कलकत्ता।

जो अन्य किसी कारणसे उसे स्वीकार नहीं करना चाहता तो वह सच्चा असहयोगी नहीं कहलायेगा। यदि हम ऐसे व्यक्तियोंको कांग्रेसके पदाधिकारियोंके रूपमें निर्वाचित नहीं कर सकते, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि हम उनके प्रति अनुदारता बरतें अथवा उनका अपमान करें। इसके विपरीत, जो सज्जन कांग्रेसके प्रस्तावका अनुसरण करनेमें ईमानदारीसे असमर्थ हैं, वे सब प्रकारसे हमारी सहानुभूतिके पात्र हैं।

फिर, 'पत्रिका' का यह सोचना भी ठीक नहीं है कि इसके पहले कि वकालत करनेवाले वकील अपनी वकालत छोड़ें, अदालतोंका पूर्ण बहिष्कार हो जाना चाहिए, और चूँकि बिना विद्रोही सरकारके यह असम्भव है, और चूँकि हम विद्रोह करनेकी बात नहीं सोचते, अतः वकालत करनेवाले वकीलों द्वारा पहलेके समान जनताका नेतृत्व कर सकनेमें खतरेकी बात नहीं है। इस सुझावके पीछे स्पष्ट ही एक भ्रान्ति है। यदि इसका तर्क-सम्मत निष्कर्ष निकाला जाये, तो उसका अर्थ होगा कि किसी भी नेताके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह जो कहता है उसपर स्वयं भी अमल करे। तथ्य यह है कि श्री नेहरू और श्री दासके[1] त्यागसे तथा जनता द्वारा कांग्रेसके प्रस्तावको कार्यान्वित न करनेवाले पेशेवर वकीलों अथवा अन्य लोगोंको कोई भी सावजनिक प्रतिष्ठा न देनेके हमारे निश्चयके परिणामस्वरूप अदालतोंका पूर्ण बहिष्कार भले न हुआ हो, लेकिन हमने अदालतोंकी प्रतिष्ठाको, और इसलिए उसी हदतक सरकारकी प्रतिष्ठाको, सफलतापूर्वक मिट्टीमें मिला दिया है। यदि हम खिताबधारियों, वकीलों तथा दूसरोंको बावजूद इसके कि वे हमारे आह्वानपर आगे नहीं आये हैं, पुनः प्रतिष्ठा देने लगेंगे, तो हम राष्ट्रीय आत्मघात करेंगे। अतः 'पत्रिका' का यह गलत तर्क है कि कांग्रेसने वकीलोंको वकालत छोड़नेका आदेश इसलिए दिया है कि कांग्रेस उनकी सेवाएँ अपने लिए उपलब्ध करना चाहती है। जैसा कि मूल प्रस्तावकी प्रस्तावनामें स्पष्ट कहा गया है, इस आदेशका उद्देश्य सरकारकी प्रतिष्ठाको खत्म करना है, और इसके लिए ऐसी संस्थाओंके साथ असहयोग करना जरूरी है, जिनपर सरकारकी प्रतिष्ठा आधारित है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०–३–१९२१

१. पण्डित मोतीलाल नेहरू और चित्तरंजन दासने अपनी वकालत और उससे होनेवाली बेशुमार आमदनीको तिलांजलि दे दी थी।

२५१. कांग्रेसका संविधान

पिछली कांग्रेसने एक ऐसा संविधान[1] तैयार किया है, जिसे यदि ठीक ढंगसे कार्यान्वित किया जाये तो वही हमें स्वराज्यतक ले जानेके लिए काफ़ी है। इस संविधानके अनुसार भारतके प्रत्येक भागमें प्रतिनिधि समितियाँ बनाई जायेंगी और वे एक केन्द्रीय संगठन, अर्थात् अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, के साथ सहयोजित ढंगसे, स्वेच्छापूर्वक उसकी अधीनतामें कार्य करेंगी। वह सभी बालिग स्त्री-पुरुषोंको मताधिकार देता है, जिसकी केवल दो ही शर्तें हैं — उसके प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करना तथा नाममात्रका चार आना शुल्क देना। संविधानका अभीष्ट सभी दलों और समुदायोंको उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त कराना है। अतः यदि वह ईमानदारीके साथ कार्यान्वित किया जाये, और जनताका विश्वास और सम्मान अर्जित कर सके, तो वह बिना किसी कठिनाईके वर्तमान सरकारको निकाल बाहर कर सकता है। जनताके सहयोगके अतिरिक्त सरकारकी अपनी कोई शक्ति नहीं है — चाहे यह सहयोग ऐच्छिक हो या जोर-जबरदस्तीसे लिया जाता हो। जिस शक्तिका सरकार प्रयोग करती है, वह लगभग हमारे ही लोगोंके जरिये करती है। प्रत्येक गाँव पीछे एक यूरोपीय मानें तो भी एक लाख यूरोपीय हमारी सहायताके बिना, हमारे कुल ७ लाख गाँवोंमें से एक सप्तमांशको ही कब्जेमें रख सकते हैं। और एक यूरोपीयके लिए, चाहे वह स्वयं भी उपस्थित हो, एक भारतीय ग्रामपर यानी अनुमानतः ४०० पुरुषों और स्त्रियोंपर अपनी इच्छाको लादना कठिन ही होगा।

इसलिए हमें इतना ही करना है कि हम अपनी इच्छाको सरकारकी इच्छाके विरोधमें खड़ा करें; दूसरे शब्दोंमें कहें तो अपना सहयोग उससे खींच लें। यदि हम अपने ध्येयमें एक हों तो सरकारको हमारी इच्छाका पालन करना ही होगा, या फिर उसे हट जाना होगा। अपनी शक्तियोंको दृढ़ करनेके लिए सरकार उपद्रवकारी तत्वोंसे काम लेती है। हिंसा होनेपर वह दमन शुरू कर देती है; यदि हममें परस्पर फूट हो तो वह प्रलोभन देकर हमें और भी लड़ाती है और यदि हममें एका हो तो फिर वह चिकनी चुपड़ी बातें करके समझौता करना चाहती है। जो सर्वाधिक मुखर होते हैं उन्हें वह ललचाती-फुसलाती है; किन्तु हमें यदि कुछ करनेकी जरूरत है तो इतना ही कि हम अहिंसक बन रहें, एक रहें तथा उसके लालच देने और फुसलानेकी उपेक्षा करें।

निस्सन्देह सुसंस्कृत और बुद्धिमान लोगोंको इतना कर लेनेके लिए किसी बड़ी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं है। उनके सामने एक ऐसा सर्वस्वीकार्य उद्देश्य और मंच, जो उनकी समझमें आजाये, प्रस्तुत करना कठिन नहीं है। किन्तु यह सब कहनेसे नहीं, काम करनेसे, संगठन करनेसे होगा। मेरा सुझाव है कि हम ३० जूनसे पहले कांग्रेस संस्थामें, कमसे-कम एक करोड़ सदस्योंकी सही-सही भरती करनेपर अपना

१. नागपुर अधिवेशनमें पास किया गया कांग्रेसका संविधान, दिसम्बर १९२०। देखिए पृष्ठ १९४-२०२

ध्यान केन्द्रित करें। बिना चवन्नी दिये तथा सिद्धान्त स्वीकार किये किसीकी सदस्यता पक्की न मानी जाये। प्रत्येक परिवारके प्रत्येक वयस्क व्यक्तिको [कांग्रेसका] सदस्य बनाना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। हमें यह गर्व कर सकने योग्य होना चाहिए कि हमारी सदस्य-सूचीमें जितने पुरुष हैं, उतनी ही महिलाएँ हैं। हमें यथाशक्ति सभी मुसलमानों, अन्य सभी जातियों, कारीगरों और 'अछूतों' को सदस्यताके रजिस्टरमें नाम लिखानेपर राजी करना चाहिए। तब वह सूची संसार-भरमें मतदाताओंकी सर्वाधिक लोकतन्त्रात्मक सूची होगी। यदि मेरे सुझाव स्वीकृत हों, तो हमें ३० जूनतक निम्न-लिखित काम पूरे करनेपर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए :

(१) तिलक-स्वराज्य कोषके लिए १ करोड़ रुपया एकत्र करना।

(२) कांग्रेसके १ करोड़ सदस्य बनाना।

(३) बीस लाख घरोंमें चरखा चालू कराना।

एक करोड़ सदस्योंको भरती करनेकी दृष्टिसे, मेरे हिसाबमें — यदि ५ व्यक्तियोंका परिवार माना जाये, तो कमसे-कम २० लाख घरोंमें हमारे मतका प्रचार हो जायेगा। कार्यकर्त्तागण कांग्रेसी परिवारोंके प्रति परिवारमें एक-एक चरखा रखनेपर तो अवश्य ही राजी कर सकते हैं। इक्कीस प्रान्तोंमें[1] पच्चीस लाख चरखे चलवाना कुछ अधिक नहीं है।

हमें जरूरतसे ज्यादा राष्ट्रीय समस्याओं और उनके समाधानके फेरमें पड़कर अपने साधनोंका अपव्यय नहीं करना चाहिए। जो रोगी एक ही समय अनेक उपचारों-का प्रयोग करता है, वह मर जाता है। जो वैद्य अपने रोगीपर एक साथ अनेक उपचारोंका प्रयोग करता है वह अपनी साख खो बैठता है और नीमहकीम कहलाता है। जीवन और उसके सभी कार्योंमें एकाग्रता समान रूपसे अनिवार्य है। शक्तियोंका बिखराव हमेशा ही खराब हुआ करता है। अभीतक हम सब अपनी-अपनी ढपली बजाते रहे हैं, और इस प्रकार हमारी राष्ट्रीय शक्तिका बड़ा ह्रास होता रहा है। इसी सालके भीतर विदेशी कपड़ेका बहिष्कार एक व्यावहारिक सम्भावना है। कांग्रेसके लिए एक कार्यक्षम संगठनका निर्माण करना प्रामाणिक कार्यकर्त्ताओंके बाएँ हाथका खेल है। एक सुनियोजित ढंगसे एक करोड़ रुपया एकत्र कर लेना हमारे अन्दर आत्मविश्वास उत्पन्न करेगा, और वह हमारी ईमानदारी तथा हमारे संकल्पका भी प्रत्यक्ष प्रमाण होगा।

इस कार्यक्रमका यह अर्थ नहीं है कि असहयोगके अन्य कार्याकलाप बन्द हो जायें। वे जारी रहेंगे; मद्य-पान और अस्पृश्यताका निवारण होना ही चाहिए। शैक्षणिक आन्दोलन निश्चित गतिसे आगे बढ़ रहा है। जो नई राष्ट्रीय संस्थाएँ जगह-जगह स्थापित हुई हैं यदि उनकी सुचारु रूपसे व्यवस्था की गई तो वे और आगे बढ़ेंगी और उन विद्यार्थियोंको भी आकर्षित करेंगी जो अभीतक दुविधामें पड़े हैं। वकील लोग भी, जो संस्कारसे ही सदा सतर्क और आगा-पीछा सोचकर चलनेवाले लोग होते हैं, जब वे आन्दोलनको अधिकाधिक प्रगति करते देखेंगे, तो वे भी देशके साथ आ मिलेंगे।

१. भाषाके आधारपद बनाये गये कांग्रेस-प्रान्त ।

जनता द्वारा कानूनी अदालतोंके बहिष्कारकी प्रगति काफी अच्छी है। इन बातोंमें अब सभीको अपना प्रयत्न केन्द्रित करनेकी आवश्यकता नहीं रही। ये विशिष्ट वर्गोंके लिए हैं। किन्तु ऊपर कही गई मेरी तीनों बातें तो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उन्हें शुरू करना नितान्त आवश्यक हो गया है। इसके बिना यह आन्दोलन, जन-आन्दोलनके रूपमें असफल माना जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०–३–१९२१

२५२. भाषण : विजयनगरम्‌में[1]

३० मार्च, १९२१

गांधीजीने भाषण प्रारम्भ करते हुए कहा कि अंग्रेजी पढ़ना बिलकुल जरूरी नहीं है। केवल अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और आधुनिक विज्ञानकी शाखाओंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए ही अंग्रेजी जरूरी है। उन्होंने जोर देकर कहा कि हिन्दी पढ़ना इसलिए जरूरी है कि उससे देशमें भाईचारेकी भावना पनपती है। हिन्दीको देशकी राष्ट्रभाषा बना देना चाहिए। आगे बोलते हुए उन्होंने कहा कि हिन्दी, जो काशी विश्वनाथकी भाषा है, आम जनताकी भाषा होनी चाहिए। आप चाहते हैं कि हमारा राष्ट्र एक और संगठित हो, इसलिए आपको प्रान्तीयताके अभिमानको छोड़ देना चाहिए। हिन्दी तीन ही महीनोंमें सीखी जा सकती है। जनताका मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा करना मुझे पसन्द नहीं है। मैं तो अपने सिद्धान्तोंपर व्यावहारिक जीवनमें अमल होते देखना चाहता हूँ। मेरा विश्वास है कि चरखेसे देशको मुक्ति मिलेगी। मेरी रायमें चरखा मशीन-गनों और युद्ध-पोतोंका काम करेगा। जब ईस्ट इंडिया कम्पनी यहाँ आई, उसने कताईपर घातक प्रहार किया और तभीसे भारतका नैतिक और आर्थिक अधःपतन शुरू हुआ। मैं आपसे कहूँगा कि आप पश्चिममें बनी भड़कीली एवं चमकदार पोशाकें न पहनें। आपको घरमें कते-बुने सादे कपड़ोंसे, वे चाहे कितने ही खुरदरे क्यों न हों, सन्तुष्ट होना चाहिए, क्योंकि घरके बने कपड़ेके पीछे एक इतिहास है, उसकी अपनी आत्मा है, अपना सौंदर्य है। इसके बाद वे उड़ीसाकी दयनीय दशाके बारेमें बोले। फिर उन्होंने वकीलों और विद्यार्थियोंसे असहयोग करनेका अनुरोध करनेके बाद कहा कि यदि आप सब मेरी सलाह नहीं मानेंगे तो आप अपने प्रति ही नहीं, अपने देशके प्रति अपना जो कर्तव्य है उसकी भारी उपेक्षा करेंगे। प्रसंगवश उन्होंने भारतमें भयानक रूपसे प्रचलित मद्य-पानकी आदतकी निन्दा की। अन्तमें

१. पीपुल्स पार्कमें किये गये अपने सार्वजनिक अभिनन्दनके उत्तरमें यह भाषण दिया था।

उन्होंने कहा कि मन और शरीरकी शुद्धि, हिन्दू-मुस्लिम एकता और स्वदेशी चीजोंका उपयोग — ये सभी बातें आपको स्वराज्य दिलायेंगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १–४–१९२१

२५३. भाषण : पहले प्रस्तावपर[1]

बेजवाड़ा

३१ मार्च, १९२१

प्रथम प्रस्तावको स्वीकृतिके लिए पेश करते हुए श्री गांधीने वर्तमान स्थितिपर बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि अबतक हमारा ध्यान खिताबों, परिषदों, शिक्षणसंस्थाओं तथा न्यायालयोंके त्यागके लिए प्रचार करने-पर ही केन्द्रित रहा है, किन्तु अब इन बातोंके लिए प्रचार करनेकी जरूरत नहीं है; क्योंकि इनमें जो सफलता प्राप्त हो चुकी है, वह हर तरहसे सन्तोषजनक है। जिन विद्यार्थियोंने कालेज छोड़ दिये, या जिन वकीलोंने वकालत छोड़ दी, उनकी संख्या चाहे जितनी भी हो, उससे कांग्रेसके प्रचारका असली उद्देश्य पूरा हो गया है; अर्थात् इस देशकी नौकरशाही सरकारकी इन संस्थाओंकी प्रतिष्ठा समाप्त हो गई है। जो विद्यार्थी या वकील अब भी स्कूलों या अदालतोंमें जा रहे हैं, उनमें से भी अधिकतर लोगोंको उस सिद्धान्तकी पूरी प्रतीति हो गई है जिसके लिए कांग्रेस लड़ी है, यद्यपि विभिन्न कारणोंसे वे कांग्रेसके प्रस्तावोंपर तत्काल अमल नहीं कर पाये हैं। इसलिए कांग्रेस भरोसा कर सकती है कि समय आनेपर यह आन्दोलन पूर्णताको प्राप्त होगा। इसलिए नागपुर कांग्रेस-प्रस्तावमें घोषित समयके[2] भीतर स्वराज्यकी योजनाको पूरा करनेके लिए हमें इसके उन हिस्सोंपर ध्यान देना चाहिए जो इस देशकी आम जनताके लिए स्वराज्य पानेमें प्रत्यक्ष रूपसे सहायक होंगे।

जनतामें असाधारण जागृति आई है और वह स्वराज्य प्राप्तिकी तात्कालिक आवश्यकताके प्रति पूरी तरह जागरूक है, किन्तु नेतागण पिछड़ गये हैं। इसलिए जनताकी आकांक्षाओंको निश्चित रूप और आकार देना जरूरी है। उसकी स्वराज्यकी कामना इस अत्यन्त निश्चित अनुभूतिपर आधारित है कि स्वराज्यके बिना उसकी दशा नहीं सुधरेगी और उसकी दशा सुधारनेका सीधा तरीका उसे इस योग्य बनाना है कि वह अपने लिए रोटी-कपड़ेका प्रबन्ध कर सके। इसी दृष्टिसे मुझे लगा कि स्वराज्य

१. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी इस बैठकमें गांधीजीने चार प्रस्ताव पेश किये थे, जो स्वीकार कर लिये गये; उनके पाठके लिए देखिए "प्रस्ताव : अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें", ३१–३–१९२१।

२. दिसम्बर १९२० में कांग्रेसके नागपुर अधिवेशनमें पारित असहयोग-सम्बन्धी प्रस्तावमें एक वर्षकी अवधिका उल्लेख है।

प्राप्त करनेकी सबसे ज्यादा ताकत चरखा आन्दोलनमें है। अगर ऐसा कुछ किया जा सके जिससे आम लोग इसे अपना लें, यदि उन्हें इस काबिल बनाया जा सके कि वे अपने घरोंमें चरखेके उपयोगके बलपर अधिकसे-अधिक उत्पादन करके अपने लिए रोटी और वस्त्रका पूरा प्रबन्ध कर सकें और इस तरह आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करके इस विचारको व्यावहारिक रूप दे सकें तो उसके परिणामस्वरूप उन्हें तत्काल यह अनुभूति होने लगेगी कि अपनी आजीविका और प्रगति तथा समृद्धिके लिए वे अब विदेशियोंपर निर्भर नहीं हैं। इस तरह बाहरसे मँगाये जानेवाले सबसे महत्वपूर्ण विदेशी मालका पूरा-पूरा बहिष्कार भी सध जायेगा। यदि ऐसा हो जाये तो माना जा सकता है कि स्वराज्य मिल गया। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि चरखा आन्दोलनको बढ़ावा दिया जाये।

प्रचारको सफल बनानेके लिए कार्यकर्त्ताओंकी जरूरत है। कांग्रेस संगठनोंको पूरी तरह इस काममें लग जाना चाहिए। जैसा कि प्रस्तावमें आग्रह किया गया है, यदि ३० जूनसे पहले एक करोड़ रुपया इकट्ठा हो जाये, मुझे उम्मीद है कि यह हो जायेगा, और देशके एक करोड़ स्त्री-पुरुष कांग्रेसके सदस्य बना लिये जायें, तो लोग अपनी स्वराज्यकी योग्यताका इससे बढ़कर कोई दूसरा स्पष्ट प्रमाण नहीं दे सकते कि उनमें स्वयं कांग्रेस संगठनके जरिये स्वराज्य प्राप्त करनेकी क्षमता है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १–४–१९२१

२५४. भाषण : दूसरे प्रस्तावपर[1]

बेजवाड़ा
३१ मार्च, १९२१

श्री गांधीने कहा, मैं चाहता हूँ कि इस व्यवस्थाको ध्यानमें रखते हुए कि नागपुर कांग्रेसने सविनय अवज्ञा-जैसी किसी बातकी साफ शब्दोंमें कोई सिफारिश नहीं की थी और असहयोग-सम्बन्धी प्रस्तावके अन्तर्गत वह नहीं आती, इस मामलेमें देशका मार्गदर्शन करनेके विचारसे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको सलाहके तौरपर अपना मत-मात्र व्यक्त कर देना चाहिए।[2] असहयोगियोंके विरुद्ध सरकारकी कार्रवाईके परिणामस्वरूप सविनय अवज्ञाका प्रश्न अनेक हलकोंमें उठाया गया है। उन्होंने अनेक प्रान्तोंमें अधिकारियोंकी बहुत-सी कार्रवाइयोंके पूर्ण अनौचित्यकी विस्तारसे चर्चा की और बताया कि गम्भीर उत्तेजनाके समय भी लोग किस प्रकार आश्चर्यजनक ढंगसे

१. यह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें पेश किया गया दूसरा प्रस्ताव था।
२. सविनय अवज्ञा सम्बन्धित प्रस्तावके लिए देखें अगला शीर्षक।

अहिंसापर दृढ़ रहे हैं। उन्होंने कहा, फिर भी मुझे लगता है कि कमेटीको सविनय अवज्ञाके उस रूपकी सिफारिश नहीं करनी चाहिए जो उसके हिमायतियोंके मनमें है। यद्यपि यह सच है कि कांग्रेसके प्रस्तावोंमें जिस सविनय अवज्ञाकी कल्पना की गई है, उसका एक रूप कर न देना भी है, फिर भी इसे कुछ खास कानूनों या आदेशोंको लेकर, चाहे वे उचित हों या अनुचित, सरकारके विरुद्ध सविनय अवज्ञाके किसी कार्य-क्रमके अंगके रूपमें शामिल नहीं माना गया है। सविनय अवज्ञाकी जिस योजनापर दक्षिण आफ्रिकामें मैंने अमल किया था और जिसका मैंने अपने मनमें विकास किया है वह कुछ ऐसी है, जिसका प्रयोग अभी नहीं किया जा सकता। यदि देश जैसा मैं चाहता हूँ, उस ढंगसे पूरी तरह सुसंगठित हो जाये और संयमसे चलना सीख ले, तो सविनय-अवज्ञाको कार्यान्वित करनेका समय आया माना जायेगा। अभी तो जो स्थिति है उसके बारेमें मेरा खयाल है कि यद्यपि जनताके बीच अहिंसाकी भारी प्रगति हुई है, फिर भी एक ऐसा तत्व है जिसे मैं, बेहतर शब्दके अभावमें, भीड़की आदत, उसका अपना कानून कहूँगा; और जब मैं इन शब्दोंका प्रयोग करता हूँ तो मेरा अभिप्राय इनके गलत अर्थसे नहीं है, बल्कि यह है कि अब भी लोग उतना अधिक संयम नहीं सीख पाये हैं जितने संयमकी जरूरत उस समय होती है जब उनकी सबसे प्रिय आकांक्षाएँ कुचली जाती हैं या जब अत्यन्त उत्तेजनात्मक परिस्थितियोंमें उनके महान नेता उनसे छीनकर जेल भेज दिये जाते हैं। इसलिए जबतक वे पूरी तरह संयम रखना नहीं सीख लेते, तबतक उन्हें सविनय अवज्ञाकी शुरुआत नहीं करनी चाहिए। निश्चय ही मुझे यह देखकर खुशी होती है कि लोग इस दिशामें काफी आगे बढ़े हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे विशेष आदेश या कानूनके विरुद्ध, जिसे उसका हृदय कहता हो कि इसका पालन नहीं किया जा सकता, सविनय अवज्ञा करनेकी जिम्मेदारी अपने सिर आप ही लेता है तो वह वैसा करनेके लिए स्वतन्त्र है। इसका उदाहरण श्री याकूब हसनका[१] मामला है। परन्तु वह ऐसा केवल अपनी ही जिम्मेदारीपर कर सकता है, कांग्रेसके नामपर नहीं।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १–४–१९२१

१. देखिए "भाषण: गुजराँवालामें", १९–२–१९२१।

२५५. प्रस्ताव : अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें[१]

३१ मार्च, १९२१

प्रस्ताव १

अ० भा० कां० क० का मत है कि सभी कांग्रेस संगठनों और कार्यकर्त्ताओंको अपना ध्यान मुख्य रूपसे निम्नलिखित बातोंपर केन्द्रित करना चाहिए :

(क) अखिल भारतीय तिलक स्मारक-स्वराज्य कोषमें एक करोड़ रुपये जमा करना और आगामी ३० जूनसे पहले हर कांग्रेस प्रान्त द्वारा अपनी जनसंख्याके अनुपातमें द्रव्य संग्रह करना।

(ख) संविधानके अनुसार कांग्रेस पत्रिकाओंमें एक करोड़ सदस्य दर्ज करना और आगामी ३० जूनसे पहले प्रत्येक [कांग्रेस] प्रान्त द्वारा अपनी जनसंख्याके अनुपातमें सदस्य बना लेना।

(ग) आगामी ३० जूनसे पहले गाँवों और घरोंमें २० लाख ऐसे चरखे दाखिल कर देना, जो अच्छी तरह काम करते हों; तथा प्रत्येक प्रान्त द्वारा अपनी जनसंख्याके अनुपातमें चरखे चालू कराना।

प्रस्ताव २

(क) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी राय है कि विभिन्न प्रान्तोंमें दमनकी नीति अपनाते हुए अधिकारियोंने असहयोगियोंके विरुद्ध जो आदेश जारी किये हैं, वे देशकी वर्तमान स्थितिको देखते हुए सर्वथा अनावश्यक हैं और ऊँचेसे-ऊँचे विधिविशारदोंकी सम्मतिमें उनमें से अधिकांश अवैध हैं।

(ख) समितिका विश्वास है कि कांग्रेसने इस देशके स्वराज्य प्राप्ति तथा खिलाफत और पंजाब-सम्बन्धी अन्यायोंके परिशोधनके प्रयत्नोंमें अहिंसाके जिस सिद्धान्तका विधान किया है, सरकार द्वारा गम्भीर उत्तेजनाएँ पैदा करते रहनेपर भी, देशने उसका आश्चर्यजनक ढंगसे पालन किया है।

(ग) इस समितिकी राय है कि कांग्रेसके असहयोगसे सम्बद्ध प्रस्तावमें तो सविनय अवज्ञाका स्पष्ट रूपसे उल्लेख है ही नहीं, इसके अलावा भी देश अभी इतना अनुशासित, सुसंगठित तथा तैयार नहीं है कि वह तत्काल सविनय अवज्ञा शुरू कर सके।

(घ) इसलिए यह समिति तैयारीके रूपमें उन सब लोगोंको, जिनके लिए आदेश जारी किये जायें, सलाह देती है कि वे उनका पालन करें और

१. बेजवाड़ामें हुई इस बैठकमें ये चार प्रस्ताव गांधीजीने रखे थे; अनुमानतः इनका मसविदा भी उन्होंने तैयार किया था ।

विश्वास करती है कि जिन कार्यकर्त्ताओंके कार्य-कलापोंपर सरकार किसी तरहकी बन्दिश लगा दे, उनका स्थान नये कार्यकर्ता ग्रहण करेंगे और आम लोग ऐसे आदेशोंसे हतोत्साह या भयभीत होनेके बजाय कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार अनुसन्धान, संगठन और निर्माणका अपना कार्य जारी रखेंगे।

प्रस्ताव ३

पंचायतोंके संगठन-कार्यमें जो तेज प्रगति हुई है उसके लिए अ० भा० कां० क० समितिको बधाई देती है और विश्वास करती है कि जनता सरकारी अदालतोंका बहिष्कार करनेके लिए और अधिक कोशिश करेगी।

प्रस्ताव ४

अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलनमें अन्तर्निहित आत्मशुद्धिके सिद्धान्तके प्रति देशने स्वयंस्फूर्त उत्साह दिखाते हुए मद्यपानकी बुराईके विरुद्ध जो अभियान शुरू किया, उसके लिए यह कांग्रेस कमेटी उसे बधाई देती है और विश्वास करती है कि आत्मत्यागी कार्यकर्ताओंके दृढ़ और अनवरत प्रयत्नोंसे मादक पेयों तथा द्रव्योंके सेवनकी आदत देशसे बिलकुल उठ जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १–४–१९२१

२५६. भाषण: बेजवाड़ा नगरपालिका पार्षदोंके समक्ष[1]

१ अप्रैल, १९२१

महात्मा गांधीने [मानपत्रका] समुचित उत्तर देते हुए कहा: स्वराज्य-प्राप्तिके लिए जरूरी है कि नगरपालिकाएँ कांग्रेसकी नीतिको अपनायें। स्वराज्यकी स्थापनाके लिए देशके सामने जो कार्यक्रम है, नगरपालिकाएँ यदि सक्रिय रूपसे उसका समर्थन करें तो बड़ा लाभ होगा। नडियाद, अहमदाबाद और सूरतको देखिए।[2] मेरा आपसे अनुरोध है कि आप तिलक-स्वराज्य-कोषके लिए चन्दा इकट्ठा करें तथा कांग्रेस समितियोंको संगठित करनेमें सहायता दें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ४–४–१९२१

१. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सभास्थल, 'म्यूजियम हॉल' में नगरपालिका परिषद्के अध्यक्ष द्वारा भेंट किये गये मानपत्रके उत्तरमें।

२. गुजरातके इन तीनों नगरोंमें नगरपालिकाओंने सरकारी नियन्त्रणका विरोध किया था।

२५७. भाषण : कांग्रेस-सभा सम्बन्धी प्रस्तावपर[1]

बेजवाड़ा
१ अप्रैल, १९२१

महात्मा गांधीने प्रस्ताव पेश करते हुए कहा : हो सकता है कि प्रस्तावको लागू करना कठिन और अरुचिकर हो, किन्तु नये संविधानको रूप देनेवालोंका कर्त्तव्य है कि वे ऐसी कठिनाइयोंका सामना करें और उनपर विजय पायें। आज देशकी जनता और कांग्रेसजनोंका बहुमत असहयोगके पक्षमें है। इसे देखते हुए मुझे तो लगता है कि कांग्रेस संगठनोंका कार्य-संचालन और नियन्त्रण ऐसे लोगोंके हाथोंमें न रहने देना ही उचित होगा जो नागपुर अधिवेशनके प्रस्तावके अनुसार असहयोगपर व्यक्तिगत रूपसे अमल करनेके लिए तैयार न हों।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ४-४-१९२१

२५८. पत्र : मगनलाल गांधीको

[कोकोनाडा]
शनिवार [२, अप्रैल, १९२१][2]

चि० मगनलाल,

गांडीव चरखेके सम्बन्धमें तुमने 'नवजीवन'में जो टिप्पणी लिखी है उसे पढ़कर प्रसन्नता हुई। और क्या शंकरलालका हिसाब भी इसी तरह ठीक नहीं हो सकता?[3] मैंने उनसे [तुम्हारी टिप्पणीके बारेमें] पूछा था। वे बोले "मगनलालजीने जो उक्ति पेश की है वह अभी मेरे गलेके नीचे नहीं उतरी है। मैंने अपने चरखेपर ढेरों सूत काता है और दूसरोंसे कतवाया है। मैं अपने चरखेसे आश्रमके चरखेके बराबर ही काम ले रहा हूँ। मैं तो केवल इतना ही चाहता हूँ कि मेरे पास जिस नमूनेका चरखा है उसे आप निकम्मा न ठहरा दें। फिलहाल मैं और कुछ नहीं चाहता।"

१. प्रस्ताव यह था कि नये संविधानके अन्तर्गत संगठित की जानेवाली कांग्रेस-सभाओंमें कोई भी ऐसा व्यक्ति पदाधिकारी नियुक्त न किया जाये जो असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावकी शर्तों, विशेषकर व्यक्तिगत अपेक्षाओं,को पूरा न करता हो।

२. इस पत्रमें गांडीव चरखेपर उल्लिखित टीका २७-३-१९२१ के **नवजीवन**में प्रकाशित हुई थी और जैसा कि उपरोक्त पत्रमें कहा जा चुका है गांधीजी १० अप्रैल, १९२१ को बम्बई तथा १२ अप्रैलको अहमदाबाद पहुँचे थे।

३. मगनलालने उसके सम्बन्धमें अपनी राय बदल दी। उन्होंने लिखा कि शंकरलालजीके चरखेपर परीक्षण किये और उसे ठीक पाया। इस प्रकारके चरखेकी लागत डेढ़ रुपया आती है।

शंकरलालका चरखा काम पूरा देता है; यह बात उन्होंने नम्रतापूर्वक कही है। मेरी सलाह यह है कि तुम पंजाबके चरखेके आकारके बारेमें कुछ सोचो। मुझे तो उसका आकार बिलकुल ठीक लगा है। यहाँ कताईके सम्बन्धमें जो कुछ किया जा रहा है उसे देखकर मैं चकित हो गया हूँ। यहाँके कते सूतसे बना जो कपड़ा मैं अपने साथ ला रहा हूँ उसे देखकर तुम दंग रह जाओगे। एक बालक मेरे पास एक चरखा लाया; उसका वजन दस तोला था। उस चरखेपर उसने बहुत महीन सूत कात कर दिखाया परन्तु इस सबका जिक्र कभी फिर करूँगा।

मैं वहाँ १२ तारीखको आ रहा हूँ; १०को बम्बई पहुँचूँगा। चि० छगनलालके नाम लिखे गये पत्रको पढ़कर देखना और उसपर मनन भी करना।

मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि हिन्दुस्तानकी आर्थिक नीति उस शक्तिपर निर्भर करती है जो हम प्रदर्शित कर सकेंगे। परन्तु इस अवसरपर अधिक लिखना सम्भव नहीं है। मैं यह पत्र लिखते समय बहुतसे लोगोंसे घिरा हुआ हूँ।

बापूके आशीर्वाद

मूल गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५७९२) से।
सौजन्य : राधाबेन चौधरी

२५९. भाषण : कोकोनाडामें[1]

२ अप्रैल, १९२१

मेरे हिन्दू और मुस्लिम देशभाइयो और बहनो,
कोकोनाडा नगरपालिकाके पार्षदो,

मैं भाषण देते समय खड़ा नहीं हुआ हूँ, इसलिए आप कृपया मुझे क्षमा करेंगे। मैं इसका कारण पहले ही बता चुका हूँ और अबतक शायद देशके अन्य भागोंकी तरह यहाँ भी लोग उसे जान गये हैं। कारण मेरी शारीरिक कमजोरी है। मैं इस बातके लिए भी क्षमा चाहता हूँ कि मैं अपने भाई मौलाना शौकत अलीको अपने साथ नहीं ला सका। आप जानते हैं कि भारतको यह जतानेके लिए कि हिन्दू-मुस्लिम एकता क्या वस्तु है मैंने और मौलाना शौकत अली दोनोंने एक सालतक भारतके प्रत्येक भागका भ्रमण साथ-साथ किया है परन्तु अभी कुछ दिनोंसे हम दोनों साथ-साथ नहीं रह सके हैं। श्री शौकत अली और मैं इस वर्ष स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए उत्सुक हैं। हम दोनों ही खिलाफत और पंजाबपर किये गये अत्याचारोंके प्रतिकारके लिए उत्सुक हैं। और इसलिए एक वर्षतक साथ-साथ घूम चुकनेके पश्चात् हमने अलग-अलग क्षेत्रोंमें अपनी शक्तियोंका उपयोग करना निश्चित किया है और तय यह हुआ

१. नगरपालिका परिषद् द्वारा किये गये स्वागतमें जो मानपत्र दिया गया था उसीके उत्तरमें गांधीजीने उक्त भाषण दिया था।

है कि अब हम देशके विभिन्न भागोंका दौरा अलग-अलग करेंगे। हम दोनोंने एक वर्ष-तक साथ-साथ रहकर जो पदार्थपाठ भारतके सामने रखा यदि वह हिन्दू-मुस्लिम एकताकी नितान्त आवश्यकताके बारेमें आपको आश्वस्त करनेके लिए पर्याप्त नहीं है और यदि हमारे देशभाइयोंको[1] पिछले वर्षभर इसपर अमलसे जो पारस्परिक सुख दृष्टिगत हुआ है वह भी एकताका महत्व सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त नहीं है, तो जहाँतक मेरा सम्बन्ध है मैं हिन्दू-मुस्लिम एकताकी आवश्यकताके बारेमें आपको विश्वास दिलानेका विचार ही त्यागे देता हूँ। मौलाना शौकत अली एक कट्टर मुसलमान हैं। मैं एक कट्टर सनातनी हिन्दू होनेका दावा करता हूँ। हमारे विचार जुदा-जुदा हैं और हमारी पृथक्-पृथक् मान्यताएँ हैं, फिर भी हम दोनों आपसमें इस प्रकार रह सके हैं जिस प्रकार कि दो सगे भाई भी नहीं रह सकते। मुझे मालूम है कि भारतने अबतक यह अनुभव कर लिया है कि हमारे राष्ट्रीय जीवनके लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता खाने-पीने और सोनेके समान ही आवश्यक चीज है। मुझे आशा है कि आप अबतक यह अनुभव कर चुके होंगे कि कुछ शर्तोंके पालन करनेपर स्वराज्य एक वर्षके अन्दर प्राप्त किया जा सकता है।

मुझे इस नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्रको स्वराज्य प्राप्तिके मार्गमें एक साधनके रूपमें स्वीकार करनेमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इससे यह जाहिर होता है कि भारतकी नगरपालिकाएँ अपने किसी भी विनीत सेवकका स्वागत करनेके लिए उसी प्रकार तैयार रहती है जिस प्रकार कि वे अबतक गवर्नरों तथा वाइसरायोंका स्वागत करनेके लिए तैयार रहती थीं; डरके कारण तथा अपने ऊपर विश्वास न होनेके कारण स्वराज्यकी ओर प्रगति करनेमें वास्तविक बाधा उत्पन्न होती है। मैं ऐसा कदापि नहीं मानता कि यह मानपत्र मेरी अपनी किसी विशेषताके लिए दिया गया प्रमाणपत्र है, मुझे मालूम है कि यह केवल इस बातको सूचित करता है कि मैं इस समय राष्ट्रका प्रतिनिधि हूँ। नगरपालिकाओंने अब अपने डरको, जो उन्हें घेरे रहता था, छोड़ दिया है और इस धारणाको दूर कर दिया है कि नगरपालिकाएँ सरकारकी पिछलग्गू होनेके सिवा और कुछ नहीं हैं। मैं इस महान् नगरपालिकासे कहता हूँ कि वह एक कदम और आगे बढ़कर अहमदाबाद, नड़ियाद तथा सूरतका अनुकरण करे। मैं इस नगरपालिकासे कहता हूँ कि वह अपने यहाँ शिक्षाका राष्ट्रीयकरण करे। यदि केवल समस्त भारतकी नगरपालिकाएँ भी अपनी शक्ति पहचान लें और अपना कर्त्तव्य निभाने लगें तो मैं यह साहसपूर्वक कह सकता हूँ कि नगरपालिकाएँ ही हमें स्वराज्य दिलानेमें समर्थ हो जायेंगी। क्योंकि आखिर स्वराज्य नगरपालिका प्रशासनके विस्तारके अतिरिक्त और है क्या? और यदि भारतका प्रत्येक गाँव और शहर अपने मामलोंकी देखभाल करनेमें खुद ही समर्थ हो जाये तो निस्सन्देह इसका अर्थ यह हुआ कि भारतके सभी गाँव व शहर राष्ट्रीय मामलोंको चलानेमें समर्थ हैं।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने हमें मार्ग दिखाया है और सारे भारतके सामने एक बहुत सरल परीक्षा रखी है। यदि कांग्रेस हमारी राष्ट्रीय सभा है, यदि कांग्रेस

१. यहाँ कुछ छूटा-सा लगता है।

भारतमें स्वराज्य स्थापित करनेके लिए हमारा साधन है, तो स्वाभाविक रूपसे ही प्रत्येक हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदी स्त्री और पुरुषको, जो भारतमें पैदा हुआ है, अपना नाम कांग्रेसकी पंजिकामें दर्ज करा लेना चाहिए। इसीलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने सुझाव दिया है कि आगामी ३० जूनतक कमसे-कम एक करोड़ स्त्री-पुरुष अपने-अपने नाम कांग्रेसकी पंजिकामें दर्ज करवा लें। एक ऐसे राष्ट्रमें जो कुछ महीनोंसे आश्चर्यजनक उत्साह और पारस्परिक ऐक्यका परिचय दे रहा है, कमसे-कम स्त्री-पुरुषोंके तीसवें भागको ३० जूनसे पहले ही कांग्रेसका सदस्य बन जाना चाहिए। निस्सन्देह यह कोई बड़ी बात नहीं है।

आप लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक महाराजकी स्मृतिके प्रति श्रद्धा रखते हैं। मैं जहाँ भी जाता हूँ वहीं घरों और सार्वजनिक सभाओंमें उनके चित्र देखता हूँ। इस-लिए कांग्रेस कहती है कि उस महान् दिवंगत देशभक्तके प्रति अपना आदर एवं अपनी श्रद्धा व्यक्त करनेके लिए ३० जूनसे पहले ही एक करोड़ रुपया एकत्र कर लें। यह एक करोड़ रुपया संगमरमरकी प्रतिमाओं तथा स्मृति-भवनोंपर खर्च नहीं किया जायेगा। इस पूँजीका उपयोग स्वराज्य-प्राप्तिके निमित्त किया जायेगा। यदि आन्ध्र देशके[1] स्त्री-पुरुष जो गहने पहनते हैं, उनमें से कुछ ही दान कर दें, तो निश्चय ही आन्ध्र देश अपने हिस्सेकी रकम एक ही सप्ताहमें पूरी कर देगा। मेरा आपसे निवेदन है कि यदि आप इस वर्ष वास्तवमें स्वराज्य प्राप्त करने तथा खिलाफत एवं पंजाबकी शिकायतोंको दूर करनेके लिए कृतसंकल्प हैं तो हम अपना सब-कुछ बलिदान करनेके लिए तैयार हो जायें।

तीसरी बात जो कांग्रेस सारे भारतसे चाहती है, यह है कि हम ऐसी व्यवस्था करें कि जूनके अन्ततक भारतके घरोंमें २०,००,००० चरखें चलने लगें। अपनी इन सुन्दर बहनों तथा आप लोगोंमें से बहुतोंके शरीरोंपर, मैं जो विदेशी वस्त्र देख रहा हूँ, निश्चय ही वे हमारी गुलामीके बिल्लोंके सिवा और कुछ भी नहीं हैं। मुझे तो हमेशा ऐसा ही लगा है कि भारतके स्त्री-पुरुष विदेशी वस्त्र पहने हुए सुन्दर नहीं बल्कि भद्दे नजर आते हैं। भद्देपनको तब सुन्दरता माना जाने लगता है जब लोग गुलामी-को आजादी मानने लगते हैं। जब भारतमें प्रत्येक घर चरखेकी गुनगुनाहटके साथ स्वतन्त्रताका गीत गाता था तब भारत स्वतन्त्र देश था और उसमें दूध-दहीकी नदियाँ बहती थीं। भारत-भरमें एक कोनेसे दूसरे कोनेतक जहाँ-जहाँ मैं बहनोंसे मिला हूँ, वहाँ-वहाँ उन्होंने मुझे बताया कि उनकी माताएँ चरखेको सुख-समृद्धिका चिह्न बतलाया करती थीं। चरखा शुद्धता, सरलता तथा स्वतन्त्रताका प्रतीक है। यह सारे संसारके लिए शान्तिका प्रतीक है। कल श्री दासने[2] ठीक ही कहा था कि चरखेने हमें तथा समस्त संसारको यह सिद्ध कर दिखाया है कि हम पश्चिमकी विनाशकारी प्रतियोगितामें नहीं कूदना चाहते। चरखेको घरोंमें फिरसे दाखिल करना इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका, जापान और अन्य प्रत्येक देशको यह ज्ञापित करनेके समान है कि भारत उनके शोषण-

१. प्रान्त।
२. चित्तरंजन दास।

के निमित्त गुलाम नहीं बन सकेगा। यह समुद्रके उस पार संसारके अन्य राष्ट्रोंको यह सन्देश भेजता है कि भारत अपने भोजन और वस्त्रके बारेमें पूर्ण रूपसे आत्म-निर्भर एवं स्वतन्त्र बननेके लिए कृतसंकल्प है। यह हमारे उन तीस करोड़ देशवासियोंके पास सद्भावनाका संदेश पहुँचाता है जिन्हें दिनमें एक जून ही नमकके साथ रुखा-सूखा भोजन मिल पाता है। यही वह सूत्र है जो सारे भारतको जोड़ता है और उसको एक राष्ट्रका रूप देता है। इस सूत्रको हटाते — नष्ट करते — ही स्वराज्यकी सारी इमारत ढह जायेगी। याद रखिए जिस दिन भारतने ईस्ट इंडिया कम्पनीके बलके सामने या उसके धनके सामने घुटने टेके, उसी दिन उसने अपनी स्वतन्त्रता खो दी और अपनी राष्ट्रीयताको भी लगभग गँवा दिया। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप लोग जो कोकोनाडाके साहसी नागरिक हैं, तबतक चैन न लेंगे जबतक इस बड़े नगरके प्रत्येक घरमें चरखा नहीं चलने लगता। मुझे आशा है कि बालक-बालिकाएँ, स्त्री और पुरुष दिनमें कुछ घंटे चरखा चलानेको अपनी शानके खिलाफ नहीं समझेंगे। जब लोग चरखा चलाने लगेंगे तब मैं और आप लोग यही कहेंगे कि हमने एक छोटा-सा प्राय-श्चित्त किया है। आशा है जब भी मेरा कोई मित्र या आपमें से कोई व्यक्ति मुझे इस नगरमें फिरसे आनेको कहेगा तब वह मुझे यह विश्वास दिलाना न भूलेगा कि यहाँ कोई भी ऐसी लड़की या लड़का, स्त्री या पुरुष नहीं है जो विदेशी वस्त्र पहनता हो और ऐसा तरुण तो है ही नहीं जो खद्दर न पहनता हो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि यदि सारा भारत जूनके अन्ततक इस बिलकुल मामूली परीक्षामें — इसे मैं बिलकुल ही मामूली परीक्षा कहता हूँ — खरा उतरता है तो आप देखेंगे कि पहली जुलाईतक समस्त भारतमें नये जीवनका संचार हो जायेगा।

शुद्धीकरण सप्ताह जिसे राष्ट्रीय सप्ताह कहा जाता है, सिरपर है। ६ अप्रैल १९१९ को भारतकी नींद टूटी थी। उसी वर्षकी १३ अप्रैलको भारतने एक ऐसा हत्या-काण्ड देखा जैसा आधुनिक युगमें कभी देखा या सुना नहीं गया। यह एक पुनीत सप्ताह है। यदि एक भी भारतीय इसे भूल जाये तो यह अपराध होगा, पाप होगा। मुझे आशा है कि ६ और १३ अप्रैलको पूर्ण हड़ताल होगी। हड़ताल पूरी तरह अपनी मर्जीसे होनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अपनी दूकान खोलना चाहता है तो प्रत्येक प्रकारकी क्षतिसे हमें उसकी रक्षा करनी होगी। शुद्धीकरण तभी शुद्धीकरण है जब वह स्वयंस्फूर्त हो। स्वतन्त्रता बल-प्रयोगसे नहीं बल्कि मधुरता, अनुनय तथा विनयसे प्राप्त होती है। मैं आशा करता हूँ कि जो लोग समर्थ हैं वे ये दो दिन विशेष रूपसे उपवास तथा प्रार्थनामें ही लगायेंगे। याद रखिए कि यह स्वतन्त्रताका युद्ध है। इसमें हमें बारूद नहीं, बल्कि ईश्वरकी सहायताका सहारा लेना होगा। इस सप्ताहकी अवधिमें आप अन्तर्मुख होकर अपने हृदयोंको टटोलेंगे। आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर मद्य-पानके अभिशापके विरुद्ध संघर्ष करेंगे।

शुद्धताका एक अनिवार्य लक्षण यह है कि प्रत्येक पुरुष प्रत्येक स्त्रीको अपनी बहन और माँ समझे और प्रत्येक स्त्री प्रत्येक पुरुषको अपना भाई और पिता समझे। मैं स्वयं एक ऐसे नगरमें पैदा हुआ हूँ जो कि एक बन्दरगाह है और इसलिए जानता

हूँ कि ऐसे नगरमें बसनेवालोंके सामने क्या-क्या प्रलोभन रहा करते हैं। मुझे कल ही एक मित्रने बताया कि रंगूनमें हमारे लोगोंका जीवन — और मैं जानता हूँ कि बहुतसे लोगोंको रंगून जानेकी टेव पड़ गई है — बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता। यदि हम राक्षस-राज्य नहीं, बल्कि धर्म-राज्यकी कामना करते हैं तो आप इस बातमें मुझसे सहमत होंगे कि वैयक्तिक शुद्धता उतनी ही आवश्यक है जितनी राष्ट्रीय शुद्धता। हमारा स्वराज्य विलासितामें नहीं बल्कि आत्म-संयममें है। मुझे आशा है कि आप लोग यह सप्ताह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा प्रस्तुत किये गये कार्यक्रमको शीघ्र पूरा उतारनेमें व्यतीत करेंगे। मुझे आशा है इस सप्ताहमें आप हिन्दू-मुस्लिम एकताको दृढ़ करनेके लिए और भी अधिक प्रयत्न करेंगे। और मुझे इस बातकी भी आशा है कि इस सप्ताहमें आप अपने तथा दूसरोंके दिलोंमें यह बात पक्की तौरपर अंकित कर लेंगे कि भारतकी स्वतन्त्रता अहिंसापर ही निर्भर है। आप यह बात भी हृदयंगम कर लें कि हमारे समान विचार न रखनेवाले अपने किसी भी देशवासीके विरुद्ध कहा गया एक भी रोषभरा शब्द, किसी अंग्रेजके विरुद्ध कहा गया प्रत्येक शब्द तथा ऐसे व्यक्तिके ऊपर उठाई गई लाठी जिसने हमें [निश्चय ही] हानि पहुँचाई है, हिंसा है और कांग्रेस द्वारा हमारे लिए निर्धारित अनुशासनके विरुद्ध है। जबतक हम अपने छोटेसे-छोटे देशवासी तथा अदनासे-अदना विदेशियोंके दिलोंसे, जो हमारे बीच रहते हों, हिंसाका भय दूर नहीं कर सकते तबतक हम जनतन्त्रीय शासन व्यवस्थाके पात्र कहलानेका हक नहीं रख सकते। और यदि हम एक भी मनुष्यको अछूत समझते हैं, या भारतमें किसी भी व्यक्तिके बारेमें वह कोढ़ी या परिया[1] क्यों न हो, यह कहते हैं कि उसका स्पर्श अपवित्र करनेवाला है तथा उसकी छायासे वैष्णवों तथा शैवोंकी पवित्रता नष्ट हो जाती है, तो हम असुरोंकी तरह अहिंसा व्रतका भंग करनेवाले बनते हैं। 'भगवद्गीता' का उपदेश सूर्यके प्रकाशके समान बिलकुल स्पष्ट है। वह हमें आदेश देती है कि ब्राह्मण तथा चाण्डालके साथ एक ही प्रकारके प्रेम और भाईचारेकी भावना-के साथ व्यवहार करो। यदि कोई ब्राह्मण किसी भी व्यक्तिको अपनेसे छोटा समझता है तो वह अपने ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाता है। मानवीय उदात्त भावनाने ईश्वरके लिए जिस मधुरतम नामकी उद्भावना की है वह है — दासानुदास, दासोंका भी दास। अब समय आ गया है जब कि भारतको अस्पृश्यतासे छुटकारा पा जाना चाहिए।

अब मैं दो शब्द विशेष रूपसे यहाँपर आई हुई प्रिय बहनोंसे कहूँगा। जहाँ-जहाँ भी मैं गया भारतीय महिलाओंने मेरे साथ प्रेमका व्यवहार किया। और जहाँ-जहाँ मैं गया मैंने आप बहनोंसे अपने तथा भाई मौलाना शौकत अलीके लिए आशीर्वादकी याचना की है। हमें अन्य बहनोंने जैसा आशीर्वाद दिया है मैं आपसे भी वही माँग रहा हूँ। और क्या आप जानती हैं कि हम ये आशीर्वाद किसलिए माँगते हैं? हम आजादी और भारतीय धर्मोंकी खातिर संघर्ष छेड़े हुए हैं। हम रावण-राज्यको राम-राज्यमें बदलनेका प्रयत्न कर रहे हैं। और आप जानती हैं, उस अशोक वाटिकामें सीता देवीने रावणके भेजे हुए बढ़िया-बढ़िया आभूषणों और चटपटे तथा स्वादिष्ट भोजन

१. दक्षिण भारतकी एक अछूत जाति।

अस्वीकार कर दिये थे। वे उन्हीं कंद-मूल, फलपर जीवन निर्वाह करके ही सन्तुष्ट रहीं जो अशोक वाटिकामें उन्हें उपलब्ध हो जाते थे। आप उन्हीं सीताजीकी उत्तराधिकारिणी हैं। आपसे मैं उन्हींके पदचिह्नोंपर चलनेके लिए कहता हूँ। हमारे शास्त्रोंने मुझे विश्वास दिलाया है कि एक सती स्त्रीका आशीर्वाद कभी व्यर्थ नहीं जाता। मैं चाहता हूँ कि आपमें भी वही पवित्रता निवास करे जो सीताजीमें थी। यदि आपमें सीताजीकी वह भावना भरी हुई है तो आप अपने पतियों या पिताओंसे यह कहनेमें न झिझकें कि आपको अपनी प्रसन्नताके लिए गहनोंकी जरूरत नहीं है। आप यह भी कहें कि हम यह कभी नहीं चाहतीं कि लोग न्यायालयोंमें वकालत करें या ऊँचे पदोंपर नौकरी करें। और उनसे कहें कि हमारी मजबूत बाहें तथा चपल अँगुलियाँ चरखा चलायेंगी, सूत कातेंगी। आप उनसे यह भी कहें कि हमारी मेहनतका फल उस धनमें योगदान करेगा जो कि हमारे पति, भाई व पिता कमाकर घरमें लायेंगे। आप अपने बच्चोंको रावण-राज्यके स्कूलोंमें भेजनेसे इनकार कर दें। यदि आपने अपने शरीरोंको विदेशी वस्त्र पहनकर कलुषित नहीं किया है तो पवित्र हृदयसे आप हमें आशीर्वाद दें। मुझे पूरा विश्वास है कि हम इस वर्षके भीतर धमराज्य प्राप्त करा सकेंगे। मैं चाहता हूँ कि आप जो कुछ गहने या धन मुझे देना चाहें सो संकोचवश नहीं, हृदयकी सम्पूर्णताके साथ दें। यह धन गरीब घरोंको चरखा मुहय्या करने तथा गरीब बालकोंको पढ़ानेमें खर्च किया जायेगा। मैं और आप तबतक अपनेको गहनों या सुन्दर वस्त्रोंसे न सँवारें जबतक कि एक भी पुरुष या स्त्री ऐसी है जिसके लिए अभी वस्त्र और भोजन मुहय्या करना शेष है। धैर्यपूर्वक भाषण सुननेके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

अब आप समझ गये होंगे कि पिछली परम्परासे विपरीत आज हमारे सब भाषण और प्रस्ताव हमारे प्रति ही सम्बोधित हैं। आजके हमारे भाषणों और प्रस्तावोंका तकाजा है कि हम अब सरकारसे आशा करनेके बजाय स्वयं कुछ करें। मेरा आपसे निवेदन है कि आप मेरे सामने कमसे-कम एक बार यह साबित कर दिखाएँ कि आप सब लोग स्वराज्य प्राप्त करनेपर तुले हुए हैं। मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप लोग उन स्वयंसेवकोंको जो अभी आपके पास आनेवाले हैं कुछ-न-कुछ अवश्य दें। ये सारी चीजें यदि पूरे मनसे तथा स्वराज्य प्राप्त करनेके दृढ़ निश्चयके साथ दी जायें तो स्वराज्य प्राप्त करनेमें सहायक होंगी। मैं संकोचवश या मजबूर होकर दी गई कोई वस्तु नहीं चाहता। जिस प्रकार मैं करोड़ों पाकर सन्तुष्ट होता हूँ वैसे ही एक पाईसे भी। इस वर्ष आपसे अनुशासनमें रहनेकी अपेक्षा की जाती है। ईश्वर आपको अनुशासनमें रहनेका साहस और सामर्थ्य दे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ६–४–१९२१

२६०. पारसियोंके बारेमें कुछ-और

कोलम्बोसे एक पारसी भाई बरजोरजी रतनशा भूरीनें पारसियोंपर किये जानेवाले आक्षेपोंके बारेमें लिखा है। उसमें से मैं कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ। उनकी पारसी गुजरातीको बदलकर मैंने गुजरातियोंकी गुजराती बना दिया है और वाक्योंको संक्षिप्त भी किया है।

> **आप अपनी सचाई और सादेपनके लिए विख्यात हैं। आपने जो आशाएँ बाँधी हैं उनपर आप दृढ़ रहें। आपका असहयोग हिंसासे बिलकुल अलग चीज है। यदि वस्तुतः ऐसा हो तो मैं असहयोगका समर्थन करनेको तैयार हूँ। लेकिन क्या सब व्यक्ति आप जैसे ही विचार रखनेवाले हैं? अभीसे मारकाट शुरू हो गई है। इससे मुझे दुःख पहुँचा है और मैं अपनेको आपसे सहमत नहीं पाता।**

इस टीकासे हमें कुछ सबक लेना चाहिए। हम जैसे-जैसे शान्तिका पाठ पढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे हमें सफलता मिलती जाती है और लड़ाईकी कीमत बढ़ती जाती है। भाई बरजोरजी दूर होनेके कारण मारकाटका जो विवरण पढ़ते हैं उसीसे यह मान लेते हैं कि मारकाट शुरू हो गई है। लेकिन अभीतक तो यह कहा जा सकता है कि भारतमें जैसी शान्ति इस समय है वैसी पहले कभी न थी। लेकिन हमें तो सारे भारतपर शान्तिका राज्य कायम करना है। शान्तिकी रक्षा हमारा आधारस्तम्भ है। अगर वह कमजोर हुआ तो हमारी लड़ाई कमजोर होगी और वह दृढ़ हुआ तो हमारी लड़ाई दृढ़ होगी।

भाई बरजोरजी आगे लिखते हैं:

> **हमारे बाप-दादा ईरानसे आये। हमारे पवित्र और प्रिय धर्मकी खातिर वे हिन्दुस्तानमें आकर बस गये। इसी हिन्दुस्तानसे हम दुनियामें मशहूर हुए हैं। बदलेमें हमने, हमसे जहाँतक बन पड़ा है वहाँतक, अपनी बन्धु-कौमों हिन्दू और मुसलमानोंकी सेवा की है। पारसियोंने जितना दान दिया उतना किसी अन्य कौमने नहीं दिया है। पारसी [भारतकी जनराशिमें] गेहूँके एक दानेके समान हैं . . . पारसी स्वराज्यके विरुद्ध नहीं हैं। लेकिन आप तो सात महीनेमें स्वराज्य प्राप्त करनेका इरादा रखते हैं। यह कदापि सम्भव नहीं होगा। . . . यदि देशमें परस्पर एकता न हुई तो स्वराज्य प्राप्त करना ही मुश्किल हो जायेगा।**

पारसी-उदारतासे दुनियामें कोई अनभिज्ञ नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पारसियोंने जितना दान दिया है उतना संसारकी किसी भी कौमने नहीं दिया। और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि पारसी संख्यामें बहुत कम होनेके बावजूद अगर चाहें तो हिन्दुस्तानमें स्वराज्यके लिए भारी मदद कर सकते हैं। कई पारसी सज्जन मदद कर रहे हैं, यह बात मैं पहले ही लिख गया हूँ; और जैसे-जैसे इस लड़ाईकी पवित्रता

सिद्ध होती जायेगी वैसे-वैसे निस्सन्देह अधिक पारसी इसमें शामिल हो जायेंगे। मैं मानता हूँ कि पारसियों और अन्य सब भाइयोंको लड़ाईमें जल्दसे-जल्द शामिल करनेका सबसे अच्छा रास्ता यही है कि हम उनकी आलोचना न करें, उनके सम्बन्धमें कटु वचन न बोलें। जहाँ भूल जान पड़े वहाँ विनयपूर्वक उनकी भूलको बताना हमारा फर्ज है; लेकिन किसीको गाली देना अथवा अपशब्द कहना पाप है।

भाई बरजोरजी सात महीनेमें स्वराज्य प्राप्त करना मुश्किल समझते हैं और उनके जैसे अन्य अनेक भारतीय भी इसे मुश्किल मानते हैं। इसीलिए हमें यह सात महीनेकी अवधि रखनी पड़ती है। [अन्यथा] यदि सबमें आत्मविश्वास आ जाये, हिम्मत आ जाये और सब अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें जुट जायें तो हम आज ही स्वराज्य प्राप्त कर लें। मैं इस वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्त करनेकी बात कर रहा हूँ क्योंकि मेरी मान्यता है कि हजारों भारतीय, जिन्होंने असहयोग करनेकी प्रतिज्ञा ली है, अपनी प्रतिज्ञाका दृढ़तापूर्वक पालन करेंगे। हमारा अपना अविश्वास हमारे रास्तेकी सबसे बड़ी बाधा है।

पारसी भाइयोंने हिन्दुस्तानकी सेवा की है। पारसी बुद्धिमान हैं। उन्होंने हिन्दुस्तानको अपना देश बना लिया है। उनका सर्वस्व हिन्दुस्तानमें है। उनकी मातृभाषा गुजराती है। लेकिन उन्होंने उसके साथ न्याय नहीं किया है, ऐसा कहे बिना नहीं रहा जाता। भाई बरजोरजीके पत्रको, यदि मैं उनकी ही गुजरातीमें यहाँ उद्धृत करता तो बहुत सारे गुजराती उसे कदाचित् पूरा-पूरा समझ भी नहीं पाते। ऐसे अनेक पारसी समाचार-पत्र हैं जो गुजराती भाषाका वध करते हैं, यह बात पारसी समाचार-पत्र पढ़नेवाला प्रत्येक पाठक जानता है। यदि वे सामान्य गुजराती लिखनेका निश्चय करें तो ऐसी कोई बात नहीं कि वे न लिख सकें। मलबारी[1] शुद्ध गुजराती लिख सकते थे। 'खबरदार'ने गुजरातीको अपने काव्यसे सुशोभित किया है। लेकिन इतनेसे ही सन्तोष कैसे माना जा सकता है? क्या वे इस बातको स्पृहणीय नहीं मानेंगे कि पारसी गुजराती भाषापर ममत्व रखें और उसे अपनी मातृभाषा समझकर उसकी सेवा करें?

कोई पारसी लेखक कहेगा कि पारसी सामान्य रूपसे जो गुजराती लिखते हैं उसे ही शुद्ध गुजराती क्यों नहीं माना जा सकता? ऐसी शंकाका समाधान करना तो आसान है। जो गुजराती, गुजरातके लाखों पढ़े-लिखे लोग बोलते हैं और लिखते हैं वही शुद्ध गुजराती है। गुजराती संस्कृतकी पुत्री है, इसलिए उसका आधार संस्कृत ही होना चाहिए, इसमें तो कोई शंका नहीं उठा सकता। पारसी लेखक और शिक्षक यदि चाहें तो गुजरातीकी सेवा कर सकते हैं। जैसे-जैसे हममें जनताके प्रति प्रेम बढ़ता जाता है वैसे-वैसे हममें अपनी भाषाके प्रति भी प्रेमभाव बढ़ना चाहिए। जब भाषाके प्रति हमारा प्रेम बढ़ेगा, और हमारा सारा प्रान्तीय कार्य गुजरातीमें चलने लगेगा तब हम कैसी गुजरातीका प्रयोग करेंगे? हम अपने कानूनोंकी रचना किस गुजरातीमें करेंगे? हम अपनी विधान-परिषदोंमें किस गुजरातीमें भाषण देंगे? हम अपनी पाठ्य-पुस्तकें किस गुजराती-में लिखेंगे? गुजरातीके प्रति हमारा मनमाना व्यवहार हमारे देश-प्रेम और भाषा-प्रेमकी

१. बहरामजी मेरवानजी मलबारी (१८५४–१९१२); कवि, पत्रकार और समाज-सुधारक।

न्यूनताका परिचायक है। देश-प्रेम हो और भाषा-प्रेमकी चिन्ता न हो, यह असम्भव है। हिन्दू, मुसलमान और पारसी तीनों कौमें गुजराती बोलती हैं। इन तीनों समाजोंके लोग व्यापारी होनेके कारण सारे हिन्दुस्तानमें और देश-देशान्तरमें घूमते हैं। वे सब गुजराती हैं, इस बातका परिचय उनकी भाषासे ही मिलता है। गुजरातीकी सेवा करना तीनों कौमोंका फर्ज है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३–४–१९२१

२६१. टिप्पणी

खादीकी महिमा

खादीके प्रचारका इतना ज्यादा असर हुआ है कि बुलन्दशहरमें एक भिश्ती युवकके मर जानेपर उसके कफनके लिए उसके सगे-सम्बन्धियोंने खादीका कपड़ा खरीदा और जातिके पंचोंने निश्चय किया कि कफनके लिए आगेसे खादीका ही इस्तेमाल किया जायेगा। खादीके सम्बन्धमें यदि लोगोंमें ऐसी पवित्र भावना फैल जाये तो हिन्दुस्तानको स्वराज्य मिलनेमें कितनी देर लग सकती है? जो समय जाया हो रहा है वह हमारी दुर्बलता अथवा हमारी अश्रद्धाके कारण ही हो रहा है। दुर्बलता अथवा अश्रद्धाके कारण हम अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं करते।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३–४–१९२१

२६२. भाषण : राजमहेन्द्रीमें

३ अप्रैल, १९२१

मैं तो जानता ही हूँ और आप लोगोंको भी जानना चाहिए कि बातोंका जमाना बीच चुका है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी माँग[1] है कि भारत ३० जूनसे पहले राष्ट्रको एक करोड़ रुपया दे। वह आपसे यह भी कहती है कि आप एक करोड़ स्त्री-पुरुषोंके नाम कांग्रेसकी पंजिकामें दर्ज कराएँ और भारतीय घरोंमें ठीक काम देनेवाले २० लाख चरखोंका प्रवेश करायें। आशा है आप अपने उत्तरदायित्वको पूरी तरह निभायेंगे। यदि हम ऐसा कर सके तो समझिये कि हम स्वराज्यको बहुत नजदीक खींच लाये हैं। किन्तु जबतक हिन्दू और मुसलमान इसमें हाथ नहीं बँटाते तबतक यह काम सम्भव नहीं है। हिन्दू-मुस्लिम एकता राष्ट्रके विकासके लिए उतनी ही आवश्यक है

१. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने बेजवाडामें १ अप्रैल, १९२१ को जो प्रस्ताव पास किये थे उनमें इस प्रकारकी माँग थी।

जितनी कि जीवनके लिए साँस। मैं और मौलाना शौकत अली भारतके सामने यह रखते आये हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकतासे हमारा क्या अभिप्राय है। हम दोनों ही अपने-अपने धर्ममें अविचल श्रद्धा रखनेवाले व्यक्ति हैं, वे अपने इस्लाम धर्ममें और मैं सनातन हिन्दू-धर्ममें। जिस प्रकार हिन्दू मुस्लिम ऐक्य राष्ट्रको आजाद करने, स्वराज्य प्राप्त करने, खिलाफत और पंजाबके प्रति किये गये अन्यायोंको दूर करानेके लिए आवश्यक है, उसी प्रकार अहिंसा और परस्पर प्रेम बनाये रखनेके लिए भी आवश्यक है। अहिंसाका अर्थ है क्रोध और आवेशपर नियन्त्रण रखना, तथा मस्तिष्क एवं हृदयको ईर्ष्याकी अधम भावनाओंसे मुक्त रखना; इसलिए मैंने इस आन्दोलनको आत्मशुद्धि एवं आत्मसंयमका आन्दोलन कहा है।

इसलिए देशमें पियक्कड़ोंके विरुद्ध जो निष्कलुष आन्दोलन स्वयंस्फूर्त रूपसे चल रहा है उसने मुझे अभूतपूर्व आनन्दसे भर दिया है।

महिलाओंको सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा :

प्रिय बहनो, मैं आपको सचेत करते हुए यह निवेदन करना चाहता हूँ कि आप अपने कर्त्तव्य और धर्मको पहचानें। यदि आपके बीचमें कोई नर्तकी हो तो उससे लज्जास्पद जीवन बिताना छोड़ देनेको कहें।[1] वह चरखा अपनाए और चरखा चलाकर जो चन्द पैसे उसे मिलें वह उन्हींको स्वीकार करे। चरखा उसके घरमें धन और ईश्वर दोनोंको लायेगा। क्या आप समझती हैं कि यदि राम और सीताको यह मालूम हो जाता कि पेट-भरनेके लिए उनके राज्यमें एक भी स्त्रीको पुरुषोंकी विषयवासना तृप्त करनी और अपनी इज्जत बेचनी पड़ती है तो क्या वे क्षण-भरको भी चैनसे बैठते? मैं आप लोगोंसे कहता हूँ कि और किसी कामके लिए नहीं तो केवल इन नर्तकियोंकी रक्षाके लिए ही आप अपने सभी महीन वस्त्र और गहने त्याग दें।

यदि आप भारतकी खातिर चरखा नहीं अपनातीं तो इन्हींके लिए अपनाएँ। भारतकी शुद्धताके निमित्त आप चरखा चलायें। आप उसी साड़ीको पहनें जो आपको चरखेसे उपलब्ध हो सकती है। चरखेके सूतसे तैयार की गई पवित्र भारतीय साड़ी भारतके स्त्री-पुरुषोंमें नैतिक गुणोंकी रक्षा करनेवाली बने। मेरा निवेदन है कि आप लोग महीन विदेशी साड़ियाँ पहनना पाप समझें।

अपना भाषण जारी रखते हुए उन्होंने कहा :

इसके साथ ही आप अपने समाजमें पैठे हुए अस्पृश्यताके अभिशापको भी दूर करें। मेरी आवाज आन्ध्र देशके नेताओंतक पहुँचाएँ। एक स्वतन्त्र राष्ट्रको अधःपतनकी ओर न ले जायें। मैं विश्वास करता हूँ कि आप निष्ठावान स्त्री-पुरुष हैं। मेरा विश्वास है कि आपमें भारतके लिए सभी प्रकारकी कुर्बानी करनेका सामर्थ्य है। और आप सभी सेवा करनेकी आकांक्षा रखते हैं। मैं आपमें से प्रत्येकसे कहता हूँ कि आप अपने हृदयको टटोलें और इस आन्दोलनके महत्वको पूरी तरह समझें और उसके मर्मको पहचानें; फिर भी आत्मश्लाघामें न पड़ें। इस संघर्षको सफल बनानेके लिए ओजस्वी व्याख्यानोंकी

१. इसके एक दिन पहले शामको नर्तकियोंका एक दल कोकोनाडामें गांधीजीसे मिला था। उन्होंने बताया कि नर्तकियाँ कैसा शर्मनाक जीवन बिताती हैं।

आवश्यकता नहीं है। स्वराज्य प्राप्त करने तथा खिलाफत और पंजाबपर किये गये अत्याचारोंका प्रतिकार करनेके लिए जिन चीजोंकी आवश्यकता है, वे हैं — नितान्त वैयक्तिक शुचिता, विनम्रता, सदाशयता तथा अध्यवसाय। ईश्वर आपको आवश्यक बुद्धि, साहस, विवेक और सेवाकी भावना प्रदान करे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ८–४–१९२१

२६३. भाषण : एलौरमें

आन्ध्र देशके अपने कुछ भाषणोंको मैं 'यंग इंडिया' में प्रकाशित करना चाहता था। किन्तु ऐसा सम्भव न हुआ। मैं राजमहेन्द्रीमें दिये गये अपने भाषणको प्रकाशित करनेके लिए भी बहुत उत्सुक था। किन्तु मेरे पास उस भाषणके कोई नोट नहीं थे। मैं एक साथी कार्यकर्त्ताके प्रयासके फलस्वरूप एलौरमें दिये गये अपने भाषणको प्रकाशित कर पा रहा हूँ। इस विवरणमें कुछ हदतक राजमहेन्द्रीमें दिये गये मेरे भाषणका मुख्य विषय आ जाता है। कुल मिलाकर विवरण अनुपयुक्त नहीं है, इसलिए मैं इसे 'यंग इंडिया' के पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत करता हूँ।[1]

३ अप्रैल, १९२१

खड़े होकर भाषण न देनेके लिए आप मुझे क्षमा करें। आप जानते ही हैं कि मैं शरीरसे बहुत कमजोर हूँ।

आप मुझे इस बातके लिए भी क्षमा करें कि आज मौलाना शौकत अली मेरे साथ नहीं हैं।

हम दोनोंने सगे भाइयोंकी भाँति लगभग एक सालतक भारतके कोने-कोनेका दौरा साथ-साथ किया और ऐसा करके हिन्दू-मुस्लिम एकताका पदार्थपाठ पढ़ाया। मौलाना शौकत अलीका दावा है कि वे अत्यन्त कट्टर मुसलमान हैं, और वे हैं भी; और मैं कट्टर सनातनी हिन्दू होनेका दम भरता हूँ। किन्तु हमें साथ रहने और साथ सेवा करनेमें कोई कठिनाई महसूस नहीं होती है।

किन्तु आप और मैं तो इसी वर्ष भारतमें स्वराज्य या धर्मराज्य स्थापित करनेकी जल्दीमें हैं; इसलिए आपको अब हम दोनोंसे साथ-साथ यात्रा करते रहनेकी आशा नहीं करनी चाहिए।

लोकमान्य तिलकके चित्रका अनावरण करके मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। स्वराज्य उनके जीवनकी साँस थी। वे स्वराज्यके लिए जिये और स्वराज्यका मन्त्र जपते-जपते ही उन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की। इसलिए आपका उस महान देशभक्तके चित्रको एक निधि समझना सर्वथा उचित है। मुझे इस चित्रका अनावरण करनेके लिए

१. गांधीजीके हस्ताक्षरोंके साथ यह भूमिका ११–५–१९२१ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित भाषणकी रिपोर्टके प्रारम्भमें दी गई है।

बुलाया गया है। मैं इसे अपना गौरव एवं सौभाग्य समझता हूँ। मैं स्थानीय कलाकार-को उसकी इस कृतिके लिए बधाई देता हूँ। किन्तु महान व्यक्तियोंके चित्रोंके अनावरण तथा देवताओं और महापुरुषोंका गुणगान करनेके सौभाग्यके साथ हमारे कुछ कर्त्तव्य भी आ जुड़ते हैं। आपने इस पवित्र रस्मको पूरा करनेके लिए जो मुझे बुलाया है अत: मैंने यह मान लिया है कि आपने अपना कर्त्तव्य भी समझ लिया है। मेरी समझमें तो तिलक महाराजके चित्रके इस अनावरणसे यह प्रकट होता है कि आप पंजाब तथा खिलाफतके प्रति किये गये अत्याचारोंके प्रतिकार और स्वराज्यकी स्थापनाके लिए कृत-संकल्प हैं। हम अपना सब-कुछ निछावर करके स्वराज्य प्राप्त कर लेनेपर ही उस महान् देशभक्तकी कीर्तिके अनुरूप उत्तराधिकारी होनेका अधिकार पा सकते हैं। मुझे एलौरकी महिलाओंके एक क्लबके उद्‌घाटनके लिए भी निमन्त्रित किया गया है। मैं इसे भी शुभ शकुन समझता हूँ। बहादुर बहनोंको खद्दर पहने घर-घर जाकर राष्ट्रीय कोषके लिए धन एकत्र करते हुए देखकर मुझे बड़ी खुशी होती है।

उसी प्रकार यह भी शुभ शकुन है कि आपने मुझे राष्ट्रीय महाविद्यालय (नेशनल कालेज) के उद्‌घाटनके लिए भी बुलाया है। आप लोगोंने इस महाविद्यालयके लिए ६७,००० रु० की अच्छी खासी रकम जमा कर ली है। मुझे राष्ट्रीय महाविद्यालयका उद्‌घाटन करते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है। ईश्वर इस संस्थाको दीर्घजीवी करे तथा उसके सभी प्राध्यापकों और अन्य कार्यकर्त्ताओंके प्रयत्नोंसे प्राप्त हो सकनेवाला लाभ उसे मिले। मेरे विचारमें अध्यापकका पेशा संसारके उत्कृष्टतम पेशोंमें से है। स्कूलके अध्यापक भावी पीढ़ियोंके न्यासी हैं। मुझे आशा है कि इस महान् संस्थाके अध्यापकगण यह बात याद रखेंगे कि केवल वही शिक्षा सच्ची है जो बालक-बालिकाओंको आत्माभिव्यक्तिके लिए समर्थ बनाती है। मैं अत्यन्त विनम्रताके साथ स्कूलके अध्यापकोंसे कहना चाहता हूँ कि बालक और बालिकाओंको इस वर्ष जो कला सिखाई जानी चाहिए वह केवल चरखा चलानेकी ललित-कला ही है; कपास धुनने तथा वस्त्र बुननेकी कलाएँ भी इसमें शामिल हैं।

रुईके इस कमजोर धागेपर ही इस्लाम और भारतकी आबरू टिकी हुई है और उसीसे पंजाबमें किये गये दारुण अत्याचारोंका प्रतिकार किया जा सकता है। वर्षोंकी खोज और प्रयोग (और अब उस प्रयोगके साथ अनुभव भी जुड़ गया है) के बाद मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि भारतीय जनताकी दारुण निर्धनता प्रत्येक घरमें चरखेका प्रवेश होनेपर ही दूर होगी। जबतक हम आधापेट खाकर जिन्दगी बसर करनेवाले अपने लाखों देशवासियोंकी दुरवस्थाको मौन होकर देखते रहेंगे तबतक हम अपनेको भारतकी सन्तान कहलानेका हक नहीं रखते। जबसे चरखा गया तभीसे हमारी अवनति शुरू हुई और तभीसे भारतमें इस दारुण निर्धनताका प्रारम्भ हुआ। भारतको स्वराज्य दिलानेकी खातिर हम स्त्री-पुरुषों, बालक-बालिकाओंका अपने पूरे अवकाशका उपयोग चरखा चलानेमें करना एक छोटेसे प्रायश्चित्तके सिवाय और कुछ नहीं है। विदेशी कपड़ेका एक टुकड़ा पहनना भी मैं पाप मानता हूँ और आपसे भी कहता हूँ कि आपमें से प्रत्येक इसे पाप ही समझे। बम्बई और अहमदाबादसे आनेवाले कपड़ेको भी मैं विदेशी कपड़ा ही मानता हूँ। हमारी कातनेवाली मिलें हमारे घरोंमें और हमारी बुननेवाली मिलें

हमारे गाँवोंमें होनी चाहिए। जिस प्रकार आप लोगोंकी निगाहमें बम्बईमें पकाई गई रोटी खाना पाप है उसी प्रकार बम्बईकी मिलों द्वारा बनाया गया कपड़ा पहनना भी आपके लिए पाप होना चाहिए। बम्बई और अहमदाबादको उन अत्यन्त गरीब लोगोंके लिए कपड़ा बनाने दें जिनके लिए स्वदेशीका व्रत लेना सम्भव नहीं है। आप लोगोंमें जो अधिक समझदार हैं उनको चाहिए कि वे अपने लिए सूत न कातना तथा उसका कपड़ा बुनवाना अपराध ही मानें। मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि और प्रान्तोंकी अपेक्षा इस प्रान्तमें बहुत बढ़िया सूत कातकर उसे अपने बुनकरोंकी खड्डियोंपर बुनवाकर अच्छे किस्मका कपड़ा तैयार कराया जा सकता है। मैं यह भी आशा करता हूँ कि राष्ट्रीय महाविद्यालयके शिक्षक तथा न्यासीगण यह याद रखेंगे कि तमिल और तेलुगू लोगोंने हिन्दुस्तानी न सीखकर अपनेको भारतसे विच्छिन्न कर लिया है। श्रोताओंके इस विशाल जनसमूहके सामने, जो अंग्रेजीका एक भी शब्द नहीं समझता, मुझे मजबूरन अंग्रेजीमें बोलना पड़ रहा है, और इस बातसे मेरा सिर नीचा हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग भी इस बातको शर्मनाक समझें कि आपमें से एक भी व्यक्ति मेरी सरल और टूटी-फूटी हिन्दुस्तानीका अपनी भाषामें अनुवाद नहीं कर सकता।

किन्तु मैं अब दूसरे विषयोंकी ओर आता हूँ। मैंने राजमहेन्द्रीमें एक महत्वपूर्ण विषयपर अपने विचार पूरी तरह प्रकट किये थे और आशा करता हूँ कि कोई तेलुगू मित्र उस भाषणको भाषान्तरित करके प्रकाशित करायेगा तथा वह हमारे सैकड़ों देशवासियोंके बीच वितरित होगा। कल रातको १० बजे कोकोनाडामें कुछ गणिकाएँ मुझसे मिलने आईं। उनका जीवन कैसा है इस बातका पूरा पता मुझे उसी समय लगा; और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं धरतीमें समाया जा रहा हूँ। आपसे मेरा निवेदन है कि आप उस कलंक या पापको अपने बीचसे निकाल बाहर करें। यह उचित नहीं कि हमारी वासनापूर्तिके लिए एक भी बहनको लज्जापूर्ण तथा पतित जीवन बिताना पड़े। शुद्धीकरणके इस आन्दोलनमें हमारा यह पावन कर्त्तव्य है कि हम इन बालाओंको अपनी बहनें और बेटियाँ समझें। जिनके हृदयोंमें इस उद्धत सरकार द्वारा हमारे प्रति की गई हिंसासे टीस होती हो वे भारतकी एक भी बालिकाके जीवनको बरबाद करके उस हिंसाको और अधिक न बढ़ायें। मैं आप भाइयों और बहनोंसे कहता हूँ कि आप मुझे यथासम्भव शीघ्र ही यह खबर दें कि देशके इस भागमें अब एक भी गणिका नहीं है। जो बहनें पीछे बैठी हैं मैं उन्हें यह कार्य सौंपता हूँ कि वे घूम-घूमकर हर गणिकाका पता लगाएँ और इस पापमें रत पुरुषोंको शर्मिन्दा करके उन्हें इस मार्गसे निवृत्त करें।

हम इसे शुद्धीकरणका आन्दोलन कहते हैं; हम इसे धार्मिक आन्दोलन भी कहते हैं। हम इस सरकारको आसुरी सरकार कहनेका साहस करते हैं, हम इसकी तुलना रावण-राज्यसे करते हैं। हम अपने भावी राज्यके बारेमें धार्मिक दृष्टिसे सोचते हैं और इसीलिए आनेवाले स्वराज्यको हम उत्साहके साथ धर्म-राज्यके नामसे पुकारते हैं। हम अपनेको तथा अपने देवताओंको धोखा न दें और इस प्रकार ईश्वरके शापके पात्र न बनें; हम किसी भी व्यक्तिको अस्पृश्य न मानें। अपने ही एक वर्गको हम कोढ़ी समझते हैं

और साम्राज्यमें स्वयं हमारा दर्जा कोढ़ियोंका बन गया है। मैं अनुभवके आधारपर कह रहा हूँ और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हिन्दू धर्ममें किसी भी मनुष्यके साथ उसे अस्पृश्य मानकर व्यवहार करनेकी अनुमति नहीं है। अपने धर्मको जानने और तदनुसार आचरण करनेवालेकी दृष्टिमें शूद्र उतना ही पवित्र है जितना एक ब्राह्मण। 'भगवद्गीता' में कहींपर यह नहीं कहा गया कि चाण्डाल किसी प्रकार भी ब्राह्मण-से कम है। जिस क्षण किसी ब्राह्मणको दर्प हो जाता है और जब वह अपनेको श्रेष्ठ समझने लगता है उसी क्षण वह अपने ब्राह्मणत्वको खो देता है। भारत उन ब्राह्मणोंका अत्यधिक ऋणी है जिन्होंने सबकी भलाईके लिए स्वेच्छया अपनेको बलिदान कर दिया। वे ब्राह्मण ही थे जिन्होंने ईश्वरको दासानुदास और पतितपावनके नामसे विभूषित किया है। वे ब्राह्मण ही थे जिन्होंने यह सिखाया है कि यदि वेश्या और चाण्डालतक अपने हृदयको शुद्ध कर लें तो वे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

किन्तु मानव-जातिकी बदनसीबीसे अन्य मानवोंकी तरह ब्राह्मणमें भी वे दुर्बलतायें आ गई हैं जो सबमें हुआ करती हैं। अन्य लोगोंकी तरह उसने भी अपने कर्त्तव्यकी —अर्थात् मानव-जातिको ज्ञान प्रदान करने तथा उन्हें ठीक तथा प्रशस्त मार्गकी ओर ले जानेकी—अवहेलना की। हम अंग्रेजोंपर प्रगल्भ होनेके साथ उद्धत और मगरूर होनेका आरोप लगाते हैं। उनपर कीचड़ उछालनेसे पहले हमें अपनेको ऐसा बना लेना चाहिए कि हमपर कोई अँगुली न उठा सके। हमें पहले अपने ही घरको व्यवस्थित करना चाहिए।

मैं वर्णाश्रम धर्ममें विश्वास करता हूँ। किन्तु आज उसके नामपर जो कुछ हमारे सामने हैं वह उसकी विडम्बना-मात्र है। वर्णाश्रमधर्म समानताकी ओर ले जाने-वाला प्रशस्त मार्ग है। यह आत्म-सुखका नहीं, आत्मत्यागका धर्म है। यह दर्पका नहीं, विनम्रताका धर्म है। इसलिए जहाँ हमारी कुछ कमजोरियाँ ऐसी हैं जो मेरे रोंगटे खड़े कर देती हैं और मुझे निराश बनाती हैं वहाँ मैं निराशाके अन्धकारमें आशारूपी प्रकाशकी अनेक किरणें भी देखता हूँ।

आत्मामें हलचल मचा देनेवाली जिन अनुभूतियोंसे भारत गुजरा है उनमें इस आन्दोलनका आध्यात्मिक स्वरूप ही सर्वाधिक अन्तःप्रेरक है। आप लोगोंसे मेरा निवेदन है कि आप जुआ खेलना छोड़ दें, मादक द्रव्योंका उपयोग करना, तथा इसी प्रकारके अन्य व्यसनोंको छोड़ दें। मुझपर विश्वास रखें कि जब हम ऐसा कर लेंगे तब पृथ्वीकी कोई भी शक्ति हमारे मार्गको अवरुद्ध नहीं कर सकेगी।

आपका ध्यान हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा अहिंसाकी ओर तो मैं खींचता ही रहता हूँ। मुझे आशा है कि ये बातें अब हम सबके निकट एक अटल सिद्धान्तके रूपमें मानी जाने लगी हैं।

हिन्दूका किसी मुसलमानसे लड़ना और मुसलमानका किसी हिन्दूसे लड़ना स्वराज्यकी आशापर पानी फेरना है। हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच एकता स्थापित करनेका अर्थ है खिलाफत और पंजाबपर किये गये अत्याचारोंका प्रतिकार कराना।

हमारे लिए तलवार उठानेका अर्थ है उसके द्वारा अपना ही सर्वनाश कर लेना। विरोधियों या अंग्रेजोंके खिलाफ हमारी जबानसे एक भी क्रोध-भरा शब्द न निकलने

पाये। अंग्रेजों या अपने देशबन्धुओंकी, जिनका मत हमारे मतसे नहीं मिलता, आलोचना करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि सबसे अच्छी और सबसे सच्ची-खरी आलोचना तो अपने विश्वासके अनुसार जीवन-यापन करना है।

हमें अपना ध्यान तीन बातोंपर केन्द्रीभूत करना चाहिए जिन्हें कांग्रेस-समितिने हमारे सामने रखा है। आपने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको राजधानीमें[1] निमन्त्रित किया है। आपने उसके सदस्योंके प्रति अपना अगाध प्रेम प्रदर्शित किया है। आपने स्वेच्छया ऐसा समारोह आयोजित किया है मानो कोई धार्मिक त्यौहार मनाया जा रहा हो या कांग्रेसका कोई अधिवेशन हो रहा हो। श्री सी० आर० दासके शब्दोंमें जन, धन और संघर्ष चलानेके शस्त्रोंकी माँग बेजवाड़ेसे ही प्रारम्भ की गई थी। और मैं आशा करता हूँ आप इस जुएको अपने कंधोंपर उठायेंगे और निरन्तर योग देते रहेंगे ताकि हरएक भाई-बहनका नाम कांग्रेसकी पंजिकामें चढ़ जाये।

मुझे आशा है कि तीस जूनके आनेके बहुत पहले ही आप अपना भाग एकत्र कर लेंगे और उक्त तारीखके बहुत पहले ही इस आन्ध्र देशके प्रत्येक घरमें चरखा चलाया जाने लगेगा।

मुझे आशा है कि तीन मासकी अवधिमें अपनेको इस देशकी सन्तान कहनेका दम भरनेवाला एक भी व्यक्ति ऐसा न रहेगा जिसके तनपर विदेशी वस्त्र होगा। आपके उत्साह और श्रद्धाने मुझे दक्षिण आफ्रिकातक में अपने प्रति आकर्षित कर लिया था। मेरे सबसे अच्छे बन्दी-साथी तमिल और तेलुगू देशभाई थे। मैदानमें उतरनेवाले लोगोंमें वे सबसे पहले थे और वे लगातार डटे रहे। किन्तु जिस शक्ति, श्रद्धा, विश्वास, सादगी तथा परिश्रमशीलताका परिचय आप दे रहे हैं उससे मुझे आश्चर्य होता है। आपकी स्वाभाविक स्वतन्त्रताने और आपके स्वाभाविक आत्मसंयमने मुझे विमोहित कर लिया है। आपमें इन सभी उत्कृष्ट गुणोंके रहते हुए यदि हम इस वर्षकी अवधिमें स्वराज्य नहीं प्राप्त करते तो यह हमारे दुर्भाग्यके सिवा और कुछ नहीं होगा। निवेदन यही है कि आप अपने प्रत्येक कृत्यके सम्बन्धमें सजग रहें और उसकी जाँच स्वयं करें। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि आपमें मैंने जो-कुछ देखा-पाया है उससे मुझे विश्वास हो गया है कि राम-राज्य स्थापित करनेकी सामर्थ्य आपमें है। आपके चेहरे बताते हैं कि आप निष्कपट और उदार हैं। और मेरा यह कहना कि आन्ध्र देशकी बहनोंने भी वही उदात्तभावना प्रदर्शित की है जो मैंने महाराष्ट्रमें देखी है, उनके प्रति मेरा सर्वोच्च सम्मान प्रदर्शन है।

आप लोगोंने जिस प्रकारसे शुरुआत की है उसी प्रकार आप आगे भी बढ़ें। जब कांग्रेसके मन्त्री अपना लेखा-जोखा उपस्थित करेंगे तब निःसन्देह उसमें आपका नाम सबसे ऊपर होगा। यदि एलौरमें कोई ऐसे वकील हैं जिन्होंने अभीतक अपनी वकालत नहीं छोड़ी है तो मैं उनसे कहता हूँ कि वे अपने भाग्यको भारतकी जनताके साथ जोड़ दें और मातृभूमिकी सेवा करनेका सुअवसर प्राप्त करें।

१. बेजवाड़ामें।

ईश्वर आपको बल दे, आपको कष्ट-सहन करनेका साहस दे और आपको इस योग्य बनाये कि आप मातृभूमिके लिए हर प्रकारका बलिदान कर सकें।

अभी स्वयंसेवक आपके पास आयेंगे। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस समय तिलक स्वराज्य निधिके लिए जो-कुछ दे सकते हैं, दें। यदि एलौरके लोग सब प्रकारके ऐशोआराम तथा आभूषणोंका परित्याग कर दें तो आप देखेंगे कि आप धर्म-राज्यको इतने थोड़े समयमें स्थापित कर लेंगे जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

सभाकी व्यवस्था सावधानीके साथ की गई, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद और बधाई देता हूँ। इस सुन्दर व्यवस्थाके कारण मुझे अधिक परेशानी नहीं हो पाई और मैं इस भारी कार्यक्रमको पूरा करनेमें समर्थ हो पाया। मैंने जो-कुछ कहा उसे धैर्यके साथ सुननेके लिए भी मैं आपको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ११–५–१९२१

२६४. पत्र : जी० ए० नटेसनको

बेजवाड़ा
४ अप्रैल, [१९२१][1]

प्रिय श्री नटेसन,

मैं ८ तारीखको एक दिनके लिए मद्रास रहूँगा; फिर भी शायद आपके यहाँ ठहरना सम्भव न हो सके। मैं यह भी नहीं चाहता कि सच्चे या तथाकथित सभी असहयोगियों-का आपके घर ताँता लगा रहे या वे आपके निवास-स्थानपर उन विषयोंपर खुलकर बातें करके आपको परेशान करें, जिनके बारेमें आपकी नापसन्दगी उन्हें मालूम है। मुमकिन है वहाँ पहुँचनेपर मैं आपके घर न आ सकूँ, लेकिन मैं इतनी आशा तो करता ही हूँ कि मद्रासमें मेरे मेजबान मुझे जहाँ ठहरायेंगे आप वहीं मुझे अपने दर्शन देने आयेंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २२३३) की फोटो-नकलसे।

१. जैसा कि पत्रमें उल्लेख है १९२१ में गांधीजी ४ अप्रैलको बेजवाड़ा तथा ८ अप्रैलको मद्रासमें थे।

२६५. पत्र : मणिबहन पटेलको

बेजवाड़ा

मौनवार [४ अप्रैल, १९२१][1]

चि० मणि,

इस समय सुबहके पाँच बजे हैं। मसूलीपट्टम ले जानेवाली मोटरका इन्तजार कर रहा हूँ।

रातको एक बजे मैं एलौरसे यहाँ आया। ये तीनों जगहें नकशेमें देख लेना।

आते ही तुम्हारा पत्र मिला और मैंने पढ़ा।

डाक्टर कानूगाने[2] अच्छा काम किया है। डाह्याभाई[3] पिकेटिंग करने जाता है, यह अच्छा है। उसे मेरी बधाई पहुँचा देना।

चार घण्टे कातनेका नियम रखा, यह ठीक है। सूत मजबूत और एकसा निकालनेका प्रयत्न करना। यह भी देखना कि रोज कितना निकलता है।

मेरा तो विश्वास दिन-दिन बढ़ता जा रहा है कि स्वराज्य सूतपर ही निर्भर है।

मैं काममें व्यस्त रहा और भटकता रहा, इसलिए मैंने पेंसिलसे लिखा। परन्तु तुम्हें तो स्याही और देशी कलमसे ही लिखनेका अभ्यास रखना चाहिए।

बापूकी सेवा करना और तुम दोनों भाई-बहनोंके बारेमें उनकी चिन्ताको कम करना।

गुजराती दिन-प्रतिदिन सुधारना। ध्यानपूर्वक 'नवजीवन' पढ़नेसे गुजराती सुधर सकती है।

मैं मंगलवार १२ तारीखको अहमदाबाद पहुँचूंगा। बापूको खबर देना और कहना कि मुझे आशा है कि इस बीच उन्होंने खूब रुपया जमाकर लिया होगा।[4]

मोहनदासके आशीर्वाद

चि० मणिबेन,
द्वारा/ वल्लभभाई, बार-एट-लॉ,
भद्र, अहमदाबाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो : मणिबहेन पटेलने

१. गांधीजी इस दिन एलौरसे बेजवाड़ा पहुँचे थे। ६-४-१९२१ को वे मसूलीपट्टम पहुँच गये थे।

२. स्व० बलवन्तराय नरसिंहलाल कानूगा; अहमदाबादके प्रसिद्ध डाक्टर और कांग्रेसी कार्यकर्ता।

३. सरदार वल्लभभाई पटेलके पुत्र।

४. सम्भवत: तिलक स्वराज्य कोषके लिए।

२६६. विचारमय जीवन

मुझे अपनी यात्राके दौरान मीठे और कड़वे, दोनों ही प्रकारके अनुभव होते रहते हैं। मध्यप्रान्तकी यात्रा मुझे लम्बे समयतक याद रहेगी। हम वर्धा १७ तारीखकी सुबह पहुँचे थे। उसी दिन मोटरसे आर्वी और आष्टी जाना था। रास्ता लगभग ६० मीलका था। दोपहरके एक बजे निकलकर रातके दस बजे वापिस वर्धा पहुँचना था। लेकिन ईश्वरके मनमें कुछ और था। रास्तेमें मोटर खराब हो गई। आष्टी तो किसी तरह पहुँच गये। वापसीमें दूसरी मोटर भी खराब हो गई और सो भी ऐसी जगह जहाँ कोई मदद नहीं मिल सकती थी। अन्तमें एक गाँवके समीप पहुँचे। वहाँसे बैलगाड़ीमें जाना निश्चित हुआ। रातके एक बजे बैलगाड़ीकी यात्रा शुरू हुई। मैं थका हुआ था। आँखोंमें नींद भी भरी हुई थी। मुझे क्या पड़ी थी जो मैं यह देखता कि बैल कैसे हैं और बैलोंको हाँकनेवाला कैसा है? नींदमें केवल यही समझमें आ रहा था कि बैल घोड़ेकी चालसे चले जा रहे हैं। बीच-बीचमें कम रफ्तारसे चलने लगते थे लेकिन ज्यादातर तो दौड़ते ही जा रहे थे। बैल दौड़े, यह बात किसे अच्छी नहीं लगती। मैंने सोचा, "ठीक है; हम जल्दी घर पहुँचेंगे। इस तरफके बैल अच्छे होंगे।"

सुबह हुई और जब मैं जागा तो मैंने देखा कि बैल हाँकनेवालेकी हँकनीमें आर लगी हुई है; वह उसे बैलोंके पुट्ठोंमें चुभोता है और इस तरह उन्हें दौड़ाता है। बैल बेचारे इस पीड़ाके कारण रास्तेमें पोंकते चले जा रहे हैं।

इस दृश्यको देखकर मेरी जो दीन दशा हुई उसका अगर पाठक अन्दाज लगा सकें तो लगा लें। मेरे मनमें उसी समय गाड़ीसे उतर जानेकी इच्छा हुई। मुझे लगा कि इससे तो मोटरकी यात्रा हजार गुना अच्छी है। फिर मैंने सोचा कि मोटरके कारखानेमें भी मोटर बनानेवाले अंग्रेज और अमेरिकी मजदूरोंकी क्या हालत होती होगी, इसे कौन जानता है? कौन जाने मोटरकी अपेक्षा बैलगाड़ीमें बैठनेमें कम पाप हो सकता है! — इस तरह मैं मन-ही-मन विचार करता जाता था और बैलोंके कष्टको देखता जाता था। दो-एक मिनट तो मैंने उसे सहन किया। बादमें बैलके मालिकसे उसकी हँकनी माँगी। उसने हँकनी मुझे दे दी।

वह समझ गया। वह मुझे पहचानता नहीं था। मुझे "बाबाजी" के नामसे पुकारता था। "महात्मा" की अपेक्षा "बाबाजी" मुझे अधिक प्रिय लगा। मेरी पोशाकसे उसने मुझे "बाबा" माना। "बाबाजी"की पोशाक पहनना आसान है। "बाबाजी"के गुण प्राप्त करना मुश्किल है। तथापि हिन्दुस्तानके भोले लोग तो पहरावेकी सादगीसे हमेशा भुलावेमें आते रहे हैं; और आते रहेंगे।

मैंने गाड़ीवानको लकड़ीकी मूठका इस्तेमाल करनेकी सलाह देकर हँकनी उसे वापस दे दी और कहा कि बैलको दौड़ानेकी कोई जरूरत नहीं, अगर हम घंटाभर देरसे भी पहुँचे तो कोई चिन्ता नहीं। मैंने उससे आरको निकाल देनेकी विनती की।

उसने वैसा करनेका वचन दिया। वह अपने वचनका पालन करेगा अथवा नहीं, यह एक जुदा सवाल है।

इस घटनाका मेरे मनपर अच्छा असर नहीं हुआ। मैंने देखा कि हमारा जीवन कितना विचारशून्य और दयाशून्य है। हमारे प्रत्येक कृत्यमें विचार और दया होनी ही चाहिए। और मैं स्पष्ट देख सका कि जहाँ दुर्बलता, असहायता और मूकता अधिक है वहाँ तो और भी अधिक दया होनी चाहिए। हम अपनी जातिपर — मनुष्यजाति-पर — दया करते हैं, उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। वह तो होनी ही चाहिए। लेकिन कंगाल और अकालसे पीड़ित मनुष्योंकी अपेक्षा भी क्या पशु अधिक निराधार, दुःखी और मूक नहीं हैं? अकालपीड़ित लोग तो भूखसे व्याकुल होकर हमारे विरुद्ध लड़ भी सकते हैं लेकिन बैल क्या करें? वे तो न बोल सकते हैं और न विद्रोह कर सकते हैं।

मुझे पाठ्य-पुस्तकोंमें पढ़ा हुआ पशु-संवाद याद आया। उसमें निहित रहस्य बिल-कुल सच्चा प्रतीत हुआ। हमारा जीवन कितना विचारशून्य है? मैंने विचार किया होता तो बैलोंकी और हाँकनेवालेकी जाँच की होती और लकड़ीमें लगी हुई आर यात्राके आरम्भमें ही अलग करा दी होती।

यदि गाड़ीवानने विचार किया होता कि कोई उसकी पीठमें आर भोंके तो उसे कैसा लगेगा तो वह अपनी हँकनीमें आर कभी नहीं रखता, बैलको मार-मार कर नहीं दौड़ता।

मैं जैसे-जैसे विचार करता जाता हूँ वैसे-वैसे स्वराज्यकी शर्तें 'बढ़ती' जाती हैं। हमें आत्मशुद्धि करके स्वराज्य प्राप्त करना हो तो हम अपनी शुद्धिकी सीमा कहाँ बाँधेंगे? अपने भंगी भाईको अपने सगे भाईके समान मान लेनेसे क्या हम उस सीमाको प्राप्त कर लेंगे? हमारे पशु भाई-बहनोंका क्या होगा? उनके प्राणोंमें और हमारे प्राणोंमें कितना अन्तर होगा? हम खाते, सोते और सुख-दुःखका अनुभव करते हैं सो वे भी करते हैं। हम बहुत हुआ तो उनके बड़े भाई हो सकते हैं। इससे ज्यादा और क्या हो सकता है?

हम दूसरोंसे उनका कर्त्तव्य करनेकी बात कहते हैं; वे ऐसा नहीं करते तो चिढ़ जाते हैं; कहते हैं कि "डायरको फाँसीपर चढ़ाओ।" हमारे विरुद्ध पशुकी फरियाद सुननेवाला हमारे बारेमें क्या सोचता होगा?

हम हिन्दू गोरक्षाको प्राणरक्षाके समान माननेवाले हैं; गायको बचानेके लिए मुसलमानके साथ वैर ठानते हैं, लेकिन हम ही बैलको आर चुभोकर चलाते हैं, बैलपर बहुत ज्यादा बोझ लादते हैं, उसे बहुत कम खानेको देते हैं, फूँकाकी क्रियाके द्वारा खून निकलनेतक गायका दूध निकालते हैं। मुसलमानसे गाय न मारनेके लिए कहनेका हमें क्या अधिकार है? मुसलमान गायको खुराकके लिए मारनेमें कोई पाप नहीं मानते। क्या हिन्दू यह कह सकते हैं कि बैलको आर चुभोनेमें कोई पाप नहीं है? हम तो जान-बूझकर पाप करते हैं। कहते हैं कि अनजानमें किये गये पापको ईश्वर माफ कर देता है। अनजानमें हुए दोषोंका ही प्रायश्चित्त होता है। जान-बूझ-कर पाप करनेके बाद प्रायश्चित्त करनेसे क्या कोई शुद्धि प्राप्त की जा सकती है?

इसलिए विचार करें तो हम देखेंगे कि स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए हम कितनी आत्मशुद्धि करें, इसकी कोई सीमा नहीं है। शुद्धि जितनी जल्दी होगी स्वराज्य उतनी जल्दी मिलेगा।

स्वराज्य अर्थात् धर्म-राज्य। यदि शासनकी वर्तमान पद्धतिके स्थानपर हम ऐसी ही कोई दूसरी पद्धति दाखिल करें तो वह स्वराज्यमें नहीं खपेगी; उसके द्वारा लोककल्याण नहीं होगा। जिस तरह स्वराज्यकी प्राप्तिकी कुछ शर्तें हैं वैसे ही उसके कुछ लक्षण भी हैं। अपने नडियादके भाषणमें मैंने स्वराज्यके लक्षणोंका जिक्र किया था। किसी अन्य अवसरपर उनके सम्बन्धमें एक लेख लिखूंगा।

इस बीच हमें इतना तो समझ ही लेना होगा कि हमारा आत्मशुद्धिका दावा अगर सही है तो हमें अपने व्यवहारको लगातार सुधारते जाना होगा। चींटीसे लेकर हाथीतक सबके हकोंकी जाँच करके हमें उनके अधिकार उन्हें देना होगा। ऐसा करनेपर संसार बिना माँगे ही हमें हमारे अधिकार दे देगा; इस सम्बन्धमें किसीको कोई भी सन्देह नहीं होना चाहिए।

इस राज्यको, शासनकी इस नीतिको अगर हम राक्षसी राज्य और राक्षसी नीति मानें तो हमें स्वयं ऐसी नीतिका परित्याग करना होगा। हमारे ऐसा करनेके साथ ही वह नीति स्वयमेव नष्ट हो जायेगी। इसीसे मैं कह रहा हूँ कि हम सात महीनेमें स्वराज्य प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि जो करना है सो हमें ही करना है और वह काम मात्र विचार-परिवर्तनका ही है। हम अपने विचार बदल दें तो उनके अनुरूप अपने आचरणमें परिवर्तन करनेमें तनिक भी देर नहीं लगेगी।

मैं आशा करता हूँ कि कोई पाठक ऐसा आरोप नहीं लगायेगा कि मैं दिन-प्रतिदिन स्वराज्यकी शर्तें बढ़ाता जाता हूँ। ज्ञानी पाठक समझ जायेंगे कि मैं स्वराज्यकी शर्तोंको हल्का और आसान करता जाता हूँ।

हमें इस राक्षसी नीतिको या तो ज्यादा बड़ा राक्षस बनकर रोकना होगा अथवा उससे अलग रहकर, उसका सर्वथा त्याग करके उसे मिटाना होगा। पाप और अन्याय किसी भी समय अपने बलपर नहीं टिक सकते। उन्हें हमेशा सहारा चाहिए। इसीसे सब धर्मोंकी यह शिक्षा है कि पापके साथ असहयोग करना परमधर्म है लेकिन यदि वैसा करके हमें पापनीतिको दूर करना हो तो हमें चाहिए कि हम प्रत्येक क्षण विचार करके अपने जीवनको पापसे बचायें। इस तरह पापनीति खुद-ब-खुद टूट जायेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५–४–१९२१

२६७. अस्पृश्यताके सम्बन्धमें शंका

अस्पृश्यताके बारेमें अनेक लोगोंके मनमें अनेक प्रकारकी शंकाएँ उठती हैं। कोई एक तरहसे तो कोई दूसरी तरहसे उसका पक्ष लेनेकी कोशिश करता है। प्रत्येक ऐसे रिवाजके बारेमें, जो जड़ पकड़ चुका हो, यही होता है। कोई भी रिवाज आसानीसे कभी नहीं मिटा; वह तभी मिटा है जब उसका [कड़ा] विरोध किया गया है। हम देखते हैं कि शराब आदि पीनेकी कुटेवोंका भी समर्थन किया जाता है। कितने ही ऐसे लोग पड़े हैं जो शराब पीनेको धर्मतक मानते हैं। फिर अस्पृश्यताकी तो बात ही क्या? एक महानुभावने निम्नलिखित तीन प्रश्नोंका उत्तर देनेको कहा है:

१. भंगी और चमारका धन्धा ही मैला है और जिसने इस धन्धेको अपना लिया है उसपर उसका इतना सूक्ष्म असर होता है कि भले ही वह नित्य स्नान करे तो भी वह साफ नहीं होता; उसके शरीरके कण-कणमें मैला व्याप्त हो चुका होता है। इसलिए उसका स्पर्श सर्वथा वर्जित होना चाहिए।

२. डाक्टर आदि जो मैला काम करते हैं, भंगीका धन्धा उस अर्थमें मैला नहीं है। डाक्टर निरन्तर ऐसा काम नहीं करते और करते हैं तो वैसा काम करनेके बाद साफ हो जाते हैं।

३. ढेढ़-भंगी जबतक अपने धन्धेका सर्वथा त्याग नहीं कर देते तबतक उनको कदापि स्पर्श नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त दलीलें कुछ नये प्रकारकी हैं। एक पक्ष यह कहता है कि अगर "अस्पृश्य" नहाने-धोने लगें तो फिर कुछ कहनेको नहीं रह जाता। किन्तु यहाँ कहना यह है कि भंगीके शरीरमें ही मैल घर कर गया है; इससे हम उसे चाहे कितना ही क्यों न धोयें वह अस्पृश्य ही बना रहेगा।

दोनों पक्षोंकी भूलको कमसे-कम मैं तो स्पष्ट देख पाता हूँ। हमें भंगी आदिको न छूनेकी आदत पड़ी हुई है। इसके अतिरिक्त उसे धर्मका स्वरूप प्रदान कर दिया गया है। इसलिए अब उन्हें छूनेकी इच्छा ही नहीं होती। इसलिए हमें हर तरहसे अपनी आदतका समर्थन करना भाता है। मेरी अल्प बुद्धिके अनुसार तो भंगीपर जो मैल चढ़ता है वह शारीरिक है और उसे आसानीसे दूर किया जा सकता है। लेकिन जिनपर असत्य, पाखण्ड इत्यादिका मैल चढ़ा हुआ होता है वह बहुत सूक्ष्म होता है और उसे निकालना बहुत ही मुश्किल होता है। यदि किसीको अस्पृश्य माना जा सकता हो तो असत्य और पाखण्डसे भरे हुए लोगोंको ही। लेकिन उन्हें अस्पृश्य कहनेकी हम लोगोंकी हिम्मत नहीं होती क्योंकि कम या अधिक ऐसा मैल हम सभीमें है। हम यदि वैसा करने बैठें तो वह संसारके काजी बननेके समान होगा। और हम स्वयं अस्पृश्य बन जायेंगे। इस सच्ची मलिनतासे छुटकारा पानेके लिए हमारे पास धीरज और आन्तरिक स्वच्छताके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। लेकिन भंगीकी मलिनता उसके

शरीरमें ऐसी व्याप्त नहीं होती, इतना ही नहीं बल्कि उसका उपाय भी आसान है। उन्हें अगर हम अपना बना लें तो वे अवश्य साफ रहने लगें।

डाक्टरका धन्धा निरन्तर मैल साफ करनेका ही है। उन्हें अगर चौबीस घंटे चीर-फाड़का काम मिले तो वे उसे करनेसे इनकार नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त वे भी अपनी आजीविका अर्जित करनेके लिए ही मैल साफ करनेका अपना धन्धा करते हैं। तथापि उस कार्यको हम परोपकारपूर्ण गिनते हैं और डाक्टरको सम्मान देते हैं। मेरी दलील यह है कि डाक्टरका धन्धा सिर्फ रोगीके लिए उपकारक है, लेकिन भंगीका धन्धा समस्त संसारके लिए उपकारक होनेके कारण डाक्टरके धन्धेकी अपेक्षा अधिक आवश्यक और पवित्र है। डाक्टर अपने धन्धेको छोड़ दें तो केवल रोगियोंका ही नाश होगा लेकिन यदि भंगीका धन्धा बन्द हो जाये तो जगत्का नाश हो जाये। इसलिए इस कथनमें कुछ भी अनुचित नहीं कि ऐसा आवश्यक कार्य करनेवाले व्यक्तिको अपवित्र मानने और उसका परित्याग करनेमें घोर पाप है।

भंगी-चमारसे उसका धन्धा छुड़वानेकी कोशिश करना तो मैं जगत्के लिए बहुत हानिप्रद कार्य समझता हूँ।

हमारे पास एक ही उपाय है। जैसे डाक्टरके धन्धेको हमने पवित्र मान लिया है वैसे ही भंगी-चमारके धन्धेको भी पवित्र मानें। हम उन्हें स्वच्छ रहनेके लिए प्रेरित करें, उन्हें अपनेसे दूर करनेकी बजाय उन्हें अपने समीप लायें और उनकी सेवा करें। हम अपने पाखानोंको साफ रखनेकी आदत डालें और जरूरत जान पड़े तो उसे स्वयं साफ करनेके लिए तैयार रहें और साफ करना सीखें। जब हम भंगीके धन्धेकी पवित्रताको समझने लगेंगे तब हमारे पाखाने, जो आज नरक-कुण्डके समान हैं, हमारी रसोई अथवा हमारी बैठकके समान स्वच्छ होंगे। मेरी दृढ़ मान्यता है कि भंगीको और उसके धन्धेको तुच्छ मानकर हमने अनेक रोगोंको स्थान दिया है। ब्राह्मणोंके घरोंको मैंने भंगीके घरोंकी अपेक्षा अधिक गन्दा पाया है। भंगीके घरके पास पाखाना नहीं होता इसीसे वह स्वच्छ लगता है। हमारे पाखानोंकी गन्दगीसे और हमारी तत्सम्बन्धी बुरी आदतोंके कारण प्लेग, हैजा आदि रोग तुरन्त ही फैल जाते हैं, ऐसी अनेक विद्वान् डाक्टरोंकी मान्यता है। मुझे तो इस बातका विशेष रूपसे अनुभव हुआ है। अपने पाखानोंको हम ऐसी हालतमें रख सकते हैं जिससे उन्हें साफ करनेमें तनिक भी घिन नहीं आये और जब उनमें प्रवेश करें तब वे हमें स्वच्छ और दुर्गंध-रहित लगें। अस्पृश्यताके पापके कारण ही हम साम्राज्यके अस्पृश्य, साम्राज्यके भंगी बन गये हैं। इतना ही नहीं, बल्कि उस पापके कारण हम रोगी भी बन गये हैं और हमारे शरीर निस्तेज और दुर्बल हो गये हैं। पाखाना आदिसे सम्बन्धित हमारी आदतोंके कारण हवापर कितना खराब असर होता है और खराब हवाका असर शरीरपर कितना खराब होता है इसका हमें खयाल ही नहीं है। फुरसत मिलनेपर मैं इस विषयका विस्तृत विवेचन करना चाहता हूँ।

मुझे मलिनताके प्रति मोह नहीं है और न भंगीके प्रति। मुझे अतिशयोक्तिकी आदत नहीं है। मैं हिन्दू-शास्त्रोंको माननेवाला हूँ, हिन्दूधर्मका अभिमानी हूँ। मेरा सत्य मुझे निर्मोह रखता है और शास्त्रके नामपर चलनेवाली सब वस्तुओंको आँखें मूँदकर

स्वीकार कर लेनेसे बचाता है। मैं नम्र भावसे जैसे-जैसे विचार करता हूँ वैसे-वैसे मुझे लगता है कि साम्राज्यने जैसी डायरशाही चलाई है वैसी ही डायरशाही हिन्दूधर्मके नामपर हिन्दुओंने भंगी आदि जातियोंपर चलाई है। साम्राज्यकी डायरशाहीको मैं शैतानियत कहता हूँ। अस्पृश्यताको भी मैं उतनी ही भयंकर शैतानियत मानता हूँ। मैं हिन्दू-धर्मको उस दोषसे मुक्त करनेके लिए जी-जानसे प्रयत्न कर रहा हूँ और ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि वह मुझे उसके लिए और अधिक कठिन तपश्चर्याके योग्य बनाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५–४–१९२१

२६८. टिप्पणियाँ

सफेदमें काला

स्वदेशी आन्दोलनका लाभ उठाकर कितने ही लोग कैसी बेईमानी कर रहे हैं इसका उदाहरण देकर एक मित्र लिखते हैं:

> **मैं तो देशमें पहले ईमानदारी और बादमें स्वदेशीके प्रचारकी इच्छा करता हूँ।**

यह विचार निर्मल है लेकिन उसमें एकान्तवाद है। जैन-दर्शनसे मैंने अनेक जानने योग्य बातें सीखी हैं। उनमें से एक अनेकान्तवाद है। "एकान्त" दृष्टिसे देखी हुई एक भी बात सही नहीं होती। प्रत्येक वस्तुके दो पक्ष होते हैं। "मैं तो पहले ईमानदारी चाहता हूँ" इसमें एकान्तवाद आ जाता है। यह बात हमेशा स्पृहणीय है। लेकिन जबतक लोगोंमें ईमानदारी नहीं आ जाती तबतक स्वदेशीके प्रचारको रोक दिया जाये — ऐसा सोचनेसे तो स्वदेशी और ईमानदारी दोनोंको ही खोनेका अवसर आ जायेगा। सत्य अथवा ऐसे ही अन्य गुणोंका विकास मनुष्यमें अपने-आप नहीं होता, कुछ-न-कुछ काम करनेके साथ-साथ ही होता है। हिन्दुस्तान लायक बनेगा तभी वह स्वराज्यका उपभोग कर सकेगा, ऐसा कहकर राज्यकर्त्तागण आजतक स्वराज्यको रोके रहे और हमने उन्हें ऐसा करने दिया। हिन्दुस्तान तो स्वराज्यके लिए कबका लायक है। हिन्दुस्तानमें पूर्णता होती तो वह गुलाम न होता, लेकिन स्वराज्यकी योग्यता तो स्वराज्यका उपभोग करते हुए ही आती है। इसी तरह स्वदेशीका प्रचार करनेसे ही लोगोंमें ईमानदारीकी भावना आयेगी। स्वदेशी ईमानदारीके बिना नहीं चल सकती, यह विचार शुद्ध है और अनेकान्तवादका विरोधी नहीं है। ऐसा माननेसे दोनों वस्तुएँ साथ-साथ चल सकती हैं। ईमानदारीके बिना एक भी वस्तु नहीं चल सकती, ऐसा दृढ़ विश्वास रखनेसे उस गुणका और भी विकास किया जा सकता है और साथ ही किसी भी अच्छी प्रवृत्तिको चलानेमें क्षोभ भी नहीं होगा। मेरी मान्यता तो ऐसी है कि यदि हमने मोहमें फँसकर स्वदेशीका त्याग न किया होता तो आज हम जिस हालतमें हैं,

जो असत्य हममें घर कर गया है, वैसा कभी न होता। मेरा यह विश्वास है कि स्वदेशीका प्रचार सत्यका, स्वधर्मका और स्वराज्यका प्रचार है। अतएव स्वदेशीमें श्रद्धा रखनेवालोंको मेरी सलाह है कि वे देशकी वर्तमान शिथिलतासे निराश न हों तथा स्वदेशीका प्रचार लगातार करते ही रहें। हम स्वदेशीका प्रचार करनेसे, चरखेको [अपने घरोंमें] दाखिल करनेसे, खादी पहनने-पहनानेसे लोगोंके सामने सत्यका पदार्थ-पाठ प्रस्तुत करते हैं।

बेईमानी

उक्त मित्रने खादीके व्यापार और चरखेमें चल रही धोखाधड़ीके सम्बन्धमें उदाहरण पेश किये हैं। वे लिखते हैं कि खादी बेचनेवाले या तो मिलसे कते सूतकी खादीको हाथके कते सूतकी कह कर बेचते हैं अथवा असली खादीपर भारी मुनाफा लेते हैं। और चरखा बेचनेवाले, चाहे जैसा चरखा हो, मनमाने भावपर बेचते हैं। मुझे भी इन दोनों दोषोंका अनुभव हो रहा है। प्रत्येक प्रवृत्तिमें धूर्त लोग होते ही हैं। उन्हें पराजित करनेमें ही नई प्रवृत्तिके प्रवर्तकोंकी कार्यदक्षताकी कसौटी होती है और उसीपर उसकी सफलता निर्भर करती है। खादीके ज्यादा दाम लिये जाते हैं, यह बात अधिक कालतक नहीं चल सकती क्योंकि जैसे-जैसे खादीका उत्पादन बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे उसके बेचनेवाले प्रतिस्पर्धा करके उसके दाम कम करेंगे। झूठी खादीकी बिक्रीको खतम करना जरूर मुश्किल है। शुद्ध खादीकी जाँच हो सके मैं इसका प्रयत्न कर रहा हूँ; जाँच करनेके साधनोंकी तलाश कर रहा हूँ। जाँच करनेवाले व्यक्तियोंका भी आसानीसे मिलना मुश्किल है क्योंकि हाथके कते सूतके बुने जानेके बाद उसकी परख करना कोई सरल काम नहीं है। इस बीच सबको उसी जगहसे खादी खरीदनेका निश्चय करना चाहिए जिसपर उन्हें भरोसा हो। ऐसा करनेपर भी अगर वे धोखा खा जायें तो इसमें धोखा देनेवालेको पाप लगेगा, धोखा खानेवालेको नहीं। इस धोखाधड़ीके बावजूद, देशको यह लाभ तो होगा ही कि लोगोंमें खादीके प्रति प्रेमभाव बढ़ेगा, उसकी झिझक नहीं रहेगी और वह सभ्य पोशाक मानी जायेगी।

चरखेकी परख

खराब चरखे बेचे जाते हैं, यह जरूर डरकी बात है। यदि जिसपर काता न जा सके या बहुत कम काता जा सके अथवा जो तुरन्त टूट जाये ऐसा चरखा बेचा जाये तो लोगोंमें चरखेके प्रति अरुचिकी भावनाका प्रसार होनेकी बहुत सम्भावना है। लेकिन मुझे उम्मीद है कि थोड़े ही अर्सेमें इसका उपाय हो जायेगा। चरखेके बारेमें प्रयोग चल रहे हैं। जैसे-जैसे चरखा जाननेवाले लोग बढ़ते जायेंगे वैसे-वैसे खराब चरखोंका बेचा जाना बन्द हो जायेगा। सोनेकी कसौटीके लिए जैसे बम्बईमें "धर्म-काँटा" है वैसे ही चरखेके लिए भी कोई कसौटी निर्धारित करनेका विचार मैं कर रहा हूँ। हर अच्छी वस्तुका प्रचार इसी तरह बढ़ता है। जिस तरह टाइपराइटर, सिलाईकी मशीन आदिके बारेमें हम जान सकते हैं कि वह अच्छी है या नहीं उसी तरह चरखेके सम्बन्धमें भी हम थोड़े समयमें जान सकेंगे, ऐसी मेरी उम्मीद है।

चरखेके प्रति लोगोंके दिलोंमें इतना विश्वास बढ़ता जाता है, उसे देखते हुए मुझे लगता है कि थोड़े समयमें ही हम हिन्दुस्तानके बाजारोंमें अच्छे, मजबूत और सस्ते चरखे देखने लगेंगे। इस बीच जहाँ-जहाँ चरखेकी प्रवृत्ति चल रही है, वहाँ-वहाँ कार्य-वाहक अच्छे और बुरे चरखोंमें भेद करना सीख लें तो ज्यादा अच्छा होगा। जाँचके कुछ सामान्य उपाय तो मैं यहीं लिखे देता हूँ:

१. चरखेका चक्र बिना आवाजके और बिना रुके चलना चाहिए।

२. चरखेका प्रत्येक भाग मजबूतीसे बिठाया हुआ होना चाहिए।

३. चक्र चलानेका हत्था ऐसा न हो कि अपनी जगहसे फिसल जाये।

४. चरखेका तकुआ बिना आवाजके फिरना चाहिए और उसके लिए चमरख मूँजका अथवा चमड़ेका बना हुआ होना चाहिए।

५. अच्छे चरखेपर एक अच्छे सूत कातनेवालेके हाथों एक घंटेमें ढाई तोला सूत निकलना चाहिए। जो चरखा अन्तिम शर्तको पूरा न करे अर्थात् एक घंटेमें ढाई तोला सूत न निकाले, उसे पास नहीं किया जाना चाहिए।

बढ़ई स्वयंसेवक

हममें सिर्फ विद्यार्थियोंको ही स्वयंसेवक बनानेकी रूढ़ि पड़ गई है। उसके बदले समस्त अच्छे युवकोंको स्वयंसेवक मण्डलमें शामिल करनेका रिवाज डालनेकी जरूरत है, ऐसा मैं पहले ही लिख गया हूँ। यदि हम राष्ट्रीय प्रवृत्तियोंको बड़े पैमानेपर चलाना चाहते हों तो हमें अनेक कारीगरोंको भी इनमें शामिल करना चाहिए। बढ़ई, लुहार आदि जब लोकहितके लिए काम करने लगेंगे तब हम सस्ते और अच्छे चरखे भी तैयार कर सकेंगे। आज तो हमारी ऐसी दशा है कि हम कातनेके लिए तैयार भी हो जायें तो समयपर अच्छे चरखे बनाकर देनेवाले बढ़ई हमें नहीं मिलते। बढ़ई मिलते हैं तो तकुआ बनानेवाले लुहार नहीं मिलते। लुहार और बढ़ई मिलते हैं तो ईमानदार और स्वदेशप्रेमी धुनिये नहीं मिलते। लेकिन यदि हमारे पास स्वराज्य-के लिए काम करनेवाले लुहार, बढ़ई और धुनियोंके मण्डल हों तो हम जनताको बहुत आगे ले जा सकते हैं। यह काम कितना आसान है सो एक बढ़ई भाईके पत्रसे स्पष्ट हो जाता है। वे लिखते हैं:

> **स्वामीनारायण मन्दिरका निर्माण-कार्य मुफ्त किये जानेके बारेमें आपने अपने लेखमें[1] जो लिखा है वह सही है। स्वराज्य-मन्दिरके निर्माण-कार्यमें जिन कारीगरोंकी जरूरत पड़े, वह हम लोगोंकी ओरसे पूरी की जानी चाहिए। उसके लिए अथवा बड़े स्कूलोंका निर्माण करनेके लिए कितने बढ़इयोंकी जरूरत होगी — हम इसका एक अन्दाजा लगा लेंगे और अपनी बिरादरीकी एक सभा करके सारा काम आपसमें बाँट लेंगे। महीने-महीनेकी बारी बाँधकर हम लोग वेतन लिये बिना देशकी मदद करेंगे।**

१. देखिए "चरखेका आन्दोलन", ६-२-१९२१।

यह पत्र लिखनेवाले मिस्त्री-जैसे अन्य अनेक कारीगर भाई हिन्दुस्तानमें अवश्य होंगे। हम उन्हें स्वदेशके कार्यमें लगायें तो आसानीसे लगा सकते हैं और स्वराज्य-मन्दिरका निर्माण करनेवाले कारीगरोंके मण्डल जगह-जगहपर स्थापित हो सकते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ५–४–१९२१

२६९. भाषण: मसूलीपट्टमकी सार्वजनिक सभामें

५ अप्रैल, १९२१

हिन्दू और मुसलमान भाइयो और बहनो,

आपकी नगरपालिकाने मुझे जो मानपत्र दिया तथा उसमें मेरे लिए जो भावनाएँ व्यक्त की गई उनके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। यह मेरे लिए बड़ी प्रसन्नता तथा आनन्दकी बात है कि मैं वह काम कर सका जिसे पूरा करनेकी बात मैंने सोची थी। मैंने अपने कुछ दोस्तोंको यह वचन दिया था कि मै आन्ध्र जातीय कलाशाला[1] देखनेके लिए मसूलीपट्टम यथासम्भव शीघ्र आऊँगा। यद्यपि मैं बेजवाड़ासे दो बार गुजरा, फिर भी किसी-न-किसी कारणसे मसूलीपट्टम आनेमें असमर्थ रहा हूँ। यह अवसर टलता रहा। विलम्ब ही से सही मुझे यहाँ आनेकी बहुत प्रसन्नता है। विलम्ब इसलिए कहता हूँ कि मैंने मसूलीपट्टममें राष्ट्रीय संस्थाको देखनेका पहलेपहल विचार उस समय किया था जब असहयोग आन्दोलनका अस्तित्व ही नहीं था। मैंने इस महान् शिक्षा-संस्थाकी पवित्र भूमिमें शान्तिपूर्ण और पवित्र ऐसे दो दिन बिताये हैं जिनकी स्मृति मुझे सदैव बनी रहेगी। मैं यहाँ यह कहनेके लिए खड़ा हुआ हूँ कि मैंने इन दो सौभाग्यपूर्ण दिनोंमें जो-कुछ देखा है उसके आधारपर यह कहा जा सकता है कि संस्थाके बारेमें मैंने जितनी आशा की थी वह उससे कहीं ज्यादा सिद्ध हुई है। इस स्थलके कण-कणमें मुझे अनुशासन, संगठन-शक्ति और त्याग दिखाई पड़ रहा है। भारतीय होनेके नाते मैं अपनेको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ। मुझे आशा है कि आन्ध्र प्रदेशके सभी निवासी इस महान् प्रान्तके निवासी होनेके नाते इसपर उतना ही गर्व करते होंगे। मेरी समझमें मसूलीपट्टमके आप नागरिकगण अपने बीच एक ऐसी संस्थाका होना बहुत बड़ी चीज समझते होंगे, जिसका प्रबन्ध त्यागकी भावनासे भरे हुए मनुष्योंके हाथोंमें हैं। मैं आसानीसे किसी भी संस्थाकी प्रशंसा नहीं करता। लेकिन इन दो दिनोंके अन्दर मेरे दिलमें जो भावनाएँ उत्पन्न हुई हैं, उन्हें मैं आपके सम्मुख व्यक्त न करता तो यह अपने तथा आप लोगोंके प्रति मिथ्याचार ठहरता। इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि उस संस्थाको आप अपनी चीज समझकर जहाँ उसे कमजोर पायें वहाँ उसे मजबूत करें। जहाँ लगे कि गुंजाइश है, वहाँ उसे और पूर्णतर बनायें। इसे अपना

१. आन्ध्र राष्ट्रीय कालेज।

ध्येय ही मानें और अपने ध्येयोंको पूर्ण बनानेके लिए इसे पूर्णता प्रदान करें। मुझे यह जानकर आश्चर्य तथा दुःख हुआ कि आपके नगरकी दो बड़ी शिक्षा-संस्थाओंसे एकने भी इस विशाल विद्यालयका समर्थन नहीं किया। मैंने आशा की थी कि असहयोग आन्दोलनके फलस्वरूप मसूलीपट्टम हाईस्कूल तथा कालेजके विद्यार्थी अपने स्कूलोंसे उसी तरह ऊब उठे होंगे तथा निराश हो गये होंगे जैसे समस्त भारतके विद्यार्थी इस सरकारकी छत्रछायामें पलनेवाली संस्थाओंसे हो गये हैं। मैंने ऐसी आशा की थी कि कमसे-कम इस प्रकारके विद्यार्थी तो इस विद्यालयमें पहुँचेंगे ही। अन्य स्थानोंमें मुझसे विद्यार्थियोंने पूछा है कि उन्हें कहाँ जाना चाहिए, क्योंकि राष्ट्रीय संस्थायें हैं ही नहीं। मसूलीपट्टमके विद्यार्थियोंके लिए इस प्रकारका कोई भी बहाना नहीं है, क्योंकि उनके बीच एक ऐसा विद्यालय लगभग १५ सालसे काम कर रहा है। यदि आप बहादुर विद्यार्थी हैं तो मेरी बात जरूर मानेंगे। आप लोगोंको इस स्कूलमें दाखिल हो जाना चाहिए और इस विद्यालयके विद्यार्थी होनेकी हैसियतसे यदि आप इसमें कोई ऐसी कमी देखें जिसके कारण आपके मस्तिष्क और हृदयकी भूख नहीं मिट सकती तो आप अपने शिक्षकोंसे उस कमीको दूर करनेका अनुरोध करें।

कल पुनीत राष्ट्रीय सप्ताह प्रारम्भ हो रहा है। ६ अप्रैल, १९१९ के दिन भारत जागा था। ६ अप्रैल, १९१९ ने एक जगे हुए भारतको देखा था। उस दिन हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियोंने एकताकी वास्तविक इच्छा प्रदर्शित की थी। उसी दिन सच्ची स्वदेशीकी भावना भी जगी थी। उसी महान् दिवसके ठीक सात दिन पश्चात् अर्थात् १३ अप्रैलको वह खूनी रविवार आया जिसमें जलियाँवाला बागमें लगभग १,५०० निर्दोष व्यक्तियोंकी हत्या कर दी गई और फिर हत्यारोंने घायलोंकी जरा भी चिन्ता नहीं की। मेरे आसपास बैठे हुए आप सभी विद्यार्थियों, वकीलों तथा स्त्रियोंसे मैं यह कहता हूँ कि वे जलियाँवाला बागमें एक असहाय, एकाकी, बहादुर, शरीफ और कुलीन उस महिला रतनदेवीकी कल्पना करें जो अपने मृत पतिकी लाशपर रो रही है और निडर होकर जनरल डायरके हुक्मोंका उल्लंघन करती हुई अपने प्राणपतिका शीश अपनी गोदमें रखे हुए है। रतनदेवी आप लोगोंकी बहन थी और मेरी भी। सोचिए कि जलियाँवाले बागके उस वीरान मैदानमें यदि आप रतनदेवीकी जगह होते तो आपको कैसा लगता। मैं नहीं चाहता कि आप लोगोंके मनमें अंग्रेजोंके प्रति क्रोध भड़के, लेकिन मैं यह जरूर चाहता हूँ कि आप लोग गहराईसे विचार अवश्य करें। हमने इस पवित्र सप्ताहका प्रारम्भ और समाप्ति व्रत, प्रार्थना तथा हड़तालसे करना तय किया है। मैं आशा करता हूँ कि आप लोग मसूलीपट्टमके नागरिक कल निराहार रहेंगे, प्रार्थना करेंगे तथा हड़ताल मनायेंगे। उपवास हमारी बहुत प्राचीन पद्धति है। जब हम अपने भीतर कुछ अपवित्रता या कलुश पाते हैं तब उपवास करते हैं। हम अपने पिछले पापोंके प्रायश्चित्तस्वरूप भी उपवास करते हैं तथा परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि वह हमें शक्ति प्रदान करे और हमारे पापोंको क्षमा करे। प्रार्थनाके बाद हम अपने जीवनका एक नया पृष्ठ प्रारम्भ करते हैं। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आपमें से हरएक जो यहाँ उपस्थित है, इन दो जरूरी बातोंको नहीं भूलेगा। मैं कल और आगे सप्ताह-भर हड़तालको एक धार्मिक कृत्य मानूँगा। इसका

तात्पर्य राजनैतिक प्रदर्शनकी अभिव्यक्ति न समझा जाये, बल्कि यह माना जाये कि भारत आत्म-ज्ञानके अनुसन्धानका संकल्प कर चुका है। मैं आप लोगोंसे कल और पूरे सप्ताह-भर यह कहता रहूँगा कि ईर्ष्या और वैमनस्यका प्रत्येक विचार, सरकारके किसी भी सदस्यके विरुद्ध, चाहे वह अंग्रेज हो अथवा भारतीय, अपने दिलोंसे निकाल दिया जाये।

डर, जो हमारे अन्दर भरा हुआ है, पहला पाप है। हम अंग्रेजोंसे डरते हैं, हम जापानियोंसे डरते हैं तथा परमात्माके सिवाय प्रत्येकसे डरते हैं। विश्वास कीजिए कि केवल ऐसा ही मनुष्य, जो परमात्मा और स्वयं अपनेमें विश्वास नहीं रखता, मनुष्य-से डरता है। दूसरा बड़ा पाप जो भारतके खिलाफ, मानवसमाजके खिलाफ तथा पर-मात्माके खिलाफ किया गया है वह है चरखेका विनाश। मैं चाहता हूँ कि सारे देशको इस बातका विश्वास दिला पाता कि हमारे इसी बड़े पापके कारण जिसे मैं राष्ट्रीय पाप कहता हूँ, भारत पदच्युत हुआ और एक गुलाम राष्ट्र बना। हम इसका, कमसे-कम, प्रायश्चित्त यही कर सकते हैं कि हम विलायती कपड़ेका एक धागा भी उपयोगमें न लायें। इसलिए मैं मसूलीपट्टमके प्रत्येक नर-नारीसे कहता हूँ कि वह कलसे विलायती वस्त्र न पहननेका दृढ़ संकल्प कर ले और केवल अपने द्वारा तैयार किया गया कपड़ा पहने; दूसरोंके द्वारा तैयार किया गया कपड़ा न पहने। हमारा तीसरा पाप हमारी स्वार्थपरता है। हम केवल अपने ही बारेमें सोचते-विचारते हैं, देशके बारेमें नहीं। हम अपने परिवारसे आगे बढ़कर बहुत हुआ तो गाँव या नगर तक ही पहुँच पाये हैं। हम केवल अपने ही लिए जीना छोड़ दें; भारतके लिए जीना आरम्भ कर दें। हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके बीच फूट हमारा चौथा पाप है। हमने अपनी सीमा हिमालय से लेकर रामेश्वरतक और बंगालसे सिन्धतक मान रखी है। हिन्दू-मुस्लिम एकता एक निर्विवाद तथ्य है। इसलिए अभी हमें जिस कार्यक्रमपर अपनी शक्तियाँ केन्द्रीभूत करनी हैं वह चरखा ही है। मैं अब आप लोगोंसे उन बातोंपर विचार करनेके लिए कहूँगा जिनपर विचार करनेके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने कहा है — तिलक स्वराज्य कोषके लिए एक करोड़ रुपये इकट्ठा करना। आन्ध्र प्रदेशके हिस्सेमें सात लाख रुपये आते हैं। मैं आशा करता हूँ कि मसूलीपट्टमके पुरुष तथा स्त्रियाँ इस कोषके लिए यथासम्भव अधिकसे-अधिक धन प्रदान करेंगे। अभी कुछ देरमें स्वयंसेवक लोग आपके पास पहुँचेंगे। मसूलीपट्टमकी कई बहनें मेरे पास आ चुकी हैं तथा आभूषण और धन भेंट कर चुकी हैं। मुझे आशा है कि मसूलीपट्टमका चन्दा अन्य स्थानोंसे कम न होगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ८–४–१९२१

२७०. टिप्पणियाँ

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीय

सर बेंजामिन रॉबर्टसनके मिशनके बावजूद, दक्षिण आफ्रिकी आयोगने[१] प्रतिकूल निर्णय दे दिया है। जैसा कि लॉर्ड मॉर्लेने[२] बहुधा कहा है, इस प्रकारके आयोग कोई उपयोगी हेतु सिद्ध नहीं करते। वे झूठी आशाओंको जन्म देते हैं, और वे कुछ समयके लिए जनताका ध्यान उन विषयोंसे ही हटा देते हैं जिनपर विचार करनेके लिए उनकी नियुक्ति की जाती है। वे समय दे देते हैं कि आवेश ठंडा पड़ जाये; किन्तु न्याय वे क्वचित् ही करते हैं। वस्तुतः आयोग शुद्ध न्यायसे मुँह चुरानेके लिए प्रसिद्ध हैं। वे समझौता करते हैं; या समझौतेका प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं। किन्तु दक्षिण आफ्रिकी आयोगने न तो समझौतेका कोई प्रस्ताव किया, न समझौता किया। उसने व्यापारके मामलेमें भारतीयोंको उनके गोरे प्रतिद्वन्द्वियोंके हाथों सौंप दिया है। जैसा कि श्री सी० एफ० एन्ड्रूज बहुधा कहते हैं, उसने गोरोंकी श्रेष्ठताके सिद्धान्तको पुनः दृढ़ताके साथ घोषित किया है। इस सिद्धान्तको वे धर्म मान बैठे हैं और उसके पीछे मतवाले हो गये हैं। १९०१ में स्वर्गीय सर फीरोजशाहने मुझे दक्षिण आफ्रिकापर, उनके शब्दोंमें, 'अपना समय नष्ट करनेके लिए' फटकार बताई थी। सत्याग्रह-अभियानके समय, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा था, उनमें कोई उत्साह उत्पन्न नहीं हुआ था। और जब उनमें उत्साह जाग्रत हुआ, तो वह विषयकी न्याय्यताके कारण नहीं (जिसके बारेमें उन्हें कभी सन्देह नहीं था) वरन् श्रीमती गांधीके कारावासके[३] कारण; जिसने नारी जातिके प्रति उनकी सम्मानकी भावनाको जगा दिया, और इसीसे वे संघर्षमें उतर पड़े। वे कहा करते थे कि मुझे भारत लौट आना चाहिए, और दक्षिण आफ्रिकाके मुट्ठी-भर भारतीयोंके लिए काम करनेके बजाय समूचे भारतकी स्वतन्त्रताके लिए उद्योग करना चाहिए।

मैं तब सोचता था, जैसा कि आज भी सोचता हूँ, कि बम्बई अहातेके वे बेताजके बादशाह[४] यद्यपि भारतकी [illegible] अपना ध्यान केन्द्रित करनेके बारेमें ठीक कहते थे, तथापि उनका यह सोचना गलत था कि मुझे दक्षिण आफ्रिकासे लौट आना चाहिए था। हम अपने प्रवासी देशवासियोंकी उपेक्षा नहीं कर सकते। भारतकी स्वतन्त्रताका युद्ध इस बातकी अपेक्षा करता है कि हम अपने छोटेसे-छोटे देशवासियोंके अधिकारोंकी रक्षा करें, फिर चाहे वे कहीं भी रहते हों। किन्तु इस समय तो मैं दक्षिण आफ्रिकाके अपने देशभाइयोंसे यही कहूँगा कि वे अपना युद्ध वीरतापूर्वक अपने ही

१. दक्षिण आफ्रिकी सरकार द्वारा नियुक्त एशियाई जाँच आयोग, जिसका कार्यकाल मार्चसे जुलाई १९२० तक था; सर बेंजामिन रॉबर्टसनने भारत सरकारकी ओरसे उसके कार्यमें सहायता की थी।

२. जॉन मॉर्ले, ब्लेकबर्नके वाइकाउंट मॉर्ले (१८३८–१९२३); भारत-मन्त्री १९०५-१०।

३. दक्षिण आफ्रिकामें १९१३ में। देखिए खण्ड १२, पृष्ठ १८४ व २०२।

४. सर फीरोजशाह मेहता।

बलबूतेपर अकेले ही संचालित करें, और अपनी शक्ति-भर यहाँ हमारी भी सहायता करें। भारतके भाग्यका निपटारा इधर या उधर (और जहाँतक मैं समझता हूँ, हमारे पक्षमें) इसी वर्षके अन्दर निश्चयपूर्वक हो ही जाना चाहिए। आजकी अपेक्षा, तब हम उनकी रक्षा अधिक अच्छी रीतिसे कर सकेंगे।

किन्तु दक्षिण आफ्रिकाकी समस्याका स्वरूप वही है जो हमारे देशकी समस्याका है। हम भी तो गोरोंकी श्रेष्ठताके सिद्धान्तसे लोहा ले रहे हैं। मुसलमानोंके दावेको स्वीकार करनेसे इनकार करना, अरबोंकी घेराबन्दी करना, अमीरसे[1] समझौतेकी वार्ता करना, सर माइकेल ओ'डायर तथा जनरल डायरकी पेन्शनें बन्द करनेसे इनकार करना और जिन्होंने १९१९ में पंजाबियोंके साथ दुर्व्यवहार किया था उन्हें बर्खास्त करनेसे साफ इनकार करना : ये सब उसी रोगके लक्षण हैं। या तो उस श्रेष्ठताका खयाल पूरी तरह खत्म हो जाना चाहिए और या फिर हममें से जो लोग इस रोगके संक्रामक रूपको पहचानते हैं, उन्हें चाहिए कि वे उससे लड़ते हुए काम आयें। भारत सरकार यदि चाहे तो आयोगके इस निर्णयमें निहित विश्वासघातके विरुद्ध मुस्तैदीसे खुली लड़ाई लड़ सकती है। १९१८ के समझौतेका भाव यह था कि समूचे दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी स्थितिकी विषमता दूर कर दी जाये, और किसी भी मौजूदा अधिकारपर कोई आँच न आने दी जाये। आयोगने, वर्तमान अधिकारोंका जो अतिक्रमण किया जा चुका है उसपर अपनी मुहर तो लगाई ही है, साथ ही स्वयं भी इनमें और बड़े पैमानेपर कटौती करनेका सुझाव दिया है। ऐसी अविकृत घोषणासे, स्वतन्त्र राष्ट्रोंके सम्बन्ध खुले तौरपर टूट सकते हैं। आयोगके प्रतिवेदनका परिणाम यही हो सकता है कि मेरी असहयोगकी भावना और भी अधिक सक्रिय हो उठे।

स्वराज्यका अर्थ

दक्षिण आफ्रिकासे एक मित्र लिखते हैं कि वहाँके अनेक यूरोपीय स्वराज्यके संघर्षमें सहायता करनेको तैयार हैं, किन्तु वे कुछ विषयोंके बारेमें आश्वस्त होना चाहते हैं। चूँकि उनके द्वारा उठाये गये प्रश्न सार्वजनिक महत्वके हैं अतः मैं यहाँ उनकी चर्चा कर रहा हूँ।

(१) श्री गांधीके स्वराज्यका अर्थ सम्पूर्ण प्रभुतासम्पन्न स्वतन्त्रता है, अथवा साम्राज्यके अन्तर्गत डोमीनियनकी तरहका पूर्ण उत्तरदायी शासन?

मैं अवश्य ही उपनिवेशोंकी तरहके पूर्ण उत्तरदायी शासनसे सन्तुष्ट हो जाता, बशर्ते कि खिलाफत और पंजाबमें हुए अन्यायोंका निवारण किया गया होता। यदि साम्राज्य इन दो अन्यायोंका निवारण नहीं कर सकता तो भारत साम्राज्यके अन्तर्गत नहीं रह सकता। यदि भारत ऐसे अधिकारियोंको जिन्होंने उसके प्रति अन्याय किया है पेन्शन देनेसे इनकार भी नहीं कर सकता, अथवा यदि हम खिलाफतकी शर्तोंके सम्बन्धमें कोई समझौता नहीं कर सकते तो पूर्ण उत्तरदायी शासनका भारतके लिए कोई अर्थ नहीं होगा; वैसी स्थितिमें इंग्लैंड भारतके लिए 'शत्रु देश' हो जायेगा।

१. अफगानिस्तानके शाह। वार्ताके फलस्वरूप २२ नवम्बर, १९२१ को ऐंग्लो-अफगान सन्धिपर हस्ताक्षर हुए थे।

(२) क्या मुसलमान फिलिस्तीनपर दावा करते हैं, या वे उसे यहूदियोंको, जो कि उसके मूल स्वामी हैं, वापस कर देंगे?

मुसलमान दावा करते हैं कि फिलिस्तीन जजीरत-उल-अरबका अविभाज्य अंग है। वे पैगम्बरकी आज्ञाके अनुसार उसपर कब्जा बनाये रखनेके लिए बाध्य हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यहूदी और ईसाई फिलिस्तीनमें बे-रोक टोक आ जा नहीं सकते, या वहाँ बसकर अचल सम्पत्तिके स्वामी नहीं हो सकते। हाँ, गैर-मुसलमान जो चीज नहीं कर सकते, वह यह है कि वे वहाँ अपना एक सम्पूर्ण प्रभुतासम्पन्न क्षेत्राधिकार स्थापित नहीं कर सकते। यहूदी उस स्थानपर सम्पूर्ण प्रभुतासम्पन्न वह अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते, जिसपर धार्मिक विजयके अधिकारसे मुसलमानी शक्तियोंका सदियोंसे कब्जा रहा है। पिछले युद्धमें मुसलमान सैनिकोंने अपना खून इसलिए नहीं बहाया कि वे फिलिस्तीनको मुसलमानी नियंत्रणसे बाहर किसी दूसरेको समर्पित कर दें। मैं चाहता हूँ कि मेरे यहूदी मित्र भारतके सात करोड़ मुसलमानोंकी स्थितिपर निष्पक्ष भावसे विचार करें। एक स्वतन्त्र राष्ट्रके नाते क्या वे अपनी पवित्र मिल्कियतका एक ऐसे ढंगसे छीना जाना बर्दाश्त कर सकते हैं जो उनकी दृष्टिमें विश्वासघातपूर्ण है?

नये वाइसराय

मैं समझता हूँ कि लॉर्ड रीडिंगके सम्बन्धमें असहयोगियोंका कर्त्तव्य स्पष्ट है। जहाँ एक ओर हमें स्वागतके किन्हीं प्रदर्शनोंमें भाग नहीं लेना चाहिए, वहाँ दूसरी ओर विरोधी प्रदर्शन भी नहीं करना चाहिए, और न होने देना चाहिए। अंग्रेजोंसे हमारा कोई झगड़ा नहीं है, अंग्रेज अधिकारियोंसे भी नहीं है। हम तो उस प्रणालीको नष्ट करना चाहते हैं, और अवश्य करेंगे, जिसके अनुसार शासन करना उनकी जिम्मेदारी है, क्योंकि हम उस समूची प्रणालीको एक मूर्तिमान बुराई मानते हैं। हमें व्यक्तिके रूपमें भी उन अधिकारियोंसे अपनेको अलग रखना चाहिए जिन्होंने सर माइकेल ओ'डायर तथा जनरल डायरके समान भारतके साथ अन्याय किया है और जो उसके प्रति वफादार नहीं रहे। लार्ड रीडिंगके सामने स्वर्ण अवसर है। वे उस जातिके हैं, जिसे सुन्दर कल्पना-शक्ति प्राप्त है। वे जानते हैं कि 'परिया' कहते किसे हैं, अछूत होने, समाजसे बहिष्कृत होनेका क्या अर्थ होता है और वह कैसा अनुभव करता है। यदि वे असहयोगियोंके मामलेपर निष्पक्षतापूर्वक विचार करें और उन्हें उनके दावोंकी पैरवीमें सफलता मिले, तो उन्हें स्वयं भी असहयोगी बन जाना चाहिए। उन्हें असहयोगियोंसे उन लोगोंको क्षमा करनेके लिए नहीं कहना चाहिए जो स्पष्ट रूपसे अपनी गलती स्वीकार करके पश्चात्ताप प्रकट नहीं करते। उन्हें मुसलमानोंसे यह नहीं कहना चाहिए कि वे अपने न्याय-संगत दावोंको त्याग दें और न हिन्दुओंसे कहना चाहिए कि वे अपने साथी देशभाइयोंको मँझधारमें छोड़ दें। अन्तमें, वाइसराय महोदयको लंकाशायरके हितके लिए अथवा और किसी हेतुसे भारतसे यह नहीं कहना चाहिए कि वह अपने जन्म-सिद्ध अधिकारकी प्राप्तिका प्रयत्न स्थगित कर दे। अतः एक ऐसे वातावरणका सामना करनेके लिए जो भारतीयोंके सर्वथा खिलाफ है, वाइसराय महोदयको अत्यन्त दृढ़ इच्छाशक्तिसे काम लेना होगा। असहयोगियोंको भी ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जिससे उनकी

कठिनाइयाँ बढ़ें। हमें वाइसराय महोदयको इस बातका पूरा-पूरा श्रेय देना चाहिए कि उनका मंशा हमारा भला करनेका है। किन्तु मैं जनताको यह चेतावनी भी देना चाहता हूँ कि उसे इसी आशाके सहारे नहीं बैठे रहना चाहिए कि लॉर्ड रीडिंग कुछ करेंगे ही। यह लड़ाई तो ऐसी है जिसमें हमें अपनी सहायता आप करनी होगी, आत्म-निर्भरतासे काम लेना होगा। हमें अपनी स्वतन्त्रताका पोषण करनेके लिए आवश्यक वातावरण स्वयं ही तैयार करना पड़ेगा और जो अनेक बातें हमें करनी ही चाहिए उनमें से एक है अपने आदर्श व्यवहारसे ईमानदार और सच्चे किस्मके स्त्री-पुरुषकी सद्भावना प्राप्त करना।

कुछ कसौटियाँ

श्री टी० बी० पुरोहितने असहयोगके बारेमें कुछ सुसंगत प्रश्न पूछे हैं। उत्तर देनेसे पहले, कदाचित् यही ठीक होगा कि कुछ कसौटियाँ निर्धारित कर दी जायें। असह-योगका मुख्य अभिप्राय है आत्मशुद्धि करना — एक अन्यायी एवं पश्चात्तापकी भावनासे रहित सरकारसे असहयोग करके आत्मशुद्धि करना। गौण उद्देश्य है समस्त सरकारी नियन्त्रण अथवा निगरानीसे स्वतन्त्र रहकर अपने-आपको असहाय होनेकी भावनासे मुक्त करना, अर्थात् यथासम्भव सभी मामलोंमें अपना शासन आप चलाना। और इन दोनों उद्देश्योंको पूरा करनेके दौरान किसी भी व्यक्तिको अथवा सम्पत्तिको हानि पहुँचाने या उसके प्रति हिंसाका प्रयोग करनेसे स्वयं भी हाथ खींचना तथा और अन्य किसीको भी उस दिशामें प्रोत्साहित न करना।

अब हम श्री पुरोहितके प्रश्नोंको इस आधारपर देखें :

(१) क्या कोई असहयोगी किसी पंजीकृत पुस्तकालय अथवा वाचनालय-का सदस्य बना रह सकता है?

यदि मैं सदस्य होता, तो मैं पहले अपने साथी-सदस्योंको प्रेरित करता कि वे उस पुस्तकालयका पंजीयन समाप्त करवायें; और यदि मैं ऐसा न कर पाता, तो मैं अपनी सदस्यतासे त्याग-पत्र दे देता और उस (पुस्तकालय) को सरकारसे विच्छिन्न रखनेका आन्दोलन करता ताकि लोग आत्मनिर्भरता और स्वतन्त्रताका अनुभव कर सकें।

(२) क्या कोई असहयोगी मौजूदा पंजीयित सहकारी ऋण समितियों अथवा ऐसे बैंकोंका सदस्य बना रह सकता है, जिनका प्रबन्ध केवल जनता द्वारा सामान्य जनहितके लिए होता है?

मुझे ऐसी संस्थाओंका कुछ अनुभव है और मुझे यह कहनेमें कोई संकोच नहीं कि सरकारसे उनका पंजीयन कराना उनके स्वतन्त्र विकासमें बाधा पहुँचाता है और सरकारपर लोगोंकी निर्भरताको बढ़ाता है। ऐसी संस्थाओंकी स्थापना एक उत्तम विचार है और उसका पोषण किया जाना चाहिए; हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि बिना सरकारकी सहायता अथवा देखरेखके ऐसी समितियाँ पनप नहीं सकतीं। पंजीयनके पक्षमें बहुधा जो तर्क पेश किये जाते हैं, उन्हें मैं जानता हूँ। किन्तु यदि उनका विश्लेषण किया जाये, तो पाया जायेगा कि वे सब हमारे अपने आपमें विश्वासकी कमी-को प्रदर्शित करते हैं। अतः मैं इस मामलेमें भी पहले तो अपने साथी-सदस्योंको विश्वास

दिलानेकी कोशिश करूँगा कि पंजीयनका कोई उपयोग नहीं होता और यदि इसमें असफल रहा तो स्वयं उस संस्था अथवा बैंकसे अलग हो जाऊँगा, और लोगोंको समझाऊँगा कि उन्हें ऐसी संस्थाओं अथवा बैंकोंका बहिष्कार करना चाहिए। मैं जानता हूँ कि कमसे-कम एक संस्था है जिसने अपना पंजीयन रद करा लिया है; और सभी जानते हैं कि भारतमें हजारों ऐसे बैंक हैं, जो पंजीयित नहीं हैं फिर भी धूमधामसे चल रहे हैं और जिनकी ईमानदारी और व्यापारिक क्षमता आज भी आश्चर्यजनक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६–४–१९२१

२७१. विकट परीक्षक

क्या ही अच्छा होता कि मैं अपने आपको असहयोगके विश्वविद्यालयका एम० ए० मान पाता। किन्तु मेरे परीक्षकोंका विचार है कि मैंने उक्त विश्वविद्यालयकी पहली परीक्षा तो पास कर ली है, तथापि मुझे अभी कई पाठचक्रम पूरे करने हैं। मुझे पत्र लिखनेवालोंमें सबसे ज्यादा बालकी खाल निकालने और झुंझलाहट तक पैदा कर देनेवाले सवाल मेरे सिन्धी मित्र करते हैं। 'यंग इंडिया' के पाठकोंके सामने मैं इन परीक्षा-पत्रोंकी एक बानगी प्रस्तुत कर रहा हूँ। निम्नलिखित परीक्षा-पत्र मुझे सिन्धसे प्राप्त हुआ है।

(१) क्या आपका यह खयाल नहीं है कि आपके असहयोग आन्दोलनसे हिंसाका प्रादुर्भाव होगा?

यदि मेरा ऐसा खयाल होता तो मैं उसे देशके सामने कदापि न रखता।

(२) अहिंसाके सिद्धान्तको पूरी तरह समझाइए।

व्यक्ति अथवा सम्पत्तिको जानबूझकर आघात न पहुँचाना ही अहिंसा है। उदाहरणार्थ, मैं जनरल डायरतक को उनके कत्लेआमके लिए न तो दंड दूँगा न दिलाऊँगा, किन्तु उन्हें पेन्शन देनेसे इनकार करनेको अथवा उनके कार्यकी उपयुक्त शब्दोंमें निन्दा करनेको मैं उन्हें स्वेच्छापूर्वक आघात पहुँचाना नहीं मानूँगा। हत्यारेकी रक्षा करना, फिर चाहे वह मेरा पुत्र अथवा पिता ही क्यों न हो, मेरा कर्त्तव्य नहीं है। मैं अपना यह कर्त्तव्य मानता हूँ कि मैं उसका समर्थन करना बन्द कर दूँ। मैं साँपको मारूँगा नहीं, किन्तु मुझे उसे आश्रय भी नहीं देना चाहिए।

(३) यदि आपके आन्दोलनसे हिंसा फैली तो क्या आप निवृत्त होकर पहाड़ोंमें जा बसेंगे?

यदि असहयोगके फलस्वरूप हिंसा हुई, अथवा यदि असहयोगियोंने हिंसाका आश्रय लिया, अर्थात् यदि भारतवर्षने हिंसाका सिद्धान्त अपना लिया और तबतक मैं जीवित रहा तो मैं भारतमें रहना पसन्द नहीं करूँगा। तब भारतवासी होना मेरे लिए कोई गर्वकी बात नहीं होगी। मेरी देशभक्ति मेरी धर्म-भावनाके अधीन है। बच्चा जैसे

माँकी छातीसे चिपटा रहता है, वैसे ही मैं भारत-मातासे इसलिए चिपटा हुआ हूँ कि मुझे लगता है कि वह मुझे आवश्यक आध्यात्मिक पोषण देती है; यहाँ वह वातावरण है जो मेरी उच्चतम आकांक्षाओंके अनुकूल है। जब मेरा यह विश्वास खण्डित हो जायेगा, तब मैं उस अनाथके समान हो जाऊँगा जिसकी अभिभावक पानेकी आशा सदाके लिए समाप्त हो गई हो। तब हिमालयकी हिमाच्छादित शान्ति ही मेरी घायल आत्माको थोड़ा-बहुत विश्राम देगी। वैसे यह कहना अनावश्यक है कि जो हिंसा मुझे हिमालयकी ओर जानेको प्रेरित करेगी, वह भाषाकी अथवा साधारण उपद्रवोंकी हिंसा नहीं होगी, जिसे हिमालयकी याद दिलाते हुए मेरे आलोचक मेरे मुँहपर अकसर दे मारते हैं। ऐसी हिंसा असहयोगके कारण उत्पन्न हुई हिंसा नहीं है, न वह सच्चे असहयोगियोंकी हिंसा है। हिंसाके ये विस्फोट तो हमारे अनुशासनविहीन अतीतकी विरासत हैं। वह तो दिनपर-दिन काबूमें आती जा रही है। ऐसी हिंसा अत्यन्त नगण्य है और खुद उसे ही, भारतमें आज जो शान्ति सर्वत्र विराज रही है उसका एक बड़ा प्रमाण माना जा सकता है। जानबूझकर अथवा अनजाने ही परेशान करनेवाली तथा बहुधा गैरकानूनी सूचनाओंके जरिये अधिकारियों द्वारा उकसाये और भड़काये जानेपर भी जितनी शान्ति देशमें विराजमान है, यदि उतनी कायम रही तो वह हमें इस वर्षके भीतर स्वराज्य दिला देगी, क्योंकि उससे लोगोंके ध्येयकी एकता तथा उनका दृढ़ संकल्प व्यक्त होता है।

(४) यदि ऐसी हिंसा फूट पड़े, तो अन्य असहयोगियोंको क्या करना चाहिए? क्या उन्हें असहयोगका प्रचार बन्द कर देना चाहिए?

कभी अगर ऐसी तूफानी हिंसा फूट ही पड़े, तब सच्चे असहयोगी उस हिंसाको रोकनेके प्रयत्नमें अपने प्राण दे देंगे। प्रश्न ३ में यह मान लिया गया है कि बच रहनेवालोंमें मैं अकेला ही होऊँगा। लेकिन फिर भी मान लीजिए कि मैं हिमालयकी ओर चला गया। (वह तो मौतसे भागना ही होगा)। उस स्थितिमें शेष असहयोगियोंसे निश्चय ही यह आशा की जायेगी कि वे मेरे कायरतापूर्ण पलायनके बावजूद, अपने विश्वासके प्रति सच्चे रहेंगे और तबतक अपनी श्रद्धाके जीवन्त प्रमाण बने रहें, जबतक हिंसाकी लपटें उन्हें भस्मसात् नहीं कर लेतीं। उपदेशककी आवाज तब रक्तकी प्रबल बाढ़में ही डूबेगी।

(५) यदि आप पहाड़पर चले गये, तो उन बेचारे विद्यार्थियोंका क्या होगा, जिन्होंने सरकारी अथवा सरकारसे सहायता प्राप्त संस्थाओंका बहिष्कार किया है?

प्रश्नकर्ता भूल गया है कि जब भारतमें हिंसा सब जगह फैल जायेगी, तब विद्यार्थियोंकी उपस्थितिके लिए सहायता प्राप्त अथवा गैर-सहायता प्राप्त कोई स्कूल-कालेज ही नहीं होंगे। केवल उन्हीं विद्यार्थियोंसे सरकारी स्कूल-कालेज छोड़नेके लिए कहा जाता है जो उनमें रहना पाप समझते हों। उनके सम्बन्धमें ऐसी संस्थाओंमें वापस लौटनेका प्रश्न ही नहीं उठता। और मेरे पहाड़पर चले जानेसे विद्यार्थियोंके स्कूल-त्यागका क्या वास्ता है? प्रत्येक विद्यार्थीसे आशा की जाती है कि उसका और

उसके देशका सबसे अधिक हित किसमें है, इसका निर्णय वह स्वयं करे। स्वशासनके आन्दोलनको एक मनुष्यपर निर्भर नहीं बनाया जा सकता, बनाया भी नहीं जाना चाहिए। मैंने तो भारतको केवल एक नया और बेजोड़ अस्त्र दिया है, बल्कि कहिए, एक पुरातन एवं परीक्षित अस्त्रका अधिक विस्तृत पैमानेपर प्रयोग करना सिखाया है। देश उसे चाहे स्वीकार करे चाहे न करे। प्रयोग तो उसे स्वयं ही करना होगा, उसकी तरफसे मैं नहीं कर सकता। मैं तो अपने ही लिए उसका उपयोग कर सकता हूँ। यह मैंने किया है और मैं अपनेको मुक्त अनुभव करता हूँ। दूसरोंने भी किया है, और वैसा ही अनुभव वे भी करते हैं। यदि राष्ट्र इस अस्त्रका प्रयोग करेगा, तो वह मुक्त हो जायेगा।

(६) आपके असहयोग आन्दोलनने कितनी प्रगति की है?

इतनी कि मुझे लगता है स्वराज्य हमारी ओर दौड़ता आ रहा है। यदि हम यही गति बनाये रखें, तो इसी वर्षके भीतर हमारा राष्ट्र स्वतन्त्र हो जायेगा।

(७) क्या आपको खबर है कि अधिकांश असहयोगी कार्यकर्त्ता गैर जिम्मेदार हैं? क्या आपने कभी उनकी निन्दा की है?

मुझे खबर नहीं है। बल्कि इसके विपरीत, मैं यह जानता हूँ कि उनमें से अधिकांश कार्यकर्त्ता जिम्मेदार, गम्भीर, ईमानदार और वीर हैं। मैं समझता हूँ कि जहाँ-कहीं मैंने दायित्वहीनता देखी है, उसकी निन्दा की है।

(८) किन परिस्थितियोंमें आप अक्तूबरमें स्वराज्य प्राप्त करनेकी आशा करते हैं?

मैंने इन स्तम्भोंमें उन परिस्थितियोंका बहुधा उल्लेख किया है। पत्र-लेखकको पिछले अंक देखने चाहिए।

(९) क्या चरखा भारतवर्षकी गरीबीकी समस्याको हल कर देगा? यदि हाँ, तो किस प्रकार?

अब मुझे पहलेसे भी अधिक विश्वास हो गया है कि चरखेके बिना भारतकी गरीबीकी समस्या हल नहीं हो सकती। भारतके लाखों कृषक किसी भी अनुपूरक धन्धेके अभावमें आधे पेट रहते हैं। यदि वे कताई भी कर सकें और इस प्रकार अपनी अपर्याप्त आयको बढ़ा सकें, तो वे कंगाली और दुर्भिक्षसे सफलतापूर्वक संघर्ष कर सकते हैं। मिलें इस समस्याको हल नहीं कर सकती। केवल हाथकी कताई ही इसे हल कर सकती है, दूसरी कोई चीज नहीं। जब भारतवर्ष हाथकी कताई छोड़नेके लिए बाध्य किया गया तब उसके पास इसके सिवा कोई दूसरा पूरक धन्धा नहीं था। सोचिए कि उस आदमीका क्या हाल होगा जिसे अचानक मालूम हो कि वह अपने निर्वाह भरके लिए आवश्यक जीविकाके चतुर्थांशसे एकाएक वंचित हो गया है। भारतकी जनसंख्याके ८५ प्रतिशतसे भी अधिक लोगोंका एक चौथाईसे अधिक समय खाली रहता है। और इसलिए भारतके पितामहने[1] देशसे बहुत बड़ी मात्रामें धन बाहर जाते रहनेका ठीक ही

१. दादाभाई नौरोजी।

उल्लेख किया है। धन बाहर जानेकी बात छोड़ दें तो भी देशकी इतनी बड़ी जनसंख्याको जबरन निठल्ला बना देनेसे उसकी गरीबी दिन-दिन बढ़ती गई है। समस्या यह है कि शेष व्यवस्थामें कोई गड़बड़ी पैदा किये बिना राष्ट्रके इन अरबों घंटोंका उपयोग कैसे किया जाये। चरखेको पुनः चालू करना ही एकमात्र सम्भव उपाय है। मशीनोंके विषयमें मेरे अपने निजी विचारोंसे अथवा विदेशी वस्तुओंके सामान्य बहिष्कारसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। लगता है कि भारत इस वर्षके भीतर-भीतर इस उपायको पूरी तरह अपना लेगा। समस्याके साथ खिलवाड़ करना पागलपन होगा। मैं यह लेख पुरीमें[1] लिख रहा हूँ, जहाँसे मुझे हिलोरें मारता हुआ सागर दिखाई पड़ रहा है। स्वयं जगन्नाथ जहाँ विराजते हों वहाँ जीवित कंकाल-जैसे पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंकी भीड़का चित्र मेरी आँखोंके आगे घूमता रहता है। यदि मेरी चले तो मैं सभी स्कूल-कालेजों तथा अन्य सब स्थानोंमें दूसरे और सब कार्य बन्द करा दूँ और वहाँ कताईका काम शुरू करा दूँ। इन्हीं लड़कों और लड़कियोंमें से कताई-शिक्षक तैयार करूँ, प्रत्येक बढ़ईको चरखे बनानेके लिए प्रेरित करूँ और शिक्षकोंसे कहूँ कि इन जीवनदायी यन्त्रोंको घर-घर पहुँचा दो और सभीको कताई सिखाओ। यदि मेरी चले तो मैं रत्तीभर भी कपास देशसे बाहर न जाने दूँ और इन घरोंमें ही उसका सूत तैयार करा दूँ। मैं इस सूतको प्राप्त करने तथा उसे बुनकरोंमें वितरित करनेके लिए सारे भारतमें जगह-जगह डिपो खुलवा दूँ। यदि पर्याप्त संख्यामें सच्चे और प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता मिलें, तो मैं इसी वर्षके भीतर कंगालीको भारतसे निकाल बाहर करनेका काम शुरू कर दूँ। इसके लिए निस्सन्देह हमारे दृष्टिकोणमें तथा राष्ट्रकी रुचिमें परिवर्तनकी आवश्यकता है। मैं सुधारों[2] तथा उससे सम्बन्धित सभी चीजोंको अफीमके समान मानता हूँ, जो हमारे विवेकको सुला देती है। जिस समस्याकी गम्भीरता निरन्तर बढ़ती जा रही है, हम उसको धीरजके साथ हल करनेके लिए पीढ़ियोंतक ठहरनेके लिए तैयार नहीं हैं। प्रकृति शुद्ध न्याय करती है, वह उसमें कोई दया नहीं दिखाती। यदि हम जल्दी नहीं जागे, तो हमारा अस्तित्व मिट जायेगा। मैं संदेहशील सज्जनोंको उड़ीसा आनेके लिए, उसके गाँवोंमें जानेके लिए, और स्वयं यह पता लगा लेनेके लिए आमन्त्रित करता हूँ कि भारतकी असली स्थिति क्या है। तब मेरे समान उन्हें भी विश्वास हो जायेगा कि विदेशी वस्त्रकी एक चीर रखना या पहनना भी भारतके प्रति तथा मानवताके प्रति कितना बड़ा अपराध है। मैं भूखा रहकर आत्मघात नहीं कर रहा हूँ तो केवल इसलिए कि मुझे भारतके जाग उठने और इस विनाशकारी कंगालीसे मुक्त होनेके मार्गपर बने रहनेकी उसकी सामर्थ्यपर विश्वास है। ऐसी सम्भावनामें विश्वास न हो, तो मुझे जीनेकी कोई चाह बाकी नहीं रह जायेगी। मैं प्रश्नकर्त्ताको और दूसरे हर समझदार देशप्रेमीको, प्रत्येक घरमें चरखेका प्रवेश कराके कताईको देशव्यापी बनाने, और इस वर्षके भीतर-भीतर विदेशी कपड़ेके पूर्ण बहिष्कारमें सहायता करके कताईको लाभप्रद बनानेकी गौरवमयी राष्ट्रीय सेवामें भाग लेनेके लिए आमंत्रित करता

१. जगन्नाथपुरी; गांधीजी वहाँ २८ मार्च, १९२१ को गये थे।

२. १९१९के भारत सरकार अधिनियममें समाविष्ट मॉन्टेग्यु-चैम्सफोर्ड सुधार।

हूँ। मैंने सभी प्रश्नोंके उत्तर देनेका प्रयत्न किया है। व्यावहारिक दृष्टिसे सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न कताईके बारेमें था। आशा है कि भारतकी गरीबीसे निबटने-सुलझनेके एकमात्र उपायके रूपमें घर-घर कताईकी आवश्यकता मैंने सिद्ध कर दी है। तथापि मैं जानता हूँ कि इस सिद्धान्तको कार्यान्वित करनेमें कार्यकर्त्ताके सामने असंख्य कठिनाइयाँ हैं। सबसे बड़ी कठिनाई शायद ठीक चरखा प्राप्त करनेकी है। पंजाबको छोड़कर, जहाँ यह हुनर अभीतक जीवित है, अन्य स्थानोंमें यह बड़ी ही वास्तविक कठिनाई है। बढ़ई चरखा बनाना भूल गये हैं, और बेचारे कार्यकर्त्ता किंकर्तव्यविमूढ़ हैं। इसलिए निस्सन्देह ही कार्यकर्त्ताका मुख्य काम यही है कि वह स्वयं चरखा बनाने और चलानेकी कला सीख ले। मैं उनके परीक्षणके लिए कुछ साधारण कसौटियाँ रख रहा हूँ। कोई भी चरखा, जो इन कसौटियोंपर खरा नहीं उतरता, न तो स्वीकृत किया जाना चाहिए और न वितरित।

(१) चरखेका चक्का सरलतासे, बिना रुकावटके और बिना आवाज़ किये घूमना चाहिए।

(२) घुमानेका हत्था धुरीमें दृढ़ताके साथ बैठा हो।

(३) पहिया जिन डंडोंपर सधा होता है उनका मजबूतीसे बैठा होना जरूरी है। उनकी चूलें ठीक होनी चाहिए।

(४) तकुआ बिना आवाज किये तथा चमरखोंमें बिना कम्पन उत्पन्न किये घूमना चाहिए। चमरखे जबतक या तो पंजाबके समान मूँजके या मजबूत कपड़ेके नहीं बनाये जाते, तबतक चरखेकी कर्कश ध्वनि दूर नहीं होगी।

(५) कोई भी चरखा सुनिर्मित नहीं कहा जा सकता, यदि वह किसी अभ्यस्त कातनेवालेके हाथसे एक घंटेमें छः नम्बरका कमसे-कम २½ तोला सम और ठीक बटका सूत न निकाल सके। मैं एक लड़केको जानता हूँ, जिसका अभ्यास शायद तीन महीनेसे अधिकका नहीं था, फिर भी उसने ३५ मिनटमें इस किस्मका ढाई तोला सूत काता। चरखा उपयोगके लिए तबतक नहीं दिया जाना चाहिए जबतक वह कमसे-कम पूरे एक घंटेतक इस ढंगसे चलाकर देख लेनेपर सन्तोषजनक न पाया गया हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया ६–४–१९२१

२७२. भाषण : चिरलामें

६ अप्रैल, १९२१

गांधीजीने कहा कि आन्ध्र प्रदेशके दौरेमें लोगोंने सभी जगह मुझपर जो अपार स्नेह बरसाया है उससे मैं आनन्दविभोर हो उठा हूँ। मैं आफ्रिकामें अनेक बार जेल गया और जब-जब मुझे रिहा किया गया, मुझे दुःख हुआ। जिन्हें जेल जानेका सौभाग्य प्राप्त होता है, मुझे उन लोगोंसे ईर्ष्या होती है; क्योंकि मुझे ऐसी शासन-व्यवस्थाके अन्तर्गत, जिसने मनुष्यकी आत्मा और मर्दानगीका हनन कर डाला हो और उसे सामान्य अधिकारोंसे भी वंचित कर रखा हो, रहनेकी अपेक्षा जेलकी चारदीवारीके भीतर अधिक स्वतन्त्रताका अनुभव होता है। मेरी समझमें जो लोग जेल गये हैं वे प्रशंसाके अधिकारी हैं। मैं चिरलाकी महिलाओंको, अपनेमें से जेल जानेके लिए कमसे-कम एक महिला[1] प्रस्तुत कर सकनेके लिए बधाई देता हूँ। मैं आप लोगोंको संघर्षमें अहिंसाकी भावनाको बनाये रखनेके लिए बधाई देता हूँ। मुकदमेके कागजात पढ़नेसे — मैंने उसकी एक-एक पंक्ति पढ़ी है — मैं इस नतीजेपर पहुँचा हूँ कि यह एक अच्छा मुकदमा है। मेरी रायमें सर्वसम्मतिसे लोगोंके विरोधमें होनेपर भी सरकारने आप लोगोंपर म्युनिसिपैलिटी थोपकर बड़ी जबर्दस्त भूल की है। किन्तु यह तो आप अपनी कठिनाइयोंका प्रारम्भ ही समझें। सम्मानित पुरुष तथा महिलाएँ होनेके नाते आप लोगोंके समक्ष केवल दो ही रास्ते हैं: एक तो सविनय अवज्ञात्मक असहयोग करना या मुसलमानोंके शब्दोंमें "हिजरत" अर्थात् तुलसीदासजीके शब्दोंमें "देशत्याग" करना। मेरी रायमें दोनों ही शस्त्र एक समान शक्तिशाली और कारगर हैं। आप लोग कांग्रेसके समर्थनपर निर्भर न रहें बल्कि स्वयं अपने मजबूत बाजुओंके बलपर यानी तपश्चर्याके द्वारा ही संघर्ष करें। वहाँके विश्वसनीय नेता श्री दुग्गीराला गोपालाकृष्णय्याकी[2] खासी प्रशंसा करनेके बाद उन्होंने लोगोंसे कहा कि वे अहिंसाके अनुपम सौन्दर्यको समझनेकी कोशिश करें। चरखेको भारतका जीवन-दाता बताते हुए उन्होंने कहा:

चिरलाके स्त्री-पुरुष क्या करते हैं इसे मैं श्रद्धाके साथ देखता रहूँगा। भारतके इतिहासमें आप एक नवीन युगके द्वारपर खड़े हैं। समस्त भारत आपकी ओर निहार रहा है। यदि आप अपने वचनको पूरा नहीं करते या एक भी बड़ी गलती करते हैं तो लज्जाकी बात होगी। आप अहिंसाका पालन करें और परमात्माको साक्षी करके समस्त संसारको चुनौती दें। परमात्मा चिरलाके पुरुषों और स्त्रियोंका कल्याण करे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ९–४–१९२१

१. सरकार द्वारा जनतापर थोपी गई नगरपालिकाको मान्यता देनेसे इनकार करनेपर एक महिला तथा चिरलाके ११ अन्य देशभक्तोंको कारावासका दण्ड दिया गया था।

२. रामनगर आश्रमके संस्थापक।

२७३. भाषण : नेलौरके तिलक विद्यालयमें[1]

७ अप्रैल, १९२१

तिलक विद्यालयके उद्‌घाटनके अवसरपर गांधीजीने उस संस्थाके न्यासियोंसे आग्रह किया कि आप लोग अपना ध्यान तथा शक्ति एक ही महत्वपूर्ण बात अर्थात् स्वराज्य-की प्राप्तिपर केन्द्रीभूत करें; सूत कातना तथा कपड़ा बुनना कांग्रेस प्रस्तावके अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग हैं। मैं नहीं चाहता कि न्यासी-गण इस संस्थाके लिए अलगसे चन्दा इकट्ठा करें क्योंकि इससे हाल ही में शुरू किये गये परमावश्यक तिलक स्वराज्य कोष-पर असर पड़ेगा। इसमें एक करोड़ रुपये एकत्रित होना आवश्यक है। चंदा केवल एक ही कामके लिए माँगा जाना चाहिए। न्यासियोंको चाहिए कि वे किसी भी योज-नाको शुरू करनेसे पहले प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके प्रधानसे परामर्श कर लें। स्वराज्य बाहुबलसे ही प्राप्त नहीं होता। वह तो अनुशासित विचार और अनुशासित कार्यके द्वारा प्राप्त होता है। मैं न्यासियोंको देशके सामने बड़ी-बड़ी शिक्षा योजनाएँ रखनेके खतरेके विरुद्ध चेतावनी देता हूँ। देशके सम्मुख केवल एक ही शिक्षा-योजना है और वह है स्वराज्य प्राप्त करना। मैं इस नवीन संस्थाकी उन्नति और समृद्धि चाहता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-४-१९२१

२७४. भाषण : नेलौरकी सार्वजनिक सभामें[2]

७ अप्रैल, १९२१

प्यारे हिन्दू और मुसलमान भाइयो,

मैं खड़े होकर बोलनेमें असमर्थ हूँ इसके लिए आप मुझे क्षमा करें। मुझे आपसे इस कारण भी क्षमा माँगनी है कि मैं समयपर उपस्थित नहीं हो पाता हूँ, लेकिन इसके लिए मैं अपनेको दोषी नहीं मानता। बहनोंकी सभामें[3] जितना समय देनेकी मैं आशा कर रहा था, वहाँ उससे कहीं अधिक समय लग गया। मेरे लिए यह बिलकुल सम्भव था कि मैं शामका भोजन त्यागकर महिलाओंकी सभासे सीधा

१. तिलक जातीय विद्यालयके उद्‌घाटनके समय दिया गया भाषण। इस राष्ट्रीय स्कूलकी स्थापना वी० वी० एस० गारूने की थी। श्री गारूने कांग्रेसके आदेशपर वकालत छोड़ दी थी। इस अवसरपर विद्यालयके विद्यार्थियों द्वारा एक रात पहले हाथके कते सूतसे बुने हुए दो थान गांधीजीको भेंट किये गये।

२. नेलौर नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दन पत्रके उत्तरमें।

३. गांधीजी इस सभामें आनेसे पहले स्त्रियोंकी एक सभामें गये थे। यह सभा नेलौरके टाऊन हॉलमें की गई थी।

यहाँ चला आता। लेकिन मैंने अपने मनमें यही सोचकर सन्तोष मान लिया कि आप लोग यह कदापि पसन्द न करेंगे कि मैं ऐसा निर्णय करूँ। मैं इससे पहले नेलौर न आ सका, इसके लिए भी आप मुझे क्षमा कीजिएगा।

जैसे ही मैंने सुना कि नेलौरके हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच अनबन है, मैंने यहाँ आने तथा आप लोगोंके बीच कुछ समय बितानेका विचार कर लिया था। मैं यह जानना चाहता था कि ऐसे कौन हिन्दू या मुसलमान हैं जो यह पसन्द करें कि चाहे स्वराज्य विलम्बसे मिले, चाहे खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका निवारण न किया जाये, लेकिन हम अपना लड़ना-झगड़ना बन्द नहीं कर सकते। आप कहते हैं कि यह नगर बहुत प्राचीन है। मैं आशा करता हूँ कि आप भारतके अन्य भागोंसे पीछे नहीं रहेंगे और न दूसरोंको अपने विषयमें यह कहनेका मौका देंगे कि नेलौरके हिन्दू और मुसलमान आपसमें भाई-भाईकी तरह नहीं रह सकते। मैं अनेक कारणोंसे अबतक यहाँ नहीं आ पाया था, किन्तु मैंने आप लोगोंके झगड़ेका कारण जाननेका प्रयत्न किया। आप यह कहनेके लिए मुझे क्षमा करें कि वे कारण भी उतने ही निन्द्य हैं जितनी इन दो बड़ी जातियोंके बीच पैदा हुई फूट निन्द्य है। मुझे मालूम हुआ है कि नेलौरके मुसलमान, अथवा यों कहा जाये कि नेलौरके अधिकांश मुसलमान, हिन्दुओंको ऐसे उत्सव नहीं मनाने देते जिनमें बाजा या संगीत आवश्यक हो। वे मसजिदोंके सामनेसे बाजेके साथ कोई जुलूस नहीं निकलने देते। मुसलमानोंका कहना है कि कुछ ही बरसों पहले यहाँके हिन्दू निवासी गाजे-बाजेके साथ ऐसा कोई जुलूस निकालनेकी माँग पेश भी नहीं करते थे। हिन्दू लोग क्या कहते हैं सो मुझे मालूम नहीं है। मैं यहाँ अपने हिन्दू तथा मुसलमान भाइयोंके सम्बन्धमें कोई निर्णय देनेके लिए नहीं आया हूँ। लेकिन हिन्दू-मुस्लिम एकताका एक विशेषज्ञ होनेकी हैसियतसे मैं पूर्ण विनयके साथ आपके समक्ष आपके मनन तथा आपकी स्वीकृतिके लिए कुछ ऐसे मौलिक सिद्धान्त प्रस्तुत करना चाहता हूँ जो स्थायी हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए अनिवार्य हैं। एक सनातन-धर्मावलम्बी हिन्दू होनेके नाते, अपने धर्मका ध्यान रखते हुए और यह आशा करते हुए कि यदि हिन्दू धर्म कसौटीपर चढ़ा हो तो एक सनातनी हिन्दू होनेकी हैसियतसे मैं इसके निमित्त अपने प्राणोंका बलिदान करनेके लिए सबसे पहली कतारमें खड़ा हूँगा। सर्वप्रथम मैं अपने हिन्दू भाइयोंसे कहना चाहता हूँ कि यदि आप अपने देशवासी मुसलमानोंके साथ शान्ति और मैत्रीके साथ रहना चाहते हैं तो ऐसा करनेका केवल एक ही मार्ग है कि किसी भी दशामें उनकी धार्मिक उत्कटतापर आघात न करें और यह अनुभव करते हुए भी कि उनकी माँगें अनुचित और अन्यायपूर्ण हैं, आप झुक जायें और उनकी बात मान लें। लेकिन उस अनुचित माँगके सामने झुक जानेके साथ एक शर्त भी है, वह यह कि उनकी माँगें आपके धार्मिक सिद्धान्तोंके अति महत्वपूर्ण अंगोंका अतिक्रमण न करती हों। मैं एक घरेलू उदाहरण देता हूँ। यदि मेरे देशके मुसलमान भाई यह माँग करें कि अपने मन्दिर जाना मैं बन्द कर दूँ तो मैं उनकी माँग कदापि पूरी न करूँगा, फिर उनकी दोस्ती हासिल हो या न हो; और ऐसा करनेमें मुझे अपने प्राण भी भले ही न्यौछावर क्यों न करने पड़ें। गायकी रक्षा करना मैं

अपने प्राणोंके समान ही प्रिय मानता हूँ और यदि मेरे मुसलमान भाई मुझसे गायकी रक्षाकी बात छोड़ देनेके लिए कहें तो भी, बजाय इसके कि गो-रक्षा छोड़कर उनकी दोस्ती मोल लूँ, मैं मर जाना पसन्द करूँगा। लेकिन जब वह मुझे मसजिदके पाससे गुजरते हुए कुछ गजकी दूरीपर बाजा बन्द करनेको कहें तो मैं बहसमें पड़नेके बजाय उनकी बात तुरन्त मान लूँगा। लोग मेरे इस कथनका विश्वास करें कि हिन्दू-धर्मका यह कोई आवश्यक अंग नहीं है। और यह तो मेरे धर्मका आवश्यक अंग है ही नहीं कि मैं मसजिदके पाससे गुजरते हुए बाजा बजाऊँ अथवा गाऊँ। मैं अपने मुसलमान भाइयोंकी ऐसी किसी भी माँग, यहाँतक कि पूर्वाग्रहके सामने झुकनेमें भी नहीं हिंच-किचाऊँगा। इसलिए, यदि मैं नेलौरका निवासी होता तो मैं इस प्रकारके मामलेको पंच-फैसलेके लिए किसी औरके सामने न जाने देता। मुसलमान भाइयोंके साथ सभी गैरबुनियादी बातोंपर समझौता करके तथा छोटी-मोटी बातोंपर टंटे बन्द करके ही हमारी उनकी स्थायी मित्रता निभ सकती है। दोस्तीमें सौदेबाजीके लिए गुंजाइश कहाँ है? हरएक गैरबुनियादी समस्याके सम्बन्धमें मैं अपने मुसलमान भाइयोंके सामने झुक जाता हूँ। मेरे लिए ऐसा करना स्वाभाविक ही है; क्योंकि मेरा धर्म मुझे सारी दुनियाके साथ शान्तिसे रहनेका आदेश देता है; फिर मुझे इसके लिए जीवनका त्याग ही क्यों न करना पड़े। इसलिए यदि नेलौरके हिन्दू मुझसे यह पूछें कि जब हम मुसल-मान भाइयोंकी माँगको अनुचित और अन्यायपूर्ण समझते हैं, तब हमें क्या करना चाहिए, तो मैं कहूँगा कि "बहसमें मत पड़िए; उस अनुचित और अन्यायपूर्ण माँगको मान लीजिये। क्योंकि यदि हम इन मामूली झगड़ोंके सम्बन्धमें बहस करने लगे, तो दुनिया हमें उन बच्चोंकी तरह मानेगी जो अपने देशके शासनकी क्षमता नहीं रखते।" और इसलिए अगर मुझसे यहाँके हिन्दू ऐसा कहें कि मुझे दी गई यह सूचना गलत है कि कुछ साल पहले हिन्दुओंने कभी मस्जिदके पाससे गुजरते हुए बाजा बजानेका अधिकार व्यक्त नहीं किया तो स्पष्ट ही उसका भी कोई अर्थ है। धार्मिक जीवनके ऐसे खेल-तमाशोंके लिए — इन चीजोंको मैं खेल-तमाशे ही कहता हूँ, सुखदाई खेल-तमाशे ही कहता हूँ — मैं अपने मुसलमान भाइयोंकी मर्जीपर ही निर्भर रहूँगा। सोचकर देखिए; कदाचित् नेलौरमें हिन्दू ४२ से ४५ हजारके बीचमें हैं। मुसलमान केवल ७ हजार हैं। इसलिए हिन्दुओंको मुसलमानोंका हित बड़े भाई होनेके नाते ट्रस्टियोंकी भाँति सुरक्षित रखना चाहिए। आपकी शराफत या स्वराज्य पानेकी योग्यताका तकाजा है कि प्रबल पक्ष होनेके कारण आप लोग स्वयं निर्बल पक्षकी रक्षाका सुखद भार ओढ़ें। अपने मुसलमान भाइयोंसे मैं यह कहूँगा कि आप कभी कोई अनुचित माँग पेश करनेका विचार न करें। अपने हिन्दू-भाइयोंके पूर्वग्रहों तथा भावनाओंका अध्ययन करना आपका काम होना चाहिए। जिन बातोंको आप उनकी कमजोरी समझते हैं उनके सम्बन्धमें आपके दिलोंमें गुंजाइश रहनी चाहिए। अगर खुदा पाकने हश्रके दिन यह पाया कि आप लोगोंने मसजिदोंके सामने नमाजके समय बाजे बजानेपर आपत्ति नहीं की और उस खललको बर्दाश्त कर गये तो वह आपको गुनहगार नहीं ठहरायेगा। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि जब आप उस फैसलेके दिन सर्वशक्तिमान परमेश्वरसे यह कहेंगे कि हम मजबूर थे, क्योंकि हम हिन्दू भाइयोंके पूर्वग्रहोंका आदर

करना चाहते थे, तब वह सर्वशक्तिमान परमेश्वर, जिसे आप रहीम भी कहते हैं, आपकी नम्रतापूर्ण और शान्त उक्तिको स्वीकार कर लेगा। दोस्तीका — भाईचारेका — इम्तिहान इसमें है कि प्रत्येक पक्षके दिलमें दूसरेकी कमजोरीके लिए गुंजाइश रहे और मैं जानता हूँ कि हश्रके दिन उस पक्षकी जीत होगी जो यह दिखा सकेगा कि मामूली बातोंकी हदतक वह सदैव झुकनेको तैयार रहता था। उस महान् पैगम्बरका जीवन आप लोगोंके लिए महत्वहीन बातोंमें झुक जानेकी जिन्दा मिसाल पेश करता है। लेकिन मैं नेलौरके हिन्दू तथा मुसलमान भाइयोंसे कहता हूँ कि वे अपने मतभेदोंके विषयमें एकमत हों या न हों, वे एक-दूसरेके आगे झुकनेको तैयार हों या न हों, वे आवश्यक अथवा अनावश्यक तथ्योंके बारेमें समझौते करें या न करें, मगर यह उसकी मर्यादाके विरुद्ध है कि हिन्दू अथवा मुसलमान एक-दूसरेका गला काटें, एक-दूसरेपर पत्थर फेंकें तथा एक-दूसरेके प्रति हिंसा करें। आप लोगोंके बीचमें न्यायाधिकरण या पंचायतें बनानेके लिए दोनों जातियोंके विश्वसनीय तथा चुने हुए नेता होने चाहिए। ये पंचायतें दोनों जातियोंके समस्त धार्मिक झगड़ोंका निबटारा करें और यदि उन्हें उसके निर्णयसे सन्तोष नहीं होता है तो वे या तो कांग्रेसके पास अथवा खिलाफत कमेटीके पास जाकर झगड़ेका निबटारा करा सकते हैं। अन्ततः मैं मौलाना शौकत अलीकी वह सलाह दुहराना चाहता हूँ जो वे हिन्दू तथा मुसलमान दोनोंको कई बार दे चुके हैं। यदि कोई मुसलमान अपने हिन्दू पड़ोसियोंसे चिढ़ने लगे और उनके प्रति मनमें क्रोधकी भावना भर जाये, यहाँतक कि वह अपने आपको रोक न सके और अपने हिन्दू-भाईको ठीक सजा देनेकी बात सोचने लगे तो उसे महात्मा गांधीके पास जाकर उनका सिर काट डालना चाहिए। इसी प्रकार मैं भी यह कहता हूँ कि यदि हिन्दू लोग मुसलमान पड़ौसियोंके प्रति सन्तापकी भावना अपने दिलोंमें लाते हैं और उनके साथ झगड़ा करना चाहते हैं तो उन्हें अपने मुसलमान पड़ौसियोंपर हाथ नहीं उठाना चाहिए बल्कि उन्हें खुद शौकत अलीके पास जाना चाहिए; यद्यपि वह बहुत जोरावर और मोटे-ताजे शख्स हैं तथापि वह इस प्रकारकी निश्चित प्रतिज्ञा करते हैं कि कोई भी हिन्दू बच्चातक उनके धड़से उनके सरको अलग कर सकता है। हिन्दुओं तथा मुसलमानोंको यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि स्वराज्यकी आधारशिला, भारत-की स्वतन्त्रताकी बुनियाद, हिन्दू-मुस्लिम एकता है। यह बात दोनों जातियोंको हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि जहाँतक खिलाफतका प्रश्न है भारतकी शक्तिसे इस्लामकी सुरक्षा तभी सम्भव हो सकती है जब हिन्दू-मुस्लिम एकता सचमुचमें उनके जीवनका एक अंग बन जाये। हिन्दुओंको भी समझ लेना चाहिए कि इस्लामकी सुरक्षाके लिए उनके बिना किसी शर्त दिये गये हार्दिक और पूर्ण योगदानमें, हिन्दूधर्मकी रक्षा निहित है। इसलिए मेरे प्यारे नेलौर-निवासी देशवासियो, मैं आप दोनोंसे प्रार्थना करता हूँ कि आप चाहे हिन्दू हों अथवा मुसलमान, अपने छोटे-मोटे झगड़ोंको मिटा डालें, लड़ना बन्द करें और इस पवित्र सप्ताहमें[1] अटल संकल्प करें, ईश्वरके समक्ष विनम्र भावसे प्रार्थना करें कि वह आपको भी ऐसी शक्ति और बुद्धि प्रदान करे कि आप एक-दूसरेके साथ

१. राष्ट्रीय सप्ताह ६ से १३ अप्रैलतक।

शान्तिपूर्वक रह सकें। इस बातका दृढ़ संकल्प कीजिए कि आप एकतासे उत्पन्न अपनी सारी अद्वितीय शक्ति भारतको आजादी दिलाने, इस्लामको स्वतन्त्र बनाने तथा पंजाबके खोये हुए मानको पुनः प्राप्त करनेमें लगायेंगे। हिन्दू तथा मुसलमान दोनोंने, आज दिनमें मुझे बताया है कि इन अहितकारी तुच्छ मतभेदोंके कारण नेलौरमें जिस हदतक असहयोग आन्दोलन तथा खिलाफतका कार्यक्रम किया जा सकता था, नहीं किया जा सका। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि कल सूर्योदयके पूर्व ही आप लोग अपने झगड़े खत्म कर देंगे और कल प्रातःकालसे एक विचारशील एवं बुद्धिमान व्यापारीकी भाँति आप अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा निर्धारित कार्यक्रमका पालन करेंगे। तिलक स्वराज्य कोषके लिए जिसे आपने आजसे आरम्भ किया है, दान लेना-देना जारी रखेंगे और तबतक सन्तुष्ट न होंगे जबतक कांग्रेस रजिस्टरमें प्रत्येक वयस्क पुरुष तथा स्त्रीका नाम, वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान, दर्ज न हो जाये।

अब समय आ गया है कि आप लोग विदेशी वस्त्रका एक चीर पहनना भी पाप समझने लगें। मुसलमानोंको समझ लेना चाहिए कि विदेशी वस्त्र धारण करना इस्लामकी अधोगतिका द्योतक है तथा हिन्दुओं और मुसलमानों दोनोंको चाहिए कि वे विलायती कपड़ा पहिननेको गुलामीका बिल्ला समझें। मैं यह भी कहूँगा कि आप लोग कपड़ोंके लिए अहमदाबाद और बम्बईका मुँह न ताकें, बल्कि अपनी स्थानीय आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए स्वयं कपड़ा तैयार कर लिया करें। इस प्रकार स्वावलम्बी बनना आप अपने मान और मर्यादाकी बात समझें। एक अनुभवी कातने-बुननेवालेकी हैसियतसे मैं जो-कुछ कह रहा हूँ उसे सत्य मानिये। एक महीनेकी अवधिमें अपनी जरूरतका सारा कपड़ा तैयार कर लेना, नेलौरके ५२,००० पुरुष तथा स्त्रियोंके लिए बिलकुल सरल है। कल एक बुनकरने रात-भरमें ही मेरे लिए पूरे साल-भरका कपड़ा तैयार कर दिया। गत रात्रिको तैयार किया गया वह पवित्र वस्त्र मेरे पास मौजूद है तथा उसपर मुझे अभिमान है।[1] इसलिए मैं आपसे कहता हूँ कि आपसी हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों तथा अन्य प्रकारके झगड़ोंसे अपना ध्यान हटाकर उसे राष्ट्रके सामने उपस्थित मुख्य लक्ष्यपर केन्द्रीभूत करें। मद्यपान, जुआ, झूठ तथा अन्य बुरी आदतोंको बिलकुल छोड़ दें। मेरे तथा आप लोगोंके नामसे की गई इस घोषणाका कि यह असहयोगका संघर्ष आत्मशुद्धिका संघर्ष है, यथावत् पालन करें। अन्ततः मैं आपसे यह स्मरण रखनेके लिए कहूँगा कि राष्ट्रीय सप्ताह अभी समाप्त नहीं हुआ है। इस सप्ताहका दूसरा दिन आज शामको ही समाप्त हुआ है। पूरे पाँच कीमती दिन अभी बाकी हैं। हमें इन पाँचों दिनोंका उत्तम उपयोग करना चाहिए। मैं आपसे आग्रहपूर्वक निवेदन करता हूँ कि इन पाँच दिवसोंमें आप सभी हिन्दू मुसलमान आपसमें मेल बढ़ानेकी ज्यादासे-ज्यादा कोशिश करें। प्रत्येक हिन्दूसे मैं यह आग्रह करूँगा कि उसे जब कभी कोई मुसलमान भाई मिले तो पहले जरूरी न होनेपर भी खुशी और मुस्कराहटके साथ उसे नमस्कार करे। इसी प्रकार मैं यहाँ मौजूद अपने प्रत्येक मुसलमान भाईसे कहूँगा कि जब वह किसी हिन्दूको मिले तो वह हर्ष और मुस्कराहटके साथ नमस्ते, सलाम या वन्देमातरम्

१. देखिए "भाषण : नेलौरके तिलक विद्यालयमें", ७-४-१९२१ की पाद-टिप्पणी।

कहे। आप लोग इन ५ या ६ दिनोंमें पारस्परिक अविश्वास, सन्देह तथा अस्वच्छतासे बचनेका विशेष रूपसे प्रयत्न करें और सप्ताहके अन्तमें शुद्धात्मा होकर स्वराज्यके लिए अधिक अच्छे पात्र तथा खिलाफतकी रक्षा तथा पंजाबके सम्मानको पुनः स्थापित करनेके लिए अधिक योग्य बनकर सामने आ सकें।

ईश्वर आपको अपना पवित्र उद्देश्य सफलतापूर्वक पूरा करनेकी क्षमता दे। मेरा विश्वास है कि आप अपना पूरा ध्यान उसे पूरा करनेकी दिशामें लगायेंगे।

मैं आपसे शान्ति बनाये रखने और अपनी जगह न छोड़कर इसी प्रशंसनीय मनोवृत्तिको कायम रखनेका अनुरोध करूँगा ताकि तिलक स्वराज्य कोषके लिए अधिकसे-अधिक दान इकट्ठा करनेमें स्वयंसेवकोंको सुविधा हो। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही ने शान्ति तथा शिष्टताके साथ मेरा भाषण सुना है, उसके लिए मैं आप सबको धन्यवाद देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १२-४-१९२१

२७५. भाषण : मद्रासकी सार्वजनिक सभामें

८ अप्रैल, १९२१

सभापति महोदय[1] और मित्रो,

सदैवकी भाँति आप मुझे खड़े होकर भाषण न दे सकनेके लिए क्षमा करेंगे। अभी आपने पूर्णकुम्भका[2] पूजन होते देखा है। इसके पूजनमें एक शुभकामना और हम सबकी यह प्रार्थना भी निहित है कि जो अनुष्ठान भारतवर्षमें प्रारम्भ किया गया है वह सफल हो। जिन मित्रोंने इस अनुष्ठानमें सहायता प्रदान की है तथा उनको भी जिनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ, मैं धन्यवाद देता हूँ। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि इस आन्दोलनमें वे सभी लोग जो भी इस देशको अपना मानते हैं — हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, अ-ब्राह्मण, ईसाई, पारसी, यहूदी — एक दूसरेके साथ हैं लेकिन मैं इस सभाका तथा इस कुम्भ-पूजनके व्यवस्थापकोंका ध्यान उस विदेशीपनकी ओर दिलाना चाहता हूँ जो इस पूजामें दिखाई दिया है। आपने कुम्भके चारों ओर फूलोंकी सजावट देखी। यह फूल कागजके थे। आपने उस वस्त्रको भी देखा होगा जो कुम्भपर लपेटा गया था; वह विदेशी था। मेरा खयाल है कि भारतके लिए यह समझ लेनेका समय आ पहुँचा है कि विदेशी कपड़ा दासताका बिल्ला है और विदेशी कपड़ा भारतमें इस्लामके पतनका सूचक है। जितना अधिक मैं भारतके आर्थिक, राजनैतिक, चारित्रिक तथा धार्मिक उद्धारके बारेमें सोचता हूँ और जितना ही अधिक मैं खिलाफतके सवालपर सोचता हूँ मेरा यह विश्वास उतना ही दृढ़ होता जाता है कि यदि खिलाफत

१. एस० कस्तूरी रंगा आयंगार।
२. पवित्र जलसे भरा हुआ घड़ा, जो अतिथिके स्वागतार्थ अर्पित किया जाता है।

सम्बन्धी अन्यायको भारतके द्वारा दूर होना है अर्थात् भारतके हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके द्वारा ठीक होना है और यदि भारतको इसी सालके अन्दर स्वराज्य हासिल करना है, तो कमसे-कम अपनी मातृभूमिके प्रति हमारा यह कर्त्तव्य जरूर है कि हम हर कीमतपर विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार करें। जैसा कि मौलाना मुहम्मद अलीने अपने कलकत्तेके हाल ही में दिये गये भाषणमें कहा है "१०० वर्ष पूर्व या उससे भी अधिक समय हुआ हमने चरखेको विदा कर दिया और गुलामी मोल ले ली।" इसलिए मैं प्रस्ताव-के सबसे मुख्य भागकी ओर आप लोगोंका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ जो असहयोगके कार्यक्रमके कई महीनेतक चल चुकनेके पश्चात् अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा पास[1] किया गया था।

३० जूनसे पहले एक करोड़ रुपया जमा करनेमें हमारा यह मंशा नहीं है कि हम उस रुपयेसे इंग्लैंड, अमेरिका अथवा दुनियाके अन्य किसी भागमें अपना शिष्टमण्डल भेजने या विदेशोंमें प्रचार करनेमें खर्च करेंगे, बल्कि हम उस राशिको — उससे भी बड़ी राशिको — भारतके प्रत्येक गृहमें चरखेका प्रवेश करानेके लिए खर्च करेंगे। हम उस राशिको इसलिए चाहते हैं कि समस्त द्रविड़ प्रदेशके[2] उन कार्यकर्त्ताओंको भरण-पोषण मात्रके लिए रुपया दिया जा सके जो चरखा प्रचारके कामको हाथमें लेकर कार्यक्षेत्रमें उतरेंगे। अभी उस दिन मैं मसूलीपट्टममें था तथा मुझे आसपासके कुछ ग्रामोंमें जानेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ था। उन गाँवोंमें आज भी हमारी बहनें सुन्दर बारीक सूत कातती हैं — धनके लिए नहीं बल्कि प्रेमके कारण (हर्ष ध्वनि)। इसलिए यदि आप इसी सालके अन्दर ही स्वराज्य प्राप्त करनेमें, खिलाफत तथा पंजाबके साथ किये गये अन्यायको दूर करानेमें सहायक होना चाहते हैं तो मैं आशा करता हूँ कि आप इस पवित्र राष्ट्रीय सप्ताहमें ही अपने सब विदेशी वस्त्रोंको फेंक देनेका दृढ़ संकल्प करेंगे। मैं अपने मन्दिरों और मस्जिदोंमें विदेशी वस्त्रका एक टुकड़ा भी देखना पाप समझता हूँ। अब मैं अन्य विषयोंपर आता हूँ।

मुझे यह जानकर खुशी होती है कि हमारा आन्दोलन जितनी ही अधिक उन्नति करता जाता है उतना ही अधिक हमारे देशवासियोंको विश्वास होता जाता है कि हमारी लड़ाईकी सफलता यदि पूरी तौरपर नहीं तो मुख्यतया अहिंसापर निर्भर है। मेरी रायमें हमारी अहिंसा हमारे असहयोग कार्यक्रमका सबसे प्रमुख भाग है। लेकिन हमारी इस अहिंसाको उसपर पड़नेवाले कठिनसे-कठिन दबाव तथा बड़ेसे-बड़े संकटको झेलना होगा। मैंने अभी सुना है कि मलाबारमें किसी स्थानपर एक असहयोगी पिताको अपने पुत्रके प्रति पुलिसके कुछ सिपाहियों द्वारा अकारण ही किया गया हिंसा कृत्य देखना पड़ा। मुझे अब भी आशा है कि यह समाचार गलत है, या मेरे पास यह समाचार लानेवाले सज्जनोंने जो बयान इकट्ठे किये हैं उन्हींमें कोई दोष या कोई भूल रह गई है। लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिए कि यह अथवा इसी प्रकारकी अन्य कोई चीज इस शासन-व्यवस्थामें अथवा अन्य किसी सरकारमें असम्भव नहीं हो सकती (हँसी)। इसे हम दो वर्ष पूर्व मार्शल लॉके दिनोंमें पंजाबमें प्रचुर मात्रामें

१. देखिए "प्रस्ताव : अ० भा० कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें", ३१-३-१९२१।
२. दक्षिण भारत।

देख चुके हैं। हमारी नीतिकी विजयकी सबसे महत्वपूर्ण घड़ी वही होगी जब हम किसी प्रकारकी हिंसा किये बिना कड़ीसे-कड़ी यातना सह सकेंगे। इस सरकारको या तो भारतके प्रति किये गये अन्यायों — घोर अन्यायों — के लिए खेद प्रकट करना होगा, अथवा उसे दमनकी प्रणालीका सहारा लेकर भारतको अपने अधीन बनाये रखना होगा। जब मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि डायरशाही और ओ'डायरशाही कोई विच्छिन्न घटना नहीं है बल्कि भारतको हर हालतमें अपने अधीन बनाये रखनेपर तुली हुई सरकारकी सुनिश्चित नीति ही है, मैंने केवल तभी इस शासनप्रणालीको शैतानियतसे भरी शासनप्रणाली कहना शुरू किया। लेकिन असहयोगियोंके सामने केवल एक ही मार्ग है। वह यह कि हम अपनी विचारशक्तिको अपने अन्तःकरणकी ओर प्रेरित करें; आत्मशुद्धि करें और कोई हमें कितना ही क्यों न उकसाये हम उत्तेजित न हों। इसलिए मैं उन लड़कोंके पिताओंसे, जो असहयोग आन्दोलनके किसी भी काममें लगे हुए हैं तथा प्रचारकार्यमें सक्रिय रूपसे भाग लेनेवाले स्वयं असहयोगियोंसे भी, निवेदन करता हूँ कि वे यह अच्छी तरह समझ लें कि यदि वे अपना यह काम चालू रखते हैं तो उन्हें इसे यह मानकर करना चाहिए कि उनके प्रति हिंसा बरती जा सकती है किन्तु फिर भी उन्हें बदलेमें हिंसा नहीं करनी है। यदि भारत परीक्षाके इस वर्षमें — उसके लिए तो यह वर्ष आत्मशुद्धिका वर्ष है — और कुछ न करे फकत आत्मनियन्त्रणसे काम लेता रहे तो विश्वास कीजिए कि हमारी प्रगतिमें अथवा भारतमें इसी वर्षके भीतर स्वराज्य स्थापित होनेमें आड़े आनेवाली मुझे कोई चीज दिखाई नहीं पड़ती। यदि आपके हृदयमें ईश्वरके प्रति आस्था है — ईश्वरमें विश्वास न रखनेवाला व्यक्ति असहयोगी हो ही नहीं सकता है — यदि आप त्याग, आत्मशुद्धि और प्रार्थनाके इस सप्ताहमें ईश्वरके प्रति विश्वास रखते हैं तो आप एकाग्रचित्त होकर ईश्वरोपासनाके समय परमात्मासे यह याचना करें कि वह हम सबको, पूरे भारतवर्षको ऐसी शक्ति प्रदान करे, जिसके बलपर हम लोग इस सरकार द्वारा हमारे प्रति बरती गई सब प्रकारकी हिंसा सहन कर सकें।

यह तो और भी अधिक जरूरी है कि हम असहयोगी अपने शब्दोंको तौलकर बोलें, अपनी गतिविधियोंको संयमित रखें और उनमें किसी भी प्रकारकी हिंसाका भाव न आने दें। हमारी किसी भी बातमें उसकी गन्ध नहीं होनी चाहिए। यदि हम केवल इतना ही करें कि स्व० प्रेसीडेन्ट क्रूगरके शब्दोंमें "आत्मशुद्धिके इस दौर"को बदस्तूर कायम रखें तो हम इसी वर्षमें संसारको चकित कर देंगे। क्योंकि हमने न केवल मद्रास अहातेमें बल्कि मध्य प्रान्तमें, संयुक्त प्रान्त तथा भारतके अन्य भागोंमें दमनके अतिरिक्त और देखा ही क्या है? सर विलियम विन्सेंटके इनकारके बावजूद भी मैं आज आपके समक्ष कहना चाहता हूँ कि मध्य प्रान्तमें मद्यनिषेध आन्दोलन एक जुर्म मान लिया गया है तथा जब वे असहयोगको हर तरहसे कुचल देनेकी बात करते हैं, तो उनका मतलब चरखोंको खत्म कर देना या शराबबन्दीको दबा देनेका होता है। हम अपनी आत्मशुद्धिके द्वारा धीरे-धीरे यह सिद्ध कर रहे हैं कि यह सरकार भारतको आबकारी लगानके बलपर अथवा लंकाशायरकी मिलों द्वारा भारतके शोषणकी

बदौलत ही दासताकी बेड़ीमें जकड़े रह सकती है। इसलिए मैं आपमें से प्रत्येकसे कहूँगा कि आप समूचे भारतको, माडरेटोंको तथा लिबरल दलको, यह सिद्ध करके सरकारकी गतिविधिको ठप कर दें कि जब वे इस सरकारके साथ सहयोग करते हैं तथा इस सरकार द्वारा चालू की गई दमन नीतिका समर्थन करते हैं तब वे नहीं चाहते हैं कि असहयोगी लोग नशाबन्दी आन्दोलन चलाएँ, सद्भावनाका या सुख-समृद्धिका सन्देश सुनायें तथा भारतीय महिलाओंके सतीत्व रक्षाका सन्देश, जो चरखा चलानेमें समाया हुआ है, प्रसारित करने पायें। दिनपर-दिन हमें इस तथ्यका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता जा रहा है कि इस सरकारमें अपनी खुदकी अन्दरूनी ताकत अथवा प्राणशक्तिका अभाव है (हँसी)। हमारी कमजोरियोंसे ही उसमें शक्तिका संचार होता है और यह अपनी शक्ति हमारी कमजोरीसे लेती है (साधु, साधु,) यह हमारे मतभेदोंके कारण ही फलती-फूलती है।

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य और हिन्दू-मुस्लिम झगड़े अब इस सरकारको खूराक नहीं पहुँचाते (हँसी)। अब तो मुझे दीख पड़ रहा है, और मेरी समझमें आ रहा है कि वह ब्राह्मणों तथा अब्राह्मणोंके बीच चलनेवाले मतभेदोंका अनुचित लाभ उठा रही है (हँसी)। यदि यह असहयोग आन्दोलन ब्राह्मण आन्दोलन है — मेरा खयाल है कि यह ब्राह्मण आन्दोलन ही है — तो इसका इलाज अत्यन्त सरल है क्योंकि ब्राह्मण लोग, यदि वे असहयोगी हैं, अपने लिए कुछ नहीं चाहते। जिस प्रकार हमने अपने बीचमें से हिन्दू-मुस्लिम झगड़े दूर कर दिये हैं उसी प्रकार हमें इन झगड़ोंको मिटा देनेका प्रयास अति शीघ्र करना चाहिए। जो बात मैंने चुनिन्दा वकीलोंकी एक सभामें कुछ समय पहले मद्रासमें कही थी उसे यहाँ दोहराना चाहता हूँ। मेरे मनमें इस बातके विषयमें किंचित् भी सन्देह नहीं है कि ब्राह्मणोंके द्वारा स्थापित की गई महान् परम्पराओंपर ही हिन्दुत्वका सब कुछ आधारित है। वे भारतके लिए एक वसीयत छोड़ गये हैं जिसके लिए प्रत्येक भारतीय — वह किसी भी वर्णका क्यों न हो — उनका बहुत आभारी है। दुनियाके लगभग सभी धर्मोंके इतिहासका अध्ययन कर चुकनेके पश्चात् मेरी यह निश्चित धारणा हो गई है कि दुनियामें ऐसा कोई वर्ग नहीं है जिसने निर्धनता और अपने आपको बलिदान कर देना इस प्रकार अपनाया हो जैसा ब्राह्मणोंने। स्वयं एक अब्राह्मण होनेके नाते इस सभामें उपस्थित सभी अब्राह्मणोंसे मैं अनुरोधपूर्वक कहता हूँ तथा उन सभी अब्राह्मणोंसे भी जिनतक मेरी आवाज पहुँच रही हो, कि यदि वे विश्वास करते हैं कि वे अपनी स्थिति ब्राह्मणत्वको निंद्य कहकर सुधार सकते हैं तो यह एक बहुत बड़ी भूल करते हैं। इस गुजरे हुए जमानेमें भी भारतके इस छोरसे उस छोरतक भ्रमण करते हुए मैंने देखा है कि आत्मत्याग तथा आत्मोत्सर्गमें ब्राह्मण अग्रगण्य रहे हैं। भारतवर्षमें सर्वत्र ब्राह्मण ही चुपचाप लेकिन निश्चित रूपसे प्रत्येक जातिको उसके सामान्य तथा विशेष अधिकारोंका बोध करा रहे हैं। लेकिन इतना कह चुकनेके पश्चात् मैं भी यह स्वीकार करना चाहता हूँ कि अन्य भारतीयोंके साथ ब्राह्मणोंने भी बहुत अधिक कष्ट झेले हैं। उन्होंने भारतके सामने स्वेच्छासे तथा जानबूझकर ऐसे सर्वोच्च मानदण्ड जिन्हें मनुष्यका मस्तिष्क कल्पनामें ला सकता है प्रस्तुत किये हैं। यदि भारत-

की जनता उनसे उसी मानदण्डकी माँग करती है तो उन्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। ब्राह्मणोंने अपनेको हमारे जीवनकी पवित्रताका रक्षक घोषित किया है और उन्हें इस रूपमें रहना भी चाहिए। मुझे यह भी मालूम है कि मद्रासके अब्राह्मणोंको ब्राह्मणोंके खिलाफ बहुत-सी बातें कहनी हैं और इसका कुछ कारण भी है। लेकिन अब्राह्मणोंको यह समझ लेना चाहिए कि ब्राह्मणोंके साथ झगड़ा करनेसे, उनके साथ द्वेष करनेसे, और उनपर कीचड़ उछालनेसे वे अपनी दशा उन्नत न कर सकेंगे बल्कि हिन्दुत्वको ही गिरा देंगे। अब्राह्मण लोग बुद्धिमान और चतुर तो होते ही हैं फिर भी मेरी धारणा है कि उनके लिए इस आन्दोलनके सौन्दर्य और रहस्यको समझनेकी कोशिश करना उचित होगा। यह आन्दोलन विशेषतया पदकी धृष्टताका गर्व चूर करनेके लिए निर्मित किया गया है। जिसके नेत्र हैं, वह देख सकता है कि भारतमें आज जो कुछ हो रहा है वह एक ऐसी क्रिया है जो अवनतिकारिणी नहीं उन्नतिकारिणी है। अब्राह्मणों-को इस बातको चेतावनीके रूपमें समझ लेना चाहिए कि वे ब्राह्मण धर्मकी चिता-पर खड़े होनेका प्रयत्न न करें। और मैं अब्राह्मणोंसे अनुरोध करूँगा कि यदि वे इस आन्दोलनमें पूरी दिलचस्पीके साथ शामिल नहीं हो सकते तो कमसे-कम वे इतना तो करें ही कि सरकारके साथ साजिश करके इस आन्दोलनके मार्गमें रोड़े न अटकाएँ।

हिन्दूधर्मके विरुद्ध आदि द्रविड़ लोगों और पंचमोंकी शिकायतोंके मुकाबिलेमें ब्राह्मणों-के विरुद्ध गैर-ब्राह्मणोंकी शिकायतें कुछ भी नहीं हैं। हिन्दूधर्ममें उनकी स्थिति एक प्रकारके कोढ़ियों-जैसी बना दी गई है; और फल यह हुआ है कि हम सभी लोग साम्राज्यके कोढ़ी बन गये हैं (हँसी)। पंचमोंको पेटके बल रेंगनेके लिए विवश करनेके अ-ब्राह्मण भी ब्राह्मणोंकी तरह दोषी हैं। यह मेरा दृढ़ मत है कि हमें दासताका यह जुआ अपने कन्धोंपर अपने उन पापोंके कारण लाद रखना पड़ा है जो कि हमने अपने उन भाइयोंके विरुद्ध किये हैं जिन्हें हम दम्भ और अहंकारके वशीभूत होकर अछूत समझते हैं। मैं एक सनातनी हिन्दू होनेका दावा करता हूँ, मैं यह भी कहता हूँ कि मैंने अपनी योग्यतानुसार शास्त्रोंको पढ़ा है। मैंने हिन्दूधर्मके तत्त्वको भी समझ लिया है; मैं 'वेदों' तथा 'उपनिषदों' के सन्देशको समझनेका भी दम भरता हूँ, मेरा यह भी दावा है कि मैंने गत तीस वर्षोंसे, सोच-विचारकर और देख-समझकर स्वेच्छापूर्वक एक सनातनी हिन्दूकी भाँति अपना जीवन बिताया है। कोई भी हिन्दू भले ही मेरी बातका खण्डन करे परन्तु मैं आपसे अपने अनुभवके आधारपर जो बात कह रहा हूँ उसे आप प्रामाणिक ही मानें। वह यह है कि हमारी धर्म पुस्तकोंमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे किसी भी मनुष्यको अछूत माना जा सके। मुझे इस बातसे पूर्ण सन्तोष है कि मैं हिन्दू हूँ और मैं हिन्दू रहते हुए ही शरीर छोड़ना चाहता हूँ। मैं आशा करता हूँ, और मैं इसके लिए तैयार भी हूँ, कि अपने धर्मकी रक्षाके लिए किसी क्षण हिन्दूकी भाँति ही मरूँ। यदि एक क्षणके लिए भी मुझे यह विश्वास हो जाये कि हिन्दू धर्म मुझसे किसी भी प्राणीको छूनेमें पाप समझनेकी आशा करता है तो मुझे हिन्दू कहलानेका हक नहीं रहेगा। इसलिए मैं इस प्रदेशके ब्राह्मणों तथा अब्राह्मणोंसे प्रार्थना करता हूँ कि आप लोग अछूतपनके इस कलंकके साथ संघर्ष करें और समाजको इससे मुक्त करें। मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि अन्तर्जातीय विवाह और अन्तर्जातीय

खानपानको अस्पृश्यताके साथ न मिलायें और इस प्रकार, जैसा हिन्दुओं और मुसलमानोंने आपसमें कर लिया है, हिन्दू भी अपने अन्दरके ऊँच-नीच भावको मिटा दें तो 'भगवद्गीता'[1] के शब्दोंमें जब हमारे हृदयोंमें ब्राह्मण तथा चाण्डाल दोनों बराबरीका दर्जा पा लेंगे तब आप देखेंगे कि ब्राह्मण अब्राह्मणकी कोई भी समस्या समाधानके लिए नहीं रह जाती है।

असहयोग चिकित्सा शास्त्रकी भाषामें एक प्रकारका अपूतिदूषित इलाज (एसेप्टिक ट्रीटमेंट) है। रोगाणुरोधक दवाइयाँ केवल उस समय आवश्यक होती हैं जब हमारे शरीरोंमें दोष जमा हो जाता है और हम उन दोषोंको नष्ट करनेके लिए अन्य कीटाणु अपने शरीरमें स्थापित करते हैं; लेकिन अपूतिदूषित चिकित्सा प्रणालीमें आन्तरिक स्वच्छता गृहीत मानी जाती है। इसलिए सरकारके साथ हमारे असहयोगका तात्पर्य केवल इतना ही है कि हम अपनी आन्तरिक स्वच्छता और गन्दगीको दूर कर चुके हैं। अँधेरेको और भी गहरा करके हमने अँधेरा दूर कर दिया है ऐसा कहनेका ढोंग हम नहीं रच सकते। हम और भी अधिक हिंसा अपनाकर सरकारकी हिंसाका शमन अथवा निवारण नहीं करना चाहते। हमारे स्वराज्यमें पृथ्वीपर किसी भी जीवधारीका शोषण नहीं होना चाहिए। इसलिए मैं आपसे सानुरोध कहता हूँ कि आप अपना ध्यान केवल उन्हीं तीन बातोंपर केन्द्रीभूत करें जिन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने आपके सामने रखा है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग सरकारको ऐसा कोई भी मौका न दें कि वह हमें हमारे भाषणोंके कारण जेल भेज सके। लेकिन मैं अपनी आँखोंमें एक भी आँसू लाये बिना जेलके दरवाजे खुले रखना और भारतवर्षकी सब स्त्रियोंको अपने घरोंमें चरखे रखनेके अपराधमें जेल भेज देना पसन्द करूँगा। हमें सरकारके प्रति अथवा अपने उन दोस्तोंके प्रति जो आज हमारी मुखालफत कर रहे हैं अधैर्य नहीं बरतना चाहिए। प्रत्युत हमें अपने ही प्रति अधीर होना चाहिए। हमारे व्याख्यान तथा सभी प्रस्ताव अधिकतर हमारे प्रति सम्बोधित होते हैं अथवा होने चाहिए। और यदि हम कांग्रेस, खिलाफत कमेटी तथा मुस्लिम लीगके द्वारा पेश किये गये इस साधारण कार्यक्रमको निभा पाये तो मैं अपने उस विश्वासको आपके सामने दोहराकर कहता हूँ कि इसी सालके अन्दर हम स्वराज्य ले लेंगे और खिलाफत तथा पंजाबके साथ हुए अन्यायका भी परिमार्जन करा लेंगे।

आज अपना भाषण समाप्त करनेके पूर्व मैं मद्रासके शिक्षित पुरुषोंके लिए दो शब्द कहना चाहता हूँ। मैं अपनी लम्बी-लम्बी यात्राओंके अनुभवके बाद अपनी आँखों देखी आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। जनता तथा भारतकी महिलाएँ पूर्णतः हमारे साथ हैं। मैं शिक्षित भारतीयोंसे निवेदन करूँगा कि वे मेरा यह कथन सच मानें कि वे इतनी बुद्धिहीन अथवा असंस्कृत नहीं जितना कि हम उन्हें बहुधा मान बैठते हैं। हम शिक्षित लोग अपनी तिमिराच्छादित बुद्धिसे जितना कुछ समझ पाते हैं वह उनके सहज स्वभावसे स्फुरित अवलोकनके सामने कम ही बैठता है। मैं आपसे सर टामस मुनरो[2]

१. अध्याय ५, श्लोक १८।

२. मद्रासके राज्यपाल, १८२०-२७।

द्वारा की गई साक्षी[1] स्वीकार करनेके लिए भी अनुरोध करूँगा। मैं उस साक्षीकी पुष्टि करता हूँ कि भारतकी जनता संसारके देशोंकी जनतासे कहीं ज्यादा शिष्ट है।

आप सबको विदित ही है कि आजकल सभासे जानेसे पूर्व मैं तिलक स्वराज्य कोषके लिए चन्दा इकट्ठा किया करता हूँ। अभी स्वयंसेवकगण आपके बीच आयेंगे। मैं आप लोगोंसे अधिकसे-अधिक दान देनेके लिए प्रार्थना कर रहा हूँ। आपने जिस विशेष शान्तिके साथ मुझे सुना है उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। मेरी परमात्मासे प्रार्थना है कि वह हमें अपने कर्त्तव्य पालनके लिए आवश्यक साहस तथा बुद्धि प्रदान करे [जोरकी तथा देरतक हर्षध्वनि]।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, ९–४–१९२१

२७६. मेरी उड़ीसा यात्रा

गोपबन्धु दास

जब उड़ीसामें अकाल पड़ा था तब यद्यपि मैं यह समझ गया था कि उड़ीसामें बड़ी दरिद्रता है तथापि मेरी मान्यता यही थी कि चम्पारन-जैसे दरिद्र लोग देशके अन्य किसी भागमें नहीं होंगे; लेकिन अब मुझे लगता है कि उड़ीसा उससे भी अधिक दरिद्र है। फर्क इतना ही है कि चम्पारनमें लोग नीलके खेतोंके मालिकों द्वारा दिये गये दुःखोंसे पीड़ित होकर भिखारी बन गये थे और उड़ीसामें जो दुःख है वह प्रकृतिके कोपसे हुआ है। या तो अनावृष्टिके कारण फसलें आती ही नहीं हैं अथवा अतिवृष्टि होनेसे बाढ़ आ जाती है और उससे फसल और घर दोनों ही बरबाद हो जाते हैं। फलतः उड़ीसामें हमेशा अकालकी-सी स्थिति बनी रहती है।

इस कंगाल देशमें फिलहाल तो सच्चे नेता गोपबन्धु दास हैं जिन्होंने श्री अमृतलाल ठक्करको अकालके समय पूरी-पूरी मदद दी थी। गोपबन्धु बाबू वकील बने, थोड़े वर्षोंतक उन्होंने वकालत की लेकिन अन्तमें उसे छोड़कर अपना सर्वस्व देश-सेवाके लिए अर्पण कर दिया। उन्होंने पुरीसे बारह मील दूर साखीगोपालमें एक स्कूलकी स्थापना की है।

कुंजशाला

इस स्कूलमें उद्योग और किताबी पढ़ाई दोनों ही की शिक्षा दी जाती है। इस स्कूलको सरकारने मान्यता प्रदान की थी लेकिन असहयोगका प्रस्ताव पास होनेके बाद गोपबन्धु बाबूने सरकारकी इस मान्यताको अस्वीकार कर दिया। तब कितने ही विद्यार्थी चले गये किन्तु कितने ही नये विद्यार्थी स्कूलमें आ भी गये। इस स्कूलके लिए गोपबन्धु बाबू स्वयं भिक्षा माँगकर धन इकट्ठा करते हैं। यह स्कूल हरे-भरे

१. खण्ड १०, पृष्ठ ६८-६९।

कुंजोंसे सुशोभित लगभग बीस एकड़ भूमिपर स्थिति है। बच्चोंको वृक्षोंकी छायामें खुले मैदानमें शिक्षा दी जाती है। उद्योगमें बढ़ईगिरी मुख्य है। अब शिक्षाक्रममें कताई और बुनाईको भी शामिल किया गया है। गोपबन्धु बाबू बिहार विधान परिषद्के सदस्य थे और इसलिए गवर्नर और अन्य बड़े-बड़े लोगोंको निमन्त्रित किया करते थे। मैंने देखा कि अपनी सम्मतियोंमें इन लोगोंने स्कूलकी हमेशा तारीफ की है।

सेवासमाज

गोपबन्धु बाबूने सेवासमाज नामकी एक संस्थाकी स्थापना भी की है। उसमें कुछ वकील और अन्य विद्वान व्यक्ति शामिल हैं। इनमें से अधिकांश, जबसे असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ है तबसे हर महीने सिर्फ दस रुपयेकी रकम लेकर निर्वाह करते हैं। वे भिक्षा माँगकर मुट्ठी-मुट्ठी चावल लाते हैं। इस तरह हाल ही में स्वराज्य-आश्रमकी भी स्थापना की गई है। इन सदस्यों और स्कूलके बालकोंकी खुराक मुख्य रूपसे दाल, भात, तेल और मिलनेपर घीकी चन्द बूँदें और हरी सब्जियाँ होती हैं। उनका मासिक खर्च सात आठ रुपये आता है। पहले थोड़ा घी लेते थे, लेकिन असहयोग आन्दोलन शुरू होनेके बादसे उन्होंने घी लेना बन्द कर दिया है। आज हिन्दुस्तानमें स्वेच्छासे कष्ट सहन करके अपना काम करनेवाली ऐसी कोई दूसरी संस्था शायद ही हो। मैंने जब पूछा कि इतनी निःसत्व खुराकका क्या शरीरपर असर नहीं होता तो गोपबन्धु बाबूने उत्तर दिया कि स्वराज्यकी खातिर क्या हम इतना कष्ट सहन नहीं कर सकते ? उनका यह उत्तर सुनकर मैं चुप रह गया। जब सिरपर विपत्ति आ जाती है तब कौन जाने ईश्वर कहाँसे उसे सहन करनेकी शक्ति दे देता है।

जगन्नाथपुरी

गोपबन्धु बाबूका स्कूल देखनेके बाद हम जगन्नाथपुरी पहुँचे। पुरी समुद्रके किनारे स्थित है, इसलिए वहाँ हवाके झकोरे आते रहते हैं; लेकिन इससे कोई यह न माने कि आबोहवाके खयालसे पुरी, डुम्मस, पोरबन्दर या वेरावलसे[1] तनिक भी ऊँचा ठहरता है। कहावत है कि "नामी सेठ कमा खाय" सो बंगालियों और सरकारने उसे आरोग्य-स्थल ठहराकर प्रसिद्ध कर दिया है। वहाँसे बंगाली प्रतिवर्ष आरोग्य लूट कर जाते हैं। श्रद्धालु यात्री तो यह भी मानते हैं कि वे जगन्नाथके दर्शन करके और पण्डोंको दक्षिणा देकर पुण्य लूट लाते हैं। मैं जब जगन्नाथके दर्शन करने गया तब मनमें अनेक विचार आये। मन्दिर प्राचीन है, भव्य है। शिखरपर सुदर्शन चक्र लगा हुआ है और उसपर ध्वजा फहराती है। मन्दिर बहुत ऊँचा बनाया गया है। मूर्तियाँ नारायण और लक्ष्मीकी[2] हैं। बहुत बड़े आकारकी होनेके कारण वे भयानक लगती हैं। जहाँ मूर्तियाँ विराजती हैं वहाँ घोर अन्धकार है। वहाँ न हवा है और न उजाला ही है। एक-दो दिये वहाँ जलते रहते हैं।

१. गुजरातके बन्दरगाह।

२. वस्तुतः जिन तीन मूर्तियोंके लिए यह मन्दिर प्रसिद्ध है, ये मूर्तियाँ कृष्ण, बलराम और सुभद्रा की हैं।

विदेशी परिधान

मूर्तिको जो वस्त्र पहनाये जाते हैं वे विदेशी हैं। हमारे जीवनमें इतना अज्ञान और इतना अविचार क्यों है? मूर्तियोंके वस्त्रोंके लिए तो असंख्य कुमारिकाएँ प्रेमपूर्वक महीन सूत कातती थीं और बुनकर उसे प्रेमपूर्वक बुनते थे। अन्य वस्त्र अपवित्र माने जाते थे। मैं इस विचारमें डूब गया कि पण्डे अब ऐसे पाखण्डी और विदेशी वस्तुओंके ऐसे प्रेमी कैसे बन गये। अन्य स्थानोंकी ही भाँति यहाँ भी पण्डोंसे बहुत ज्यादा त्रास होता है। भावुक यात्रियोंको वे लूटते हैं। जगन्नाथजी इस सब अत्याचारके साक्षी बन-कर चुपचाप कैसे बैठे रहते हैं? इसपर मुझे "जैसे पुजारी वैसे देव" वाली कहावत याद हो आई। निराकार ईश्वर क्या कुछ कम अत्याचारोंका साक्षी बनता है। वह तो कर्मके विधानकी रचना करके तटस्थ हो गया है; तो फिर जगन्नाथजीका क्या दोष?

हृदयविदारक हृदय

जैसे मुझे अनेक जानने योग्य वस्तुएँ दिखाई जाती हैं वैसे ही मुझे अकालग्रस्त लोगोंके दर्शन भी करवाये गये। वे हड्डियोंके ढाँचे-भर रह गये थे; मांस-स्नायुसे हीन इन सैकड़ों स्त्री-पुरुष और लड़के-लड़कियोंको देखकर मैं बहुत दुःखी हुआ, मेरा हृदय बिंध गया। यदि इस तरह इन अकाल-पीड़ित लोगोंको अन्न न मिले और वे भूखों मरें तो स्वराज्य मिले या न मिले, उसका कुछ अर्थ ही नहीं रहता? स्वराज्य तो उसे ही कहा जायेगा जिसमें एक भी व्यक्ति अपनी इच्छाके विरुद्ध भूखा अथवा नंगा न रहे। हाँ, उसमें उसीकी गलती हो तो बात दूसरी।

अनाथालय

इस मन्त्रको रटते हुए मैं पुरी-पुलिस अधीक्षक लाला अमीचन्द द्वारा स्थापित अनाथालय देखने गया। यहाँ अकाल-पीड़ितोंको इकट्ठा किया गया है और उन्हें चटाई, पायदान बुनना और सूत कातना-बुनना सिखाया जाता है। कातना-बुनना तो असहयोग आन्दोलनके शुरू होनेके बाद सिखाया जाने लगा है। इससे मैं देख सका हूँ कि कताई अकाल-निवारणका एक साधन है — यह वाक्य कतई गलत नहीं है। इस बारेमें मैंने नेताओंके साथ बातचीत की जिसके फलस्वरूप पुरी अकाल-कोषमें जो रुपये बचे हैं उनका उपयोग अकाल-पीड़ित लोगोंके घरोंमें चरखा दाखिल करनेमें किये जानेका प्रस्ताव पास किया गया।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-४-१९२१

२७७. भाषण : बम्बईकी सार्वजनिक सभामें[1]

१० अप्रैल, १९२१

महात्मा गांधीने सभामें देरसे आनेके लिए क्षमायाचना करनेके उपरान्त कहा: यह हमारा राष्ट्रीय सप्ताह है। यह ६ तारीखको आरम्भ हुआ था और १३ को समाप्त होगा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने हमसे अनुरोध किया है कि हम स्वराज्यके लिए स्वयं अपने प्रयत्नपर निर्भर रहें। हमारा उद्देश्य हर हालतमें एक वर्षके अन्दर ही स्वराज्य प्राप्त करना है। हमारा कर्त्तव्य है कि हम खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका निराकरण करायें। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने देशके सामने तीन-सूत्री कार्यक्रम रखा है। हमें यह कार्यक्रम पूरा करना है। कार्यक्रमकी पहली बात यह है कि हम राष्ट्रीय कांग्रेसके एक करोड़ सदस्य बनायें। हमें इसके लिए मुसलमानों और हिन्दुओं, पुरुषों और स्त्रियों सभीका सहयोग चाहिए। मैं चाहता हूँ कि ये सब लोग कांग्रेस आन्दोलनमें शरीक हो जायें और इसी उद्देश्यसे हमने सदस्यताकी फीस चार आने रखी है। प्रत्येक भारतीयका कर्त्तव्य है कि वह कांग्रेस संगठनमें अविलम्ब सम्मिलित हो जाये। कांग्रेसके कमसे-कम एक करोड़ नये सदस्य बनने चाहिए। हमारा दूसरा कर्त्तव्य यह है कि हम तिलक स्वराज्य कोषमें एक करोड़ रुपया इकट्ठा करें; मेरा खयाल है कि इतना धन एकत्रित करना कोई बहुत मुश्किल बात नहीं है। कुछ लोगोंके दिलोंमें सन्देह समाया हुआ है कि हम पूरे भारतसे यह बड़ी रकम इकट्ठी नहीं कर सकते। लेकिन मेरे मनमें ऐसा कोई सन्देह नहीं है। यदि हम भारतीय खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका निराकरण करानेके लिए एक करोड़ रुपया एकत्रित नहीं कर सकते तो हम स्वराज्यके योग्य कभी नहीं होंगे। यदि हम इस रकमको इकट्ठा न कर पाये तो हम स्वराज्यकी जिम्मेदारी सँभालनेके लिए अयोग्य सिद्ध होंगे। मुझे विश्वास है कि यदि बम्बईके लोग सच्चे दिलसे जुटें तो यह रकम बम्बईमें इकट्ठी हो सकती है। इतनी रकम तो अकेला पारसी या मारवाड़ी समाज ही दे सकता है। बम्बईका धनी व्यापारी समाज एक करोड़ रुपयेकी रकम बड़ी आसानीसे जुटा सकता है। तब समस्त भारतमें एक करोड़ रुपया इकट्ठा करना असम्भव कैसे है? इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि हम इस रकमको इकट्ठा कर सकते हैं। मैं बम्बईके निवासियोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे तिलक स्वराज्य कोषके लिए अपनी शक्ति-भर धन दें और केवल अपने हिस्सेकी रकम देकर ही चुप न बैठ जायें। हमें यह रकम ३० जूनसे पहले इकट्ठी कर लेनी है।

१. यह भाषण स्वराज्य सभा और केन्द्रीय खिलाफत समितिके तत्वावधानमें आयोजित सार्वजनिक सभामें दिया गया था।

इससे भी ज्यादा महत्वकी बात है चरखा; स्वराज्यका मिलना इसीपर निर्भर करता है। स्वराज्य प्राप्तिका आधार केवल चरखा है। यह हमारा गोला-बारूद है, जिसकी हमें स्वराज्यकी लड़ाईमें जरूरत है। आपको विदेशी माल व्यवहारमें लाना बन्द कर देना है और इस दिशामें पहला कदम स्वदेशी कपड़ेका इस्तेमाल है। आपको चाहिए कि आप विदेशी कपड़ा पहनना एक लज्जाजनक बात समझें। आप यह भी सोचें कि देशमें बना कपड़ा पहनना बहुत अच्छी बात है। आपका यह काम आध्यात्मिकता-से भरा हुआ होगा और इससे भारतका हित होगा। मैं इस महान् कार्यके लिए पुरुषों और स्त्रियों, अमीरों और गरीबों, बूढ़ों और युवकों -- सभीकी शक्ति उपलब्ध करना चाहता हूँ। मुझे स्वराज्यकी लड़ाईमें गरीबसे-गरीब आदमीकी जरूरत है। यदि भारतीय यह सोचते हों कि वे कारखाने खड़े करके विदेशी मालका त्यागकर सकेंगे तो मेरा खयाल यह है कि ऐसा करना सम्भव नहीं है, क्योंकि हम एक सालमें विदेशोंसे इतनी मशीनें कैसे मँगा सकते हैं? इसके अलावा, हमें इन मशीनोंकी खरीदीके लिए विदेशोंमें बहुत बड़ी रकम भेज देनी पड़ेगी। जब देशमें कारखानोंके लिए मशीनें बनने लगेंगी तब आप चाहे जितने कारखाने खड़े कर लें; केवल उस अवस्थामें मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी; लेकिन जबतक ऐसा नहीं हो पाता तबतक मेरे खयालसे नये कारखाने खड़े करनेसे कोई लाभ नहीं होगा। कांग्रेस यह चाहती है कि जूनसे पहले ही देशमें २० लाख चरखे चलने लगें। मैं चाहता हूँ कि चरखा देशके प्रत्येक घरमें पहुँच जाये।

महात्मा गांधीने बम्बईके व्यापारियोंसे पूछा : क्या आप लोगोंका विदेशोंमें बना हुआ माल मँगाना और इस प्रकार देशको गरीब बनाना तथा भारतीयोंको दास बनाए रखना उचित है? क्या इसकी अपेक्षा आपका गरीब रहना ज्यादा अच्छा नहीं है? हमें स्वराज्य तभी मिल सकता है जब आप विदेशी माल मँगाना बन्द करें। वकील लोग अदालतोंमें जाते रहें या छात्र स्कूलों और कालेजोंमें जाते रहें इससे कोई बड़ी हानि नहीं। लेकिन देशमें विदेशी माल न आने पाये, यह अत्यन्त आवश्यक है। हमें खद्दर पहनना चाहिए। केवल स्वदेशी कपड़ा पहनना हमारा धर्म है। देशमें बने हुए कपड़ोंकी जगह विदेशोंमें बना हुआ कपड़ा पहनना देशके प्रति अपराध है। मैं उड़ीसा और आन्ध्रसे आ रहा हूँ। मैंने वहाँ जो-कुछ देखा, उससे मुझे यह विश्वास हो गया है कि बम्बईके लोग बहुत पीछे रह गये हैं और उनका इस पापमें सबसे बड़ा भाग है। इस मामलेमें गुजराती समाज सबसे बड़ा पापी है। भारतमें विदेशी कपड़ा मँगानेवाले लोग गुजराती व्यापारी ही हैं। भारतीय लोग बारीक कपड़ा पहननेके आदी हो गये हैं। यदि बम्बईके लोग इन विलासिताकी चीजोंको नहीं छोड़ सकते तो मेरी समझमें दूसरी जगहोंके लोगोंसे उनका छुड़वाना सम्भव नहीं है। स्वराज्यकी खातिर, खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका निराकरण करानेकी खातिर, हमें विदेशोंमें बना माल त्यागना होगा। जबतक भारतीय यह अनुभव नहीं करते कि खद्दरमें उतनी ही सुन्दरता है

जितनी मैनचेस्टरमें बनी बढ़िया मलमल (कैलिको) या जापानमें बने मालमें है, तबतक हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता।

हमारा कर्त्तव्य बिलकुल स्पष्ट है——हमें कांग्रेसमें शामिल होना चाहिए; हमें तिलक स्वराज्य कोषके लिए एक करोड़ रुपया इकट्ठा करना चाहिए और देशमें बीस लाख चरखे चलवा देने चाहिए। यदि भारत इतना कर सके तो निश्चय ही एक वर्षमें स्वराज्य मिल सकता है। यदि हम इतना कर डालें तो निस्सन्देह स्वराज्य अपने आप चला आयेगा। मद्रास और बंगालमें बड़े प्रतिष्ठित लोग भी खद्दर पहनते हैं। तब बम्बईके लोग ऐसा क्यों नहीं कर सकते?

मुझे महिलाओंके सहयोगकी और उनके आशीर्वादकी भी आवश्यकता है। किन्तु उन्हें पहले इसके योग्य बनना चाहिए। जबतक वे स्वदेशी कपड़े पहनकर और विदेशी कपड़े त्यागकर स्वयं पवित्र नहीं हो जातीं तबतक वे मुझे आशीर्वाद नहीं दे सकतीं। वे जबतक स्वयं स्वदेशी कपड़े नहीं पहनने लगतीं, तबतक मुझे आशीर्वाद कैसे दे सकतीं हैं? महिलाओंसे मेरा अनुरोध है कि वे अपने सम्मुख सीताजीका आदर्श रखें; वे सीताकी तरह कष्ट सहन करें और सीताकी तरह सरल और शुद्ध सादगीका जीवन अपनायें। भारतको केवल तभी स्वराज्य मिल सकता है जब वे केवल देशका बना कपड़ा पहनें। और देशके कार्यमें रत कार्यकर्त्ताओंको अपना आशीर्वाद और सहयोग प्रदान करें। उस अवस्थामें इस देशमें धर्म राज्य स्थापित होगा। हिन्दुओं और मुसलमानोंको स्वराज्यके संघर्षके लिए दूध और पानीकी तरह एक कर देना कांग्रेसका उद्देश्य है। बंगाल और उड़ीसामें स्त्रियोंने तिलक स्वराज्य कोषमें दिल खोलकर चन्दा दिया है। मैं अपनी पारसी बहनोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे स्वराज्यके लिए मुक्तहस्तसे दान दें। मैं सब बहनोंसे इस कोषमें अपना योगदान देनेकी विनती करता हूँ।

अन्तमें गांधीजीने कहा: मेरी ईश्वरसे प्रार्थना है कि हिन्दू, मुसलमान, पारसी और यहूदी सब मिलकर एक हो जायें और अपनी शक्तिभर देशका हित साधन करते हुए अपने कर्त्तव्यका पालन करें।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, ११–४–१९२१

२७८. सन्देश : सत्याग्रह सप्ताहके अन्तिम दिनके लिए

[१३ अप्रैल, १९२१ के पूर्व][1]

आजका दिवस इस पवित्र सप्ताहका अन्तिम दिवस है। श्रद्धालु जन इस दिन अवश्य उपवास करें, और प्रार्थना करें। मेरे हृदयकी तो यही कामना है कि पराधीनताकी दशामें यह हमारी अन्तिम तेरह अप्रैल हो; लेकिन यह कोई मेरे हाथमें नहीं है। ईश्वरके हाथमें भी नहीं है। स्वराज्यका दान तो ईश्वर भी नहीं करेगा। स्वराज्यकी प्राप्ति तो हमें अपने परिश्रमसे करनी है और उसे प्राप्त करनेका एक ही रास्ता है। हम समझ लें कि स्वराज्य क्या है और उसके अनुसार आचरण करें; बस, स्वराज्य हो गया। हमें इसी वर्षके भीतर विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करना है। इस बहिष्कारके लिए सबको अपने शरीरकी और अपनी सन्दूककी जाँच कर लेनी चाहिए। परदेशी कपड़ेका तुरन्त त्याग कर देना चाहिए। दूसरे क्या करते हैं; उसका खयाल ही नहीं करना है। कमसे-कम कपड़ोंसे निर्वाह करनेकी आदत डाल लेनी चाहिए और खुद चरखा चलाना चाहिए और दूसरोंको भी चलानेकी सलाह देनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १४–४–१९२१

२७९. टिप्पणियाँ

असहयोग स्थगित कर दो

श्री सैयद[2] रजा अलीने एक खुला पत्र लिखकर मुझे सलाह दी है कि मैं लॉर्ड रीडिंगको शान्त वातावरणमें परिस्थितिका अध्ययन करनेका मौका देनेके लिए, असहयोग स्थगित कर दूँ। पहली बात तो यह है कि मुझे वातावरणमें ऐसा कुछ नहीं दिखाई देता जो परिस्थितिके अध्ययनमें बाधा पहुँचाए। दूसरे, जो कुछ भी अशान्ति है, वह या तो अधिकारियों द्वारा पैदा की हुई है, या फिर स्थितिपर जिस बुरे ढंगसे काबू पानेकी कोशिश की गई उसके कारण रक्तपात हुआ है। मध्यप्रान्तमें शराबका व्यापार ऐसी जनतापर थोपा जा रहा है जिसमें उसके विरुद्ध रोष व्याप्त है। मैंने अखबार नहीं पढ़े और इसलिए रायबरेलीके सम्बन्धमें कह सकने योग्य मेरे पास पर्याप्त तथ्य नहीं हैं। जो भी हो, श्री रजा अलीको ऐसा अनुरोध स्थायी अधिकारियोंसे करना चाहिए, जो लोगोंको उभाड़ रहे हैं और देशमें आतंक फैला रहे हैं। तीसरे, यह बात चाहने पर भी किसी एक आदमीके बसकी नहीं है कि वह एक ऐसे आन्दोलनको स्थगित कर दे,

१. यह सन्देश १३ अप्रैलको समाचारपत्रोंमें प्रकाशित किये जानेके उद्देश्यसे दिया गया था।

२. इलाहाबादके एक प्रतिष्ठत और प्रमुख वकील।

जो राष्ट्र द्वारा अपनी प्रतिनिधि संस्थाओंके माध्यमसे अपनाया गया है। चौथे, आखिर श्री रजा अलीका असहयोगके स्थगनसे अभिप्राय क्या है? क्या खिताबधारी लोग कुछ समयके लिए अपने खिताब पुनः धारण कर लें? या वकील फिरसे वकालत करना शुरू कर दें? क्या लड़के सरकारी स्कूलोंमें लौट जायें; कातनेवाले अपने चरखे एक कोनेमें रख दें; बढ़ई नये चरखे बनाना बन्द कर दें! और क्या पियक्कड़ लोग ठेके-वालोंसे फिर जान-पहचान बढ़ाना शुरू करें? क्या श्री रजा अली चाहते हैं कि राष्ट्रीय स्कूल कुछ समयके लिए अपने दरवाजे बन्द कर दें? बात चाहे कितनी ही बेतुकी लगे, इतना स्पष्ट है कि श्री रजा अली असहयोगकी मर्यादाओंको नहीं समझे हैं; वे नहीं समझते कि असहयोग एक सद्गुणके समान है जिसका आचरण इच्छा होते ही जब चाहे बन्द नहीं किया जा सकता। यदि अंग्रेज जो अपने भरण-पोषणके लिए भारतपर आश्रित हैं सचमुच भारतका भला चाहते हैं, हमारा नमक अदा करना चाहते हैं, तो उन्हें शराबके धन्धेके खत्म हो जाने, तथा विदेशी कपड़ेके धन्धे और इसके फलस्वरूप लंकाशायरके कपड़ेके धन्धेके भी पूर्ण विनाशको सहन कर लेना चाहिए। खिलाफत पूरी तरह सुरक्षित हो जाये और पंजाबके घाव भर जायें, इसके बाद भी शराबकी आमदनी पुनर्जीवित नहीं की जा सकेगी, न विदेशी कपड़ोंका इस्तेमाल फिरसे शुरू किया जायेगा। आश्चर्यकी बात तो यह है कि देशमें ऐसे बुद्धिमान और शिक्षित सार्वजनिक कार्यकर्त्ता हैं जो इतना भी नहीं समझ पाते कि यह सरकार जबतक अपने मूलभूत पापोंको धो नहीं डालती तबतक उसे बराबर एक अन्यायके बाद दूसरा अन्याय करना ही होगा। इसमें सन्देह नहीं कि वह चाहे तो उक्त दो अन्यायोंका निवारण किये बिना भी, दो बड़े-बड़े गतिशील आन्दोलनोंमें जनताके साथ सहयोग कर सकती है अर्थात् शराबकी बुरी लतके खिलाफ युद्धमें तथा चरखेकी उस प्राचीन प्रतिष्ठा और पवित्रताकी पुनः स्थापनामें। इससे उन दोनों अन्यायोंसे[1] उत्पन्न कटुता हल्की पड़ जायेगी। किन्तु जनताके साथ सरकारके ऐसे सहयोगसे जनताकी उन दोनों अन्यायोंका निश्चित रूपसे निवारण करा लेनेकी शक्ति बढ़ जायेगी, और इसीलिए सरकार शान्तिके साथ मद्यनिषेध अभियानकी तथा चरखेके माध्यमसे स्वदेशी वस्त्र निर्माणकी वृद्धिके फलस्वरूप विदेशी कपड़ेके बहिष्कारकी प्रगति नहीं होने देगी।

कार्यकर्त्ता, धन और साधन

श्री दासने इन्हीं शब्दोंमें एक करोड़ सदस्य, एक करोड़ रुपये और बीस लाख चरखेवाले अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके प्रस्तावका सार रख दिया था। कार्यक्रम न तो विस्तृत है, न पेचीदा। इसके लिए लगभग किसी त्यागकी आवश्यकता नहीं। हाँ, इसके लिए संगठन, इच्छा और उद्यम शीलताकी जरूर आवश्यकता है। हमारे पास २१ कांग्रेसी प्रान्त हैं, और सौभाग्यसे हर प्रान्तमें ऐसे कार्यकर्त्ता हैं, जो कांग्रेसके कार्यक्रमके लिए अपने-अपने प्रान्तको संगठित कर सकते हैं। मैं आग्रह करूँगा कि वे सदस्य भरती करने, चन्दा एकत्र करने तथा घर-घरमें चरखेका प्रवेश करानेके काममें जुट जायें। कार्यकर्त्ता भूलें नहीं कि अब नष्ट करनेके लिए समय नहीं रहा। अपने-अपने प्रान्तमें

१. पंजाब और खिलाफतके अन्याय।

हमें प्रत्येक स्त्री और पुरुषतक पहुँच सकना चाहिए, और उन्हें कांग्रेसकी सदस्यताकी वहीमें अपना नाम लिखानेका अवसर देना चाहिए। समझदार बालकों तथा बालिकाओं-को भी तिलक-स्मारक स्वराज्य कोषमें चन्दा देनेका अवसर दिया जाना चाहिए, और प्रत्येक परिवारमें चरखेका प्राणप्रद सन्देश पहुँचाया जाना चाहिए। निर्धनसे-निर्धन प्रान्तको भी अपने हिस्सेके कार्यक्रमको पूरा करनेकी अपनी सामर्थ्यमें सन्देह नहीं करना चाहिए। मैं समझता हूँ, उड़ीसा सबसे निर्धन प्रान्त है। मैंने वहाँके कार्यकर्त्ताओंसे पूछा कि क्या वे अपने हिस्सेका भार सँभालेंगे। उन्होंने हामी भरी। और जब जगत्के नाथ, जगन्नाथका आसन ही उड़ीसामें है, तो उनके लिए हिचकिचानेकी आवश्यकता भी क्या थी? वे अपने हिस्सेका धन, अगर और कुछ न बन पड़े तो, पुरी आनेवाले तीर्थयात्रियोंसे, साथ ही सम्पन्न महन्तों और पंडोंसे भी एकत्र कर सकते हैं। यदि उनको ठीक ढंगसे समझाया जाये, तो मुझे लगता है कि वे खुशीसे चन्दा देंगे। किन्तु एक ही बड़े स्थानपर हमारी थैली भर जाये, इसकी अपेक्षा हमें अपनी आशा गरीबोंकी पाई-पाईपर अधिक केन्द्रित करनी चाहिए। साखीगोपालमें[1] हजारों अत्यन्त निर्धन लोगोंको जब मैंने पाइयों और पैसे देकर अपनी जेबें खाली करते देखा, तब मुझमें जितने विश्वास और जितनी आशाका संचार हुआ, उतना पहले कभी और किसी दृश्यसे नहीं हुआ था। बिहारके लोग तो मुट्ठी-मुट्ठी भर अनाज वगैरह भी ले रहे हैं। यदि ऐसे दानको स्वीकार करने तथा उनका उपयोग करनेके लिए ठीक-ठीक संग्रह केन्द्र हों, तो एक करोड़ रुपया बिना किसी अड़चनके जमा हो जाना चाहिए।

मेरा सुझाव है कि कार्यकर्त्तागण कारीगरोंके सभी वर्गोंके मुखियोंसे मिलें। हम चाहते हैं कि इस आन्दोलनको बढ़ई, लुहार, धोबी, राज, भंगी-चमार, चमड़ा कमाने-वाले — गरज यह कि सभी वर्गके लोग समझें और इसमें भाग लें। स्वराज्यकी आवश्य-कता ठीक-ठीक समझनेके लिए उन्हें किसी स्कूलमें पूर्व-प्रशिक्षणकी आवश्यकता नहीं है। स्वराज्य और चरखेका अभिन्न सम्बन्ध वे सरलतासे समझ जाते हैं। हमारे वर्त-मान जातीय संगठन वास्तवमें पेशोंपर आधारित संगठन हैं; इनके होते हुए हमें उन अधिकांश पुरुषों और स्त्रियोंतक पहुँचनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए, जो इन महत्वपूर्ण संगठनोंके सदस्य हैं।

यह भी याद रखना चाहिए कि एक ही कामके लिए — संघर्षके साधन, अर्थात् चरखे तैयार करने और वितरित करनेके लिए — हमें जन और धन, दोनोंकी आवश्यकता है। हमें इस वर्षके भीतर विदेशी कपड़ेका पूर्वरूपसे बहिष्कार कर देना चाहिए, बन सके तो आगामी जुलाईके अन्तसे पहले ही। एक करोड़ रुपया और बीस लाख चरखे, यह कांग्रेसका न्यूनतम लक्ष्य है। इसमें वे चरखे नहीं आते जो गत ३१ दिसम्बरसे पहले भी काममें लाये जा रहे थे। हमें मोटे किस्मके वस्त्रमें प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति ६ पौंड़ कपड़ा चाहिए। अतः हमें राष्ट्रके लिए प्रति वर्ष १ अरब ८० करोड़ पौंड कपड़ा चाहिए। यदि सालमें कामके कुल ३०० दिन मानें, और यदि एक तकुएसे दिनभरमें आधा पौंड अर्थात् सालभरमें १५० पौंड़ सूत निकले, तो इतने परि-

१. उड़ीसाका एक गाँव, जहाँ गांधीजी मार्च १९२१ के आखिरी सप्ताहमें गये थे।

माणमें सूतका उत्पादन करनेके लिए हमें १ करोड़ २० लाख तकुए [चरखे] चाहिए। जूनके अन्ततक कांग्रेस तो केवल ३० लाखकी, अर्थात् समूची आवश्यकताके मात्र छठे भागकी ही अपेक्षा कर रही है। ऐसी आशा करना बहुत गलत नहीं होगा कि यदि हम तीन महीनेमें २० लाख चरखे चालू करनेमें सफल हो सकें तो उससे आन्दोलनको ऐसी गति मिलेगी, जिससे बिना अधिक प्रयत्नके ही आगामी तीन महीनोंमें चरखोंकी संख्या दुगनी हो जायेगी। हमारे देशमें प्रति-परिवार ६ सदस्योंवाले करीब ५ करोड़ परिवार हैं। अतः समस्या परिवारोंकी इस बड़ी संख्यामें से केवल २० लाख परिवारों तक पहुँचनेकी ही है।

यदि वर्तमान कार्यकर्त्ताओंका चरखेमें वैसा ही विश्वास है जैसा मेरा है, तो उन्हें कातना और चरखेकी बनावट समझ लेना चाहिए जिससे वे अच्छे चरखे और खराब चरखेमें भेद कर सकें। उन्हें किसी भी हालतमें ऐसे चरखेका प्रवर्त्तन नहीं करना चाहिए, जो गत दिनांक ६ के अंकमें निर्देशित कसौटियोंपर खरा नहीं उतरता। यह तो बताना आवश्यक भी नहीं है कि कार्यकर्त्तागण यदि स्वयं धर्म मानकर विदेशी कपड़ा पहनना बन्द नहीं कर देते तो लोगोंपर उनका प्रभाव नहीं पड़ेगा — पड़ा भी तो बहुत ही कम। यदि स्वयं हमने इसका तुरन्त श्रीगणेश करके उदाहरण प्रस्तुत न किया तो वर्ष पूरा होते-होते तक विदेशी कपड़ेका पूर्ण बहिष्कार सम्भव नहीं होगा। एक ही बड़ा काम ठीक ढंगसे और ईमानदारीसे सम्पन्न किया जाये, तो उसके फलस्वरूप हमें अवश्य ही विश्वास, आशा और साहस प्राप्त होता है।

करोड़ रुपयेका उपयोग

मुझे बताया गया है कि एक अखबारने यह प्रश्न किया है,: कांग्रेस एक करोड़ रुपयोंका क्या करेगी? उत्तर स्पष्ट है: 'रुपया कांग्रेसके प्रस्तावमें निर्देशित कार्यके लिए काममें लाया जायेगा। अर्थात्, अहिंसात्मक असहयोगके द्वारा स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए। जिनमें आर्थिक व्ययकी आवश्यकता पड़ेगी वे काम हैं: कताईका काम, राष्ट्रकी सेवाके संगठनका काम, कहीं-कहीं उन वकीलोंके भरण-पोषणका काम, जिन्होंने वकालत बन्द कर दी है किन्तु जो राष्ट्रीय सेवामें नहीं खपाये जा सकते; और राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाओंको चलानेका काम। किन्तु इनमें से अन्तिम तीनों कार्य भी कताईसे ही जुड़े हुए हैं, क्योंकि यदि हमें इस वर्षके अन्तसे पहले-पहले ही विदेशी कपड़ेका पूर्ण बहिष्कार सम्पन्न करना है तो समस्त कार्यकर्त्ताओं, स्कूलों तथा कालेजोंको मुख्यतः हाथकी कताई और बुनाईमें ही जुटे रहना चाहिए। मेरी समझमें अखिल भारतीय तिलक-स्मारक-स्वराज्य कोषके खर्चकी मदें यही हैं। कोषका पचहत्तर प्रतिशत भाग उसे एकत्र करनेवाले प्रान्तके नियन्त्रणमें रहेगा। और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा दिये गये निर्देशोंके अन्तर्गत, प्रान्तोंको स्वराज्य-प्राप्तिके लिए उसका उपयोग करनेके सम्बन्धमें निर्णयकी निर्बाध स्वाधीनता रहेगी।

विस्मयजनक भ्रान्तियाँ

गुजरातीमें एक आम कहावत है 'नामी साह कमा खाय, नामी चोर मारा जाय।' मैं चाहे सुधारक माना जाऊँ, चाहे अपराधी, किन्तु मैं अपने आपको अत्यन्त विचित्र

और बहुधा असमंजसपूर्ण स्थितिमें पाता हूँ। लोग कहते हैं कि मुझमें अलौकिक शक्तियाँ हैं, जब कि जो भी थोड़ी-बहुत शक्ति मुझमें है, वह मुझे सत्यके प्रति अपनी दृढ़ निष्ठासे, मेरे अदमनीय उद्यमसे, विपक्षीके प्रति मेरे न्याय-संगत व्यवहारसे, सदैव अपनी भूल स्वीकार करनेकी तत्परतासे, तथा निरन्तर विवेकसे काम लेते रहनेके गुणसे प्राप्त हुई है। किन्तु भोली जनता मेरी बातपर विश्वास ही नहीं करती कि मुझमें कोई असाधारण शक्ति नहीं है। इसी प्रकार ऐसे लोग जिन्हें राजनीतिमें पूर्णतः प्रामाणिक व्यवहार देखनेका अभ्यास नहीं है, वे बराबर मुझमें सब प्रकारकी दुष्टताओंका आरोप करते जाते है। 'मॉर्निंग पोस्ट'का विश्वास है कि फीजीकी हड़ताल एक साधुके प्रयत्नोंसे हुई, जिसे मैंने वहाँ भेजा था। यहाँ मैं जानता भी नहीं कि यह तथाकथित साधु कौन है। निश्चय ही मैंने हड़तालकी सलाह देनेके लिए किसीको फीजी नहीं भेजा। तथापि, फीजीमें यदि हड़ताल घोषित हो गई है, तो हड़तालियोंके साथ मेरी सहानुभूति है। मुझे जो कुछ भी सामग्री उपलब्ध है, उससे सिद्ध होता है कि फीजी एक विशाल शोषण-केन्द्र है, जहाँ गन्नेकी खेती करनेवाले अपने विपुल लाभके लिए बेचारे भारतीय मजदूरोंका शोषण करते रहते हैं।

'टाइम्स ऑफ इंडिया'

ऊपर निर्देशित भ्रान्त धारणाओं जैसी ही भ्रान्त धारणा 'टाइम्स आफ इंडिया'की भी है, जिसके हालके दो लेखोंकी ओर एक मित्रने मेरा ध्यान आकर्षित किया है। नियमपूर्वक अखबार न पढ़ सकनेके कारण, मुझे मालूम नहीं कि और दूसरे अखबार मेरा और कितना अधिक गलत-सलत चित्रण करते रहते हैं। 'टाइम्स आफ इंडिया,' जिसे मेरी बात ज्यादा अच्छी तरह समझ सकनी चाहिए, कदाचित् अनजानेमें मुझे गलत समझता है। उसके एक लेखमें कहा गया है कि मैंने असहयोग आन्दोलनको स्थगित कर दिया है; अर्थात् मैंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको सलाह दी है, कि वह अपना ध्यान कार्यकर्त्ता बनाने, धन संग्रह करने और चरखेके प्रचारपर केन्द्रित करे। मुझे खेद है कि मैं इसका यह अर्थ स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि मैंने आन्दोलन स्थगित करनेकी सलाह नहीं दी है, और उसका कारण मैं श्री रजा अलीको दिये गये अपने उत्तरमें दिखा चुका हूँ। दूसरे लेखमें कहा गया है कि अब मैं "पहलेवाला गांधी नहीं रहा," और इसलिए पाठकोंको मुझसे आन्दोलनके पहले दौरमें असहयोगियोंकी जो हार हुई है, उसे स्वीकार करनेकी उम्मीद नहीं करनी चाहिए।

हारकी तो बात ही क्या, मैं तो लोगोंमें जो जागृति हुई है, उससे चकित हूँ। मेरी रायमें ऐसी संस्थाओंके विरुद्ध, जिनके आधारपर शासन अपनी साख जमाता है, शक्तिशाली जनमत तैयार कर देना ही बड़ी बात है। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' समझता है कि असहयोग खाईमें गिरनेका सीधा रास्ता है। किन्तु मैं विनम्रतापूर्वक यह कहूँगा कि वह स्वर्गतक पहुँचनेका एक दुर्गम मार्ग है। यदि आन्दोलनका उद्देश्य अराजकता उत्पन्न करना होता, तो वह किसी भी क्षण उत्पन्न की जा सकती थी। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' और अन्य आलोचक, जो मैं समझता हूँ, संघर्षके मर्मको समझना चाहते हैं, इस तथ्यको ठीक-ठीक हृदयंगम करें तो अच्छा हो कि केवल मैं ही नहीं बल्कि सभी नेता अराज-

कताको रोकनेका शक्ति-भर प्रयास कर रहे हैं। अन्य सबसे मुझे पृथक् मानना व्यर्थ है। जो आलोचक, अली भाइयोंपर सन्देह करते ही जाते हैं, वे अपने-आपके साथ और हमारे ध्येयके साथ भारी अन्याय करते हैं। अली भाइयोंकी स्थिति बिलकुल स्पष्ट है और समझमें आने योग्य है। उनके लिए विशेष परिस्थितियोंमें हिंसा जायज है। जैसा कि मौलाना मुहम्मद अली बहुधा कहा करते हैं, युद्ध बुरा होता है, किन्तु [संसारमें] युद्धसे भी बदतर चीजें हैं। ब्रिटिश सरकारका अली-बन्धुओंसे ज्यादा शानदार विरोधी कोई विरला ही होगा। उनके मनमें सरकारको जबर्दस्ती नुकसान पहुँचानेकी इच्छा नहीं है। वे शान्तिपूर्ण समझौतेके लिए ईमानदारीके साथ परिश्रमपूर्वक प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु यदि सरकारकी हठधर्मीके कारण या जनताकी ओरसे सहयोगके अभावमें, उनका प्रयत्न व्यर्थ गया, तो अपने धर्मके प्रेमी होनेके नाते, सम्भव होनेपर युद्धकी स्थिति उत्पन्न करनेमें भी वे आगापीछा नहीं करेंगे। लोग मुझे इतना सीधा-सादा न मानें कि मुझे कोई भी साथी आसानीसे भ्रमित कर सकता है। मैं समझता हूँ कि मेरे साथी मुझे धोखा दे ही नहीं सकते। मेरा विश्वास है कि वे सब धर्म-भीरु, साहसी तथा सम्माननीय व्यक्ति हैं, और उनके साहचर्यको मैं अपने लिए विशेष सौभाग्यकी बात मानता हूँ। जहाँतक मेरे अपने रुखका प्रश्न है, यद्यपि मेरा विश्वास मुझे हिंसात्मक युद्धको निमन्त्रण देने अथवा प्रोत्साहित करनेकी अनुमति नहीं देगा, तथापि अस्त्र-शस्त्रोंके बलपर जबर्दस्ती लादी हुई इस स्त्रैण शान्तिकी अपेक्षा तो युद्धकी स्थितिकी कल्पना भी मैं अविचलित भावसे कर सकता हूँ। और यही कारण है कि मैं अहिंसात्मक असहयोगके इस आन्दोलनमें यह जोखिम उठाकर भी भाग ले रहा हूँ कि इसका अन्तिम परिणाम अराजकता भी हो सकता है। असहयोगके आलोचक यदि चाहें तो प्रत्येक व्यक्तिमें अराजकता अथवा रक्तपातको रोकनेकी उत्कट अभिलाषा देख सकते हैं। जो हो, असहयोगियोंको ठीक-ठीक समझा जाये या न समझा जाये, उनका काम धैर्य खो देनेसे चल ही नहीं सकता। उन्हें बराबर अपने निर्धारित और संकरे पथपर चलते रहना चाहिए।

एक व्यक्ति, एक मत

एक यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि क्या कांग्रेसका संविधान एक व्यक्तिको एकाधिक मत देनेकी अनुमति देता है। मेरी रायमें नया संविधान 'एक व्यक्ति, एक मत'के सिद्धान्तपर आधारित है। हमने साम्पत्तिक अर्हता हटा दी है। और मुझे लगता है कि एक व्यक्ति एकसे अधिक बहीमें अपना नाम पंजीयित नहीं करा सकता।

मध्य प्रान्तमें दमन[1]

लाला भगवानदीनजीके मुकदमेकी सुनवाई हो गई है। उनके अपनी सफाई देनेसे इनकार करनेपर, उन्हें कठिन परिश्रमके साथ अठारह महीनेके कारावासकी सजा दी गई है। मैंने उनके विरुद्ध पेश अभियोगपत्र नहीं देखा है। किन्तु मैं इतना जानता हूँ कि वे नागपुरके स्वराज्य आश्रमके अधीक्षक थे, और उत्तम काम कर रहे थे। अब सरकारने अपना ध्यान अमरावतीके श्री वामनराव जोशीकी ओर लगाया है। श्री जोशी

१. देखिए "भाषण: नागपुरमें", १८–२–१९२१।

एक निःस्वार्थ और उत्साही कार्यकर्त्ता हैं। उनका अपने जिलेमें बहुत प्रभाव है। ऐसा लगता है कि सरकारका इरादा सभी बड़े-बड़े व्यक्तियोंको बन्द कर देनेका है। किन्तु मैं समझता हूँ, सरकारको पता चलेगा कि जितने व्यक्तियोंको वह बन्द कर सकती है, उससे कहीं अधिक संख्यामें बड़े-बड़े व्यक्ति मौजूद हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-४-१९२१

२८०. राष्ट्रीय झंडा

सब राष्ट्रोंके लिए झंडा आवश्यक है। करोड़ोंने उसके लिए प्राण दिये हैं। निस्सन्देह यह एक ऐसी मूर्ति-पूजा है जिसे नष्ट करना पाप होगा। सो इसलिए कि झंडा एक आदर्शका प्रतिनिधित्व करता है। 'यूनियन जैक' का फहराया जाना अंग्रेजोंके हृदयमें ऐसे भाव जगाता है, जिनकी गहराईको माप सकना कठिन होगा। अमेरिकावासियोंके लिए तारों और धारियोंवाले अपने झंडेका अपार महत्व है। चाँद-तारावाला झंडा इस्लामके सर्वोत्तम शौर्यकी उद्‌भावना करता है।

हम भारतीयोंके लिए — हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों, पारसियों, तथा उन सभीके लिए जो भारतको अपना घर मानते हैं — यह आवश्यक है कि हम सबका एक झंडा हो और उसके लिए हम जियें और मरें।

मसूलीपट्टमके राष्ट्रीय महाविद्यालयके श्री पी० वेंकय्याने कुछ वर्षों पहले जनताके सामने एक विचारोत्तेजक पुस्तिका रखी थी। उसमें अन्य राष्ट्रोंके झंडोंका वर्णन किया गया है तथा भारतके राष्ट्रीय झंडेके लिए नमूने प्रस्तुत किये गये हैं। यद्यपि मैंने श्री पी० वेंकय्याके उस उत्साहकी सदा प्रशंसा ही की है, जिसके साथ वे पिछले चार सालोंसे कांग्रेसके हर अधिवेशनमें निरन्तर राष्ट्रीय झंडेके प्रश्नको उठाते रहे हैं तथापि मेरे हृदयमें उनके विचारोंके प्रति कोई उत्साह जाग्रत नहीं हो सका; और उन्होंने जो नमूने पेश किये उनमें मुझे ऐसा कुछ नहीं दिखाई पड़ा जो राष्ट्रकी भावनाओंको जगा सके। इसका श्रेय एक पंजाबी सज्जनको ही मिलना था। उन्होंने ऐसा सुझाव दिया जिसकी ओर सभीका ध्यान एकदम खिंच गया। वे थे जालंधरके लाला हंसराज, जिन्होंने चरखेकी सम्भावनाओंपर विचार करते हुए सुझाया था कि चरखेको हमारे स्वराज्यके झंडेमें स्थान मिलना चाहिए। मैं सुझावकी मौलिकताकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सका। बेजवाड़ामें मैंने श्री वेंकय्यासे एक ऐसा नमूना देनेको कहा, जिसमें लाल (हिन्दुओंका) तथा हरे (मुसलमानोंका) रंगकी पृष्ठभूमिपर चरखा हो। उनके उत्साही स्वभावके कारण तीन घंटेमें मेरे पास एक झंडा आ गया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके समक्ष उसे प्रस्तुत करनेके लिए तबतक थोड़ा विलम्ब हो गया था। अच्छा ही हुआ। अधिक गहराईसे विचार करनेके बाद मुझे महसूस हुआ कि पृष्ठभूमिमें अन्य धर्मोंका प्रतिनिधित्व भी होना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम एकता शब्द केवल इन दोनोंकी ही एकताका नहीं, बल्कि भारतमें बसनेवाले सभी धर्मके लोगोंकी एकताका प्रतीक

है। यदि हिन्दू और मुसलमान परस्पर सहिष्णुताके साथ रह सकते हैं, तो वे दोनों अन्य सब धर्मोके प्रति सहिष्णु बने रहनेके लिए बाध्य हैं। दोनोंकी एकता भारतमें मौजूद अन्य धर्मो अथवा संसारके लिए खतरा पैदा नहीं करती। अतः मेरा सुझाव है कि पृष्ठभूमि सफेद, हरी और लाल होनी चाहिए। सफेद रंग और सब धर्मोका प्रतिनिधित्व करनेके लिए है। संख्यामें जो सबसे कम हैं, वे प्रथम स्थानमें हैं, उसके बाद इस्लामका रंग आता है, और सबके नीचे हिन्दुओंका लाल रंग है। मतलब यह है कि जो सबसे अधिक शक्ति-सम्पन्न हैं, वे सबसे कम शक्तिवालोंके लिए ढालका काम करें, साथ ही सफेद रंग शुद्धि और शान्तिका भी द्योतक है। हमारा राष्ट्रीय झंडा इसका द्योतक नहीं हुआ तो व्यर्थ है। और हममें न्यूनतमकी अधिकतमके साथ बराबरी है यह दर्शानेके लिए तीनों रंगोंको बराबर-बराबर भागोंमें रखा गया है।

किन्तु राष्ट्रके रूपमें भारत केवल चरखेके लिए ही जी या मर सकता है। प्रत्येक नारी इस बातकी गवाही देगी कि चरखेके लोपके साथ ही भारतका सुख और उसकी समृद्धि लुप्त हो गई है। चरखेके आह्वानपर भारतकी नारियों और आम जनतामें जितनी जागृति आई है उतनी पहले कभी नहीं आई थी। जनसाधारण उसे अपना जीवनदाता मानते हैं। स्त्रियाँ उसे अपने नारीत्वका संरक्षक मानती हैं। जिस भी विधवासे मैं मिला हूँ उसीने चरखेको अपने एक प्रिय और विस्मृत मित्रके रूपमें पहचाना है। केवल उसकी पुनः स्थापना ही लाखों क्षुधाग्रस्त लोगोंका पेट भर सकती है। औद्योगिक विकासकी कोई भी योजनाएँ १,९०० मील लम्बे और १,५०० मील चौड़े इस विशाल-भूखण्डके किसानोंकी बढ़ती हुई गरीबीकी समस्याको हल नहीं कर सकतीं। भारत कोई छोटा द्वीप नहीं है, वह एक विशाल महाद्वीप है, जिसे इंग्लैंडके समान एक औद्योगिक देशमें परिणत नहीं किया जा सकता। और हमें संसारके शोषणकी प्रत्येक योजनासे तो दृढ़ताके साथ मुँह मोड़ लेना चाहिए। देशकी सम्पदा बढ़ानेके लिए हमारी एकमात्र आशा अपनी झोंपड़ियोंमें कपासको कपड़ेमें परिणत करके, राष्ट्रके खाली समयका उपयोग करनेपर केन्द्रित होनी चाहिए। अतः चरखा भारतीय जीवनके लिए उतना ही आवश्यक है, जितने कि हवा और पानी।

साथ ही मुसलमानोंका उसपर उतना ही विश्वास है जितना हिन्दुओंका। सच तो यह है कि हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसलमान उसे अधिक तत्परताके साथ अपना रहे हैं, क्योंकि मुस्लिम महिलाएँ पर्दानशीन हैं, और अब वे अपने पतियोंकी बहुत ही कम आयमें कुछ इजाफा कर सकती हैं। अतः चरखा राष्ट्रीय जीवनका सबसे महत्वपूर्ण, साथ ही सबसे अधिक स्वाभाविक और सभी लोगोंके लिए समान रूपसे उपयोगी उपादान है। उसके माध्यमसे हम सारे संसारको बतलाते हैं कि जहाँतक भोजन और कपड़ेका सवाल है, हम शेष संसारपर तनिक भी आश्रित न रहनेके लिए कृत-संकल्प हैं। जिनका विश्वास मेरे विश्वाससे मिलता-जुलता है, वे शीघ्र ही अपने घरोंमें चरखेकी पैठ करायेंगे, और मेरे द्वारा सुझाये हुए नमूनेका झंडा रखेंगे।

निष्कर्ष यह कि झंडा खद्दरका ही होना चाहिए; क्योंकि मोटे कपड़ेके द्वारा ही हम भारतको कपड़ेके मामलेमें विदेशी बाजारोंसे मुक्त कर सकेंगे। सभी धार्मिक संग-ठनोंको मेरी सलाह है कि यदि वे मेरे तर्कसे सहमत हों, तो अपने-अपने धार्मिक झंडोंमें

— उदाहरणार्थ खिलाफतके झंडोंमें — बाईं ओर, ऊपरके कोनेमें, एक छोटा-सा राष्ट्रीय झंडा बुन लें। विहित आकारके झंडेमें पूरे आकारके चरखेका चित्र होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-४-१९२१

२८१. उड़ीसा और आन्ध्र

उड़ीसाकी यह मेरी पहली यात्रा थी, और १९१६ में (एक बार) बेजवाड़ा और नेलौरको छोड़कर, आन्ध्र भी मैं पहली बार ही गया था। इन प्रान्तोंके कुछ अविस्मरणीय दृश्य और संस्मरणमें लेखबद्ध करना चाहूँगा। कार्यक्रम बड़ा व्यस्त था, और मै बड़े-बड़े मुकामोंका उल्लेख भी सरसरी तौरपर ही कर सकता हूँ।

मैं जानता था कि मुझे उड़ीसामें जीवित कंकाल देखने पड़ेंगे; किन्तु हालतके इतनी बुरी होनेकी कल्पना मैंने नहीं की थी। मैंने भयावह तसवीरें देखी थीं, किन्तु यथार्थ तो उससे कहीं अधिक भयावह था। ६ मार्चके उस स्मरणीय दिन पुरीकी पवित्र नगरीकी एक सड़कके किनारे कतार बाँधकर खड़े हुए उन पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंके लिए स्वराज्यका क्या अर्थ हो सकता है, जिनमें हाड़ और चमड़ीके सिवाय और कुछ नहीं था। एक दो नहीं, अनेक। और जो आ नहीं सके वे अलग। ये भुखमरोंमें अपेक्षाकृत समर्थ थे — अर्थात् ऐसे थे जो काफी दूरीसे चलकर आ सकते थे। वे जिसने उन्हें चावल भेजा था, और जिससे उन्हें और अधिक चावलकी आशा थी उसे देखने आये। कुछने रोकर करुण स्वरमें कहा 'हम भूखे हैं।' कुछ बोले, 'दाम कब घटेंगे?' मैं समझ गया कि बहुतोंके लिए स्वराज्यका अर्थ है सस्ता भोजन और सस्ता कपड़ा — कपड़ेसे भी ज्यादा भोजन। उनके कमरसे नीचेके अंग ढकनेके लिए एक चिथड़ा काफी था; किन्तु भोजन तो चाहिए ही।

मैं इस स्थलकी ओर एक बड़े बंगलेसे गया था, जहाँ मैं प्राचुर्यके बीच ठहराया गया था। मैं उस विशाल मन्दिरके पाससे कई बार निकला जिसमें जगतके नाथ विराजते हैं। रास्तेमें मुझे खूब खाये-पिये महंत और पंडे तथा सैकड़ों तीर्थयात्री मिले, जो कई सौ रुपये खर्च कर सकते थे।

विषमता बहुत बड़ी थी, और मेरा दुःख तो और भी गहरा तथा तीखा था।

मुझे लोग एक अनाथालयमें ले गये। एक दयालु पुलिस अधीक्षकने उसकी स्थापना की थी। मैंने वहाँ हृष्ट-पुष्ट दिखनेवाले लड़के और लड़कियाँ देखीं — कुछ चरखा कात रहे थे, कुछ चटाइयाँ बुन रहे थे। सभी मांसहीन व्यक्ति ऐसा क्यों नहीं कर सकते? तब उन्हें भिक्षापर, घरोंमें बचे हुए भोजनपर अथवा मुट्ठीभर चावलपर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। यदि वे कताई-भर कर सकें, तो अपनी जीविका अर्जित कर सकेंगे। किन्तु उन्हें चरखे कौन देगा? सीधा उत्तर आया, "कांग्रेस, और कौन?" कांग्रेस उन्हें कताईके माध्यमसे स्वराज्य प्राप्त करना सिखा सकती है। ऐसा अन्य कोई धन्धा नहीं है, जिसे लाखों लोग अपना सकें, चटाई बनाना भी नहीं। क्योंकि

लाखों चटाइयाँ बिकेंगी नहीं। खाद्य-सामग्रीके बाद सूत ही वह चीज है जिसकी बाजारमें सदा माँग रहती है। मैं कांग्रेसके नेताओंसे मिला। मैंने उन्हें यह कहानी सुनाई, उनमें से कुछ उन दृश्योंके साक्षी थे, जिनका मैंने वर्णन किया है। वे इस बातसे सहमत हुए कि कांग्रेसका पैसा मुख्यतः चरखेके प्रचारके ही काम आना चाहिए और पैसा महन्तों तथा तीर्थयात्रियोंसे आसानीसे प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार कंगालीसे ग्रस्त उड़ीसामें भी कांग्रेस कमेटी आत्म-निर्भर हो सकती है, और भूखोंके पेट भरकर स्वराज्य और भी पास ला सकती है।

कार्यकर्त्ता भी उनके पास हैं। पंडित गोपबन्धु दास, जो विधान परिषद्के भूतपूर्व सदस्य हैं, भूतपूर्व वकील हैं, और भी जाने क्या-क्या हैं, एक निःस्वार्थ नेता हैं। कहा जाता है कि वे और उनके दलके लोग चावल और दालपर गुजर करते हैं। उन्हें आजकल घी भूले-भटके ही कभी मिलता है। असहयोगके बाद अब कार्यकर्त्ता कमसे-कम जीवन-वेतन लेने लगे हैं, यहाँतक कि दस रुपया प्रतिमास।

तब यदि मैं विश्वास करता हूँ कि ऐसे ईमानदार कार्यकर्त्ताओंकी सहायतासे स्वराज्यकी प्राप्ति इसी वर्षके भीतर सम्भव है, तो इसमें आश्चर्य क्या है?

पुरीसे बारह मील इसी ओर साखीगोपालमें खुली हवामें पंडित गोपबन्धु दासका एक स्कूल है। वह निकुंज-शाला है; देखने योग्य है। मैंने वहाँ लड़कों और शिक्षकोंके बीच एक दिन बड़े आनन्दके साथ बिताया। खुले मैदानमें अध्यापनका यह एक सोच-समझकर किया जानेवाला प्रयोग है। यहाँके कुछ लड़के व्यायामशील और तगड़े दिखे।

उड़ीसाकी शिकायत उचित है। जैसा कि 'उड़िया मूवमैन्ट' (उड़िया आन्दोलन) नामक पुस्तकके योग्य लेखक कहते हैं, उड़ीसाके टुकड़े राजनैतिक उद्देश्यसे किये गये हैं। कुछ हिस्सा बंगालका हो गया है, कुछ बिहारका, कुछ मध्य प्रान्तका और कुछ आन्ध्रका। उड़ीसाका अपना कुछ नहीं रहा। कांग्रेसने उड़ियाभाषी लोगोंका एक प्रान्त माना है। बिहार, बंगाल और मध्य प्रान्तसे कोई झगड़ा नहीं है। किन्तु बहरामपुर-पर उड़िया लोगोंके दावेका आन्ध्रवासी प्रतिवाद करते हैं। मैंने उनके मार्गदर्शनके लिए कुछ साधारण नियम सुझानेका साहस किया है। एक सर्वोत्तम नियम, जो सब जगह समान रूपसे लागू हो सकता है और जो हमें वर्तमान संघर्षसे सीखना चाहिए, यह है कि सशक्तोंको अशक्तोंकी बात मान लेनी चाहिए। सन्देहकी स्थितिमें अशक्तोंके पक्षमें न्याय दिया जाना चाहिए। उड़ीसाके संस्मरण मैं उन हजारों निर्धन लोगोंके स्मरणके साथ समाप्त करूँगा जो साखीगोपालकी आम सभामें आये थे, और जिन्होंने अपनी गिरह खोल-खोलकर पाइयाँ और पैसे दिये थे। वे पैसे मानो विधवाकी अत्यन्त सफल आशीर्वादोंसे सम्पन्न कौड़ी थी। उन हजारों लोगोंको एक दूसरेसे चन्दा देनेका आग्रह करते देख मैं और भी आशावादी हो गया हूँ।

आन्ध्र देश उत्कलसे भिन्न है। वह जीवनी शक्तिसे ओतप्रोत है। वहाँ मुझे मांसहीन हड्डियोंके ढाँचे नहीं दिखाई दिये। वहाँके लोग हृष्ट-पुष्ट, बलवान, आग्रही, उदार और स्नेही हैं। अपने प्रान्तके और भारतके भविष्यमें उनका विश्वास है। पुरुषों और स्त्रियों, दोनोंके पास सोनेके प्रचुर आभूषण हैं। लेकिन आभूषण मुझे दिखाना तो भयंकर भूल होती है। मैंने यह बात छुपाई नहीं कि मुझे वे आभूषण

तिलक महाराजके लिए तथा स्वराज्यके लिए चाहिए। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दे दिये, पुरुषोंने और स्त्रियोंने भी। उन्होंने ६ दिनमें लगभग पचास हजार रुपये दिये, तथा और अधिकके लिए वचन दिया। अगर चाहते, तो आन्ध्रके लोग अपने आभूषणोंसे ही एक करोड़ रुपया एकत्र कर सकते थे।

मैंने आन्ध्रवासियोंसे कहा कि उनकी महिलाओंका खुला व्यवहार, चालढालका आभिजात्य, बाहर निकलनेकी स्वतंत्रता और साथ ही उनका शील-संकोच देखकर मुझे महाराष्ट्रकी स्त्रियोंका स्मरण हो आता है। यह बहुत बड़ी प्रशंसा है। उनके सम्बन्धमें अपनी इस रायपर मैं अब भी कायम हूँ। कलकत्तामें शिक्षित और नवविवाहित एलौरकी एक लड़की, अन्नपूर्णादेवीने अपने सुहाग-चिह्नोंको छोड़कर प्रायः सभी जेवर दे दिये। वे सरसे पैरतक खद्दरकी पोशाकमें थीं। आन्ध्रके पुरुषों और स्त्रियोंकी उदारता संक्रामक थी।

पंजाबी बहनोंको सुन्दर कताईके मामलेमें अब आन्ध्रकी बहनोंका लोहा मानना पड़ेगा। मैं समझता था कि पंजाबी बहनोंसे अधिक सुन्दर कताई कोई नहीं कर सकता। किन्तु आन्ध्रकी बहनें १०० नम्बरका सूत कातती हैं। वे अपनी रुई स्वयं साफ करतीं और धुन लेती हैं। मैं सुन्दर बुने हुए सूतके कुछ नमूने अपने साथ लाया हूँ, जो जापान, फ्रांस अथवा लंकाशायरके किसी भी वस्त्रको मातकर सकते हैं। यह कला नष्ट होने जा रही थी; स्वदेशी आन्दोलनने इसे बचा लिया। मसूलीपट्टममें कुछ महिलाओंने मेरे सामने अपनी कलाका प्रदर्शन करनेकी कृपा की। बहनोंसे छाई हुई एक झोंपड़ीमे कला-प्रदर्शनका वह दृश्य हृदयको छू लेनेवाला था। उन्होंने कपासको साफ किया, धुना, काता। मुझे तो वहाँ चरखेमें विश्व-संगीत सुनाई दिया।

किन्तु अब मुझे आत्माको विभोर कर देनेवाली बातोंसे आत्माका हनन करनेवाली बातोंकी ओर उतरना पड़ता है। कोकोनाडामें, विशाल आमसभाके बाद रातके ९ बजे ज्यों ही मैं बंगलेपर लौटा, कुछ स्त्रियाँ और लड़कियाँ मुझसे मिलने आई। मैंने प्रवेश किया तब प्रकाश बहुत मन्द था। उनकी चालढाल और उनकी सूरतमें कुछ विचित्रता थी। जाने क्यों, वार्तालापका आरम्भ मैं जिन शब्दोंसे करता हूँ, यानी "क्या आप सूत कातती हैं? तिलक स्वराज्य कोषके लिए आप मुझे क्या देंगी"? वे शब्द मेरे ओठों तक नहीं आये। उलटे, मैंने अपने मेजबानसे पूछा, ये महिलाएँ कौन हैं? उन्हें मालूम नहीं था। उन्होंने उनसे पूछा, और कुछ हिचकिचाहटके बाद उत्तर मिला, "हम नर्तकियाँ हैं।" मुझे लगा कि मैं धरतीमें समा जाऊँ। मेरे मेजबानने यह कहकर मेरा मन शान्त करना चाहा कि इनके जीवनका प्रारम्भ एक धार्मिक विधिसे होता है। मेरे लेखे इससे बात और भी बिगड़ गई। इससे तो यह घृणित कार्य एक प्रकारसे सम्माननीय हो गया। मैंन तरह-तरहके प्रश्न किये। उन्होंने अत्यन्त विनम्र शब्दोंमें कहा कि वे दर्शन करने आई हैं। . . . "क्या आप कोई और काम करेंगी?" "अवश्य, यदि उससे हमारी जीविका चल जाये।" मेरा मन नहीं माना कि बात वहीं खत्म कर दी जाये। मैंने उस समय अपने पुरुष होनेमें लज्जाका अनुभव किया। मैंने दूसरे दिन सबेरे अपने आगामी मुकाम, राजमहेन्द्रीमें सीधी स्पष्ट बात कही। आन्ध्रमें मेरा यह एक अत्यन्त दुःखदायी अनुभव था। मेरा खयाल है यह पाप किसी न किसी रूपमें देशके और भागोंमें भी

समान रूपसे व्याप्त है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि यदि हम आत्म-शुद्धि द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें नारीको अपनी वासनाका शिकार नहीं बनाना चाहिए। अशक्तोंकी रक्षाका नियम यहाँ विशेष जोरके साथ लागू होता है। मेरे लिए तो गोरक्षाके अर्थमें हमारी नारीजातिकी रक्षा भी शामिल है। जबतक हम अपनी माताओं, बहनों तथा बेटियोंके समान देशकी सभी महिलाओंका सम्मान नहीं करने लगते, तबतक हम भारतका नवनिर्माण नहीं कर सकेंगे। हमें अपने उन पापोंको धो डालना चाहिए, जो हमारे भीतरके मनुष्यकी हत्या करते और हमें जानवर बना देते हैं।

अब फिर अधिक सुखदायी बातोंकी ओर लौटा जाये। मसूलीपट्टमके प्रवासमें मेरी आँखोंमें आनन्दके आँसू आ गये। वह मेरा मौन दिवस था। मैंने डाक्टर पट्टाभि सीतारामैयासे[1] कहा था कि जब मैं मसूलीपट्टममें प्रवेश करूँ, तो वे ऐसी व्यवस्था करें कि मैं कोलाहल तथा प्रदर्शनसे बचा रहूँ। अतः लोगोंको पहले ही से चेतावनी दे दी गई थी। जब हमारी मोटर वहाँ पहुँची, तब सबेरा हुआ ही था। लोग सुसज्जित सड़कोंके किनारे खड़े थे, किन्तु आवाज बिलकुल नहीं हो रही थी। सब चुपचाप अपने-अपने स्थानपर खड़े थे। और जब मैंने राष्ट्रीय महाविद्यालयके द्वारमें प्रवेश किया, तो कोई आवाज नहीं हुई। केवल बाँसुरीकी संगतके साथ वायलिनपर छेड़ी गई एक मधुर प्रार्थना-धुनसे मेरा अभिवादन किया गया। मैंने उनके मधुर स्नेहका मूल्य समझा। साथ ही मेरी समझमें आया कि लोगोंमें अनुशासनकी बड़ी सामर्थ्य है, यह भी कि उनकी देश-भक्तिकी भावनासे जो विभिन्न अपेक्षाएँ की जाती हैं, उनको वे कैसी तत्परतासे पूरी करते हैं। मैंने आनन्दाश्रुओंके साथ प्रभुको उसकी अपार करुणाके लिए धन्यवाद दिया।

मुझे लोग एक सचमुचकी 'पर्णकुटी' में ले गये। वहाँ जब मैं शिक्षकों तथा प्रबन्धकोंको अपने-अपने नियत कार्योकी व्यवस्थित कार्यप्रणाली, कला तथा व्यवसायके लिए बधाई दे रहा था, मुझसे यह कहे बिना नहीं रहा गया कि उनका कार्य तबतक पूर्णतः राष्ट्रीय नहीं कहा जा सकता, जबतक प्रत्येक विद्यार्थी और शिक्षक अपना प्रायः सभी समय और ध्यान कताई और बुनाईमें न लगाये, और इस प्रकार अपनी संस्थाको विशेष रूपसे कताई और बुनाईकी संस्था न बना दे। जब मैं अपने इस विषयके सम्बन्धमें बोल रहा था, उसी समय श्री कृष्णराव, जो बराबर मेरी बात सुन रहे थे, किन्तु विचार-विमर्शमें क्वचित् ही भाग ले रहे थे, नेत्रोंमें मानो आध्यात्मिक ज्योति भरकर बोले, "तो आप कताईको एक धार्मिक अनुष्ठान मानते हैं?"; "अवश्य" मैंने कहा, "आपके इस शब्दप्रयोगके लिए धन्यवाद, आगे मैं इसका प्रयोग करूँगा।" कताई राष्ट्रकी शुद्धि, शक्ति तथा समृद्धिका प्रत्यक्ष एवं पवित्र प्रतीक है। यह एक कर्त्तव्य है और कोई हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई, यहूदी या पारसी, सबके लिए करणीय है। आन्ध्र राष्ट्रीय महाविद्यालय पुरानी संस्था है, जिसपर आन्ध्रवासियोंको गर्व होना उचित है। यह संस्था १९०७ के बंगालके जागरणकी देन है और कई तूफान झेल चुकी है। मैं आशा करता हूँ कि वर्तमान जागरणके दौरमें से यह और भी अधिक शुद्ध एवं शक्तिशाली संस्था

१. प्रमुख कांग्रेसी नेता; १९४८ में कांग्रेसके अध्यक्ष, 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका इतिहास' के लेखक।

होकर निकलेगी। इसमें निश्चय ही वे सब गुण हैं, जिसके बलपर वह ऐसा केन्द्र बन सकती है जहाँसे वर्त्तमान भावनाके अनुकूल अत्यन्त शुद्ध कार्यकलापकी ज्योति चारों ओर फैले।

आन्ध्र देशमें एक तेजस्वी सुधारक और दलित वर्गोंके सहृदय समर्थक श्री रामचन्द्रराव हैं। वे ब्राह्मण हैं, किन्तु उनकी शुद्ध आत्मा अस्पृश्यताके अभिशापको सहन नहीं कर सकती। वे अपने दलित भाइयोंकी ओरसे जी-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। अपने परिया अर्थात् अछूत भाइयोंकी दासताको मिटानेके लिए उनकी अधीरता ठीक ही है; और वे उन्हें अन्य हिन्दुओंसे असहयोग तक करनेकी सलाह देना चाहते हैं। यद्यपि मैं भी अपने दलित वर्गोंके पक्षमें उतना ही उत्साही होनेका दावा करता हूँ, तथापि मैंने उन्हें आगाह किया कि जबतक स्वयं उन लोगोंके बीच कोई शुद्ध और निःस्वार्थ व्यक्ति पैदा न हो, वे ऐसा असहयोग शुरू न करें, क्योंकि असहयोग आत्मशुद्धिका, आत्मसाहाय्यका, आत्म-निर्भरताका आन्दोलन है; वह हमें ठीक प्रकारके सहयोगके लिए बाध्य करता है।

आन्ध्रवासियोंने मेरा मन हर लिया है। बिहार तो बहुत समयसे मुझे विशेष प्रिय रहा है। असहयोगकी शुरुआतसे बहुत पहले ही बिहारपर मेरा विश्वास जम गया था। आन्ध्र प्रदेश यदि इसमें बिहारसे आगे नहीं बढ़ गया है तो उसने दूसरा स्थान तो मजेमें प्राप्त कर लिया है। आन्ध्र देशको अत्यन्त निःस्वार्थ नेता मिले हैं। उसके कार्यकर्त्ता परिश्रमशील और दृढ़ हैं। उसके पास साधन हैं, उसमें काव्य है, श्रद्धा है, और त्यागकी भावना है। वहाँ कई राष्ट्रीय स्कूल हैं; उसने हमारे ध्येयके निमित्त कई वकील हमें दिये हैं; हाथकी कताई और हाथकी बुनाईकी तो वहाँ बहुत ही बड़ी-बड़ी संभावनाएँ हैं; वहाँ उत्तम कपास होता है। वहाँ दो विशाल नदियाँ हैं, जो पार्श्व-प्रदेशको सींचती हैं। उसमें ऐसे भू-क्षेत्र हैं, जो कभी इतिहासमें प्रसिद्ध थे। वह निश्चय ही अग्रणी है, या कमसे-कम बिहारसे होड़ लेता है। मेरा यह विश्वास कायम है कि यदि आतंकवाद (जो दमनसे अलग चीज है) का प्रारम्भ हुआ, और उसमें तथाकथित बड़े प्रान्त हार भी गये, तो बिहार और आन्ध्र आत्माके शौर्य, अर्थात् कष्ट-सहिष्णुतामें सिखोंको भी मात कर देंगे और लज्जा रख लेंगे। मेरा अनुमान गलत भी हो सकता है। हममेंसे प्रत्येकको शेष सभीसे आगे निकलनेकी कोशिश करनी चाहिए। यह एक ऐसी दौड़ है, जिसमें स्पर्धा न केवल सद्गुण है, वरन् कर्त्तव्य भी है।

दो सुन्दर गाँवों और उनके नेतापर सविनय अवज्ञाका प्रयोग जबरदस्ती लद गया है! उसके बारेमें फिर कभी लिखूँगा। नेलौरकी हिन्दू-मुस्लिम समस्याकी चर्चा भी फिर कभी करूँगा। मुझे अब इन संस्मरणोंको कृतज्ञताके साथ इस तथ्यका उल्लेख करते हुए समाप्त करना चाहिए कि यद्यपि मेरे साथ हरिजन साथी भी थे, तथापि श्री हनुमन्तराव और उनके साथियों द्वारा संचालित कताई-बुनाईके एक आश्रमके[१] पड़ोसके एक गाँवके ब्राह्मणोंने मुझे आमन्त्रित किया कि मैं उनके गाँवमें से होता

१. शायद नेलौरसे पाँच मीलकी दूरीपर स्थित पल्लिपाडका आश्रम, जिसका गांधीजीने ७ अप्रैलको उद्घाटन किया था।

हुआ जाऊँ। पंचम जातिके लोगोंने इससे पहले ब्राह्मणोंके इस गाँवमें कभी प्रवेश नहीं किया था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३–४–१९२१

२८२. भाषण: अहमदाबादकी सार्वजनिक सभामें

१३ अप्रैल, १९२१

गांधीजीने अपने भाषणमें कहा:

हम अब केवल खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंका निराकरण करानेके लिए नहीं लड़ रहे हैं। हम ऐसा स्वराज्य लेना चाहते हैं जो राम-राज्य जैसा हो। इस राक्षसी राज्यका अर्थ तो यह है कि आतंक नीति चालू रहे और निर्बलोंका शोषण होता रहे। हम अपने राम-राज्यको आत्मशुद्धिके द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं। सभीने राष्ट्रीय सप्ताहमें यह प्रार्थना की होगी कि प्रभु हममें न्याय और दयाकी भावना उत्पन्न करे और हमें बुराईसे असहयोग करनेकी तथा हिंसा एवं क्रोधसे बचे रहनेकी शक्ति दे। जहाँतक सरकारी स्कूलों और अदालतोंके बहिष्कारका सम्बन्ध है वहाँतक हमने अपना आन्दोलन जोरसे चलाया है; किन्तु कभी-कभी रुकना आवश्यक हो जाया करता है। छात्रों और वकीलोंके लिए जो-कुछ सम्भव था, वह सब हमने किया है। आर्थिक दृष्टिसे उनके लिए इससे अधिक करनेकी कोशिशका अर्थ समय नष्ट करना है। हम अब अपने शरीरकी भी सोचें; हमें उसे स्वदेशी वस्त्रोंसे ढँकना चाहिए और इसके लिए हमें सूत कातना आरम्भ कर देना चाहिए। इसमें त्यागका कोई प्रश्न ही नहीं उठता है, क्योंकि इससे भारतका साठ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष बचता है। जबतक एक भी व्यक्ति मुझे विदेशी कपड़ा पहने दीख पड़ेगा तबतक मेरा मन इस विचारके बोझसे दबा रहेगा कि हम स्वराज्यकी आसानसे-आसान शर्ततक पूरी नहीं कर रहे हैं। मैं देखता हूँ कि इस मामलेमें सबसे बड़ा दोषी गुजरात है। भारतके दूसरे भागोंमें लोगोंके सब कपड़े विदेशी नहीं होते। उनके शरीरोंपर कमसे-कम कुछ चीजें तो स्वदेशी होती हैं; किन्तु गुजरातमें पोशाकके मामलेमें सन्तोषदायक शायद ही कोई बात हो। कांग्रेसने एक करोड़ रुपया इकट्ठा करनेका आदेश दिया है। यह रुपया शिष्ट मण्डलोंको [बाहर] भेजने और आन्दोलन चलानेमें खर्च नहीं किया जायेगा। इसका उपयोग देशके प्रत्येक घरमें चरखा चलवानेके निमित्त ही किया जायेगा।

गांधीजीने अहमदाबादको डा० कानूगा-जैसा वीर पुरुष पानेपर बधाई दी कि उन्होंने उपद्रवियों द्वारा पत्थर फेंके जाने और आँखमें लगने और घायल हो जानेपर भी धरना देना बन्द नहीं किया। उन्होंने कहा: ऐसी घटनाओंसे संघर्षका गौरव बहुत बढ़ जाता है। सेनापति वीरगतिको प्राप्त हो सकते हैं; हम उनकी मृत्युपर हर्ष मनायें;

किन्तु सेनाको अपनी कूच जारी रखनी चाहिए। जबतक ऐसा वीरतापूर्ण साहस न दिखाया जायेगा तबतक हमें स्वराज्य नहीं मिल सकता।

अन्तमें उन्होंने गुजरातसे अपील की कि वह राष्ट्रीय कोषमें केवल अपना भाग ही न दे, अभावग्रस्त उड़ीसाके हिस्सेमें आई हुई रकम भी दे और प्रत्येक मंजिलपर अपने दोषोंको दूर करते हुए गतिके साथ आगे बढ़े।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १९–४–१९२१

२८३. भाषण: दलित-वर्ग सम्मेलन, अहमदाबादमें[1]

१३ अप्रैल, १९२१

श्री गांधीजीने आरम्भमें इसपर खेद प्रकट किया कि सम्मेलनमें उपस्थिति बहुत कम है।[2] उन्होंने कहा: इस सम्मेलनमें इतनी कम उपस्थिति देखकर इस बातमें मेरा रहा-सहा विश्वास भी जाता रहा कि ऐसे सम्मेलन सामाजिक सुधारके प्रभावकारी साधन हो सकते हैं। आप लोग मुझसे जितनी देरतक बोलनेकी आशा कर रहे हैं उससे यदि कम देर बोलूँ तो इसका कारण यही होगा कि मेरा भाषण जिन लोगोंके लिए अभिप्रेत है, वे सब लोग यहाँ नहीं हैं; यह नहीं कि इस कामके प्रति मेरा उत्साह तनिक भी ठंडा पड़ा है। मैं इस बातके लिए भी कृतज्ञ हूँ कि इस सम्मेलनकी बदौलत मुझे एक ही मंचपर अनेक मित्रोंसे भेंट करनेका आनन्द मिला। मेरे लिए आजकल ऐसे मित्रोंसे मिलना भी साधारण बात नहीं रह गई है जिनका सहयोग पाकर मैं सुख और सम्मानका अनुभव किया करता था, किन्तु जिनसे वर्तमान स्थितियोंके कारण मैं दुर्भाग्यवश अलग हो गया हूँ। फिर भी यह हर्षकी बात है कि अस्पृश्यताके प्रश्नपर मेरी और उनकी स्थिति एक जैसी है।

अपने विषयपर आते हुए उन्होंने कहा:

मुझे नहीं मालूम कि सुधारके विरोधी सज्जनोंके गले यह बात कैसे उतारूँ कि उन्होंने जो स्थिति अपनाई है वह गलत है। मैं उन लोगोंको कैसे समझाऊँ जो दलित समाजके लोगोंसे किसी प्रकारका स्पर्श भ्रष्टकारी मानते हैं और समझते हैं कि बिना स्नान किये वे उस अपवित्रतासे मुक्त नहीं हो सकते और इस प्रकार स्नानसे चूकना पाप समझते हैं? मैं तो केवल अपने हार्दिक विश्वासको ही उनके सामने प्रकट कर सकता हूँ।

१. अछूतोंका यह चौथा सम्मेलन १३-१४ अप्रैलको हुआ था।

२. भाषणकी रिपोर्टमें कहा गया है: "सम्मेलनमें भद्र स्त्री-पुरुष बड़ी संख्यामें आये थे। सम्मेलनमें भाग लेनेवालोंको गिरफ्तार किये जानेकी अफवाहके कारण अछूतोंकी उपस्थिति आशासे कम थी।"

मैं अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका सबसे बड़ा कलंक मानता हूँ। मेरे मनमें इस विचारका प्रादुर्भाव दक्षिण आफ्रिकी संघर्षके दिनोंमें हुए कटु अनुभवोंसे हुआ था। इसका कारण यह नहीं कि मैं कभी नास्तिक था। और यह सोचना भी उतना ही अनुचित है जैसा कि कुछ लोग समझते हैं — कि मुझे यह विचार ईसाई धार्मिक साहित्यके अध्ययनसे मिला है। मेरी यह धारणा उस समयकी है जब 'बाइबिल' या 'बाइबिल' मतानुयायियोंसे न तो मेरा कोई प्रेम था और न परिचय ही।

मेरे मनमें जब यह धारणा उत्पन्न हुई थी तब मैं मुश्किलसे १२ सालका था। ऊका नामका एक भंगी हमारे घरकी टट्टियाँ साफ किया करता था। मैं अपनी माँसे यह प्रायः पूछा करता कि उसे छूना क्यों बुरा है, उसे छूनेसे मुझे क्यों रोका जाता है। यदि संयोगसे उसे छू जाता तो मुझे नहानेके लिए कहा जाता था। मैं इसे मान तो लेता था, फिर भी मुस्कराते हुए आपत्ति जरूर करता और कहता कि अछूतपन धर्मसम्मत नहीं है, उसका धर्मसम्मत होना असम्भव है। मैं एक बहुत ही कर्त्तव्यपरायण और आज्ञाकारी बालक था। माता-पिताके प्रति आदरभावका खयाल रखते हुए इस मामलेमें जहाँतक उनसे झगड़ सकता था अकसर उनसे झगड़ पड़ता था। मैं अपनी माँसे कहा करता कि उनका यह खयाल कि ऊकासे छू जाना पाप है, बिलकुल गलत है।

मैं जब स्कूलमें होता तो प्रायः संयोगसे 'अछूत'को छू लेता और चूँकि इस बातको मैं अपने माता-पितासे छिपाता नहीं था अतः मेरी माँ मुझसे कहतीं कि इस छू जानेपर अपवित्र हो जानेके पश्चात् पवित्र होनेका सबसे सीधा तरीका यह है कि यदि कोई मुसलमान पाससे जा रहा हो तो उसे छू लिया जाये। छूत अपने आप मिट जायेगी। मुझे केवल इसलिए कि अपनी माँके प्रति मेरे मनमें श्रद्धा थी और मैं उनसे प्रेम करता था, प्रायः ऐसा करना पड़ता था, लेकिन मैं यह काम इस विश्वासके साथ नहीं करता था कि स्नान करना धर्मकी दृष्टिसे अनिवार्य है। कुछ समय बाद हम लोग पोरबन्दर चले गये जहाँ संस्कृतसे मेरा प्रथम परिचय हुआ। तबतक मैं अंग्रेजी स्कूलमें दाखिल नहीं कराया गया था। मेरे भाईको और मुझे एक ब्राह्मणके संरक्षणमें रख दिया गया था जो हमें 'रामरक्षा', और 'विष्णुपूजा' पढ़ाया करता था। उनके 'जले विष्णुः थले विष्णुः' श्लोक मुझे कभी नहीं भूले। हमारे घरके पास ही एक ममतालु बूढ़ी अम्मा रहा करती थी। मैं संयोगवश उन दिनों एक बहुत ही डरपोक बालक था और जब दीपक बुझा दिये जाते और अंधेरा हो जाता, तब मेरे मनमें भूतों और प्रेतोंकी कल्पना आया करती थी। बूढ़ी अम्माने मेरा भय दूर करनेके लिए मुझसे कहा कि जब मुझे कोई भय लगे तब मुझे 'रामरक्षा स्तोत्र'का पाठ करना चाहिए। उससे सब भूत-प्रेत भाग जायेंगे। मैं ऐसा ही करता और मेरा खयाल है कि उसका नतीजा अच्छा ही निकलता। 'रामरक्षा'के किसी श्लोकमें अछूतोंका छूना पाप बताया गया हो ऐसा मुझे नहीं लगा। मैं तब उसका मतलब नहीं समझता था और यदि समझता भी था तो बहुत ही कम। लेकिन मुझे इस बातका पूरा विश्वास हो गया था कि जिस 'रामरक्षा'से भूतोंका सम्पूर्ण भय नष्ट हो जाता है, उसमें अछूतोंसे स्पर्शके भयका समर्थन कैसे हो सकता है।

हमारे परिवारमें 'रामायण' का पाठ नित्य होता था। लाधा महाराज नामके एक ब्राह्मण उसे पढ़ा करते थे। उन्हें कोढ़ हो गया था, और उनकी ऐसी श्रद्धा थी कि 'रामायण' का नियमित पाठ करनेसे उनका कोढ़ दूर हो जायेगा और सचमुच उनका कोढ़ दूर हो गया। मैं अपने मनमें सोचता कि आज जिसे हम अछूत कहते हैं वह रामको गंगा पार ले गया यह प्रसंग जिस 'रामायण' में है उस 'रामायण' में किसी भी मनुष्यको भ्रष्टात्मा कहकर उसके अस्पृश्य माने जानेकी भावनाका समर्थन कैसे हो सकता है? ईश्वरको हम पतितपावन या ऐसे ही अन्य नामोंसे पुकारते हैं, इस बातसे तो यही सिद्ध होता है कि भारतमें जन्मे किसी भी व्यक्तिको पतित या अछूत कहना पाप है — दानवता है। मैं तभीसे यह कहते नहीं थकता कि अस्पृश्यता एक महापाप है। मैं यह ढोंग नहीं रचता कि यह बात बारह सालकी आयुमें मेरे दिलमें पूरे तौरसे बैठ चुकी थी। किन्तु मैं यह अवश्य कहता हूँ कि मैं तब भी अछूतपनको पाप समझता था। यह बात मैं वैष्णवों और सनातनी हिन्दुओंकी जानकारीके लिए कह रहा हूँ।

मैंने सदा ही सनातनी हिन्दू होनेका दावा किया है। मुझे हिन्दू धर्मशास्त्रोंका बिलकुल ही ज्ञान न हो, सो बात नहीं है। मैं संस्कृतका कोई बड़ा पण्डित नहीं हूँ। मैंने 'वेदों' और 'उपनिषदों' के केवल अनुवाद ही पढ़े हैं, इसलिए स्वभावतः इन ग्रंथोंका मेरा अध्ययन पाण्डित्यपूर्ण नहीं है। मुझे उनका जो ज्ञान है वह किसी प्रकारसे गम्भीर नहीं कहा जा सकता, लेकिन एक हिन्दूको उनका जितना अध्ययन करना चाहिए वैसा मैंने कर लिया है और मेरा दावा है कि मैं उनके मर्मसे परिचित हो गया हूँ। २१ वर्षका होते-होते तो मैं दूसरे धर्मोंके ग्रंथोंका अध्ययन भी कर चुका था।

एक समय था जब मैं हिन्दू धर्म और ईसाई धर्मके बीच डगमगा रहा था। जब मेरा मानसिक सन्तुलन ठीक हुआ तब मैंने अनुभव किया कि मेरी मुक्ति तो हिन्दू धर्ममें रहकर ही सम्भव है और तबसे हिन्दू धर्ममें मेरी श्रद्धा अधिक गहरी और ज्ञानमय होती गई है।

लेकिन उन दिनों मेरा विश्वास था कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मका अंग नहीं है और यदि वह उसका अंग है तो ऐसा हिन्दू धर्म मेरे कामका नहीं।

यह सच है कि हिन्दू धर्ममें अस्पृश्यता पाप नहीं समझी जाती। मैं शास्त्रोंकी व्याख्याके सम्बन्धमें किसी वाद-विवादमें नहीं पड़ना चाहता। 'भागवत' या 'मनुस्मृति' से प्रमाण प्रस्तुत करके अपनी बातको सिद्ध करना शायद मेरे लिए कठिन भी हो। लेकिन मैं हिन्दू धर्मके तत्वको समझ चुकनेका दावा करता हूँ। अस्पृश्यताकी अनुमति देकर हिन्दू धर्मने पाप किया है। इससे हमारा पतन हुआ है और हम साम्राज्यमें शूद्र-जैसे माने जाते हैं। हमसे यह छूत मुसलमानोंको भी लग गई है और दक्षिण आफ्रिका, पूर्वी आफ्रिका और कनाडामें हिन्दुओंकी तरह वे भी शूद्र माने जाने लगे हैं। यह सब दोष अस्पृश्यताके पापसे उत्पन्न हुए हैं।

अब मैं आपका ध्यान अपने मन्तव्यकी ओर ले जाना चाहता हूँ। वह इस तरह है; जबतक हिन्दू लोग जानबूझकर अछूतपनको अपने धर्मका अंग मानते रहेंगे, जबतक हिन्दू जनसाधारण अपने समाजके एक भागको छूना पाप समझते रहेंगे तबतक स्वराज्य-की प्राप्ति असम्भव है। युधिष्ठिर अपने कुत्तेको साथ लिये बिना स्वर्गमें नहीं गये तब

उन्हीं युधिष्ठिरके वंशज अछूतोंको छोड़कर स्वराज्य पानेकी आशा कैसे कर सकते हैं? जिन अपराधोंके लिए हम इस सरकारकी निन्दा करते हैं और उसे दानवी सरकार कहते हैं, उन अपराधोंमें से ऐसा कौनसा अपराध है जो हमने अपने इन अछूत भाइयोंके प्रति नहीं किया है, और जिसके हम दोषी नहीं हैं?

हम अपने भाइयोंको दलित बनानेके दोषी हैं? हम उनको पेटके बल रेंगाते हैं, हमने उनसे जमीनपर नाकें रगड़वाई हैं; हम क्रोधसे अपनी आँखें लाल करके उन्हें रेलके डिब्बोंमें से बाहर ढकेल देते हैं — अंग्रेजी शासनमें हमारे साथ इससे ज्यादा क्या किया गया है? हम डायर और ओ'डायरपर जो आरोप लगाते हैं उनमें से कौनसे आरोप हैं जो दूसरे लोग और हमारे अपने लोग भी, हमपर नहीं लगा सकते? हमें अपनी यह अपवित्रता अपनेमें से दूर कर देनी चाहिए। जबतक हम कमजोर और असहाय लोगोंकी रक्षा नहीं करते या जबतक एक भी स्वराज्यवादी किसी व्यक्तिकी भावनाओंको चोट पहुँचा सकता है तबतक स्वराज्यकी बात करना व्यर्थ है। स्वराज्यका अर्थ तो यह है कि स्वराज्यमें कोई भी हिन्दू या मुसलमान एक क्षणके लिए भी गर्वपूर्वक यह नहीं सोच सकता कि वह निर्भय होकर किसी भी हिन्दू या मुसलमानको कुचल सकता है। जबतक यह शर्त पूरी नहीं होती तबतक यदि हमें स्वराज्य मिल भी जायेगा तो वह तुरन्त ही हाथसे निकल जायेगा। हमने अपने इन कमजोर भाइयोंके प्रति जो पाप किये हैं उनसे जबतक हम शुद्ध नहीं हो जाते तबतक हम पशुओंके समान ही हैं।

लेकिन मुझे अब भी अपनेमें विश्वास बना हुआ है। भारतमें की गई अपनी यात्राओंमें मैंने यह देखा है कि दयाभाव, जिसका तुलसीदासने अत्यन्त सारगर्भित वर्णन किया है, जो जैन और वैष्णव धर्मोका मुख्य अंग है, जो 'भागवत' का सार है और जो 'गीता' के प्रत्येक श्लोकमें विद्यमान है — वह दयाभाव, वह प्रेम वह औदार्य इस देशके सामान्य जनोंके हृदयोंमें धीरे-धीरे किन्तु दृढ़तापूर्वक बद्धमूल होता जा रहा है।

हम आज भी हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच अनेक झगड़ोंकी बात सुनते रहते हैं। अब भी कुछ हिन्दू और मुसलमान ऐसे हैं जो एक-दूसरेके साथ ज्यादती करनेमें संकोच नहीं करते। लेकिन यदि पूरे परिणामको देखें तो मैं अनुभव करता हूँ कि दयाभाव और उदारतामें वृद्धि ही हुई है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही ईश्वरसे डरने लगे हैं। हम अदालतों और सरकारी स्कूलोंके मोहसे मुक्त हो गये हैं और हमारे मनमें अब कोई भ्रम शेष नहीं है। मैंने यह भी अनुभव किया है कि जिन लोगोंको हम निरक्षर और अज्ञान समझते हैं वे लोग ही शिक्षित कहे जाने योग्य हैं। वे हमसे अधिक संस्कृत हैं और उनके जीवन हमारे जीवनसे अधिक धर्ममय हैं। यदि हम लोगोंकी वर्तमान मनोवृत्तिका थोड़ासा भी अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि लोक-कल्पनाके अनुसार स्वराज्य रामराज्यका पर्याय है जिसका अर्थ होता है भूतलपर धर्मराज्यकी स्थापना।

यदि मेरे अछूत भाइयोंको मेरे इस कथनसे कुछ सन्तोष मिल सके तो मैं कहूँगा कि आपके मामलेमें जितनी बेचैनी मुझे पहले हुआ करती थी उतनी अब नहीं होती। इसका अर्थ यह नहीं कि मैं आपसे यह आशा करता हूँ कि आप सवर्ण हिन्दुओंके प्रति सन्देहशील होना बन्द कर दें। आपके साथ इतने अन्याय किये जानेके बाद यह कैसे

हो सकता है कि आप उनपर अविश्वास न करें? स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि अछूत पतित नहीं बल्कि हिन्दुओं द्वारा दलित हैं। और इस प्रकार उनको दलित बनाकर हिन्दू स्वयं दलित बने हैं।

मेरा खयाल है कि ६ अप्रैलको मैं नेलौरमें[1] था। मैं वहाँ अछूतोंसे मिला था और मैंने यहाँ जैसे आज प्रार्थना की है वैसे ही वहाँ भी उस दिन की थी। मैं मोक्ष प्राप्त करना अवश्य चाहता हूँ। मैं पुनर्जन्म नहीं चाहता। लेकिन यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो वह अछूतोंके घर हो, जिससे मैं स्वयं मुक्त होने और उनको इस दुःखजनक स्थितिसे मुक्त करनेका प्रयत्न कर सकनेके उद्देश्यसे उनके दुःखों, कष्टों और उनके प्रति किये गये अपमानोंमें हिस्सेदार हो सकूँ। इसलिए मैंने यह प्रार्थना की थी कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्रके रूपमें न होकर अतिशूद्रके रूपमें हो।

आजका दिन ६ तारीखके दिनकी अपेक्षा अधिक पवित्र है। आजका दिन हजारों निर्दोष लोगोंकी हत्याकी[2] स्मृतिसे महत्वपूर्ण हो गया है। इसलिए मैंने आज भी यही प्रार्थना की है कि यदि मैं अपनी इच्छाएँ पूरी हुए बिना मर जाऊँ, मेरे द्वारा की गई अस्पृश्योंकी सेवा अधूरी रह जाये, मेरी कल्पनाका हिन्दुत्व निर्मित न हो तो मैं उसे पूरा करनेके लिए अस्पृश्योंके घर जन्म लूँ।

मुझे झाड़ने बुहारनेसे प्रेम है। मेरे आश्रममें १८ वर्षका एक ब्राह्मण लड़का है जो आश्रमके भंगीको सफाई सिखानेके उद्देश्यसे भंगीका काम कर रहा है। यह लड़का कोई सुधारक नहीं है। वह जन्मसे सनातनी है और सनातन धर्ममें ही पला-पुसा है। वह 'गीता' का पाठ नियमसे करता है और श्रद्धापूर्वक सन्ध्यावन्दन करता है। उसका संस्कृत श्लोकोंका उच्चारण मुझसे अधिक शुद्ध है। जब वह अपने मृदुल और मधुर स्वरोंमें प्रार्थना करता है तब उससे सबके मनमें प्रेमका संचार होता है। लेकिन वह अनुभव करता है कि जबतक वह पूरा भंगी नहीं बन जाता तबतक वह पूर्ण नहीं है। वह यह भी समझता है कि यदि वह आश्रमके भंगीसे अपना काम अच्छी तरह करनेको कहता है तो उसे यह काम स्वयं करके आदर्श उपस्थित करना चाहिए।

आपको समझना चाहिए कि आप हिन्दू समाजकी गन्दगी दूर कर रहे हैं। इसलिए आपको अपने जीवन पवित्र बनाने हैं। आपको सफाईकी आदत डालनी चाहिए ताकि आपपर कोई भी उँगली न उठा सके। यदि आप साबुनका उपयोग नहीं कर सकते तो आप अपने शरीरको क्षारयुक्त राख या मिट्टीका उपयोग करके स्वच्छ बनायें। आपमें से कई लोगोंको शराब पीने और जुआ खेलनेकी लत है यह आपको छोड़ देनी चाहिए। आप ब्राह्मणोंकी ओर संकेत करेंगे और यह कहेंगे कि वे भी तो इन बुराइयोंके शिकार हैं, लेकिन वे अपवित्र नहीं माने जाते परन्तु हम माने जाते हैं। आपको हिन्दुओंसे यह न कहना चाहिए कि वे बराय मेहरबानी आपको आजाद करें। यदि हिन्दू आपको मुक्त करना चाहते हैं तो उन्हें अपने हितके लिए आपको मुक्त करना ही होगा। इसलिए आप स्वयं पवित्र और स्वच्छ रहकर उनको लज्जित करें। मेरा विश्वास

१. गांधीजी ७ अप्रैल, १९२१ को नेलौरमें थे।
२. १३ अप्रैल, १९१९ को जलियाँवाला बागमें।

परिशिष्ट २

खिलाफतपर वाइसरायका भाषण[1]

सज्जनो,

आजकी इस सन्ध्या-बेलामें आपसे मिलनेका सौभाग्य प्राप्त कर मैं बहुत प्रसन्न हूँ और साथ ही इस बातके लिए भी मुझे प्रसन्नता हो रही है कि वर्तमान परिस्थितियोंके सम्बन्धमें मुस्लिम समाजकी ओरसे एक और प्रार्थनापत्र मेरे सामने प्रस्तुत किया गया है। आपको यह याद दिलानेकी जरूरत नहीं, हालाँकि यह शायद याद दिला देने लायक बात है, कि मैं और मेरी सरकार आपकी माँगें महामहिमकी सरकारके ध्यानमें बार-बार लाती रही है। इस सवालपर यूरोपमें जो शान्ति सम्मेलन होते रहे हैं, उनके सामने भी हम आपकी बातें रखते रहे हैं। क्या आपको यह स्मरण करा दूँ कि शान्ति सम्मेलनकी प्रारम्भिक अवस्थाओंमें भारत मन्त्रीने तथा जो दो सज्जन उस समय शान्ति सम्मेलनमें भारतका प्रतिनिधित्व कर रहे थे, उन्होंने आपके पक्षकी बड़ी जबरदस्त वकालत की। ये दो सज्जन थे, लॉर्ड सिन्हा और बीकानेरके महाराजा। चूँकि इन सज्जनोंको आपके समाजके प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता था इसलिए मैंने कुछ अन्य सज्जनोंसे भी शान्ति सम्मेलनमें जाकर मुसलमानोंके पक्षकी वकालत करनेको कहा। ये थे — महाविभव आगाखाँ, श्री आफताब अहमद और श्री युसुफ अली। इनकी बात सुनी भी गई। मैंने सिर्फ इतना ही नहीं किया है, बल्कि आपके समाजके किसी भी हिस्सेने मेरे पास जो भी प्रार्थनापत्र भेजा है प्रत्येकको मैं भारत मन्त्रीके पास भेजता रहा हूँ। और न केवल अपनी सरकारके दफ्तरी कागज-पत्रोंके सहारे, बल्कि स्वयं तार भेजकर भी ऐसे प्रत्येक प्रार्थनापत्रमें कही गई बातोंका हम समर्थन करते रहे हैं। इस प्रकार मैं आपको भरोसा दिलाता हूँ कि शुरूसे लेकर आखिरतक और जब असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उससे भी पहलेसे सरकारके रूपमें हम सब और उस सरकारके प्रमुखके रूपमें मैं आपकी माँगोंका जोरदार समर्थन करता आया हूँ — और समर्थन सिर्फ महामहिमकी सरकारके सामने ही नहीं, बल्कि शान्ति सम्मेलनके समक्ष भी। आपके पक्षको न केवल पर्याप्त रूपसे, बल्कि इस तरहसे पेश किया जा सके, जिससे आपको सन्तोष हो, इस दृष्टिसे हम कुछ भी उठा नहीं रखें, ऐसा सोचकर हमने अनौपचारिक तौरपर कुछ सज्जनोंसे फिर कहा है कि वे आपका पक्ष प्रस्तुत करनेके लिए यूरोप जायें। ये सज्जन हैं — महाविभव आगा खाँ, श्री हसन इमाम और श्री छोटानी। श्री छोटानीके सचिवकी हैसियतसे डा० अन्सारी भी उनके साथ जायेंगे।

१. यह भाषण २४ फरवरी, १९२१ को कलकत्तामें बंगाल विधान-मण्डलके निर्वाचित मुस्लिम सदस्योंके एक शिष्टमण्डलके सामने दिया गया था। सदस्योंने टर्कीकी शान्ति-सन्धिकी शर्तोंमें परिवर्तन करनेकी माँग की थी।

मेरा खयाल है, हमने जो कुछ किया है और करनेका प्रयत्न किया है, उसके इस वृत्तान्तसे आपको यह प्रतीति हो जानी चाहिए और मुझे आशा है कि आपको ऐसी प्रतीति हो जायेगी कि आपके पक्षका समर्थन करनेके लिए हमने अपने तई कुछ भी उठा नहीं रखा है। इस समय लन्दनमें क्या हो रहा है, यह मुझे मालूम नहीं है। जो सम्मेलन आदि हो रहे हैं उनके सम्बन्धमें भी मुझे न तो सरकारी तौरपर कोई जानकारी मिली है और न निजी तौरपर ही; लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आरम्भसे अन्ततक हमने आपके पक्षका समर्थन किया है और उसके लिए हम इस तरह लड़े हैं कि हमने बड़ी सरकारको जो पत्रादि लिखे हैं उन्हें आपके सामने रखनेमें मुझे अगर स्वतंत्रता होती तो प्रत्येक व्यक्ति उन्हें देखकर सन्तुष्ट हो जाता।

अन्तमें एक बार फिर मैं आपके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करना चाहता हूँ और कहना चाहता हूँ कि आपके प्रार्थनापत्रोंके पक्षमें मैं जो कुछ भी कर सकता हूँ, अन्ततक वह सब करनेको कृत-संकल्प हूँ।

[अंग्रेजीसे]

स्पीचेज बाई लॉर्ड चैम्सफोर्ड, खण्ड २, पृष्ठ ५८०–८१

परिशिष्ट ३

असहयोगपर वाइसरायका भाषण[1]

अध्यक्ष महोदय और सज्जनो,

यह चौथा अवसर है जब मुझे कलकत्ता क्लबके आतिथ्यका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस पाँच सालकी अवधिकी समाप्तिपर किसी भी व्यक्तिके लिए पीछे मुड़कर इस बातपर विचार करना स्वाभाविक ही है कि उसने जो-कुछ किया उसमें क्या गलतियाँ कीं और करने लायक कौनसे कार्य न करके उसने भूलें कीं। सो इस तरह विचार करते हुए मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि १९१७ में जब आपने कृपा करके मुझे अपना अतिथि बननेको निमन्त्रित किया था, उस समय श्री मॉन्टग्युके साथ मैं जो काम कर रहा था उसमें व्यस्त रहनेके कारण मैं आपका कृपापूर्ण निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर सका। अगर उस समय मैंने आपका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया होता तो आज यह कह सकता कि मैं जिस वर्ष भी कलकत्ता आया, हर वर्ष आपके आतिथ्यका सौभाग्य प्राप्त किया। मुझे आशा है कि आप मेरे उत्तराधिकारीको भी इसी तरह अपने आतिथ्यका सौभाग्य प्रदान करते रहेंगे, क्योंकि मैं नहीं समझता कि वाइसरायको प्रमुख प्रतिष्ठित लोगोंके सम्पर्कमें तथा ऐसे लोगोंको वाइसरायके सम्पर्कमें लानेका इन वार्षिक भोजोंसे अच्छा तरीका कोई और भी हो सकता है। अप्रैल

१. यह भाषण लॉर्ड चैम्सफोर्डने २३–२–१९२१ को अपने सम्मानमें कलकत्ता क्लबमें दिये गये भोजके अवसरपर दिया था।

१९१६ में वाइसरायका कार्य-भार सँभालनेपर मैं अनौपचारिक तौरपर थोड़ी देरके लिए कलकत्ता आया था, लेकिन जैसा कि मैंने उस समय भी कहा था, मेरी यात्राका उद्देश्य इस पुरानी राजधानीमें अपना आगमन-भर सूचित कर देना था। और आज जब मै आपसे बिदाई लेने आया हूँ, तब भी मेरे लिए ज्यादा समय देना सम्भव नहीं हुआ है। फिर भी मै आशा करता हूँ कि आप महानुभावोंने, जो कलकत्ताके हैं, मेरे बार-बार कलकत्ता आनेसे अवश्य यह अनुभव किया होगा कि आपका यह महान नगर मुझे कितना पसन्द है, और आप इस बातका भी अनुभव करते होंगे कि जिस तरह मेरे पूर्ववर्ती वाइसराय आपके बीच रहे, उस तरह मैं न ह सका, इसका मुझे कितना दुःख है।

अब जब मैं पीछे मुड़कर गत पाँच वर्षोकी अवधिकी ओर देखता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि इस बीच काफी बड़े परिवर्तन हुए हैं। एक पुरानी लैटिन कहावत है कि जो समुद्र पार करता है — अपना देश छोड़ता है, वह अपना आकाश तो बदल लेता है, लेकिन दिमाग नहीं बदलता। मैं खुद नहीं मानता कि जब कविने ऐसा लिखा; उन दिनों भी यह बात सच रही होगी, क्योंकि जिन लोगोंको एक बदले परिवेशमें जाना पड़ता है उन लोगोंके दिमागपर परिवेश बहुत अधिक प्रभाव डालता है। हाँ, यह सिद्धान्त बेशक उन लोगोंपर लागू नहीं होता जो संसद-भवनमें विरोधी दल-का स्थान छोड़कर मन्त्रियोंके स्थान ग्रहण करते हैं, क्योंकि उस हालतमें स्वभावतः वे पहली बार आलोचककी भूमिका छोड़कर आलोचनाके पात्रोंकी भूमिका सँभालते हैं। यह बात सभी स्थानोंकी संसदीय संस्थाओंकी एक सहज विशेषता है, लेकिन यह अनिवार्य है कि इस तरह जो आदमी पहली बार सरकारकी किसी कार्रवाईके कारणोंसे परिचय प्राप्त करता है, वह सरकारकी कार्रवाईका औचित्य उन दिनोंकी अपेक्षा अधिक देख सकता है जब वह तथ्योंसे उतनी अच्छी तरह अवगत नहीं था और जब उसमें यह सोचनेकी प्रवृत्ति थी कि सरकार जो करती है, वह ठीक हो ही नहीं सकता।

आपके क्लबके आतिथ्यका सौभाग्य प्राप्त करनेका मेरे लिए यह अन्तिम अवसर है। फिर भी, आज हम जिस उथल-पुथलकी स्थितिसे गुजर रहे हैं, उसके सम्बन्धमें अगर कुछ कहूँ तो आप क्षमा करेंगे। आजकी रात जो आप यहाँ मौजूद हैं, मेरा खयाल है इस तथ्यको मैं इस बातका द्योतक मान सकता हूँ कि आप सरकारके साथ सहयोग कर रहे हैं। आजकल केवल हमारे भारत देशमें ही अशान्ति नहीं छाई है। सच तो यह है कि दुनियामें आप जिधर भी नजर उठाकर देखिये सर्वत्र अशांति ही छाई हुई है। लेकिन तब आप स्वभावतः ऐसा पूछ सकते हैं : हाँ, यह तो माना कि सर्वत्र अशान्ति है, लेकिन वर्तमान स्थितिके सम्बन्धमें आपकी नीति क्या है? मुझे यह स्थिति जैसी दिख रही है, उसका वर्णन मैं अब संक्षेपमें कर दूँ। मेरा खयाल है कि जिन लोगोंने सरकारके साथ सहयोग करनेसे इनकार कर दिया है ऐसा उन्होंने मोटे तौरपर इस कारण किया है कि वे मानते हैं कि मैं और मेरी सरकार — दोनों शैतानी हैं। लेकिन मुझे खुशी है कि मुझमें अब भी हास्यकी वृत्ति शेष है। मेरे कार्यकालमें मेरे लिए बहुत-से विशेषणोंका प्रयोग किया गया है, लेकिन "शैतानी" विशेषणसे तो एक नई ही चीज सामने आती है। इस विशेषणसे जुड़ी विशेषताओंको मैं अपने लिए

तो सर्वथा असंगत मानता ही हूँ, किन्तु आजकी स्थितिमें, जबकि प्रान्तीय सरकारोंकी जिम्मेदारी विशेष रूपसे भारतीयोंके हाथमें है और केन्द्रीय सरकारकी भी बहुत-कुछ जिम्मेदारी भारतीयोके हाथोंमें ही है, सरकारके लिए ऐसा विशेषण चुनना निश्चय ही एक बिलकुल गलत चुनाव प्रतीत होना चाहिए। लेकिन, खैर हम आगे बढ़ें। सुधारोंका शुभारम्भ कर दिया गया है और सरकारकी जिम्मेदारी बहुत अंशोंतक भारतीयोंको सौंप दी गई है। फिर यह कैसी विचित्र बात है कि वे ही लोग, जो वर्षोंसे सरकारके सूत्र संचालनमें अधिकाधिक हिस्सेकी माँग करते रहे हैं, आज बच्चोंकी तरह मचलते हुए उस जिम्मेदारीको स्वीकार करनेसे इनकार कर रहे हैं। अभी कुछ ही दिन पहले पढ़ते समय मेरी नजरोंसे एक अमरीकी चौपदा गुजरा। इस प्रसंगपर मुझे उसकी याद हो आई है। चौपदा इस प्रकार था :

"अम्मा, क्या मैं तैरने जा सकती हूँ?
हाँ प्यारी बिटिया, क्यों नहीं;
अपने कपड़े हिकरीकी डालपर रख देना;
लेकिन पानीके पास मत जाना।"

जहाँतक असहयोगियोंका सम्बन्ध है, मुझे तो यही लगता है कि इस चौपदेमें पूरी स्थितिका सार निहित है। और अब असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमें हमारी नीति क्या है, इसपर दो शब्द कहूँगा। सुधार और नई परिषदें हमारी नीतिके मुख्य आधार हैं। अब सरकारकी जिम्मेदारीमें भारतीय भी हाथ बँटा रहे हैं, इसलिए मेरा खयाल है कि सरकारका इस आन्दोलनको रोकनेके लिए भारतीयोंसे सहायताकी अपेक्षा करना उचित ही होगा। असहयोगका प्रसार प्रचार-द्वारा ही किया जा रहा है; इसलिए हमारे लिए, हम अंग्रेजों और भारतीयोंके लिए शोभनीय यही है कि हम उसका प्रतिकार भी प्रचारके द्वारा ही करें। जहाँ-कहीं लोगोंको कोई शिकायत होती है, असहयोग आन्दोलन उसका लाभ उठाता है। तो इस हालतमें हमारे लिए उचित यही है कि हमसे जहाँतक बन पड़े उन शिकायतोंको दूर करनेकी कोशिश करें। जो लक्ष्य सामने रखकर असहयोग आन्दोलन शुरू किया गया था, उनमें से बहुत-से लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सके हैं। केन्द्रीय विधान सभामें अभी पिछले ही दिन एक प्रश्नका जो उत्तर दिया गया, उससे प्रकट होता है कि लोगोंका खिताब छोड़नेके लिए जो आह्वान किया गया था, उसका उनपर कितना कम असर हुआ है। केन्द्रीय विधान सभा और प्रान्तीय परिषदोंका अस्तित्व भी इसी बातको सिद्ध करता है कि इस मामलेमें भी असहयोगके प्रणेता जो चाहते थे वह नहीं हो सका। मुझे दुःख है कि बहुतसे ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने परिषदोंसे अलग रहना ही अपने लिए ठीक माना है। अगर परिषदोंको उनका सहयोग प्राप्त होता, अगर उनकी कार्यवाहीमें उन व्यक्तियोंके विचारोंका लाभ भी प्राप्त होता तो यह परिषदोंके हकमें बहुत अच्छा होता; फिर भी यह तो एक वास्तविकता है ही कि परिषदें गठित हुई और अच्छे सदस्योंसे गठित हुई तथा काम भी अच्छा कर रही हैं। अफगानिस्तानकी हिजरतके सिलसिलेमें भी असहयोगको लागू करनेकी कोशिश की गई थी। इस हिजरतके कारण इतने लोग मौतके मुँह गये, लोगोंकी

इतनी तबाही हुई कि मेरा खयाल है, अब कभी ऐसी कोशिश की जानेकी गुंजाइश नहीं रह गई है। भावुक लड़कोंको स्कूल छोड़नेको प्रेरित करनेमें इस आन्दोलनको कुछ समयके लिए सफलता अवश्य मिली, लेकिन यहाँ भी इस भावुकताकी लहरके समाप्त होते ही विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्यामें अपनी-अपनी कक्षाओंमें वापस पहुँच गये हैं। इसलिए हमने जो नीति अपनाई है, उसकी सफलताके सम्बन्धमें भरोसा रखनेका हर कारण हमारे सामने मौजूद है। लेकिन वर्गोंके बीच, विशेषकर शिक्षित वर्गोंके बीच विफल होकर असहयोगी अब अपना ध्यान सर्व-साधारणपर केन्द्रित कर रहे हैं। लेकिन हमें यहाँ भी सर्वसाधारणको सही रास्ता दिखानेके लिए संगठित प्रयास करना है।

वर्तमान समस्याका एक और भी पहलू है, जो मुसलमानोंसे सम्बन्धित है। टर्कीकी शान्ति सन्धिकी शर्तोंपर गौर करनेके लिए जो सम्मेलन होते रहे हैं, उनके सामने मुसलमानोंके विचारों और भावनाओंको लानेके लिए मैंने जितनी कोशिश की है, उससे अधिक कोई नहीं कर सकता, और टर्कीकी शान्ति सन्धिकी शर्तोंके प्रति मैंने जितनी नापसन्दगी जाहिर की है, उतनी और कोई नहीं कर सकता — शायद कोई मुसलमान भी नहीं। इसलिए मेरा कहना है कि जो मुसलमान टर्कीकी शान्ति सन्धिकी शर्तोंसे नाराज होकर असहयोग आन्दोलनमें शामिल हो गये हैं, उनके प्रति विशेष प्रेम-भाव और सहानुभूतिसे पेश आनेका हर कारण हमारे सामने मौजूद है। लेकिन कोई घड़ी हमारी ऐसी भी आ सकती है जब हमारी नीति विफल हो जाये, और हमारे सामने दो ही विकल्प रह जायें: या तो व्यवस्था बनाये रखें या अराजकता फैल जाने दें। ऐसी हालतमें सरकारके सामने तो एक ही रास्ता होगा कि वह व्यवस्थाके पक्षमें कार्रवाई करे। तब हम सभी जिम्मेदार लोगोंको व्यवस्थाके पक्षमें खड़े होनेको कहेंगे और मुझे पूरा विश्वास है कि इसमें नई परिषदें एक सक्रिय भूमिका निभायेंगी। सरकारकी हैसियतसे हम सारे तथ्य उनके सामने पेश कर देंगे, कुछ भी छिपा कर नहीं रखेंगे। और मुझे विश्वास है कि जब हम यह सिद्ध कर देंगे कि ऐसी स्थिति आ गई है कि चुनाव सिर्फ व्यवस्था और अराजकताके बीच ही करना है तो उसकी एक ही प्रतिक्रिया होगी; वह यह कि "आप देशमें व्यवस्था कायम रखनेके लिए जो भी कदम उठाना आवश्यक समझेंगे, उसमें हम आपका समर्थन करेंगे।"

कलकत्ताकी मेरी यह अन्तिम यात्रा है, और मुझे लॉर्ड रोनाल्डशे तथा उनके सहयोगियोंके प्रति भी अवश्य ही आभार प्रकट करना चाहिए। बंगाल सरकारने मेरी सरकारके साथ जिस वफादारीसे सहयोग दिया है, उसके लिए भी मैं आभारी हूँ। उसके प्रशासनमें जैसी बुद्धिमत्ता तथा सूझ-बूझ प्रकट होती है वह भी ध्यान देने योग्य बात है और लॉर्ड रोनाल्डशेका मेरे प्रति जैसा मैत्री-भाव रहा है, उन्होंने मुझे जैसा सहयोग दिया है, उसके लिए मैं उन्हें व्यक्तिगत रूपसे धन्यवाद देता हूँ। हमारे बीच समय-समयपर मतभेद भी हुए होंगे, किन्तु इन मतभेदोंसे वफादारी-भरे सहयोगकी उस आम नीतिके महत्वमें कोई कमी नहीं हुई, जिस नीतिका अनुभव लॉर्ड रोनाल्डशे और उनके सहयोगी मुझे बराबर कराते रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

स्पीचेज बाई लॉर्ड चैम्सफोर्ड, खण्ड २, पृष्ठ ५७४–८१

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय, देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा आलेख संग्रह: जिनमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी कालके और १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात सुरक्षित हैं। देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'आज': बनारससे प्रकाशित दैनिक।

'ट्रिब्यून': अम्बालासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'नवजीवन' (१९१९–१९३१): गांधीजी द्वारा सम्पादित अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक, जो कभी-कभी सप्ताहमें दो बार भी निकलता था; यह 'नवजीवन अने सत्य' (१९१५–१९१९) नामक गुजराती-मासिकके रूपको बदलकर निकाला गया था, जिसका पहला अंक ७ सितम्बर, १९१९ को निकला। १७ अगस्त, १९१९ से इसका हिन्दी संस्करण भी प्रारम्भ किया गया था।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया' (१९१९–१९३१): अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक। सम्पादक, मो० क० गांधी; प्रकाशक, मोहनलाल मगनलाल भट्ट।

'लीडर': इलाहाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'सर्चलाइट': पटनासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'मधपुडो': आश्रम विद्यालय, साबरमतीकी हस्तलिखित पत्रिका।

पंजाबके उपद्रवोंके सम्बन्धमें कांग्रेसकी रिपोर्ट — एक गुजराती अनुवाद।

पश्चिम बंगाल सीक्रेट पुलिस रेकर्ड्स।

पुलिस एब्स्ट्रैक्ट्स ऑफ इन्टैलिजेंस, पंजाब।

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ३५ वें अधिवेशनकी रिपोर्ट, दिसम्बर १९२०।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी, स्वराज्य आश्रम, बारडोली।

'बापुना पत्रो: मणिबहेन पटेलने' (गुजराती): सम्पादक, मणिबहेन पटेल, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी' (अंग्रेजी): मो० दी० गो० तेन्दुलकर, झवेरी ऐंड तेन्दुलकर, बम्बई, १९५१–४; आठ जिल्दोंमें।

'महादेव भाईनी डायरी', खण्ड ५ (गुजराती): नरहरि परीख, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'स्पीचेज बाई लॉर्ड चैम्सफोर्ड', खण्ड २ (अंग्रेजी): गवर्नमेंट मोनोटाइप प्रेस, शिमला १९२१।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१९ नवम्बर, १९२०– १३ अप्रैल, १९२१)

नवम्बर १९: 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को लिखे अपने पत्रमें गांधीजीने उसकी इस रिपोर्टका खण्डन किया कि उन्होंने उर्दूको राष्ट्रीय लिपिके रूपमें अपनानेका समर्थन किया है।

नवम्बर २०: झाँसीकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

नवम्बर २१: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे भेंट।

नवम्बर २३: आगरामें सार्वजनिक सभा और विद्यार्थियोंकी सभामें भाषण।

नवम्बर २६: बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंकी सभा तथा सार्वजनिक सभामें भाषण।

नवम्बर २८: इलाहाबादकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

नवम्बर २९: महिलाओंकी सभा, इलाहाबादमें भाषण। एक अन्य भाषणमें गांधीजीने हिन्दुओंसे अली भाइयोंपर सन्देह न करनेको कहा।

नवम्बर ३०: विद्यार्थियोंकी सभा, इलाहाबादमें भाषण।

दिसम्बर १: इलाहाबादमें तिलक विद्यालयके उद्घाटनपर भाषण।

दिसम्बर २: फुलवारी शरीफ और पटनाकी सार्वजनिक सभाओंमें भाषण।

दिसम्बर ३: विद्यार्थियोंकी सभा, पटनामें भाषण।

दिसम्बर ४: महिलाओंकी सभा, पटना तथा आराकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

दिसम्बर ५: गयामें भाषण।

दिसम्बर ६: छपरामें भाषण।

दिसम्बर ८: मुजफ्फरपुरमें भाषण।

बेतियामें गो-रक्षापर भाषण।

'यंग इंडिया' में लिखी अपनी एक टिप्पणीमें गांधीजीने लॉर्ड रोनाल्डशे द्वारा 'हिन्द स्वराज्य' के सम्बन्धमें व्यक्त किये गये विचारोंपर चर्चा की और सच्चे स्वराज्यको मोक्षका पर्यायवाची बताया।

दिसम्बर ९: गांधीजीको यह खबर मिली कि प्रीवी कौंसिलकी न्याय समितिने कालिनाथ रायकी वह अपील खारिज कर दी है जो उन्होंने पंजाबकी फौजी अदालत द्वारा दी गई सजाके विरुद्ध दायर की थी।

गांधीजीने मोतीहारीमें भाषण दिया।

दिसम्बर ११: मुंगेरकी सार्वजनिक सभामें दिये गये भाषणमें गांधीजीने असहयोगका विस्तृत विवेचन किया।

दिसम्बर १२: भागलपुरमें भाषण।

दिसम्बर १३: कलकत्तामें नेशनल मदरसेके उद्घाटन समारोह तथा सार्वजनिक सभामें भाषण।

दिसम्बर १४: विद्यार्थियों की सभा, कलकत्तामें भाषण।

दिसम्बर १५: ढाकामें भाषण।

दिसम्बर १८: नागपुरकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

दिसम्बर २२: डा० तेजबहादुर सप्रूकी वाइसरायकी कार्यकारिणी परिषदमें विधि-मन्त्रीके पदपर नियुक्ति ।

नागपुरमें गांधीजीने बुनकर परिषद् व अन्त्यज परिषद्की अध्यक्षता की।

दिसम्बर २६: विजयराघवाचार्यकी अध्यक्षतामें कांग्रेसका ३५ वाँ अधिवेशन नागपुरमें प्रारम्भ हुआ।

दिसम्बर २८: गांधीजीने विषय समितिकी बैठकमें कांग्रेसके नये सिद्धान्तसे सम्बन्धित प्रस्ताव पेश किया।

बादमें खुले अधिवेशनमें उपर्युक्त प्रस्तावपर भाषण दिया।

दिसम्बर २९: लॉर्ड सिन्हाने बिहार और उड़ीसाके गवर्नरका कार्य-भार संभाला।

नागपुर कांग्रेस अधिवेशनमें विदेशोंमें प्रचार करनेके सम्बन्धमें बोलते हुए गांधीजीने कहा कि ब्रिटिश कमेटी और उसके पत्र 'इंडिया' को बन्द कर दिया जाये।

दिसम्बर ३०: कांग्रेस अधिवेशनमें असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावपर भाषण।

दिसम्बर ३१: कांग्रेस अधिवेशनमें तिलक स्मारक स्वराज्य कोषपर भाषण।

१९२१

जनवरी १: सुरेन्द्रनाथ बनर्जीको 'नाइट' की उपाधि दी गई।

नागपुरमें गांधीजीने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तथा कार्यसमितिकी बैठकोंमें भाग लिया।

जनवरी ६: छिंदवाड़ाकी सार्वजनिक सभामें गांधीजी द्वारा नागपुर कांग्रेसके प्रस्तावोंका स्पष्टीकरण।

जनवरी ९: लॉर्ड रीडिंगके वाइसराय और गवर्नर जनरल नियुक्त किये जानेकी घोषणा की गई।

जनवरी १०: ड्यूक ऑफ कनॉट मद्रास पहुँचे।

जनवरी १२: गांधीजी द्वारा तैयार किया गया प्रान्तीय कांग्रेस समितियोंके नियमोंका मसविदा 'यंग इंडिया' में प्रकाशित हुआ।

ड्यूक ऑफ कनॉट द्वारा मद्रासमें नई विधान परिषदका उद्घाटन।

जनवरी १३: गुजरात महाविद्यालय, अहमदाबादके विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण

जनवरी १५: कर्नल तथा श्रीमती वैजवुड इंग्लैंड जानेके लिए मद्राससे कोलम्बो रवाना हुए।

जनवरी १९: नड़ियादमें गांधीजीने विद्यार्थियों, अध्यापकों और व्यापारियोंकी सभाओंमें भाषण दिये।

वडतालकी सार्वजनिक सभा और साधुओंकी सभामें भाषण। 'यंग इंडिया' में बंगाली नवयुवकोंके नाम लिखे खुले पत्रमें गांधीजीने उनसे अहिंसामय असहयोग करने और कातना प्रारम्भ करनेका अनुरोध किया।

जनवरी २० : विद्यार्थियोंकी सभा, बम्बईमें भाषण।

जनवरी २३ : कलकत्तामें चित्तरंजन दासकी अध्यक्षतामें हुई विद्यार्थियोंकी सभा तथा चित्तरंजन दासके निवास स्थानपर हुई महिलाओंकी सभामें भाषण।

जनवरी २६ : व्यापारियोंकी सभा, कलकत्तामें भाषण।

अपनी पुस्तक "हिन्द स्वराज्य" पर 'यंग इंडिया' में लिखते हुए उन्होंने बताया कि उसमें वर्णित स्वराज्यकी स्थापना करना आज मेरा ध्येय नहीं है।

जनवरी २७ : कलकत्तामें तिलक राष्ट्रीय विद्यालयके उद्घाटन समारोहमें भाषण।

जनवरी २८ : ड्यूक ऑफ कनॉट कलकत्ता पहुँचे।

जनवरी २९ : कलकत्तामें स्नातकोत्तर छात्रों और कानूनके विद्यार्थियोंकी सभामें भाषण।

जनवरी ३० : गुजराँवालामें पंजाब-छात्रसभाने कांग्रेसके असहयोग सम्बन्धी प्रस्तावके समर्थनमें प्रस्ताव पास किया।

गांधीजी, चित्तरंजन दास और मुहम्मद अलीने उपर्युक्त सभाको उनके प्रस्तावके लिए बधाईका एक संयुक्त संदेश भेजा।

गांधीजी कलकत्ताके समीप बेलूरमठमें स्वामी विवेकानन्दकी वर्षगाँठ समारोहमें शामिल हुए।

फरवरी १ : कलकत्तामें ड्यूक ऑफ कनॉटने बंगालकी नई विधान परिषद्का उद्घाटन किया।

गांधीजीने कलकत्ताके मिर्जापुर चौक और विलिंगडन चौककी सभाओंमें मॉण्टेग्यु चैम्सफोर्ड सुधारोंपर असन्तोष प्रकट करते हुए भाषण दिया।

फरवरी २ से पूर्व : ड्यूक ऑफ कनॉटको लिखे अपने पत्रमें गांधीजीने लिखा कि आपके स्वागतमें हिस्सा न लेना आपके विरुद्ध प्रदर्शन नहीं है, बल्कि उस प्रणाली-के विरुद्ध प्रदर्शन है जिसको बल देनेके लिए आप आये हुए हैं तथा पत्रमें आगे उन्होंने उनसे असहयोगके उद्देश्यका अध्ययन कर उसे समझनेका अनुरोध किया।

फरवरी ४ : कलकत्तामें राष्ट्रीय महाविद्यालयके उद्घाटनपर भाषण।

फरवरी ६ : पटनामें बिहार राष्ट्रीय विश्वविद्यालय और राष्ट्रीय महाविद्यालयके उद्घा-टनपर तथा सार्वजनिक सभामें भाषण।

फरवरी १० : काशी विद्यापीठके शिलान्यासके अवसरपर भाषण।

फैजाबादमें भाषण।

फरवरी १३ : दिल्लीमें तिब्बिया कालेजके उद्घाटनपर भाषण।

फरवरी १५ : लाला लाजपतरायकी अध्यक्षतामें भिवानीमें हुए हरियाना ग्रामीण सम्मे-लनमें भाषण।

फरवरी १६ : गांधीजीने रोहतकमें ग्रामीण सम्मेलनमें भाषण दिया, जाट स्कूल देखा तथा वैश्य हाई स्कूलका शिलान्यास किया।

फरवरी १७ : कालीकटमें याकूब हसन तथा अन्य तीन लोगोंको गिरफ्तार करके ६ महीनेकी सजा दे दी गई।

फरवरी १९ : गांधीजी द्वारा गुजराँवालाकी सार्वजनिक सभामें भाषण।

फरवरी २० : लाहौरके पास ननकाना साहबमें गुरुद्वारेपर कब्जा करनेके प्रयत्नमें महन्त नारणदासके अनुयायियों द्वारा १६० अकाली सिख मार डाले गये।

फरवरी २५ : लायलपुरके पास श्रीमें ननकाना साहबकी दुर्घटनापर बोलते हुए गांधीजीने सिखोंको गुरुद्वारोंपर कब्जा करनेमें शान्तिसे काम लेनेकी सलाह दी।

फरवरी २६ : लखनऊकी खिलाफत सभामें भाषण।

फरवरी २८ : ड्यूक ऑफ कनॉट भारतसे रवाना हुए।

मार्च ३ : गांधीजी शौकत अलीके साथ ननकाना साहब गुरुद्वारे गये तथा सिखोंसे अपील की कि वे अपनी वीरता देशकी सेवामें लगायें।

मार्च ४ : लाहौरके सिखोंको ननकाना साहबकी दुर्घटनापर सन्देश भेजा।

मार्च ५ : मुल्तानमें भाषण।

मार्च ८ : जालन्धर नगरपालिका द्वारा गांधीजीको मानपत्र भेंट।
होशियारपुर, हरियाना और अम्बालामें भाषण।

मार्च १६ : बम्बईकी सार्वजनिक सभा तथा नेशनल कालेजमें भाषण।
'डेली हैरॉल्ड' के प्रतिनिधिसे भेंट।
'यंग इंडिया' में लिखते हुए तिलक स्वराज्य कोषके लिए ३० जून, १९२१ तक एक करोड़ रुपया इकट्ठा करनेका निश्चय किया।

मार्च १७ : आर्वीमें भाषण।

मार्च १८ : नागपुरमें भाषण।

मार्च १९ : अमरावतीमें भाषण।

मार्च २० : 'नवजीवन' में सत्याग्रह सप्ताहकी चर्चा करते हुए गांधीजीने लिखा कि यह सप्ताह शुद्ध तपश्चर्या, शुद्ध भक्ति और शुद्ध फकीरीका होना चाहिए।

मार्च २३ : कटककी दो सभाओंमें भाषण।
'यंग इंडिया' में पारसियोंके नाम लिखे अपने पत्रमें गांधीजीने उनसे देशमें चल रहे शराबबन्दी आन्दोलनको अपना सहयोग देनेकी अपील की।

मार्च २४ : कटकमें मुसलमानोंकी सभा और सार्वजनिक सभामें भाषण।

मार्च २९ : बरहामपुर नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दनपत्रके उत्तरमें तथा सार्वजनिक सभामें भाषण।

मार्च ३० : विजयनगरम्की सार्वजनिक सभामें भाषण देते हुए गांधीजीने हिन्दीको भारतकी राष्ट्रभाषा बनानेकी अपील की।
'यंग इंडिया' के अपने लेखमें गांधीजीने लिखा कि यदि कांग्रेसके संविधानको ईमानदारीसे कार्यान्वित किया जाये तो वह सरकारको निकाल बाहर कर सकता है।

मार्च ३१ : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठक, बेजवाड़ामें चार प्रस्ताव पेश किये।

अप्रैल १ : लॉर्ड रीडिंग बम्बई पहुँचे।
बेजवाड़ा नगरपालिका परिषद द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें भाषण।
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें भाषण।

अप्रैल २ : लॉर्ड चैम्सफोर्ड भारतसे रवाना हुए।
कोकोनाडामें नगरपालिका परिषद द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें भाषण।

अप्रैल ३ : राजमहेन्द्री और एलौरमें भाषण।

अप्रैल ५: मसूलीपट्टममें नगरपालिका द्वारा दिये गये मानपत्रके उत्तरमें भाषण।

अप्रैल ६: राष्ट्रीय सप्ताह प्रारम्भ हुआ। चिरलामें भाषण।

अप्रैल ७: नैलोरमें गांधीजीने तिलक विद्यालयका उद्घाटन किया और सार्वजनिक सभामें भाषण दिया।

अप्रैल ८: मद्रासकी सार्वजनिक सभामें भाषण देते हुए ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंसे प्रार्थना की कि वे एक दूसरेको समझने और मिलजुल कर रहनेका प्रयत्न करें।

अप्रैल १०: बम्बईमें स्वराज्य सभा, भारतीय होमरूल लीग तथा केन्द्रीय खिलाफत समितिके तत्त्वावधानमें आयोजित सार्वजनिक सभामें भाषण।

अप्रैल १३: गांधीजीने 'यंग इंडिया' के अपने लेखमें लिखा कि यह आवश्यक है कि सब भारतीयोंका अपना एक झण्डा हो जिसके लिए हम जियें और मरें। अहमदाबादकी सार्वजनिक सभामें उन्होंने घोषणाकी कि "हम ऐसा स्वराज्य चाहते हैं जो रामराज्य जैसा हो"; इसके बाद उन्होंने दलित वर्ग सम्मेलनमें भाषण दिया।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

प

फ

भ

म

य

र

ल

व

श